पुस्तकों की सूची —

१ - कालिदास और विक्रमादित्य का कालनिर्णय।
2961

२ - गीता - सूची। 2962

३ - सप्तम हिन्दी - साहित्य - सम्मेलन, जबलपुर
2963

४ - दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास।
2964

५ - समन्तभद्र का समय और डाक्टर के० बी० पाठक।
2965

With kind regards to Jugal Kishore Jain, Mukhtar
Sarsawa (N.W.) Saharanpore Dist. U.P.
K.K.

कालिदास और विक्रमादित्य का काल-निर्णय।

History Office Dha
22/6/26

[सरस्वती से उद्धृत] सन १९२३

काशीनाथ कृष्ण लेले।
शिवराम काशीनाथ ओक।

कालिदास और विक्रमादित्य का काल-निर्णय।

'नामूलं लिख्यते किञ्चित्'

ध्यकालीन भारत के इतिहास से कालिदास और विक्रमादित्य के नाम गुम से हो गये हैं। उनकी खोज के सम्बन्ध में चतुर और विद्वान् शोधक भी गड़बड़ा गये हैं। जब कोई बहुमूल्य वस्तु गुम होजाती है, प्रायः खोजनेवालों के मस्तिष्क में यह सोचने की शक्ति नहीं रह जाती कि जो वस्तु खोगई है वह कहां मिल सकती है और कहां नहीं। कहावत है कि जब हाथी गुम होजाता है, खोजनेवाला उसे हांडी में भी टटोलने लग जाता है। ठीक ऐसी ही बात उक्त दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। भिन्न भिन्न दिशाओं में खोज की गई, कल्पनायें दौड़ाई गईं, साधक-बाधक प्रमाणों पर खूब विचार किया गया, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और ईसा के ८०० वर्ष पूर्व तथा ११०० वर्ष पश्चात् तक बहुत कुछ जांच-पड़ताल की गई। फिर भी अब तक विश्वास-योग्य कुछ पता न चला। इस सम्बन्ध में अब तक जो प्रयत्न किये गये हैं उन्हीं पर हम सबसे पहले एक दृष्टि डाल कर देखें और विचार करें कि कुछ पता चलता है या नहीं।

काल निरवधि है और पृथ्वी विस्तृत है; इस पर भी पूर्वोक्त रत्नों की खोज के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अनादि, अनन्त दिशा और काल में खोज की जाय। अब तक की खोजों से कुछ सीमायें स्थिर हो चुकी हैं। उन्हीं के भीतर भीतर निरीक्षण कर लेना काफ़ी होगा।

उत्तर-भारत के अन्तर्गत कन्नौजवासी बाणभट्ट-कृत श्रीहर्षचरित्र में और दक्षिण-भारत के अन्तर्गत कर्नाटक देश के आय होले (Aihole) स्थान के जैन-मन्दिर के शिलालेख में भी कालिदास का उल्लेख स्पष्टरूप से किया गया है। इन दोनों प्रमाणों का समय लगभग इसवी सन ६३५ स्थिर हो चुका है। यह इस ओर की सीमा हुई। अब दूसरी ओर की सीमा को देखिए। कालिदास-कृत 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के नायक शुङ्गवंशी राजा अग्निमित्र का समय ईसा से १५० वर्ष पूर्व स्थिर हो चुका है। यह दूसरी सीमा है। इससे यह प्रकट हुआ कि ईसा से १०० वर्ष पूर्व से लेकर ६३५ तक अर्थात् ७३५ वर्षों के बीच में कालिदास का और उसके आश्रयदाता विक्रमादित्य का आविर्भाव हुआ है। गत शताब्दी से पुरावृत्तज्ञों ने जो कुछ खोज की है उसी की सहायता से हमको भी अपना मार्ग खोजना चाहिए। इन सात, साढ़े सात सौ वर्षों के बीच कालिदास और विक्रमादित्य का कहीं पता मिल सकता है या नहीं, यह जान कर ही कुछ अनुमान स्थिर किया जा सकेगा।

ईसा के पूर्व पहली शताब्दी।

हमारे देश में पुराने ज़माने से सब लोग यह बात मानते चले आ रहे हैं कि इसी शताब्दी में अर्थात् विक्रम-संवत के आरम्भ में कालिदास और विक्रमादित्य का आविर्भाव हुआ है. परन्तु खोज करने पर ज्ञात हुआ है कि इस शताब्दी में उनके अस्तित्व का किञ्चिन्मात्र भी प्रमाण नहीं मिलता। जो लोग उनसे पहले होगये हैं उनके विषय में अर्थात् चन्द्रगुप्त, अशोक आदि मौर्य राजाओं के विषय में बहुतेरे ग्रन्थ और शिला-लेख पाये गये, पर कालिदास और विक्रमादित्य के विषय में दोनों प्रकार के तत्कालीन प्रमाणों का पता नहीं मिलता, यद्यपि ये दोनों उनसे पीछे हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ईसा से लगभग ५७ वर्ष पहले से लेकर इस समय तक वह संवत जारी है जो अब "विक्रम" के नाम से प्रसिद्ध है। यहां यह उल्लेख कर देना उचित है कि आरम्भ से लेकर लगभग ८००, १००० वर्ष के बीच के जो उत्कीर्ण लेख या लिखित ग्रन्थ मिले हैं उनमें यह संवत् कहीं भी विक्रम नाम से प्रयुक्त नहीं हुआ है*। इन लेखों के वर्षों के लिए

* सबसे पुराना उत्कीर्ण लेख, जिसमें संवत् के साथ विक्रम नाम का उल्लेख है, चाहमान चण्ड महासेन की ओर से विक्रम-संवत् ८९८ (ईसवी सन् ८४१) में उत्कीर्ण किया गया है। डाक्टर कीलहार्न की उत्तरी शिला-लेखों की फेहरिस्त में यह लेख १२ वीं संख्या में दर्ज है।

"मालवानां गणस्थित्या" अथवा "मालवगणस्थिति-वशात्" शब्द दिये गये हैं। इससे बहुत होगा यह तो सिद्ध हो सकेगा कि इस संवत् की उत्पत्ति मालवे में हुई, पर यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि यह विक्रम के द्वारा जारी किया गया है। अतएव जब संवत् का प्रवर्त्तक विक्रम ही कालावधि से उड़ गया तब उसके सभा के कालिदास प्रभृति नवरत्नों की कथा ही क्या? जब मूल ही नहीं है तब शाखा और पत्रों के लिए आधार कैसा? वन्ध्या के परिवार की तरह वह मिथ्या होगया।

राजा विक्रमादित्य ही पूर्वोक्त संवत् का प्रवर्त्तक था, यह धारणा हमारे देश में यहाँ तक जड़ पकड़ चुकी है कि जब कभी इसके विरुद्ध कोई वाद उपस्थित होता है, पुराने पण्डित उस पर आश्चर्य करने लगते हैं और विरोध की बात को वे ज़रा भी नहीं सहन करना चाहते। किसी को यह न समझ लेना चाहिए कि इस पुराने मत को पुरस्सर करनेवाले अब रह ही नहीं गये। श्रीयुत चिन्तामणि रावजी वैद्य जैसे सुप्रसिद्ध इतिहास-संशोधक अब भी इस मत को अपनी शक्ति भर पुष्ट कर रहे हैं।* यदि वे इस कार्य में यशस्वी हों तो हमारे लिए वह इष्टापत्ति ही होगी। पर इस समय बहुमत का झुकाव विरुद्ध मत की ही ओर ही है, इसमें सन्देह नहीं।

अब यहाँ ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों का विचार किया जाता है। जो पुरुष विक्रमादित्य कहा जा सकता है उसमें तीन लक्षण अवश्य ही होने चाहिए—

(१) वह शकारि हो और नवीन शक का प्रवर्तक हो।

(२) वह उज्जयिनी का अधिपति हो अर्थात् मालव-सम्राट् हो।

(३) वह विद्वानों के लिए उदारतापूर्वक आश्रय-प्रदान करनेवाला हो।

जिस व्यक्ति में ये तीन लक्षण न घटित होंगे उसे कदापि कोई विक्रमादित्य मानने को तैयार न होगा। अस्तु। इन तीन शताब्दियों में भी विक्रमादित्य का और उसके आश्रित कालिदास का अर्थात् दोनों व्यक्तियों का ज़रा भी पता नहीं चलता। कुछ पण्डित लोग मानते हैं कि सातवाहन-वंशी हाल नृपतिविरचित महाराष्ट्री गाथा सप्तशति ईसा की पहली शताब्दी में लिखी गई है। उसमें विक्रमादित्य के नाम-मात्र का उल्लेख अवश्य है।† पर इस ग्रन्थ का समय अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। डाक्टर भाण्डार-कर प्रभृति कतिपय विद्वान् प्रतिपादन करते हैं कि यदि इस ग्रन्थ को छठी शताब्दी का लिखा मान लिया जाय तो कोई आपत्ति नहीं है। पैशाची भाषा में गुणाढ्य का 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थ था, उसकी संस्कृत-प्रतिकृति उपलब्ध है। यह सोमदेव भट्टकृत 'कथासरित्सागर' के नाम से प्रसिद्ध है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त बृहत्कथा नामक

धार के परमारवंशी राजा मुञ्जदेव के समय में अमितगति नामक एक जैन पण्डित था। उसने 'सुभाषित-रत्न-सन्दोह' नामक अपने ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि "इस ग्रन्थ को मैंने विक्रम-संवत् १०५० (ई० सन् ९९३) में समाप्त किया। इस विषय में सबसे अधिक पुराना जो ग्रन्थोल्लेख है वह यही है।

(देखो इम्पीरियल गैज़ेटियर, वाल्यूम २, नवीन संस्करण, पृष्ठ ४, टिप्पणी)

* विस्तार-भय से इस स्थान पर उनका मत नहीं दिखलाया जा सकता। पर उनकी पुष्टि का आधार हाल नृपति का सप्तशति नामक प्राकृत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह ईसवी सन् ७८ के लगभग लिखा गया है। हाल में उन्होंने एक लेख बम्बई की रायल-एशियाटिक-सोसाइटी के मासिक पत्र में प्रका-शित कराया है। रघुवंश के सर्ग ६ श्लोक ५९ में पाण्ड्य-देशान्तर्गत उरगपुर के नाम का उल्लेख है। इसी पर वह लेख लिखा गया है। इसमें उन्होंने अपने मत को पुष्ट किया है। इस विषय पर उन्होंने अन्यान्य कितने ही लेख मराठी तथा अंगरेज़ी में लिखे हैं, जिनसे उनकी शोधकबुद्धि और समर्थन-चातुरी प्रकट होती है। पर उनके खण्डन पर भी कितने ही लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

† गाथा सप्तशति आर्या ६४।

संवाहण सुहरस तोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम्।
चलणेण विक्कमाइत्तं चरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा॥

D. R. Bhandarkar Commemoration Vol., Page 188-89

इसका संस्कृत रूपान्तरः—

संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लक्षम्।
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितस्तस्याः॥

ग्रन्थ में विक्रम की कथायें थीं। पर बृहत्कथा का भी काल अब तक निश्चित नहीं हो सका। इसके विपरीत बाबू रमेशचन्द्र दत्त का मत है कि पांचवीं और छठी शताब्दियों तक प्राकृत भाषायें (कविमान्य एवं) दर्बारी नहीं मानी जाती थीं।* इससे सिद्ध होता है कि इस बात के मान लेने के लिए कि इन तीन शताब्दियों के बीच विक्रमादित्य का अस्तित्व था, काफ़ी प्रमाण नहीं मिलते। यही नहीं, किन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि इस ज़माने में मालवा में (उज्जयिनी में) शक-राजाओं की अबाधित सत्ता थी। जब उस समय वहां विदेशी राजाओं की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही थी, संस्कृत-विद्या के उत्कर्ष करनेवाले विक्रमादित्य और कालिदास जैसे नररत्नों का पैदा होना सम्भाव्य नहीं है।

अब हम चौथी और पांचवीं शताब्दियों पर विचार करते हैं। चौथी शताब्दी में गुप्त-वंश का उदय हुआ। इसके साथ ही संस्कृत-साहित्य को उत्तेजना मिलने लगी। इस वंश का वैभव-रवि पांचवीं शताब्दी में पूर्णरूप से उन्नति को पहुँच गया। छठी शताब्दी में भी कुछ वर्ष तक वह चमकता रहा (ई० सन् ३२० से ५३०)। इस वंश में समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त (दूसरा), कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त—ये चार सम्राट बहुत बड़े पराक्रमी हुए। उनकी उपाधियां ऐसी अवश्य थीं जो शकारि विक्रमादित्य को शोभा दे सकें। दूसरा चन्द्रगुप्त तो उज्जयिनीपति भी था और 'विक्रमाङ्क' और 'विक्रमादित्य' नाम की उसकी उपाधियां क्रमशः उसके काठियावाड़ और मालवे के सिक्कों पर उत्कीर्ण पाई जाती हैं। इसी से डाक्टर भाण्डारकर प्रभृति पण्डितों ने अनुमान किया है कि चन्द्रगुप्त ही शकारि, शकप्रवर्तक विक्रमादित्य है और कालिदास भी उसी के आश्रय में रहा है। पर यह अनुमान सर्वमान्य नहीं हुआ। गुप्तकालीन कितने ही शिलालेख उपलब्ध हैं। उन सबमें गुप्त राजाओं ने अपने निज के गुप्त-संवत का उपयोग किया और उनमें विक्रम-संवत का नामोनिशान नहीं है। इसके सिवा उनके समकालीन साहित्य में कालिदासादि कवियों का नाम कहीं नहीं दिखाई पड़ता है।

हां, ईसा की छठी शताब्दी में कितने ही प्रमाणों-द्वारा शकारि उज्जयिनीपति विक्रमादित्य का अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध अवश्य किया जा सकता है। जिन प्रमाणों के द्वारा यह बात सिद्ध की जा सकती है वे क्रमशः आगे दिये जाते हैं—

(१) चीनी प्रवासी ह्वेनसांग कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के दरबार में बहुत दिनों तक रहा था। वह भारत में ६२९ से लेकर ६४५ तक भ्रमण करता रहा। उसने अपने प्रवास-वृत्त में लिखा है कि मालवे के पुराने लेखों से मालूम होता है कि साठ वर्ष पहले मालवे में एक महाविख्यात विद्वद्भक्त राजा हो चुका है। उसने पचास वर्ष तक या इससे भी अधिक समय तक शासन किया। वह लिखता है कि उस समय भारत में दो विद्यापीठ थे; एक मालवा में और दूसरा मगध में। इस वर्णन में ह्वेनसांग ने 'विक्रमादित्य' नाम का प्रयोग नहीं किया, किन्तु शिलादित्य नाम का उल्लेख किया है। परन्तु उसके वर्णन से यह बात सिद्ध होती है कि उस समय विक्रमादित्य जैसा चरित्रवान् एक राजा मालवे में हुआ था और उसने ईसवी सन् लगभग ५३० से लेकर ५८० तक शासन किया। इस राजा के नाम के स्थान पर 'शिलादित्य' का उल्लेख जिस कारण से किया गया है उसका विचार आगे किया जायगा।

(२) काश्मीर के राजतरङ्गिणी नामक इतिहास में* लिखा है कि हिरण्य के पश्चात् काश्मीर का सिंहासन खाली था। अतएव 'हर्षापर' नामधेय उज्जयिनीपति शकारि विद्वत्प्रिय विक्रमादित्य सम्राट् ने उस पद पर मातृगुप्त नामक अपने एक विद्वान् मित्र को प्रतिष्ठित किया। परन्तु हर्ष विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् जब राज्य के असली वारिस प्रवरसेन ने शस्त्र ग्रहण किया तब मातृगुप्त ने उसका राज्य उसे स्वेच्छा से लौटा कर काशीवास स्वीकार किया। काश्मीर की इस घटना का काल-निर्णय अकेले राजतरङ्गिणी ग्रन्थ से होना कठिन है, क्योंकि उसमें जो समय दिया गया है उसमें बहुत गड़बड़ है। यह संयोग की बात है कि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग भारत में आया और उसने जो बातें काश्मीर, मालवा और अन्य देशों के विषय में देखी-सुनीं उनको लिपिबद्ध कर दिया।

* Civilization in Ancient India by R. C. Dutt, Vol II

* राजतरङ्गिणी तरङ्ग ३ श्लोक १२५ से आगे।

आगे जो विवेचन किया जायगा उससे ज्ञात हो सकता है कि इन्हीं बातों की सहायता से इन घटनाओं का काल स्थिर किया जा सकता है ।

प्रवरसेन ने काश्मीर में प्रवरपुर नाम का एक नगर बसाया । आज-कल उसे श्रीनगर कहते हैं । ईसवी सन् ६३१ में ह्वेनसांग काश्मीर गया था । प्रवरपुर को देख कर उसने लिखा है कि इस नगर को आबाद हुए अभी बहुत समय नहीं बीता है । इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य का राजत्वकाल, मातृगुप्त का काश्मीर-सिंहासन पर आरोहण और विसर्जन, प्रवरसेन की राज्यप्राप्ति और प्रवरपुर की स्थापना, ये सब बातें ह्वेनसांग के काश्मीर पहुँचने से लगभग दो पीढ़ी या चालीस वर्ष पहले अर्थात् छठी शताब्दी में घटित हुई हैं । इसी से यह भी विदित होता है कि प्रवरपुर की स्थापना सन् ५६० के लगभग हुई अर्थात् यह स्पष्ट है कि इससे १० वर्ष पहले (सन् ५८० के लगभग) विक्रमादित्य की मृत्यु हुई, इस कारण प्रवरसेन को अपना राज्य वापस मिल गया ।

पहले प्रमाण के अन्तर्गत शिलादित्य के आखिर समय का इस प्रमाण के अन्तर्गत विक्रमादित्य की मृत्यु के समय से मेल मिलता है, इस कारण भी दोनों के विषय में दोनों ग्रन्थों के वर्णन भी एक से मिलते हैं । किन्तु हमारे मत से ह्वेनसांग का शिलादित्य ही राजतरङ्गिणी का हर्ष-विक्रमादित्य है । 'शिलादित्य' हर्ष विक्रमादित्य की दूसरी उपाधि होना सम्भाव्य है । क्योंकि इतिहासवेत्ता लोग जानते हैं कि उस समय कितने ही राजाओं ने इस उपाधि को धारण किया था ।

(३) ह्वेनसांग के प्रवासवृत्त में दो स्थानों पर मालवा के शिलादित्य का उल्लेख है । एक जगह कहा गया है कि साठ वर्ष पहले वह मोलप्पो (मालवा) का राजा था, उसने पचास वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया । दूसरे स्थान पर वलभी के राजा ध्रुवभट का नाम आया है । इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि वलभी का राजा ध्रुवभट उस समय युवावस्था में था और रिश्ते में वह मालवे के राजा शिलादित्य का भानजा और कन्नौजाधिपति हर्षवर्धन का जामाता था । इन दोनों वर्णनों में शिलादित्य का उल्लेख किया गया है, पर दोनों जगहों में एक ही शिलादित्य का होना सम्भाव्य नहीं । इन भिन्न भिन्न कालों में एक एक करके मालवे में दो राजाओं ने राज्य किया । क्योंकि ह्वेनसांग के कथनानुसार भारत में उसके आने से लगभग साठ वर्ष पहले शिलादित्य का पचास वर्ष से अधिक अवधि का शासन-काल समाप्त हो चुका था अतएव यह सम्भव नहीं कि उसी शिलादित्य का भानजा ह्वेनसांग की भारत-यात्रा के समय युवा हो और हर्षवर्धन का जामाता हो । उस समय वलभी के ध्रुवभट का मौसेरा सम्बन्धी शिलादित्य साठ वर्ष पहलेवाले मोलप्पो के शिलादित्य का पुत्र अथवा उत्तराधिकारी था । इस विधान को राजतरङ्गिणी के वर्णन से अच्छी तरह पुष्टि मिलती है ।

राजतरङ्गिणी तरङ्ग ३ श्लोक ३३० में यह वर्णन है कि काश्मीर के प्रवरसेन ने उज्जयिनी के हर्ष विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापशील को, जो शिलादित्य के नाम से भी प्रसिद्ध था, उसका राज्य, जिसे शत्रुओं ने छीन लिया था, दिला देने के कार्य में सहायता की थी । यह शिलादित्य वलभी के ध्रुवभट का मामा और मालवराज शिलादित्य होना चाहिए । कल्हण कहता है कि उसका राज्य शत्रुओं ने छीन लिया था । इससे जान पड़ता है कि वह दुर्बल और अधिक लोकप्रिय नहीं था । यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि यह वह प्रख्यात शिलादित्य नहीं था जिसका विस्तृत वर्णन ह्वेनसांग ने किया है । बल्कि राजतरङ्गिणी के आधार से यह सिद्ध होता है कि यह दूसरा शिलादित्य पहले का पुत्र और उत्तराधिकारी था और वह तथा उसका भानजा—वलभी का ध्रुवभट—और कन्नौज का राजा हर्षवर्धन, ये सब समकालीन थे । इस कारण इसमें कोई सन्देह बाकी नहीं रहता कि पहला शिलादित्य अर्थात् विक्रमादित्य कन्नौजाधिपति हर्षवर्धन से पहले अर्थात् ईसा की छठी शताब्दी में हुआ ।

(४) बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित्र में सुबन्धु के 'वासवदत्ता' नामक प्रबन्ध का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है । उसने लिखा है—

> वैरिनिर्यामितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।
> राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥
>
> राजतरङ्गिणी, तरङ्ग ३ श्लोक ३३०

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥

सुबन्धु अपनी वासवदत्ता के उपोद्घात में खेद प्रकट करता है। वह कहता है कि जब से विक्रमादित्य का अस्त हुआ तब से काव्यकला और रसिकता की अवनति होती चली गई। जिस आर्या में यह खेद प्रदर्शित किया गया है वह यह है—

सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कं कः ।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति, भुवि विक्रमादित्ये ॥

इससे जान पड़ता है कि बाणकृत 'हर्षचरित्र' सातवीं शताब्दी के प्रथम पाद में लिखा गया। इससे पहले सुबन्धु हुआ और इससे थोड़े ही पहले विक्रमादित्य का होना पाया जाता है। पहले यह सिद्ध हो चुका है कि ईसा से पहले पहली शताब्दी से लेकर ईसा की पांचवीं शताब्दी के अन्त तक विक्रमादित्य का कहीं पता नहीं है। इस कारण सुबन्धु के उल्लेख से विक्रमादित्य को छठी शताब्दी में कायम करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। योरपीय पण्डित-द्वारा सम्पादित वासवदत्ता के उपोद्घात में दिखलाया गया है कि टीकाकार नृसिंह वैद्य के मत के अनुसार सुबन्धु विक्रमादित्य के आश्रय में था और उसने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् इस—वासवदत्ता—काव्य की रचना की।* इससे भी उपर्युक्त इस वर्णन को कि सुबन्धु से कुछ ही पहले विक्रमादित्य जीवित था अधिक पुष्टि मिलती है।

(२) वररुचि नामक पण्डित सुबन्धु का मामा था। वासवदत्ता की एक पुरानी प्रति में यह उल्लेख स्पष्ट पाया गया है—† इति वररुचि भागिनेय महाकवि सुबन्धु विरचिता वासवदत्ता नामाख्यायिका समाप्ता। वररुचि ने 'पत्र-कौमुदी' नामक एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें चिट्ठी-पत्री लिखने की पद्धति का सङ्ग्रह किया गया है। उसमें लेखक कहता है—

विक्रमादित्यभूपस्य कीर्तिसिद्धेर्निदेशतः ।
श्रीमान्वररुचिर्धीमान् तनोति पत्रकौमुदीम् ॥

इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ उसने विक्रमादित्य की आज्ञा से लिखा है‡। शकों का उच्छेद करके तथा अन्यत्र विजय सम्पादन कर विक्रमादित्य सम्राट् के पद पर आरूढ़ होगया। इस अवस्था में उसे ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता होना स्वाभाविक है। यह बात सर्व-विश्रुत है कि जब छत्रपति शिवाजी हिन्दू-स्वराज्य की स्थापना कर चुके तब उन्हें राज-व्यवहार के कोश की आवश्यकता प्रतीत हुई। इतिहासवेत्ता लोग जानते हैं कि मुसलमानी ढङ्ग की जगह उन्होंने संस्कृत-प्रणाली का प्रचलन किया। जान पड़ता है कि विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही वररुचि के भानजे सुबन्धु ने वासवदत्ता काव्य की रचना करके उपर्युक्त दुःखोद्गार प्रकट किये। मामा के ग्रन्थ के समय विक्रमादित्य जीवित था और भानजे के ग्रन्थ के समय वह परलोकवासी हो चुका था। मामा-भानजे के काल में अधिक से अधिक बीस पचीस वर्ष का अन्तर रहा होगा। सार यह कि इस बीस पचीस वर्ष की अवधि में विक्रमादित्य का अन्त होना सम्भवनीय है।

यह तो निश्चित ही है कि सुबन्धु बाण से पहले हुआ, पर वह किस शताब्दी में हुआ इसका प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है। सो वासवदत्ता काव्य में ही एक दो प्रमाण ऐसे मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि वह छठी शताब्दी के अन्त में उपस्थित था।

वासवदत्ता में दण्डी की 'छन्दोविचिति' भदन्तधर्म-कीर्ति की 'बौद्धसङ्गति' और उद्योतकराचार्य की 'न्याय-स्थिति' का उल्लेख है। इन तीनों ग्रन्थों का काल ईसा की छठी शताब्दी होना स्थिर हो चुका है§। पूर्व यह नहीं माना जा सकता कि सुबन्धु इनसे पहले हुआ। अर्थात् विक्रमादित्य का छठी शताब्दी से पहले होना सिद्ध नहीं होता। इसका यह निष्कर्ष निकला कि विक्रमादित्य छठी शताब्दी में होना चाहिए।

* टीकाकार नृसिंह वैद्य कहता है—कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः। तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एतन्निबन्धं कृतवान्।

† Catalogue of Sk. Mss in the Calcutta Sk. College, No. 18, Page 61, Mss. No. 87

‡ Catalogue of Sk. Mss in the Calcutta Sk. College No. 17, Page 39, Mss. No. 65.

§ Prof. Maxmuller's India what can it teach us 1st edition, Page 290

Indian Antiquary, 1883, Vol. XII, Page 234

(६) यह प्रसिद्ध है कि भर्तृहरि विक्रमादित्य का भ्राता और शतकत्रय तथा वाक्यप्रदीप आदि ग्रन्थों का कर्ता है। (देखो पाण्डुरङ्ग शास्त्री पारखी-कृत मराठी 'श्रीहर्ष', पृष्ठ २०) कुछ प्रमाणों द्वारा यह भी दिखलाया जा सकता है कि वह ईसा की छठी शताब्दी में हुआ है। ये प्रमाण आगे दिये जाते हैं—

(१) सुबन्धु की वासवदत्ता में भर्तृहरि के शृङ्गार-शतक का अवतरण है। हम उसे आगे यथा स्थान उद्धृत करेंगे।

(२) कालिदास की शकुन्तला में भर्तृहरि के नीति-शतक से यह श्लोक उद्धृत किया गया है—भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः। यदि यह भी मान लिया जाय कि यह श्लोक भर्तृहरि ने शाकुन्तल से लिया है तब भी दोनों की समकालीनता में बाधा नहीं पहुँचती।

(३) प्रोफ़ेसर पाठक के मत के अनुसार भर्तृहरि उद्योतकराचार्य और धर्मकीर्ति के पीछे हुआ (J. B. B. R. A. S., Vol. XVIII. P. 229-30) और ऊपर हम दिखला चुके हैं कि वह सुबन्धु से पहले मौजूद था।

(४) संस्कृत-विद्यापारङ्गत इत्सिंग नामक बौद्धयात्री ईसा की सातवीं शताब्दी में चीन से भारत को आया था। वह लिखता है कि भर्तृहरि ईसवी सन् ६५० के लगभग अपनी अत्यन्त वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इससे यह सिद्ध है कि भर्तृहरि ईसा की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान था।

इससे भी विक्रमादित्य का समय ईसा की छठी शताब्दी ही सिद्ध होता है।

(७) प्रसिद्ध अरबी-पण्डित अलबेरूनी मुहम्मद ग़ज़नवी के साथ सन् १०३० में भारत आया था। उसने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने मुलतान और लोनी के बीच कोरूर नामक ग्राम में शकों को परास्त किया था और अपने नाम से शक जारी किया था। जब अलबेरूनी प्रचलित विक्रम-संवत् और शक-काल पर, जो विक्रम संवत् से १३५ वर्ष पीछे शुरू हुआ था, विचार करने लगा तब उसकी समझ में यह बात आई कि जिस विक्रमादित्य ने कोरूर में शकों को परास्त कर अपना शक जारी किया वह कोई और है और जिसके नाम का संवत् प्रचलित है वह कोई और है। राजतरङ्गिणीकार का भी यही मत है। भिन्न भिन्न स्थानों और भिन्न भिन्न समयों में उक्त दोनों ग्रन्थकार हुए हैं, दोनों दूसरे विक्रमादित्य को ही शकारि विक्रमादित्य कहते हैं। राजतरङ्गिणी में स्पष्टरूप से कहा गया है कि वह उज्जयिनीपति था। अलबेरूनी के वर्णन से भी उसका उज्जयिनी-पति होना पाया जाता है। उक्त दोनों ग्रन्थों के नीचे दिये हुए अवतरणों से यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है—

राजतरङ्गिणी—तरङ्ग २

× × × × ×

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात्।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरन्यस्याभिषिच्यत॥ ५॥
शकारिर्विक्रमादित्यः स इति भ्रममाश्रितैः।
अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादि कदर्थितम्॥६॥

भावार्थ—इसके पश्चात् उन्होंने (काश्मीर-निवासियों ने) अन्य देश से विक्रमादित्य के रिश्तेदार—प्रतापादित्य को—बुला कर काश्मीर के राज्य-पद पर आरूढ़ करा दिया॥ ५॥

पुराने लेखों में जिसने यह लिखा है कि यह विक्रमादित्य शकारि था सो ठीक नहीं है, वह विसङ्गत है॥ ६॥

राजतरङ्गिणी—तरङ्ग ३

× × × × ×

तस्मिन्काले हिरण्योऽपि शान्तिं निःसन्ततिर्गतः॥ १२४॥
तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत्॥ १२५॥

× × × × × ×

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः॥ १२८॥
नाना दिगन्तराख्यातं गुणवत्सु रसं नृपम्।

× × × × × ॥ १२९॥

भावार्थ—उस समय काश्मीर का हिरण्य राजा भी सन्तानहीन होकर मर गया। इसी समय उज्जयिनी में हर्षापर नामधेय श्रीमान् विक्रमादित्य का एकाधिपत्य था अर्थात् वह सम्राट् था॥ १२४, १२५॥

म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए श्रीमहाविष्णु पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करना चाहते थे, पर इससे पहले ही

विक्रमादित्य ने शकों को नष्ट कर दिया । इस कारण महाविष्णु के सिर का बोझ हलका होगया ॥ १२८ ॥

उसका यश चारों ओर फैल गया । गुणी जनों को उसका आश्रय सुलभ था (उसने मातृगुप्त नामक अपने एक कवि को काश्मीर के सिंहासन पर आरूढ़ करा दिया था) ॥ १२९ ॥

राजतरङ्गिणी की उक्त दो भिन्न भिन्न स्थानों के दो अवतरणों में दो भिन्न भिन्न विक्रमादित्यों का उल्लेख है । कल्हण भी कहता है कि पहला विक्रमादित्य शकारि नहीं था और दूसरा शकारि था । अल्बेरुनी के ग्रन्थ में भी लगभग ऐसा ही वर्णन है—

वह शक राजा, जिसने भारत पर आक्रमण किया था, पश्चिमी द्वीप से आया था । हिन्दुओं को उससे बहुत कष्ट पहुँचा । अन्त में उनको पूर्व की ओर से (बहुत सम्भव है कि उज्जयिनी से) सहायता पहुँची । अर्थात् विक्रमादित्य ने आक्रमण करके शक राजा को भगाकर मुलतान तथा लोनी के किले के बीच कोरूर गांव की सीमा पर मार डाला । यह वर्ष बहुत प्रसिद्ध होगया । उक्त दुष्ट राजा का वध सुन कर लोगों को बहुत हर्ष हुआ । इसलिए इसी वर्ष से नवीन शक जारी हुआ । प्रजा ने उसको विजय के उपलक्ष्य में उसके नाम के साथ 'श्री*' की उपाधि जोड़ दी । अर्थात् वह उसे सम्मान के साथ 'श्रीविक्रमादित्य' कहने लगी । विक्रम-नामाङ्कित संवत के आरम्भ के और शकों के उच्छेद-काल के बीच बहुत अन्तर है । इससे हमको यह अवश्य जान पड़ता है कि जिस विक्रम का नाम संवत् के साथ जुड़ा है वह विक्रमादित्य कोई और है और जिसने शकों का संहार किया वह दूसरा है ; नाम-मात्र दोनों का एक ही था ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है यह बात पाठकों की समझ में आ चुकी होगी कि उपर्युक्त दोनों भिन्न देशीय और भिन्न भाषीय ग्रन्थों के अवतरणों के बीच कैसा साम्य है । राजतरङ्गिणी के शकारि हर्ष विक्रमादित्य का जो काल उपर्युक्त दूसरे और तीसरे प्रमाणों में ह्वेनसांग के आधार पर स्थिर किया गया है वह ईसा की छठी शताब्दी का उत्तरार्ध है । अब अलबेरुनी के उक्त लेख में जिस कोरूर की लड़ाई का ज़िक्र है उसका भी यदि काल स्थिर हो जाय तो विक्रमादित्य के काल का निर्णय होना सुगम हो जाय । सौभाग्य से फ़र्ग्युसन, फ़्लीट प्रभृति संशोधकों ने इस लड़ाई का काल स्थिर कर दिया है । ईसा का ५४४ वां वर्ष ही वह काल है (corpus inscriptionum indicarum, Vol. III. Page 55). हमारे पास यह दिखलाने के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं है कि उन्होंने यह काल किस आधार पर स्थिर किया है । विलफ़र्ड साहब ने शत्रुञ्जय-माहात्म्य के आधार पर विक्रमार्क राजा का काल शके ४६६ दिया है । आप लिखते हैं कि विक्रमार्क राजा वह है जिसने शकों का संहार कर भूभार हरण किया और पिछले संवत् को लुप्त कर उसके स्थान पर अपने नाम का दूसरा संवत् जारी किया (Vide Wilford) Asiatic Researches. Vol. IX. Page 156, quoted by Dr. Kern in his Brahatsamhita).

उपर्युक्त काल उस काल से बिलकुल ठीक मिलता है जो फ़्लीट प्रभृति ने कोरूर की लड़ाई के लिए स्थिर किया है ।

इस प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि शकारि विक्रमादित्य ईसा की छठी शताब्दी में हुआ ।

अब तक जो प्रमाण दिये गये हैं उनमें सामान्यतः विक्रमादित्य और उसके काल के विषय में बहुत कुछ विचार किया जा चुका । अब देखना चाहिए कि अङ्गुलि-निर्देश-द्वारा यह दिखलाया जा सकता है या नहीं कि वास्तव में यह कौन सा विक्रमादित्य है ।

(८) ईसा की छठी शताब्दी में मालवे में यशोधर्मदेव नामक एक बहुत बड़ा पराक्रमी राजा होगया है । मन्दसोर के कुएँ में और जयस्तम्भ पर उस राजा की दो प्रशस्तियां उत्कीर्ण हैं । उनका सार यह है—

विजयी यशोधर्मदेव का दूसरा नाम विष्णुवर्धन था और "औलिकर" उसके वंश की उपाधि थी । सन्धि-विग्रह के उपायों से उसने पूर्वी और उत्तरी देशों के बहुतेरे राजाओं को पादाक्रान्त करके उसने राजाधिराज परमे-

* ऊपर राजतरङ्गिणी के जो अवतरण दिये गये हैं (श्लोक ७२९) उनमें 'श्रीमान्' पद का उपयोग किया गया है । इससे भी यही बात ध्वनित होती है ।

श्वर की दुष्प्राप्य उपाधि धारण की। मनु, अलर्क तथा मान्धाता की तरह इस यशस्वी राजा को भी सम्राट् का पद शोभा देता था। क्योंकि जिन देशों में गुप्त और हूण राजाओं की सत्ता का प्रवेश नहीं हो सका था उनको भी उसने पादाक्रान्त कर लिया था। इस तरह वह अकण्टक पृथ्वी का राज्य करने लगा था। अधिक क्या कहा जाय, उसने महाप्रतापी हूणाधिपति मिहिरकुल को भी अपने समीप नाक घिसने को बाध्य किया था।

उक्त दो प्रशस्तियों में एक पर, जो कुएँ में है, मालव-संवत ५८९ (ईसवी सन् ५३२) खुदा है।

जयस्तम्भ की प्रशस्ति पर संवत् नहीं है, पर दोनों प्रशस्तियों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि दोनों की खुदाई गोविन्द नामक एक ही कारीगर-द्वारा की गई है। दूसरी प्रशस्ति में उसकी विजय का नाम सहित विस्तृत वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि उसने इसको पहली की अपेक्षा कुछ काल पीछे स्वयं खुदवाया था। उसमें उसके पराक्रम का जो वर्णन किया गया है उससे जान पड़ता है कि उसे जिन पण्डितों ने विक्रमादित्य कहा उन्होंने ठीक कहा। इस वर्णन में उसको "उज्जयिनीपति शकारि विक्रमादित्य" नहीं कहा गया। इसका कारण यह जान पड़ता है कि उस समय तक उससे शकों का पराभव नहीं हो पाया था। आगे चल कर, जैसा कि अरबी-पण्डित अल्बेरुनी ने कहा है, ईसवी सन् ५४४ में उसका पराभव किया गया और तब यह उपाधि धारण की गई।

इस स्थान पर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि गुप्तों के द्वारा पहले ही शकों का उच्छेद किया जा चुका था। अतएव जब ईसा की छठी या पाँचवीं शताब्दी में भारत में शकों का नाम-निशान नहीं था तब यह कैसे सम्भव है कि यशोधर्मदेव ने शकों का पराभव किया? यह बात स्पष्ट है कि यह प्रश्न ठीक है, पर राजतरङ्गिणी से और अल्बेरुनी के ग्रन्थ से प्रकट होता है कि उस समय यहाँ शक भी आ पहुँचे थे। भारतखण्ड के प्राचीन इतिहास-विषयक कितनी ही बातें अभी निश्चित होने को बाक़ी हैं, इसलिए निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस समय भारत में शकों का अस्तित्व बिलकुल नहीं था। यह सच है कि गुप्तों ने अपने वैभव-काल में शक और हूणों का पूर्णरूप से उच्छेद कर दिया था। परन्तु ज्यों ही गुप्तों की सत्ता बलहीन हुई, त्योंही हूणों ने फिर अपनी सत्ता को स्थापित करने का प्रयत्न किया। अतएव इस समय शकों का फिर से सिर उठाना असम्भाव्य नहीं शायद विदेशी जातियों के नामों के समझने में गड़बड़ होगया हो और इस कारण उक्त ग्रन्थों में हूणों को भी शक लिख दिया गया हो। ख़ैर।

जब यशोधर्मदेव शकों पर विजय प्राप्त कर सम्राट्-पद पर आरूढ़ होगया तब उसकी सत्ता गुप्तों की अपेक्षा भी अधिक प्रबल होगई और उसके राज्य का विस्तार भी बहुत होगया था। इस अवस्था में जब अवन्तिदेश मालवे से बिलकुल मिला हुआ था और वह उसके राज्य में अन्तर्भूत था तब गुप्तवंशी द्वितीय चन्द्रगुप्त की तरह उसका उज्जयिनीपति कहा जाना किसी तरह असम्भाव्य नहीं।

राजतरङ्गिणी में लिखा है कि उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का दूसरा नाम हर्ष था। जैसा हमने ऊपर अनुमान किया है कि यदि यशोधर्मदेव का विक्रमादित्य होना पूर्णरूप से निश्चित हो जाय तो कहना होगा कि 'हर्ष' भी उसकी एक उपाधि थी। फ़ैज़ाबाद-ज़िले के भिटौरा गाँव में मौखरि राजा ईश्वरवर्मा और गृहवर्मा के सिक्कों के साथ कुछ सिक्के मिले हैं। उनमें हर्ष, प्रतापशील और शिलादित्य के नाम तथा वर्षों की संख्या दी गई है। हार्नले साहब का अनुमान है कि ये सिक्के यशोधर्मदेव उर्फ़ हर्ष विक्रमादित्य के तथा उसके पुत्र प्रतापशील शिलादित्य के हो सकते हैं और उनमें वर्षों की जो संख्या दी गई है वह उसके शासन-काल के उस वर्ष की होनी चाहिए जिसमें यह सिक्का ढाला गया था। इस अनुमान को श्रीयुत वैद्य महाशय ने भी स्वीकार कर लिया है। शकों का विनाश करने के पश्चात् जब यशोधर्म विक्रमादित्य ने सम्राट्-पद धारण किया तब यह सम्भवनीय है कि उसने अपने नाम का सिक्का ढाला हो।

यशोधर्म विक्रमादित्य ने जिस वर्ष शकों पर विजय पाई वह वर्ष ईसवी सन् का ५४४-४५ अर्थात् मालव-संवत् ६०७ था। अल्बेरुनी के कथनानुसार इसी वर्ष

से उसने शायद नवीन शक जारी किया, परन्तु उसके पश्चात् अधिक काल तक उसका राज्य नहीं टिक सका। केवल एक या दो ही पुश्तों तक जारी रहा। आगे चल कर क्रान्ति हुई। इससे यह नवीन शक अधिक काल तक जारी न रह सका। यशोधर्मदेव उर्फ़ हर्षविक्रमादित्य असाधारण पराक्रमी पुरुष था। जैसा राज-तरङ्गिणी में कहा गया है कि उससे गुणी जनों को उदारता-पूर्वक आश्रय मिला करता था। उसके इन लोकोत्तर गुणों के कारण उसकी कीर्ति का डङ्का कितनी ही पुश्तों तक बजता चला गया। यही कारण है कि आगे चल कर उसका संवत् मालव-संवत् पर आरूढ़ होकर वही विक्रम-संवत् के नाम से जारी रहा और अब तक जारी है। अर्थात् जो संवत् मालव-संवत् के नाम से चला आ रहा था वही अब "विक्रम-संवत्" कहा जाने लगा। इस पुराने प्रश्न का निर्णय कि मालव-संवत् विक्रम-संवत् में किस तरह परिवर्तन पा गया उपर्युक्त रीति से होता है।

ह्वेनसांग ने अपने प्रवासवृत्त में मालवे के इस विख्यात शिलादित्य (विक्रमादित्य) राजा को कट्टर बौद्ध कहा है। जैन लोगों ने अपने ग्रन्थों में लिखा है कि विक्रमादित्य ने जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। और हम हिन्दू लोग यह समझे हुए हैं कि वह वैदिक धर्मानुयायी था। इससे यह जान पड़ता है कि उसने अपने समानता और औदार्य आदि गुणों से सभी धर्मों और पन्थों की जनता को अपना लिया था, जैसे अकबर बादशाह ने अपने शासन-काल में किया था। पाश्चात्य और प्राच्य पण्डित लगभग ५०-७५ वर्ष से इस बात की खोज करते चले आ रहे हैं कि जो विक्रमादित्य यहाँ तक लोकप्रिय हुआ वह वास्तव में कौन था। उन्होंने इस विषय में भिन्न भिन्न अनुमान किये हैं। डाक्टर भाण्डारकर प्रभृति विद्वान् गुप्तवंशी द्वितीय चन्द्रगुप्त को यह पद दिलाते हैं। कुछ लोग कुमारगुप्त को और कुछ स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य मानते हैं। हार्नले प्रभृति कितने ही लोग यशोधर्मदेव को ही विक्रमादित्य कहते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों से हमने विक्रमादित्य का काल ईसा की छठी शताब्दी स्थिर किया है। यह काल यशोधर्मदेव के काल से बिलकुल अविरुद्ध है। अब तक यशोधर्मदेव के विषय में जैसी कुछ जानकारी प्राप्त हुई है उससे यह कहना अनुचित न होगा कि विक्रमादित्य की ही जैसी सच्चरित्रता यशोधर्मदेव में भी थी। इसी लिए हमारा हृदय इस बात को मान लेने पर राज़ी होगया है कि वही विक्रमादित्य था।

(९) कालिदासकृत ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ से यही स्थिर होता है कि विक्रमादित्य ईसा की छठी शताब्दी में हुआ। जो वर्णन उसकी प्रशस्ति में किया गया है वह यशोधर्मदेव ही पर चरितार्थ होता है। इतिहास-वेत्ताओं-द्वारा इस ग्रन्थ का अनादर किया गया है। इस अनादृत ग्रन्थ के विषय में आगे चल कर उचित स्थान पर विचार किया जायगा।

(१०) ज्योतिर्विदाभरण अध्याय ४ श्लोक ४३ में इस प्रकार भविष्य कथन किया गया है:—

त्रिखेन्दुभिर्विक्रमभूपतेर्मिते
शाकेऽन्विताह क्षयमासको भवेत्।
अन्यः स्वकालाब्दगणेन हायने-
ऽधिमासयुग्मं क्षयमासवत्यतः॥

अर्थात् विक्रम भूपति की काल-गणना के अनुसार एक सौ तीन (१०३) वर्ष पर क्षयमास होगा। क्षयमास के विषय में ज्योतिर्विदाभरण और सिद्धान्तशिरोमणि आदि ज्योतिष् ग्रन्थों के नियमों में कहा गया है कि क्षयमास १४१ वर्ष में अथवा १९ वर्ष में होता है। विक्रमादित्य का शक मालव-संवत् ६०१ (ईसवी सन् ५४४-४५) में जारी हुआ। इस भविष्य के अनुसार १०३ वर्ष अर्थात् मालव-संवत् ७०४ या ईसवी सन् ६४७-४८ में क्षयमास होना चाहिए। तदनुसार जान पड़ता है कि वह हुआ भी। दीवान बहादुर कन्नु स्वामी पिल्ले के Indian chronology में एक नक़शा दिया गया है उसमें ईसवी सन् ५०७ और ६२९ में क्षयमास दिखलाये गये हैं*। इससे आगे

* मूल मराठी लेख में दीवान बहादुर कन्नु स्वामी पिल्ले के ग्रन्थ के हवाले से सन् ५०७ और ६२९ में क्षयमास का होना दिखलाया गया है। अतएव पाठक यह स्पष्ट शङ्का कर सकते हैं कि १४१ या १९ वर्ष के स्थान पर इस काल में १२२ वर्ष का अन्तर पड़ता है, इस कारण उपर्युक्त नियम में बाधा पड़ती है। पर इसी

क्रमशः १४१ और १६ वर्षों में मालव-संवत् ७०४ या ईसवी सन् ६४७-४८ पड़ता है। एवं उक्त क्षयमास के नियम के अनुसार उस वर्ष में क्षयमास का होना सम्भाव्य है। अतः यह बात याद रखने योग्य है कि उपर्युक्त भविष्य भी यशोधर्मदेव की शक-विजय के समय से मिलता है।

उपर्युक्त दसों प्रमाणों पर जब समुच्चयरूप से विचार किया जाता है तब यह विश्वास हो जाता है कि शकारि-उज्जयिनीपति विक्रमादित्य ईसा की छठी शताब्दी में विद्यमान था। यदि इसमें किसी को कोई शङ्का हो तो हमको विश्वास होता है कि उसका निवारण इसी ढँग से अधिक खोज करने पर हो सकता है। क्योंकि संशोधन का कार्य अभी समाप्त नहीं हो गया है।

यहां तक विक्रमादित्य के काल पर विचार किया गया है। अब आगे कालिदास के काल पर विचार किया जायगा।*

जैसे विक्रमादित्य का काल ईसा की छठी शताब्दी में निश्चित होता है वैसे ही कालिदास का भी काल उसी शताब्दी में निश्चित होना है। भारतीय लोग यह बात बराबर मानते चले आ रहे हैं कि कालिदास का विक्रमादित्य के साथ बिल्कुल अभेद्य सम्बन्ध है†। तो भी कालिदास के काल पर पृथक विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी ही। इस पर मज़ा यह कि कालिदास के ग्रन्थों में विक्रमादित्य का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं है। हां, विक्रमोर्वशीय नाटक के नायक-पुरूरवा के लिए उसने 'विक्रम' की संज्ञा प्रदान की है। इससे कुछ लोग यह अनुमान करते हैं कि इसमें कालिदास का यह उद्देश रहा होगा कि उसके आश्रयदाता का उल्लेख हो जाय। पर ऐसे सन्दिग्ध उल्लेख से काम नहीं चल सकता। आइए, जिस तरह विक्रमादित्य के काल के निर्णय में हमने प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में अप्रत्यक्ष और शाब्दिक प्रमाणों का अवलम्बन किया है उसी प्रकार कालिदास के काल-निर्णय में भी उसी प्रणाली के अनुसार विवेचन करें। कालिदास के काल-निर्णय के विषय में संस्कृत-साहित्य से कुछ प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। उन्हीं पर विचार करना होगा।

आयहोले स्थान में ईसवी सन् ६३४ का एक शिला-लेख प्राप्त हुआ है। इसमें लिखा है—"कवितााश्रितकालिदासभारविकीर्तिः" और ईसवी सन् ६३५ के लगभग हर्ष-चरित्र में उल्लेख किया गया है—

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥"

इन दोनों उल्लेखों से कालिदास के काल की अन्तिम सीमा स्थिर हो चुकी है। अर्थात सातवीं शताब्दी के पहले उसका अस्तित्व निश्चित है। पर जिन प्रमाणों से उसका अस्तित्व इससे भी पहले अर्थात छठी शताब्दी में सिद्ध होता है वे ये हैं—

(१) कालिदास के ग्रन्थ में राशियों का उल्लेख हुआ है। भारतीय ज्योतिष-ग्रन्थों में मेषादि राशियों का समावेश यूनानियों के संसर्ग से हुआ है, इस पर सभी विद्वान् एकमत हैं। शक-काल से पहले तक ज्योतिष-ग्रन्थों में राशियों का उल्लेख नहीं पाया जाता। श्रीयुत चिन्तामणि राव वैद्य अपने महाभारत के उपसंहार में लिखते हैं कि गर्गसंहिता में शक-राजाओं तक का उल्लेख है, पर उसमें राशियों का

नक्शे में इससे पहले जो क्षयमास पड़ा था उसका वर्ष सन् ४८८ दिया गया है। इससे जब मेल मिलाया जाता है तब उपर्युक्त नियम के अनुसार १६ और १४१ वर्ष ठीक मिल जाते हैं।

* अनुवादक, पण्डित बैजनाथ उपाध्याय, धार।

† जयपुर-निवासी पण्डित दुर्गाप्रसाद द्वारा सम्पादित 'साहित्यदर्पण' की भूमिका में महाकवि अभिनन्द के रामचरित से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है, जिसमें वह महाकवि शकारि (विक्रमादित्य) को कालिदास का आश्रयदाता होना स्पष्टरूप से प्रकट करता है—

हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः।
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना।
श्रीहर्षो वितताार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्।
सद्यः सत्क्रियायाभिनंदमपि च श्रीहारवर्षोग्रहीत्॥

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में रामदास भूपति नामक व्यक्ति ने "सेतु" काव्य पर टीका की है, जिसकी भूमिका में वह सेतुकाव्य के विषय में विक्रमादित्य के साथ कालिदास का सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

उल्लेख नहीं है। कालिदास के ग्रन्थ में यह उल्लेख है कि "प्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंस्थितैः" (रघुवंश सर्ग ३ श्लोक १३) यह उल्लेख ऐसा नहीं है जो उस ज़माने में किया जा सके जब जातक-शास्त्र में राशियों का आम तौर से उपयोग न होने लगा हो, अतएव शक-पूर्वकाल में कालिदास का अस्तित्व असम्भव है। ऊपर कहा गया है कि शकारम्भ-काल तक जितने ग्रन्थ लिखे गये उनमें राशियों का उल्लेख नहीं पाया जाता। इस कथन पर दो एक आक्षेप किये जा सकते हैं; इस स्थान पर उनका भी निपटारा कर देना आवश्यक है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक अपने गीतारहस्य में (पृ० ५६७) और स्वर्गीय शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित अपने (मराठी) "भारतीय ज्योतिःशास्त्र का इतिहास" (पृ० १०२) में लिखते हैं कि बौधायन सूत्र में राशियों का उल्लेख मौजूद है। गीता-रहस्य में इस विषय पर बौधायन का वचन, जो कालमाधव से उद्धृत किया गया है, यह है—'मीनमेषयोर्मेषवृषभयोर्वा वसन्तः'। इस वचन में 'मीन मेष वसन्त' अथवा 'मेष वृषभ वसन्त' का विकल्प दिखलाया गया है। इसी से यह सिद्ध हो सकता है कि यह वचन उतना प्राचीन नहीं है जितना माना जाता है। मीन मेष वसन्त की परिभाषा प्रधानतः वराहमिहिर से कायम हुई और उसने प्रत्यक्ष परीक्षण द्वारा उसको स्थिर किया है। वराहमिहिर यह बतला रहा है कि उससे पहले अयनप्रवृत्ति किस नक्षत्र पर मानी जाती थी। एवं उससे पहले 'मीन मेष वसन्त' की परिभाषा का क़ायम होना असम्भव है और वराहमिहिर से पहले जिस काल में 'मेष वृषभ वसन्त' अथवा 'मीन मेष वसन्त' का संशय स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। जान पड़ता है कि बौधायन का वचन भी उसी काल में उपस्थित हुआ। और इसी लिए यह कहा जा सकता है कि वराहमिहिर से बहुत होगा तो दो चार सौ वर्ष पहले वह उपस्थित हो सकता है; इससे अधिक प्राचीन होना सम्भव नहीं। इस तरह इस वचन से भी यह अच्छी तरह सिद्ध नहीं हो सकता कि शक-पूर्वकाल में राशियों का प्रचार हुआ।

वाल्मीकि-रामायण में भी राशियों का उल्लेख है, पर इस स्थान पर उसका विवेचन करना आवश्यक नहीं; क्योंकि कितने ही लोगों के मत के अनुसार वह उल्लेख प्रक्षिप्त है और इस उल्लेख के कारण कितने ही रामायण के रचना-काल को ही इस ओर खींचते हैं।

(२) जिस तरह यूनानियों के सहवास से राशियों का प्रचार हमारे देश में हुआ, ठीक इसी तरह अन्य भी कितनी ही बातों और कितने ही ज्योतिष-विषयक यूनानी शब्दों का प्रचार हुआ। वराहमिहिर के ग्रन्थों में यूनानी शब्द बहुतायत से पाये जाते हैं और वह अपने ग्रन्थ में बड़े आदर के साथ यूनानियों का उल्लेख करता है। इससे यह विदित होता है कि वराहमिहिर के समय के लगभग ही यूनानी शब्दों का अधिकता से प्रचार हुआ। यह सम्भव नहीं कि जनता में इस विदेशी भाषा के शब्दों का प्रचार अच्छी तरह हो जाने से पहले ही काव्य में उनका समावेश किया गया हो और कालिदास अपने काव्य में जामित्रादि* यूनानी शब्दों का प्रयोग करता है। इससे विदित होता है कि कालिदास का काल वराहमिहिर के काल के आस-पास ही होना चाहिए।

यदि यह बात कोई निर्विवाद सिद्ध कर दे कि शक के आरम्भ से पहले राशियों का और यूनानी संज्ञाओं का प्रचार हो चुका था तो शायद उक्त प्रमाण निर्बल पड़ जायँ। इसलिए आगे इससे भी अधिक प्रबल प्रमाण दिये जाते हैं।

(३) ज्योतिष-शास्त्र के इतिहास से ज्ञात होता है कि ईसा की पाँचवीं या छठी शताब्दी में भारत ने इस शास्त्र में बहुत उन्नति की। इस काल में आर्य्यभट्ट और वराहमिहिर जैसे बड़े बड़े ज्योतिष-शास्त्र-वेत्ताओं ने अपने अपने सिद्धान्त-ग्रन्थों का निर्माण किया। इसी से इस काल को सिद्धान्त-काल की संज्ञा प्राप्त हुई और इस काल में चारों ओर ज्योतिष-शास्त्र पर अधिक चर्चा आरम्भ हुई। कालिदास के काव्य में ज्योतिष-विषयक उल्लेख बहुतायत से पाये जाते हैं। इससे भी यह नहीं पाया जाता कि कालिदास इस सिद्धान्त-काल से पहले मौजूद था।

कालिदास के रघुवंश काव्य में अगस्त्योदय के विषय पर यह उल्लेख किया गया है—"प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।" इससे श्रीयुत रामचन्द्र विनायक पटवर्धन जुलाई सन् १९१७ के चित्रमयजगत (मराठी) में कालि-

* "तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्।" कुमारसम्भव, सर्ग ७ श्लोक १।

दास के काल-निर्णय का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने समझा कि कालिदास का यह उल्लेख काश्मीर के विषय में है। अतएव वे यह अनुमान करते हैं कि उसका काल कम से कम १७०० वर्ष पहले होना चाहिए। परन्तु कालिदास का उक्त उल्लेख उज्जयिनी के प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर के 'दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के' इस वचन से मिलता-जुलता है। इससे यह प्रकट है कि यह उल्लेख तत्कालीन मालवे की परिस्थिति का द्योतक है। इस बात को एक बार श्रीयुत चिन्तामणि रावजी वैद्य लोकशिक्षण (मराठी मासिक पत्र) संख्या ११२ आश्विन-कार्तिक शके १७४० के अन्तर्गत अपने कालिदास-विषयक लेख में स्वीकार कर चुके हैं। आप लिखते हैं कि "वह घटना वराहमिहिर के समय की है अर्थात् ईसवी सन् ५०० के लगभग की।" वराहमिहिर का यह मुख्य ग्रंथ है—"प्रत्यक्षपरीक्षणै-र्व्यक्तिः।" इस कारण कालिदास का अगस्त्योदय-विषयक उल्लेख, जो वराहमिहिर के वचनों से मिलता-जुलता है, वराहमिहिर के समय का ही समझना चाहिए। इसलिए यह कहना अनिवार्य है कि कालिदास या तो वराहमिहिर-कालीन था या उसके पश्चात्। इस बात की सिद्धि के लिए कालिदास के ग्रन्थों से और भी प्रमाण मिल सकते हैं। नीचे लिखे उदाहरणों से ज्ञात होगा कि कालिदास के ग्रन्थों में बार बार वराहमिहिर का अनुकरण किया गया है—

(अ) उत्तर-ध्रुव के चारों ओर ताराओं का भ्रमण।—

(१) वराहमिहिर—

> सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
> नाथवतीव च दिग्यैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥१॥
> ध्रुवनायकोपदेशान्नरि नर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च।
> + + + + ॥ २ ॥

बृहत्संहिता, सप्तर्षिचार, अध्याय १३

(२) कालिदास—

> शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिः विभावर्य इव ध्रुवम् ॥

रघुवंश, सर्ग १७, श्लो० ३५.

ध्रुव के चारों ओर सप्तर्षियों का और ताराओं का भ्रमण मालवे में भी दिखाई पड़ता है। इस कारण जैसा कि श्रीयुत रामचन्द्र विनायक पटवर्धन कहते हैं उसको काश्मीर-विषयक मानने की आवश्यकता नहीं है।

(आ) अगस्त्योदय के साथ शरदृतु का प्रवेश।—

(१) वराहमिहिर अपने अगस्त्य-चार में इन दोनों का समवाय दिखलाता है और अगस्त्योदय का वर्णन इस तरह करता है—

> उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः।
> कुसमायोगमलप्रदूषितानि ॥
> हृदयानि सतामिव स्वभावात्।
> पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥८॥

इसी तरह इस श्लोक से आगे १० वें श्लोक में "पयोद-विगम" शब्द की योजना करके यह स्पष्ट दिखाया गया है कि अगस्त्योदय के समय वर्षाकाल समाप्त हो जाता है। इसी का प्रतिबिम्ब कालिदास-कृत रघुवंश के चौथे सर्ग के इस श्लोक में भी पाया जाता है—

> प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।
> सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान्।
> यात्रायै प्रेरयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥

(इ) चन्द्रग्रहणोपपत्तिः—

१ वराहमिहिर—

> भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ॥८॥

बृहत्संहिता, राहुचार।

२ कालिदास—

> छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।

रघुवंश, सर्ग १४, श्लोक ४०

(ई) सूर्य से चन्द्र को प्रकाश मिलता है—

१ वराहमिहिर

> सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम्। बृहत्संहिता-चन्द्रचार व पञ्चसिद्धान्तिका,

अ० १३, श्लो० ३६.

२ कालिदास

> पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥

रघु० सर्ग ३, श्लो० २२

अब दो एक ऐसे उदाहरण दिये जायँगे जिनमें वराहमिहिर का अनुकरण किया गया है, पर उनका सम्बन्ध ज्योतिष के विषय से नहीं है।

(ऊ) १ वराहमिहिर

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम्! बृ० सं० अ० १, श्लोक ३

२ कालिदास

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नव-मित्यवद्यम्। मालविकाग्निमित्र.

(ऊ) १ वराहमिहिर

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति।

बृ० सं० अध्याय १०६.

(२) कालिदास

इसीका प्रतिबिम्ब कालिदास के शाकुन्तल के इस वाक्य में ठीक ठीक दिखाई पड़ता है—

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।

(ऋ) १ वराहमिहिर

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम्॥

शास्त्रमुपसङ्गृहीतं नमोस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः॥ ६॥

बृहत्संहिता, अध्याय १०६

२ कालिदास

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।

मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥ ४॥

रघुवंश, सर्ग १

इन सब बातों से ज्ञात होगा कि कालिदास वराह-मिहिर का अनुयायी और समकालीन था अथवा उससे कुछ ही काल पीछे अर्थात् छठी शताब्दी में हुआ।

(४) यदि श्रीयुत वैद्य के कथनानुसार यह मान लिया जाय कि कालिदास सिद्धान्त-काल से पहले हुआ तो कहना होगा कि वह वराह-पूर्व-कालीन अयनप्रवृत्ति को मानता था। परन्तु कालिदास के ग्रन्थों से यह बात नहीं पाई जाती। वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता और पञ्चसिद्धान्तिका में पूर्व-कालीन और स्वकालीन अयनप्रवृत्ति के विषय पर लिखता है—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥
सांप्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥

बृहत्संहिता, अध्याय ३.

आश्लेषार्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदासीत् सांप्रतमयनं पुनर्वसुतः॥

पञ्चसिद्धान्तिका

इससे यह स्पष्ट है कि वराहमिहिर से पहले, जब सूर्य आश्लेषा के अर्ध में पहुँचता था तब दक्षिणायन माना जाता था और जब सूर्य धनिष्ठा के आरम्भ में पहुँचता था तब उत्तरायण माना जाता था। आश्लेषा अथवा धनिष्ठा से पहले के नक्षत्र में अयनप्रवृत्ति मानी जाती तो उसका उल्लेख वह अवश्य ही करता। क्योंकि अपने ग्रन्थ की रचना से पहले उसने अपने पूर्वकालीन शास्त्रकारों के ग्रन्थों को देख लिया था। इसलिए यही कहना चाहिए कि उससे पहले आश्लेषा अथवा धनिष्ठा के पूर्व नक्षत्रों में अयनप्रवृत्ति मानी नहीं जाती थी या यह कहिए कि प्रचार में नहीं थी। वेदाङ्ग-ज्योतिष-काल में भी इसी तरह अर्थात् आश्लेषा के अर्ध में सूर्य के पहुँचने पर (श्रावणमास में) दक्षिणायन का अथवा वर्षाऋतु का आरम्भ माना जाता था*। पर वराहमिहिर के समय में यह अवस्था बदल गई और इसके स्थान पर दक्षिणायन का आरम्भ अथवा वर्षाकाल की प्रवृत्ति उस समय मानी जाने लगी जब सूर्य पुनर्वसु-नक्षत्र में पहुँचता था। यह बात वराहमिहिर के उपर्युक्त इन वचनों से स्पष्ट होती है। "साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं" और "साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः"। मतलब यह है कि वराहमिहिर के समय में अयन का आरम्भस्थान पहले की अपेक्षा २३-२४ या उससे कुछ अधिक अंशों में इस ओर चला आया था। अर्थात् पहले वर्षाकाल का दक्षिणायन आरम्भ श्रावण-मास में होता था। वराहमिहिर के समय में वह २३-२४ दिन पहले अर्थात् आषाढ़-मास में होने लगा। यदि कालिदास के मेघदूत काव्य पर विचार किया जाता है तो यह जान पड़ता है कि कालिदास के समय में भी वर्षाऋतु का आरम्भ आषाढ-मास के आरम्भ में ही हो जाया करता था। आषाढ़ के पहले दिन यक्ष ने मेघ को देखा और उसके साथ अपनी विरहाकुल प्रियतमा को

* प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचान्द्रमसावुदक्।
सार्पार्द्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।

वेदाङ्गज्योतिष—

सन्देश भेजना स्थिर किया। यक्ष को एक वर्ष का शाप था, जिसमें आषाढ़ के आरम्भ तक लगभग आठ महीने बीत चुके थे। शाप-विमोचन के लिए सिर्फ़ चार ही महीने बाक़ी थे। मेघदूत काव्य का मुख्य विषय यही है कि यक्ष अपनी प्रिया को मेघरूपी दूत के हाथ सन्देश भेजता है कि "आषाढ़ शुद्ध एकादशी से लेकर कार्तिक शुद्ध एकादशी तक चार महीने उसी तरह कड़ा जी करके बिताओ और प्राण धारण किये रहो *।" पीछे दोनों की भेंट होगी। इससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि आषाढ़ मास की शुद्ध एकादशी (शयनी) के पहले ही यह सन्देश पहुँच जाना चाहिए था। मेघ की यात्रा के मार्ग का जो वर्णन इस काव्य में किया गया है उसमें यक्ष ने कहा है कि "मार्ग में तुम्हें फूल, फल अथवा माथी मिलेंगे"। इसमें जिन फूल, फल आदि का उल्लेख है वे ऐसे हैं जो वर्षा-काल में ही उत्पन्न हो सकते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि उस समय वर्षा-काल का आरम्भ हो चुका था। और यह बात निम्न उक्तियों से स्पष्ट होती है †—

× × × ×

* शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ।
शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा॥

† छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः ॥१८
पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः ॥२४
फलपरिणतिः श्यामजम्बूवनान्ताः ॥२४
उद्यानानां नवजलकणैः यूथिकाजालकानि ॥२७
प्राप्यवर्षाग्रबिंदून्...... .... ॥२८
...कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै। ४
नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्द्धरूढैः।
आविर्भूताः प्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्। २१
प्रावृषा सम्भृतश्रीः... .... २२

मेघदूत के ऐसे उल्लेख यही प्रदर्शित करते हैं कि वर्षाकाल का आरम्भ हो चुका था। इसके अतिरिक्त यह बात भी याद रखनी योग्य है कि उसमें जिन फल, पुष्पादिकों के नामों का उल्लेख है उन्हीं में से कितने ही के नाम ऋतुसंहार के वर्षाकाल-वर्णन में भी मौजूद हैं।

'आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्।
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श॥

× × × × ॥२

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी।
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।

× × × ×

उक्त उक्ति के "नभसि" पद से श्रावण मास का अर्थ ग्रहण किया जाता है, परन्तु वास्तव में उस स्थान पर इस पद का अर्थ वर्षाऋतु ही उचित है। क्योंकि आषाढ़ के बाद सदा श्रावण ही आता है, इसलिए यदि कवि यह कहे कि श्रावण आषाढ़ का प्रत्यासन्न है तो उस कथन में कोई स्वारस्य नहीं रह जाता। और कालिदास के जैसे मर्मज्ञ कवि की ओर से तो ऐसे अर्थहीन पद की योजना की जानी कदापि सम्भाव्य नहीं। इसलिए यह कहना अनिवार्य है कि इस पद की योजना में कोई न कोई विशेषता अवश्य ही है। वह विशेषता यह पाई जाती है कि कवि ने विशेषरूप से यह बतलाने के लिए कि वर्षाकाल में विरही जनों की अवस्था बहुत दुःखप्रद हो जाती है और वह काल अब समीप आगया, "नभसि" के ऋतुबोधक पद की योजना करके आषाढ़ के पहले दिन ही वर्षाऋतु का प्रत्यासन्न होना बतला दिया। आगे चल कर मेघदूत में जो वर्णन दिया गया है उससे यह बात बिलकुल सुसङ्गत प्रतीत होती है। मधु, माधव, नभ, नभस्य आदि महीनों के नाम वास्तव में ऋतु-बोधक हैं। ज्योतिष-शास्त्र-वेत्ताओं को मालूम है कि जब इनका चैत्र, वैशाख आदि महीनों से मिलान मिलने लगा तब वे चैत्रादि मासों के बोधक माने जाने लगे। तो भी जब जैसी आवश्यकता होती है, चैत्रादि मास या ऋतुओं के लिए ये नाम उपयोग में लाये जाते हैं। इसलिए इस स्थान पर "नभसि" पद को ऋतुबोधक मानना चाहिए। इसी तरह आगे ग्यारहवें श्लोक में भी इस पद का प्रयोग किया गया है। उस स्थान पर भी वह ऋतु-बोधक है। "सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः"। कुछ टीकाकार इस श्लोक के 'नभसि' पद का अर्थ "आकाश में" करते हैं पर इस स्थान पर कालिदास ने यक्ष के मुँह से मेघ के प्रति यह कहलवाया है कि 'वर्षा का आरम्भ हो चुका है, इस-

लिए राजहंस मानस-सरोवर को लौट रहे हैं, अनायास ही तुम्हारा उनसे साथ हो जायगा'। इसमें कालिदास का मुख्य उद्देश यही जान पड़ता है कि वर्षाऋतु की परिस्थिति दिखला दी जाय। इसी लिए इस पद का अर्थ "वर्षा-ऋतु" करना ही युक्त होगा। उत्तर-मेघ श्लोक ५० से तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। वह श्लोक यह है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ।
शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा॥
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमेवाभिलाषम्।
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु॥ ५०॥

इसमें यक्ष ने अपनी प्रिया के लिए जो सन्देश भेजा उसका उल्लेख है। सन्देश इस तरह है कि कार्तिक शुक्ल एकादशी को शाप दूर हो जायगा तब तुम और हम पूर्णता को प्राप्त हुई शरदृतु की निर्मल चाँदनी में अपने विरह-गुणित अभिलाष को आनन्द से प्राप्त करेंगे। इस स्थान पर यह दर्शाया गया है कि कार्तिकशुक्ल ११ के लगभग शरदृतु पूर्ण हो जायगी। इससे यह आपही स्पष्ट हो जाता है कि आषाढ़ शुक्ल ११ के लगभग वर्षाऋतु का आरम्भ हुआ। इसी लिए कालिदास ने "आषाढस्य प्रथमदिवसे" के पश्चात् "प्रत्यासन्ने नभसि" पद की योजना कर वर्षाकाल का सान्निध्य सूचित किया।

जब "नभसि" पद श्रावण-मास के अर्थ में माना गया तब कुछ टीकाकारों को दूसरे और चौथे श्लोक की सङ्गति मिलाने में बहुत अड़चन मालूम हुई। क्योंकि श्रावण का महीना आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को प्रत्यासन्न किस तरह समझा जा सकता है? इस अड़चन को दूर करने के लिए उन्होंने मास को पूर्णिमान्त मान कर "आषाढस्य प्रथम-दिवसे" के स्थान पर "आषाढस्य प्रशमदिवसे" बना डाला*। पर जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, 'नभसि' पद से वर्षाऋतु का अर्थ ग्रहण करके उक्त श्लोक की सङ्गति मिलाई जाती है तब कोई अड़चन बाकी नहीं रहती। न तो श्लोक का पाठ बदलना पड़ता है, न पूर्णिमान्त मास की कल्पना की ही आवश्यकता रह जाती है। इसके अतिरिक्त श्लोक के असली पाठ से इस स्थान पर और भी एक विषय में कालिदास की वराहमिहिर के साथ एकवाक्यता पाई जाती है। वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता के गर्भलक्षणाध्याय में (श्लोक ६ से १२ तक) पौष शुक्ल के पश्चात् पौष कृष्ण और माघ शुक्ल के पश्चात् माघ कृष्ण का क्रम दिखलाता है। इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर अमान्त मास मानता था। और ठीक इसी तरह 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' के प्रयोग से सिद्ध होता है कि कालिदास भी अमान्त मास मानता था अर्थात् वह वराहमिहिर के मत का अनुसरण करता था।

इन सब विवेचनों से यह बात प्रकट है कि कालिदास के समय में वर्षाऋतु का आरम्भ आषाढ़ के आरम्भ में ही हो जाता था। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि वराह-मिहिर के समय से वर्षाऋतु की प्रवृत्ति आषाढ़ में मानी जाने लगी। एवं इसमें कोई सन्देह बाकी नहीं रह जाता है कि कालिदास वराहमिहिर-कालीन अयनप्रवृत्ति का माननेवाला अर्थात् वराहमिहिर का सम-कालीन था।

रघुवंश सर्ग ६ और कुमारसम्भव सर्ग ३ में उस समय का वसन्त-वर्णन है जब सूर्य सम्पातबिन्दु से उत्तर की ओर जाता है। आगे चल कर सर्ग १६ में ग्रीष्म-वर्णन है। ये दोनों वर्णन† भी ऊपर लिखे अनुसार वराहमिहिर-

* एक टीकाकार ने तो इस अड़चन को दूर करने के लिए "नभसि" के स्थान पर "मनसि" पाठ होना भी सूचित किया है।

† इस ऋतु-वर्णन के विषय में प्रोफ़ेसर ह० वा० भिड़े ने सन् १९१८ के 'विविध ज्ञान विस्तार' में (महाराष्ट्र-साहित्य-पत्रिका में) कुछ शङ्कायें प्रकाशित की थीं। उन पर उसकी अगली संख्या में प्रोफ़ेसर दिवेकर की ओर से उत्तर दिये गये हैं। फिर भी प्रोफ़ेसर भिड़े की शङ्का रह गई। उन्होंने फिर मार्च १९१९ की संख्या में अपनी शङ्काओं को प्रकाशित किया। पर वे ऐसी नहीं कही जा सकतीं जिनको अधिक महत्व दिया जाय। उन्होंने 'परिवर्तित वाहनः' पद से यह दिखलाया है कि विषुव-वृत्त का उल्लङ्घन करते समय घोड़ों का परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस पद में "परिवर्तित" शब्द भूतकालवाचक कृदन्त है, इस कारण यह अड़चन भी बाकी नहीं रहती। क्योंकि इस पद का यह अर्थ होता है कि "पहले ही घोड़े घुमा लिये गये थे"। और यह वर्णन भी सुसङ्गत ही है कि घोड़ों को घुमाने के पश्चात विषुव-वृत्त

कालीन अयनप्रवृत्ति से बहुत ठीक मिलते हैं। इससे भी उपर्युक्त विधान की पुष्टि मिलती है।

वराहमिहिर से पहले जो अयनप्रवृत्ति मानी जाती थी उसमें कुछ अन्तर आ जाने से वराहमिहिर ने स्वयं उसे वेध के द्वारा निकाल दिया और दृक् प्रत्यय के अनुरूप अयन-बिन्दुओं को निश्चित कर दिया। इसलिए उसके समय में वर्तमान की तरह सायन और निरयन के भेद बाक़ी रहने का कोई कारण नहीं रह गया था। वराहमिहिर के द्वारा जो अयनबिन्दु क़ायम किया गया उसमें सम्पात-गति के कारण अब बहुत अन्तर पड़ गया। इस कारण सायन-निरयन का विवाद उपस्थित हुआ। वराहमिहिर-कालीन अयन-बिन्दु से अब अयन १६ अंश पीछे हट गया है और इस बात को विचक्षण ज्योतिष-वेत्तागण मान चुके हैं। तब यह अवश्य है कि कालिदास ने वर्षाकाल की प्रवृत्ति का जो वर्णन किया है उसके अनुसार वर्षाकाल की प्रवृत्ति के स्थान के और जिस स्थान पर अब उस ऋतु का ठीक आरम्भ होता है उस स्थान के बीच इतना अन्तर हो। और यह अवस्था प्रत्यक्ष में भी दिखाई पड़ती है। कालिदास ने मेघदूत में जिस अवस्था का वर्णन किया है वह अब आषाढ़ के आरम्भ से पहले ही अर्थात् ज्येष्ठ मास में २१ जून के लगभग दिखाई पड़ने लगती है। इससे भी अयनों का पीछे हट जाना अच्छी तरह प्रकट होता है।

अयन की गति के कारण अयन की प्रवृत्ति में जो यह अन्तर पड़ता है उसके विषय में वर्तमान सूक्ष्म गणित के द्वारा यह स्थिर हो चुका है कि लगभग ७१ वर्ष में एक अंश का फ़र्क़ पड़ता है। इस हिसाब से १६ अंश का फ़र्क़ १३४६ वर्षों में पड़ सकता है। और इसी लिए यह स्पष्ट है कि लगभग १३५० वर्ष पहले अर्थात् ईसवी सन् ५७० । ७१ के लगभग कालिदास और वराहमिहिर मौजूद थे।

(५) कालिदास के काल-निर्णय के विषय में अब तक जितने बहुमान्य लेख प्रकाशित हुए, उनमें प्रोफ़ेसर काशीनाथ बापू पाठक का लेख उच्च श्रेणी में रखने के योग्य है। इसको लिखे गये अभी बहुत काल नहीं बीता। उनके और हमारे मत के बीच अधिक अन्तर नहीं है। उन्होंने सिद्ध किया है कि कालिदास स्कन्दगुप्त के समय में अर्थात् पाँचवीं शताब्दी के अन्त में अथवा छठी शताब्दी के आरम्भ में हुआ। हमारी विचार-सरणी में यह काल छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में पहुँच जाता है। उनका मुख्य प्रमाण यह है रघुवंश, सर्ग ४ के श्लोक ६६ से ६८ तक उत्तरदिग्विजय के अवसर पर यह वर्णन है कि रघु ने वंक्षु (Oxus) नदी के तीर पर हूणों को परास्त करके उनकी स्त्रियों को शोकाकुल-कपोल कर दिया। और हूणों ने अपना राज्य आक्सस नदी के तीर पर ईसवी सन् ४५० के लगभग स्थापित किया तथा स्कन्दगुप्त के शिलालेख में उसके द्वारा हूणों के पराभव का उल्लेख पाया जाता है। प्रोफ़ेसर पाठक ने समझा कि इसी की प्रतिध्वनि उपर्युक्त रघुदिग्विजय है। तदनुसार वे कहते हैं कि स्कन्दगुप्त के समय कालिदास को मौजूद होना चाहिए। पर यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। यह कहने में भी कोई बाधा नहीं है कि कालिदास स्कन्दगुप्त के पश्चात् किसी न किसी समय रहा होगा। एवं प्रोफ़ेसर पाठक ने बड़ी ही चतुरता से उपर्युक्त काल स्थिर किया है और इसलिए हमको उनका अभिनन्दन करना चाहिए। परन्तु मन्दसोर के जयस्तम्भ पर यशोधर्मदेव की जो प्रशस्ति पाई गई है उसका काल ईसवी सन् ५३२ । ३३ है, जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि यशोधर्मदेव ने हूणों की अच्छी तरह ख़बर ले डाली थी। इससे यह बात सम्भाव्य जान पड़ती है कि रघुवंश के हूण-पराभव का वर्णन करते समय कालिदास को यशोधर्मदेव के समय के हूण-विजय का स्मरण अच्छी तरह था। इसलिए यह मान लेना उचित होगा कि इस विजय के पश्चात् कालिदास ने रघुवंश काव्य की रचना की। इस स्थान पर यह बात स्मरण रखने योग्य है कि कुछ महाशय जयस्तम्भ की यशोधर्मदेव की प्रशस्ति के शब्द-विन्यास से यह अनुमान करते हैं कि यह प्रशस्ति भी कालिदास की ही लेखनी से लिखी गई है।

(६) मेघदूत में, मल्लिनाथ और दक्षिणावर्त, इन दो टीकाकारों के मत के अनुसार, दिङ्नागाचार्य का उल्लेख है। और प्राचीन काल से यह बात प्रसिद्ध है कि वह प्रसिद्ध बौद्ध-पण्डित दिङ्नागाचार्य कालिदास का प्रतिस्पर्धी था। दिङ्नाग का गुरु वसुबन्धु ईसवी सन् ४८०

(४) कालिदास के काल-निर्णय के विषय में अब तक

तक जीवित था। इससे यह स्थिर होता है कि उसका शिष्य दिङ्नाग उसके पश्चात् अर्थात् छठी शताब्दी में होना चाहिए। बौद्ध-इतिहास में दिङ्नाग के समकालीन वसुबन्धु, मनोहारित आदि कितने ही पण्डित पाये जाते हैं। कितनों ही ने चीन में पहुँच कर चीनी-भाषा में बौद्ध-ग्रन्थों के अनुवाद किये हैं। दिङ्नाग के समय में दो ग्रन्थों का अनुवाद चीनी-भाषा में किया गया। पहला ईसवी सन् ५५७ में और दूसरा ५६८ में। दिङ्नाग की यह आख्यायिका पण्डित जनों में परम्परागत सीधा मल्लिनाथ तक चली आई। इस कारण कालिदास के काल-निर्णय में उसको छोड़ा नहीं जा सकता। और इसी लिए यह कहना होगा कि कालिदास दिङ्नाग का समकालीन था और यदि वह दिङ्नाग के मत का विरोधी रहा होगा तो सम्भव है कि उसके कुछ ही काल पश्चात् अर्थात् छठी शताब्दी में मौजूद था।

(७) पुराने ज़माने से विद्वानों का यह ख़याल है कि काव्यादर्श (न कि दशकुमारचरित) का कर्ता दण्डी कालिदास का समकालीन था। इस आख्यायिका को कुछ श्लोक पुष्टि पहुँचाते हैं, जो आगे दिये जाते हैं—

(१) उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं त्रयोऽप्येकैकतोधिकाः* ॥

पण्डित जनों में यह बात प्रसिद्ध है कि उक्त उद्गार विक्रमादित्य के हैं, जो कालिदास, भारवि और दण्डी के विषय में हैं।

(२) कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।
अहं × × अहं × × त्वमेवाहं न संशयः † ॥

सरस्वती और कालिदास का यह संवाद पण्डितों में सुप्रसिद्ध है, वह दण्डी और कालिदास का समकालीनत्व प्रकट करता है।

(३) सुभाषित-हारावली और सुभाषित-रत्नाकर के सुभाषित-सङ्ग्रह में कालिदास की ओर से दण्डी को कहा गया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

यह उक्ति भी दोनों की समकालीनता बतलाती है। दण्डी का काल भी छठी शताब्दी में माना जाता है। स्वर्गवासी गणेश जनार्दन आगाशे ने दशकुमारचरित की प्रस्तावना लिखी है, जिसमें आप दण्डी का काल उपर्युक्त काल के लगभग ही दिखलाते हैं। साथ ही बड़ी मार्मिकता से आपने यह बतलाया है कि वह दण्डी दूसरा है जिसने दशकुमारचरित की रचना की। ऊपर जो काल दिखलाया गया है वह काव्यादर्शकर्ता दण्डी का है।

पण्डित जनों में उपर्युक्त आख्यायिकायें परम्परागत चली आ रही हैं। इनसे और दण्डी के विषय में सुभाषित-सङ्ग्रह-कर्ताओं ने कालिदास की जो उक्ति दिखलाई है तथा दण्डी के द्वारा काव्यादर्श में शाकुन्तल के "लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" का जो उद्धार किया गया, इन सबसे इस बात का समझ में आ जाना स्वाभाविक है कि तीनों कवि (कालिदास, दण्डी और भारवि) लगभग एक ही काल में हुए।

यह भी एक आख्यायिका प्रचलित है कि जानकी-हरण काव्य का कर्ता कुमारदास (सिंहलद्वीप का राजा कुमार धातुसेन) की कालिदास के साथ अत्यन्त मित्रता थी। जब उसने कालिदास की मृत्यु का हाल सुना तब वह धधकती हुई आग में कूद पड़ा और सिंहलद्वीप में उसकी दहन-भूमि उक्त आख्यायिका के साथ अब तक बतलाई जाती है। प्रसिद्ध बङ्गाली पण्डित महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने सन् १९०६ में इस स्थान का अवलोकन करके इस विषय में उस ओर के मासिक पत्रों में लेख भी प्रकाशित किये। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि यह आख्यायिका सत्य है या नहीं, परन्तु कवि कुमारदास ईसा की छठी शताब्दी में मौजूद था। इस कारण सम्भव है कि कालिदास के साथ उसकी मैत्री रही हो। अलबत्ता इस आख्यायिका से भी यह बात विचारणीय है कि कालिदास के काल के विषय में लोगों के विचार किस ओर जा रहे हैं।

---

* इस श्लोक के चौथे चरण में पाठ-भेद है। कोई यह भी कहते हैं "माघे सन्ति त्रयो गुणाः"। पर ऐसा जान पड़ता है कि माघ कवि के पश्चात् किसी माघभक्त ने यह पाठ बदल दिया है।

† इस श्लोक के तीसरे चरण में जो अप्रशस्त शब्द छोड़ दिये गये हैं उनको टालने के लिए हम निम्नलिखित पाठ की कल्पना करते हैं:—

अहं देवि, अहं देवि, त्वमेवाहं न संशयः।

इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि कालिदास के विषय में जितनी आख्यायिकायें पाई गई हैं, लगभग सभी एक ही काल से आ मिलती हैं। यह बात बड़ी मज़ेदार और विचार करने योग्य है।

कुमारदास पण्डितों के समाज में कितने ही नामों से प्रसिद्ध था*। यदि उनमें कुमारसिंह का नाम पाया जाय तो कहा जा सकता है कि वह विक्रम की सभा के पण्डितों में एक था, जिसका उल्लेख ज्योतिर्विदाभरण में मौजूद है। इस कारण यह बात असम्भाव्य नहीं कि कालिदास से इसकी मैत्री होगई हो और जिस तरह विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को काश्मीर का राज्य दिया, कुमारदास को भी सिंहल-द्वीप का राज्य दिया हो और इस अवस्था में कालिदास भी वहाँ पहुँच कर निधन पा गया हो और तब कुमारदास ने उसकी चिता में अपने को समर्पण कर दिया हो।

ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ पर भावरत्न नामक जैन-पण्डित ने विक्रम संवत् १७६८ में संस्कृत-टीका लिखी है, उसके चौदहवें अध्याय के अन्त में ज्योतिर्विदाभरण के लिखने के कारण पर निम्न-लिखित आख्यायिका दी गई है—

एक समय श्रीविक्रम नृपति की सभा में, जो पण्डितों से परिप्लुत थी, कालिदास ने वराहमिहिर के ग्रन्थ के किसी विषय पर दोष दिया। इस पर वराहमिहिर ने कहा कि तुम ज्योतिष-शास्त्र नहीं जानते तो भी दूसरे के ग्रन्थ को दोष देते हो, यह मूर्खता है। यह सुन कर कालिदास ने वराहमिहिर का गर्व हरण करने के लिए ज्ञान बूझ कर इन्दुबोधि ग्रन्थ की रचना की। उक्त आख्यायिका के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

> कस्मिंश्चित्समये नृपस्य सदसि श्रीविक्रमार्कस्य यो।
> विद्वद्भिः परिपूरिते च सुजनैरुक्तिं सदोषां जगौ॥
> दैवज्ञस्य ततो वराहमिहिरस्यानेन मूर्खीकृतो।
> नाज्ञोऽस्यामिति कालिदासकविना इन्दुबोधि शास्त्रं
> कृतम् ॥ १ ॥

यह सब लोग जानते हैं कि ऐसी पुरानी आख्या-यिकाओं में इतिहास की अपेक्षा मनोरञ्जन की ओर ही अधिक ध्यान रहता है। इन मनोरञ्जक आख्यायिकाओं में कोई जान हो या न हो, पर इनसे यह बात प्रकट होती है कि दो सौ सवा दो सौ वर्ष पहले भी पण्डित लोग कालिदास और वराहमिहिर को समकालीन समझते थे।

(८) मेघदूत और रघुवंश के उल्लेखों और आख्यायि-काओं से कालिदास के काल का जो निर्णय होता है वह ऊपर दिखलाया जा चुका है। अब मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध काव्य 'सेतुबन्ध' पर भी विचार करना चाहिए। क्योंकि कितने ही पण्डित यह समझे हैं कि यह काव्य भी कालिदास का रचित है। बाणभट्ट ने अपने हर्ष-चरित्र के उपोद्घात में निम्न श्लोक के द्वारा इस काव्य की प्रशंसा की है:—

> कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
> सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥

इससे कितने ही पण्डित यह मानते हैं कि इस काव्य को प्रवरसेन ने रचा है, पर इस काव्य के प्रत्येक आश्वा-सक के अन्त में यह उल्लेख किया गया है। "इअ सिरि पवरसेन विरइए कालिदास कए दहमुह वहे महा कव्वे.........। इससे ज्ञान पड़ता है कि इस प्रबन्ध के साथ प्रवरसेन और कालिदास दोनों का कोई न कोई सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर इस समय दो टीकायें उपलब्ध हैं। उनमें रामदास भूपति की व्याख्या विद्वानों में खूब प्रसिद्ध है। रामदास भूपति अकबर का आश्रित था। उक्त व्याख्या की प्रस्तावना में व्याख्याकार कहता है कि इस काव्य की रचना कालिदास ने की है। यही नहीं, बल्कि उसमें यह भी उल्लेख है कि कालिदास ने विक्रमादित्य की आज्ञा से इसकी रचना की और प्रवरसेन का इस काव्य से सम्बन्ध होना भी इन शब्दों-द्वारा व्यक्त किया गया है—

---

* कुमारदास के विषय में राजशेखर के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक की चर्चा स्वर्गीय श्रीयुत पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरीप्रचारिणी सभा के त्रैमासिक पत्र में (भाग १ अङ्क २) की है, जिसमें कुमारदास के ही कुमार, कुमारदत्त, कुमार भट्ट, भट्टकुमार, कुमार परिचारक नाम दिये हैं।

> जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
> कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमः॥

"इदं महाराजप्रवरसेननिमित्तं कविचक्रचूडामणि-महाशयः कालिदासः सेतुबन्धप्रबन्धं चिकीर्षुः..."

इस स्थान पर इस बात का स्थिर करना उद्दिष्ट नहीं है कि इस काव्य की रचना कालिदास के द्वारा हुई या प्रवरसेन के; और जब तक इससे अधिक प्रबल प्रमाण उपलब्ध न हो, इस बात का स्थिर करना शक्य भी नहीं है कि वास्तव में वह किसके द्वारा लिखा गया। अलबत्ता इससे यह बात भलीभाँति स्पष्ट होती है कि बहुत दिनों से पण्डित-समाज मानता चला आरहा है कि इस काव्य से कालिदास और प्रवरसेन दोनों का सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त टीकाकार विक्रमादित्य का सम्बन्ध भी इस काव्य से दिखलाता है सो भी नहीं कहा जा सकता कि बिलकुल ही निराधार हो। एवं यह प्रकट है कि कम से कम टीकाकार के समय में अर्थात् ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में तो प्रवरसेन, विक्रमादित्य और कालिदास इन तीनों व्यक्तियों की समकालीनता मानी जाती थी।

पहले विक्रमादित्य के विषय में विचार किया गया। उस समय राजतरङ्गिणी के आधार पर विक्रमादित्य और प्रवरसेन की समकालीनता बतलाई गई है, और ह्वेनसांग के प्रवास-वृत्त से ईसा की छठी शताब्दी ही उनका काल निश्चित किया गया है। अब इस प्रमाण से भी प्रवरसेन और विक्रमादित्य के काल की तरह कालिदास का काल भी ईसा की छठी शताब्दी ही पाया जाता है।

(४) यह आख्यायिका बहुत पुरानी और सर्वत्र प्रचलित है कि विक्रमादित्य बहुत बड़ा दान-शूर था और उसकी सभा में कितने ही विद्वानों को आश्रय दिया गया था, जिनमें नव को "नव रत्न" की अभिधा दी गई थी। ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ में इन पण्डितों के नाम दिये गये हैं। नव रत्नों के नामों का यह श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इनमें वराहमिहिर का काल छठी शताब्दी स्थिर हो चुका है। और पहले विक्रमादित्य का काल-निर्णय करते समय इस बात का भी प्रमाण दिया जा चुका है कि वररुचि का भी यही काल है। बाकी रहे सात, इनमें तीन अर्थात् अमरसिंह, शङ्कु और घटखर्पर के विषय में भी यही अनुमान किया जाता है कि वे भी इसी काल में हुए। अब रहे चार, जिनमें क्षपणक के विषय में जैनों का अनुमान है कि वह प्रसिद्ध जैन तार्किक 'सिद्धसेन दिवाकर' (जैन-साहित्य-संशोधक भाग १ संख्या १) है। जैन-साहित्य के इतिहास से ज्ञात होता है कि जैन-ग्रन्थ प्राकृत में होने के कारण और ब्राह्मणों के ग्रन्थ संस्कृत में होने के कारण वाद-विवाद के समय अड़चन पड़ा करती थी, इसलिए सिद्धसेन ने न्यायावतार आदि नवीन जैन तार्किक ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की। जैनों के साहित्य में संस्कृत-ग्रन्थों की रचना इसी के समय से होने लगी। उक्त मासिक पत्र में सिद्धसेन दिवाकर के ग्रन्थ से दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं। यद्यपि उनमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, फिर भी उनमें कालिदास-कृत मालविकाग्निमित्र के एक प्रसिद्ध श्लोक की छाया स्पष्ट-रूप से दिखाई पड़ती है। जिस श्लोक की वह छाया है वह श्लोक यह है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

और सिद्धसेन दिवाकर के श्लोक ये हैं—

जनोऽयमन्यस्य मतः पुरातनः
पुरातनैरेव समो भविष्यति।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः
पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत्॥
यदेव किंचिद्विषमप्रकल्पितं
पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते।
विनिश्चितापद्यमनुष्यवान् कृति-
र्न पठ्यते वै स्मृतिमोह एव सः॥

इससे जान पड़ता है कि सिद्धसेन दिवाकर कालिदास का समकालीन था और वह कालिदास के ग्रन्थों से परिचित था। जैनों में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है, जिसमें कहा जाता है कि सिद्धसेन ने विक्रमादित्य को जैन-दीक्षा दी। जैन-ग्रन्थों में यह विशेषता है कि काल-निर्देश

अवश्य है, फिर भी जैनों के प्राचीन ग्रन्थों के काल का बहुत बड़ा गड़बड़ होगया है। सिद्धसेन के काल-निर्णय के विषय में भी वही बात पाई जाती है। शत्रुञ्जय-माहात्म्य आदि कितने ही जैन-ग्रन्थों से पाया जाता है कि वे सिद्धसेन को विक्रमादित्य का, जो संवत् का प्रवर्तक माना गया है, समकालीन समझते हैं। पर अब नवीन खोज द्वारा शकारि, संवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य ही लगभग छः सौ वर्ष इस ओर चला आरहा है तब सिद्धसेन उर्फ़ क्षपणक भी पीछे नहीं रह सकता। अब नव में छः की समकालीनता निश्चित हो चुकी तब शेष कालिदास-प्रभृति तीन पण्डितों के विषय में कम से कम इस समय तो यह मान लेना अनुचित नहीं जान पड़ता कि उनका भी समय वही—छठी शताब्दी—हो। और प्रबल आशा की जाती है कि अधिक अनुसन्धान करने पर भी इन सबकी समकालीनता ही स्थिर होगी।

ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ में इनके अतिरिक्त और भी नव (और श्रुतसेन और सिद्धसेन* पृथक् पृथक् हों तो दस) पण्डितों के नामों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अनुमान किया जाता है कि उनमें जिष्णु, त्रिलोचन, हरि, सत्याचार्य, श्रुतसेन और बादरायण, ये छः पण्डित भी इसी शताब्दी में हुए। यह बात महत्त्वपूर्ण और आशा-प्रद है। ज्योतिर्विदाभरण में ये अठारह-उन्नीस पण्डित समकालीन माने गये हैं। इनमें से लगभग ग्यारह-बारह का काल छठी शताब्दी माना जा सकता है, क्योंकि इनके लिए कुछ आधार मौजूद हैं और इससे आशा की जाती है कि अन्य कालिदासादि सात भी तत्कालीन सिद्ध होंगे।

(१०) कालिदास-कृत ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के विषय में इसी निबन्ध में आगे चल कर जो विचार किया जायगा उससे ज्ञात होगा कि इस ग्रन्थ से भी कालिदास का काल ईसा की छठी शताब्दी निश्चित होता है।

ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ कालिदास-कृत होना प्रसिद्ध है, पर कतिपय पण्डित अनुमान करते हैं कि वह कालिदास-कृत नहीं हो सकता। उक्त ग्रन्थ पर जो आक्षेप किये जाते हैं उन पर आगे चल कर विचार किया जायगा। वह कालिदास-कृत न हो, अन्य ही किसी का क्यों न हो, उसकी सभी बातों को अप्रमाण मानना उचित न होगा।

(११) छठी शताब्दी से आगे संस्कृत-साहित्य में कालिदास के विषय में स्थान स्थान पर उल्लेख और अवतरण पाये जाते हैं। पर पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक के साहित्य में कोई उल्लेख या अवतरण नहीं पाया जाता। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कालिदास छठी शताब्दी में ही हुआ था।

कालिदास और विक्रमादित्य के विषय में उत्कीर्ण लेख अथवा सिक्के आदि प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव है। इस कारण साहित्य-विषयक और ऐतिह्य प्रमाणों का ही अवलम्बन करना पड़ा, पर अब उक्त प्रमाणों का समुच्चय रूप से विचार किया जायगा तब यह बात समझ में आ जायगी। यही नहीं बल्कि इस पर विश्वास हो जायगा कि कालिदास और विक्रमादित्य छठी शताब्दी में ही हुए। यदि इन प्रमाणों पर पृथक् पृथक् विचार किया जाय तो ये दुर्बल से दिखाई पड़ेंगे, परन्तु—

> बहूनामल्पसाराणां समवायो दुरत्ययः।
> तृणैर्विधीयते रज्जुर्बध्यन्ते तेन दन्तिनः।

की नीति से उनको पुष्टि मिलती है।

अब तक कालिदास और विक्रमादित्य के काल का निर्णय किया गया। अब कालिदास के स्थान का निर्णय करना होगा। इस पर भी कितने ही मत प्रचलित हैं। उसने कुमारसम्भव में हिमालय का वर्णन मर्मस्पर्शीरूप में किया है। इस आधार पर श्रीयुत डाक्टर भाऊदाजी प्रभृति कतिपय विद्वान् प्रतिपादन करते हैं कि काश्मीर ही उसकी जन्मभूमि होनी चाहिए। कुछ बङ्गाली पण्डित कहते हैं कि वह बङ्गाली था और हाल में ही उन्होंने सिम्रीगोडा ग्राम को उसकी जन्म-भूमि निश्चित कर दिया और वहाँ वार्षिकोत्सव भी शुरू कर दिया (Leader Allahabad Sunday 15th May 1921)। सन्* १११० में रेलवे-बोर्ड की ओर से Travellers

---

* ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ का टीकाकार भावरत्न कहता है कि सिद्धसेन के स्थान पर श्रुतसेन नाम दिया गया है, तो इसलिए कि छन्दोभङ्ग न हो (अध्याय २२ श्लोक ८ की टीका।)

* अनुवाद करते समय यह बात मालूम हुई इसलिए उसका उल्लेख इस स्थान पर कर दिया गया।

companion नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की गई है, जिसके चौदहवें पृष्ठ में अमरकण्टक स्थान को मेघदूत-कर्ता कालिदास की जन्मभूमि बतलाया गया है। पर कितने ही पण्डित इस बात को मान रहे हैं कि उसकी जन्मभूमि मालवा होनी चाहिए अथवा उसने अपनी आयु का बहुत हिस्सा मालवे में बिताया हो। मेघदूत और रघुवंश में मालवे के स्थानों का वर्णन विशेषता के साथ किया गया है, इस आधार पर श्रीयुत चिन्तामणि रावजी वैद्य "लोकशिक्षण"* नामक मराठी मासिक पत्र में और श्रीयुत शिवराम महादेव पराञ्जपे मराठी "चित्रमय † जगत्" में इस मत को विशद कर चुके हैं और यही अनुमान कालिदास-कृत "ऋतु-संहार" के आधार पर महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री स्वतन्त्ररूप से प्रदर्शित करते हैं। उनका निबन्ध भी मनन करने योग्य है और उसे उन्होंने बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल की दिसम्बर १९१९ की संख्या में प्रकाशित कराया है।

कालिदास के जन्म-स्थान के सौभाग्य के लिए भी भारतखण्ड में ऐसी ही चढ़ा-ऊपरी पाई जाती है। कालिदास के ग्रन्थ के अन्तः प्रमाणों से यह बात समझ में आती है कि कालिदास जैसे नररत्न के उत्पन्न करने का सम्मान दो में से किसी एक देश को मिलना चाहिए, या तो काश्मीर को या मालवे को। मेघदूत का विरही यक्ष शायद कालिदास ही हो। या तो वह काश्मीरी हो या मैथिल हो। मालवे में वह अकेला आया और रहा हो और सुदृढ़ परिचय के कारण मालवे के स्थलों पर उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न होगया हो और वही उसने मेघदूत और रघुवंश में प्रकट किया हो।

ऐतिहासिक विषयों में ऐतिह्य अर्थात् शब्दप्रमाण ही प्रबल मानना पड़ता है। पहले कहा जा चुका है कि उसीका इस लेख में हमने अवलम्बन किया है। कालिदास और विक्रमादित्य के विषय पर हमारे देश में ऐतिह्य प्रमाणों का पूरा पूरा सङ्ग्रह मौजूद है। इस स्थान पर उसका कुछ उल्लेख कर देना उचित जान पड़ता है। विक्रमादित्य और कालिदास की कथायें छोटे बड़े सभी मनुष्यों के मुख से छोटे बड़े सभी गाँवों में गद्य और पद्य में भी सुनी जाती हैं। इतिहासकारों की छननी का संस्कार उन पर नहीं हुआ, इस कारण सम्भव है कि उनमें बहुत भूसा मौजूद हो। पर भूसे के साथ अनाज के अंश को भी गवाँ देना कदापि उचित नहीं हो सकता। इन सब आख्यायिकाओं को काट-छाँट कर साफ़ करना बहुत परिश्रम का काम है। इस समय उनमें बहुतेरी अत्युक्तियाँ और असम्बद्धतायें पाई जायँगी, पर उनसे डरना उचित नहीं। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश-द्वारा उनकी जाँच अवश्य ही होनी चाहिए।

जिन जिन ग्रन्थों में इन ऐतिह्यों का मिलना सम्भव है उनमें से कुछ के नाम नीचे दिये जाते हैं—

१ ज्योतिर्विदाभरण—कालिदास-प्रणीत इस मुहूर्त-ग्रन्थ में इन दोनों की बहुत कुछ विस्तृत और अन्य प्रमाणों के साथ अविरुद्ध जानकारी मिलती है। पर इस ग्रन्थ पर बहुतेरे आक्षेप किये जाते हैं, जिनका आगे चल कर संक्षेप में विचार किया जायगा।

२ बेतालपचीसी—बृहत्कथान्तर्गत।

३ विक्रमबत्तीसी अथवा बत्तीस पुतलियों की बातें।

४ नाथलीलामृत (मराठी)—इसमें विक्रम और भर्तृहरि आदि की कथायें हैं।

५ शनिमाहात्म्य अर्थात् शनि की कथायें।

६ मेरुतुङ्ग आदि के रचित कितने ही जैन और हिन्दू-प्रबन्ध।

आइए, अब हम इस स्थान पर ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के सम्बन्ध में कुछ विचार करें, क्योंकि उससे पिछले प्रतिपादन पर प्रकाश पड़ेगा। इसके सिवा उस प्रतिपादन से इस ग्रन्थ को पुष्टि मिलना भी सम्भव है।

(१) यह मुहूर्त-ग्रन्थ है। इसमें २२ अध्याय और १४२४ श्लोक हैं।

(२) ग्रन्थ के आरम्भ में ही ग्रन्थ का रचयिता—

---

* लोकशिक्षण (पूना) संख्या १। २ आश्विन-कार्तिक शके १८४०।

† चित्रमय जगत् मराठी संख्या ६ जून १९१८ (हिन्दी चित्रमय-जगत् में यदि देखना चाहो तो उक्त मास की या उसके पश्चात् की किसी संख्या में मिल सकता है)।

कालिदास—कहता है कि मैंने इस ग्रन्थ की रचना में प्रधानतः वराहमिहिर के मत का अनुसरण किया है ।

(३) ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय के १५ श्लोकों में विक्रमादित्य की प्रशस्ति दी गई है और ग्रन्थ में भी स्थान स्थान पर उसकी स्तुति की गई है और उसके विषय में अन्य भी कितने ही उल्लेख किये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने अपने समकालीन ग्रन्थकारों का भी उल्लेख कर दिया है ।

(४) ज्योतिष-शास्त्र की दृष्टि से यह ग्रन्थ ज्योतिषियों के समाज में मान्य समझा जाता है, पर इतिहास-वेत्ता पण्डित इसको मान्य नहीं समझते । इसलिए यह आवश्यक है कि इस स्थान पर संक्षेप में वे कारण भी दिखला दिये जायँ जिनके अनुसार इतिहासवेत्ता इसका अनादर करते हैं ।

ज्योतिर्विदाभरण पर सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया जाता है कि इसके अन्त में ग्रन्थ का रचना-काल कलि-वर्ष ३०६८ अर्थात् प्रचलित विक्रम-संवत् २४ दिया गया है ।* (वर्तमान कलि-वर्ष ५०२२—३०६८=१९५४ और वर्तमान संवत् १९७८—१९५४= वि० सं० २४) और पहले अध्याय में अयनांश निकालने की जो रीति† बतलाई गई है उसमें कहा गया है कि वर्तमान शक से ४४५ घटा दिये जायँ और जो शेष रहे उसको ६० से भाग दे दें। इस पर यह शङ्का उपस्थित होती है कि जो ग्रन्थ संवत् २४ में लिखा गया उससे शक का सम्बन्ध किस तरह जुट गया, क्योंकि प्रचलित मत के अनुसार संवत् १३५ के पश्चात् शक-काल की प्रवृत्ति सब जगह मानी जाती है ।

दूसरा आक्षेप यह है कि चौथे अध्याय के ३० वें श्लोक में ऐन्द्र योग में पड़नेवाले क्रान्ति साम्य के सम्बन्ध में यह उल्लेख है :—

'ऐन्द्रे त्रिभागे च गते भवेत्तयोः
शेषे ध्रुवेपक्रमसाम्यसम्भवः ।
यद्येकरेखास्थितमेषपञ्चगू
स्यातां तदाऽपक्रमचक्रवालके ॥'

काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्रवेत्ता महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने 'गणकतरङ्गिणी' अर्थात् ज्योतिर्विदों का इतिवृत्त नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें विवाह-वृन्दावन के कर्ता केशवार्क का इतिवृत्त भी है। उसमें आप लिखते हैं कि पूर्वोक्त योग केशवार्क के समय ज्योतिर्विदाभरण अर्थात् शक ११६४ (ई० स० १२४२) में पड़ा था । इससे जान पड़ता है कि ज्योतिर्विदाभरण ईसा की तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है ।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में तीन स्थानों पर भिन्न भिन्न तीन काल हैं, इसलिए यह अत्यन्त अप्रामाणिक है ।

तीसरा आक्षेप यह है कि इस ग्रन्थ की भाषा कालिदास के अन्य ग्रन्थों जैसी सुरम्य नहीं है और इसमें कहीं कहीं अशुद्धियाँ भी पाई गई हैं। अन्त में जो प्रशस्ति दी गई है उसकी भाषा तो बिलकुल ही पोच जान पड़ती है । इसलिए यह ग्रन्थ कालिदास का नहीं है ।

और भी एक आक्षेपार्ह बात इस ग्रन्थ में है। वह यह है कि अन्तिम (२२ वें) अध्याय में विषय का क्रम बतलाने के पश्चात् छठे श्लोक में ग्रन्थ-संख्या १४२४ (श्लोकैश्चतुर्दशशतैः सविंशैर्मयैव ज्योतिर्विदाभरणकाव्यविधानमेतत्) दी गई है। पर जब दो एक प्रतियों के श्लोक गिने गये तब ७ । ८ श्लोक अधिक निकले । इससे जान पड़ता है कि इस ग्रन्थ में कहीं न कहीं सात-आठ श्लोक क्षेपक रख दिये गये हैं ।

जैसा ऊपर कहा गया, ज्योतिर्विदाभरण पर आक्षेप किये जाते हैं । इससे जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ कालिदास-रचित नहीं है, बिलकुल अर्वाचीन है। इसी लिए इतिहास-वेत्ताओं की धारणा है कि यह ग्रन्थ कालिदास और विक्रमादित्य के काल-निर्णय के लिए प्रमाण मानने योग्य नहीं हैं। पर यह बात नहीं है कि ये आक्षेप बिलकुल उत्तरहीन एवं अखण्डनीय हैं। इसलिए आइए, अब हम इनके खण्डन-मण्डन पर कुछ विचार करें ।

(१) पहले आक्षेप का उत्तर यह है कि प्रथम तो ग्रन्थ के अन्तःप्रमाणों से जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ शक ४४५ के अथवा ई० स० ५२३ के पश्चात् किसी समय

* वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै (३०६८) र्याते कलौ संमिते । मासे माधवसंज्ञिके च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥

† शाकः शराम्भोधियुगो (४४५) नितो हृतो मानं खतर्कै (६०) रयनांशकाः स्मृताः ॥ ज्यो० अ० १ श्लो० १८ ।

लिखा गया है। दूसरे, ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ विक्रमादित्य का वर्णन है और उसमें कहा गया है कि ग्रन्थ की रचना के समय वह स्वयं मौजूद था। इससे यह स्पष्ट है कि ग्रन्थ ५२३ के पश्चात् ही लिखा गया है। राज-तरङ्गिणी और अल्बेरूनी के ग्रन्थ के आधार पर यह बताया जा चुका है कि ईसा की छठी शताब्दी में एक विक्रमादित्य हुआ है। अतएव हृदय सहज ही इस बात को मानने पर उतारू हो जाता है कि यह वही विक्रमादित्य होना चाहिए जिसका इस ग्रन्थ में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उक्त दोनों ग्रन्थों में विक्रमादित्य का शकारि होना और इसमें भी उसके द्वारा शकों का उच्छेद किया जाना लिखा गया है। इससे हृदय जिस बात के मानने पर उतारू हो रहा था वह बात और भी दृढ़ हो जाती है अर्थात् कल्हण और अल्बेरूनी ने जिसको शकारि विक्रमादित्य कहा है वही इस ग्रन्थ के समय मौजूद था। इसके अतिरिक्त अल्बेरूनी यह भी कहता है कि शकारि विक्रमादित्य ने शकों पर विजय प्राप्त कर नवीन शक जारी किया*। ऐसा ही इस ग्रन्थ के २२ वें अध्याय के १३ वें श्लोक में विक्रमादित्य की स्वकाल-गणना का † उल्लेख है। इससे इस बात में कोई सन्देह बाक़ी नहीं रह जाता कि अल्बेरूनी के शकारि शक-प्रवर्तक विक्रमादित्य का ही वर्णन ज्योतिर्विदाभरण के कर्ता ने किया है। अल्बेरूनी कहता है कि 'इस विक्रमादित्य का वर्तमान प्रचलित संवत् से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि वह संवत् का आरम्भ होने के बहुत काल बीत जाने पर पीछे उत्पन्न हुआ था'; इससे तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। पर जिन पण्डित जनों की ओर से इस ग्रन्थ पर आक्षेप किये जा रहे हैं उनके विचार पूर्व ग्रह से दूषित हो रहे हैं। इस कारण वे यह समझ बैठे हैं कि जिसके चरित्र का इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है वह विक्रमादित्य ईसा से ५७ वर्ष पहले था और उसी ने नवीन काल-गणना शुरू की, जो वर्तमान संवत् कहा जाता है। इसी कारण उनके मत के इस ग्रन्थ में, जिसमें संवत् के प्रवर्तक—विक्रमादित्य का वर्णन है, ग्रन्थकर्ता यह दिखलाता है कि जो शक-काल संवत् के प्रचार से १३५ वर्ष पश्चात् प्रचलित हुआ उसके चार सौ से अधिक वर्ष बीत गये। इसलिए इस ग्रन्थ में कोई न कोई गड़बड़ है और इसी लिए ग्रन्थकार बिलकुल अप्रामाणिक था। उसने लोगों की आँखों में धूलि झोंकने का प्रयत्न किया एवं पण्डितों ने उस पर आक्षेप किये, उसे 'लुच्चे कवि' की श्रेणी में ढकेल दिया और इतिहास की दृष्टि में इस ग्रन्थ को अत्यन्त अविश्वस्त मान कर अलग कर दिया। पर असल बात ऐसी नहीं है। ग्रन्थकार ने अयनांश आदि का गणित देते समय जिस तरह शक वर्षों से काम लिया, यदि उसी तरह इस स्थान पर भी शकवर्षों के आधार पर किसी जगह यह दिखला दिया जाता कि नवीन विक्रम-काल-गणना शक के किस वर्ष में जारी हुई तो इस सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता, न उस पर मिथ्यात्व का आरोप लादने का अवसर आ सकता। पर वह बेचारा क्या जानता था कि किसी समय उस पर इस तरह दुर्दैव टूट पड़ेगा और वह इस तरह पण्डितों के अविश्वास का भाजन बन बैठेगा? उस समय तो नवीन काल-गणना के प्रचार का हाल सभी जानते थे, इस कारण उसे इस बात को विशेष-रूप से प्रकट करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी कि शक के किस वर्ष से नवीन काल-गणना आरम्भ हुई। आगे चल कर जब वह काल-गणना मालव-संवत् में लुप्त हो गई और वही संवत् 'विक्रम-संवत्' की संज्ञा धारण कर जनता में जारी रहा तभी यह गड़बड़ उत्पन्न हो गया। एवं यह गड़बड़ ग्रन्थकर्ता की ओर से नहीं उत्पन्न किया गया है, बल्कि सूक्ष्म विचार करने पर यह बात भली भाँति समझ में आ सकती है कि वह हमारे अज्ञान के कारण उत्पन्न हुआ है, क्योंकि विक्रमादित्य के

---

* येनास्मिन्वसुधातले शकगणान् सर्वादिशः संगरे।
हत्वा पञ्चनवप्रमान्कलियुगे शाकःप्रवृत्तिः कृता॥
\+ \+ \+ \+ \+
ज्यो० अ० २२, श्लो० १३.

† त्रिखेन्दुमितिविंक्रमभूपनेमिते
शाकेन्वितीह चयमासको भवेत्।
अन्यः स्वकालाब्दगणेन हायने
त्रिमासयुग्मं चयमासवत्सतः॥
ज्यो० अ० ४, श्लो० ५.

द्वारा जो नवीन काल-गणना जारी हुई उसके विषय में हमको काफ़ी ज्ञान नहीं था।

इस विषय पर ज्योतिर्विदाभरण में और भी एक दो प्रत्यन्तर प्रमाण मिल सकते हैं। अल्बेरूनी ने अपने ग्रन्थ में शकारि विक्रमादित्य के विषय पर लिखते समय कहा है कि "उसने शकों पर विजय प्राप्त कर देश को उनके अत्याचारों से मुक्त कर दिया, इससे जनता को बहुत आनन्द हुआ और इसलिए उसने उसके नाम के साथ 'श्री' उपपद जोड़ने की नवीन परिपाटी जारी की और सम्मानपूर्वक वह उसे 'श्री विक्रमादित्य' कहने लगी"। इसका भी प्रत्यन्तर ज्योतिर्विदाभरण में स्थान स्थान पर मिलता है*। इस ग्रन्थ में विक्रमादित्य का नाम लगभग १६। १७ श्लोकों में मिलता है। उनमें सिर्फ़ तीन चार श्लोक ही ऐसे हैं जिनमें छन्दोभङ्ग आदि के असुविधा के कारण विक्रमादित्य के नाम के साथ 'श्री' उपपद नहीं लगाया गया। अन्य सभी श्लोकों में कवि ने वह उपपद लगाया है। इससे अल्बेरूनी के कथन की सत्यता प्रतीत होती है। और इससे इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता कि जिस विक्रमादित्य को वह शकारि शकप्रवर्तक मानता है उसी विक्रमादित्य का इस ग्रन्थ में वर्णन है।

राजतरङ्गिणी और ह्वेंसांग के प्रवास-वृत्त आदि के आधार पर पहले जो यह दिखलाया गया है कि विक्रमादित्य विद्वानों के लिए बहुत बड़ा आश्रयदाता था उसका प्रत्यन्तर भी इस ग्रन्थ में मिलता है। विक्रमादित्य के आश्रय में कितने ही कवि, ज्योतिषी, वैद्य आदि थे। उनका वर्णन इस ग्रन्थ में विस्तार से किया गया है, इससे उसकी विद्वत्प्रीति भली भाँति प्रकट होती है। ह्वेंसांग ने जो यह कहा है कि 'उस समय मालवा एक प्रसिद्ध विद्या-पीठ था'। इसकी भी यथार्थता अच्छी तरह अनुभव में आ जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों की समझ में यह बात अच्छी तरह आ जायगी कि ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ उसी विक्रमादित्य के आश्रय में तैयार हुआ है जिसका वर्णन ह्वेंसांग, राजतरङ्गिणी के कर्ता ने और अल्बेरूनी आदि ने किया है और जिसका समय इससे पहले अन्य प्रमाणों द्वारा ईसा की छठी शताब्दी स्थिर हो चुका है। ऊपर हम जो यह विधान कर चुके हैं कि वह शक ४४५ अथवा ईसा के ५२३ वर्ष पीछे किसी समय हुआ वह भी ठीक है।

अब यह प्रश्न बाकी रह गया कि ग्रन्थ के अन्त में कलि-वर्ष ३०६८ (प्रचलित विक्रम-संवत् २४ अथवा ईसा से ३३ वर्ष पहले) इस ग्रन्थ की रचना का काल दिखलाया गया है, इसका क्या जवाब है? इसका विचार कुछ विशदरूप से करना होगा और ग्रन्थकर्ता की उस प्रतिज्ञा पर भी ध्यान रखना होगा जो उसने ग्रन्थ के आरम्भ में की है।

पहले कहा जा चुका है कि ग्रन्थकर्ता आरम्भ में ही कहता है कि मैंने इस ग्रन्थ में वराहमिहिर के मत का अनुसरण किया है (मत्वा वराहमिहिरादि मतैः)। इस कारण इस ग्रन्थ के काल का निर्णय करते समय वराहमिहिर के मत को अलग रख देने से काम नहीं चल सकेगा। उसी का प्रामाण्य देना होगा। और इसी लिए उसी दृष्टि के अनुसार अब इस ग्रन्थ के काल पर विचार करना चाहिए।

बहुत पुराने ज़माने से सभी आस्तिक हिन्दू यह समझते चले आ रहे हैं कि कलि का आरम्भ, महाभारत-युद्ध और युधिष्ठिर का राज्यारोहण, ये तीनों बातें एक-ही काल में घटित हुई हैं और महाभारत आदि ग्रन्थों में ऐसे ही स्पष्ट उल्लेख भी हैं। वर्तमान प्रणाली के अनुसार यह माना जाता है कि कलियुग का आरम्भ और युधिष्ठिर का राज्यारोहण शक से पूर्व ३१७९ वें वर्ष में हुआ। पर इस विषय में वराहमिहिर का मत कुछ और है। उसने अपनी बृहत्संहिता में युधिष्ठिर का काल इस प्रकार दिया है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
*षट्द्विक पञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥

बृहत्संहिता—सप्तर्षिचार

* राजतरङ्गिणी में हर्ष विक्रमादित्य के लिए जो 'श्रीमान्' पद की योजना की गई है वह भी स्मरण रखने योग्य है।

* इस वचन के "षट् द्विक पञ्चद्वियुतः" पद के दो अर्थ सम्भव हैं। ये दोनों श्रीयुत वैद्य और के० ल० गु०

इसमें कहा गया है कि युधिष्ठिर के राजत्व-काल में सप्तर्षि मघा में थे और शक-काल में २५६६ जोड़ देने से युधिष्ठिर का शासन-काल उपलब्ध हो जाता है। पुराणों के वचन भी प्रसिद्ध हैं। उनका यह आशय है कि कलियुग के आरम्भ में सप्तर्षि मघा में थे। श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय २ में कहा गया है—

> यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।
> तदा प्रवृत्तस्तु कलिः द्वादशाब्दशतात्मकः॥

इससे यह बात प्रदर्शित होती है कि युधिष्ठिर का शासनकाल और कलियुग का आरम्भकाल दोनों एक ही थे और उसी समय सप्तर्षि मघा में थे *।

वराहमिहिर का प्रसिद्ध टीकाकार भट्टोत्पल इस काल के विषय में वराहमिहिर के उपर्युक्त श्लोक—'आसन्मघासु०'—की टीका में वृद्ध गर्ग का यह वचन उद्धृत करता है—

> कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
> मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥

इस वचन पर भी इस स्थान पर विचार करना उचित होगा। इस वचन में वृद्ध गर्ग भी यही कहता है कि कलियुग के आरम्भ में सप्तर्षि मघा में थे। वराहमिहिर ने सप्तर्षिचार वृद्ध गर्ग के मत के अनुसार लिखा है, इसलिए कलिकाल के विषय में जो मत वृद्ध गर्ग का होगा वही वराहमिहिर का होगा, इसमें कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। एवं कलिकाल, भारतीय युद्ध-काल अथवा पाण्डव-काल और सप्तर्षि के मघा में होने का काल, इन तीनों कालों का ऐक्य वराहमिहिर को स्वीकार है और यह बिलकुल स्पष्ट है कि इन तीनों घटनाओं का काल शक पूर्व २५६६ है।* कलिकाल के विषय में वराहमिहिर का यह मत है और ज्योतिर्विदाभरण का कर्ता वराहमिहिर के मत का अनुयायी था, इस कारण उसके ग्रन्थ के अन्तर्गत काल-निदर्शक वचनों की सङ्गति उक्त वराहमिहिर के वचनों से ही लगाना युक्त होगा। ज्योतिर्विदाभरण में कलिकाल ३०६८ दिया गया है, जिसमें उपर्युक्त मत के अनुसार युधिष्ठिर के शक के २५६६ वर्ष घटाये जाते हैं तो ५०२ शक अर्थात् ई० स० ५८० ग्रन्थ की रचना का काल

काले को स्वीकार हैं। श्रीयुत कें० शं० बा० दीक्षित इसका अर्थ २५२६ करते हैं और श्रीयुत दफ़्तरी २५६६ करते हैं। हमको २५६६ ही ग्राह्य जान पड़ता है और इसलिए हम वही अर्थ करते हैं। [वैद्यकृत महाभारत उपसंहार (मराठी) पृ० ८६; ज्यं० गु० काले कृत पुराण निरीक्षण पृ० २६२; शं० बा० दीक्षित कृत भारतीय ज्योतिःशास्त्राचा इतिहास पृ० ११८ और के० लक्ष्मण दफ़्तरी कृत भारतीय युद्धकाल-विषयक निबन्ध (मराठी), विविध ज्ञान-विस्तार नवंबर १९१८]

* श्रीमद्भागवत के श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकार भी इस बात से सहमत हैं कि कलिकाल के आरम्भ में ही सप्तर्षि मघा में थे।

* महाभारत के उपसंहार में (पृ० ८५) श्रीयुत वैद्य कहते हैं कि "वराहमिहिर कहता है कि कलि के आरम्भ में भारतीय युद्ध नहीं हुआ"। और कें० दीक्षित भी अपने भारतीय ज्योतिःशास्त्र के इतिहास में (पृ० ११८) कहते हैं कि "वराहमिहिर का मत है कि कलि के ६५३ वर्ष बीत जाने पर पाण्डव उत्पन्न हुए और वृद्ध गर्ग के मत के अनुसार उसने सप्तर्षिविचार की रचना की है, इससे ज्ञान पड़ता है कि वृद्ध गर्ग का भी यही मत है" पर इस विधान को वराहमिहिर के ग्रन्थों में कोई आधार नहीं मिलता। न केवल यही, बल्कि भट्टोत्पल ने अपनी टीका में वृद्ध गर्ग का जो वचन दिया है और जो आगे चल कर प्रकाशित होगा उसमें कहा गया है कि कलियुग के आरम्भ में सप्तर्षि मघा में थे। और वराहमिहिर के वचन में युधिष्ठिर के राज्य-काल में सप्तर्षि का मघा में होना बतलाया गया है। एवं वृद्ध गर्ग और वराहमिहिर—दोनों का इस विषय में कि सप्तर्षि मघा में थे मतैक्य है और वृद्ध गर्ग के मत के अनुसार उन्होंने सप्तर्षिचार लिखा है, इस कारण कलि-काल के और युधिष्ठिर-काल के विषय में इन दोनों के बीच मतभेद का होना सम्भाव्य नहीं। यदि विरोध होता तो टीकाकार भट्टोत्पल अपनी टीका में इसकी चर्चा अवश्य ही करता। अधिक क्या कहा जाय, भट्टोत्पल की टीका से यह कहना पड़ता है कि भट्टोत्पल को भी वराहमिहिर और वृद्ध गर्ग की ही तरह इन तीनों कालों का ऐक्य स्वीकार था।
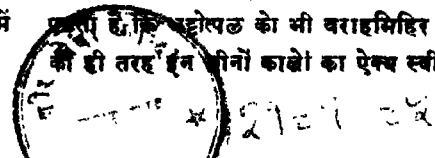
उपलब्ध होता है और जब ग्रन्थ की रचना का यह काल उपलब्ध हो जाता है तब यह आक्षेप ज़रा भी नहीं ठहर सकता कि इसमें शक-काल का सम्बन्ध किस तरह आ पहुँचा, बल्कि इस काल से हमारे पूर्वप्रतिपादन को अधिक पुष्टि मिलती है।

इस स्थान पर यह दिखला देना भी इष्ट है कि जिस तरह ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के काल-निर्णय में वराहमिहिर के इस वचन से काम लिया गया, उसी तरह वराहमिहिर के काल का निर्णय करने में भी इससे सहायता मिलती है। कै० दीक्षित के ज्योतिःशास्त्र ग्रन्थ में (पृ० २१३ की टिप्पणी) वराहमिहिर के जन्मकाल-विषयक जो वचन दिया गया है वह उन्हें रघुनाथशास्त्री टेंभूकर से प्राप्त हुआ है। पर वह वचन प्रचलित पद्धति के अनुसार वराहमिहिर का जो काल स्थिर हो चुका है उससे मेल नहीं खाता, इसलिए उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया। पर जब उसकी तुलना वराहमिहिर के मत से की जाती है तब त्याज्य नहीं पाया जाता; किस तरह, सो देखिए। टेंभूकर शास्त्री ने वह वचन 'कुतूहलमञ्जरी' से उद्धृत किया है और वह वचन यह है—

स्वस्ति श्रीनृपसूर्यसूनुजशके याते द्विवेदांबर-
(३०४२) त्रैमानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूत्
वेदाङ्गे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिभिः [षा]॥

इसमें वराहमिहिर का जन्म-वर्ष युधिष्ठिर-शक ३०४२ दिखलाया गया है। इसमें २५६६ वर्ष घटाये जाते हैं तो शक ४७६ (अथवा ई० स० ५५४) में वराहमिहिर का जन्म होना प्रकट होता है। और यह काल उस काल से ठीक मिलता है जो अन्य प्रमाणों-द्वारा स्थिर हो चुका है। वराहमिहिर का काल ईसा के ५०५ से ५८७ तक माना जाता है, परन्तु ई० स० ५०५ में उसका जन्म होना उसके ग्रन्थ के शक से, जो उसने अपने गणित के लिए ग्राह्य किया था, अनुमान से स्थिर किया गया है। इसलिए वह विश्वासयोग्य नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त कुतूहलमञ्जरी ग्रन्थ के वचन के आधार पर वराहमिहिर के मत के अनुसार उसका काल ई० स० ५५४ से ५८७ निश्चित होता है।

इससे कालिदास, वराहमिहिर, और विक्रमादित्य के काल का निर्णय करने में वराहमिहिर के मत का कैसा महत्त्व है वह ज्ञात हो जाता है।

अब ऐन्द्रयोग-विषयक दूसरे आक्षेप पर विचार करना होगा। कालिदास ने ज्योतिर्विदाभरण में यह दिखला दिया है कि यह योग कब सम्भव हो सकता है और केशवार्क तो स्पष्ट ही कहता है कि यह योग इस समय मौजूद है। केशवार्क का 'विवाहवृन्दावन' शक ११६४ अर्थात् ई० स० १२४२ में बना था। ऐन्द्रयोग के विषय में विवाहवृन्दावन के पहले अध्याय में केशवार्क का यह वचन है—

त्रिभागशेषे भुवनाग्नि चैन्द्रे
त्र्यंशे गतं सम्प्रति सम्भवोऽस्य॥
मानार्धयोगाधिकमिन्दुभान्वोः
क्रान्त्यन्तरं चेन्न तदैष दोषः॥ २४॥

कालिदास का वचन पहले ज्योतिर्विदाभरण से दिया जा चुका है। ऐन्द्रयोग-विषयक उक्त दोनों वचनों की एक दूसरे के साथ तुलना करने से यह बात तत्काल समझ में आ सकती है कि केशवार्क के वचन में शब्द हैं 'सम्प्रति सम्भवोऽस्य'। और ज्योतिर्विदाभरण में ये शब्द हैं—'भवेत्' और 'सम्भवः'। तो भी ज्योतिर्विदाभरण का काल पण्डित सुधाकर द्विवेदी सन् १२४२ ई० स्थिर करते हैं, कुछ गणितशास्त्रवेत्ताओं का मत है कि ज्योतिर्विदाभरण में ऐन्द्रयोग के बीच पड़नेवाले अपक्रम साम्य का जो उल्लेख है वह ईसा की तेरहवीं शताब्दी से सम्बन्ध बतलाता है। इसलिए विचार करने योग्य बात यह है कि यह उल्लेख, जो उन प्रमाणों से विरुद्ध है और जो इस निबन्ध में ग्रन्थ-रचना-काल के विषय में बतलाये गये हैं, इस ग्रन्थ में किस तरह आ पहुँचा। इसके अतिरिक्त इससे पहले बतलाया जा चुका है कि इस ग्रन्थ में कुछ क्षेपक श्लोक हैं। उनका भी पूर्णतया निर्णय हो जाता है। इस दशा में उन ऐतिहासिक बातों को, जो पूर्व विवेचन से ठीक ठीक मिलती हैं, इस एक आक्षेप के कारण छोड़ देना इष्ट नहीं होगा।

ऊपर ज्योतिर्विदाभरण के अन्तःप्रमाणों-द्वारा उसके काल पर विचार किया गया। अब एक बाह्य प्रमाण-

द्वारा यह दिखलाया जायगा कि उक्त ग्रन्थ उतना अर्वाचीन नहीं है जितना कुछ लोग समझते हैं।

प्राचीन ग्रन्थकारों में बादरायण नामक एक ग्रन्थकार हो गया है। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में, जो उसने वराहमिहिर के ग्रन्थ पर की है, स्थान स्थान पर इस ग्रन्थकार का उल्लेख करता है। वराहमिहिर ने भी उसको जातककार बादरायण के नाम से सम्बोधित किया है। बादरायण के द्वारा लिखा गया एक मुहूर्तदीपिका नामक ग्रन्थ है। जर्मन पण्डित आफ्रेक्ट ने संस्कृत-ग्रन्थों की सूची लिखी है, जिससे ज्ञान पड़ता है कि उक्त ग्रन्थ में कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण का उल्लेख किया गया है। एक-मात्र इस प्रमाण से ही ज्योतिर्विदाभरण की प्राचीनता भली भाँति सिद्ध होती है। न केवल यही, बल्कि बादरायण और कालिदास की समकालीनता भी सिद्ध होती है। क्योंकि ज्योतिर्विदाभरण में विक्रम की सभा के पण्डितों की जो सूची दी गई है उसमें कालिदास के साथ बादरायण का नाम भी दर्ज है। बादरायण की मुहूर्तदीपिका की हमने बहुत खोज की, पर वह उपलब्ध नहीं हुई। यदि वह ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय, तो उससे और भी कितनी ही नवीन बातें प्रकाश में आ जायँ।

इस तरह कालनिर्णायक बातों पर विचार कर काल की विसङ्गति दिखलानेवाले दोनों आक्षेपों के उत्तर दिये गये। अब तीसरे आक्षेप पर विचार करना चाहिए, जो भाषा के विषय में है।

ज्योतिर्विदाभरण, शास्त्रीय और मुहूर्त-विषयक ग्रन्थ है, इस कारण उसमें भाषा-सौष्ठव अथवा उपमादि अलङ्कारों के लिए जगह नहीं, तो भी बारीक दृष्टि से देखनेवालों को कालिदास के अन्य ग्रन्थों के साथ इसकी बहुत कुछ समानता दिखाई पड़ सकती है। ज्योतिर्विदाभरण में वही छन्द पाये जाते हैं जिन्हें कालिदास पसन्द करता था। वाक्य-रचना में भी बहुत कुछ समानता पाई जाती है। अर्थसाम्य के भी कुछ स्थल दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ दो एक श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

एको गुणो दोषगणं समेत्य
स्वाहाग्निमं स्वामतिहंतिवन्तम्।
निगूहतीवामलगव्यबिन्दु-
मूर्तिं तद्विहा बहवो गुणाः स्युः ॥८५॥
दोषैकदेशो गुणसन्निपात-
मतो वहत्यत्र न संशयोऽस्ति।
घनञ्जयांशो वनराज्यगौघ-
मिवागुणांशोऽपि विवर्जनीयः ॥८६॥
ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय ४।

उपर्युक्त दो श्लोकों में कालिदास के कुमारसम्भव सर्ग १ के तीसरे श्लोक की प्रति-ध्वनि मौजूद है। कुमारसम्भव का उक्त श्लोक यह है—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ ३ ॥

(२) ग्यारहवें अध्याय में ऋतु-वर्णन दिया गया है, उसके श्लोक ऋतुसंहार के श्लोक जैसे हैं।

रघुवंश के नवम सर्ग में अनुप्रासालङ्कार की बड़ी बहार देख पड़ती है, ठीक वैसी ही इस ग्रन्थ के ग्यारहवें और बारहवें अध्याय में दिखाई पड़ती है। मज़ा यह है कि छन्द भी कालिदास का द्रुतविलम्बित ही लिया गया है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

वृणु वरं नृवरं वयसस्तु ते
द्विगुणवर्षवयोऽनधिकं ततः।
दशतमार्धमप्यनुमध्यमं
तदधिकं हि जहीहि वराधमम् ॥ ५ ॥
विभुभवार्थ्यं भवानुचराङ्गजाऽ-
परिचिता त्वयजा किल याऽबला।
पतिततन्त्रवती कुलये दया
त्वनवरा न वराय वरस्य सा ॥ ६ ॥
अध्याय १२ विवाहप्रकरणम्
मति सखाश्रिततुङ्गपदोऽङ्गगो
गवि (२) कविन्दुविदो मिहिरोऽत्र (१) गः।
यदि गमी लभते परसम्पदं
नरवरोरवरोधितशात्रवः ॥७२॥

अयि, कुळीर (४) तुला (७) त्रितुमान्वि (३) चेद्वि-
ग्रुपुतानि समन्द मृगो (१०) दृये।
श्रय गतैव गतस्व सुरिन्दिरा
क्षितिभुजोऽसिभुजोत्कटतावतः॥ ७१॥
अ० ११ त्रि० वा०

अब रह गया अन्तिम विक्रम-प्रशस्ति का विचार। यह सच है कि उसकी भाषा जितनी ज़ोरदार चाहिए उतनी नहीं है। तो भी यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि महाकवि के सभी ग्रन्थों में भाषा-सौष्ठव एक सा नहीं होता। उदाहरणार्थ ऋतु-संहार और मालविकाग्निमित्र को लीजिए। ये दोनों ग्रन्थ कालिदास-रचित हैं। ये ग्रन्थ ऐसे कम योग्यता के समझे जाते हैं कि विचक्षण पण्डित-गण उनके कालिदास-कृत होने में सन्देह करने लगे हैं। अन्य कवियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह कोई नियम नहीं है कि कवियों के ग्रन्थों में भाषा की समानता अवश्य ही हो। अँगरेज़-कवि मिल्टन के दो महा-काव्य प्रसिद्ध हैं, पहला 'पैरेडाइज़ लास्ट' और दूसरा 'पैरेडाइज़ रीगेन्ड'। स्वयं कविवर अपने दूसरे काव्य को बहुत पसन्द करता था, पर पण्डित-समाज में उसके पहले काव्य का जितना आदर हुआ दूसरे का उतना नहीं। अँगरेज़ी काव्यों में उसे वह सम्मान मिला जो अब तक उसी को प्राप्त है। हमारा कहना सिर्फ़ यही है कि ज्योतिर्विदाभरण कालिदास का हो या न हो, विक्रमा-दित्य के विषय में जो ऐसे पुराने ऐतिह्य उसमें मौजूद हैं, जो अन्य प्रमाणों के अविरुद्ध हैं, उन्हें हम क्यों फेंक दें?

चौथा आक्षेप क्षेपक का है। अब इस बात का विचार किया जाता है कि ग्रन्थ में क्षेपक श्लोक कौन कौन हो सकते हैं तब यह जान पड़ता है कि दसवें राजसखाध्याय में—शककर्ता के सम्बन्ध में १०७ से ११३ तक जो सात श्लोक हैं वही प्रक्षिप्त श्लोक हो सकते हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध पूर्वापर विषयों से नहीं मिलता। और ग्रन्थ के कर्ता ने अन्त में जो उपसंहार किया है उसके विषयानुक्रम में भी इनका उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है कि ये श्लोक किसी दूसरे ग्रन्थ से उद्धृत कर पीछे से इसमें मिला दिये गये हैं। कालिदास वराहमिहिर का अनुयायी है और वराहमिहिर की बृहत्संहिता में शककर्ताओं का उल्लेख नहीं पाया जाता। उसने इस ग्रन्थ में इतने विषयों को समाविष्ट किया है कि बहुतेरे आधुनिक पण्डित इसे विश्वकोष Encyclopædia कहते हैं। यदि उसको यह विषय स्वीकार होता तो कदापि वह इसे न छोड़ता। इससे अधिक इस स्थान पर लिखना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

इस ग्रन्थ के विषय में जो आक्षेप किये जाते हैं उनका अब तक विचार किया गया। अब विक्रम की प्रशस्ति पर विचार करना चाहिए, जो बाईसवें अध्याय में दी गई है।

यह प्रशस्ति श्लोक ७ से लेकर २१ तक पन्द्रह श्लोकों में दी गई है। इन पन्द्रह श्लोकों का ब्योरा नीचे दिया जाता है—

सातवां श्लोक—जो श्रुति-स्मृति विचार के द्वारा रमणीय हो रहे हैं उन १८० मण्डलों की इस भरतभूमि में मालवेन्द्र श्रीविक्रमार्क नृपवरराज्य कर रहा है, इसी समय मैंने इस ग्रन्थ की रचना की।

आठवां श्लोक—इस—विक्रमादित्य—की सभा में शङ्कु, सुवाक् वररुचि, मणि, अङ्गदत्त, (अंशुदत्त), जिष्णु, त्रिलोचन, हरि, घटखर्पर और अमरसिंह और इन्हीं के जैसे अन्य सभासद् मौजूद हैं।

नवां श्लोक—सत्याचार्य, वराहमिहिर, श्रुतसेन, बादरायण, मणित्थ, कुमारसिंह आदि मुख्य जैसे उसकी सभा में कालतन्त्र कवि अर्थात् ज्योतिषी हैं।

दसवां श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकाऽमरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इस श्लोक में विक्रम की सभा के सुप्रसिद्ध नव-रत्नों की परिगणना की गई है।

ग्यारहवां श्लोक—विक्रमादित्य के दरबार में आठ सौ उमराव हैं और उसकी सेना में एक करोड़ वीर हैं। उसकी सभा में १६ पण्डित, १६ ज्योतिषी, १६ वैद्य, १६ भट, १६ डाढ़ी (गायनवादनपुर) और १६ वैदिक रहा करते थे।

बारहवाँ और तेरहवाँ श्लोक—इनमें उसकी सेना की तफ़सील बतलाई गई है। इनमें बहुतेरी अत्युक्तियाँ पाई जाती हैं। तेरहवें श्लोक में इस बात का वर्णन है कि विक्रमादित्य ने शक-शत्रुओं को युद्ध में जीत कर कलियुग में अपना शक जारी किया और उदारतापूर्वक बहुतेरे दान देकर सनातन-धर्म को उत्तेजना दी।

चौदहवाँ श्लोक—इसमें अपनी विजय-यात्रा में द्रविड़, लाट, बङ्ग, गौड़, गुर्जर, धारा और काम्बोज देशों पर विक्रमादित्य ने अधिकार जमाया। इसमें लगभग समूचा भरत-खण्ड समाविष्ट है।

पन्द्रहवाँ श्लोक—विक्रमादित्य ने बहुतेरे पहाड़ी क़िलों को जीता। फिर वे क़िले उनके मालिकों को दे दिये। उसने दुष्टों को दण्ड दिया।

सोलहवाँ श्लोक—उसकी राजधानी महापुरी उज्जयिनी है और वह श्री महाकालेश्वर के सान्निध्य के कारण समूचे नगर-वासियों के लिए मोक्ष प्राप्त करा देनेवाली है।

सत्रहवाँ श्लोक—विक्रमादित्य ने रूम देशाधिपति शक राजा को महायुद्ध में परास्त किया और उसे वह गिरफ़्तार करके उज्जयिनी ले आया। फिर उसको सब ओर घुमा कर छोड़ दिया।

यह बात स्मरण रखने योग्य है कि विंसेंट स्मिथ के प्राचीन इतिहास में मिहिर-कुल के विषय में निम्न-लिखित वर्णन दिया गया है, जो इस स्थान पर ठीक ठीक मिलता है।

"........About the year A. D. 528, they (Yashodharmadeo and Baladitya) accomplished the delivery of their country from oppression by inflicting a decisive defeat on Mihiraqula who was taken prisoner and would have forfeited his life deservedly, but for the magnanimity of Baladitya who spared the captive, and sent him to his home in the north with all honour."

'*Early History of India, by Vincent A. Smith. 3rd Edition, page 318.*

विक्रमादित्य के विषय में जो प्रमाण पहले दिये गये हैं उनमें कहा गया है कि यशोधर्मदेव ही विक्रमादित्य होना चाहिए। उस विधान को पूर्वोक्त दो भिन्न भिन्न ग्रन्थों के समान वर्णनों से पुष्टि मिलती है।

अठारहवाँ श्लोक—वह (विक्रमादित्य) अवन्तिका नगरी में विराजमान है, जहाँ सब प्रजा सुख-सम्पत्ति का उपभोग कर रही है और चारों ओर वेदकर्म बराबर जारी हैं।

उन्नीसवाँ श्लोक—श्रीविक्रमादित्य की सभा में पूर्वोल्लिखित शङ्क्वादि पण्डितवर कवि और वराहमिहिर आदि ज्योतिर्विद् थे। उनमें एक मैं—मान्य बुद्धि राजा का प्रियमित्र—कालिदास—भी था।

बीसवाँ श्लोक—कालिदास ने रघुवंश से पहले तीन काव्यों की रचना की। इसके पश्चात् 'श्रुतिकर्मवाद' नामक ग्रन्थ और अब इस ज्योतिर्विदाभरण नामक काल-विधान शास्त्र की रचना की।

इक्कीसवाँ श्लोक—कलि के तीन हज़ार अड़सठवें वर्ष के वैशाख मास में इस ग्रन्थ का आरम्भ और कार्तिक में समाप्त किया गया।

इस प्रशस्ति के अतिरिक्त भी इस ग्रन्थ में विक्रमादित्य के विषय में कुछ श्लोक पाये जाते हैं। उनका तात्पर्य इस प्रकार है—

अ० ४ श्लो० ९३ में यह भविष्य बतलाया गया है कि विक्रम के १०३ वें वर्ष में क्षयमास होगा।

अ० ४ श्लो० ८६—दान की धारा अखण्ड जारी रखने के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो विक्रमादित्य प्रत्येक घटिका को पर्वकाल समझता था।

अ० १५ श्लो० ४६—पृथ्वी के कितने ही दुर्ग, जिनका जीतना अशक्य था, जिनमें बड़ी बड़ी शालायें हैं, जिनमें विपुल अन्न-सामग्री मौजूद है, जो शूर सैनिकों-द्वारा रक्षित हैं, जो मालिक के प्रताप से चमक रहे हैं, उन्हें श्रीविक्रमादित्य ने जीत लिये और जब दुर्ग के अधिपतियों ने उनका माण्डलिकत्व स्वीकार कर लिया तब उन्होंने उनका प्रतिपालन किया।

अ० १८ श्लो० ४१—शकों का संहार करके श्रीविक्रमादित्य ने कितने ही देवालय बनवाये और उनमें देवताओं की स्थापना की। उस पृथ्वीपति का जय जयकार हो।

अ० २० श्लो० ४६—श्रीविक्रमादित्य ने अपनी प्रजा के साथ वर्णाश्रमधर्म के अनुसार व्यवहार किया और तद्द्वारा उसने उज्ज्वल यश सम्पादन किया, जो अब तक काम्बोज, गौड़, आन्ध्र, मालव, सौराष्ट्र, गुर्जर आदि देशों में गाया जाता है।

ज्योतिर्विदाभरण में कितने ही दोष क्यों न हों, अन्य इतिहास के अभाव में उसकी यह प्रशस्ति और उपर्युक्त अन्य श्लोक विचार करने योग्य हैं। यह ऊपर दिखलाया जा चुका है कि यह ग्रन्थ प्राचीन है अर्थात् ईसा की छठी शताब्दी में लिखा गया है।

अब तक कालिदास और विक्रमादित्य के काल-निर्णय की दिशा दिखलाई गई। अब यह विषय समाप्त किया जायगा। इसकी समाप्ति के पहले संक्षेप में यह लिखा जायगा कि उस काल में भरतखण्ड में विद्या, कला, धर्म, आदि की कैसी सर्वाङ्ग-पूर्ण उन्नति हुई थी।

संस्कृत-विद्या की दृष्टि से ईसा की पाँचवीं, छठी और सातवीं शताब्दियाँ वैभव-पूर्ण थीं। गुप्तों ने उज्जयिनी के शकों को परास्त किया। तब आर्य विद्या-कल्पतरु का बीजारोपण हुआ। पाँचवीं शताब्दी में उसका पेड़ उगा और छठी शताब्दी में वह फूला-फला। छठी शताब्दी भरतखण्ड के मध्यकालीन इतिहास में सब बातों में अत्यन्त वैभवशाली रही। इस काल में विक्रमादित्य जैसे वीररत्न उत्पन्न हुए, उन्होंने देश में अपना पराक्रम दिखलाया, विदेशी शक, यवन, हूण आदि राजाओं के उपद्रवों से देश को मुक्त किया। चारों ओर नवीन सात्त्विक स्फूर्ति का उदय हुआ, सद्धर्म की चर्चा शुरू हुई, बौद्धादि पाखण्डियों का पैर पीछे हटा, सनातन-सदाचार का उत्कर्ष हुआ और भिन्न भिन्न शास्त्रों पर नवीन ग्रन्थों की रचना हुई। रमेशचन्द्र दत्त का मत है कि महाराष्ट्री भाषा के साहित्य का उदय भी इसी काल में हुआ। जब महाराष्ट्री भाषा का उदय हुआ तभी वररुचि को उस भाषा के लिए व्याकरण बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी काल में कविजनों की प्रतिभा-शक्ति को, उत्तेजना मिली। इससे कितने ही काव्य, नाटक, कथायें और आख्यायिकायें लिखी गईं, कला-कौशल को भी उत्तेजना मिली। देश भर में सुन्दर देवालय, राजमन्दिर, पाठशालायें आदि बनवाई गईं। यही अवस्था सातवीं शताब्दी में कन्नौज के हर्षवर्धन के समय में भी बनी रही। इस वैभव-काल में जो कविरत्न उत्पन्न हुए, उनका एक दूसरे के साथ जो सम्बन्ध रहा और एक दूसरे पर जो संस्कार पड़े वे उनके काव्यों से स्पष्ट ज्ञात हो रहे हैं। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में जिस भास, सौमिल्ल और कवि-पुत्र तथा मृच्छकटिक नाटक के कर्ता—शूद्रक—का उल्लेख किया है, जान पड़ता है, वे भी इसी काल में उत्पन्न हुए। यह स्पष्ट है कि कालिदास और शूद्रक पर भास का संस्कार पड़ा था। इसी तरह कालिदास का संस्कार श्रीहर्ष और भवभूति पर पड़ा था और भर्तृहरि का सुबन्धु पर और सुबन्धु का बाण पर। इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं। भर्तृहरि के शृङ्गार-शतक में यह वर्णन है—

> गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
> शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा॥

सुबन्धु ने इस पद्य को अपनी गद्य वासवदत्ता में लगभग ज्यों का त्यों रख दिया है और उसका विस्तार इस तरह किया है—

नायिकावर्णन—

'—भास्वतालङ्कारेण, चन्द्रेण वदनमण्डलेन, लोहितेनाधरपल्लवेन, सौम्येन दर्शनेन, गुरुणा नितम्बबिम्बेन, विकचेन नेत्रकमलेन, शनैश्चरेण पादेन, तमसा केशपाशेन ग्रहमयीमिव कन्यकां द्वादशवर्षदेशीयामपश्यत् स्वप्ने'।

इसी तरह सुबन्धु ने अन्य एक कवि के श्लोक से* 'कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलम्' यह समूचा चरण ही काम में ले लिया।

(कर्पकेतु-विक्रम-वर्णन)

—यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं तेन चाननुभूतपूर्वो नायको नायकेन कीर्तिः × × इत्यादि।

* वह श्लोक, जिससे यह चरण लिया गया, यह है—

> सङ्ग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते
> देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम्।
> कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलम्
> तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम्॥

पण्डितों का मत है कि हर्ष की रत्नावली तो बहुत अंशों में मालविकाग्निमित्र का रूपान्तर ही है और बाणभट्ट की कादम्बरी सुबन्धु की रचना का संस्कृत संस्करण है। सातवाहन कुल के हाल नृपति की गाथासप्तशती—जान पड़ता है—उसी काल में लिखी गई जब ऊपर लिखे अनुसार साहित्य की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही थी। उसमें विक्रमादित्य का जो उल्लेख है वह भी इसी कालवाले विक्रमादित्य के विषय में होना चाहिए। इसी समय महाराष्ट्री भाषा में और भी एक रस-पूर्ण ग्रन्थ निर्माण हुआ, जिसका नाम सेतुबन्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि यह ग्रन्थ प्रवरसेन का है, कुछ कहते हैं कि कालिदास का है। बाणभट्ट इस काव्य की प्रशंसा करता है। इसके थोड़े ही काल पीछे, जिस तरह भवभूति ने कालिदास का अनुकरण कर तीन नाटक निर्माण किये, ठीक उसी तरह उसके शिष्य और मित्र वाक्पति ने गौडवहो नाम का एक काव्य महाराष्ट्र-भाषा में रचा। संस्कृत-भाषा में कितने ही बहुमान्य गद्य-ग्रन्थ लिखे गये सो भी इसी समय में। बाण-भट्ट भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य-प्रबन्ध की बहुत प्रशंसा करता है।

इस प्रकार विचारसरिणी और भाषासरिणी में सुधार होता चला गया। दण्डी जैसे सहृदय विवेचकों के द्वारा काव्यादर्श जैसे गुण-दोष-दर्शक साहित्य-ग्रन्थ लिखे गये, जिनसे कुकवियों की उड़ान की रोक हुई, अभिरुचि का सुधार हुआ तथा रसिकता की वृद्धि हुई।

इस उन्नति का प्रभाव बौद्ध और जैन-साहित्य पर भी पड़ा। इन पन्थों में भी कितने ही बहुमान्य ग्रन्थकार उत्पन्न हुए। इन्होंने भी प्राकृत के स्थान पर संस्कृत में ग्रन्थ-रचना करना आरम्भ किया।

संस्कृत और महाराष्ट्र-भाषा—दोनों भाषाओं के विषय में यह कहना चाहिए कि इस काल का पुनरागम आगे चल कर लगभग ४०० वर्ष पीछे परमारवंशी राजा भोज के समय में हुआ। इसके पश्चात् मालूम नहीं होता कि संस्कृत-भाषा के लिए ऐसा वैभव-पूर्ण काल कभी नसीब हुआ हो। महाराष्ट्र-भाषा आदि प्राकृत भाषायें इसके पश्चात् आगे बढ़ीं। इससे आगे की मराठी का इतिहास वही है जो वर्तमान मराठी का है।

इस वर्णन में कुछ विषयान्तर हो गया है। पर यह दिग्दर्शन केवल इसी उद्देश से किया गया जिससे यह जाना जा सके कि विक्रम-कालीन साहित्य की गति हम तक किस तरह आ पहुँची।

अस्तु। इस निबन्ध में इस बात की सावधानी रक्खी गई है कि निराधार विधान न किये जायँ और काल-निर्णय के विषय में कल्पनाओं की उड़ानें न मारी जायँ। यह हम जानते हैं कि इसमें बहुत दोष और त्रुटियाँ रह गई हैं। अन्त में यही प्रार्थना है कि इस निबन्ध में यदि कोई ग्राह्य अंश हो तो उसका स्वीकार किया जाय। हमने इसी कहावत पर ध्यान दिया है 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'।

कालिदास और विक्रमादित्य के काल का निर्णय न होने के कारण इतिहास में खींचा-तानी का प्रवेश हो गया है। हमारी अल्प बुद्धि को यह जान पड़ता है कि हमने जो निर्णय ऊपर प्रदर्शित किया है उसकी जाँच होकर यदि वह मान्य हो जाय तो बहुत कुछ वाद-विवाद बन्द हो जाय और अगले तथा पिछले इतिहास की सङ्गति जुट जाय। इसको जुटा कर दिखला देने में बहुत विस्तार होगा और इस कार्य के करने में हम असमर्थ भी हैं। यह बात अच्छी तरह जान कर ही हम इस महत्त्वपूर्ण कार्य को उन पण्डितों पर सौंपते हैं जो हमारी अपेक्षा अधिक अध्ययन किये हुए हैं। अब यह लेख जो बहुत लम्बा हो गया है समाप्त किया जाता है।

उपर्युक्त लेख 'विविध-ज्ञान-विस्तार' में प्रकाशनार्थ भेज दिया गया था। पीछे ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के विषय में और भी कुछ विचार करने योग्य बातें पाई गईं, वे यहाँ परिशिष्ट के स्वरूप में दी जाती हैं।

[परिशिष्ट १]

यह बात उपर्युक्त लेख में दिखलाई जा चुकी है कि ज्योतिर्विदाभरण न तो ईसा से पहले का है न सुधाकर द्विवेदी के मत के अनुसार वह ईसा की तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया, बल्कि वह ईसा की छठी शताब्दी में रचा गया है। इसी बात को पुष्टि देनेवाले दो-एक प्रमाण और भी मिले हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—

१—ज्योतिर्विदाभरण के कर्ता ने अपने पहले के कितने ही आर्ष और मानुष ग्रन्थकारों का और उनके मतों का

स्थान स्थान पर निर्देश किया है। जब इन पर विचार किया जाता है तब जान पड़ता है कि उक्त ग्रन्थ का ईसा की छठी शताब्दी के पश्चात् रचा जाना सम्भाव्य नहीं है। यदि वह, जैसा कि पण्डित सुधाकर द्विवेदी का मत है, ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रचा गया होता तो यह स्वाभाविक बात है कि छठी शताब्दी से लेकर उस तक अर्थात् बारहवीं शताब्दी तक के ग्रन्थकारों का भी उल्लेख उसमें अवश्य होता। विचार करने योग्य बात यही है कि ईसा की छठी शताब्दी के पीछे के किसी भी ग्रन्थकार का उसमें उल्लेख नहीं है। न केवल यही, बल्कि ब्रह्मगुप्त, लल्ला आदि जैसे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-कर्त्ताओं का भी उसमें उल्लेख नहीं है, यद्यपि छठी शताब्दी के पश्चात् शीघ्र ही वे उत्पन्न हुए हैं। वराह-मिहिर, सत्याचार्य्य आदि ग्रन्थकारों का उल्लेख अलबत्ता बहुतायत से किया गया है, यद्यपि ये ग्रन्थकार ईसा की छठी शताब्दी में और इससे भी पहले हुए हैं। इसलिए यह जान पड़ता है कि ज्योतिर्विदाभरण अवश्य ही ईसा की छठी शताब्दी में लिखा गया।

२—इस ग्रन्थ में स्कन्द और सूर्य आदि देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए मुहूर्त दिये गये हैं (अध्याय १७ श्लोक ३३-३४)। आज-कल इन देवताओं की उपासना का रवाज नहीं सा है। प्राचीन काल में स्कन्दपूजा और सूर्य-पूजा का प्रचार था। आठवीं शताब्दी में श्रीमच्छङ्कराचार्य ने पञ्चायतन पूजा की पद्धति जारी करके भिन्न भिन्न पन्थों की एकता कराई। जान पड़ता है कि तभी से शनैः शनैः स्कन्दादि देवताओं की मूर्तियों की स्थापना करने और उनके लिए देवालय बाँधने का रवाज नष्ट होता चला गया। एवं यह स्पष्ट है कि जिस काल में स्कन्दादि देवताओं की पूजा और प्रतिष्ठा का रवाज था उसी काल में इस ग्रन्थ की रचना हुई। ईसा की छठी शताब्दी में इन देवताओं की पूजा का रवाज था और इस ग्रन्थ में उस शताब्दी के ग्रन्थकारों का उल्लेख है। इसलिए यह अवश्य है कि यह ग्रन्थ भी उसी काल—ईसा की छठी शताब्दी—में लिखा गया हो। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रचलित संवत् के आरम्भ में लिखा गया है या जैसा कि पण्डित सुधाकर द्विवेदी का कथन है, ईसा की तेरहवीं शताब्दी में।

[परिशिष्ट २]

पूर्व लेख में ज्योतिर्विदाभरण के कुछ ऐसे स्थल दिखलाये गये हैं जिनमें कालिदास के रघुवंश आदि ग्रन्थों के विचारों और भाषा से साम्यता प्रदर्शित होती है। यह ग्रन्थ ज्योतिष-विषयक है, अतएव तद्विषयक जो साम्य पाया गया है वह इस स्थान पर बतलाया जाता है—

१—रघुवंश सर्ग ३ श्लो० १३—

> ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयै-
>
> रसूर्यगैस्सूचितभाग्यसम्पदम् ॥

जो योग इसमें दिया गया है वह ज्योतिर्विदाभरण के अध्याय १० श्लो० २१ में भी ज्यों का त्यों दिया गया है। इन दोनों स्थलों के बीच शब्द-साम्य है और अर्थ भी विचारणीय है। उक्त श्लोक यह है—

> अहेलिभिः पञ्चभिरुच्चगैर्ग्रहै-
>
> र्नरो भवेन्नीचकुलेऽपि पार्थिवः ॥
>
> तस्याभिषेको अमितोऽधिकैस्त-
>
> स्तज्जातकर्मैव न चात्र विभ्रमः ॥

हेलि सूर्य का नाम है। ऐसे अप्रसिद्ध शब्द ज्योतिर्विदाभरण में प्रचुरता से मौजूद हैं, पर काव्य-ग्रन्थों में उन्हें कालिदास ने जानबूझ कर टाल दिया।

२—कुमारसम्भव सर्ग ३ श्लो० ४३—

> दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य
>
> कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे ॥

इसमें प्रमाण के लिए सम्मुख शुक्र का निषेध बतलाया गया है। वही बात ज्योतिर्विदाभरण अध्याय ११ श्लोक ४० में कही गई है। श्लोक का वह अंश यह है—

> बृहतीह मिते समेगमे न समीयात् प्रतिशुक्र-
>
> मङ्गभृत् ॥

३—रघुवंश सर्ग ४ श्लो० २१ और २४ में अगस्त्योदय और शरद्-ऋतु का ऐक्य बतलाया गया है। ज्योतिर्विदाभरण अध्याय २१ श्लो० ५०, ५१ और ५२ में भी यह दिखलाया गया है कि दोनों बातें बहुधा एक समय में अथवा थोड़े ही दिनों के अन्तर में होती हैं।

४—मेघदूत के "आषाढस्य प्रथमदिवसे०" और

"शापान्तो मे भुजगशयनात्०" आदि श्लोकों से यह पहले दिखलाया जा चुका है कि कालिदास के समय आषाढ़ शुद्ध में वर्षा-ऋतु का आरम्भ होता था। और ज्योतिर्विदाभरण के अध्याय २१ श्लोक २०, २१ और २२ में भाद्रपद शुक्ल में शरदृतु का सम्भव प्रदर्शित किया गया है। मेघदूत की विचारसरिणी से भी भाद्रपद शुद्ध में शरद्-ऋतु का आगम होता है। अतएव इन दोनों ग्रन्थों के विचारों की साम्यता सिद्ध होती है।

५—मेघदूत के "आषाढस्य प्रथमदिवसे" के श्लोक से यह सिद्ध होता है कि कालिदास अमान्त मास को मानता था और ज्योतिर्विदाभरण में भी जहाँ तहाँ अमान्त मास ही लिया गया है, यह बात भी स्मरण में रखने योग्य है। देखिए अध्याय १२ श्लो० ७३; अ० ४ श्लो० ५१; अ० २१ श्लो० २४ आदि।

६—कुमारसम्भव में (सर्ग ७ श्लो० १) जामित्र गुण का उल्लेख है और ज्योतिर्विदाभरण में भी (विवाह-प्रकरण) सप्तमभाव के (जामित्र के) गुण (अध्याय १३ श्लो० ४७, ४८) और दोष (अ० १२ श्लो० ४२, ४३ और अ० १३ श्लो० २६, २७, ३६, ३७ आदि) का विस्तृत विवेचन किया गया है। खास 'जामित्र' शब्द नहीं दिया गया है, पर उसके स्थान पर भिन्न भिन्न पर्याय की योजना की गई है।

७—यह बात प्रसिद्ध है कि कालिदास का ऋतु-वर्णन पर बहुत प्रेम था। उसके प्रत्येक काव्य में ऋतु-वर्णन अवश्य ही है। ज्योतिर्विदाभरण यद्यपि शास्त्रीय ग्रन्थ है, पर उसमें भी यह विषय छोड़ा नहीं गया, उसमें भी प्रसङ्ग-वश किसी अंश में वह अवश्य ही दिखला दिया गया है।

कालिदास ने अपना फलज्योतिर्विषयक मत दृष्टान्त के लिए अपने काव्यों में जहाँ तहाँ प्रदर्शित किया है। वही उसके इस विषय के ग्रन्थ में मिलना स्वाभाविक ही है। और वह उसमें मिल भी रहा है, यह बात मनन करने योग्य है*।

---

* यह निबन्ध 'भारत-इतिहास-संशोधन-समिति' को उसके नवम सम्मेलन के अवसर पर (वैशाख शक १८४३) भेट किया गया था और इसका बहुतेरा अंश सम्मेलन के अधिवेशन में पढ़ा भी गया था। परन्तु यह विषय महत्त्व-पूर्ण और विवादग्रस्त है, इस कारण यह इच्छा हुई कि और भी कुछ विद्वान् मित्रों को दिखला देना चाहिए। तद्नुसार उक्त समिति से निबन्ध मँगवाया गया और वह श्रीयुत चिन्तामण रावजी वैद्य, प्रो० गो० स० आपटे प्रभृति सज्जनों को दिखलाया गया। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय खर्च कर निबन्ध का अवलोकन किया और कुछ उचित सूचनायें दीं और कुछ आक्षेप भी किये, जिनके लिए हम उनके बहुत उपकृत हैं। उनकी सूचनाओं के अनुसार निबन्ध में आवश्यक सुधार कर दिया गया और यथामति आक्षेपों के निवारण का प्रयत्न भी किया गया। निबन्ध के प्रकाशन में अधिक समय लग जाने का यह भी एक प्रधान कारण है।

॥ इति ॥

Printed by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

ॐ
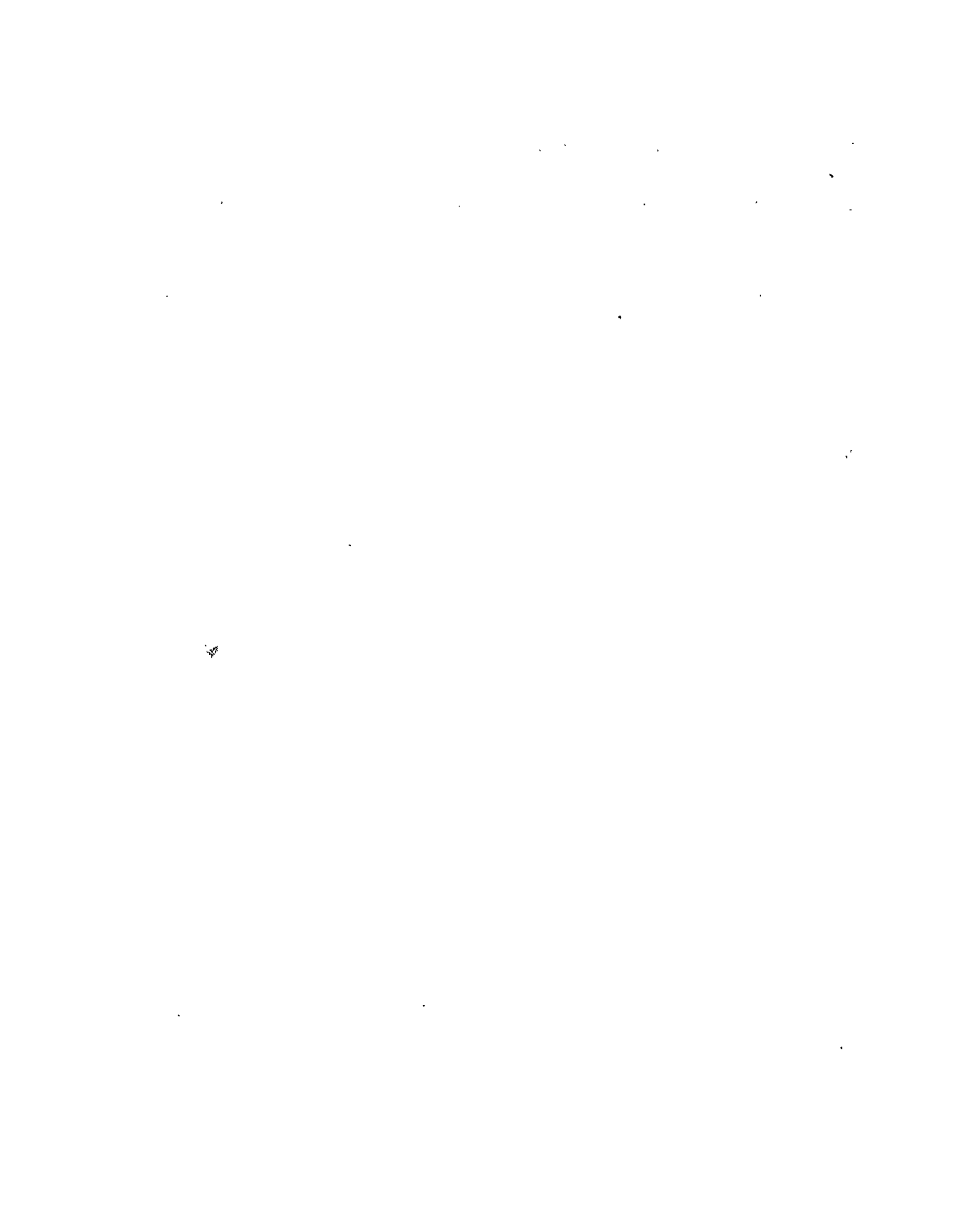
GITA-LIST.

मूल्य आठ आना

।।)

गीता-पुस्तकालय,

कलकत्ता

ॐ

गीता-सूची

A List of Printed and Manuscript books of Gita-Literature.

(Collected from the Universal Gitaic-Literature.)

PUBLISHED BY

Gita-Library,

30 Banstolla Gali,

Calcutta.

प्रकाशक—
गीता-पुस्तकालय,
३० बाँसतल्लागली, कलकत्ता

मुद्रक—
गीता-प्रेस, गोरखपुर

प्रथम संस्करण १०००
सं० १९८७

Ed. 1--1930

पता—१ गीताप्रेस,
गोरखपुर
२ गीतापुस्तकालय,
३० बाँसतल्लागली
कलकत्ता

श्रीहरिः

निवेदन

संसारके साहित्यमें आज श्रीमद्भगवद्गीता ही एक ऐसा सार्वभौम धर्मग्रन्थ है जिसको सब धर्मोंके लोग मानते हैं। गीता ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो सभी देश, सभी वर्ण, सभी जाति, सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय, सभी श्रेणी और सभी स्थितिके स्त्री-पुरुषोंको उन उनके अधिकारके अनुसार सरल सुखसाध्य सुन्दर मार्ग बनाकर इसलोक और परलोकमें परम कल्याण कर सकता है। प्रचारके खयालसे आज जगत्में बाइबलका प्रचार सबसे अधिक है। दुनियाकी सैकड़ों बोलियोंमें उसका भाषान्तर, रूपान्तर और सार छप चुका है। उसको देखते गीताका प्रचार बहुत ही कम है। तथापि गीताप्रचारका महत्त्व बहुत अधिक है। यद्यपि बाइबल अच्छी पुस्तक है पर बाइबलका अनुवाद और उसका प्रचार सर्वमान्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके नाते नहीं हो रहा है। शासनशक्ति और रुपयेके बलपर ही यह कार्य होता है। बाइबलके अनुवाद प्रायः ईसाइयों-द्वारा ही हुए हैं या धन देकर भिन्न-भिन्न बोलियोंमें दूसरोंसे करवाये गये हैं। प्रचारके लिये भी स्थान-स्थानपर प्रधानतः धनके बलपर ही अनेक संस्थाएँ काम कर रही हैं। परन्तु गीताके लिये ऐसी बात नहीं है। गीतापर जो कुछ लिखा गया है उसका कारण उसके अन्दर छिपा हुआ महान् तत्त्व है। इससे लोगोंने श्रद्धा और भक्तिपूर्वक ही उसपर कलम उठायी है। केवल हिन्दुओंने ही नहीं, जगत्की भिन्न-भिन्न जातियोंके बड़े-बड़े विद्वानोंने लिखा है। धनसे, लोभसे नहीं, गीताकी महत्ताके सामने सर झुकाकर। इस प्रस्तुत गीतासूचीसे इसका कुछ अनुभव पाठकोंको होगा। गीतासम्बन्धी ग्रन्थोंके संग्रह और उसकी सूची-प्रकाशनका यह कार्य बड़ा ही पवित्र है, बड़े-बड़े विद्वानोंने इसके लिये हर्ष और सन्तोष प्रकट किया है। गीतापर किस भाषामें कितना साहित्य है इसकी जानकारी भी इस सूचीसे सहज ही हो सकती है। अवश्य ही यह सूची अभी अधूरी है और आगे चलकर भी अधूरी ही रहेगी, क्योंकि गीतासम्बन्धी नयी-नयी पुस्तकें नित्य निकलती ही जा रही हैं। यह सारा कार्य गीतापुस्तकालयके मन्त्री भाई रामनरसिंहजीकी लगन और उनके परिश्रमका फल है। यदि गीतासम्बन्धी साहित्यके प्रकाशक महोदय अपनी-अपनी नयी पुस्तकें प्रकाशित होते ही एक प्रति पुस्तकालयमें भेज दें तो श्रीरामनरसिंहजीके कार्यमें बड़ी सुविधा हो सकती है। आशा है गीताप्रकाशक महोदय इस अनुरोधपर कुछ-न-कुछ ध्यान अवश्य देकर इस पवित्र पुण्यकार्यमें सहायता करेंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

'कल्याण'—सम्पादक

विषय-सूची

† परिशिष्ट-प्रकरणमें केवल उसी गीता-साहित्यकी सूची रक्खी गई है, जो अभी तक गीता पुस्तकालयकी संगृहीत सूचीमें नहीं आयी है।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता-सूची

[श्रीमद्भगवद्गीतापर संसारकी भिन्न भिन्न भाषाओंमें बहुत कुछ लिखा गया है और लिखा जा रहा है, इसपर सैकड़ों टीकाएं लिखी गयी हैं और हजारों संस्करण प्रकाशित हुए हैं। गतवर्ष कलकत्तेमें गोविन्दभवनके गीता-जयन्ती-उत्सवपर एक 'गीता-प्रदर्शनी' की गयी थी, जिसमें भिन्न भिन्न भाषाओंकी गीताएं आयी थीं। वहीं एक गीतापुस्तकालय स्थापित किया गया है, जिसमें गीताओंका संग्रह हो रहा है, अबतक जितनी पुस्तकें संग्रहीत हुई हैं, उनमेंसे अधिकांशकी सूची निम्नलिखित है। शेष पुस्तकोंकी सूची, कल्याणमें क्रमशः प्रकाशित होती रहेगी। इस सूचीसे जनताको बहुत लाभ होनेकी आशा है, गीतासम्बन्धी साहित्यका बहुत कुछ परिचय इससे मिल सकेगा। हमारे पास इस सूचीके लिये कई जगहसे मांगें भी आ चुकी हैं। यह सूची हमें श्रीयुत रामनरसिंहजी हरलालका, मन्त्री गीता-जयन्ती-उत्सव तथा गीतापुस्तकालयकी कृपासे प्राप्त हुई है, इसके लिये उन्हें अनेक साधुवाद। —सम्पादक]

सांकेतिक चिह्न

(१) भ० = भगवद् (२) टी० = टीकाकार (३) स० = सम्पादक (४) ले० = लेखक (५) अ० = अनुवादक (६) प्र० = प्रकाशक (७) मु० = मुद्रक (८) पृ० = पृष्ठ-संख्या (९) वि० = विक्रम संवत् (१०) ई० = ईसवी सन् (११) बं = बंगाब्द (१२) सं० = संस्करण (१३) मू० = मूल्य (१४) खं० = खण्ड (१५) गु० = गुटका (१६) ❀ = अप्राप्य

१-लिपि-देवनागरी — १ भाषा-संस्कृत

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१	१	श्रीमद्भगवद्गीता (टीका १५, खण्ड ४) टीकाकार १ स्वा० शंकराचार्य—भाष्य (अद्वैत); २ आनन्दगिरी—टीका; ३ स्वा० आनन्दतीर्थ (मध्वाचार्य)-माध्वभाष्य (द्वैत); ४ जयतीर्थ-प्रमेय दीपिका; ५, स्वा० रामानुजाचार्य-भाष्य (विशिष्टाद्वैत); ६ श्रीपुरुषोत्तम-अमृततरंगिणी (शुद्धाद्वैत); ७ नीलकण्ठ—भावप्रदीप या चतुर्धरी टीका; ८ पं० केशव काश्मीरी-तत्त्वप्रकाशिका (द्वैताद्वैत); ९ मधुसूदन-गूढार्थदीपिका; १० शंकरानन्द—तात्पर्यबोधिनी; ११ श्रीधर स्वामी—सुबोधिनी; १२ सदानन्द-भावप्रकाश (श्लोकबद्ध); १३ धनपतसूरि—भाष्योत्कर्षदीपिका; १४ सूर्यदेव दैन्य—परमार्थप्रपा; १५ राघवेन्द्र—अर्थसंग्रह या गीताविवृति। स०-खं० १ पं० विट्ठल शर्मा; खं०२, ३, ४ पं० जीवाराम शास्त्री। प्र० और मु० गुजराती प्रेस, सासून बिल्डिंग, फोर्ट, बम्बई सं०१ १९०८, १९१२, ९१३, १९१५ ई० मू० २०) पृ० २१५०
२	२	श्रीमद्भगवद्गीता (टीका ८) टी० १ शंकराचार्य; २ आनन्दगिरी; ३ नीलकंठ; ४ मधुसूदन; ५ श्रीधर; ६ धनपति-सूरि; ७ अभिनव गुप्त पादाचार्य व्याख्या; ८ धर्मदत्त (बच्चा शर्मा) गूढार्थ तत्त्वालोक। स० पं० वासुदेव शर्मा; प्र० मु०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई स०—१९१२ ई०; मू० ८) पृ० ९४०
३	३	श्रीमद्भगवद्गीता (टी० ७, खं० ३) टी०; १ रामानुजाचार्य; २ वेदान्ताचार्य वेङ्कटनाथ—तात्पर्यचन्द्रिका; ३ शंकराचार्य; ४ आनन्दतीर्थ; ५ जयतीर्थ; ६ यामुन मुनि—गीतार्थसंग्रह; ७ निगमान्त महादेशिक—

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		गीतार्थसंग्रहरक्षा। सं०-अ० वि० नरसिंहाचार्य, प्र० मु० आनन्द प्रेस, मद्रास सं०--१९१०, १९११ १९११, ई० मू० ७।।) पृ० ९७५
४	४	श्रीमद्भगवद्गीता-टी० सदानन्द-भावप्रकाश (श्लोकबद्ध) प्र० मु० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं०-१८०८ शक मू० ४) पृ० ३९०
५	५	श्रीमद्भगवद्गीता-टी० स्वामी राघवेन्द्र, मु० चित्रशाला प्रेस, पूना सं० १८४९ शक मू० २) पृ० १५०
६	ॐ६	श्रीमद्भगवद्गीता-टी० १ रामानुज भाष्य ; २ शांकर-भाष्य ; ३ श्रीधरी टीका (यामुन मुनिकृत गीतार्थ-संग्रह सहित) प्र० मु० गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, जगदीश्वर प्रेस, बंबई सं० १-१९३६ वि० मू० ५) पृ० २३०
७	ॐ७	श्रीमद्भगवद्गीता-समन्वय भाष्य सं० उपाध्याय भाई गौर गोविन्दराय (नवविधान मण्डल) मु० मंगलगंज मिशन प्रेस, कलकत्ता, पता प्रचार आश्रम, आमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता। सं० २-१८३६ शक मू० ३) पृ० ५७५
८	ॐ८	श्रीमद्भगवद्गीता टी० १ विप्रराजेन्द्र : (तत्त्वैकदर्शन भाष्य) २ विप्रराजेन्द्र-आत्मज ; (भाष्य प्रदीप) मु० राजराजेश्वर प्रेस सं०-१९२७ वि० मू० (अज्ञात) पृ० २५६
९	९	भ० गीता-टी० मधुसूदन सरस्वती, मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०-१९७३ वि० मू० २।।) पृ० २८०
१०	१०	भ० गीता-टी० शंकराचार्य, मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना सं० १९०८ ई० मू० २) पृ० ३००
११	११	भ० गीता-टी० १ शांकर-भाष्य ; २ आनन्दगिरी-टीका ; मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना सं० २-१९०९ ई० मू० ६।) पृ० ६००
१२	१२	भ० गीता-टी० श्रीहनुमत् (पैशाच-भाष्य) मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना सं०-१९०१ ई० मू० १।।) पृ० १५०
१३	१३	भ० गीता-टी० १ मधुसूदन सरस्वती ; २ श्रीधर स्वामी, मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना ; सं० २-१९१२ ई० मू० ५।) पृ० ५२५
१४	१४	भ० गीता-टी० १ रामानुज भाष्य ; २ वेदान्ताचार्य वेंकटनाथ-तात्पर्यचन्द्रिका ; ३ यामुनमुनि गीतार्थ संग्रह ; मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना सं०-१९२३ ई० मू० ७।।) पृ० ७५०
१५	१५	गीतार्थसंग्रह दीपिका-टी० वरवरमुनि, सं० प्रतिवादीभयंकर स्वामी श्रीअनन्ताचार्य, श्रीकाञ्ची, मु० सुदर्शन प्रेस, श्रीकाञ्ची, सं० १९०६ ई० मू० २=) पृ० ३२५
१६	१६	भ० गीता-टी० मुनि यामुनाचार्य (गीतार्थ संग्रह, प्रदिपदव्याख्या सह) सं० स्वामी श्रीअनन्ताचार्य, श्रीकाञ्ची मु० सुदर्शन प्रेस, श्रीकाञ्ची, सं० १९०१ ई० मू० १।।।=) पृ० १८२
१७	१७	गीतार्थ संग्रह-टी० १ यामुनमुनि (गीतार्थ संग्रह) २ वेदान्ताचार्य (गीतार्थ संग्रह रक्षा); सं० स्वामी श्री-अनन्ताचार्य, मु० सुदर्शन प्रेस, श्रीकाञ्ची सं०-१९०१ ई० मू० ।=) पृ० ३५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१८	१८	भ० गीता--टी० केशव काश्मीरी, प्र० पं० किशोरदास, वंशीवट, वृन्दावन स० १-१९९५ वि० विना मू० पृ० ३८०
१९	१९	भ० गीता--रामानुजाचार्य-भाष्य, स० पं० महावन शास्त्री, मु० लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० ३-१९५९ वि० मू० २) पृ० ३०५
२०	२०	भ० गीता-टी० शंकरानन्द, प्र० निर्णय० बंबई, सं० ३ मू० २॥) पृ०
२१	२१	भ० गीता-टी० श्रीधर स्वामी प्र० ,, ,, मू० १) पृ०
२२	*२२	भ० गीता-टी० पं० गणेश शास्त्री पाठक (बालबोधिनी प्र० के० एम० पाठक, मु० एजुकेशन सोसाइटी स्टीम प्रेस, बम्बई सं० १-१८९३ ई० मू० ३।) पृ० ३५०
२३	२३	भ० गीता-टी० स्वामी वेंकटनाथ (ब्रह्मानन्दगिरिव्याख्या) मु० वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् सं० १९१२ ई० मू० ४।) पृ० ६१०.
२४	२४	भ० गीता-टी० पं० गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि' (१ बालबोधिनी संस्कृतटीका, २ गीतार्थचन्द्रिका भाषाटीका) प्र० रामनारायण लाल, प्रयाग सं० १-१९८३ वि० मू० १) पृ० ५००
२५	२५	भ० गीता-(खं० २)टी० हंसयोगी भाष्य प्र० शुद्धधर्ममण्डल, मद्रास सं० १ १९२२, १९२४ ई० मू० ३॥।) पृ० ७५०
२६	२६	भ० गीता-टी० १ महर्षि गोभिल (गीतार्थसंग्रह); २-२६ अध्यार्या गीता, प्र० शुद्धधर्ममण्डल, मद्रास सं० २-१९१७ ई० मू० ।) पृ० २१०.
२७	२७	भ० गीता-मूल,पंचरत्न प्र० सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, सं० १ १९७९ वि० मू० ।।।) पृ० २००
२८	२८	भ० गीता-मूल प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १ १९८३ वि० मू० ।-) पृ० १ ०
२९	२९	भ० गीता प्रतिकानुक्रम ले० पं० केशव शास्त्री, मु० निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सं० १९१९ ई० मू० -) पृ० १०
३०	३०	भ० गीता-मूल, पञ्चरत्न, प्र० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९७६ वि० मू० १) पृ० २२५
३१	*३१	भ० गीता-मूल, मु० चित्रशाला प्रेस, पूना सं० १९१२ई० मू० ।=) पृ० १००
३२	३२	भ० गीता-मूल प्र० मु० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १-१९८२ वि० मू० ≡) पृ० २१५
३३	३३	भ० गीता-(गुटका, मूल, श्लोक चरण प्रतीक वर्णानुक्रम सहित) प्र० थियोसोफिकल संसायटी, अडियार, मद्रास, मु० वसन्त प्रेस, मद्रास सं०-१९१८ ई० मू० ।।।) पृ० २७५
३४	३४	भ० गीता-(द्वादश रत्न, मूल, गु०) मु० लक्ष्मीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई सं०-१९७८ वि० मू० १) पृ० २२०

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
३५	३५	भ० गीता-(मूल, पद्मरत्न, गु०) प्र० सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद सं०-१९७९ वि० मू० ।=) पृ० १६०.
३६	३६	भ० गीता-(मूल, पद्मरत्न, गु०) प्र०स० सा०वर्धक कार्या०, अहमदाबाद सं० १९७१ वि मू० ।)पृ० २००.
३७	३७	भ० गीता-(मूल, पद्मरत्न, गु०) मु० गुजराती प्रेस, बम्बई सं०-१९२५ ई० मू० ।=) पृ०२००.
३८	३८	भ० गीता-(मूल, गु०) प्र० रामस्वामी शास्त्री एन्ड सन्स, मु० बभाभिल्ला प्रेस, मद्रास सं०-१९२६ ई० मू० ।=) पृ० १६५.
३९	३९	भ० गीता (मूल, समश्लोकी, गु०) प्र० के० के० जोशी एन्ड ब्रादर्स, कांदावाडी, बम्बई मू०।।) पृ० १४०.
४०	४०	भ० गीता-(गु०) त्रिकाण्ड संग्रह प्र० स्वामी गोविन्दानन्द मु० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० १ १९२७ ई० मू० ।=) पृ० ३०.
४१	४१	भ० गीता-विष्णुसहस्रनाम सहित (मू०, गु०) प्र० मु० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० ५-१९२८ ई० मू० =) पृ० १३०.
४२	४२	भ० गीता-विष्णुसहस्रनाम सहित (मूल,गु०)प्र० गीताप्रेस,गोरखपुर सं० २-१९८१ वि०मू० ≈)।। पृ० २५०.
४३	४३	भ० गीता-(मूल, गु०) प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २-१९८० वि० मू० -) पृ० १२६.
४४	४४	गीताडायरी-प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १-१९२७ ई० मू० ।) पृ० ४००
४५	४५	गीताडायरी-प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २-१९२८ ई० मू० ।) पृ० ४००.
४६	४६	गीताडायरी-प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० ३-१९२९ ई० मू० ।) पृ० ४००.
४७	४७	भ० गीता-मूल प्र० ब्रह्मज्ञानसमाज मन्दिर, अडयार, मु० वसन्तप्रेस, अडयार, पता थियोसोफिकल सोसाइटी, मद्रास सं०-१९१४ ई० मू० ।) पृ० १६०
४८	४८	भ० गीता-(मूल, तावीजी) प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १ १९८४ वि० मू० =) पृ० ३००.
४९	४९	भ० गीता-(,, ,,) प्र० निर्णय०, बम्बई सं० १९२६ ई० मू० ।=) पृ० २१०
५०	५०	भ० गीता-(मूल, तावीजी) प्र० निर्णय०, बम्बई सं०-१९२३ ई० मू० ।) पृ० २१०.
५१	५१	भ० गीता-(मूल, तावीजी, लोकेट) विष्णुसहस्रनाम सहित, फोटोसे जर्मनीमें छपी हुई, पता-संस्कृत बुकडिपो, काशी मू० १) पृ० २००.
५२	५२	भ० गीता-(मूल, तावीजी, लोकेट) अक्षरश-फोटोसे जर्मनीमें छपी हुई, पता-किताब महल, हार्नबी रोड, बम्बई मू० ३) पृ० ३७५.

१ लिपि—देवनागरी ☘ २ भाषा—हिन्दी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
५३	*१	श्रीमद्भगवद्गीता-(खण्ड २) टी० पं० उमादत्त त्रिपाठी, नवल-भाष्य या तत्वविवेकामृत-टीका (१. शंकर-भाष्य ; २. आनन्दगिरी टीका ; ३. श्रीधरी टीका सह) मु० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं० १–१८८८ ई० मू०) पृ० ८८४
५४	२	श्रीमद्भगवद्गीता-(केवल भाषा, भीष्मपर्व पृ० ५३ से ११७) टी० पं० कालीचरण गौड़, मु० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सं० ४–१९२६ ई० मू० १॥) पृ० ६५
५५	*३	श्रीमद्भगवद्गीता–टी० पं० जगन्नाथ शुक्ल, मनभावनी भाषा-टीका (१ शङ्कर-भाष्य; २. आनंदगिरी टीका; ३. श्रीधरी टीका सहित) प्र० ग्रन्थकार, मु० ज्ञानरत्नाकर प्रेस, कलकत्ता, सं०–१९२३ ई० मू० १०) पृ० ६८०
५६	४	श्रीमद्भगवद्गीता (भीष्मपर्व, पृ० ८ से १०) ले० सबलसिंह चौहान (पद्य) मु० नवल० प्रेस, लखनऊ, सं० २१–१९२८ ई० मू० ।=) पृ० ३
५७	५	भ० गीता-(भीष्मपर्व पृ० ११३ से २२०) टी० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पता–ग्रन्थकार, स्वाध्याय मण्डल, औंध, सतारा सं० १–१९८३ वि० मू० १) पृ० १०८
५८	६	भ० गीता-(खंड ६) ले० पं० रामनारायण पाठक (पद्य) प्र० और पता–राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली। सं० १-१९२४; २–१९२७; २–१९२८; २–१९२८; २–१९२८; २–१९२६ ई०; मू० १=) पृ० १५०
५९	७	भ० गीता-(पद्य) ले० पं० रामधनी शर्मा व्यास, प्र० ग्रन्थकार, सदीसोपुर (पटना) सं० १–१९६५ वि० मू० ॥) पृ० १३०
६०	८	गीतानुशीलन (खंड ३) टी० स्वामी मायानन्द गीतार्थी (मायानन्दी व्याख्या) प्र० राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर जब्बलपुर, स० और पता-गणेशचन्द्र प्रामाणिक, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सं० १–१९७७ वि० मू० ११≤) पृ० १००
६१	९	भ० गीता-(खं० १८) टी० स्वामी हंसस्वरूपजी (हंसनादिनी टीका) प्र० और पता–हंसाश्रम, अलवर, सं० १–१९८२ वि० मू०) पृ० ४५००
६२	१०	भ० गीता–टी० स्वामी चिद्घनानन्द(गुढार्थ दीपिका)मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०–१९७८ वि० मू० ८) पृ० १३५०
६३	११	भ० गीता-(स्वाध्याय संहिता, पृ० ३६६ से ४६२ तक) टी० स्वामी हरिप्रसाद वैदिक मुनि, प्र० महेश औषधालय पापड़ी मंडी, लाहौर, सं० १–१९८४ वि० मू० ४।) पृ० ९७
६४	१२	महाभारत मीमांसा-(१८ वां प्रकरण या श्रीमद्भगवद्गीता विचार, पृ० ५५९ से ६०३) ले० सी० वी० वैद्य, एम० ए०, एल० एल० बी० (मराठी) अ० माधवराव सप्रे, बी० ए० प्र० बालकृष्ण पांडुरंग ठक्कर, पता–इण्डियन प्रेस प्रयाग सं० १–१९७७ वि० मू० ४) पृ० ४५
६५	१३	भ० गीता–टी० महाराजदीन दीक्षित, प्र०–बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, काशी मू० २) पृ० २३६

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
६६	१४	ब्रह्मदर्शन (गीता-निबन्ध पृ० १९, ३०, ८४, १७५ से १८०, २२८ आदिमें) ले० पं० जानकीनाथ मदन, दिल्ली मु० रामनारायण प्रेस, मथुरा सं०-२ १९८१ वि० मू० ३) पृ० २४०
६७	१५	भ० गीता-टी० पं० मदनमोहन पाठक, प्र० भार्गव पुस्तकालय, काशी सं०-१९८४ वि० मू० ३॥) पृ० २४०
६८	१६	भ० गीता-टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र (मिश्रभाष्य) मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०-१९८३ वि० मू० ३) पृ० ३९०
६९	१७	भ० गीता-टी० स्वा० आनन्दगिरि (सज्जन-मनोरंजिनी परमानन्द प्रकाशिका टीका) मु० लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० ४-१९७७ वि० मू० ४) पृ० ४६६
७०	१८	भ० गीता-टी० पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री (तत्त्वार्थसुदर्शिनी) मु० लक्ष्मीवेंक० बम्बई सं०-१९७२ वि० मू० ४) पृ० ३९२
७१	१९	भ० गीता ले० मुंशी राजधरलाल कायस्थ (राजतरंगिणी टीका) प्र० व्रजवल्लभ हरिप्रसाद, रामवाड़ी, बम्बई सं०-१९७५ वि० मू० १॥) पृ० २००
७२	२०	भ० गीता टी० वैष्णव हरिदासजी (वैराग्यप्रकाशिका) मु० लक्ष्मीवेंक० बम्बई सं०-१९८० वि० मू० १) पृ० २००
७३	२१	भ० गीता-टी० श्रीआनन्दराम (व्रजभाषा टीका) मु० ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई सं० ८ १९४८ वि० मू० २॥) पृ० २२५
७४	२२	भ० गीता टी० पं० रघुनाथप्रसाद (अमृततरंगिणी) मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०-१९८१ वि० मू० १॥) पृ० २५०
७५	२३	भ० गीता-टी० पं० सत्याचरण शास्त्री और पं० श्रीराम शर्मा (विचारदर्पण सहित) मु० ज्ञान० प्रेस, बम्बई सं० २-१९७९ वि० मू० १॥) पृ० ३८२
७६	२४	भ० गीता टी० पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी मु० नवल० प्रेस, लखनऊ सं० १-१९११ ई० मू० ॥=) पृ० १९७
७७	२५	भ० गीता-ले० पं० माधवराम अवस्थी (पद्य) प्र० पं० रामचन्द्र अवस्थी, रामकृष्ण औषधालय, कानपुर सं० १-१९८४ वि० मू० १॥) पृ० १५०
७८	२६	भ० गीता-विमल विलास (ख० ४) ले० श्रीयुगलकिशोर 'विमल' बी० ए०, एल एल० बी०, प्र० सनातन धर्म सभा, दिल्ली सं० १-१९७२ वि० मू० २।) पृ० ३१५
७९	*२७	भ० गीता-(पद्य) टी० ठाकुर कुंवर बहादुर सिंह (ब्रह्मानन्दप्रकाशिका) मु० राजपूत एंग्लो ओरियण्टल प्रेस, आगरा पता-ठाकुर शिवचरणसिंह, उड़नी पीपरिया (सी० पी०) सं० १ १८९९ ई० मू०) पृ० १२५
८०	*२८	भ० गीता-सिद्धान्त टी० श्रीदुर्जनसिंह और पता प्र० ग्रन्थकार, जावली, अलवर सं० १-१९८० वि० मू० १।) पृ० २१०

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
८१	२९	गीता हमें क्या सिखलाती है ? ले० पं० राजाराम शास्त्री पता-आर्ष ग्रन्थावली, लाहौर सं० १-१९१० ई० मू० ।) पृ० ४८
८२	३०	संजयकी दिव्यदृष्टि (निबन्ध) ले० श्रीधर रामचन्द्र देशाई (मराठी) अ० अनन्त रामचन्द्र जवखेडेकर, प्र० विज्ञाननौका कार्यालय, ग्वालियर, सं०-१९८० वि० मू० ।) पृ० ४०
८३	३१	श्रीकृष्णका यथार्थ स्वरूप (निबन्ध) ले० श्रीधर रामचन्द्र देशाई, प्र० विज्ञान० कार्या० ग्वालियर सं०-१९८१ वि० मू० ।) पृ० ५०
८४	३२	भ० गीताके प्रधान विषयोंकी अनुक्रमणिका (प्रत्येक अध्यायके प्रधान विषय) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका प्र० मु० गीता प्रेस, गोरखपुर सं० १-मू०) । पृ० ८
८५	३३	भ० गीताका सूक्ष्मविषय (प्रत्येक श्लोकका भावार्थ) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १ मू० -)॥ पृ० ३२
८६	३४	त्यागसे भगवत्-प्राप्ति (गीतोक्त त्याग पर स्वतन्त्र निबन्ध) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १९८० वि० मू० -) पृ० १४
८७	३५	भ० गीता-टी० पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी (पद्य) प्र० परमानन्द मिश्र, प्रेम कुटीर, झांसी सं० १-१९७८ वि० पृ० ६६ मू० ॥=)
८८	३६	भ० गीता-ले० श्रीमुन्नीलाल कुलश्रेष्ठ (पद्य) प्र० पं० रामचन्द्र वैद्य, सुधावर्षक औषधालय, अलीगढ़ सं० ३ १९७९ वि० मू० ।।।) पृ० ७०
८९	३७	भ० गीता-ले० पं० प्रभुदयाल शर्मा (पद्य) प्र० मु० स्वा० कुट्टनलाल, स्वामी प्रेस, मेरठ सं० १९२४ ई० मू० ॥) पृ० १००
९०	३८	भ० गीता-ले० गदाधर सिंह, पता इण्डियन प्रेस, प्रयाग सं० १-१८९६ ई० मू० ।-) पृ० ७५
९१	३९	भ० गीता टी० मुन्शी हरिवंशलाल, प्र० नवल० प्रेस, लखनऊ सं० १२-१९२४ ई० मू० ॥) पृ० १६८
९२	४०	भ० गीता-टी० पं० हरिदास वैद्य, प्र० हरिदास कम्पनी बड़ा बाजार कलकत्ता सं० ४-१९२३ ई० मू० ३) पृ० ४६६
९३	४१	भ० गी०-टी० स्वा० शिवाचार्य (भाग पहिला अ० २ श्लोक १० तक) प्र० स्वामी विवेकानन्द स० भारत धर्म महामण्डल, काशी सं० १-१९१८ ई० मू० १) पृ० १३६
९४	४२	भ० गीता-टी० स्वा० तुलसीराम पं० स्वामी प्रेस, मेरठ सं० २-१९१६ ई० मू० ॥=) पृ० ६३१
९५	४३	भ० गीता-टी० पं० आर्यमुनि (योगप्रदीप आर्य भाष्य पं० आर्य बुकडिपो लाहौर सं० १-१९७६ वि० मू० २॥) पृ० ६००

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
९६	४४	भ० गीता–टी० व्रजरत्न भट्टाचार्य–रत्नप्रभा भाषाटीका (श्रीधरी टीका सहित) प्र० भारतहितैषी पुस्तकालय, गिरगांव, बम्बई सं० १–१९७० वि० मू० १॥) पृ० ४२५
९७	४५	भ० गीता–रहस्य ले० लोक० बाल गङ्गाधर तिलक (गीता-रहस्य-संजीवनी टीका) (मराठी) श्र० पं० माधवराव सप्रे, प्र० तिलक बन्धु, गायकवाड़ बाड़ा, पूना सं० १-१९७३ वि० मू० ३) पृ० ९००
९८	*४६	भ० गीता–टी० पं० रामप्रसाद एम० ए०, एफ० टी० एस०, मु० निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सं०–१८२६ शक मू० ५) पृ० ३००
९९	४७	भ० गीता–टी० बाबू जालिमसिंह प्र० नवलकि० प्रेस, लखनऊ सं० ३–१९२२ ई० मू० ३॥) पृ० ८५०
१००	४८	भ० गीता–(मूल, अन्वय, पदच्छेद, टीका, टिप्पणी, अनुक्रमणिका आदि सहित) पृ० ५००, टी० श्री-जयदयालजी गोयन्दका (साधारण भाषाटीका) प्र० मु० गीता प्रेस, गोरखपुर सं० ४–१९८३ वि० मू० १।) राज सं० २) नवीन ॥≡) गुटका =)॥ केवल भाषा ।) केवल द्वितीय अध्याय)।
१०१	४९	भ० गीता–ज्ञानेश्वरी टी० ज्ञानेश्वरजी (भावार्थदीपिका मराठी) अ० पं० रघुनाथ माधव भगाड़ेजी बी० ए० प्र० इण्डियन प्रेस, प्रयाग। संशोधित सं०–१९२४ ई० मू० ४) पृ० ७२०
१०२	५०	भ० गीता–ज्ञानेश्वरी, अ० स्वा० मायानन्द चैतन्य, प्र० इन्दिरा प्रेस, पूना सं० १-१९२० ई० मू० ४) पृ० ५९०
१०३	*५१	भ० गीता–टी० पं० पीताम्बरजी पुरुषोत्तमजी–तत्वार्थबोधिनी, प्र० पं० दामोदर देव कृष्ण, गदसीसा, कच्छ सं० १९६१ वि० मू० ४) पृ० ६६०
१०४	५२	भ० गीता–टी० श्रीअनन्तरामजी (पदार्थ बोधिनी व्रजभाषाटीका) प्र० पं० कल्याणदासजी, पानीघाट, वृन्दावन सं० १–१९६९ वि० बिना मूल्य पृ० ३४०
१०५	५३	भ० गीता–(खं० २) टी० स्वामी नारायण–भगवदाशयार्थदीपिका, प्र० श्रीरामतीर्थ पब्लीकेशन लीग, लखनऊ सं०–१–१९७४, १९८५ वि० मू० ६) पृ० १३४०
१०६	५४	भ० गीता–टी० बाबू राधाचरण बी० ए०, बी० एस० सी०, एल एल० बी०, प्र० मु० यमुना प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा, सं० ३–१९२८ ई० मू० १॥) पृ० ५५०
१०७	५५	सरल गीता–टी० पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, पता हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बड़ाबजार कलकत्ता सं० ३-१९८० वि० मू० १॥) पृ० ३५०
१०८	५६	भ० गीता–टी० पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर, प्र० साहित्य-सम्वर्धिनी समिति, कलकत्ता, पता-हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता सं० १ १९७१ वि० मू० ≡) पृ० २१५
१०९	५७	भ० गीता–केवल भाषा, ले० स्वा० किशोरदास कृष्णदास, प्र० मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर सं० ३–१९८३ वि० मू० १॥) पृ० ४६०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
११०	५८	भ० गीता केवल भाषा ले० पं० परशुरामजी, प्र० रामकृष्ण बुकसेलर, लाहौर सं० १–१९८० वि० मू० १) पृ० ३५०
१११	५९	भ० गीता–केवल भाषा ले० श्रीजयतीराज प्र० ग्रन्थकार पता–चरणदास फोटोग्राफर, लंगेमंडी, लाहौर सं० १–१९८२ वि० मू० १॥) पृ० ४१४
११२	६०	भ० गीता–केवल भाषा ले० स्वा० सत्यानन्द प्र० आर्य पुस्तकालय, लाहौर सं० १९८४ वि० मू० १) पृ० ४१४
११३	६१	भ० गीता–केवल भाषा (दोहावली सहित) प्र० लाजपतराय पृथ्वीराज साहनी, लाहौर मू० २) पृ० ४१०
११४	६२	भ० गीता–(खं० २) टी० स्वा० प्रणवानन्द (योगशास्त्रीय आध्यात्मिक टीका) प्र० प्रणवाश्रम, काशी सं० १–१९१४, १९१५ ई० मू० ६) पृ० ११२५
११५	६३	गीता–रहस्य (मूल सहित) ले० नीलकण्ठ मजूमदार एम० ए० (बंगला) अ० श्रीकृष्णानन्द गुप्त, प्र० साहित्य-सदन, चिरगांव (झाँसी) सं० १–१९८५ वि० मू० २॥) पृ० ४००
११६	६४	गीता-दर्शन ले० लाला कन्नोमल एम० ए०, प्र० रामलाल वर्मन कं०, ३६७ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं० २–१९८३ वि० मू० २॥) पृ० ४५०
११७	६५	भ० गीता टी० एक गीता प्रेमी (पदच्छेद, शब्दार्थ सहित) प्र० मु० ओंकार प्रेस, प्रयाग सं० १–१९८२ वि० मू० १) पृ० ४२०
११८	६६	भ० गीता-टी० पं० राजाराम शास्त्री, प्र० आर्यग्रन्थावली, लाहौर सं० ३–१९८० वि० मू० २।) पृ० ४४०
११९	६७	भ० गीता संस्कृत और भाषाटीका सहित प्र० भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी, टी० पं०प्रभाकर शास्त्री सं० १ १९८३ वि० मू० ॥=) पृ० ४२५
१२०	६८	गीतार्थचन्द्रिका (खं० २) टी० स्वा० दयानन्द (सरलार्थ और चन्द्रिका टीका) प्र० भारतधर्म महामण्डल, काशी सं० २–१९२७ १–१९२६ । ई० मू० २।।) पृ० ५८७
१२१	६९	भ० गीता-सिद्धान्त टी० स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती, अ० पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित प्र० आर्य-ग्रन्थ-रत्नाकर, बरेली सं० १–१९८१ वि० मू० १) पृ० २२८
१२२	७०	गीता विमर्श (मूल सहित) ले० पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ पता वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद सं० १ १९८१ वि० मू० १॥) पृ० ३५०
१२३	७१	सुबोध गीता–टी० पं० गणपत जानकीराम दुबे बी० ए०, प्र० रामदयाल अग्रवाला, कटरा, प्रयाग सं० १–१९१६ ई० मू० ।=) पृ० १३३
१२४	७२	भ० गीता-टी० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, प्र० वर्मन प्रेस, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं०२–१९८२ वि० मू० =) पृ० १२३
१२५	७३	गीता-रत्नमाला (गद्य और पद्य-अनुवाद) टी० पं० वासुदेव कवि, प्र० हि० पु० एजेन्सी, कलकत्ता सं० १–१९८१ वि० मू० १॥) पृ० ६००
१२६	७४	भ० गीता–(पद्य) ले० पं० सूर्यदीन शुक्ल–मनोरमा भाषाटीका (भारतसार सह) प्र० नवलकि० प्रेस, लखनऊ सं० १ १९१७ ई० मू० १≈) पृ० २६०
१२७	७५	भगवद्गीतोपनिषद् (पद्य) ले० स्वा० मायानन्द चैतन्य, प्र० विज्ञान नौका कार्यालय, ग्वालियर सं० १–१९८० वि० मू० १ =) पृ० १४०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१२८	७६	भ० गीता (पद्य) ले० पं० रघुनन्दनप्रसाद शुक्र, प्र० गोविन्दप्रसाद शुक्र, बुलानाला काशी सं० १ १९७६ वि० मू० ॥) पृ० १०८
१२९	७७	भ० गीता (पद्य) ले० पं० हरिवल्लभजी प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं० २--१९२१ ई० ।) पृ० ८५
१३०	७८	गीता--श्रीकृष्ण-उपदेश (पद्य) ले० पं० जगदीशनारायण तिवारी, पता-हि० पु० एजेन्सी, कलकत्ता सं० १-१९८१ वि० मू० ॥) पृ० १२०
१३१	७९	अच्युतानन्द गीता (पद्य) ले० स्वा० अच्युतानन्द, प्र० त्र्यम्बकराव करदत्त मालगुजार, धमतरी, रायपुर, सं० १ १९८५ वि० मू० ॥ पृ० ११२
१३२	८०	भजन गीता (पद्य) ले० बाबू हरदत्तराय सिंघानिया, रामगढ़ प्र० ग्रन्थकार सं० १-१९८१ वि० मू० ।=) पृ० १६०
१३३	८१	गीता सतसई (दोहा) ले० पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री, सं० १९६२ वि० मू० ।) पृ० ८५
१३४	८२	गीतासार (पद्य) ले० पं० अनन्तराम योगाचार्य, प्र० श्रीकृष्ण भक्ति सम्मङ्ग, कसूर (पंजाब) सं० २ १९८१ वि० मू० ।-) पृ० ५५
१३५	८३	भ० गीतासार (पद्य) ले० पं० घासीराम चतुर्वेदी, प्र० गोपाललाल मथुरावाला मु० वेंक० प्रेस, बम्बई पता-गोपाललाल मुरलीधर, इंदौर सं० १ १९७७ वि० मू० १) पृ० ६०
१३६	८४	भ० गीता भावार्थ (पद्य--रंगत लावनी या ख्याल) ले० पं० रामेश्वर विप्र, प्र० वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०--१९८१ वि० मू० १।) पृ० २७५
१३७	८५	श्रीकृष्ण-विज्ञान (पद्य) ले० पं० रामप्रताप पुरोहित, प्र० पारीक हितकारिणी सभा, जयपुर सं० १--१९७७ वि० मू० १।।।) पृ० १७८
१३८	८६	भ० गीता (वेदानुगारत्नसंग्रह) टी० पं० भूमित्र शर्मा, प्र० पं० शिवदत्त शास्त्री, भारतेन्दु पुस्तकालय, मुरादाबाद सं०२-१९८५ वि० मू० ।) पृ० ११५
१३९	८७	गीतामृत नाटक (पद्य) ले० पं० रामेश्वर मिश्र, प्र० मदनलाल गनेड़ीवाला, १५ हंसपोकरिया, कलकत्ता सं० १--१९८० वि० मू० १) पृ० १६६
१४०	८८	गीतामें ईश्वरवाद, ले० हीरेन्द्रनाथ दत्त एम. ए. बी. एल. (बङ्गला) अ० पं० ज्वालादत्त शर्मा, प्र० इंडियन प्रेस, प्रयाग सं० १-१९१९ ई० मू० १।।।) पृ० ४१०.
१४१	८९	गीताकी भूमिका ले० श्रीअरविन्द घोष (अंग्रेजी) अ० पं० देवनारायण द्विवेदी, पता--हि० पु० एजेन्सी, कलकत्ता सं १ १९७८ वि० मू० १) पृ० १०५
१४२	९०	आनन्दामृतवर्षिणी (गीता-निबन्ध) ले० स्वा० आनन्दगिरी स० स्वा० युगलानन्द मु० लक्ष्मीवेंक० प्रेस, बम्बई सं--१९६५ वि० मू० ।।।=) पृ० २००
१४३	९१	धर्म क्या है ? (निबन्ध) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर सं० १-१९८४ वि० मू०)। पृ० १३
१४४	९२	गीतोक्त सांख्य और निष्काम कर्मयोग (निबन्ध) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर सं० १-१९८३ वि० मू० -)॥ पृ० ४०
१४५	९३	हिन्दी गीता-रहस्य-सार (निबन्ध) ले० लो० तिलक (मराठी) स० पं० झाबरमल्ल शर्मा, पता-हि० पु० एजेन्सी, कलकत्ता सं० १-१९७८ वि० मू० ।-) पृ० ३०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१४६	६४	रणभूमिमें उपदेश या गीतासार, ले० रामभरोस राव, प्र० मातादीन शुक्ल पता विद्यार्थी पुस्तका०, तिलक भूमि, जबलपुर (सी० पी०) सं० १–१६७८ वि० मू० ।) पृ० ३५
१४७	६५	श्रीकृष्णामृत-रसायन (अनुगीताके भावार्थ सहित) ले० सीताराम गुप्त (भाषानुवाद) प्र० श्रीराम गुप्त पता– ग्रन्थकार, कांधला, मुजफ्फरनगर (यू० पी०) सं० १–१६८५ वि० बिना मूल्य पृ० १८८
१४८	६६	भ० गीतार्थ संग्रह (केवल भाषा) स० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा मु० नेशनल प्रेस, प्रयाग सं० १–१६१२ ई० मू० ।) पृ १२०
१४६	६७	भ० गीता भाषा ले० पं० प्यारेलाल गोस्वामी, प्र० भार्गव पुस्तकालय, काशी सं० १–१६७८ वि० मू० १=) पृ० १२०
१५०	६८	अष्टादश श्लोकी गीता टी० पं० महावन शास्त्री, मु० लक्ष्मीवेंक० प्रेस, बम्बई सं० –१८६३ ई० मू० –) पृ० १०
१५१	६६	भ० गीता टी०–राजा गुमानसिंहजी (अमृतरससार जीवनमुक्तिदायिनी) मु० यज्ञेश्वर प्रेस, काशी सं० १६०३ ई० मू० (अज्ञात) पृ० ३२
१५२	१००	गीता-स्तव-पंचकम् (माहात्म्य) ले० पं० कृष्णदत्त शर्मा, प्र० बाबू रामप्रसाद बंका, मलसीसर सं० १–१६२८ ई० बिना मूल्य पृ० १७
१५३	१०१	प्राचीन भगवद्गीता (७० श्लोकी) ले० स्वामी मंगलानन्द पुरी प्र० गोविन्दराम हासानन्द, २० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता सं० २–१६८५ वि० मू० ।–) पृ० ६०
१५४	१०२	गीता और आदि-संकल्प, ले० प्र० चौधरी रघुनन्दनप्रसाद सिंह, महम्मदपुर-सुस्ता (मुजफ्फरपुर) मु० इंडियन प्रेस, प्रयाग सं० १ १६८५ वि० मू० =) पृ० ४५
१५५	१०३	गीता वचनामृत ले० विष्णु मिश्र आर्योपदेशक, प्र० वैदिक पुस्तका०, लाहौर सं० १–१६८२ वि० मू० ≡) पृ० ५०
१५६	१०४	भ० गीता तत्त्वविचार ले० सत्येश स्वामी, प्र० ग्रन्थकार, सत्यविचार कुटी, काशी पता–चतुरसिंह, करजालीकी हवेली, उदयपुर मू० =) पृ० १३
१५७	१०५	आर्यकुमार गीता (स्वाध्याय शास्त्र) ले० ईश्वरदत्त भिषगाचार्य, गुरुकुल, कांगड़ी सं० १–१६८१ वि० मू० ।, पृ० ४५
१५८	१०६	भ० गीता (अ० द्वितीय) टी० बलभद्रप्रसाद वैश्य, नं० ३।५ टुरनर रोड, काशीपुर, कलकत्ता सं० १–१६२७ ई० मू० =)। पृ० ५०
१५६	१०७	भ० गीता (गद्य संवाद) ले० लक्ष्मण नारायण गर्दे एम० ए० (मराठी) अ० पं० काशीनाथ नारायण त्रिवेदी मु० सस्ता साहित्य प्रेस, अजमेर सं० १–१६८५ वि० मू० =) पृ० ३०
१६०	१०८	भ० गीता (अ० १२वां) टी० भगवानप्रसादजी 'रूपकला' मु० खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर सं० २–१६८५ वि० मू० =) पृ० २५
१६१	१०६	सप्तश्लोकी गीता टी० लक्ष्मणाचार्य, मु० लक्ष्मीवेंक० प्रेस, बम्बई सं०–१६७२ वि० मू० –) पृ० १६
१६२	११०	सप्तश्लोकी गीता टी० पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री प्र० पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी, जबलपुर सं० १ १६८३ वि० मू० –) पृ० २०
१६३	१११	भ० गीता (अ० द्वितीय) प्र० मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता सं० १–१६८२ वि० बिना मूल्य पृ० २५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१६४	११२	गीतामृत–ले० भाई परमानन्द एम. ए. प्र० आर्य पुस्तका०, लाहौर सं० १–१९७८ वि० मू० १।॥) पृ० १५०
१६५	११३	भ० गीता-टी० पं० रामस्वरूप शर्मा, प्र० सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद सं० १ १९७४ वि० मू० पृ० १७०
१६६	११४	बालगीता–(केवल भाषा) ले० रामजीलाल शर्मा प्र० इंडियन प्रेस, प्रयाग सं०—संशोधित–१९२१ ई० मू० ॥।) पृ० १७०
१६७	११५	हिन्दी गीता–टी० पं० रामजीलाल शर्मा, प्र० हिन्दी प्रेस, प्रयाग सं० १-१९७९ वि० मू० ॥।) पृ० २८०.
१६८	११६	भ० गीता-(गुटका, पंचरत्न) टी० पं० रघुनाथप्रसाद, मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०–१९७९ वि० मू० १।=) पृ० ७२०.
१६९	११७	भ० गीता–(गु०) टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र–गीतार्थप्रवेशिका मु० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० ४–१९८० वि० मू० १=) पृ० ४३०
१७०	११८	भ० गीता-(गु०) टी० पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी-सुबोध कौमुदी, मु० निर्णय० प्रेस बम्बई सं० १९७९ वि० मू० १) पृ० ३००
१७१	११९	भ० गीता–(गु०) टी० लाला निहालचन्द रायबहादुर मुजफ्फरनगर मु० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० ३–१९७९ वि० मू० १) पृ० २२२
१७२	१२०	भ० गीता–(गु०) टी० सुबोध भाषा टीका प्र० हरिप्रसाद भजवल्लभ, बम्बई सं० १९७९ वि० मू० १) पृ० ३५०
१७३	१२१	भ० गीता-(गु०) स० भिक्षु अखण्डानन्द. प्र० सस्तुं साहित्य वर्धक कार्या०. अहमदाबाद सं० १–१९८० वि० मू० ≡) पृ० २४०
१७४	१२२	भ० गीता-(गु०) टी० पं० महाराजदीन दीक्षित, प्र० बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, काशी मू० ॥) पृ० ३८०
१७५	१२३	भ० गीता–(गु०) टी० पं० मदनमोहन पाठक, प्र० भार्गव पुस्तका० काशी सं०–१९८४ वि० मू० ॥) पृ० २९०
१७६	१२४	भ० गीता-(गु०) टी० श्रीकृष्णलाल, मथुरा, पता-संस्कृत बुक डिपो काशी मू० ॥।) पृ० ४००
१७७	१२५	भ० गीता–(गु०) ले० लो० बाल गंगाधर तिलक (मराठी) अ० पं० माधवराव सप्रे, प्र० तिलक बन्धु, गायकवाड़ बाड़ा, पूना सं० १–१९१६ ई० मू० ॥।) पृ० ३७५
१७८	१२६	भ० गीता–(गु०) टी० पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी (ज्ञानदीपिका) प्र० संस्कृत पुस्तका० लाहौर मू० ॥।) पृ० २९०
१७९	१२७	भ० गीता–(गु०) टी० पं० राजाराम शास्त्री, प्र० आर्यग्रन्थावली लाहौर सं०–१९८० वि० मू० ॥।) पृ० २८५
१८०	१२८	भ० गीता–(गु०) टी० पं० देशराज, प्र० सरस्वती आश्रम, लाहौर सं० ३ मू० ॥) पृ० २७५
१८१	१२९	भ० गीता–(गु०) टी० पं० छुट्टनलाल स्वामी प्र० स्वामी प्रेस, मेरठ सं० १–१९८१ वि० मू० ॥) पृ० २५०
१८२	१३०	भ० गीता–(गु०) टी० पं० नृसिंहदेव शास्त्री—सारार्थदीपिका, प्र० आर्य बुकडिपो, लाहौर सं० १ मू० ॥।) पृ० ३३०
१८३	१३१	भ० गीता-(गु० प्रथम भाग) प्र० भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी सं० १–१९८४ वि० मू० ।–) पृ० ३४०
१८४	१३२	भ० गीता-(गु०) टी० पं० गयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य 'श्रीहरि' (गीतार्थ-चन्द्रिका), प्र० रामनारायणलाल, प्रयाग सं० १–१९८३ वि० मू० १) पृ० ४७५
१८५	१३३	भ० गीता-(गु०) टी० पं० हरिराम शर्मा प्र० बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग सं० १–१९८० वि० मू० ॥।=) पृ० ३७५
१८६	१३४	भ० गीता–(गु०) टी० श्रीगुमानसिंहजी (योगभानु-प्रकाशिका) पता–चतुरसिंह, करजालीकी हवेली, उदयपुर सं० १–१९५४ वि० मू०) पृ० ६७५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१८७	१३५	गजलगीता (पद्य, गु०) प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २--१९८३ वि० मू० आधापैसा पृ० ८
१८८	१३६	भ० गीता (गु०) टी० मुन्शी हरवंशलालजी मु० नवल० प्रेस, लखनऊ सं० १--१९२८ ई० मू० ॥=) पृ० २००
१८९	१३७	भ० गीता (गु०) प्र० हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता सं० १८--१९८४ वि० मू० =) पृ० २७५
१९०	१३८	भ० गीता (गु०) प्र० विश्वमित्र कार्यालय, कलकत्ता सं० १९८३ वि० मू० =) पृ० २८५
१९१	१३९	भ० गीता (गु०) टी० पं० सत्याचरणजी शास्त्री प्र० विश्व० कार्या० कलकत्ता सं० २--१९७६ वि० मू०=) पृ० २६७
१९२	१४०	गीता-हृदय (गु० पद्य) ले० स्वा० मायानन्द चैतन्य, पता विज्ञान नौका कार्या० ग्वालियर सं०--१९८३ वि० मू० -) पृ० ८
१९३	१४१	दिव्यदृष्टि अर्थात् विश्वरूपदर्शन-योग (गु०, पद्य) ले० स्वा० मायानन्द चैतन्य पता--विज्ञान०, ग्वालियर सं० ५--१९७९ वि० मू० १) पृ० २००
१९४	१४२	भ० गीता (गु०, पद्य) ले० श्रीतुलसीदास (दोहाबद्ध) प्र० राजाराम तुकाराम, बम्बई सं० १९७६ वि० मू० ।=) पृ० १८५
१९५	१४३	भ० गीता (गु०, पद्य) म० कानजी कालीदास जोशी (समश्लोकी) प्र० ग्रन्थकार, कांदावाडी, बम्बई सं० १-१९८३ वि० मू० ॥) पृ० ३२०

१ लिपि-देवनागरी ३ भाषा--मराठी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१९६	*१	श्रीमद्भगवद्गीता-टी० पं० रघुनाथ शास्त्री-भाषाविवृत्ति टीका, मु० बालकृष्ण रामचन्द्र शास्त्रीका प्रेस, पूना सं० १ १७८२ शक मू० ७॥) पृ० २७५
१९७	*२	भ० गीता--टी० पं० रघुनाथ शास्त्री भाषाविवृत्ति, मु० वृत्त प्रसारक प्रेस, पूना सं० २--१८०९ शक मू० ४) पृ० ४८८
१९८	३	भगवद्गीता चित्सदानन्द लहरी (पद्य) टी० रंगनाथ स्वामी (सच्चिदानन्द लहरी) मु० हरिवर्दा प्रेस, बम्बई सं० १ १८९१ मू० २॥) पृ० ४००
१९९	४	भ० गीता--ज्ञानेश्वरी टी० १, वामन पंडित (समश्लोकी); २, मोरोपन्त (आर्या); ३, बालकृष्ण अनन्त भिड़े बी० ए० (पद्यानुवाद) प्र० केशव भीकाजी ढवले, गिरगांव, बम्बई सं०--१८५० शक मू० ३) पृ० ८१०
२००	५	भ० गीता--ज्ञानेश्वरी (ओवी, भावार्थ-दीपिका सुबोधिनी छाया सहित) टी० गोविन्द रामचन्द्र मोघे (सुबोधिनी) प्र० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० २ १८४८ शक मू० ५) पृ० ४२५
२०१	६	भ० गीता--ज्ञानेश्वरी टी० वेंकट स्वामी (मराठी अनुवाद) प्र० ग्रन्थकार, पूना सं० १ १८४९ शक मू० ५) पृ० ९५०
२०२	७	भ० गीता--ज्ञानेश्वरी टी० श्रीनाना महाराज जोशी साखरे प्र० मु० इन्दिरा प्रेस, पूना सं० ५--१८५० शक मू० ५) पृ० ९००
२०३	*८	गीतार्थ--बोधिनी टी० १ पं० वामन--(समश्लोकी); २ मोरोपंत (आर्या); ३, तुलसीदास (दोहरा); ४ मुक्तेश्वर (ओवी); ५ तुकाराम (अभंग) प्र० मु० गणपत कृष्णजी प्रेस, बम्बई सं०--१७९२ शक मू०४) पृ० ६७१

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२०४	ꕥ९	भ० गीता–(पद्य) टी० १, जीवन्मुक्त स्वामी कृत पद्यानुवाद, २, काशीनाथ स्वामी कृत जीवन्मुक्ति टीका मु० कर्णाटक प्रेस, बम्बई सं० १–१८०९ शक मू० २॥) पृ० ३७२
२०५	१०	भ० गीता–टी० विष्णु बोवा ब्रह्मचारी सेतुबन्धिनी गद्य टीका, प्र० रामचन्द्र पांडुरंग राउत, मु० गणपत० प्रेस. बम्बई पता–नारायण चिन्तामण आठल्ये, रामवाडी, बम्बई सं १–१८११ शक मू० ३) पृ० ४१०
२०६	११	पदबोधिनी गीता टी० (पदबोधिनी मराठी टीका) प्र० गंगाधर गोपाल पतकी और त्र्यम्बक गोविन्द किराणे मु० गणपत० प्रेस बम्बई सं०–१७९६ शक मू० २॥) पृ० २१०
२०७	ꕥ१२	भ० गीता–(खं० ४) टी० श्री चिन्तामणि गंगाधर भानु (१ शांकर–भाष्य, २ भाष्यानुवाद, ३ रामानुज, ४ मधुसूदन, ५ श्रीधर, ६ शंकरानन्द, ७ धनपति सूरि, ८ नीलकंठ, ९ बलदेव, १० ज्ञानेश्वर आदि कई टीकाओंके भावानुवाद सहित) स० ग्रन्थकार, प्र० भट्ट आणि मण्डली, पूना मु० यशवन्त प्रेस, पूना सं० २–१९०९, १९०९, १९१०, १९१० ई० मू० १२) पृ० १८००
२०८	ꕥ१३	भ० गीता टी० १ विद्याधिराज भट्ट उपाध्याय (मध्व मतानुवर्तिनी संस्कृत व्याख्या); २ इन्दिराकान्त तीर्थ–मराठी भाषानुवाद, स० संकीर्णाचार्य पांग्रीकर, प्र० मु० दत्तात्रेय गोविन्द वाडेकर, धनंजय प्रेस, खानापुर (बेलगांव) सं० १–१९२५ ई० मू० १) पृ० ४ ०.
२०९	ꕥ१४	भ० गीता टी० १. शंकर भाष्य, २ भाष्यानुवाद, सं० काशीनाथ वामन लेले मु० कृष्ण प्रेस, वाई सं० २–१८३५ शक मू० ८) पृ० ११००.
२१०	१५	भ० गीता- ज्ञानेश्वरी टी० ज्ञानेश्वरजी (ओवी, भावार्थदीपिका टिप्पनी सहित) स० अण्णा मोरेश्वर कुण्टे प्र० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० ६–१८४५ शक मू० २॥) पृ० ५५०.
२११	१६	भ० गीता-रहस्य ले० लो० तिलक (गीता रहस्य संजीवनी टीका) प्र० तिलक बन्धु. गायकवाड़ वाड़ा, पूना सं० ४–१८४५ शक मू० ५) पृ० ९००.
२१२	१७	भ० गीता–भाष्यार्थ रहस्य-परीक्षण (खं० २) टी० पं० विष्णु वामन बापट शास्त्री . १. शांकर- भाष्य, २ भाष्यानुवाद) प्र० ग्रन्थकार, पूना सं० १–१८४३ शक मू० १०) पृ० १३००
२१३	१८	सुबोध भगवद्गीता–टी० पं० विष्णु वामन बापट शास्त्री, प्र० ग्रन्थकार, पूना सं० १–१८४४ शक मू० २) पृ० ३९५
२१४	१९	यथार्थदीपिका गीता -(खं० ४) टी० वामन पंडित (ओवी, यथार्थदीपिका पद्यानुवाद) प्र० निर्णय० प्रेस, बम्बई सं० २–१९०७, १९११, १९१७ ई० मू० ८) पृ० १३००
२१५	२०	भ० गीता (स्फुट काव्य पृ० १४ से ७२ तक) ले० कवि मुक्तेश्वर (ओवी पद्यानुवाद) प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं० १ १९०६ ई० मू० २।) पृ० ६६
२१६	२१	भ० गीता–(कविता-संग्रह पृ० १६ से १२३ तक) ले० कवि उद्धव चिद्घन (सवाया पद्यानुवाद) स० नारायण चिन्तामण केलकर बी० ए०, प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं० १–१९०२ ई० मू० ।।।=) पृ० १०४
२१७	२२	भ० गीता–(भीष्म पर्व पृ० २५ से ६७ तक) ले० शुभानन्द स्वामी (पद्य) स० बालकृष्ण अनन्त भिडे बी० ए०, प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं० १–१९०५ मू० ।।।=) पृ० ४२
२१८	२३	भ० गीता–टी० कृष्णाजी नारायण आठल्ये (आर्याबद्ध पद्यानुवाद) प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं० १–१९०८ ई० मू० ।।।=) पृ० १२५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२१९	२४	एकाध्यायी गीता–(अध्याय १८ वां) टी० ज्ञानेश्वरजी, प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं० १–१८४५ शक मू० ।।=) पृ० १००
२२०	२५	गीता–शिक्षक–(अ० १८ वां) टी० प्रभाकर काशीनाथ देशपाण्डे, प्र० ग्रन्थकार, काशेगांव, पण्ढरपुर, शोलापुर सं० १–१८५० शक मू० ।।=) पृ० ८८
२२१	२६	भ० गीता टी० कृष्णराव अर्जुन केलूसकर १ पं० वामन (समश्लोकी) : २ मोरोपंत (आर्या) : ३ मुक्तेश्वर (ओवी) : ४ तुकाराम (अभंग) : ५ उद्धव चिद्धन (सवाई सहित) प्र० लक्ष्मणराव पांडुरंग नागवेकर, कालबादेवी, बम्बई सं० १९०२ ई० मू० ६) पृ० ११२५
२२२	२७	गीता-सप्तक-(१ भगवद्गीता, २ रामगीता, ३ गणेशगीता, ४ शिवगीता, ५ देवीगीता, ६ कपिलगीता, ७ अष्टावक्रगीता) मराठी भाषानुवाद स० हरिरघुनाथ भागवत बी० ए०' प्र० अष्टेकर कं० पूना सं०२-१८३४ शक मू० २) पृ० ५३०
२२३	२८	भ० गीता टी० रमावल्लभदास (चमत्कारी पद्य टीका) स० कृष्णदास सुभाव गोपाल उभयकर,संशो० रामचन्द्र कृष्ण कामत, प्र० दिगम्बरदास पता –सम्पादक, नारायणपुर, हुबली सं० १—१८४७ शक मू० २।) पृष्ठ ५५०
२२४	२९	भ० गीता रहस्य दीपिका, टी० गीता-वाचस्पति सदाशिव शास्त्री भिडे (रहस्य दीपिका) प्र० गीता-धर्म-मण्डल पूना स० २-१९२८ ई० मू० २।।) पृ० ५००
२२५	३०	भ० गीता-उपनिषद् टी० स्वामी मायानन्द चैतन्य (पद्यानुवाद) प्र० विज्ञान नौका कार्या० ग्वालियर, सं० १-१९२५ ई० मू० २) पृ० ३२५
२२६	३१	दिव्यदृष्टि या विश्वरूप-दर्शन-योग, ले० स्वा० मायानन्द चैतन्य प्र० विज्ञान० ग्वालियर सं० ३-१९२६ ई० मू० १) पृ० १६०
२२७	३२	भ० गीता–(श्रीकृष्ण-चरित्र पृ० १४१ से १९२) ले० चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल एल० बी० मु० चित्रशाला प्रेस पूना सं० ४ १९२५ ई० मू० १।) पृ० ५२
२२८	३३	भ० गीता ज्ञानेश्वरी (सटिप्पण) स० वेंकटेश त्र्यम्बक चार्फेकर बी० ए०, बी एस० सी०, मु० चित्र० पूना सं० १–१८४६ शक मू० २) पृ० ६००
२२९	३४	भ० गीता–ज्ञानेश्वरीतील महीपतीचे सुलभ वेंचे, मु० चित्रशाला प्रेस, पूना मू० ।।=) पृ० २४४
२३०	३५	ज्ञानेश्वरी सारामृत-ले० गोविन्द रामचन्द्र मोघे, प्र० निर्णय० बम्बई सं०२–१९२८ ई०मू० १।।) पृ० २५०
२३१	३६	श्रीमद्भगवद्गीता टी० १, मुक्तेश्वर (ओवी). २, नागेश वासुदेव गुणाजी बी० ए०, एल एल बी० (मुक्तेश्वरी अनुवाद) प्र० केशव भीकाजी ढवले, माधव बाग, बम्बई सं० १–१८३९ शक मू० ।।) पृ० २२५
२३२	३७	भ० गीता अनुभव ले० तुकाराम महाराज (अभंग पद्य) प्र० निर्णय० बम्बई १९१४ ई० मू०–) पृ० १२
२३३	३८	महाराष्ट्र भ० गीता (मूल सहित) ले० दत्तात्रेय अनन्त आपटे (पद्य) प्र० अच्युत चिन्तामणि भट्ट, यशवन्त प्रेस, पूना सं० १-१८३६ शक मू० ।।=) पृ० १५०
२३४	३९	विवेक वाणी या गीतार्थ-कथा ले० विश्वनाथ दत्तात्रेय कबाड़े, प्र० दी प्रिन्टिंग एजेंसी, बुद्धवार पेठ, पूना सं० १-१९१५ ई० मू० ।।) पृ० १३०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२३५	४०	गीता-पद्य मुक्ताहार टी० 'महाराष्ट्र भाषा चित्र मयूर' कृष्णाजी नारायण आठवले (पद्यानुवाद) प्र० नि० सा० प्रेस, बम्बई सं० २-१९०६ ई० मू० १) पृ० २२५
२३६	४१	गीतासुभाषितम् ले० मोरो नानाजी पाटील प्र० ग्रन्थकार, कबली चाल, दादर, बम्बई सं० १-१९२७ ई० मू० ॥।) पृ० १००
२३७	४२	रहस्य-बोध या भगवद्गीतेचें कर्मयोगसार, ले० नारायण बलवन्त हर्डीकर (ओवीबद्ध पद्यानुवाद) सं० १-१९२८ ई० मू० ॥=) पृ० ११०
२३८	४३	गीता-रहस्य सिद्धान्त-विवेचन, ले० हरिनारायण नैने, प्र० ग्रन्थकार पता-पुरन्दर एण्ड कम्पनी, माधव बाग बम्बई स० १-१९१७ ई० मू० ॥।) पृ० १४०
२३९	४४	बालगीता (खं० २)ले० दत्तात्रेय अनन्त आपटे, प्र० मु० चित्र० प्रेस,पूना सं० २-१८४६ शक,सं०१-१८४८ शक मू० १) पृ० ३४०
२४०	४५	गीतार्थ सार (निबन्ध) ले० वामन बाबाजी मोडक,मु० गणपत० प्रेस,बम्बई सं० १-१८८५ ई० मू०।)पृ०८८
२४१	४६	रहस्य संजीवन-भगवद्गीता, ले० लो० तिलक प्र० रामचन्द्र श्रीधर बलवन्त तिलक, पूना सं० १-१९२४ ई० मू० २) पृ० ४००
२४२	४७	गीतामृत शतपदी ले० खण्डोकृष्ण या बाबा गर्दे (पद्यानुवाद) प्र० केशव भीकाजी० बम्बई सं० २-१९२३ ई० मू० ॥) पृ० १००
२४३	४८	भ० गीता-पाठ विवृति टी० गीतावाचस्पति सदाशिव शास्त्री भिडे, प्र० गीता धर्म मण्डल, पूना सं०१-१९२८ ई० मू० ॥) पृ० २३०,
२४४	४९	भ० गीता-रहस्य ले० गंगाधर बलवन्त जोशी सातारकर, प्र० राम एजेन्सी, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई सं० १-१८३६ शक मू० ॥=) पृ० १६०
२४५	५०	मोरोपंती भ० गीत-टी० मयूर (आर्या-पद्य) प्र० मनोरञ्जन प्रेस, गिरगांव, बम्बई सं० १-१९१६ ई० मू० ।=) पृ० १८०
२४६	५१	बालबोध गीतापाठ ले० भास्कर विष्णु गुलवणी ऐतवडेकर, प्र०गीताधर्म मं०, पूना सं० १-१८५० शक मू० ।=) पृ० १३०
२४७	५२	झोंपाल्यावर्ची गीता ले० दत्तात्रेय अनन्त आपटे (पद्य) प्र० मु० चित्र० प्रेस, पूना सं० २-१८४७ शक मू० ।) पृ० ७०
२४८	५३	लघुगीता-(मूल गुटका) स० मुकुन्द गणेश मिरजकर प्र० ग्रन्थकार,पूना सं० २-१८४६ शक मू० =)पृ० ३०
२४९	५४	भ० गीता-(गु० सुबोध टीका) स० प्र० भिक्षु अखण्डानन्दजी,सस्तु साहित्य० अहमदाबाद सं० १-१९७८ वि० मू० ।=) पृ० २२५
२५०	५५	भ० गीता-(गु०, अध्या०१५ और १८) प्र० सस्तु साहित्य० अहमदाबाद सं० १-१९७८ वि० मू०)। पृ० ३२
२५१	५६	भ० गीता-(गु०) टी० मुकुन्द गणेश मीरजकर, प्र० मु० चित्र० पूना सं०-१९२७ ई० मू० ।-) पृ० २२५
२५२	५७	सार्थ गीता-(गु०) टी० नारायण रामचन्द्र सोहनी,प्र० बालकृष्ण लक्ष्मण पाठक, बम्बई सं० ६-१८४६ शक मू० ॥=) पृ० ४१०

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
२५३	५८	गीतेंतील नित्यपाठ या गीता सार (गु०) ले० जगन्नाथ गणपत ठक्या प्र० तुकाराम पुंडलीक शेठ्ये, माधव बाग, बम्बई सं० १-१९२७ ई० मू० ॥) पृ० २००
२५४	५९	भ० गीता-मात्रा मतमयूरी (गु०) टी० बालकृष्ण दिनकर वैद्य (पद्य) मु० निर्णय० बम्बई सं० १-१९०४ ई० मू० ॥) पृ० ३००
२५५	६०	भ० गीता-(गु०) टी० रामचन्द्र भीकाजी गुंजीकर (सुबोध चन्द्रिका) प्र० निर्णय० बम्बई सं० १०-१९२१ ई० मू० ॥।=) पृ० ३२५
२५६	६१	पद्मरत्न गीता (गु०) ले० ज्ञानदेव (पद्य) प्र० मु० निर्णय० बम्बई सं०-१९२७ ई० मू० ॥=) पृ० १००
२५७	६२	भ० गीता-(गु०) टी० सदाशिव शास्त्री भिडे,प्र० केशव भीकाजी० बम्बई सं०-१८५० शक मू० =)॥ पृ० २५०
२५८	६३	भ० गीता-(गु०) टी० बलवन्त त्र्यम्बक द्रविड़ प्र० मु० यशवन्त प्रेस, पूना सं०७-१९२७ ई० मू०।-)पृ० २२५
२५९	६४	भ० गीता-(गु०) टी० चिन्तामणि विनायक वैद्य प्र० ग्रन्थकार, गिरगांव, बम्बई सं० १-१९२७ ई० मू० ॥) पृ० २७५
२६०	६५	भ० गीता (गु०) टी० वामन पण्डित (समश्लोकी पद्यानुवाद); २ दासोपंत (गीतार्णवसुधा) प्र० तुकाराम तात्या. बम्बई सं०-१८९२ ई० मू० ॥=) पृ० ३००
२६१	६६	गीतार्थ पद्यभास्कर (गु०) टी० पं० नृहरि (पद्यानुवाद) प्र० मु० इन्दिरा प्रेस, पूना सं० १-१८२१ शक मू० ॥=) पृ० ३२५
२६२	६७	भ० गीता-(गु०) टी० मराठी पद्यानुवाद स० प्र० कानजी कालीदास जोशी, कांदावाडी, बम्बई सं०१-१९८३ वि० मू० ॥) पृ० ३२५

१ लिपि देवनागरी ४ भाषा—मेवाड़ी (राजपूताना)

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
२६३	ॐ१	श्रीमद्भगवद्गीता-समश्लोकी पद्यानुवाद, प्र० कुंवर चतुरसिंह, करजालीकी हवेली, उदयपुर (मेवाड़) सं० १-१९२० ई० मू०) पृ० १००
२६४	ॐ२	भ० गीता-(गु०) स० प्र० गुलाबचन्द नागोरी आनन्दाश्रम, पैठण (औरङ्गाबाद) सं० १-१९७३ वि० मू० ॥) पृ० ३००

१ लिपि देवनागरी ५ भाषा-नेपाली

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
२६५	१	श्रीमद्भगवद्गीता—टी० पं० अग्निहोत्र शिवपाणी (मनोरमा नेपाली भाषाटीका) प्र० गोरख पुस्तकालय, रामघाट, काशी सं० १०-१९२३ ई० मू० १॥) पृ० ३६०

२ लिपि--गुजराती ६ भाषा--गुजराती

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२६६	१	श्रीमद्भगवद्गीता (महाभारत भाग ३ भीष्मपर्व पृ० ४०४ से ६५१) टी० शास्त्री कल्याणशंकर भानुशंकर और शास्त्री गिरिजाशंकर मयाशंकर स० प्र० भिक्षु अखण्डानन्द, सस्तुं साहित्यवर्द्धक कार्या०, अहमदाबाद सं० १-१९८३ ई० मू० ४) पृ० २४६
२६७	२	भ० गीता--ले० ज्ञानेश्वरजी-भावार्थ दीपिका (मराठी) अ० प्र० गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई सं० २-१९२२ ई० मू० ६) पृ० ४२५
२६८	*३	भ० गीता पंचरत्न टी० रणछोड़जी उद्धवजी शास्त्री प्र० जटाशङ्कर बलदेवराम भट्ट, मातर, (खेड़ा) सं० ३-१९६८ वि० मू० ४) पृ० ५००
२६९	*४	भ० गीता- (लिपि-देवनागरी) टी० पं० मणिलाल नथुभाई द्विवेदी प्र० ग्रन्थकार मु० तत्त्वविवेचक प्रेस, बम्बई सं० १-१९५० वि० मू० ७) पृ० ४००
२७०	५	भ० गीता (पद्यानुवाद) ले० न्हानालाल दलपतराम कवि प्र० ग्रन्थकार, अहमदाबाद मु० गणात्रा प्रिंटिंग वर्क्स राजकोट पता--नारायण मूलजी पुस्तकालय, कालबादेवी रोड, बम्बई सं०--१९१० ई० मू० ४) पृ० २४० (१६ पेजी सं० २--१९७८ वि० मू० १॥) पृ० २५०)
२७१	*६	भ० गीता (खण्ड ५, लिपि--देवनागरी, शांकर भाष्यके गुजराती भाषान्तर सहित) स० विश्वनाथ सखाराम पाठक प्र० वशराम पीताम्बर माणेक मु० गणात्रा०, राजकोट पता- बेचर मेघजी एण्ड सन्स, पाराबाजार राजकोट सं० १-१९६५ वि० मू० १०॥) पृ० ११००
२७२	७	भ० गीताकी भूमिका (निबन्ध) ले० पं० माधव शर्मा प्र० भट्ट विट्ठलजी धेलाभाई, जम, खम्बालिया (काठियावाड़) सं० १--१९८४ वि० मू० ।) पृ० ३०
२७३	८	भ० गीता टी० १ मधुसूदन-टीका २ शास्त्री हरिदास कालीदास (मधुसूदनीका गुजराती भाषान्तर) नवानगर हाईस्कूल, जामनगर पता--कहानजी न्हालजी शकर, संघाडियाफली (जामनगर) सं० १--१९२४ ई० मू० ५) पृ० ६७०
२७४	९	भ० गीता टी० शास्त्री जीवराम लल्लुभाई, रायकवाल (शङ्करानन्दी टीकाका गुजराती भाषान्तर) प्र० सेठ पुरुषोत्तमदास मु० गुजराती प्रेस, बम्बई पता-एन० एम० त्रिपाठी कं०, बम्बई सं०--१९६२ वि० मू० ३॥) पृ० ३५०
२७५	१०	भ० गीता टी० पं० नत्थूराम शङ्कर शर्मा (रहस्य-दीपिका टीका) प्र० गणपतराम नानाभाई भट्ट, अहमदाबाद सं० ५--१९५६ वि० मू० ३॥) पृ० ५००
२७६	११	भ० गीता टी० पं० मनसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी (शाङ्करभाष्यका गुजराती भाषान्तर) प्र० धर्मसुखराम तनसुखराम त्रिपाठी, बम्बई मु० निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सं० १--१९८० वि० मू० ४) पृ० ८२५
२७७	१२	भ० गीता रहस्य ले० लो० तिलक (मराठी) अ० उत्तमलाल के० त्रिवेदी प्र० तिलकबन्धु, पूना सं० २-१९२४ ई० मू० ४) पृ० ९००
२७८	१३	भ० गीता ज्ञानेश्वरी (मराठी) अ० रणसिंह दीपसिंह परमार नमोली प्र० सस्तुं० कार्या०, अहमदाबाद सं०४--१९८४ वि० मू० २) पृ० ७६० (मराठी गीता सहित)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२७९	१४	भ० गीता-ज्योति ले० मगनभाई चतुरभाई पटेल, अहमदाबाद मु० सूर्यप्रकाश प्रेस, अहमदाबाद सं० १ -१९२७ ई० मू० ३) पृ० ३७०
२८०	१५	भ० गीता (खं० ७; अ० १, २, ३, ४, १२, १५, १६) टी० रामशङ्कर मोहनजी प्र० मोक्षमन्दिर, अहमदाबाद सं० १–१९७९, १९८०, १९८२, १९८८, १९८२, १९७९, १९८४ वि० मू० १।≡) पृ० ४२५
२८१	१६	गीतानुहृदय (निबन्ध) ले० प्र० सागर जयदा त्रिपाठी, श्रीक्षेत्र, सरसेज (अहमदाबाद) सं० १–१९८४ वि० मू० ॥-) पृ० ३०
२८२	१७	गीतानी विचारणा (निबन्ध) ले० प्र० सागर जयदा० (अहमदा०) सं० १- १९८४ वि० मू० ॥-) पृ० ३२
२८३	१८	श्रीकृष्ण-अर्जुन गीतोपदेश (निबन्ध) ले० मणिशंकर दलपतराम जोशी प्र० गिरजाशंकर मणिशंकर भट्ट, मुरारजी गोकुलदास चाल, गिरगाँव (बम्बई नं० ४) सं० १–१९७७ वि० मू० ।) पृ० २५
२८४	१९	भ० गीता-प्रबन्ध (लिपि-देवनागरी) ले० श्रीराम (पद्यानुवाद) मु० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई (ग्रन्थ रचना १६९० वि०) मू० ॥=) पृ० ७५
२८५	२०	भ० गीता (अ० ७ वां) टी० स्वा० विद्यानन्दजी महाराज, प्र० मोहनलाल हरिलाल राज, मांडवीनी पोल, देवनी शहरी (अहमदाबाद) सं०-१९८३ वि० मू० =) पृ० ६५
२८६	२१	गीता-सुभाषितम् ले० मोरो नानाजी पाटील (मराठी) अ० नन्दसुखराम हरिसुखराम मेहता प्र० ग्रन्थकार, कबलीचाल, दादर (बम्बई) सं० १–१९२८ ई० मू० १) पृ० ११२
२८७	२२	गीता सांख्य-संगीत (अ० २ रा, पद्य) ले० प्राणजीवन प्र० मूलजी भाई काशीदास सं० १—१९६६ वि० मू० ।-) पृ० ५०
२८८	२३	भ० गीता (संगीत पद्य) ले० प्र० जोशी जयराम रवजी भागलीया पता-जोशी दामोदर जेराम, गिरगाँव (बम्बई नं० ४) सं० १-१९६८ वि० मू० १) पृ० १२०
२८९	२४	भ० गीता (पद्य) ले० माधवराव भास्करराव कर्णिक प्र० कर्णिक साहित्य-प्रकाशन मन्दिर, गोपीपुरा, सूरत सं० ३-१९८३ वि० मू० ॥) पृ० १००
२९०	२५	भ० गीता (पद्य) ले० महात्मा प्रीतमदास प्र० सस्तु० कार्या० सं० १-१९८१ वि० मू० ≡) पृ० ६०
२९१	२६	भ० गीता-गुजराती सरलार्थ सहित प्र० सस्तु० कार्या० सं० ८–१९८९ वि० मू० ।) पृ० २७०
२९२	२७	भ० गीता (लिपि-देवनागरी) गुजराती भाषानुवाद प्र० गुजराती प्रेस, बम्बई मू० १) पृ० ३६०
२९३	२८	भ० गीता पंचरत्न (गुज० भाषा०) प्र० अब्दुल हुसेन आदमजी, भावनगर सं० १–१९६८ वि० मू० १।) पृ० २२०
२९४	२९	भ० गीता टी० रेवाशंकर नागेश्वर अध्यापक प्र० ग्रन्थकार, वेलजपुर (भरोंच) सं० १–१९७८ वि० मू० २) पृ० ४१०
२९५	३०	त्रिरत्न गीता (भ० गीता; अर्जुन गीता-पद्य तथा विष्णुसहस्रनाम, अनुस्मृति आदि स्तोत्रों सहित) प्र० ललिता गौरी सामराव, अहमदाबादी बजार, नाडियाद मु० ज्ञानोदय प्रेस, भरोंच सं० २–१९८१ वि० मू० १॥) पृ० ३००
२९६	३१	क्षत्रिय-धर्म-गीता टी० कानजी कालीदास जोशी प्र० बहेचरसिंहजी जवानसिंह रावल, कांदावाडी, बम्बई सं० १–१९८१ वि० मू० १) पृ० १२०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२९७	३२	भ० गीता (गुटका, मूल) प्र० बोहरा ब्रजलालजी जीवनदास, मौहा, काठियावाड़ सं० १–१९८४ वि० मू० अज्ञात पृ० १२५
२९८	३३	समर्थ गीता वा भ० गीता (गु०, मूल) स० भट्ट रामशंकरजी मोहनजी, मोक्ष-मन्दिर, अहमदाबाद सं० १–१९२८ ई० मू० ।) पृ० १२०
२९९	३४	भ० गीता (गु०) गुज० भाषा० प्र० गुजराती प्रेस, बम्बई सं० ४–१९७९ वि० मू० ॥≡) पृ० ४००
३००	३५	भ० गीता (गु०) गुज० भाषा० प्र० थियोसोफिकल सोसाइटी, बम्बई सं० ४–१९८० वि० मू० ॥।)पृ०४००
३०१	३६	भ० गीता (गु०) गुज० भाषा० टी० मणिलाल इच्छाराम देसाई प्र० गुज० प्रेस, बम्बई सं० २–१९८३ वि० मू० ।=) पृ० २४०
३०२	३७	भ० गीता (गु०) गुज० भाषा० प्र० सस्तु० कार्या०, अहमदाबाद सं० ७–१९८४ वि० मू० =) पृ० २२०
३०३	३८	एकाध्यायी गीता (गु०, अ० १८ वां) प्र० सस्तु० कार्या० सं०–१९८४ वि० मू०)। पृ० ३०
३०४	३९	भ० गीता (गु०) टी० तुलजाशंकर गौरीशंकर याज्ञिक प्र० मु० चित्रशाला प्रेस, पूना सं० १–१९२४ ई० मू० ।–) पृ० २५०
३०५	४०	पंचदश गीता (गु०) गुज० भाषा० प्र० हरगोविन्ददास हरजीवनदास बुक्सेलर, अहमदा० सं० २–१९८२ वि० मू० १॥) पृ० ५२५
३०६	४१	भ० गीता (गु०, पद्य) ले० वल्लभजी भाणजी मेहता पता– अमरचन्द भाणजी मेहता, ग्रीन चौक, मोरवी सं० १–१९८४ वि० मू०) पृ० २५५
३०७	४२	भ० गीता टी० कें० त्रि० रा० दलाल प्र० कृष्णदास नारायणदास एंड सन्स, नानावट, सूरत, सं० ७–१९८४ वि० मू० ॥–) पृ० ३५०
३०८	४३	भ० गीता टी० महाशंकर ईश्वरजी प्र० सेठ जमनादास कल्याणजी भाई, राजकोट सं० ७–१९६२ वि० मू० ॥) पृ० ३२५
३०९	४४	भ० गीता (गु०) टी० के०के० जोशी प्र० ग्रन्थकार, कांदावाड़ी, बम्बई सं० २–१९८४ वि० मू०॥।) पृ० २६०
३१०	४५	भ० गीता (गु०) टी० के० के० जोशी (पद्यानुवाद) प्र० ग्रन्थकार, कांदावाड़ी, बम्बई सं० ६–१९८४ वि० मू० ॥) पृ० ३२५
३११	४६	भ० गीता (गु०, मूल) प्र० के० के० जोशी, कांदावाड़ी, बम्बई सं०-१९८४ वि० मू० ।=) पृ० १२०
३१२	४७	भ० गीता (गु०, अ० १२, १५) प्र० के० के० जोशी, बम्बई सं०–१९८४ वि० विना मूल्य पृष्ठ २०
३१३	४८	भ० गीता (गु०) गुजराती भाषानुवाद प्र० मंगलदास जोईतराम, रिचीरोड, अहमदाबाद सं० २ १९८४ वि० मू० ॥।) पृ० ३२०

३–लिपि-बंगला ✦ ७ भाषा-बंगला

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३१४	७१	श्रीमद्भगवद्गीता टीका १ शंकर-भाष्य: २ आनन्दगिरी–टीका ; ३ श्रीधर–टीका; ४ हितलाल मिश्र–हितैषिणी बंगानुवाद स० श्रीआनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश प्र० ज्ञानचन्द्र भट्टाचार्य, कलकत्ता सं० २–१९४१ वि० मू० ७) पृ० ५६७

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३१५	२	भ० गीता टी० स्वामी कृष्णानन्द–गीतार्थ-संदीपिनी वंगानुवादः (१ शंकर-भाष्य; २ श्रीधर-टीका; ३ गरुडपुराणोक्त-गीतासार सहित) स० योगेन्द्रनाथ विद्याभूषण एम० ए०, प्र० काशी योगाश्रम, काशी, सं० ७–१३३२ बंगाब्द मू० ६) पृ० ६००
३१६	३	भ० गीता (खण्ड ३, टी० १२) टी० १ गीता बोध-विवर्धिनी संस्कृत व्याख्या (अन्वय और प्रतिशब्द सहित); २ बंगला भाषा-व्याख्या; ३ शङ्कराचार्य-भाष्य; ४ आनन्दगिरी टी०; ५ रामानुज-भाष्य; ६ हनुमत्कृत पैशाच भाष्य; ७ श्रीधर स्वामी-टी०; ८ बलदेव-भाष्य; ९ मधुसूदन टी०; १० नीलकंठ–टी०; ११ विश्वनाथ चक्रवर्ती (सारार्थ-वर्षिणी टीका); १२ गीतार्थसार-दीपिका (बंगला भाषा-तात्पर्य) : १३ यामुन मुनि (गीतार्थ संग्रह बंगानुवाद सहित) ; स० पं० दामोदर मुखोपाध्याय विद्यानन्द, प्र० धीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, कलकत्ता, सं० १८४० शक, मू० १६) पृ० ३४००
३१७	४	भ० गीता (खं० ३) टी० श्रीरामदयाल मजूमदार एम० ए० (१ संस्कृत-भाष्य सार संग्रह; २ बंगानुवाद, ३ प्रश्नोत्तररूपेण व्याख्या) प्र० उत्सव कार्यालय, कलकत्ता, खं० १ सं० ३ १८४८ शक, खं० २ सं० २–१८४३ शक, खं० ३ सं २–१८३५ शक मू० १३॥) पृ० १६००
३१८	५	भ० गीता टी० १ बंगानुवाद; २ शंकर-भाष्य; ३ आनन्दगिरी–टीका; ४ भाष्यानुवाद; स० महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण प्र० क्षीरोदचन्द्र मजूमदार, कलकत्ता सं० ३–१३३१ बं० मू० ४॥) पृ० १०२५
३१९	६	भ० गीता-रहस्य ले० लो० तिलक (मराठी) अ० ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर, प्र० क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर, कलकत्ता पता—तिलक बन्धु, पूना सं० १–१९८१ वि० मू० ३) पृ०
३२०	७	भ० गीता टी० श्रीकालीधन वन्दोपाध्याय (१ संस्कृत- व्याख्या; २ पद्यानुवाद) प्र० कालीदास मित्र, कलकत्ता सं० १३२० बं० मू० २) पृ० ६६०
३२१	८	भ० गीता टी० पं० पचानन तर्करत्न (बंगानुवाद) प्र० बंगवासी प्रेस, कलकत्ता सं० ३–१३३० बं० मू० १) पृ० ६५
३२२	*९	उपनिषद्-रहस्य या गीतार यौगिक-व्याख्या (अ० ५ तां) टी० श्रीविजयकृष्ण चट्टो० (१ विजय-भाष्य; २ व्यवहारिक अर्थ; ३ यौगिक अर्थ) प्र० उपनिषद्-रहस्य कार्यालय, मु० कर्मयोग प्रेस, हवड़ा सं० १३१८ बं० मू० १) पृ० ७०
३२३	*१०	भ० गीता (मू० और बं०) प्र० विहारीलाल सरकार, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता मू० १॥) पृ० ११०
३२४	*११	भ० गीता टी० गोस्वामी व्रजवल्लभ विद्यारत्न बंगानु० (श्रीधर-टीका सहित) प्र० विश्वम्भर लाह, कलकत्ता सं० ४ १२९९ बं० मू० २) पृ० २५६
३२५	*१२	भ० गीता टी० बंकिमचन्द्र चट्टो०-बंगानु० सं०-१३१३ बं० मू० ३) पृ० १७५
३२६	*१३	भ० गीता टी० श्रीमध्वाचार्य भाष्य, स० श्रीकेदारनाथ दत्त 'भक्तिविनोद' प्र० सज्जन-तोषिणी कार्या० मानिकतल्ला, कलकत्ता सं०-४०६ गौराब्द मू० ॥) पृ० ५५
३२७	*१४	भ० गीता-नाटक ले० कृष्णप्रसाद वसु प्र० मु० कालीप्रसन्न चट्टो० यशोहर हिन्दू पत्रिका प्रेस, कलकत्ता सं०–१३३३-बं० मू० ॥) पृ० ६३
३२८	१५	गीता-परिचय ले० रामदयाल मजूमदार, प्र० उत्सव कार्या०, कलकत्ता सं० २–१३३० बं० मू० १) पृ०
३२९	१६	भ० गीता मूल प्र० महेशचन्द्र भट्टाचार्य कम्पनी, कलकत्ता सं०-१३३२ बं० मू० ।–) पृ० ११०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३३०	१७	श्रीकृष्ण-शिक्षा या भ० गीता (प्रथम भाग) टी० बिहारीलाल सरकार बी० एल० (श्रीधर-टीकाका अनुवाद) पता—वसुमति कार्या० कलकत्ता सं० १९१३ ई० मू० १=) पृ० २६३
३३१	⊛१८	आध्यात्मिक गीता या भ० गीता (खं० ३) १ मूल; २ अन्वय और पदच्छेद; ३ टीकाकी विशद व्याख्या; ४ बंगानुवाद; ५ आध्यात्मिक-भाष्य; ६ योग-साधनाकी कथा; स० श्रीईशानचन्द्रघोष एम० ए०, प्र० मनीन्द्रनाथ घोष, कांकशियाली, चुंचुड़ा सं०-१२२६, १३२९, १३३५ बं० मू० ६) पृ० ५५०
३३२	⊛१६	भ० गीतोपनिषद् (खं० ३; अ० १, २, ३) टी० क्षीरोदनारायण भुयां—श्रीकृष्णभाविनी टीका पता—राजेन्द्रनारायण भुयां, आशुतोष मुकर्जी रोड, भवानीपुर, कलकत्ता सं० १३३१, १३३२, १३३३बं० मू० १॥) पृ० ३००
३३३	२०	भारत-समर या गीता पूर्वाध्याय ले० रामदयाल मजूमदार प्र० छत्रेश्वर चट्टो० कलकत्ता सं० २-१३३२ बं० मू० २) पृ० ४००
३३४	२१	गीताय मुक्तिवाद (प्रथम अ०) टी० अमरीकान्तदेव शर्मा काव्यतीर्थ, मु० लक्ष्मीविलास प्रेस, कलकत्ता सं० १-१३३४ बं० मू० १॥) पृ० १४०
३३५	*२२	दार्शनिक—ब्रह्मज्ञान और गीता, प्र० सुरेन्द्रनाथ मुखो०, भवानीपुर, कलकत्ता सं० १-१३३३ बं०मू० अज्ञात पृ० २६.
३३६	२३	भ० गीता टी० विद्यावागीश ब्रह्मचारी—पद्यानुवाद स० शशिभूषण चौधरी, प्र० प्रमथनाथ चौधरी, चीना बाजार, कलकत्ता सं० १-१३०४ बं० मू० १) पृ० २५०
३३७	⊛२४	भ० गीतार समालोचना ले० जयगोपाल दे पता—लाहिरी पुस्तका० कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता सं०—१८६५ ई० मू० ।=) पृ० ५४
३३८	⊛२५	भ० गीता—छाया समन्विता, ले० प्रतापचन्द्र सेन गुप्त (पद्य) प्र० कामाख्याप्रसाद सेन, बगड़ी बाड़ी (बंगाल) सं० १-१९०८ ई० मू० १) पृ० २७५
३३९	*२६	भ० गीता टी० महेन्द्रनाथ घोषाल-बंगानुवाद (श्रीधरी टीका सहित) प्र० वेणीमाधव दे कम्पनी, बड़तल्ला, कलकत्ता सं०-१२९२ बं० मू० ४) पृ० ७२०
३४०	⊛२७	भ० गीता (खं० ६) टी० देवेन्द्रविजय वसु-पद्यानुवाद और व्याख्या प्र० शैलेन्द्रकुमार वसु, मु० मेटकाफ प्रेस, कलकत्ता सं० १-१३२०, १३२०, १३२१, १३२२, १३२३, १३२६ बं० मू० १०) पृ० ३२००
३४१	२८	भ० गीता (मूल, अन्वय, पदच्छेद, टीका, टिप्पणी, अनुक्रमणिका आदि सहित, सचित्र) टी० श्रीजयदयालजी गोयन्दका—साधारण भाषा टीका (हिन्दी) अनुवाद करानेवाला और प्र० गोविन्दभवन कार्यालय, बाँसतल्ला गली, कलकत्ता (पता—गीता प्रेस, गोरखपुर) सं० १ १३३५ बं० मू० १) पृ० ५२५
३४२	२९	भ० गीता टी० सत्येन्द्रनाथ ठाकुर—पद्यानुवाद प्र० इन्दिरा देवी, बालीगंज, कलकत्ता सं० २-१३३० बं० मू० २॥) पृ० ४००
३४३	३०	गीता-मधुकरी टी० १ बंगानुवाद; २ पद्यानुवाद स० आशुतोष दास प्र० भूतनाथ दास, कलकत्ता सं० ३-१३३१ बं० मू० २।) पृ० ७००
३४४	३१	भ० गीता टी० पं० पार्वतीचरण तर्कतीर्थ १ बंगानुवाद २ श्रीधरी टीका ३ श्रीधरी अनुवाद स० राजेन्द्रनाथ घोष प्र० शरच्चन्द्र चक्रवर्ती, कालिका प्रेस, कलकत्ता सं०-१३२८ बं० मू० ३) पृ० ७५०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३४५	३२	भ० गीतार समालोचना ले० सोहम् स्वामी प्र० सूर्यकान्त वन्द्यो० तांती बाजार, ढाका सं० १–१९१९ ई० मू० २) पृ० ३००
३४६	३३	भ० गीता टी० स्वा० उत्तमानन्द ब्रह्मचारी स० स्वा० ब्रह्मानन्द गिरी प्र० गोविन्दपद भट्टाचार्य, कलकत्ता सं० २–१३२१ बं० मू० १।।) पृ० ३२०
३४७	३४	भ० गीता टी० कालीप्रसन्न विद्यारत्न (श्रीधरी सह) प्र० शरच्चन्द्र शील एंड सन्स, कलकत्ता सं० ३–१३३४ बं० मू० १) पृ० ४००
३४८	३५	भ० गीता टी० हरिमोहन वन्द्यो० प्र० आदिनाथ आश्रम, काशी बोस लेन, कलकत्ता सं० १–१३३५ बं० मू० २) पृ० ४५०
३४९	३६	गीता-तत्त्व ले० स्वा० सारदानन्द प्र० उद्बोधन कार्या०, कलकत्ता सं० १–१३३५ बं० मू० १।।) पृ०
३५०	३७	गीताय ईश्वरवाद ले० हीरेन्द्रनाथ दत्त एम० ए० बी० एल० (निबन्ध) प्र० बंगीय तत्त्व सभा, कालेज स्कायर, कलकत्ता सं० ५–१३३३ बं० मू० १।।) पृ० ३६०
३५१	३८	गीताधर्म ले० हेरम्बनाथ पंडित (पद्य) पता–गुरुदास चट्टो०, नं० २०१ कार्नवालिस स्टीट, कलकत्ता सं० १–१३२८ बं० मू० १) पृ० १३०
३५२	३९	गीता-पाठ ले० द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर (निबन्ध) प्र० शान्तिनिकेतन आश्रम, बोलपुर सं० १३३२ बं० मू० १) पृ० ३५०
३५३	४०	गीतार भूमिका ले० श्रीअरविन्द घोष प्र० आर्य साहित्यभवन, कलकत्ता सं० ३–१३३४ बं० मू० १) पृ०
३५४	४१	धर्म और जातीयता (गीता–निबन्ध) ले० श्रीअरविन्द घोष प्र० शान्ति-निकेतन आश्रम, बोलपुर सं० २–१३२९ बं० मू० १।।) पृ० ११०
३५५	४२	अरविन्देर गीता (खं० २) ले० श्रीअरविन्द घोष अ० अनिलवरणराय प्र० विभूतिभूषण राय, बर्दवान पता–डी० एम० लाइब्रेरी, कलकत्ता सं० १–१३३१, १३३३ बं० मू० ३।।) पृ० ४५०
३५६	४३	पुण्य–गीता (पद्य) ले० हरिशंकर दे प्र० महेश पुस्तका०, बराहनगर, कलकत्ता मू० १।।) पृ० ४००
३५७	४४	भ० गीता टी० पं० कृष्णचन्द्र स्मृतितीर्थ (१. बंगानुवाद, २. श्रीधरी, ३. टिप्पणी) प्र० सारस्वत पुस्तका० कलकत्ता सं० २–१३३० बं० मू० १) पृ० ६७५
३५८	४५	भ० गीता टी० १ विश्वनाथ चक्रवर्ती (सारार्थ-वर्षिणी टीका); २ भक्तिविनोद ठाकुर (रसिक-रंजन भाषा-भाष्य) स० गोस्वामी भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती प्र० गौड़ीय मठ, कलकत्ता सं० ३–मू० १।।) पृ० ३८२
३५९	४६	भ० गीता टी० १ बलदेव विद्याभूषण (गीता-भूषण-भाष्य); २ भक्तिविनोद ठाकुर (विद्वद्-रंजन भाषा-भाष्य) स० गोस्वामी भक्तिविनोद सरस्वती प्र० गौड़ीय मठ, कलकत्ता सं० २–४३८ गौराब्द मू०) पृ० ४५०
३६०	४७	भ० गीता (पद्य) ले० विलासचन्द्रराय शर्मा प्र० अजितचन्द्रराय, बेचारामेर देउढी, ढाका सं० १–१३३३ बं० मू० ।।=) पृ० १२२
३६१	४८	बंगला गीता और अनुगीता ले० विपिनविहारी मण्डल प्र० भारत बान्धव पुस्त० दर्जीपाड़ा, कलकत्ता सं० १–१३३४ बं० मू० १) पृ० २२०
३६२	४९	मेयेदेर गीता ले० कुमुदकुमार वन्द्यो० प्र० बंगाल पब्लिशिंग होम, कलकत्ता सं० १–१३२९ बं० मू० १।) पृ० १५०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३६३	५०	भगवत्-प्रसंग (गीता-निबन्ध) ले० वसन्तकुमार चट्टो० एम० ए० पता—गुरुदास चट्टो०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १—१३३१ बं० मू० १।) पृ० २२५
३६४	५१	गीतासार स० स्वा० सत्यानन्द प्र० हिन्दू मिशन, कलकत्ता मू० ।।।) पृ० ५८
३६५	५२	राजयोग (गीता-निबन्ध) ले० स्वा० निर्मलानन्द प्र० सावरणी मठ, कलकत्ता सं० १—१३३० बं० मू० १) पृ० १२५
३६६	५३	कर्मयोग (गीता-निबन्ध) ले० श्रीअश्विनीकुमार दत्त प्र सरस्वती पुस्त०, रामनाथ मजूमदार स्ट्रीट, कलकत्ता सं० २- १३३२ बं० मू० १=) पृ० १२०
३६७	५४	गीता-तत्त्व समाहार ले० ज्ञानेन्द्रमोहन सेन पता—नरसिंह पब्लिकेशन आफिस, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता सं०—१३२९ बं० मू० ।।।) पृ० १२०
३६८	*५५	भ० गीता टी० नवीनचन्द्र सेन (पद्यानुवाद) पृ० २००
३६९	५६	ईशातत्त्व और गीतातत्त्व (निबन्ध) ले० खगेन्द्रनाथ गुप्त, गरीफा, कांचननगर, चोबीसपरगना, (बंगाल) प्र० और मु० नवविधान प्रेस, कलकत्ता सं०१—१३३१ बं० मू०-), पृ० ३०
३७०	५७	गीतार कथा ले० अन्नदाकुमार चक्रवर्ती प्र० सिटी बुकडिपो, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १-१३३३ बं० मू० ।।) पृ० ९४
३७१	५८	भ० गीता टी० गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टा० (श्रीधरी सह) प्र० छात्र पुस्तका०, कलकत्ता सं० नवीन—१८४३ शक मू० १।।) पृ० ४३०
३७२	५९	गीतारहस्य ले० नीलकंठ मजूमदार एम० ए० प्र० केदारनाथ वसु, कलकत्ता सं० ६-१९२२ ई० मू० ११) पृ० २७०
३७३	६०	भ० गीता टी० उपेन्द्रनाथ भट्टा० प्र० सेंट्रल बुक एजेन्सी, कलकत्ता सं०—१३३५ बं० मू० १) पृ० २३०
३७४	६१	भ० गीता (पद्य) ले० यतीन्द्रमोहन सेन, बी० एल० 'गीतातीर्थ' प्र० गोल्डक्वीन कम्पनी, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता मू०) पृ० २३०
३७५	६२	भ० गीता टी० ताराकान्त काव्यतीर्थ (पद्यानुवाद)प्र० पी० एम० बागची कम्पनी, कलकत्ता सं०१—१३३२ बं० मू० १) पृ० २६०
३७६	६३	गीता प्रदीप या साधन तत्त्व ले० स्वा० सच्चिदानन्द सरस्वती प्र० लहरी पुस्तका०, काशी सं०—१३३२ बं० मू० ।।।) पृ० १७०
३७७	६४	भ० गीता० (मूल) स० कृष्णचन्द्र स्मृतितीर्थ प्र० सारस्वत पुस्त० कलकत्ता सं०—१३२८ बं० मू० ।।) पृ० ९०
३७८	६५	भ० गीता (पद्य) ले० भोलानाथ विद्यानिधि पता एन० सी० मजूमदार कम्पनी, कार्न०स्टीट, कलकत्ता सं०—१३३३ बं० मू० ।।) पृ० १५०
३७९	६६	भ० गीता (पद्य) ले० मन्मथनाथसिंह प्र० नित्यनिरंजनसिंह, मथुरापुर, चोबीस परगना (बंगाल) सं० १—१३२९ बं० मू० १) पृ० १५०
३८०	६७	गीताय सृष्टि-तत्त्व (निबन्ध) ले० योगेन्द्रनाथराय प्र० रमेशचन्द्रराय पता—गुरुदास चट्टो० कलकत्ता सं० १—१९२६ ई० मू० ।।) पृ० १०४

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
३८१	६८	शिशुगीता (श्रीयोगी कथित,केवल भाषा) ले० प्र० योगेन्द्रनाथ रक्षित, ब्राह्म प्रकाश कार्या० हरीतकी बगान, कलकत्ता मू० ।=) पृ० १२०
३८२	६९	गीताबन्धु ले० ज्योतिश्चन्द्र सरकार (निबन्ध) प्र० नलिनीमोहनराय चौधरी, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता मू० ।≡) पृ० १००
३८३	७०	भ०गीता(गुटका)टी०व्योमब्रह्म गीताध्यायी पता-गुरुदास चट्टो० कलकत्ता सं०-१३३५ बं० मू० १।।) पृ० ४५०
३८४	७१	भ०गीता (गु०) टी० छत्रधर घोष प्र० घोष कं०, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता सं०-१३३४ बं० मू० ।=) पृ० १५५
३८५	७२	गीता-बिन्दु (पद्य, गु०) ले० बिहारीलाल गोस्वामी प्र० नलिनीरंजन राय और सुरेन्द्रनाथ मुखो०, कलकत्ता सं० १-१३२० बं० मू० १) पृ० २२५
३८६	७३	भ० गीता (गु०) बंगानु० सहित स० नगेन्द्रनाथ सिद्धान्तरत्न प्र० विश्वेश्वर ठाकुर पता—संस्कृत बुक डिपो, कार्न० स्ट्रीट, कलकत्ता सं०-१३३० बं० मू० ।।–) पृ० २२०
३८७	७४	भ० गीता (गु०) टी० ब्रह्मचारी प्राणेशकुमार (श्रीधरी सह) स० राजेन्द्रनाथ घोष प्र० रामकृष्ण अर्चनालय, इटाली, कलकत्ता सं०-१३३१ बं० मू० ।।=) पृ० ४५०
३८८	७५	गीता-काव्य (गु० पद्य) ले० मणीन्द्रनाथ साहा प्र० ग्रन्थकार, नवाबगंज, मालदा पता-गुरुदास चट्टो०, कलकत्ता सं० १-१३३५ बं० मू० ।।) पृ० २१०
३८९	७६	भ० गीता (गु०) टी० जगदीशचन्द्र घोष बी० ए० (गीतार्थ दीपिका) प्र० अनाथबन्धु आदित्य, प्रेसीडेन्सी लाइब्रेरी, ढाका सं० १-१३३२ बं० मू० १।।) पृ० ११००
३९०	७७	भ० गीता (गु०) टी० १ बंगानुवाद २ पद्यानुवाद स० प्र० राजेन्द्रनाथ घोष पता- संस्कृत बुकडिपो, कलकत्ता सं० २-१३३१ बं० मू० १) पृ० १०५०
३९१	७८	भ० गीता (गु०) बंगानु० स० अधरचन्द्र चक्रवर्ती प्र० तारा पुस्तका० चित्पुर रोड, कलकत्ता सं०-१३३३ बं० मू० ।।=) पृ० ४५०
३९२	७९	भ० गीता (गु०) टी० कालीप्रसन्नसिंह स० विनोदबिहारी सील प्र० नरेन्द्रकुमार सील, कलकत्ता सं० ५-१३३१ बं० मू० ।।=) पृ० ३७०
३९३	८०	भ० गीता (गु०) टी० कृष्णचन्द्र स्मृतितीर्थ प्र० सारस्वत पुस्त०, कार्न० स्ट्रीट, कलकत्ता सं०-१३३१ बं० मू० ।।) पृ० ४९०
३९४	८१	भ० गीता (गु०) टी० १ प्रसन्नकुमार शास्त्री (सरलार्थ-प्रबोधिनी); २ शशधर तर्कचूडामणि (बंगानु०) स० प्रसन्नकुमार शास्त्री प्र० रमेशचन्द्र चक्रवर्ती पता-चक्रवर्ती चटर्जी एंड कम्पनी, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १६-१३३४ बं० मू० ।।=) पृ० ३८२
३९५	८२	भ० गीता (गु०) टी० महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़, स० राजेन्द्रनाथ घोष प्र० शरच्चन्द्र चक्रवर्ती, कलकत्ता सं० ४-१३२९ बं० मू० ।।–) पृ० ३२०
३९६	८३	भ० गीता (गु०) १ संस्कृत टीका; २, बंगानु० स० विनोदबिहारी विद्याविनोद और रामस्वरूप विद्यावागीश प्र० हेमांशुशेखर गुप्त, कलकत्ता सं०-मू० ।=) पृ० ४२०
३९७	८४	गीतामधुकरी (पद्य, गु०) स० आशुतोषदास प्र० भूतनाथदास, कलकत्ता सं० २-मू० ।।) पृ० ४००
३९८	८५	भ० गीता-बंगानु० (गु०) प्र० आर्यमिशन, कलकत्ता सं० २६-१३३२ बं० मू० ।।=) पृ० ४७०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३९९	८६	भ० गीता (गु०) टी० अविनाशचन्द्र मुखो० प्र० योगेन्द्रनाथ मुखो० संस्कृतप्रेस डिपो०, कार्न० स्ट्रीट, कलकत्ता सं०१२– मू० ॥=) पृ० २००
४००	८७	भ० गीता (गु०) ले० कुमारनाथ सुधाकर (१ पद्यानुवाद, २ गुरुकृपा-टीका) प्र० योगेन्द्रनाथ, संस्कृत बुकडिपो० कलकत्ता सं०१३–मू० ॥।) पृ० २४०
४०१	८८	भ० गीता (गु०) टी० कालीपद तर्काचार्य प्र० शरच्चन्द्र सूर एंड कम्पनी, कलकत्ता मू०) पृ० ४१०
४०२	८९	भ० गीता (गु०) बंगानु० प्र० हेमेन्द्रकुमार सील, कलकत्ता सं०२–मू० ॥) पृ० २३०
४०३	९०	भ० गीता (गु०) बंगानु० स० सुबोधचन्द्र मजूमदार प्र० प्रबोधचन्द्र मजूम० कलकत्ता सं०-१३३२ बं० मू० ॥=) पृ० ४००.
४०४	९१	भ० गीता (गु०) पद्यानुवाद स० सुबोधचन्द्र मजूम० प्र० प्रबोधचन्द्र मजूम० कलकत्ता सं०–१३३२ बं० मू० ॥=) पृ० १४०.
४०५	९२	भ० गीता (गु०) बंगानु० प्र० नारायणदास बाजोरिया, गीता सोसाइटी. ११७ हरीसनरोड, कलकत्ता सं० १–१९२७ ई० बिना मूल्य पृ० २६०.
४०६	९३	गीतारत्नामृत (गु०, पद्य) ले० श्यामाचरण कविरत्न प्र० बैसाख एंड सन्स, कलकत्ता सं०–१३३४ बं० मू० ॥=) पृ०२४०
४०७	९४	गीतामृत (पद्य, गु०) ले० प्रसन्नकुमार काव्यतीर्थ प्र० वाणी पुस्तका० श्याम बाजार, कलकत्ता सं०-१३३२ बं० मू० ॥=) पृ० २२०
४०८	९५	गीतारत्न (पद्य, गु०) स० प्र० नरेन्द्रकुमार सील, नित्यानन्द पुस्तका० अपरचितपुर रोड, कलकत्ता सं० २-१३२८ बं० मू० ॥=) पृ० २१०
४०९	※९६	ज्ञानसंकलिनी-गीता (गीता ज्ञानोपदेश-संग्रह, गु०) स० ललितकान्त देवनाथ प्र० पं० शंकरनाथ पता-गुरुदास चट्टो० कलकत्ता, सं० १-१३०४ बं० मू० =) पृ० ४०
४१०	※९७	गीता माहात्म्य–बंगानु० सहित (गु०) प्र० सत्यचरण मित्र, कलकत्ता सं०–१८९१ ई० मू० =) पृ०९१
४११	९८	भ० गीता(गु०)टी०कालीप्रसन्न सिंह प्र०रामकृष्ण पुस्तका०बराहनगर,कलकत्ता सं०–१९११ई०मू०॥।)पृ०५२५
४१२	९९	भ० गीता (गु०) बंगानु० स० कालीवर वेदान्तवागीश प्र० सम्मुन्नत साहित्य प्रकाशक कार्या० दर्जीपाड़ा, कलकत्ता मू० ।=) पृ० ३६०
४१३	१००	भ० गीता (गु०) टी० कालीप्रसन्न विद्यारत्न प्र० अमूल्यचरण दत्त, भारत पुस्तका० चितपुर रोड, कलकत्ता सं०-१३२८ बं० मू० ॥) पृ० ३७०
४१४	१०१	भ० गीता(गु०)टी०अमृतलाल चक्रवर्ती प्र०हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,कलकत्ता सं०-१९२८ई० मू० ≠) पृ०२५५
४१५	१०२	भ० गीता (गु०) टी० आशुतोषदेव (श्रीधरी-टीका सह) प्र० मुकुटविहारी मजूमदार, कलकत्ता सं० २–मू० ।=) पृ० ३७५
४१६	१०३	भ० गीता (तावीजी, मूल) स० प्र० गोपालदास मुखो०, कलकत्ता सं०-१३३५ बं० मू० =)॥ पृ० २४०
४१७	१०४	भ० गीता (मूल,तावीजी)स०गोस्वामी हरिदास प्र०हृषीकेश घोष, कलकत्ता सं०-१३३३ बं० मू० ≥) पृ० २३५
४१८	१०५	भ० गीता(मूल,तावपत्रपर छपी)स०प्र०हरिपद चट्टो० शास्त्र-प्रकाश पुस्तका०, कलकत्ता मू० १॥) पृ० १६३

४–लिपि-उत्कल ८–भाषा–उड़िया

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४१९	१	श्रीमद्भगवद्गीता–मूल और अनुवाद प्र० श्रीरामशङ्करराय मु० अरुणोदय प्रेस, बालूबाजार, चांदनी चौक, कटक सं०७–१९२७ ई० मू० ।=) पृ० १७९
४२०	२	भ० गीता–पद्यानुवाद स० भिखारीचरणदास मु० अरुणो०, कटक सं० १–१९२६ ई० मु० ॥) पृ० १०४
४२१	३	भ० गीता टी० फकीरमोहन सेनापति मु० अरु०, कटक सं० ७–१९२५ ई० मू० ॥) पृ० १४१
४२२	४	भ० गीता-मूल प्र० नारायणचन्द्रदास मु० अरु०, कटक सं० ६–१९२६ ई० मु० ।) पृ० ५४
४२३	५	भ० गीता-माहात्म्य (पद्य) ले० जनार्दन शर्मा प्र० पं० वासुदेव शर्मा मु० अरु०, कटक सं० १–१९२४ ई० मू० –)॥ पृ० १६
४२४	६	भ० गीता (मूल, गुटका) स० पं० गोपीनाथ शर्मा मु० अरु०, कटक सं० २–१९२४ ई० मू० ।) पृ० १७७
४२५	७	भ० गीता(मूल,गु०)प्र०पं० रत्नाकर गर्ग पता–राधारमण पुस्तकालय,कटक सं०२–१९२५ई०मू०।) पृ० १९२

५–लिपि-कनाड़ी ९–भाषा-कनाड़ी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४२६	१	श्रीमद्भगवद्गीता (खण्ड २) टी० शिवानन्द सुब्रह्मण्य, मैसोर (गूढार्थ-बोधिनी वा रहस्यार्थ-प्रबोधिनी); खण्ड १ सं० १९१३ ई० मु० क्राउन प्रेस, मैसोर; खण्ड २ सं०–१९१६ ई० मु० श्रीनिवास प्रेस, मैसोर मू० १०) पृ० १२२५
४२७	२	गीतार्थबोधिनी (मूल देवनागरी–लिपि: अध्याय ६) टी० गोविन्दराव सवानुर, धारवाड़ मु० कर्नाटक प्रिंटिंग वर्क्स, धारवाड़, सं० १–१८५० मू० ३) पृ० २६८
४२८	३	गीतार्थ विवरण टी० होसकेरे चिदम्बर्य स० १० पं० सालिगराम नारायण शास्त्री मु० परमार्थ प्रिंटिंग प्रेस, बंगलोर सं०–१९१७ ई० मू० ३) पृ० ४३६
४२९	४	गीता रहस्य (मूल देवनागरी–लिपि) ले० लो० तिलक (मराठी) अ० वासुदेवाचार्य भीमराव आलूर प्र० तिलकबन्धु, पूना मु० श्रीकृष्ण प्रेस, हुबली सं० १–१९१९ ई० मू० ३) पृ० ८५८
४३०	५	गीतामृत महोदधि टी० एम०श्रीकान्त्य,सागरा मु० कवस्टन प्रेस,बंगलोर सं०१–१९०८ ई०मू०॥)पृ० ८०
४३१	६	श्रीकृष्णार्य वाणीविलास–भगवद्गीता ले० स्वर्गीय मैसूर-महाराज एच० एच० चमराजेन्द्र उडियार मु० चामुंडेश्वरी प्रेस, बंगलोर सं० २–१९०८ ई० मू० ॥–) पृ० ६१
४३२	*७	गीतार्थसार (खण्ड२रा और ३रा; शांकर-भाष्यानुवाद) टी० वेंकटाचार्य तुप्पलु प्र० कृष्णैय्या वाजपेई बुक डिपो, बंगलोर; खण्ड२ सं०–१९००; खण्ड ३ सं०–१९०३ ई०मू० ५) पृ० ७६०
४३३	८	श्रीमद्भगवद्गीता टी० रामकृष्ण सूरी प्र० नरसिंहैय्या होलकरलु, मु० वागेश्वरी प्रेस, बंगलोर। सं० २–१८९५ ई० मू० १॥) पृ० ३६३
४३४	९	गीतार्थदीपिका (लिपि–तेलगुमें कनाडी भाषानुवाद) टी० किडांकी शेष गिरिराव, मद्रास प्र० मैहाउर श्रीनिवासाचार, मु० कमर्शियल प्रेस, मद्रास सं०–१९१२ ई० मू० ४) पृ० ५०४

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
४३५	१०	श्रीमद्भगवद्गीता (विद्यानन्द ग्रन्थमाला सीरीज नं० ७) बालबोधिनी टीका सहित ले० १वी०आदिनारायण शास्त्री, २ के० सुन्दर शास्त्री, ३ पनयाम सुन्दर शास्त्री ४ वी० सीताराम शास्त्री मु० आइरिश प्रेस, बंगलोर सं०१–१९१३ ई० मू०३) पृ० ४११
४३६	११	कर्नाटक-भगवद्गीता ले० नागारस कर्नाटक कवि (पद्यात्मक) सं० एम० श्रीनिवासराव बी० ए० मु० दी जी० टी० ए० प्रेस, मैसोर सं०–१९०८ ई० मु० १) पृ० १३०
४३७	१२	गीत्या गुट्टू अर्थात् गीता-रहस्य टी० श्रीरंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर एम० ए० प्र० कर्मवीर कार्यालय, धारवाड़। मु० श्रीकृष्ण प्रेस, धारवाड़ सं० १–१९२८ ई० मू० १=) पृ० १८६
४३८	१३	श्रीमद्भगवद्गीता टी० एच० शेषाचार्य, मु० दी बंगलोर प्रेस, बंगलोर सं०–१९२८ ई० मू० २) पृ० ४००
४३९	१४	संक्षेप गीता ले० वी०आत्माराम शास्त्री,उदयमणि,मु०सरदार प्रेस,मंगलोर सं०–१९२२ई०मू० ॥=) पृ० ७८
४४०	१५	गीतासार सर्वस्व (निबन्ध) ले० श्रीकान्त मु०बंगलोर टाउन प्रेस,बंगलोर सं०–१९०६ई०मू० =)पृ०१७
४४१	१६	श्रीमद्भगवद्गीता-सार-विचार (गीता व्याख्यान) ले० श्रीमहाभागवत कुर्तकोटि शंकराचार्य विद्याभूषण वेदान्तवाचस्पति आदि, करवीर मठ (खानदेश) प्र० एच० चिदम्बर्य मु० धर्मप्रकाश प्रेस, मंगलोर मू० १॥) पृ० २७५
४४२	१७	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका, पद्य) टी० बी० श्रीनिवास भट्ट साहित्य शिरोमणि (सुखबोधिनी टीका) प्र० मु० श्रीकृष्ण प्रेस, उडुपी सं०१–१९२७ ई० मू० २।) पृ० ४८७
४४३	१८	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका, पद्य) टी० एस० सुब्बाराव एम० ए० प्र०निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सं०२–१९२३ ई० मू० ॥।=) पृ० ३०८
४४४	१९	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका, पद्य) टी० शिवानन्द सुब्रह्मण्य, मैसूर मु० कोडान्ड राम प्रेस, मैसोर। सं० १–१९२३ ई० मू० ॥।)

९-लिपि–तामिल ❧ १०–भाषा–तामिल

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
४४५	१	श्रीमद्भगवद्गीता (तामिल अनुवाद) अ० रामचन्द्रानन्द सरस्वती (तात्पर्य बोधिनी) मु० थीरूमगल विलासम् प्रेस, मद्रास पता बी० रत्नानायक एण्ड सन्स, मद्रास; सं० १–१९२७ ई० मू० १) पृ० ५३९
४४६	२	भ० गी० ले० त्रिवेंकट स्वामी प्र० कलारार्थकर प्रेस, मद्रास सं–१९०० ई० मू० ४) पृ० ६२८
४४७	३	भ० गी० (खण्ड२) टी० १ वी० कुप्पू स्वामी अय्यर, २ जी० वी० वेंकटरमण अय्यर (गीतार्थ दीपिका) प्र० एस० जी० अय्यर एण्ड कं०, ट्रिप्लीकेन, मद्रास सं०५-मू० ९) पृ० ११७
४४८	४	भ० गी० ज्ञानेश्वरी (मराठी) अ० टी० पी० कोयेम्दाराम अय्यर (तामिल अनुवाद) प्र० पाण्डुरङ्ग प्रेस, ट्रिप्लीकेन, मद्रास मू० ५॥) पृ० १०४०
४४९	५	भ० गी० ले० श्रीमती आर० एस० सुब्बालक्ष्मी अम्मल बी० ए० एल० टी० प्र० शारदा युनाइटेड प्रेस, मद्रास सं० १–१९२८ ई० मू० २।) पृ० २७८

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४५०	६	भ० गी० ले० लक्ष्मणाचार्य प० कदुपली शेषाचार्य मु० वानीविलय मीथीराक्षर प्रेस, मद्रास सं० १-१६१४ ई० मू० २॥) पृ० ३७४
४५१	७	भ० गीता वचनम् ले० वी० अरुमुहम् सेरवी; प्र०रिपन प्रेस. मद्रास,सं० १६२१ई० मू०१।) पृ०२८८
४५२	८	भ० गीता भाष्यम् टी० ए० अनन्ताचार्य (शांकर-भाष्यनुवाद) प्र० रिपन प्रेस, मद्रास सं०-१९२५ ई०; मू० २।) पृ० २७६
४५३	६	भ० गीता (तामिल अनुवाद) अ० परमहंस सच्चिदानन्द योगेश्वर; पना-भारती प्रेस, मद्रास; सं०-४-१६२८ई० मू० २।) पृ० ४६०
४५४	१०	भ० गी० (गुटका)ले० सी० सुब्रह्मण्य भारती; प्र० भारती प्रेस, ट्रिप्लीकेन, मद्रास; सं० १६२८ ई०; मू० ।) पृ० २६०

७-लिपि-तेलगु▲११-भाषा-तेलगु

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४५५	१	श्रीमद्भगवद्गीता-परमार्थचन्द्रिका (खण्ड ६) टी० चतुर्वेद सुन्दरराम शास्त्री प्र० मु० सारदाम्बा विलास प्रेस, मद्रास सं० १-१६११, १६१३, १९१४, १६१५, १६२४, १६२७ मू० ३५) पृ० ३१५०
४५६	२	श्रीमद्भगवद्गीता (मूल सहित) टी० रामचन्द्र सारस्वत (पद्य) प्र० वी० रामस्वामी मद्रास सं० १-१६२८ ई० मू० २॥।) पृ० ६७५
४५७	३	श्रीमद्भगवद्गीता टी० ब्रह्मश्री नोहरी गुरुलिङ्ग शास्त्री मु० अमेरिकन डायमंड प्रेस, मद्रास सं० १-१६२८ ई० मू० ॥) पृ० ४८०
४५८	४	श्रीमद्भगवद्गीता प्र० हिन्दू समाज, राजमहेन्द्री सं० १-१६२८ ई० मू० ॥) पृ० १४५
४५९	५	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका) टी० ब्रह्म श्रीसतावधारी सूर्यनारायण शर्मा (पद्य) प्र० वी० रामस्वामी शास्त्री एण्ड सन्स मु० दी भभिल्का प्रेस, मद्रास सं०१-१९२६ ई० मू० १।) पृ० ३६५
४६०	६	श्रीभगवद्गीता (गुटका; तेलगु अनुवाद सहित) प्र० वी० रामस्वामी शास्त्री एण्ड सन्स, २६२ इस्पलेनेड, मद्रास सं०-१९२६ ई० मू० ॥) पृ० ४००
४६१	७	भगवद्गीता (गुटका, मूल तेलगु-लिपिमें) टी० ऐनी बेसेन्ट (अंग्रेजी अनुवाद) प्र० वी० रामस्वामी शास्त्री, इस्पलेनेड, मद्रास सं०२-१९२४ ई० मू० ॥) पृ० ४७०
४६२	८	भगवद्गीता (गुटका, मूल) प्र० वी० रामस्वामी शास्त्री, मद्रास सं० १-१९२७ ई० मू० ।=) पृ० २६५

८-लिपि-मलायालम्▲१२-भाषा-मलायालम्

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४६३	१	श्रीमद्भगवद्गीता टी० ईश्वरानन्द सरस्वती (श्लोकशः अनुवाद और श्लोकानुक्रमणिका सहित) मु० भारत विलासम् प्रेस, ट्रिचूर सं०-११०३ मलायालम् संवत् मू० १) पृ० ३१०

९ लिपि-गुरुमुखी ✤ १३ भाषा पंजाबी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४६४	⊛१	श्रीमद्भगवद्गीता-प्र० चिरागदीन सिराजदीन, ताजरान कुतुब, लाहौर सं० १-१९२१ वि० मू०) पृ० ७८०
४६५	⊛२	भ० गीता या गोविन्द गीता ले० सरदार हरिसिंह छाछी (पद्यानुवाद) प्र० रामचन्द्र सक्सेना बुकसेलर, मायाकटाला, लाहौर सं०६-१९९३ वि० मू० १।) पृ० ६७०

१० लिपि-देवनागरी और सिंधी(-उर्दू) ✤ १४ भाषा-सिंधी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४६६	१	श्रीमद्भगवद्गीता टी०मास्टर बाधीचन्द फूलचन्द कौल,प्र०मुंशी पोकरदास थानूरदास,शिकारपुर (सिन्ध)मू० २)
४६७	२	श्रीमद्भगवद्गीता टी० जयरामदास होतीचन्द लाबिरियो शिकारपुरी (मूल और सिंधी भाषानुवाद; देवनागरी-लिपि) प्र० ग्रन्थकार पता—थदासिंह एण्ड सन्स बुकसेलर्स, शिकारपुर, सिंध सं० १-१९८५ वि० मू० ॥≈) पृ० २५०
४६८	३	भ० गीता टी० मास्टर होतीचन्द संगूमल टेकवानी, करांची, (मूल, सिंधी-पद्यानुवाद; देवनागरी-लिपि) प्र० ग्रन्थकार, कराची, सिंध सं० १-१९८७ वि० मू०१≈) पृ० ३००
४६९	४	भ० गीता टी० मास्टर होतीचन्द सिंघूमल टेकवानी (सिंधी लिपिमें अनुवाद) प्र० ग्रन्थकार, करांची सं० १-१९२५ ई० मू० १) पृ० २६४
४७०	५	भ० गीता टी० दयाराम गीदूमल मु० स्टैंडर्ड प्रिंटिंग वर्क्स, हैदराबाद (सिन्ध) सं० २-१९१० ई० मू० ।)पृ० ४११
४७१	६	भ० गीता प्र० हाशानन्द चेनराम, कराची सं० १-१९२१ ई० विनामूल्य पृ० २०५
४७२	७	भ० गीता (गु०; चित्र ३५) टी० पं० तेजूराम रोचीराम शर्मा (सिंधी-लिपिमें केवल भाषानुवाद)प्र० ग्रन्थकार, कराची मु० कोहीनूर प्रिंटिंग प्रेस, कराची सं० ४-१९८१ वि० मू० ॥≈) पृ०२०६
४७३	८	भ० गीता (गु०, मूल देवनागरी-लिपिमें) टी० पं० तेजूराम रोचीराम शर्मा प्र० ग्रन्थकार, कराची (सिंधी-लिपिमें भाषानुवाद) मु० कोहीनूर०, कराची सं०५-१९२८ ई० मू० ।) पृ० ३५०

११ लिपि-फारसी ✤ १५ भाषा-उर्दू

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
४७४	१	श्रीमद्भगवद्गीता-रहस्य ले०-लोकमान्य तिलक (मराठी) अ० शान्तिनारायण पता—नारायण दत्त सहगल एण्ड सन्स, लाहोरी गेट, लाहौर सं०२-१९७४ वि० मू० ४॥) पृ० ५१०
४७५	२	श्रीमद्भगवद्गीता (मूल देवनागरी-लिपि) टी० जानकीनाथ (गद्य और पद्यानुवाद) प्र० मु० रामनारायण प्रेस, मथुरा सं० ५-१९२२ ई० मू० २॥) पृ० ३४५
४७६	३	श्रीमद्भगवद्गीता-मजमूए-तमन्ना ले० मुंशी रामसहाय 'तमन्ना' (पद्य) प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं०१-१९१३ ई० मू० ।≈) पृ० १३५

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
४७७	४	श्रीमद्भगवद्गीता-मख़ज़ने इसरार (केवल १४ अध्याय) अ० पं० जानकीनाथ साहेब (पद्यानुवाद) प्र० पं० दीनानाथ मदन, देहलवी पता—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं० १-१९१४ ई० मू० ॥।) पृ० ५५
४७८	५	श्रीमद्भगवद्गीता—आत्मप्रकाश ले० एक गीता प्रेमी (केवल भाषा) प्र० जे० एस० संतसिंह एण्ड सन्स, चौकमती, लाहौर सं०-१९७७ वि० मू०) पृ० २१६
४७९	६	श्रीमद्भगवद्गीता (मूल देवनागरी-लिपि) टी० भगवानदास भार्गव प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं०१-१९२७ ई० मू० २॥) पृ० ३७४
४८०	७	श्रीमद्भगवद्गीता—नज्म मशर्रह और नुगमा रहमानी मशर्रह (केवल पद्य और गद्यानुवाद) सं० मुन्शी सूर्यनारायण मेहर मु० हिन्दुस्थान एलेक्ट्रिक प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली सं० २-१९२५ ई० मू० १।) पृ० २८८
४८१	८	श्रीमद्भगवद्गीता ले० मुन्शी देवीप्रसाद सक्सेना (केवल गजल छन्द) पता—स्वरूप किशोर एम० ए०; एल एल० बी० मैनपुरी (यू० पी०) मू० ॥) पृ० १६४
४८२	९	गीताके राज ले० भाई परमानन्द एम० ए० (केवल गद्य) प्र० लाजपतराय पृथ्वीराज साहनी, लाहौरी गेट, लाहौर सं०२- मू० १।) पृ० २२४
४८३	१०	श्रीमद्भगवद्गीता-गिज़ाय रूह ले० पं० प्रभुदयाल मिश्र (पद्य) पता—मिश्र आश्रम, छावनी, नीमच सं० १-१९२६ ई० मू० १) पृ० १२०
४८४	११	श्रीकृष्ण उपदेश (केवल भाषा) ले० शान्तिनारायण लाला नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स्, आर्यबुकडिपो, लाहौर सं०-१९१८ ई० मू० २) पृ० ३००
४८५	१२	श्रीमद्भगवद्गीता ले० राममोहन प्र० मु० महता किसनचन्द्र मोहन; शान्ति स्टीम प्रेस, रावलपिन्डी सं० १-१९२४ ई० मू०।=) पृ० १२०
४८६	१३	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका; केवल भाषा) ले० महात्मा जीनराज जालंधरी प्र० दीवानचन्द्र गंगाराम, लाहौरी दरवाजा, लाहौर सं० २-१९२६ ई० मू० ॥=) पृ० २७५
४८७	१४	श्रीमद्भगवद्गीता (गु०; केवल भाषा) ले० एम० एम० जौहर प्र० भाई दयासिंह एण्ड सन्स, लाहौरी दरवाजा, लाहौर मू० ॥) पृ० २२५
४८८	१५	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका; मूल देवनागरी-लिपिमें) टी० जंगीराम मेहरा प्र०मदनलाल लालचन्द्र, सनातन बुकडिपो, बजाज हट्टा, लाहौर सं०१-१९२५ ई० मू० ॥।) पृ० ३६४
४८९	१६	श्रीमद्भगवद्गीता(गु०,केवल भाषा) ले०मुन्शी द्वारकाप्रसाद,प्र०रामदत्तामल एण्ड सन्स,लाहौर मू०)पृ०१७६

११ लिपि–फारसी* १६ भाषा–फारसी

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
४९०	१	भ० गीता-मग़फ़रत राज़ टी० हजरत फैज़ी फय्याज़ी उलमा असर-अकबर दरबारके कविरत्न (फारसी गद्यानुवाद)प्र०मन्त्री-गीता भवन,कुरुक्षेत्र मु०हिन्दुस्थान प्रिंटिंग वर्क्स,दिल्ली सं०१-१९२८ई०मू०॥=)पृ०८०
४९१	२	श्रीमद्भगवद्गीता ले० फ़ैज़ी कवि (पद्य) पता- रामप्रसाद नारायणदत्त, लाहौरी दरवाजा, लाहौर सं० ३-मू०।) पृ० ७७

क्रमसं०	पु० सं०	विवरण
४९२	३	श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका) ले० फ़ैजी कवि (पद्य) प्र० मुन्शी जगदीशप्रसाद एम० ए० मु० आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर सं० १- १९२४ ई० मू० ।) पृ० १३०

१२ लिपि–Roman*१७ भाषा–खासी (आसाम)

493 1 Ka. Bhagavad Gita by Shivcharan Roy. Print. Khasi press, Mawkhal, Shillong. Ed. I--1903 Re. --/8/--pp. 200

Abbreviations.

(1.) Bh.G.=Bhagavad Gita. (2.) E.=Editor. (3.) Pub.=Publisher; Published. (4) Print.=Printer; Printed. (5.)From.=Can be had from. (6.) Sans.=Sanskrit. (7.)Ed.=Edition. (8.) P. Ed.=Pocket Edition., (9.) T.P.S.=Theosophical Publishing Society. (10.)✻ =Rare; Out of print.

12 Character Roman * 18 Language English.

494 1 The Bhagavad Gita (With Notes) by Charles Wilkins; Pub. East India Company; Printed for C. Nourse, Opposite Catharine Street in the Strand, London; Ed. I-1785; Rs. 20/- pp. 156.

495 2 Garbe's Introduction to the Bhagavad Gita (Translated from German) by N. B. Utgikar. M. A., Poona; Ed. I-1918; Re. 1/8/-; pp. 35.

496 3 Gita-Bija or The main Portion of the Gita by G. V. Ketkar, M. A., LL. B., Poona; From. Gita Dharma Mandal, Poona; pp. 3.

497 4 The date of Mahabharat War by G. S. Karandikar, B. A., LL. B., Poona; From. Gita Dharma Mandal, Poona; pp. 4.

498 5 The Bhagvad Gita by Prof. S. V. Phadnis, Poona; From. Gita Dharma Mandal, Poona; Ed. 1926; Re. -/-, 6; pp. 3.

499 6 Philosophy of the Bh. G. (An exposition with Text in Devanagari; Vols.2) by Chhaganlal G. Kaji, L. M. &, S., F. T. S.; Print. Ganatra Printing Works, Rajkot; From. Theosophical Society, Madras; Ed. I-1909;11 Rs. 5/8/-, pp. 660.

500 7 The Holy Order of Krishna (Gita Rahasya, 24 Lessons) ; Pub. The Latent Light Culture, Tinnevelly (S. India) ; Ed. I-1929; Rs. 25/-; pp. 100.

Serial No.	Book No.	Description.
501	8	Recurrent and Parallel Passages in the Principal Upanishadas and the Bh. G. by George C.O.Haas,M.A.,Ph.D.,New York City. Ed.-1922; Re.1/-;pp.43.
502	9	The Hindu Philosophy of Conduct. (Lectures on the Bh. G.) by M. Rangacharya, M. A.; (Vol. I, Chapters. 6 only, with Sans. Text) Print. & Pub. by The Law Printing House, Mount Road, Madras; Ed. II-1915; Rs. 5/-; pp. 650.
503	10	Bh.G. and Its Teachings by Radhika Narain. (Part I, Chaps. 12 only); From: The Imperial Book Depot, Delhi; Ed. I-1928; Re. 1/-; pp. 125.
504	11	Essays on the Gita (Vols. 2) by Sri Aurobindo Ghosh. Pub. Arya Publishing House, College St., Calcutta; Vol. I-Ed.II-1926; Vol.2-Ed.I-1928; Rs. 12/8/-; pp. 900.
505	12	Bh. G. (With Sanat-Sujatiya and Anu-Gita) by Kashinath Trimbak Telang, M. A. ; 'The Sacred Books of the East Series' E. Prof. Max Muller; Print. The Clarenden Press, Oxford; Ed. II-1908; Rs. 8/-; pp. 450.
506	13	Bh. G. 'With Text in Devanagari' by W. D. P. Hill, M. A.; From: Oxford University Press, London; Ed. I-1928; Rs. 10/-; pp. 300.
507	14	The Gospel for Asia--Gita, Lotus and Fourth Gospel by Kenneth Saunders, D. Lt.; Pub. Society of Promoting Christian Knowledge, London; Ed. I-1928 Rs. 8/; pp. 250.
508	15	The Hindu Theology (Gita-pp.285 to 360) by Rughnathji Nichha Bhai Tatia, Badifalia, Surat: Ed. I-1917; Rs. 7/8/-; pp. 360.
509	16	Bh. G. (A Study-With Text in Devanagari) by S. D. Budhiraj, M. A., LL. B., Chief-Judge, Kashmere; Pub. Ganesh Co., Madras; Ed. I-1927; Rs. 5/-; pp. 550.
510	17	Bh. G. or The Song of the Blessed One (India's Favourite Bible) by Prof. Franklin Edgerton; Pub. The Open Court Publishing Co., Chicago. (U. S. A.) Ed. I-1925; Rs. 3/8/-; pp. 110.
511	18	Bh. G. or The Lord's Lay by Mohini Mohun Chatterji. Pub. Ticknor & Co.; From:Kegan Paul,Trench Trubnor & Co.Ltd.,London;Rs.26/4/-;pp. 300.
512	*19	Bh. G. (A Critical Study, With Text in Devanagari, 6 Chapters only) by C. M. Padmanabhachar, B. A., B. L., Coimbatore, Madras; Ed. I-1916; Rs. 6/-; pp. 1200.
513	20	Thoughts on the Bhagavad Gita '12 Lectures, Vol. I' by A. Brahmin F.T.S.; Pub. Theosophical Society, Kumbhakonam; Ed. I-1893; Re. 1/-; pp. 162.
514	*21	Bh. G. or The Sacred Lay- 'Trubnar's Oriental Series' by John Davis, M.A.; From: Trubnar & Co., London; Ed. I-1882; Rs. 12/-; pp. 210.
515	*22	Bh.G. 'In English Rhyme' by Bireshvar Chakravarti, Edited by [With Introduction and Notes] J.S. Chakravarti, M. A., F. R. A.S.; From: Kegan Paul Trench Trubnar & Co., London; Ed. I-1906; Rs. 10/-; pp. 200.

Serial No.	Book No.	Description.
516	*23	Bh. G. 'With Translation and Notes, Compiled from Various Writers'; Pub. The Christian Literary Society, Vapery, Madras; Ed.-I-1895; Re. 1/-; pp. 110.
517	*24	Bh.G. by Hurry Chand Chintamon; Pub. Trubnar & Co., London. Ed. I-1874; Rs. 2/8/-; pp. 100.
518	*25	A Collection of Esoteric Writings 'Gita Essays' by T. Subbarow, F. T. S., B. A., B. L.; Pub. Theosophical Publishing Society, Bombay; Ed.-1910, Re. 1/8/-; pp. 360.
519	26	Bh.G. Translation and Commentaries according to Madhwacharya [Dwaita-Philosophy] by S. Subbarow, M. A.; From: T.S., Madras. Ed.I-1906; Rs. 3/-; pp. 350.
520	*27	A Hand book of the Vedanta Philosophy and Religion 'Gita Essay' by R. V. Khedkar, F. R. C. S., D. P. H., Etc., Kolhapur; Print. Mission Press. Ed. I-1911; Rs. 2/8/-, pp. 300.
521	*28	Bh.G. 'First Discourse only, With Text in Devanagari' by R.V. Khedkar, M. D., Etc., Kolhapur; Ed. I-1912; Re. 1/; pp. 50.
522	*29	Philosophical Discussions [Part I] by R.V. Khedkar. Ed. I-1913 Re. 1/-; pp. 80.
523	30	Gita Culture [Essay] by H.H. Jagad-Guru Anantacharya. Srikanchi; pp. 22.
524	31	The Sages of India [Gita-Lecture] by Swami Vivekanand; Pub. by S. C. Mitra, Udbodhan Karyalaya, Baghbajar, Calcutta.; Ed. I-1905; Re.-/1/-; pp. 20.
525	*32	Bh. G. or The Sacred Lay 'An Edition of the Sanskrit Text in Devanagari Character' by J. Cockburn Thomson; Pub. W. H. Allen & Co., London; Ed. I-1867; Rs. 10/-; pp. 100.
526	33	The Land-Marks of Ethics according to Gita by Bullaram Mullick, B. A.; Pub. Nakulchandra Dutta, Calcutta; From: Oriental Book Depot, Mayavaram, S. India.; Ed. I-1894; Re. -/4/-; pp. 40.
527	34	The Gita and Spiritual Life by D. S. Sarma, M.A.; Pub. T. Pubg. House, Adyar, Madras; Ed. I-1928; Re. 1/8/-; pp. 140.
528	35	Introduction to the Bh. G. by D. S. Sarma, M. A.; Pub. Ganesh & Co., Madras; Ed. I-1925; Re. 1/-/-; pp. 110.
529	36	Krishna the Charioteer or The Teachings of the Bh. G. by Mohini Mohun Dhar, M.A., B. L., Pub. T. P. House, London; Ed. II-1919; Rs. 3/-, pp. 200.
530	*37	Krishna & The Gita [Raja Surya Rao's Lectures, Ist Series] E. Sitanath Tattwabhushan. Print. and Pub. Brahmo Mission Press, Cornwallis St., Calcutta; Rs. 2/8; pp. 410.
531	38	Krishna & The Puranas [Essay] by Sitanath Tattwabhushan; Print. and Pub. Brahmo Mission Press, Calcutta; Ed. I-1926; Re. 1/8/-; pp. 140.
532	39	Rambels in Vedanta 'Gita Essay' by B. R. Rajam Aiyer; Pub. S. Ganesan, Triplicane, Madras; Ed. I-1925; Rs. 5/-; pp. 900.

Serial No.	Book No.	Description.
533	40	The Vedanta-Its Ethical Aspects [Gita Essay] by K. Sundararama Aiyer; Pub. Vani Vilas Press, Shreerangam; Ed. I-1923; Rs. 3/-; pp. 420.
534	41	Karma Yoga [Eleven Lessons] by Yogi Bhikshu; Pub. Yogi Publication Society, Chicago. U. S. A. ; Ed. I-1928; Rs. 6/4/-; pp. 140.
535	42	Bh. G. by A. Mahadeva Shastri, B. A. [With the commentary of Shree Shankracharya--Adwaita Philosophy]; Pub. V. Ramaswami Sastrulu & Sons, Esplanade, Madras; Ed. III-1918 Rs. 5/-pp. 525.
536	43	Bh. G. by Annie Besant & Bhagwandas [with Sans. Text & word-meaning] Pub. T. P. House. Madras; Ed. II-1926; Rs. 3/12/; pp. 400.
537	44	Bh. G. [De Carmine Dei Deorum; Vols. 3, with Sans.text] by R. S. Taki, B.A.; Pub. The Sadbhakti Prasarak Mandli, Saraswati Bag, Andheri, Bombay. Ed. I-1923; Rs. 10/-; pp. 1200.
538	45	Great Saviours of the World [Vol. I, Gita Essay] by Swami Abhedanand; Pub. The Vedanta Society, New York. Ed. I-1911; Rs. 3/-; pp. 200.
539	46	Bh. G. [With Sans. Text and word-meaning] by Swami Swarupanand; Pub. Adwaita Ashram, Mayavati, Almora, Himalayas. Ed. IV-1926; Rs. 2/8; pp. 425.
540	47	Bh. G. (The Chief Scripture of India] by W. L. Wilmshurst; Pub. William Rider & Son Ld., London. Ed. I-1905; Re. 1/8/-; pp. 90.
541	48	Krishna's Flute [Essay] by Prof. T.L. Vaswani; Pub. Ganesh & Co., Madras. Ed. I-1922; Re. 1/8; pp. 140.
542	49	Bh. G. [An Exposition] by Dr. Vasant G. Rele, F.C.R.S., L.M. & S. Pub. by the Author, Parekh St. Girgaon, Bombay. From: D.V. Taraporevala Sons & Co., Hornby Rd., Bombay. Ed. I-1928; Rs. 4/12/-; pp. 200.
543	50	Bh.G.-The Philosophy of action. [Lok.B.G.Tilak's Gita-Rahasya in Marathi] Translated by V. Mangal Vedkar; Pub. B. G. Paul & Co., Madras; Ed. III-1928; Rs. 2/-; pp. 400.
544	51	Bhagawat--Gita [with Sanskrit Text, word-Meaning and Notes Etc.; The Sacred Books of the Hindus Series.] by Radhacharan B.A.,B. Sc.,LL.B.; Pub. Panini Office, Bahadurganj, Allahabad; Ed. I-1928; Rs. 2/-; pp. 620.
545	52	Bh. G. [with Notes & Sans. Text, Vol. I, Chaps. 1-6] by K. S. Ramaswami Sastrigal, B. A. B. L., Sub-Judge, Tanjore.; Pub. V. V. Press., Shreerangam; Ed. I-1927; Rs. 2/-; pp. 400.
546	53	Bh. G. or The Divine Path to God [Essay] by K.S. Ramaswami Sastri; Pub. Ganesh & Co., Madras; Ed. I-1928; Re. 1/-; pp. 175.
547	54	Introduction to Bh.G. [with Sans. Text] by Dewan Bahadur V.K. Ramanujacharya B. A.; Pub. T. P. H., Madras; Ed. I-1922; Rs. 3/-; pp. 260.
548	55	Dialogue Divine and Dramatic [Gita Essay] by Gitanand Brahmachari; Pub. B. G. Paul & Co., Madras; Ed. I-1928; Re. 1/- pp. 90.

Serial No.	Book No.	Description.
549	56	Shri Krishna and The Bh.G. by Elizabeth Sharpe; Pub. Arthur H. Stockwell, London; Ed. I-1924; Re. 1/14/-; pp. 50.
550	57	Bh. G. 'A Fresh Study' by D. D. Vadekar, M. A.; Pub. Oriental Book Agency, Poona; Ed. I-1928; Re. 1/-; pp. 100.
551	58	The Philosophy of the Bh. G. [Lectures] by T. Subbarow; Pub. T. S., Madras; Ed. II-1921; Rs. 2/8; pp. 130.
552	59	Shri Krishna--His Life & Teachings by Dhirendranath Paul. Pub. The Research Home, Masjidbari St., Calcutta; Ed. IV-1923; Rs. 10/-;pp. 500.
553	60	Shri Krishna by Bepin Chandra Pal, M.L.A.; Pub. Tagore & Co., Madras; Re. 1/8; pp. 180.
554	61	Brindavan Krishna by Ch. Gopinatham. B. A., Vakil.; Pub. Author, Ellore, Kistna.; Ed. I-1923; Re. 1/-; pp. 200.
555	62	The Ideal of the Karma Yogin [Essay] by Sri Aurobindo Ghosh. Pub. Arya Publishing House, College St., Calcutta; Ed. III-1921; Re. 1/4; pp. 112.
556	*63	Bh. G. [The Introductory Study with Sanskrit Text] by C. V. Narsingh Rao Sahib, B.A. B.L., Chittore; Print. Brahma Vadin Press, Madras; Ed. I-1912; Rs. 2/-; pp. 250.
557	64	Stray Thoughts on the Bh. G. [First Series] by The Dreamer. Pub. T.P.S., Calcutta; Ed. I-1901; Re. 1/-, pp. 140.
558	65	Bh.G. or the Song Divine [A metrical rendering with annotations; Poetry] by C. C. Caleb, M. B., M. S.; Pub. Luzac & Co., London. Ed. I-1911, Rs. 2/10; pp. 175.
559	66	Bh. G. or the Lord's Song by Annie Besant. Pub. T. P. H., London. Ed. V-1918. Rs. 2/10; pp. 115.
560	67	Hints on the study of the Bh. G. [Lectures] by Annie Besant. Pub. T.P.H.; Madras. Ed. III- 1925 Re.-/14/-; pp. 125.
561	68	Why I should read the Gita ? [Essay] by B.K. Venkatachar B.A.,LL. B., Advocate,Chamarajpuram,Mysore.'For Private circulation only.'pp.150.
662	69	Lord Krishna's Message [Based on the Bh. G.] by Lala Kannoomal, M. A.; Pub Atmanand Jain Pustak Pracharak Mandal, Roshan Mohalla, Agra. Ed. I-1917 Re. -/4/-; pp. 22.
563	70	On Reading Gita [Poem] by Jogendranath Mukerjee, 3/B Bepin Mitra Lane, Shyam Bazar, Calcutta; Ed. I-1908; Re. -/12/-; pp. 80.
564	71	The Doctrine of the Bh. G by Pt. Bhawani Shanker.; Pub. J. J. Vimdalal, Hammam Street, Fort, Bombay; Print. The Karnatak Printing Press, Thakurdwar, Bombay; Ed. I-1928; Re -/8/-; pp. 50.
565	72	Lectures on Bh. G. by Pt. Bhawani Shanker.; Pub. Lalit Mohan Banerjee, T. S., Uttarpara, Bengal.; Ed. II-1923; Re. -/12/-; pp. 75.

Serial No.	Book No.	Description.
566	73	The Gita & Gospel by J. N Farquhar 'alias Neil Alexander' M. A.; Pub. The Christian Lit. Society, Madras; Ed. III-1917; Re. -/6/-; pp. 110.
567	74	Permanent Lessons of the Gita by J. N. Farquhar 'alias Neil Alexander' M.A. Pub. The Christian Lit. Society, Madras; Ed. II-1912; Re.--/2/-, pp. 32.
568	75	The Age and the Origin of the Gita by J.N. Farquhar 'alias Neil Alexander' M. A. Pub. The Christian Lit. Society, Madras; Ed. -1904; Re. -/-/3; pp. 24
569	76	Gitamrit-Bodhini by Vanaparti Ramprapandas 'alias Lt. Henry Wahb', From: T. P. S., Madras. Ed. I-1908; Re. -/4/-; pp. 100.
570	*77	The Bhagavad Gita 'in modern life' by Lala Baijnath, B. A.; Pub. Vaishya Hitkari Office, Meerut; From: Panini Office, Bahadurganj, Allahabad; Ed. I-1908; Re. 1/-; pp. 110.
571	*78	Adwaitism 'Essay' by R V. Khedkar, M. D. etc., Kolhapur; Ed. I-1913; Re. 1/8/-; pp. 200.
572	79	The Message of the Bh. G. by Lala Lajpat Rai.; Pub. Rangildas M. Kapadia: From: T. S., Madras; Ed. I- 1921; Re. -/12/-; pp. 70.
573	80	The Teachings of the Bh. G. 'An Address' by H. N. Apte.; From: Oriental Book Depot, Mayavaram, S. India. Ed. I-1901. Re. -/14/-; pp. 34.
574	81	Bh. G. 'Part. I with Sans. Text' Pub. Bharat Dharma Mahamandal, Benares City; Ed. I-; Re. -/6/-; pp. 100.
575	82	Kurukshetra 'Gita-Essay' by F. T. Brookes; Pub. V. V. Press, Shreerangam; Ed I-1910; Re. -/6/-; pp. 52.
576	83	Bh. G. 'with Sans. Text' by F. T. Brookes. Pub. V.V. Press, Shreerangam. Ed. I-1909; Re. 1/4; pp. 140.
577	84	The Gospel of Life 'Gita-Essay, Vol. I' by F. T. Brookes.; Pub. V. V. Press, Shreerangam; Ed. I-1910; Re. 1/8; pp. 400.
578	*85	The Young Men's Gita 'with Notes' E. Jogendra Nath Mukerjee B. A; From: S.K. Lahiri & Co., College St. Calcutta; Ed. I-1900.; Re.1/8; pp.200.
579	86	Bh. G. Or The Song of the Master by Charles Johnston. Pub. T. S. , New York.; Rs. 4/14/-; pp. 200.
580	87	Bh. G. Interprated by Holden Edward Sampson. Pub. The EK--Klesia Fellowship, Tanners Green, Wythall, Birmingham, England. Ed. II-1923; Re. 1/8; pp. 165.
581	88	Bh. G. or The Lord's Song. 'The Temple Classics Series' by Liyonal D Barnett. ; Pub. G. M. Dant & Son Ld., Aldine House, London; Ed. II-1920; Re. 1/8/-; pp. 210.
582	89	The Songs Celestial 'Poem' by Sir Edvin Arnold.; Pub. Kegan Paul Trench Trubnar & Co., London; Ed. New--1921; Re. 1/12/-; pp. 112.

Serial No.	Book No.	Description.
583	90	The Bhagavad Gita-The Book of Devotion. 'Pocket Edition' by William Q. Judge. Pub. T. S., Pointloma, California, U.S.A.; Ed.II-1922; Rs. 2/4/-;pp. 140.
584	91	Notes on the Bh. G. 'P. E.' by William Q. Judge. Pub. T. S., Pointloma. Ed.-1918; Rs. 4/6; pp. 240.
585	92	Bh. G. or The Blessed Lord's Song. 'P. E.' by Swami Parmanand. Pub. The Vedanta Centre, Boston Mass, U. S. A.; Ed. III-; Rs. 3/12; pp. 150.
586	93	Notes and Index to the Bh. G. 'P. E.' by K. Brownie, M. A., Pub. T. P. S., London; Ed.--1916; Re. 1/-; pp. 105.
587	*94	Bh. G. by Charles Wilkins 'with Notes; P. E.' Pub. T. P. S.,Bombay, Ed.-1887; Re; -/12/-; pp. 300.
588	*95	Lectures on the Study of the Bh. G. 'P. E.' by T. Subbarow, B. A., B. L., Pub. T. P. S., Bombay. Ed.-1910; Re. -/14/-; pp. 225.
589	96	Bh. G. 'P. E.' by Tukaram Tatya, F. T. S., Pub. T. P. S.; Bombay. Ed.-1920; Re. -/12/-; pp. 360.
590	97	Practical Gita 'Gita Essay; P. E.' by Narain Swaroop, B. A., L. T., Pub. The Ramtirtha Publication League, Lucknow:Ed.I-1922: Re.-/4/-;pp.200.
591	98	Bh. G. or The Lord's Song. 'with Sans Text; P. E.' by Annie Besant. Pub. T. P. S.,Madras; Ed.IV--1924; Re. -/4/-;'Gilt Binding Rs.2/8/-;' pp. 300.
592	*99	Karma--works and wisdom "Essay" by Charles Johnston, M. R. A. S.Pub. The Metaphysical publishing Co. New York. Ed. I--1900. Rs. 2/8 pp. 56.
593	*100	Bh. Gita.'with Sri Ramanujachary's, Visishtadvaita-Commentary 'Trans. by A. Govindacharya. Print. The Vaijayanti press, Mount Rd. ,Madras. Ed. I--1898A.C. Rs. 12/8 pp. 600.
594	101	Bh. Gita. "A synthesis of the" An arrangement of the teachings of the Gita in their relation to the five paths of attainment. With comments by the Editors of The Shrine of Wisdom. "Manual no. 9" Pub. The Shrine of Wisdom, Lincoln house, Acacia road, Acton, London, W. 3. ; Ed. I--1927 Rs. 3/- pp.75
595	*102	Studies in the Bh. Gita. "Vol. 3" by The Dreamer. Pub. T.P.S., London. Ed. I--1902, 1903, 1904. Rs.6/4/- pp. 380.
596	103	Songs of the Soul--Including 'Vision of Visions' from the Bh. Gita. by Swami Yogananda. Pub. Yogoda & Sat--Sanga, Mount Washington, 3880 San Rafael Avenue, Los Angeles, California, U.S.A. Ed.V--1926 Rs.4/8 pp.120

12 Character Roman * 19 Languages Foreign.

597	*1	Bhagavad Gita 'Latin' containing:-- 1 Sans. Text in Devanagri character. 2 Latin Trans. by Augustus Guilelmus A. Schlegel.

Serial No.	Book No.	Description.
		3 English essay by Rev. R.D. Griffith. E.--J. G., Bangalore; Ed.-- 1848. 'Reprint of the edition published at Bonn. in 1823' ; Rs. 4/--; pp.90.
598	*2	Bh. G.;'Critical annotations and notes in Latin with text in Devanagri character' by Augustus Guilelmus A. Schlegel 'Preface'; E. Christian Lassen 'Lecture'; Pub. Prostat Apud Aduardum Wiber, Bibliopolam, Bonnae; Ed.-1846; Rs. 25/--; pp.350.
599	3	Bh. G. 'French Preface and text in Roman character.' E. Dr.St.Fr. Michalski Iwienski.; Pub. Paul Geuthner, Paris; Ed. I-1922, 'Publication. no. 1 of the Asiatic Society of Warsaw, Russia'; Rs. 3/--; pp. 50.
600	*4	Bh. G. 'Japanese' Sacred books of world series., Part I, Vol.6 'Sekai Seiten Zenshu' ; Pub. World Literary works publishing society. 'Sekai Bunko Kanko-Kai', No. 52 myogatani-machi, Koishi Kawa Ku, Tokyo, Japan; Rs. 6/-.
601	*5	Bh. G. 'Italian' by Florence N. D.; Rs. 8/--.
602	*6	La Bh. G. 'Italian; Poetry' by Michele Kerbaker; Pub. 'Rivista Orientali' series, Pirenze; Print. Tippografia, Fodratti, Frenze; Ed. I-, pp. 110.
603	7	Bh.G. or Horrens Ord 'Danish; Religions Translation Series no. 2' by Dr. Phil Poul Tuxen; Pub. Aage Marcus, Cobenhaven, Denmark. Ed.I--1920; Rs. 5/4/--; pp.100.
604	*8	Vier Philosophische Texte Des Mahabharatam 'Bh.Gita; Anugita etc.; German' by Dr. Paul Deussen., Prof. Kiel University. Pub. F. A. Brockhaus. Leipzig. Ed. I-- 1906 Rs. 20/-- pp. 1030.
605	*9	Studies in the Bh. Gita or Der Pfad zur Einweihung. 'German' by The Dreamer. Pub. Verlag von Max Altmann, Leipzig. Ed. I--1906 Rs. 2/8 pp. 155.
606	10	Bh. G. 'German--Translation' by Richard Garbe; Pub. H. Haessel, Verlag, Leipzig, Germany ; Ed. II Revised --1921; Rs.6/--; pp. 175.
607	11	Bh.G. or Des Erhabenen Sang. 'German' by Leopold von Schroeder. Pub. Eugen Diederichs, Verlag, Jena ; Ed. I--1922; Rs.4/--; pp. 100.
608	12	Bh. G. or Der Gesang Deo Erhabenen.'German; Poetry' by Theodor Springmann.; Pub. Adolf Saal, Verlag, Lauenburg, Germany ; Print. Hurtung & Co., 25, Hamburg; Ed. I--1921; Rs.4/--; pp. 115.
609	13	Die Bh. G. or Das Hohe Lied. 'German; Poetry' by Franz Hartmann M.D.; Pub. Theosophical publication, Leipzig; Print. W. Hoppe Borsdorf. Leipzig; Ed.IV--1924; Rs.5/--; pp. 220.

Serial No.	Book No.	Description.
610	*14	La Bh. Gita or Le Chant Du Bienheureux. 'Text in Roman character; Trans. in French' by M. Emile Burnouf. Pub. Imprimerie Orientale de ve Raybois; Nancy, France. Ed. I--1861 Rs. 2/8 pp. 250.
611	15	Bh. G. or Herrens Sang. 'Swedish; Peotry' by Nino Runeberg; Pub. Bajorck & Borjesson, Stockholm, Sweden ; Print. A.B. Fahlchantz press, Stockholm; Ed. I--1922; Rs. 2/8/- pp.150.
612	16	Bh. G. or Herrens Sang. 'Swedish.' by Frantz Lexow.; Pub. Teosofisk Samfunds Danske Forlag.; Print. Christian Andersens Bogtrykkeri, Kobenhavn.; From: Aktiebolaget C.E. Fritzes, Fredsgatan 2, Stockholm. ; Ed.-1920. Rs. 3/4-.pp. 160.
613	17	Bh. G.--Hangivandets Bok. 'Swedish' by William Q. Judge.;Pub. Almqvist & Wickaells Boktryckeri AB. , Upsala, Stockholm, Sweden ; Ed. III--1918 Rs. 2/8/-; pp.160.

पीछेसे आई हुई पुस्तकें:--

(लिपि-देवनागरी * भाषा-हिन्दी)

६१४	१	भ० गीता (खंड ३) टी० ब्रह्मचारी नर्मदानन्द हठाभ्यासी (अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ सहित) ; मु०सनातन-धर्म प्रेस, मुरादाबाद ; पता—रामशरणदास हरकरणदास, दिलदारपुर, मुरादाबाद ; सं० १—१९१६, १७, १८ ई०; मू० १०) पृ० २३००
६१५	२	भ० गीता टी० विद्याविनोद श्रोत्रिय पुरुषोत्तमदास; प्र० शंकर साहित्य मन्दिर, बिजनौर; मु० दीनबन्धु प्रेस, बिजनौर ; सं० १—१९८४ वि० मू० १।) पृ० १८०
६१६	३	मथुरेश गीता-सार-संगीत (पद्य-संगीत) ; ले० मुंशी मथुराप्रसाद, रिटायर्ड जज, जयपुर ; प्र० ग्रन्थकार; मु० जैन प्रेस, जयपुर ; पता—कन्हैयालाल बुकसेलर, निरपोलिया बजार, जयपुर : सं० १—मू० ॥=)॥ पृ० ११०
६१७	४	गीता-सार (बालोपयोगी ; कुछ चुने हुए श्लोक : गुजराती अनुवाद सहित) : टी० राज्यरत्न आत्माराम राधाकृष्ण, प्र० जयदेव ब्रादर्स, बड़ोदा : सं० ३—१९८४ वि० मू० ।) पृ० ५०
६१८	५	गीता-बीज (निबन्ध) ले० जी० वी० केतकर, बी० ए०, एल एल० बी०, पूना

(लिपि-गुजराती * भाषा-गुजराती)

६१९	१	भ० गीता (भीष्मपर्व पृ० ४० से ९० : मूल-देवनागरी) स० १ मणिशंकर महानन्द एमणे, २ भाईशंकर नानाभाई सोलिसीटर (भारतार्थ-प्रकाश); प्र० एन० एम० त्रिपाठी एण्ड कं०, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई सं० ५—१९७७ वि०; मू० ३); पृ० २६५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६२०	२	महाभारतविषे अनेक विद्वानोंना विचार प्र० सस्तुं साहित्य०, अहमदा०सं०१–१९८३ वि०मू०१॥) पृ०३२५
६२१	३	धर्म-संग्रह (भाग ५ वाँ; निबन्ध) प्र० सस्तुं साहित्य०, अह० सं० १–१९८६ वि० मू० १।) पृ० ४००
६२२	४	महाभारत अने रामायण (निबन्ध) प्र० सस्तुं साहित्य०, सं० १–१९८३ वि० मू० ॥≶) पृ० २००
६२३	५	पूर्णयोग–खं० १ कर्मयोग, खं० २ ज्ञानयोग सं० १–१९२२।२३ ई० मू० ६।।।) पृ० ६७० } ले० श्रीअरविन्द घोष अ० प्र० अम्बालाल बालकृष्ण पुराणी पता–अरविन्द तत्त्व कार्या०, भरोच
६२४	६	गीता-निष्कर्ष (खं० १) सं० १–१९७८ वि० मू० ३।।।) पृ० ३३० (मूल ग्रन्थ अंग्रेजी 'Essays on the Gita,) } ले० श्रीअरविन्द घोष अ० प्र० अम्बालाल बालकृष्ण पुराणी पता–अरविन्द तत्त्व कार्या०, भरोच
६२५	७	भ० गीता (आपणो धर्म पृ० ५८ से ६२; गीता-निबन्ध) ले०प्रो० आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, आचार्य, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी प्र० महादेव रामचन्द्र जगुष्टे, अहमदावाद सं०२–१९०६ वि० मू० ४) पृ० ५००
६२६	८	गीता-परिचय ले० श्रीरामदयाल मजूमदार, एम० ए० (बंगला) अ० पं० श्रीमाधव शर्मा प्र० रघुनाथ गणेशजी कं०, हरकुँवर बिल्डिङ्ग, ठाकुरद्वार, बम्बई पता-जीवनलाल अमरसी महेता, अहमदाबाद सं०१–१९७२ वि० मू० १।।) पृ० २००
६२७	९	कर्मयोग, भक्तियोग (निबन्ध, विवेकानन्द-विचारमाला भाग १) ले० स्वा० विवेकानन्द अ० ठक्कुर नारायण विसनजी चतुर्भुज सं० २–१९७१ वि० मू० ३॥) पृ० ५६५
६२८	१०	रसेश श्रीकृष्ण–कृष्णचरित्र (निबन्ध) ले० प्रो० जेठालाल गोवर्धनदास शाह, एम. ए. सं०१–१९२६ई० मू० २) पृ० ५००
६२९	११	न्यासादेशः (अ० १८।६६ की व्याख्या) ले० श्रीमद्वल्लभाचार्य टी० श्रीविट्ठलेश दीक्षित (संस्कृत-विवरण) २ पं०रमानाथ शास्त्री (गुज०भाषानुवाद) पता–बालकृष्ण पुस्तका०, बड़ा मन्दिर, बम्बई सं०१-१९१६ई० मू०) पृ० ३०
६३०	१२	भ० गीता–पञ्चामृत टी० श्रीविहारी (पदच्छेद, गुज० और हिन्दी अनु०, वृत्रविहारी भाषान्तरसह) प्र० चंदुलाल बहेचरलाल पटेल, विद्याअधिकारी, गोंडल सं०१–१९८४ वि० मू०१) पृ० ६२०
६३१	१३	भ० गीता टी० श्रीविहारी (वृत्रविहारिणी गुज० अनु०) प्र० चंदु० बहे० पटेल मू० ≈) (गुटका सं० ३ मू० –) पृ० २३५
६३२	१४	गीता-पुष्पाञ्जलि ले० श्रीविहारी प्र० चंदु० बहे० पटेल सं०–१९८३ वि० मू० ≶) पृ० ८०
६३३	१५	संगीत गीता-पुष्पाञ्जलि ले० श्रीविहारी प्र० चंदु० बहे० पटेल सं०२– मू०)। पृ० ८
६३४	१६	भ० गीता–पुरुषोत्तमयोग (अ० १५ वाँ शब्दार्थ आदि सह) प्र० भ० गीता पाठशाला, महाजनवाडी, पिकेट-रोड, बम्बई सं० १ -१८४२ शक बिना मूल्य पृ० २४
६३५	१७	प्रणव माहात्म्य (निबन्ध) स० स्वा० ज्योतिर्मयानन्द (हिन्दी) अ० अनन्तराय माधवजी दवे (गुजराती) प्र० भ० गीतापाठशाला, नानकवाड़ा, कराची सं०१ -१९८४ वि० बिना मूल्य पृ० २६
६३६	१८	गीतागुणानुवाद (संगीत पद्य, द्वितीय पुष्प) प्र० भ० गीता पाठशाला, कराची सं० १–१९८४ वि० बिना मूल्य पृ० २५
६३७	१९	भ० गीता (गद्य संवाद) ले०लक्ष्मण गणेश साठे (मराठी), मेयो कालेज, अजमेर अ० कविराज देवीदानजी, प्र० लक्ष्मणगणेश साठे, श्रीनगर रोड, अजमेर सं० १–१९८५ वि० मू० ≈) पृ० ४५
६३८	२०	गीतानी व्याख्या ले० श्रीअरविन्द घोष प्र० युगान्तर-कार्यालय, सूरत सं० १–१९८०वि० मू० ॥–) पृ० १२५
६३९	२१	गीता-मर्म (प्रथम षटक्) ले० श्रीअम्बालाल पुराणी, प्र० शान्तिलाल सोमेश्वर ठाकर एम० ए०, श्रीअरविन्द-मन्दिर, नडियाद सं० १–१९२९ ई० मू० ॥) पृ० ६०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६४०	२२	संगीत गीतासार (पद्य) ले० जगद्गुरु स्वा० शंकराचार्य स्वरूपानन्दतीर्थ, शारदापीठ प्र० भास्करराव रतलाल धोलकिया, एलिस् ब्रिज, अहमदाबाद सं० १-१९८४ वि० मू० =) पृ० ३२
६४१	※२३	भ० गीता (पद्य दोहा) टी० मागजी ठाकरसी सं०-१९०६ ई० मू० ।) पृ० २०४
६४२	२४	श्रीकृष्णगीता या भ० गीता टी० श्रीमाणिकलाल हरिलाल पंड्या "सरित्" (पदच्छेद, शब्दार्थसहित) प्र० ग्रन्थकार, पलीयड, डांगरवा (गुजरात) सं० १-१९८१ वि० मू० २) पृ० ३८०
६४३	२५	पञ्चरत्न गीता-गुजराती सरलार्थसहित प्र० सस्तु० कार्या०, अहमदा० सं० १-१९८५वि० मू० ॥=) पृ० ७००
६४४	२६	भ० गीता (अ० २,३) टी० रेवाशंकर नागेश्वर अध्यापक प्र० ग्रन्थकार, वेजलपुर, भरोच; अध्याय २ मू० ≠) पृ० ५६; अ०३ मू० ≡) पृ० ३४
६४५	२७	गीताभ्यास-ज्ञानयोग ले० चुन्नीलाल शामजी त्रिवेदी, ग्रीडर-भावनगर प्र० ग्रन्थकार, खाम्भात सं०१-१९८४ वि० मू० १-) पृ० ३००
६४६	२८	भ० गीता-पञ्चरत्न गुज० भाषा० टी० मणिलाल इच्छाराम देसाई प्र० गुज० प्रेस, बम्बई सं० १-१९८१ वि० मू० १) पृ० ५१०
६४७	२९	भ० गीता अ० शास्त्री जटाशंकरजी मू० १)
६४८	३०	अनासक्तियोग-भ० गीता (गु०; केवल भाषानुवाद) ले० महात्मा गांधी प्र० नवजीवन कार्या०, अहमदाबाद सं० १-१९३० ई० मू० =) पृ०
६४९	३१	भ० गीता (गु०) टी० कार्तिकजी विद्याभास्कर प्र० छगनगोपालजी वायदा, बम्बई २ सं०१-१९३२ ई० बिना मूल्य पृ० ९५०

१–लिपि–देवनागरी ※ १–भाषा–संस्कृत

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६५०	१	भ० गीता टी० श्रीपुरुषोत्तमजी-अमृततरंगिणी टीका, मु० चन्द्रप्रभा-प्रेस, काशी पता जयकृष्णदास हरिदास, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, काशी सं० १-१९०२ ई० मू० २) पृ० ८२
६५१	※२	भ० गीता (मूल, खुला पत्रा) मु० वेंकटे०, बम्बई मू० १) पृ० ९०
६५२	३	भ० गीता (खुला पत्रा) टी०श्रीधर-टीका प्र० हरिप्रसाद भागीरथ, बम्बई सं०१-१९८४ वि० मू०१) पृ०९०
६५३	※४	भ० गीता टी० शांकर-भाष्य स०ए०महादेव शास्त्री बी०ए० और पण्डितरत्न के० रंगाचार्य प्र० गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज (बिबली० संस्कृत नं०८), मैसूर सं०१-१८९५ ई० मू० १२) पृ०४६०
६५४	※५	भ० गीता टी० १ शांकर-भाष्य २ आनन्दगिरी-टीका ३ श्रीधर-टीका स० पं० जीवानन्द विद्यासागर बी० ए० मु० सरस्वती-प्रेस, कलकत्ता सं० १-१८७१ ई० मू० ६) पृ० ८८०
६५५	६	गीताप्रपूर्तिः–व्याख्यानसहिता प्र० नवविधान मण्डल पता–प्रचार आश्रम, एमहर्स्ट स्ट्रीट, कल० सं० १-१८२४ शक मू० ३) पृ० ४४०
६५६	※७	भ० गीताकी एक अति प्राचीन प्रति–फर्रुखाबादके एक ब्राह्मणके पास ७० श्लोकी गीताकी ताम्रपत्रपर खुदी एक प्राचीन प्रति है, उसकी प्रतिलिपि ('कल्याण' गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्राप्त) सं० १-१९८६ वि० पृ० ४
६५७	८	भ० गीता-भजनसप्तशती (संगीत-भजन; गीतगोविन्दकी तरह गीता-गायन संस्कृतमें) टी० श्रीबालजी महाराज (कृष्णलालजी), बड़ोदा प्र० श्रीकृष्ण-मन्दिर, बड़ोदा सं०१-१९८५ वि०बिना मूल्य पृ०४१५
६५८	९	भ० गीता टी० पं० गणेश पाठक (बालबोधिनी टीका) प्र० मोतीलाल बनारसीदास, लाहोर सं०-१९८५ वि० मू० २) पृ० २४५

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६५९	१०	गीतार्थसंग्रह (निबन्ध; तत्त्वार्थदीप शास्त्रार्थप्रकरण पृ० १८५) ले० श्रीवल्लभाचार्य—मूल टी० १—ग्रन्थकार प्रकाश-व्याख्या २-पं० पीताम्बरजी-आवरणभंगतिलक प्र० रत्नगोपालभट्ट (विद्यावैजन्ती ग्रन्थरत्नावली) मु० विद्याविलास-प्रेस, काशी सं० १—१९६५ वि० मू० ७॥) पृ० ४६०
६६०	११	न्यासादेश (अ० १८। ६६ की व्याख्या) ले० श्रीमद्वल्लभाचार्य टी० १—अग्निकुमार श्रीविट्ठलेश दीक्षित (संस्कृत-विवरण) २-पं० श्रीरमानाथ शास्त्री (भाषाटीका) पता बालकृष्ण-पुस्तकालय, बड़ा मन्दिर, बम्बई सं० १—१९१६ ई० मू०) पृष्ठ ३५
६६१	१२	गीतातात्पर्य लेखक-श्रीविट्ठलेश दीक्षित टी० पं० रमानाथ शास्त्री (भाषाटीका) पता—बालकृष्ण पुस्तकालय, बम्बई सं० १—१९१५ ई० मू० –)॥ पृष्ठ १०
६६२	१३	भ० गीता टी० स्वयंशर्मा—स्वयंविमर्श व्याख्या प्र० ग्रन्थकार, ६।११ केदारघाट, काशी मू० १) पृ० १४५
६६३	१४	भ० गीता-कर्मयोग (मूल, अ० तृतीय) प्र० भ० गीता पाठशाला, बम्बई सं० १—१८४३ शक बिना मूल्य पृ० १८
६६४	१५	भ० गीता-भक्तियोग(मूल, अ० १२वाँ) प्र० भ० गीता पाठशाला, बम्बई सं० १—१८४३ शक बिना मूल्य पृ० १२
६६५	१६	भ० गीता (मूल, गु०) प्र० मु० हिन्दी-प्रेस, प्रयाग मू० ।–) पृ० २१५
६६६	१७	भ० गीता (मूल, गु०) प्र० श्रीविहारी, चंदुलाल बहेचरलाल पटेल, गोंडल मू० -) पृ० १०८
६६७	१८	गीता दैनन्दिनी (गीता-डायरी) प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० ४—१९३० ई० मू० ।) पृष्ठ ४००

१—लिपि—देवनागरी * २—भाषा—हिन्दी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६६८	*१	भ० गीता— केवल भाषा (भीष्मपर्व पृ० १३४१ से १३८५) प्र० शरच्चन्द्र सोम, कलकत्ता सं० २—१९०७ ई० मू० १२) पृ० २५००
६६९	२	भ० गीता— केवल भाषा (भीष्मपर्व पृ० १९१५ से १९५५) प्र० इण्डियन-प्रेस, प्रयाग सं० १—१९३० ई० मू० १।) पृ० १००
६७०	३	श्रीमद्भगवद्गीतांक सं० बाबा राघवदासजी और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर सं० १—१९८६ वि० मू० २॥) पृ० ५०५
६७१	४	भ० गीता (पद्य) ले० सर मलखानसिंहजी महाराज, चरखारी नरेश स० पं० जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी प्र० ग्रन्थकार, चरखारी स्टेट सं० १—१९०९ ई० बिना मूल्य पृ० १६०
६७२	५	गीतागायन (पद्य, प्रथम खण्ड) ले० पं० प्रेमबिहारीलाल शर्मा, किरावली, आगरा पता ग्रन्थकार सं० १—१९८३ वि० मू० ।) पृ० २४
६७३	६	भ० गीता टी० स्वा० मलूकगिरिके शिष्य स्वा० आनन्दगिरि-सज्जन मनोरञ्जिनी-भाषा० टी० (सं० १९३० वि० के करीब रचना काल) (शङ्कर, आनन्दगिरि, श्रीधर आदि संस्कृत-टीकाके अनुसार) प्र० नवल०, लखनऊ, सं० ७—१९२१ ई० मू० ३) पृ० ४८०
६७४	७	भ० गीता टी० पं० रामभद्रशास्त्री (१-दोहा २—भाषाटीका) प्र० हरिप्रसाद भागीरथ, रामवाड़ी, बम्बई सं० ४—१९८० वि० (र० का० १९५१ वि०) पृ० २८० मू० १)
६७५	८	भ० गीता टी० पं० नारायणप्रसाद मिश्र सलीमपुर, खीरी (नारायणी-भाषाटीका) प्र० श्यामकाशी-प्रेस, मथुरा सं० १—१९७१ वि० मू० १।) पृ० ३१०
६७६	*९	भ० गीता—केवल भाषा ले० स्वा० भिक्षुक, कनखल प्र० शिवदयालजी खेमका, कल० सं० १—१९७२ वि० बिना मूल्य पृ० २२५
६७७	१०	कृष्णचरित्र (खं० २, निबन्ध; काम गीता सहित) ले० श्रीबङ्किमचन्द्र चट्टो० (बंगला) अ० पं० जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी प्र० मु० भारतमित्र-प्रेस, ताराचन्ददत्त स्ट्रीट, कलकत्ता सं० २-१९८० वि०, १—१९७१ वि० मू० १।=) पृ० ४३०

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
६७८	११	भ० गीता ले० पं० ईश्वरप्रसाद तिवारी (दोहा चौपाईमें) पता-ग्रन्थकार, त्रिलाईगढ़, बिलासपुर सं० १-१९१९ ई० मूल्य ॥=) पृ० १६०
६७९	१२	भगवद्गीताकी समालोचना ले० सोहं स्वामी (बँगला) अ० पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री प्र० सूर्यकान्त वन्द्यो०, बी० एल०, ढाका पता-स्वयंभाति पुस्त०, ३८ सदानन्द बाजार, काशी सं० १-१९८६ वि० मू० २) पृ० ३४०
६८०	*१३	गीतार्थप्रकाश (पद्य) ले० बाबू कन्हैसिंह, शाहगंज, आगरा मु० वेंक०, बम्बई सं० १-१९६७ वि० मू० ।=) पृ० १००
६८१	१४	भ० गीता टी० पं० बाबूरामविष्णु पराड़कर प्र० राष्ट्रीय साहित्यभवन, पता-विश्वनाथ सारस्वत साहित्य-रत्न, विश्वहितैषी-प्रेस. यवतमाल. बरार सं० १-१९८५ वि० मू० ≠)। पृ० २१६
६८२	१५	भ० गीता—केवल भाषा ले० स्वा० किशोरदास कृष्णदास प्र० मूलचन्द एन्ड सन्स, मच्छीहट्टा, लाहौर सं -१९८६ वि० मू० १।) पृ० ४१२
६८३	१६	भ० गीता-केवल भाषा प्र० मेहरचन्द लक्ष्मनदास, लाहौर सं०—१९६१ वि० मू० ॥≠) पृ० ८५
६८४	१७	एकश्लोकी गीता (अ० ७।१ की मायानन्दी व्याख्या) स० गणेशानन्द गीतार्थी प्र० इण्डियन प्रेस, प्रयाग सं० १-१९३० ई० मू० ॥) पृ० १०४
६८५	१८	गीता-भगवद्भक्ति-मीमांसा ले० पं० सीतारामजी शास्त्री, भिवानी प्र० ब्रह्मचर्याश्रम हरियाणा शेखावाटी भिवानी (पञ्जाब) सं० १-१९८६ वि० मू० ।=) पृ० १००
६८६	१९	श्रीकृष्ण-सन्देश या हिन्दी गीता प्र० श्रीराम प्रेस, स्यावरी, झाँसी सं० १-१९८४ वि० मू० ।=) पृ० ९०
६८७	२०	भ० गीता (पद्य) ले० वेदान्ताचार्य पं० तुलसीराम मिश्र विद्यानिधि, एम० ए०, एम० आर० ए० एस० प्र० ग्रन्थकार मु० नवल०, लखनऊ सं० १-१९८२ वि० बिना मूल्य पृ० १६०
६८८	२१	गीता-सार-सुधा (पद्य) ले० पं० अनन्तलाल मिश्र, पता-ग्रन्थकार, महदीपुर, मुँगेर सं०१-१९८१ वि० मू०१)
६८९	२२	भ० गीता (दोहा चौपाईमें) ले० स्वा० परिव्राजकाचार्य, मथुरा प्र० श्रीमती मनोरमा देवी शुक्ला, शास्त्री विशारद, मुख्याध्यापिका कन्याविद्यालय. मथुरा, सं० १-१९८६ वि० मू० ।) पृष्ठ १००
६९०	२३	भ० गीता-सतसई (७०० दोहा) ले० श्रीकृष्णलाल गुप्त प्र० नन्दकिशोर दास, दाऊदनगर, गया सं० १-१९२९ ई० मू० ।=) पृ० १२६
६९१	२४	गीता सूर्यप्रकाश (पद्य) ले० सेठ मदनगोपाल माहेश्वरी, फाजिलका प्र० सूर्यमल चाननमल आढ़ती, देहली सं० २-१९८६ वि० बिना मूल्य पृ० ७०
६९२	२५	भ० गीता-संगीतोपनिषद् (पद्य) ले० पं० विश्वेश्वरदत्त मिश्र (सदानन्दचैतन्य) प्र० पं० रामेश्वरदत्त वाजपेयी, कमलापुर, सीतापुर मु० नवल०, लखनऊ सं० १-१९२६ ई० मू० ।≠) पृ० ७०
६९३	*२६	गीतासंगीत (पद्य) ले० प्र० राजा गंगानारायणसिंह, कनरास, (E. I. R.) सं०१-१९६६ वि०पृ० १०८
६९४	२७	ज्ञान और कर्म (निबन्ध) ले० सर गुरुदास बनर्जी नाइट, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० एल०, के० सी० आई० ई० (बंगला) अनु० पं० रूपनारायण पांडेय (हिन्दी) प्र० हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्या०, हीराबाग, बम्बई सं० १-१९७७ वि० मू० ३) पृ० ४००
६९५	२८	तत्त्व-चिन्तामणि (निबन्ध-संग्रह) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका प्र० गीताप्रेस गोरखपुर, सं०१-१९८६वि० मू० १) पृ० ४००
६९६	२९	कर्मयोग (निबन्ध) ले० श्रीअश्विनीकुमार दत्त (बंगला) अनु० पं० छबिनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल-एल० बी०, प्र० सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर सं० १-१९२६ ई० मू० ।) पृ० १५०

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
६९७	३०	भक्ति (निबन्ध) ले० स्वा० विवेकानन्द (बंगला-भक्तियोग) अ० 'श्रीज्ञानपिपासु' प्र० हि० पु० एजेन्सी, बड़ाबाजार, कल० सं० २—१९८६ वि० मू० ।≶) पृ० १०५
६९८	३१	कर्मयोग (निबन्ध) ले० स्वा० विवेकानन्द (अंग्रेजी) अ० पं० बद्रीदत्त शर्मा प्र० इण्डियन-प्रेस, प्रयाग सं०४—१९२३ ई० मू० ॥) पृ० ११०
६९९	३२	सात्विक जीवन (निबन्ध) ले० रामगोपालजी मोहता, बीकानेर प्र० चांद कार्या०, प्रयाग सं० नवीन—१९३० ई० बिना मूल्य पृ० १६०
७००	३३	गीता माहात्म्य (पद्य) ले० भगवानदास खत्री मु० लक्ष्मी वेंक०, बम्बई सं०—१९५० वि० मू० -) पृ० १८
७०१	३४	भ० गीता टी० श्रीमती यशोदादेवी, कर्नेलगंज, प्रयाग सं० १—१९३० ई० मू० -)॥ पृ० १३०
७०२	३५	भ० गीता (अ० प्रथम) टी० पं० बाबूराम शर्मा, कर्णवास (१—दोहा २—भाषाटीका) पता- ब्रह्मदेव शर्मा, कर्णवास पो० खास, बुलन्दशहर सं० १-१९२९ ई० मू० ≶) पृ० १७
७०३	३६	भ० गीता (गु०) ले० पं० कन्हैयालाल मिश्र प्र० मु० रामेश्वर प्रेस, दरभंगा सं० १—१९७५ वि० मू०) १ पृ० ४१५
७०४	३७	भ० गीता (गु०, अ० १५,१८ वाँ) स० भिक्षु अखण्डानन्द प्र० सस्तु०, अहमदाबाद सं० १—१९८० वि० मू०)॥ पृ० ३२
७०५	३८	अनासक्तियोग—भ० गीता (गु०) ले० महात्मा गांधी (गुजराती) अ० प्र० शुद्ध-खादी-भण्डार, १३२ हरीसन रोड, कलकत्ता सं० १—१९३० ई० मू० =) पृ० २००
७०६	३९	अनासक्तियोग-भ० गीता (गु०) ले० महात्मा गांधी अ० प्र० सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर सं० १-१९३० ई० मू० ≶) पृ०
७०७	*४०	भ० गीता (गु०) अन्वयार्थ, भाषाटीका, टिप्पणी सह प्र० आर्य मिशन, कल० सं० १—१९५९ वि० मू० ॥=) पृ० ४८०
७०८	४१	भ० गीता (गु०) टी० मनीषि नानकचन्द्र (सुखानन्द) मथुरा (सुखानन्दी-भाषाटीका) प्र० गोपीनाथ मनोहरलाल, नयाबाजार मथुरा सं० १—१९२७ ई० मू० ।=) पृ० १६०
७०९	४२	भ० गीता—केवल भाषा (गु०) प्र० बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा मू० ॥) पृ० १८०
७१०	४३	भ० गीता (गु०) टी० मदनमोहन शुक्ल 'मदनेश' प्र० पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव, लखनऊ सं० १—१९३० मू० =) पृ० २५०
७११	४४	भ० गीता (गु०) टी० श्रीचन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु, सआदतगंज, लखनऊ प्र० अग्रवाल प्रेस, प्रयाग सं० १—१९२८ ई० मू० =) पृ० २४० (केवल भाषा मू० -)। पृ० १४०)
७१२	*४५	भ० गीता (गु०) टी० पं० रमापति मिश्र, प्र० ग्रन्थकार मु० भारतसेवा प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई सं० २—१९७६ वि० मू० ।) पृ० ३००
७१३	४६	गीतामृत (गु०, अ० द्वितीयका पद्यानुवाद) ले० श्रीमैथिलीशरण गुप्त, प्र० साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) सं० १—१९८२ वि० बिना मूल्य पृ० ३०
७१३क	४७	श्री भ० गीता (साधारण टीका) टी० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर पृष्ठ ३३२ मूल्य ॥)
		१—लिपि—देवनागरी * ३—भाषा-मराठी
७१४	१	भ० गीता (भीष्मपर्व पृ० ४४ से १२१) स० महादेव हरि मोडक बी० ए० और यशवन्त गणेश फडके प्र० चिपलूणकर एण्ड कं०, पूना सं० १—१८२८ शक मू० ६) पृ० ७६०
७१५	२	बालबोधिनी भ० गीता टी० पं० विष्णु वापट शास्त्री प्र० चिपलूणकर कं०, पूना सं० १—१९२१ ई० मू० ४) पृ० ७४०

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
७१६	३	गीतातात्पर्यसुधा ले० हनुमन्तराव धारवाड़कर (सं० १९८६ वि० गीताजयन्ती उत्सव-समिति, ३० बाँसतल्ला गली, कलकत्तासे पुरस्कारप्राप्त निबन्ध) प्र० ग्रन्थकार, आनन्दतीर्थ कार्या०, मल्लपुर. गुलबुर्गा (S. I. P.) सं० १-१८५० शक मू० १≡) पृ० १५०
७१७	४	महाभारत उपसंहार (निबन्ध) ले० चिन्तामणि विनायक वैद्य प्र० चिपलूणकर कं०, पूना सं० २-१९२२ ई० मू० ५) पृ० १००
७१८	५	भ० गीता (गद्य संवाद) ले० लक्ष्मणगणेश साठे एम० ए०, प्र० रामचन्द्रगणेश साठे, ७०६ सदाशिव पेठ, पूना सं० १-१८४१ शक मू० ।) पृ० ३०
७१९	६	गीताकूजन ले० श्रीमथुराबाई पण्डिता (संगीत-पद्यानुवाद) प्र० विष्णुवामन कानटेकर. सांगली मु० आर्य्य-संस्कृत-प्रेस, चिमणबाग, पूना सं०१-१९२६ ई० मू० ॥) पृ० १००
७२०	७	वैश्य-गीता ले० पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, जब्बलपुर (हिन्दी) प्र० श्रीदेशपाण्डे, कामधेनु-दुग्धालय, चौपाड, सोलापुर सं० १-१९२९ ई० मू० ॥) पृ० १४
७२१	८	भ० गीता टी० नागेश वासुदेव गुणाजी बी० ए०, एल-एल० बी०, बेलगाँव प्र० केशव भिकाजी ढवले, गिरगाँव, बम्बई सं०१-१८५१ शक मू० ≠)॥ पृ० २६०
७२२	९	भ० गीता (गु०) टी० मराठी भाषानु० प्र० दत्तात्रय गजानन देव, सदाशिव पेठ, पूना मु० केशवरावजी गोंधलेकर. पूना मू० ॥≈) पृ० १७५

१—लिपि—देवनागरी * ४—भाषा—मेवाड़ी (राजपूताना)

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
७२३	●१	भ० गीता टी० पं० रामकर्ण-श्यामकर्ण (गीतार्थदीपिका मारवाड़ी भा० टी०) मु० प्रताप प्रेस, जोधपुर सं०१ १९५७ वि० मू० १॥) पृ० ३२५

१—लिपि- देवनागरी * ५(ख)—भाषा-पहाड़ी (कुमाऊँ पहाड़)

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
७२४	१	भ० गीता (कूर्माचलदेशीय भाषामें पद्यानुवाद) ले० पं० लीलाधर जोशी एम० ए०, एल-एल० बी०, सबजज-खीरी (अवध) पता- पं० जीवनचन्द्र जोशी, घसियारी मंडी. लखनऊ सं०१-१९०८ ई० मू० १) पृ० १२५

३—लिपि—बंग * ७—भाषा—बंगला

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
७२५	१	भ० गीता टी० उपाध्याय भाई गौर गोविन्दराय (समन्वय-भाष्य) प्र० नवविधान-मंडल. पता—प्रचार-आश्रम एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १-१८२२ शक मू० ५) पृ० ५५०
७२६	२	श्रीकृष्णेर जीवन ओ धर्म (निबन्ध) स० प्र० नवविधान-मंडल पता—प्रचार-आश्रम. कलकत्ता सं०३-१८२६ शक मू० १॥) पृ० २६०
७२७	●३	भ० गीता टी० श्रीधरी टीका (कुछ पृष्ठ नष्ट हैं) पृ० १९०
७२८	४	भ० गीता ओ तत्त्वदर्शन (खं० ६; अ० ६) मूल, अन्वय, बंगला और अंग्रेजी अनुवाद, आध्यात्मिक व्याख्यासहित प्र० शिवप्रसन्न मुखो०, कल०, पता—गांगुली कं०, ५४ बैंटिक स्ट्रीट, कल० सं० १-१९१६ ई० मू० १॥) पृ० ३२५
७२९	५	भ० गीता टी० अविनाशचन्द्र मुखो० (श्रीधरीसह) स० प्र० अधरचन्द्र चक्रवर्ती, तारा पुस्त०, १०५ अपर चितपुर रोड. कल० सं० ३-१३३५ बं० मू० १॥) पृ० ३८०
७३०	६	सरल गीता (अन्वय, बंगानु०, तात्पर्यसह) स० अनेक भगवत्-कृपाकांक्षी प्र० योगीन्द्रनाथ सील, २० कान्वयार डाइन लेन, कल० सं०-१३३६ बं० मू० १) पृ० ३८०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७३१	७	गीतामृतरस (पद्य) ले० भक्तिरत्नाकर जगबन्धु गोस्वामी प्र० गौरांग भंडार, अथवाव सं०-४२६ गौराब्द मू० १।) पृ० ३४०
७३२	८	शक्तितत्त्वामृत (निबन्ध) ले० पूर्णचन्द्र भट्टा०, १४ छकु खानसामा लेन, मिर्जापुर स्ट्रीट, कल० सं०१-१३३३ बं० मू० १॥) पृ० २१०
७३३	९	त्यागद्वारा भगवत्-प्राप्ति (निबन्ध) ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका प्र० गोविन्दभवन कार्या०, ३० बाँसतल्ला गली, कल० सं० १-१३३५ बं० मू० -) पृ० १६
७३४	१०	ॐकारदर्शन (निबन्ध; भाग १) ले० श्रीअविनाश तत्त्वदर्शी प्र० ब्रह्मविद्या आश्रम, सोनामुखी, बाँकुड़ा सं० १-१३३६ बं० पृ० ६०
७३५	११	गीता-प्रश्नोत्तरमाला (भाग १, २) प्र० गीता सभा, शिवदास गुप्त, ७ वारेंस स्क्वायर, नई दिल्ली सं० १-१९२८।२९ ई० बिना मूल्य पृ० ४०, २०
७३६	१२	भ० गीता (पद्य) ले० महेन्द्रनाथ चक्रवर्ती प्र० एस. सी. अढ्डी कं०, ४८ वेलिंगटन स्ट्रीट, कल० सं०४-१३३० बं० मू० ॥=) पृ० ३००
७३७	१३	भ० गीता (गु०) ले० पं० भुवनमोहन भट्टा० विद्यारत्न (पद्य) प्र० योगाश्रम, काशी सं०२-१३३४ बं० मू० ।=) पृ० २५०
७३८	१४	भ० गीता (मूल, तावीजी) स० विश्वेश्वर भट्टा० प्र० तारककिंकर मुखो०, १६ टाउनसेन्ड रोड, भवानीपुर, कल० मू० =) पृष्ठ २४०

५-लिपि-कनाड़ी * ९ भाषा-कनाड़ी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७३९	१	गीतार्थचन्द्रिका टी० होसाकेरे चिदम्बरिया (शंकर मतानुयायी) पता- आर० आर० दिवाकर, कर्मवीर कार्या०, धारवाड़ मू० २॥) पृ० ४५०
७४०	२	भ० गीता (लिपि-देवनागरी) ले० वरदराजार्य मु० रामतत्त्वप्रकाश प्रेस, बेलगाँव, पता-आबाजी रामचन्द्र सांवत, बेलगाँव, बम्बई मू० २) पृ० १७५

९-लिपि-गुरुमुखी * १३-भाषा-पंजाबी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७४१	१	भ० गीता (मूल-देवनागरी) प्र० जैरामदास होतीचन्द छाबिरिया मु० सतनाम प्रिंटिंग प्रेस, शिकारपुर, सिंध सं० १-१९८६ वि० मू० ≡) पृ० २०४

१०-लिपि-सिंधी(-उर्दू) * १४-भाषा--सिंधी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७४२	१	भ० गीता प्र० जैरामदास होतीचन्द छाबिरिया मु० सनातन प्रिंटिंग प्रेस, शिकारपुर, सिन्ध सं० १-१९८६ वि० मू० ≡) पृ० २०४

११-लिपि-फ़ारसी * १५-भाषा--उर्दू

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७४३	१	भ० गीता (भीष्मपर्व पृ०२१ से १६१; मूल देव० और अनु०उर्दू) ले०श्रीराम प्र० नवल०, लखनऊ मू०२।)
७४४	२	भगवद्गीता विमल-विलास (खं० ४) ले० श्रीयुगलकिशोर 'विमल' एम० ए०, एल-एल० बी०, सिनियर ऐडवोकेट प्र० सनातन धर्म सभा, दिल्ली सं० १-१९२८ ई० मू० २।) पृ० ३४१
७४५	३	गीतामृततरंगिणी टी० पं० रघुनाथप्रसाद शुक्ल प्र० नारायणदास जङ्गलीमल, दिल्ली, सं० १-१८९३ ई० मू० १) पृ० २१०
७४६	४	भ० गीता (पद्य) ले० राय हरप्रसाद बहादुर मु० कायस्थ हितकारी, कटरा नन्दराम, आगरा सं० १-१९०४ ई० पृ० ८२

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७४७	५	ज्ञानप्रकाश-भ० गीता ले० कन्हैयालाल अलखधारी ('गुलशनेराज' फारसी टीकाका अनुवाद) प्र० मु० मुफीद आलम प्रेस, लाहोर सं० १–१९०८ ई० पृ० १६०
७४८	६	गीता-माहात्म्य ले० मुंशी रामसहाय प्र० नवल०, लखनऊ, मू० –) पृ० २६
७४९	७	भ० गीता टी० पं० कृपाराम शर्मा (स्वा० दर्शनानन्द) जगरानवी प्र० आर्य्य पुस्त०, मु० वैदिक धर्म प्रेस, आगरा पता–वैदिक पुस्त०, मुरादाबाद मू० ।=) पृ० १२६
७५०	८	भ० गीता टी० पं० सर्वदयाल शर्मा प्र० ग्रन्थकार, किशनचन्द कं०, 'हमदर्द' कार्य्या०, लाहोर सं० १–१९०३ ई० मू० १) पृ० १६४
७५१	९	भ० गीता–केवल भाषा (गु०) प्र० सनातन धर्म पुस्तक भंडार, लच्छोवाली, लाहोर सं० ३-१९८९ वि० मू० ।=) पृ० २१५
		११–लिपि–फारसी * १६–भाषा–फारसी
७५२	१	भ० गीता (पद्य) ले० फैजी फैय्याजी मु० हीरालाल प्रेस, जैपुर, पता-नारायणदास जङ्गलीमल, दिल्ली सं० १–१९५४ वि० पृ० ८०
		12-Character.Roman ❋ 18.Language English.
753	1	Introduction to the Bh. G. By Richard Garbe. Trans. By Rev. D. Mackichan, M. A., D. D., L L. D. Pub. University. of Bombay. Ed. I-1918 pp. 50
754	2	Laghu Bh. G. (Verses I to 9) } By T. V. Krishna Swami Rao. E. 1 'Madhwamunidasa' Office, 10/3 Firoj Buil., Matunga. Bombay.
755	3	A Synopsis of Bh. G. } By T. V. Krishna Swami Rao. E. 1 'Madhwamunidasa' Office, 10/3 Firoj Buil., Matunga. Bombay.
756	4	The Mahabharat--A Criticism (Essay) by C. V. Vaidya, M. A.. LL. B. Pub A J. Cambridge Co., Bombay. Ed. 1-1905. Rs. 3/-pp. 230.
757	5	The Six Systems of Indian Philosophy (Essay) by Prof. Max Muller, K. M. Pub. Longman's Green Co., London. Ed. V-1919 Rs. 6/8- pp 510.
758	6	Outlines of Indian Philosophy (Essay) by P. T. Srinivasa Iyengar, Pub. T P.S. Benares. Ed. I-1909 Re. 1/4/- pp. 325.
759	7	Three Great Acharyas (Sankar, Ramanuj, Madhwa) (Essay) E. and Pub. G.A. Natesan Co., Madras. Ed. I-1923. Rs. 2/-pp. 350.
760	8	Hinduism and India (Essay) by Govindadas. Pub. T. P. H., Benares. Ed. I-1908 Re. 1/- pp. 440.
761	9	Krshna by Bhagvan Das. Pub. T.P.H., Madras. Ed. III-1929. Rs. 2/12/- pp. 310.
762	10	The Heart of the Bh. G. By Lingesha Mahabhagwat of Kurtkoti, Ph. D. (now His Holiness Jagadguru Shankaracharya of Karvir) Pub. Prof. A.G. Widgery, Baroda College From:-The Oriental book agency, Shukravar Peth, Poona. Ed. I-1918 Rs 2/4/- pp. 300
763	11	The Ancient Murli. Re.-/4/- pp. 32 } (Essays) By Prof T. L. Vaswani. Pub. Ganesh & Co. Madras.
764	12	Krishna-The Saviour. Ed.-1925 Re. 1/8 pp. 188 } (Essays) By Prof T. L. Vaswani. Pub. Ganesh & Co. Madras.
765	13	The Secret of Asia. Re. 1/- pp. 90 } (Essays) By Prof T. L. Vaswani. Pub. Ganesh & Co. Madras.
766	14	Gita Idea of God by Gitanand Brahmachari, pub. B. G. Paul Co. Madras. ed 1. 1930 Rs. 5/-pp. 504.

Serial No.	Book No.	Description.
767	15	A few Problems Solved (through Bh. G.) by Durganath Ghose Tattvabushan. Pub. Author, 31/12 Harrison Rd., Calcutta. From:-Chakerbarty Chatterji, College St., Calcutta. Ed. I-1927 Re. 1/8/- pp. 220
768	16	The Three paths to union with God (Essay) by Annie Besant. Pub. T.P.S., Adyar, Madras. Ed. III-1925 Re.-/6/- pp. 70
769	17	Glimpses of the Bh. G. by Mukund Vaman Rao Burway, B.A. Pub. Author. 12 Imlibajar, Indore. Ed.-1916. Rs. 2/8/-pp.
770	18	Bh. G. (A study) by Vishwas G. Bhat, M. A. Pub. Karnatak Printing Works, Dharwar. Ed. I-1924. pp. 95
771	19	Bh. G. (Metrical Trans.)by Bilaschandra Roy, Pleader. Pub. Ajitchandra Roy, 5-Becharam's Dewry, Dacca. Ed. I-1926 Re. /8/ pp. 145.
772	20	Gita Mahatma (Poem) by Swami Anandanand Saraswati, Dashnam Akhara. Durgiana, Amritsar. Ed. II-1929. Free. pp. 20
773	21	Sree Krishna's Messages and Revelations by Baba (Premanand) Bharti Pub. G.A Natesan Co., Madras Ed. I-1925 Re. -/8/- pp. 80
774	*22	One Evening-Gita Class (Essay) Pub. Gita-Society, 7 Lawrence Spuare, New Delhi. Ed. I-1929 Free. pp. 8.
775	*23	Bh. G. by Charles Wilkins. Pub. Upendralaldas. Calcutta. Ed. III-1896. Re. 1/4/-pp. 135
776	*24	Bh. G. (Poem) by Tulsiram Misra. Vidyanidhi, M. A., M. R. A. S. Print. Navalkishore Press, Lucknow. Ed. I-1924 Free. pp. 210.
777	25	The Gospel of Love (Essay) Pub. Ganesh Co., Madras. Es.-I-1924 Re.-/4/-pp. 35
778	26	Bh. G. (with Sans. Text; P. E.) by Manmath Nath Dutta, Shastri, M. A., M. R. A. S. etc. E. &. Pub.:M. N. Dutt, Society for the Recitation of Indian Literature, Calcutta. Ed. New-1903. Re.-/4/-pp. 240.

12-Character Roman ❀ 19-Languages Foreign.

Serial No.	Book No.	Description.
779	1	Bh. Gita. (Sans., Canarese, English and Latin.) Containing: --The Sans. Text from Schlegel's edition; the Canarese newly Translated from the Sans.; the English trans. by Sir Charles Wilkins, with his Preface and Notes, etc.; and the introduction by the Hon. Warren Hastings,Esq., with an Appendix containing Additional Notes from Prof. Wilson, Rev. H. Milma., etc; and an Essay on the Philosophy and Poetry of the Bh. Gita by Baron William Von Humboldt, translated from the German by Rev. G. H. Weigle: the second edition of Schlegel's Latin Version of the Gita, with the Sans. Text revised by Prof. Lassen, etc. Edited by The Rev. J. Garrett, Bangalore. Ed.-1849 Rs. /13/- pp. 300.
780	2	Bh. G or Den Helliges Sang (Dainsh) by Alex. Schumacher. Pub. J. S. Jensen's Forlag, Kobenhavn, Denmark. Ed. MCMX VII Price. Koronar. 5/- pp. 95.
781	3	Bh. G. or Gesang Des Heiligen (German) by Dr.Paul Deussen. Pub. F. A. Brockhans, Leipzig Ed. I-1911. Rs. 8x/- pp.155.
782	4	Bh. G.-old sacred songs of India. (Japanese) sacred books of the World series-, Part I, Vol. 6, Sekai seiten zenshu.) Containng:- 1. Rig Veda Hymns., 2. Bh. G. Trans. By Prof. g. Takakusa. 3.-Appendix.- Explanation of Gita.Pud. world Literary works Publishing society.(Sekai Bunko-Konko Kai,)No. 52 Myagatani-machi, Kaishi kawa Ku, Tokyo, Japan.6/-pp.

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		१४-गीता-सम्बन्धी हस्त० पुस्तकें; लेख; सूक्ति-पट; ट्रैक्ट्स; चित्र आदिः-
		(लिपि—देवनागरी)
७८३	*१	भ० गीता-पञ्चरत्न (गु०; हस्तलिखित, पुरानी) कई रङ्गीन चित्रों सहित, प्रत्येक पृष्ठमें चारों ओर सुनहरी रंगीन बेल मूल्य ३५) पृ० २४०
७८४	*२	भ० गीता-पञ्चरत्न (गु०; हस्त०) लेखक-एक काश्मीरी (कुछ स्तोत्रों सहित) चित्र २३, रङ्गीन बेल, प्रायः १०० वर्ष पुरानी; मूल्य २५) पृ० ३२०
७८५	*३	भ० गीता-पञ्चरत्न (गु०; हस्त०) सचित्र, पुरानी (कुछ स्तोत्रों सहित) पृ० २५०
७८६	*४	भ० गीता (गु०, मूल, हस्त०, सम्पूर्ण) पृ० १३५
७८७	*५	भ० गीता (हस्त०, खुलापन्ना, देवनागरी-लिपि; पृ० नं० १, ७२, ७३, ७४, ७५, ६५, ६६, ९८, ९९, १०० कम हैं) टी० पं० लालदास आचार्य (सम्बोधिनी-भाषाटीका) (मोहनदासद्वारा लिखित मि० आषाढ शुक्ल ३ सं० १८२४ वि०) पृ० १०२
७८८	*६	भ० गीता (हस्त०; हिन्दीभाषामें पद्यानुवाद, केवल अ० १२ लिपि-फ़ारसी)
७८९	*७	उर्दू गीता (हस्त०; एक प्राचीन प्रतिसे उद्धृत; लिपि-फ़ारसी) स्वा० कृष्णचन्द्र आज़ाद, राधाभवन, बरेलीद्वारा लिपिबद्ध—गीताके श्लोकोंसे कुरानकी आयतोंका मिलान।
७९०	८	सार-गीता (हस्त०, नवीन, हिन्दी) ओंकारका माहात्म्य पृ० १५
७९१	*९	भ० गीता-सम्बन्धी संगृहीत सूक्तियां (हस्त० कापी)
७९२	१०	गीता-निबन्ध (हस्त०) ७ प्रतियां
७९३	११	भ० गीता (मूल, सम्पूर्ण, लिपि-बङ्गला) ताड़पत्रपर छपी स० प्र० हरिपद चट्टो०, शास्त्रप्रकाश पुस्तकालय, कल० मू० १॥) पत्र-संख्या १६३
७९४	१२	भ० गीता-तावीजी (बहुत महीन अक्षर, जर्मनीमें मुद्रित) सोनेके तावीज सहित मू० ४)
७९५	*१३	भ० गीता (दो बड़े चित्रोंमें छपी) मु० गीताप्रेस, गोरखपुर
७९६	१४	भ० गीता (दो पृष्ठोंमें छपी, अति सूक्ष्म अक्षर) प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर मू० -)
७९७	*१५	भ० गीता-एक ही चित्रमें सम्पूर्ण गीता, पत्थरके छापेपर छपी मू० १)
७९८	१६	भ० गीता-एक ही फोटोमें सारी गीता, पता-विज्ञान नौका कार्य्यालय, ग्वालियर मूल्य १॥)
७९९	१७	भ० गीताके प्रश्नपत्र सं० १९८४ । ८५ । ८६ वि० प्र० गीता-परीक्षा-समिति, बरहज । बिना मूल्य
८००	*१८	गीता-सम्बन्धी कुछ लेख निम्नलिखित पत्रोंसे संगृहीत— 'कल्याण' गोरखपुर; 'कृष्णसन्देश' कलकत्ता-काशी; 'मेसेज' (अंग्रेजी) गोरखपुर; 'यादव' गोरखपुर; 'कृष्ण' कलकत्ता; 'वेदान्तकेसरी' आगरा; 'धर्म' (बंगला) कलकत्ता; 'नवजीवन' अहमदाबाद; 'समन्वय' कलकत्ता; 'दिव्य-चक्षु' ग्वालियर; 'महावीर' पटना; 'गढ़देश' अल्मोड़ा; 'सुधारक' (गीताङ्क-अ० २ का पद्यानुवाद पं०कृपाशंकर अवस्थीकृत) हाजीपुर; 'वीरभूमि' (बंगला) (वर्ष ५ अं०४।५ गीतारधर्मे ओ नाहार अधिकार स० कुञ्जदाप्रसाद मल्लिक मू० ॥) सं०-१३३० बं०); 'कल्याण' का गीताङ्क आदि।

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
८०१	*१९	गीता-ट्रैक्ट्सः— गीता-नवनीत; लोक-संग्रह-प्रकरण; भगवत्प्रसाद; भगवत्प्रसाद(छोटा): योगानुष्ठान-प्रकरण, प्रजापति-सन्देश; यदा यदा हि धर्मस्य०; गीतामृतदुहे नमः, गीता-प्रदर्शिनीका उपहार (सं० १९८५ वि० आदि। प्र० गीता-पाठशाला, महाजनवाड़ी, पिंकेटरोड, बम्बई
८०२	२०	गीता-कैलेण्डर (विराट्स्वरूप तथा गीताश्लोकविषयक कई चित्रों सहित) प्र० निहालचन्द कम्पनी, नारायणप्रसाद लेन, कलकत्ता मू० ॥)
८०३	२१	भगवान् कृष्णकी १६ कलाओंका कैलेन्डर प्र० मेहता हाफटन कं०, अनारकली, लाहोर मू० १॥)
८०४	*२२	भ० गीता-सम्बन्धी सूक्ति-पट अनेक प्रकारके (दिवालपर लटकानेके लिए)
८०५	२३	भ० गीताके भावानुसार बने हुए तथा गीता-गायक भगवान् श्रीकृष्णके और गीता-ग्रन्थकारोंके कई प्रकारके चित्र और फोटो आदि।
८०६	२४	चित्रमय श्रीकृष्ण (कई चित्र; जिल्द २; १—हिन्दी, २—बंगला) प्र० हि० पु० एजेन्सी, बड़ाबाजार, कल० मू० ४) प्रति जिल्द
८०७	२५	महाभारत-चित्रावली (२६ चित्र) प्र० सस्तु० कार्या०, अहमदाबाद सं० २-१९८४ वि० मू० १) पृ० ४९
८०८	२६	भगवान् श्रीकृष्णकी १६ कलाओंकी चित्रावली प्र० मेहता हाफटोन कं०, लाहोर मू० १॥।) पृ० ७०

क्रम सं० पु०सं० — विवरण
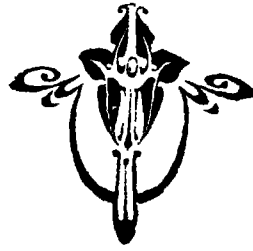
(ख) अन्य-गीता-सूची

१–लिपि-देवनागरी * १-भाषा-संस्कृत

१ १ गणेश गीता (अध्यात्म, गणेशपुराणान्तर्गता) टी० नीलकंठ (गणपति भावदीपिका टीका) मु० आनन्दाश्रम प्रेस, पूना सं०–१९०६ ई० मू० २) पृ० २००

२ २ अष्टावक्र-गीता (अध्यात्म) ले० श्रीअष्टावक्र मुनि, टी० महात्मा विश्वेश्वर-संस्कृत टीका मु० नवल०प्रेस, लखनऊ सं० १–१८९० ई० मू० ।) पृ० ८८

३ ३ श्रीभगवती-गीता (अध्यात्म, देवीभागवतान्तर्गता) टी० नीलकंठ (संस्कृत तिलक) मु० नवल० लखनऊ, सं० ३-१८६५ ई० मू० ≈)॥। पृ० ६०

४ ४ रास-गीता (अध्यात्म; १–भागवतान्तर्गता रास पञ्चाध्यायी, २–वृद्ध-गीता या योगेश्वरी टीका) टी० पं० कामानन्द शर्मा–योगेश्वरी टीका (भ० गीता श्लोकानुसारिणी टीका) मू० १) पृ० ५१

५ ५ उत्तर गीता (अध्यात्म, महाभारत अश्वमेधपर्वान्तर्गता) टी० गौडपादाचार्य-दीपिका, मु० वाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम् सं०–१९१० ई० मू० ≈) पृ० ७६

६ ६ गीता-संग्रह (भाग १, गीता १३, मूल)—

१ भगवद्गीता (महाभारतान्तर्गता) २ रामगीता (अध्यात्मरामायणान्तर्गता) ३ गणेशगीता-(गणेशपुराणान्तर्गता), ४ शिवगीता (पद्मपुराण खंडचतुर्थान्तर्गता) ५ देवीगीता (भागवता०) ६ कपिलगीता (श्रीमद्भागवता०) ७ अष्टावक्रगीता (अष्टावक्रमुनिकृत) ८ अवधूतगीता (दत्तात्रेय-मुनिकृत, स्वामिकार्तिकसंवादा०) ९ सूर्यगीता (तत्त्वसारायणकर्मकाण्डोक्त) १० (क) यमगीता (विष्णुपुराण अंश ३ अ० ७ अन्तर्गता); (ख) यमगीता (नृसिंहपुराणान्तर्गता); (ग) यमगीता (अग्निपुराणान्तर्गता) ११ हंसगीता (श्रीमद्भागवता०) १२ पांडवगीता १३ (क) ब्रह्मगीता (स्कंद-पुराणा०); (ख) ब्रह्मगीता (योगवासिष्ठमहारामायणा०) प्र० अष्टेकर कंपनी, पूना सं० १–१९१५ ई० मू० २।) पृ० ४७५

१–लिपि-देवनागरी * २–भाषा-हिन्दी

७ १ उग्र-गीता (अध्यात्म, बोधसागरान्तर्गता पद्यात्मक) ले० महात्मा कबीर स० स्वामी युगलानन्दजी कबीर-पन्थी प्र० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं०–१९८१ वि० मू० १।।।) पृ० ७१

८ २ राम-गीता (अध्यात्म-सचित्र तत्त्वसारायण-रामायणान्तर्गता मूलसहित) टी० सर विजयसिंहजी बहादुर डूँगरपुर-नरेश, प्र० ग्रन्थकार पता–भारतधर्ममहामण्डल, काशी मू० २॥) पृ० ६००

९ ३ राम-गीता (अध्यात्म, अध्यात्म-रामायणान्तर्गता, मूलसहित) टी० १–पं० श्रीराम गुजराती (१–पद-प्रकाशिका टीका २–भाषानुवाद) २–पं० विष्णुदत्त (विषमपद-व्याख्या) प्र० वेंक० प्रेस, सं०–१९७८ वि० मू० १।) पृ० ८०

१० ४ गीता-संग्रह (अध्यात्म, मूलसहित, गीता १२, महाभारतान्तर्गता) १ पुत्र-गीता २ मंकी-गीता ३ बोध-गीता ४ पिंगला ५ संपाक ६ अजगर ७ शृगाल ८ पङ्ग ९ हारीत १० हंस ११ व्यास गीता १२ नारद गीता टी० पं० भीमसेन शर्मा, प्र० मु० ब्रह्मप्रेस, इटावा सं०२–१९६७ वि० मू० ।≈) पृ० १२५

११ ५ नारद-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) टी० पं० रामनारायणदास अयोध्यानिवासी प्र० भार्गव-पुस्तका०, काशी मू० –) पृ० १६

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१२	६	सत्याग्रह-गीता (सत्याग्रह युद्ध विषयक; अ० १) पता—कलकत्ता मू० -) पृ० २
१३	७	विष्णु-गीता (अध्यात्म, मूलसहित भाषानुवाद, पुराणसंहितान्तर्गता) प्र० भारत धर्म महा०, काशी सं० १-१९१९ ई० मू० १) पृ० १५०
१४	८	शम्भु-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहितान्तर्गता, मूलसहित) प्र०भारत०, काशी सं०१-१९२०ई०मू०१)पृ०१५०
१५	९	सूर्य-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहिता०, मूलसहित) प्र० भारत०सं०१-१९१८ ई० मू० ॥) पृ० ९०
१६	१०	शक्ति-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहिता०, मूलसहित) प्र० भारत० सं०१-१९१९ ई० मू०१)पृ० १२०
१७	११	धीश-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहिता०, मूलसहित)प्र०भारत० सं०१-१९२० ई० मू० ॥।) पृ० ११०
१८	१२	गुरु-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहिता०, मूलसहित) प्र० भारत० सं०३-१९२० ई० मू० ।) पृ० ५०
१९	१३	संन्यास-गीता (अध्यात्म, पुराणसंहिता०, मूलसहित)प्र०भारत०,काशी सं०१-१९१७ ई० मू०॥।) पृ०१५०
२०	१४	अष्टावक्र-गीता ले० श्रीअष्टावक्रमुनि-मूल सं०२-१९२८ ई०मू० १॥) पृ० ३४० } (अध्यात्म) टी० बाबू जालिमसिंहजी भाषाटीका प्र० नवल० लखनऊ
२१	१५	राम गीता (अध्यात्मरामायण०) सं० २-१९२१ ई० मू० ॥=) पृ० १४०
२२	१६	अनु-गीता सं० १-१९१४ ई० मू० ॥।) पृ० ३०० } (अध्यात्म: महाभारतान्तर्गता) टी० लाला बैजनाथ पता वैश्यहितकारी, मेरठ।
२३	१७	सनत्सुजात-गीता सं० १ १९६८ वि०मू०।)पृ०७५
२४	१८	अवधूत-गीता (अध्यात्म) ले० स्वामी दत्तात्रेय—मूल, टी० स्वामी परमानन्द-परमानन्दी भाषाटीका प्र० लक्ष्मीवेंकटे०, बम्बई सं०-१९७० वि० मू० १॥) पृ० २६०
२५	१९	कपिल-गीता (अध्यात्म, श्रीमद्भागवतान्तर्गता, मूलसहित) टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, प्र० वेंकटे०, बम्बई सं०-१९७० वि० मू० ॥।) पृ० ११०
२६	२०	पंचदश-गीता (अध्यात्म, गीता ९ मूलसहित) १. काश्यप-गीता २. शौनक-गीता ३. अष्टावक्र-गीता ४. नहुष गीता ५. सरस्वती-गीता ६. युधिष्ठिर-गीता ७. वक्र-गीता ८. धर्मव्याध-गीता ९. कृष्ण-गीता टी० पं० रविदत्त शास्त्री (भावदीपक-भाषाटीका) मु० लक्ष्मीवेंक० प्रेस, बम्बई सं०-१९७१ वि० मू०॥।) पृ० १३०
२७	२१	कबीर-कृष्ण-गीता (अध्यात्म, पद्यात्मक) ले० महात्मा कबीर स० महन्त युगलानन्द बिहारी प्र० लक्ष्मी वेंक०, बम्बई सं०-१९८२ वि० मू० १॥) पृ० १५०
२८	२२	विज्ञान-गीता (अध्यात्म) ले०कविवर केशवदास (पद्य) प्र०वेंक०, बम्बई सं०-१९५१ वि० मू०॥।)पृ०१
२९	२३	मोक्ष-गीता (अध्यात्म) ले०स्वामी लक्षानन्द (मूल, भाषानुवाद)प्र०ग्रन्थकार,बीकानेर सं०-१९७९वि०पृ०२००
३०	२४	मोक्ष-गीता (अध्यात्म, सवालक्ष रामनाम) ले० स्वा० पुष्करदास प्र० लक्ष्मीवेंक० सं०-१९८२ वि० मू० १।
३१	२५	गोविन्दनाम-गीता (अध्यात्म, २१६०० गोविन्द नाम) ले० स्वा० पुष्करदास प्र० लक्ष्मीवेंक०, सं०-१९८३ वि० मू० ॥) पृ० २२०
३२	२६	बुद्ध-गीता (भगवान् बुद्धके विचार) सं० स्वा० सत्यदेव परिव्राजक प्र० लपानिया पब्लिशिंग हाउस, आगरा सं० १ १९२३ ई० मू० ॥) पृ० १००
३३	२७	गान्धी-गीता (गान्धीजीके विचार) सं० पं० नरोत्तम व्यास प्र० आर० एल० बर्मन, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं०१-१९७९ वि० मू० २) पृ० २५०
३४	२८	गीता-सत्य-योग (उपदेश, निबन्ध) ले० अयोध्याप्रसाद 'रत्नाकर' प्र० विश्वम्भरनाथ खन्ना, ३२ शिवठाकुर लेन, कलकत्ता सं० १-१९२२ ई० मू० १।) पृ० २००

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३५	२६	बाल-गीतावली (अध्यात्म, महाभारतान्तर्गता, गीता ६. केवल भाषा) १. अजगर-गीता २. शृगाल-गीता ३. चिरकारी-गीता ४. विचख्यु-गीता ५. बौद्ध-गीता ६. पिंगला-गीता ७. सम्पाक-गीता ८. पुत्र-गीता ९. मंकी गीता ले० पं०सुन्दरलाल द्विवेदी प्र०इंडियन-प्रेस, प्रयाग सं०२-१६२१ई० मू०॥=)पृ०१२०
३६	३०	श्रीराम गीता (अध्यात्म, अध्यात्मरामायणान्तर्गता, मूलसहित) टी० ठा० गुमानसिंहजी (शशिप्रभा-प्रकाशिनी भाषाटीका) प्र० ठा० चतुरसिंह, करजालीकी हवेली, उदयपुर (मेवाड़) सं० १-१६६७ वि० मू०) पृ० ६०
३७	३१	गणेश-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, गणेशपुराणान्तर्गता) टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र मु० वेंकटे० सं०-१६६७ वि० मू० ॥) पृ० १२५
३८	३२	जीवनमुक्त-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) ले० स्वामी दत्तात्रेय-मूल टी० पं० व्रजरत्न भट्टाचार्य-भाषाटीका प्र० लक्ष्मीवेंक० सं० -१६७१ वि० मू० -) पृ० १५
३६	३३	अवधूत-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) ले० स्वा० दत्तात्रेय टी० पं० पुत्तूलाल शर्मा प्र० हरीप्रसाद भगीरथ, बम्बई मू० ।=) पृ० ९६
४०	३४	पाण्डव-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) टी० पं० वस्तिराम (भक्तिसुधा भाषाटीका) प्र० हरिप्रसाद भगीरथ, कालबादेवी, बम्बई, सं०-१६२३ ई० मू० ≈) पृ० ४०
४१	३५	मौन-गीता (उपदेश) ले० महात्मा कबीरदास (पद्यात्मक) प्र० वेंकटे० सं०-१६७२ वि० मू०)॥ पृ० २२
४२	३६	नारद-गीता (अध्यात्म,मूलसहित) टी० पं० भरतराम शर्मा, प्र० बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, काशी मू०-) पृ० १६
४३	३७	नारद-गीता (अध्यात्म) प्र० हरिप्रसाद भगीरथ, बम्बई सं०-१८२७ शक मू० -) पृ० ८
४४	३८	ज्ञानमाला या कृष्णार्जुन संवाद (उपदेश) मु० वेंकटे०, बम्बई सं०१६८३ वि० मू० ≈)। पृ० ७५
४५	३६	अर्जुन-गीता या रामरत्न गीता (उपदेश) ले० कुशलसिंह (पद्यात्मक) प्र०व्रजवल्लभ हरिप्रसाद, कालबादेवी, बम्बई सं०-१९८३ वि० मू० ।) पृ० ८०
४६	४०	गुरु-गीता भाषा (पद्य) ले० श्रीमोहनलाल स्कूलमास्टर, शामनेर, भोपाल स्कन्दपुराणान्तर्गता गुरुगीताका पद्यानुवाद) मु० नवल०, लखनऊ सं० १-१६८३ वि० मू० ≈) पृ० २२
४७	४१	गीतामृतधारा (अध्यात्म, हनुमान-गीतासहित ले० पं० रामदास पद्य) प्र० लक्ष्मी० सं०-१९५३ वि० मू० ।।।) पृ० २२०
४८	४२	अष्टावक्र-गीता (अध्यात्म, मूलसहित ले०श्रीअष्टावक्र मुनि-मूल सान्वय भाषाटीका सहित) प्र० लक्ष्मीवें०, बम्बई सं०१६८१ वि० मू० १) पृ० २६०
४६	४३	देवी-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, देवीभागवतान्तर्गता) टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र प्र० लक्ष्मी० सं०-१६८१ वि० मू० ॥=) पृ० २००
५०	४४	शिव-गीता (अध्यात्म, मूलसहित. पद्मपुराणान्तर्गता) टी० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र प्र० लक्ष्मी० सं०-१८१४ वि० मू० ।।।≈) पृ० २७५
५१	४५	सप्तशती-गीता (अध्यात्म, मूलसहित. मारकण्डेयपुराणान्तर्गता दुर्गा-सप्तशती) टी०स्वा०ज्ञानानन्दजीका शिष्य (मातृ-महिमा-प्रकाशिनी टीका) प्र० भारतधर्म महा०, काशी सं० १-१६८४ वि० मू० ।।।) पृ० ३५०
५२	४६	ब्रह्मानन्दमोक्ष-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) ले० स्वामी ब्रह्मानन्द प्र० ग्रन्थकार, ब्रह्मानन्द-आश्रम, पुस्कर, अजमेर सं० ३-१६८३ वि० मू० १) पृ० २७०
५	४७	अष्टावक्र-गीता (अध्यात्म, गुटका) टी० १- श्रीविश्वेश्वर (संस्कृत-टीका) २-पं० पीताम्बरजी पुरुषोत्तमजी (भाषाटीका) प्र० निर्णयसागर-प्रेस, बम्बई सं० ३-१६६६ वि० मू० १) पृ० ३७०

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
५४	१८	राम-गीता (अध्यात्म, गु०, मूलसहित, अध्यात्मरामायणान्तर्गता) टी० पं० सूर्यदीन शुक्ल (१-पद्यानुवाद २-गद्यानुवाद) प्र० नवल०प्रेस, लखनऊ सं० १-१९१६ ई० मू० -)॥ पृ० ७५
५५	४६	गर्भ-गीता (उपदेश, गु०, केवल भाषा कृष्णार्जुन-संवाद) प्र० लाला श्यामलाल हीरालाल, श्याम-काशी प्रेस, मथुरा मू० -) पृ० ३२
		१—लिपि-देवनागरी* ३—भाषा-मराठी
५६	१	राम-गीता (अध्यात्म, अध्यात्मरामा०) स० महादेव हरिमोडक बी०ए० और सीताराम महादेव फड़के बी०ए० प्र० चिपलूणकर कं०, पूना सं० १-१८४६ शक मू० ३) पृ० ४१०
५७	२	कपिल-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, पद्मपुराणान्तर्गता) टी० पं० विष्णु वामन बापट शास्त्री प्र० पुरंदर ऍंड कंपनी, माधवबाग, बम्बई सं० -१९१० ई० मू० १) पृ० ८५
५८	३	अखे गीता (अध्यात्म) ले० श्रीअखा (पद्य) पता-पं० नारायण मूलजी, कालबादेवी, बम्बई प्र० बापू सदाशिव सेठ, बम्बई सं०-१७८३ शक मू०) पृ० २६
५९	४	उत्तर-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, महाभारतान्तर्गता) टी० श्रीज्ञानदेव (पद्यानुवाद) प्र० मु० रावजी श्रीधर गोंधले, जगतहितेच्छु-प्रेस, पूना सं० ३-१८२१ शक मू० ।=) पृ० ४०
६०	५	गणेश-गीता सार्थ (अध्यात्म, मूलसहित, गणेशपुराण०) प्र० पी. वी. पाठक कं०, बम्बई मू० ≡) पृ० १२० (गुटका मू० ≡) पृ० १६२)
६१	६	गान्धी-गीता या विम्याध्या शतकान्तला श्रीकृष्णार्जुन-संवाद (गान्धीजीके विचार) स० वासुदेव गोविन्द आपटे, पूना सं० २-१९२१ ई० मू० ।-) पृ० १००
६२	७	गुरु-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, स्कंदपुराणान्तर्गता) टी० स्वामी रंगनाथ (ओवी पद्य) मु० जगदीश्वर प्रिंटिंग-प्रेस, गिरगाँव गायवाड़ी, बम्बई सं० ३-१९२८ ई० मू० -) पृ० ३२
६३	८	अवधूत-गीता-सार्थ (गु०, अध्यात्म, मूलसहित) स्व० दत्तात्रेय प्र० केशव भिकाजी ढवळे, माधवबाग, बम्बई सं०- १९१९ ई० मू० ॥) पृ० १३०
६४	९	गीता-सार (गु०, अध्यात्म, मूलसहित, महाभारतान्तर्गता) टी० वासुदेव (ओवीबद्ध पद्यानुवाद) प्र० निर्णयसागर-प्रेस, बम्बई सं० १८२७ शक मू० ≡) पृ० ६०
६५	१०	शिव-गीता-सार्थ (गु०, अध्यात्म, मूलसहित, पद्मपुराण०) प्र० पी. वी. पाठक, पांडुरंग एजेन्सी, बम्बई नं० ४ सं० १८४९ शक मू० ॥।) पृ० ३२०
		१—लिपि-देवनागरी * ५—भाषा-नेपाली
६६	१	राम-गीता- थुलो (अध्यात्म, मूलसहित) नेपाली भाषानुवाद प्र०श्रीसुब्बा होमनाथ केदारनाथ,काशी पृ०१२८
६७	२	राम-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, अध्यात्मरामायणान्तर्गता) टी० श्रीभानुभक्त (पद्यानुवाद) पता-गोरखा पुस्तका०, काशी सं०- १९२८ ई० मू० = पृ० २८
६८	३	यम-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, विष्णुपुराणान्तर्गता) टी० पं० रंगनाथ शर्मा, प्र० गोरखा-पुस्तकालय, रामघाट, काशी स० १-१९२३ ई० मू०) पृ० ३२
६९	४	पाण्डव-गीता (अध्यात्म, मूलसहित) नेपाली भाषानुवाद, प्र० गोरखा-पुस्तकालय, रामघाट, काशी, सं०-१९२४ ई० मू० ।) पृ० ६०
७०	५	गर्भ-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, तत्त्वसारान्तर्गता) नेपाली भाषानुवाद प्र० गोरखा-पुस्तकालय, काशी सं०-१९२१ ई० मू०) पृ० ७०

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
७१	६	अर्जुन-गीता या रामरत्नी-गीता (उपदेश) ले० कुशलसिंह अ० नेपाली पद्यानुवाद, प्र० श्रीसुब्बा होमनाथ काशी सं०- १८२८ ई० पृ० ६४
७२	७	अर्जुन-गीता या रामरत्नी गीता (उपदेश) ले० कुशलसिंह अ० पं० रेवतीरमण (नेपाली भाषा श्लोक सवाईबद्ध) प्र० गोरखा-पुस्तकालय, काशी सं० ३–१९२२ ई० मू० ।=) पृ० ९२

२–लिपि–गुजराती * ६–भाषा-गुजराती

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
७३	१	अनुगीता या भगवद्गीता-अनुसन्धान (अध्यात्म, मूलसहित, महाभारतान्तर्गता) गुजराती भाषान्तर सहित प्र० गुजराती प्रेस. बम्बई सं० १–१९८१ वि० मू० २) पृ० २५०
७४	२	दत्तात्रेय गीता या अवधूत-गीता (अध्यात्म) ले० स्वा० दत्तात्रेय टी० वेदान्त-कवि हीरालाल आवुबराय बुच (१ अर्थ २ विवेचन) प्र० महादेव रामचन्द्र जगुष्टे, तीन दरवाजा, अहमदाबाद सं०१–१९७९ वि० मू० ३) पृ० २२५
७५	३	ब्रह्मर्षि-गीता (अध्यात्म) ले० पं० हरेराम सुखराय शर्मा प्र० ग्रन्थकार सारंगपुर तलीआनी पोल, अध्याश्रम, अहमदा० सं०–१९७५ वि० मू० ॥) पृ० १३०
७६	४	विश्व गीता (अध्यात्म, पद्य) ले० न्हानालाल दलपतराम कवि, अहमदाबाद सं०१-१९८४वि० मू०१॥) पृ०१७०
७७	५	राम-गीता (अध्यात्म, मूलसहित, अध्यात्मरामायणान्तर्गता) टी०एक शास्त्रीजी प्र० पं० रविशंकर ज्येष्ठाराम त्रिवेदी, पता–नारायण मूलजी, भवेरबाग, बम्बई सं० १ १९५८ वि० मू० ≡) पृ० ४५
७८	६	सुन्दर-गीता (अध्यात्म, गु० ले० महाराज रुचिरानन्दजी सुन्दरदासजी–आचार्य सच्चिदानन्द-सम्प्रदाय (अष्टप्रहरी-रहस्यक्रिया, पद्यात्मक) प्र० महन्त राधिकादास पुरुषोत्तमदास. अंजर. कच्छ, मु० निर्णय० प्रेस. बम्बई सं०–१९७७ वि० मू०॥) पृ० २००

३–लिपि-बंग * ७–भाषा-बंगला

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
७९	१	परमार्थ-तत्त्व-निरूपण (अध्यात्म, मूलसहित, गीता ९ (१ उत्तर गीता २ राम गीता ३ जीवनमुक्ति गीता (दत्तात्रेय मुनि कृत) ४ पांडव गीता ५ तुलसी गीता ६ यम गीता (विष्णुपुराणान्तर्गता) ७ वैष्णव गीता ८ पितृ गीता ९ पृथ्वी गीता आदि टी०कालीप्रसन्न विद्यारत्न (बंगानुवाद) मु०प्र० शरच्चन्द्र शील एंड सन्स. नं० ३११ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं०–१३३३ बं० मू० ॥।) पृ० १४०
८०	२	शान्ति गीता (अध्यात्म, मूलसहित) टी० स्वामी ब्रह्मानन्द तत्त्वदर्शी प्र० प्यारीमोहन मुस्तफी, काशी मु० न्यू स्कूल बुक प्रेस, डिक्सन लेन, कलकत्ता सं० १–१८९७ ई० मू० १।) पृ० २१०
८१	३	मानव-गीता (अध्यात्म) ले० योगेन्द्रनाथ वसु बी०ए० (पद्य) प्र०संस्कृत बुक डिपोजिटरी, ३० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १–१३३२ बं० मू० १॥) पृ० २२५
८२	४	गीता-ग्रन्थावली (अध्यात्म, २५ गीता, बंगानुवादसहित (१ जीवन्मुक्ति गीता २ अवधूत गीता ३ षड्ग गीता ४ हंस गीता ५ शक्ति ६ राम ७ पांडव ८ भगवद्गीतासार ९ पितृ १० पृथिवी ११ सप्तश्लोकी १२ पराशर (महाभारता०) १३ उत्तर १४ गीतासार (गरुडपुराणा०) १५ राम १६ शान्ति १७ शिव १८ भगवती १९ देवी २० व्याध २१ तुलसी २२ गर्भ २३ वैष्णव २४ यम २५हारीत गीता टी०उपेन्द्र-नाथ मुखोपाध्याय प्र०वसुमति साहित्य मन्दिर, बहुबाजार, कलकत्ता सं०१ १३३५बं०मू० १॥) पृ०७५०
८३	५	सोहम गीता (अध्यात्म) ले० स्वामी सोहम् (पद्यात्मक) प्र० सूर्यकान्त वन्द्योपाध्याय बी० एल०, तांती बाजार, ढाका सं० ४–१९२१ ई० मू० २) पृ० ५५०
८४	६	सगीतावाद रहस्यचंडी (अध्यात्म, मूलसहित) टी० चंडीचरण न्यायरत्न प्र० अनिलबान्धव मुखोपाध्याय, ७४ बेंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता सं० १–१३३२ बं० मू० १।) पृ०३२५

क्रम सं०	पृ०सं०	विवरण
८५	७	कालाचांद गीता (अध्यात्म) ले० शिशिरकुमार घोष (पद्य) टी० मतिलाल घोष (बंगानुवाद) पता—पीयूषकान्ति घोष, बाघबजार, कलकत्ता सं० ३-१३२१ बं० मू० १।) पृ० २२५
८६	८	रामकृष्ण गीता (स्वा० रामकृष्णके उपदेश, भाग पहिला) स० सुरेन्द्रकुमार चक्रवर्ती प्र० कात्यायनी बुक-स्टोर, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता सं०—१३३२ बं० मू० ।) पृ० ५०
८७	९	गुरु गीता (अध्यात्म, मूलसहित, विश्वसार-तन्त्रान्तर्गता) टी० अश्विनीकुमार भट्टाचार्य एम०ए०प्र०भूपतिनाथ घोषाल पता-पाल भट्टाचार्य कम्पनी, २१मिर्जापुर स्ट्रीट, कलकत्ता सं०१-१८४१ शाक मू० ।=)पृ०४०
८८	१०	स्वामी गीता (अध्यात्म) ले० पूर्णानन्द स्वामी, स० श्रीकृष्ण दत्त, बी०ए०, पता-वरेन्द्र पुस्तकालय, २०४ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता सं०१-१३३२ बं० मू० ॥=) पृ० १००
८९	११	गोपी गीता (अध्यात्म, मूलसहित, भागवतान्तर्गता) टी० १. श्रीधर स्वामी, २. विश्वनाथ चक्रवर्ती, ३. पद्यानुवाद प्र० शरत्चन्द्र शील एण्ड सन्स, २११ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं०-१३३२ बं० मू० =) पृ० २५.
९०	१२	नित्य-वृन्दावन या व्रजांगना गीता (अध्यात्म) ले० कुमारनाथ मुखोपाध्याय (पद्य) प्र० संस्कृत बुक प्रेस डिपोजिटरी, ३० कार्नवालिस स्ट्रीट. कलकत्ता, सं० ३-१३३३ बं० मू० ॥≠) पृ० ११०.
९१	१३	गौरांग गीता (अध्यात्म) ले० कुमारनाथ मुखोपाध्याय (पद्य) प्र० संस्कृत प्रेस डिपोजिटरी. कलकत्ता; सं० ४-१३३२ बं० मू० ॥) पृ० ११०.
९२	१४	अर्जुन गीता या श्रीभार्जुन-संवाद (अध्यात्म, मूलसहित) टी० कालीप्रसन्न विद्यारत्न प्र० शरच्चन्द्र शास्त्री, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता सं० २-१३२१ बं० मू० ॥) पृ० ६०.
९३	१५	सच्चिदानन्द गीता (गु०, अध्यात्म) ले० चंडीचरण मुखोपाध्याय (पद्य) प्र० ग्रन्थकार, नाडुग्राम, बर्दवान सं०-१३१७ बं० मू० ।) पृ० १४०
९४	१६	पंच गीता (गु०, अध्यात्म, मूलसहित, गीता ५) १. राम गीता २. उत्तर गीता ३. शान्ति गीता ४. पाण्डव गीता या प्रपन्न गीता ५. पराशर गीता (महाभारतान्तर्गता)-बंगानुवादसहित प्र० संस्कृत-पुस्तकालय, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता; मू० ॥) पृ० ५००
		४—लिपि—उत्कल * ८—भाषा-उड़िया
९५	१	बृहज्जामरस-गीता (पद्य) ले० भक्त कवि दीनकृष्णदास स० पं० गोविन्द रथ मु० अरुणोदय-प्रेस बालुबजार, कटक सं० २- मू० ॥।) पृ० १६०
९६	२	राधारसामृत गीता (पद्य) ले० भक्त शिवदास मु० अरु०, कटक सं० १-१८२३ ई० मू० ।=) पृ० ६७
९७	३	कैवर्त गीता (पद्य) ले० श्रीकैवर्तदास स० पं० गोविन्द रथ मु० अरु०. कटक सं०२-मू० ।=) पृ० ६७
९८	४	सारस्वत गीता (पद्य) ले० कवि रत्नाकरदास स० श्रीजनार्दन कर मु० अरु० प्रेस, कटक सं० नवीन-१९२५ ई० मू० ॥=) पृ० २०७
९९	५	ब्रह्मनिरूपण गीता (पद्य) ले० श्रीभीमभट्ट स० प्र० श्रीआर्तवल्लभ महान्ति मु० अरुणो०, कटक सं० २-मू० ॥=) पृ० १३७
१००	६	जगन्नाथामृत गीता (पद्य) ले० विप्र दिवाकरदास कवि स० श्रीजनार्दन कर मु० अरुणो०, कटक सं०१-१९२७ ई० मू० ॥) पृ० १४३
१०१	७	सुधासार गीता --पद्य (खं० १) ले० श्रीचन्द्रमणिदास प्र० श्रीभागवतचन्द्रदास और नित्यानन्द मु० अरु० सं० ७-१९२५ ई० मू० ॥) पृ० १३६

क्रमसं०	पु० सं०	विवरण
१०२	८	शान्ति गीता-पद्य ले० श्रीवासुदेव रथ प्र० श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र मु० अरुणो० सं० १-१९२७ ई० मू० ॥) पृ० १०८
१०३	९	वेदान्तसार गुप्त गीता-पद्य ले० श्रीबलरामदास प्र० पं० गोविन्द रथ मु० अरुणो०, कटक सं० १-१९१० ई० मू० ॥) पृ० १२४
१०४	१०	वैचन्द्र गीता ले०-श्रीदेवानन्ददास प्र० श्रीनित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० ६ १९२८ ई० मू० I-) पृ० १११
१०५	११	छत्तीस गुप्त गीता ले० श्रीबलरामदास प्र० श्रीनित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० ५-१९२७ ई० मू० I=) पृ० १०८
१०६	१२	दशावतार गीता पद्य ले० श्रीफकीर महान्ती स० पं० गोपीनाथ कर मु० अरुणो० सं० २-१९२७ ई० मू० ≶) पृ० ४८
१०७	१३	ज्ञानोदय-गीता (प्र० भाग) ले० प्र० श्रीरामचन्द्र माँझी स० पं० गोपीनाथ कर मु० अरुणो० सं० १-१९१० ई० मू० I) पृ० ४८
१०८	१४	नामतत्त्व गीता-पद्य प्र० श्रीगोविन्द रथ मु० अरुणो० सं० १-१९०६ ई० मू० =) पृ० ३३.
१०९	१५	महिमण्डल गीता-पद्य ले० श्रीअरखितदास मु० अरुणो० सं० १-१९२५ ई० मू० =)॥ पृ० ५२.
११०	१६	संसारसागर गीता-पद्य (खं० २) ले० रामचन्द्रदास स० गोपीनाथ कर मु० अरुणो० खं० १ सं० ६-१९२७ ई० मू० ≶) पृ० ५२, खं० २ सं० १-१९२३ ई० मू० ≡) पृ० ४४
१११	१७	नीलसुन्दर गीता प्र० अजयकुमार घोष मु० अरुणो० सं० १-१९२६ ई० मू० -) पृ० १२.
११२	१८	पार्थिव ब्रह्म या अर्जुन गीता-पद्य प्र० नित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० ६-१९२६ ई० मू० -) पृ० १४.
११३	१९	विराट गीता पद्य ले० बलरामदास प्र० अभिमन्युचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० १२-१९२८ ई० मू० =) पृ० ३०.
११४	२०	नामब्रह्म गीता-पद्य प्र० नित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० १-१९२५ ई० मू० -) पृ० ७.
११५	२१	भक्त गीता-पद्य प्र० चिन्तामणि प्रहराज मु० अरुणो० सं० २-१९१४ ई० मू० =) पृ० २४.
११६	२२	रास गीता-पद्य प्र० सत्यवादि साहु मु० अरु० सं० १-१९२३ ई० मू० -) पृ० ११.
११७	२३	जीवपरम गीता-पद्य ले० अरखित नायक प्र० अभिमन्युचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० १-१९२६ ई० मू० =) पृ० २४.
११८	२४	भुवविडकाग गीता-पद्य प्र० गोविन्द रथ मु० अरु० सं० १-१९१० ई० मू० -) पृ० ११.
११९	२५	अष्टकबिहारी गीता-पद्य ले० भीमभूई प्र० अजयकुमार घोष मु० अरुणो० सं० १-१९२६ ई० मू० =) पृ० २३.
१२०	२६	दारुब्रह्म गीता-पद्य प्र० नित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० २-१९२२ ई० मू० -)॥ पृ० २९.
१२१	२७	गीतासार-प्र० गोविन्द रथ मु० अरुणो० सं० १-१९१० ई० मू० =)॥ पृ० ४६.
१२२	२८	ब्रह्म गीता या अर्जुन गीता -पद्य प्र० गोविन्द रथ मु० अरुणो० सं० ४-१९१४ ई० मू० -) पृ० १४.
१२३	२९	गोलोक गीता-पद्य ले० सनातनदास प्र० नन्दकिशोर प्रधान मु० अरुणो० सं० २-१९२३ ई० मू० -)। पृ० १२.
१२४	३०	गुरु गीता-मूल प्र० अजयकुमार घोष सं० १-१९२८ ई० मु० अरुणो० मू० -) पृ० १०.
१२५	३१	अमरकोश गीता-पद्य ले० बलरामदास प्र० नित्यानन्द साहु मु० अरु० सं० ६-१९२६ ई० मू० =) पृ० २४.
१२६	३२	श्रुतिनिषेध गीता-पद्य ले० भीमभूई स० श्रीमती केतुकि माता मु० अरु० सं० १-१९२५ ई० मू० =) पृ० ३६
१२७	३३	यम गीता-पद्य स० पं० गोपीनाथ कर प्र० नारायणचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० २-१९२३ ई० मू० -) पृ० १०
१२८	३४	गरुड़ गीता-पद्य ले० अच्युतानन्ददास प्र० गोविन्दचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० १-१९२४ ई० मू० =) पृ० २४.
१२९	३५	शिव गीता-पद्य प्र० नारायणचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० २-१९२४ ई० मू० ≡) पृ० ३३
१३०	३६	अनन्तसागर गीता-पद्य प्र० गोविन्द रथ मु० अरुणो० सं० २-१९०८ ई० मू० -) पृ० ३०
१३१	३७	अमृतलहरी गीता-पद्य ले० पं० गोपीनाथ कर प्र० माधवचन्द्रदास मु० अरुणो० सं० १-१९१० ई० मू० =) पृ० १९.
१३२	३८	गुप्त गीता-पद्य ले० कवि बलरामदास कायस्थ, पुरी (उत्कलके प्रसिद्ध कवि; १६ वीं सदीमें वर्तमान थे) प्र० नित्यानन्द साहु मु० अरुणो० सं० ३-१९२५ ई० मू० ≶) पृ० २१.
१३३	३९	सुखदुःख गीता-पद्य प्र० चिन्तामणि प्रहराज मु० अरुणो० सं० १-१९१२ ई० मू० -) पृ० १२

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१३४	४०	ओंकार गीता– स० पं० सोमनाथ त्रिपाठी मु० अरुणो० सं० २–१९२८ ई० मू० -)॥ पृ० १५
१३५	४१	ब्रह्मज्ञान गीता–पद्य स० कपिलेश्वर विद्याभूषण प्र० सदाशिव पण्डा मु० अरु० सं०२–१९२५ई०मू०≈)पृ०२५
१३६	४२	साधुलक्षण गीता–पद्य ले० प्र० चिन्तामणि महराज मु० अरु० सं० १–१९०३ ई० मू० -)॥ पृ० १८
१३७	४३	निर्गुण गीता–पद्य प्र० चिन्तामणि महराज मु० अरुणो० सं० १–१९१२ ई० मू० -) पृ० १२
१३८	४४	शब्दब्रह्म गीता–पद्य प्र० गोविन्द रथ मु० अरुणो० सं० १–१८९९ ई० मू० =) पृ० २९
१३९	४५	स्वप्नसूचक गीता–पद्य ले० श्रीनिधि पढ़िहारि प्र० कृष्णचन्द्र पशुपाल मु० अरुणो० सं० १–१९२६ ई० मू० ≡) पृ० ३०
१४०	४६	कलियुग गीता–पद्य ले० अच्युतानन्ददास प्र० गोपीनाथ कर मु० अरु० सं० ४–१९२६ ई० मू० ≠) पृ० २१.
१४१	४७	ज्ञान-योग या ज्ञान-साधन-निर्णय गीता–पद्य प्र० चिन्तामणि महराज मु०अरुणो०सं०१–१९१२ई०मू०- पृ०१४
१४२	४८	नामरत्न गीता–पद्य (खं०४)ले० कवि दीनकृष्णदास सं० गोपीनाथ कर प्र० रामचन्द्रदास मु० अरु० खण्ड १ सं० ६–१९२८ ई० मू० ।-) पृ० १३१; खण्ड २ सं० ४–१९२७ ई० मू० ।) पृ० ७४; खण्ड ३ सं० ६–१९२६ ई० मू० ।) पृ० ३८; खण्ड ४ सं० १–१९२७ ई० मू० ।–) पृ० ५४
१४३	४९	ठीकनामरत्न गीता–पद्य (खं० २) ले० प्र० रामचन्द्र मांझी स० गोपीनाथ कर मु० अरु० सं० १–१९१२ई० मू० ।) पृ० ७२
१४४	५०	नामरत्न गीता–पद्य (गु०) ले० कृष्णदास प्र० गोविन्द रथ मु० अरु० सं० ३–१९०७ ई० मू० ।) पृ० १०३
१४५	५१	भक्तउद्धारण गीता–पद्य (गु०) ले०रामचन्द्र मांझी प्र०माधवचन्द्र मु०अरुणो० सं०१–१९०९ई०मू०)॥ पृ०८
१४६	५२	नारद गीता–पद्य (गु०) प्र० गगनचन्द्र मिश्र मु० अरु० सं० १–१९००ई० मू०)॥ पृ० ८
१४७	५३	जीवनमुक्त गीता (गु०) प्र० नित्यानन्द साहू मु० अरु० सं० १–१९२४ ई० मू०)॥। पृ० ८.
१४८	५४	सनातन गीता–मूल (गु०) प्र० गोविन्द रथ मु० अरु० सं० १–१८९३ ई० मू० =) पृ० ३२
१४९	५५	चैतन्य गीता–पद्य (गु०) स० पं० रामचन्द्र मिश्र प्र० डाक्टर सुरेन्द्रनाथ साहू मु० अरु० सं० १–१९२४ ई० मू० ≡) पृ० ७१

११–लिपि-फारसी * १५–भाषा-उर्दू

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१५०	१	महा गीता (अध्यात्म) ले० स्वामीदयाल आत्मदर्शी, योगवेदान्त-आश्रम, छिंदवाड़ा, सी. पी. मु० वृन्दाबन प्रिंटिंग प्रेस, होशियारपुर मू० १) पृ० ६०
१५१	२	राम गीता (अध्यात्म, अध्यात्मरामायणान्तर्गता. मूलसहित) टी० पं० सूर्यदीन शुक्ल प्र० नवल०, लखनऊ सं०–१९१६ ई० मू०

12-Character Roman* 18.Language English.

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
152	1	Isvar Gita (Phlosophy, a portion of the Kurma Puran) Trans. by L. Kannomal M.A., Judge, Dholpur-State; Pub. Punjab sans Book Depot, Lahore: Ed. I-1924; Re. 1/8; pp. 70
153	2	Ram Gita (Philosophy, a Portion of Adhyatma Ramayan) by Mukund Waman Ram Burway. B.A. (1-Tezt, 2-Marathi Trans., 3- Hindi Trans., 4-English Trans. and Paraphrase-) Pub. Author, 12 Imalibazar, Indore. Re. 2/8/- pp. 240.
154	3	Surya Gita (sun songs, Poetry) by James H. Cousins: Pub. Ganesh & Co, madras; Ed. I-1922; Rs. 2/-; pp. 150
155	4	Uttara Gita (Philosophy, P.E.) by D.K. Laheri, F.T.S; Pub. Rajaram Tukaram; From. T.P.S., madras Ed, 1-1923; Re-/4/; pp. 50
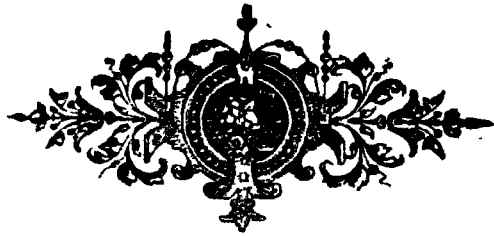
॥ श्रीहरिः ॥

परिशिष्ट नं० १

गीता-पुस्तकालयमें संगृहीत उपर्युक्त पुस्तकोंके अतिरिक्त, निम्नलिखित गीता-सम्बन्धी पुस्तकें गीता-प्रदर्शनीमें प्रदर्शनार्थ आयी थीं, वे वापस लौटा दी गयीं। इनमें कई पुस्तकें ऐसी भी हैं, जो प्रदर्शनीमें आ नहीं सकीं, केवल उनकी सूचना मिली है।

क्रम संख्या	पुस्तक संख्या	विवरण
		१—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, १३३ जी. टी. रोड, शिवपुर, हवड़ा द्वारा प्राप्त—
१	*१	भ० गीतोक्त श्लोकोंका विषयानुसार विभाग (लिपि-देवनागरी; मूल; हस्तलिखित) भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, शरणागति आदि विषयोंपर चुने हुए श्लोक।
२	*२	भ० गीता (लिपि-फारसी; हस्त०) गीता-प्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित, साधारण भाषाटीकाके १२ वें अध्यायका अनुवाद।
३	*३	भ० गीता (लिपि-गुरुमुखी; हस्त०) गीता-प्रेसकी टीकाके एक अध्यायका अनुवाद।
४	*४	भ० गीता (लिपि-बंगला) टी० पं० वामाचरण मजूमदार मु० बराट प्रेस, कलकत्ता मू०२)
		2—C. Krishnama Chariar. पता—श्रीमहादेवलालजी डालमिया, ११ वीनानायकरन स्ट्रीट, साउकार पेठ, मद्रास द्वारा प्राप्त—
५	१	A Gist of Lokmanya Tilaka's Gita-Rahashya by V.M. Joshi, M. A. Pub. Dugvekar Brothers, बोबी हटिया, काशी सं०—१९१६ ई० मू० ॥) (अंगरेजी)
६	२	भ० गीता (तेलगु; भ० २) टी० सहजानन्द उपाध्याय, नेपाल मु० जी० सी० एंड कं०, मद्रास
७	*३	भ० गीता (हस्तलिखित) टी० धनपति सूरिकृत भाष्योत्कर्षदीपिकाका तेलगु-अनुवाद।
८	४	भ० गीता (तामिल) टी० पं० सुन्दरराज शर्मा (शांकरभाष्यानुवाद)
९	५	भ० गीतोपन्यास-दर्पणम् (संस्कृत; खं० ३) स० पं० लक्ष्मणाचार्य (गीतोपन्यास-दर्पण-व्याख्या) प्र० टी० एन० रघुत्तमाचार्य, गीतोपन्यास-दर्पण आफिस, तिरुवाडी, जि० तंजावूर सं०—१८९६ शक मू० १०)
		३—श्रीबालमुकुन्दजी लोहिया, कलकत्ता द्वारा प्राप्त—
१०	१	भ० गीता (मूल; हस्त०; देवनागरी)
११	*२	भ० गीता (बंगला) टी० श्रीसच्चिदानन्द ब्रह्मचारी, (स्वयंप्रकाश-भाष्य) स० श्रीसुबोधकुमार मुखर्जी, कलकत्ता सं०—१३२३ बं० मूल्य० २) पृष्ठ १८० (श्रीविश्वम्भरलाल शर्माकी पुस्तक)
		४—श्रीआनन्दरामजी जालान, कलकत्ता द्वारा प्राप्त —
१२	१	भ० गीता (लिपि-देवनागरी; केवल भाषा) ले०—स्वामी भिक्षुक, कनखल प्र० श्रीशिवदयालजी खेमका, सूतापट्टी, कलकत्ता मु० गोविन्द प्रेस, कलकत्ता, बिना मूल्य।
		५—श्रीगणपति वेदोपदेशक, कलकत्ता द्वारा प्राप्त—
१३	१	भ० गीता-भाष्यम् (देवनागरी-हिन्दी) टी० पं० भीमसेन शर्मा प्र० पं० रामदयाल शर्मा, मु० सरस्वती प्रेस, इटावा; मू०१॥)

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
		६-श्रीहनुमानप्रसादजी बागला, कलकत्ता द्वारा प्राप्त—
१४	१	भ० गीता (संस्कृत सं० २) टी० स्वा० शंकराचार्य–भाष्य (स्वामी शंकराचार्य-स्मारक-ग्रन्थमालाका बढ़िया, संस्करण) मु० वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्; सं० १–
		*** ७–मिश्रित–**
१५	१	भ० गीता (हस्त०; मूल–देवनागरी; टीका–फारसी लिपि) करीब ४०० वर्ष पुरानी, सचित्र, सुनहरे रंगीन बेलबूटोंसे सुसज्जित; पता–पं० देवीप्रसाद मिश्र, राजज्योतिषी, जागीरदार मौजे नन्दावता, लालागली, जावरा (सी० आई०)
१६	२	भ० गीता (गुटका, मूल, हस्त०) सम्पूर्ण } पता–पं०रघुवरदयाल शर्मा; अहार (Ahar) बुलन्दशहर
१७	३	भ० गीता (गु०, मूल, हस्त०,) अन्तके कुछ पृष्ठ नहीं हैं }
१८	४	भ० गीता (मूल, सम्पूर्ण, हस्त० अंतरमें) फीता इंच२० × १ करीब, प्राचीन } पता–श्रीहरिबक्सजी साँवलका ५ कन्नूलाल लेन, कलकत्ता
१९	५	भ० ,, (,, ,, ,, गुटका) }
२०	६	भ० ,, (,, ,, ,,) किसी अन्य व्यक्तिका }
२१	७	भ० गीता (मूल, सम्पूर्ण, हस्त०, गुटका) पता–पं०राधाकृष्णजी जोशी, नसीराबाद, राजपूताना।
२२	८	भ० गीता (लिपि-बंगला, सम्पूर्ण, मूल, हस्त०) जन्मपत्रीके रूपमें लपेटी हुई ले० श्रीताराप्रसन्न घोष, हेडमास्टर--एच०ई० स्कूल, पो० बैंसारी, बाकरगंज।
२३	९	भ० गीता (मूल, गु०, हस्त०) पता–श्रीलक्ष्मीरामजी खेतान, सेंट्रल एवेन्यू नोर्थ, कलकत्ता।
२४	१०	भ० गीता (हस्त०, मूल, सम्पूर्ण) अति छोटे चित्ररूपमें, ले० श्रीकाशीरामजी बजाज, कलकत्ता
२५	११	भ० गीता (हस्त०, सम्पूर्ण) दिवालपर लटकाने लायक चित्ररूपमें; पता–गुलाबरायजी बैजनाथ, ४नारायण-प्रसाद लेन, कलकत्ता मू०१००)
२६	१२	'अर्भक' पत्रके भ० गीताङ्क (वर्ष ३,४;अङ्क नं०६) (सचित्र, हस्त०) स० मुकुन्द मोरेश्वर बोर्ड, अर्भक कार्या० पो० पेन, कोलाबा, बम्बई सं०१–१९२६, १९२७ ई०
२७	१३	गीतातत्त्व-वैजयन्ती (संस्कृत) } (हस्त०, गीता-निबन्ध) ले० पं० हनुमन्तराव धारवाडकर, गुलबुर्गा, (S.I.P.) (सं० १९८६ वि० गीता-जयन्ती-उत्सव-समिति, कलकत्तासे प्रथम पुरस्कार प्राप्त)
२८	१४	गीतासार-सुधा (मराठी) }
२९	१५	गीतातात्पर्य-सुधा (कनाडी) }
३०	१६	भ० गीता (हस्त०, खं०५, पृ० २०००) मि०ज्येष्ठ शु०१सं०१९७९ वि०से फाल्गुन कृ०१० सं०१९८२ वि० तक गोविन्द-भवन, कलकत्तामें प्रतिदिन कही हुई सम्पूर्ण गीताकी विशद व्याख्या। श्रीविश्वेश्वरलाल चिड़ीपाल द्वारा लिखित, पता–मुकुन्दलाल एण्ड सन्स, ७ लायंस रेंज, कलकत्ता
३१	१७	भ० गीता (मूल, गु०, हस्त०) पता—पं० ऋषीकेश पाठक, नं०१ जगमोहन साह लेन, कलकत्ता।
३२	१८	भ० गीता (देव०, मूल, हस्त०, स्थूलाक्षर) पता–पं० विष्णु दिगम्बरजी गायनाचार्य, राम नाम आधार मण्डल, पंचवटी, नासिक।
३३	१९	भ० गीता (हस्त०)टी०मुद्गलभट्टी–संस्कृत टीका सं०१६०० वि०करीबकी लिखी } पता—स्वा०मनीषानन्द, बड़ागांव, पो० मिटौली–मथुरा (बाराबंकी)
३४	२०	भ० गीता (हस्त०, गु०, मूल) }

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३५	२१	भ० गीता (श्लोक और भाषाटीका,हस्त०) } १२० वर्षकी पुरानी; बाबू श्यामसुन्दरजी गुप्त पता-कृष्णप्रसाद कं०, कराची।
३६	२२	भ० गीता (दोहामें, हस्त०)
३७	२३	भ० गीता (देव०, हिन्दी, हस्त०) टी० आनन्दराम नाजर (१ दोहा २ भाषाटीका-परमानन्द प्रबोध) पता-पं० नरोत्तम व्यास, जोधपुर c/o पं० रूपराजजी, भजनाश्रम विद्यालय, बीकानेर, ले० स्वामी युगलदास सं० १८६६ वि० पृ० ६४
३८	२४	भ० गीता (हस्त०, पद्य) ले० ठाकुर सांवर्णसिंहके पिता, पो० पिपरिया, नरसिंहपुर
३९	२५	भ० गीता (हस्त०, प्राचीन, बहुत सूक्ष्म) पता-मन्नुलाल पुस्तका०, गया (पुस्तकालय-पु० नं० ४०१)
४०	२६	भ० गीता (वजन ४ माशे, आकार ३ अङ्गुल चौड़े और एक गज लम्बे कागजपर हस्तलिखित, सचित्र, अन्तके ५० श्लोक नष्ट हैं) पता-श्रीवंशीधर बागला, लोहाई, फर्रुखाबाद।
४१	२७	भ० गीता (सिर्फ १२ तोला वजनके हस्त०, सम्पूर्ण महाभारतसे, जन्मपत्रीके रूपमें, कई चित्र, गज ७९॥ × इंच ३॥, एक इंचमें १५ लाइन, एक लाइनमें ६४ अक्षर करीब हैं)ले० काश्मीरी पं० लक्ष्मण नरनारायण पता-लाला हरचरणलाल, लोहाई, फर्रुखाबाद
४२	२८	भ० गीता (हस्त०) पता-लाला भवानीशंकर वैश्य, लोहाई, फर्रुखाबाद
४३	२९	भ० गीता (हस्त०; फारसी) टी० शेख अबुलफ़ज़ल (अकबर-दरबारके कवि); सं० १५५५ वि०में लाला कुंवरसिंहद्वारा लिखित, पृ०२६ (बड़े साइज) पता-माधवीसदन-पुस्तकालय, काशी।
४४	३०	भ० गीता (हस्त०; फारसी) ले० नवरत्नकवि फैज़ी, पं० जानकीनाथ मदन द्वारा सं० १९२४ वि० फाल्गुन कृष्ण ३ को पं० बिहारीलाल साहब किचलू-तहसीलदार पेशावरकी हस्तलिखित पुस्तकसे नकल की गयी) भाग १ गद्य पृष्ठ ५०; भाग २ पद्य पृष्ठ ३२ पता- हिन्दू-सभा कार्यालय, दिल्ली।
* ४५	३१	भ० गीता(फारसी)टी० राय मूलचन्द डेरागाजीखां निवासी मु० कोहेनूर प्रेस,लाहोर सं० १८६४ ई० पृ०९६
४६	३२	किताबुल हिन्दी (अरबी) ले० अलबेरूनी मियाँ (प्रसिद्ध भारतयात्री) (परिच्छेद दूसरेमें गीता अ० २।३ का विषय है) सं० १030 ई०।
४७	३३	भ० गीता (गु०, मूल, हस्त०, सम्पूर्ण) पता-भिक्षु केशवानन्द, श्रीसूरतगिरिजीका बंगला, कनखल, सहारनपुर पृ० १३५
४८	३४	भ० (हस्त०) जावा टापूमें प्राप्त (ईसासे २००वर्ष पहिलेका ८०००श्लोकी महाभारत, भीष्मपर्व-गीता-प्रकरण-अन्तर्गत श्लो०१००या१२५ करीब)
४९	३५३६	भ० गीता-(दो प्राचीन टीका, काश्मीरमें प्राप्त) पता-श्री०एफ०ऑटो श्राडर, पी० एच० डी०, विद्यासागर, प्रो० कील युनि०, जर्मनी
५०	३७	भ० गीता (हस्त०, ३००वर्षकी प्राचीन) पता-मथुरा जिलेके एक ब्राह्मणके घरमें।
५१	३८	भ० गीता (देव०, हस्त०) टी० रसिकरंजिनी- टीका (श्रीवल्लभ-सम्प्रदायकी प्राचीन टीका)।
५२	३९	भ० गीता (मूल, गु०, हस्त०) प्रायः २०० वर्ष पुराना पता-रामजी अग्रवाल खजांची, पो०रसड़ा,बलिया
५३	४०	भ० गीता (हस्त०, प्राचीन) टी० कवि विश्वेश्वर, पता- महामहो० नित्यानन्द पन्त, काशी
५४	४१	गीतार्णव (हस्त०, मराठी) ले० वासोपंत (एकलाख पद्यमें अनुवाद) पता-मराठी ग्रन्थ संग्रहालय, थाना (बम्बई)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
५५	४२	भ० गीता (हस्त०, सचित्र, पुरानी) } पता—बलदेवप्रसाद अष्ठाना, जिलेदार रामनगर पो० बघोली (हरदोई)
५६	४३	भ० गीता (हस्त०, हिन्दी पद्य) } पता—बलदेवप्रसाद अष्ठाना, जिलेदार रामनगर पो० बघोली (हरदोई)
५७	४४	भ० गीता (हस्त०, बंगला) पं० हाराणचन्द्रजीके पिताद्वारा लिखित सं०—१८०२ शक पता—पं० हाराणचन्द्र शास्त्री, मारवाड़ी संस्कृत पाठशाला, सकरकंद गली, काशी
५८	४५	भ० गीता(हस्त०)टी०अभिनव गुप्तपादाचार्य-टीका पता—डाक्टर बालकृष्ण कौल रायबहादुरका पुस्तकालय, लाहोर
५९	४६	भ० गीता (हस्त, ७००श्लोकी) टी० श्रीधर-टीका; सं० १५८५वि० में श्रीरिशु तिवारीद्वारा लिखित पता—काशीनरेशकी पुस्तकालय, काशी
६०	४७	भ० गीता(मूल,हस्त०) सं०१८०६ वि०में भोलानाथ कायस्थद्वारा, काशीमें लिखित पृ० ६७ } पता—श्रीरामेश्वरलाल लुबेवाला, साहबगंज, गोरखपुर।
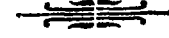
परिशिष्ट नं० २

निम्नलिखित गीता-सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित होनेके लिये लिखा गया या लिखा जा रहा है:—

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
६१	१	भ० गीता (गुजराती) टी० महात्मा गाँधी, साबरमती, अहमदाबाद
६२	२	भ० गीता (अंगरेजी) ले० साधु टी० एल० वस्वानी (विस्तृत-व्याख्या) पता—Old Sukkur, Sind.
६३	३	भ० गीता (अंगरेजी) टी० आर० वी० खेड़कर, फरीदाबाद, ढाका
६४	४	भ० गीता—प्रवचन—संग्रह पता—भगवद्गीता पाठशाला, इन्दौर।
६५	५	भ० गीता (एक प्राचीन काश्मीरी सं०) स० प्रो० एफ० ऑटो श्राडर पी० एच० डी०, विद्यासागर, कील यूनिवरसिटी, जर्मनी
६६	६	भ० गीता (उर्दू-पद्य) ले० डा० अब्दुल करीम, ७।५२ चेतगंज, काशी; सं० १९२४ ई० पृ०८०
६७	७	भ० गीता-उपनिषद्(लिपि-रोमन,भाषा-अंग्रेजी) पृ०२४० Text and Trans. } पता—The Latent Light Culture, Tinnevelly.S.I.
६८	८	भ० गीता (अंग्रेजी) शंकर, रामानुज, माध्व, तीनों भाष्योंके विवेचनसहित } पता—The Latent Light Culture, Tinnevelly.S.I.
६९	९	श्रीलघु भ० गीता (English Selections) ले० टी० वी० कृष्णस्वामी राव स० 'माध्वमुनिवास', फीरोज बिल्डिंग, माटुंगा, बम्बई।
७०	१०	भ० गीता (गुजराती) लेखक-ठक्कर धारसी सुन्दरजी आइया (विस्तृत-व्याख्या) पता-सेठ तीरथदास लुखिधाराम, १६० बम्बई बजार, करांची
७१	११	गीता-ध्यास } (गुजराती) प्र० चुनीलाल शामजी त्रिवेदी, मजिस्ट्रेट-खम्भात, भावनगर
७२	१२	गीता-ध्यास-कर्मयोग } (गुजराती) प्र० चुनीलाल शामजी त्रिवेदी, मजिस्ट्रेट-खम्भात, भावनगर
७३	१३	कर्म अने पुनर्जन्म (निबन्ध) } (गुजराती) प्र० चुनीलाल शामजी त्रिवेदी, मजिस्ट्रेट-खम्भात, भावनगर
७४	१४	भ० गीता (मराठी; ६ भागोंमें बृहद्भाष्य) टी० पं० यादव प्रभाकर वटक, वकील, बी० ए०, एल एल० बी०, पता—बाबूलाल मेठिया, छिंदवाड़ा (सी० पी०) पृष्ठ ५००
७५	१५	शिशुबोध-गीता ले० एल०आर० गोखले, ४१६ नारायण पेठ, पूना

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७६	१६	भ० गीता (बंगानुवाद) पता-त्रिपुरचरणराय M. A., B. L. नं० १६ क्षेत्र मित्र लेन, सलकिया, हवड़ा
७७	१७	भ० गीता (संस्कृत) टी० हंसयोगी (केवल तृतीय भाग)
७८	१८	आर्ष-गीता-सटीक (रामायणसे) (संस्कृत) पता-शुद्ध-धर्म-मण्डल, भपेरी पोष्ट, मद्रास
७९	१९	ब्रह्म-गीता ,, (४८ उपनिषद्से)
८०	२०	श्रुति-गीता ,, (तैत्तिरीय आरण्यकसे)
८१	२१	शुक-गीता ,, (देवीभागवतसे)
८२	२२	भ० गीता-सुधाकर (संस्कृत, हिन्दी, अ०१८।६६की विस्तृत व्याख्या, आकार मूल गीतासे ६ गुना)सं०-१९८०वि० मे रचनारंभ — ले० पं० बाबूराम शुक्ल कवि, फर्रुखाबाद
८३	२३	भ० गीता (हिन्दी, आल्हाके तर्जपर पद्यानुवाद)
८४	२४	मुक्ति-मन्दिर(गीतापर २६२ हिन्दी-पद्य)ले० पं०रामचरित उपाध्याय,नवाबगंज,गाजीपुर सं० १९८५वि०
८५	२५	भ० गीता(लोकसंग्रह या योगसार)सं०-१९८१ वि०पृ०७०३ — ले० स्वा०भगवान पता-पं० हनुमानप्रसाद गयाप्रसाद भारद्वाज, तरौंहा, करवी, बांदा
८६	२६	गीता-भाष्य (हिन्दी) सं०-१९८६ वि० पृ० ११००
८७	२७	गीता-हृदय (हिन्दी) ले०-स्वामी सहजानन्द सरस्वती, श्रीसीतारामाश्रम, बिहटा (पटना) लगभग १२०० पृष्ठका ग्रन्थ होगा।
८८	२८	भ० गीता (हिन्दी) टी० पं० जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (गद्य पद्य अभिनव व्याख्या सहित)चौक,कानपुर
८९	२९	भ० गीता (संगीत-पद्यानुवाद, हिन्दी) ले० पं० मदनमोहन शर्मा, गीता-कीर्तनकार, मथुरा
९०	३०	भ० गीता (स्वामी नारायणकृत टीकाकी बृहद् समालोचना) — ले०-पं० वैद्यनाथ मिश्र, 'विह्वल' ६५१ हुसेनगंज, लखनऊ
९१	३१	भ० गीता (हिन्दी, पद्य)
९२	३२	भ० गीता (हिन्दी, पद्य) ले० आशाभाई पटेल, सत्सराम मन्दिर, नडियाद।
९३	३३	गीतामें भक्तियोग (अ०१२ वां)ले०-श्रीवियोगी हरि पता—मोहन निवास, पन्ना।
९४	३४	श्रीकृष्णोपदेशामृतम् (हिन्दी) टी० एम० वाई० सनम्, एच० एस० बी०, एफ० टी० एस० आदि, पता-श्रीकृष्ण-पुस्तकालय, नर्सीराबाद।
९५	३५	भ० गीता (हिन्दी, अनन्य-भक्तिवर्द्धिनी टीका) टी० पं० गोपालप्रसाद शर्मा,रैसलपुर, होसंगाबाद,(सी० पी०)
९६	३६	भ० गीता (हिन्दी) ले०-पं० शालिग्रामजी वैष्णव,पता-शान्तिसदन,कर्णप्रयाग (गढ़वाल) सं०-१९८५वि० पृष्ठ ४५५।
९७	३७	त्रिपथगा-गीता ले० स्वामी तुलसीरामजी, एम० ए०,गीता-प्रचारक, गणेशगंज, लखनऊ।
९८	३८	भ० गीता-भजनमाला (ज्ञानेश्वरीके आधारपर ४०० पद्य-संगीत) ले० पं० वासुदेव हरलाल व्यास नन्दलालपुरा, रेशमवाला लेन, इन्दौर
९९	३९	भ० गीता (हिन्दी पद्यमें, पृ०९०) — ले०-मुंशी रामचरणलाल, चीफ रेवेन्यू आफिसर, बांसवाड़ा, राजपूताना
१००	४०	भ० गीता (उर्दू-पद्यमें, पृ० ९०)
१०१	४१	भ० गीता (हिन्दी, पद्य) ले०-मास्टर मोहनलाल, पता-जगन्नाथप्रसाद व्यास, उंचांद,अकोदिया (भूपाल) सं०-१९७१ वि० पृष्ठ २६०।
१०२	४२	भ० गीता (पद्य,हिन्दी)ले०-निहालसिंह अध्यापक-महाविद्यालय, ज्वालापुर।

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१०३	४३	भ० गीता-तत्त्वप्रकाश (हिन्दी) ले०-पं० प्रयागनारायणाचार्य, पता-पं० कालीचरण वैद्य, मस्कासाह इतवार चौक, नागपुर।
१०४	४४	भ० गीता (हिन्दी, पद्य) ले०-श्रीजगन्नाथप्रसादजी सर्राफ, कानपुर।
१०५	४५	भ० गीता (हिन्दी, पद्य) ले०-श्रीरामचन्द्र महेश्वरी, हाथरस।
१०६	४६	भ० गीता (हिन्दी, तत्त्वदीपिका-टीका) ले०-वैद्यभूषण नाथूरामजी शालिग्राम, सोमवारिया बाजार, शाजापुर, मालवा पृ० ५५०
१०७	४७	भ० गीता (हिन्दी, ७०० दोहे) ले० श्रीकृष्णलाल गुप्त, दाऊदनगर।
१०८	४८	भ० गीता (पद्य) पता- भगवद्भक्ति-आश्रम, रेवाड़ी।
१०९	४९	संगीत-गीतामृत (हिन्दी, ११४ पद्य) } ले० आर०के० खेर, पो० गुरसराय, झाँसी
११०	५०	गीतामृत (हिन्दी, अनुष्टुपश्लोकी) } ले० आर०के० खेर, पो० गुरसराय, झाँसी
१११	५१	बालगीता (मराठी) } ले० आर०के० खेर, पो० गुरसराय, झाँसी
११२	५२	संगीत भ० गीता (English. In Oriental tune.) } ले० आर०के० खेर, पो० गुरसराय, झाँसी
११३	५३	भ० गीता (तामिल) ले०-एम०आर० जम्बूनाथ, पता-तामिल आर्य्य सभा, लोहार स्ट्रीट, कालबादेवी, बम्बई
११४	५४	भ० गीता (अंगरेजी) ले०-पं० सुरेन्द्रनाथ शुक्ल 'शुक्राचार्य', लखनऊ
११५	५५	The Gita Idea of God. (अंगरेजी) टी० गीतानन्द ब्रह्मचारी, पता-बी० जी० पाल कं०, मदरास मू० ४)
११६	५६	भ० गीताङ्कका अंग्रेजी अनुवाद प्र० 'कल्याण' कार्या०, गोरखपुर
११७	५७	भ० गीता-शांकरभाष्यका शब्दशः हिन्दी-अनुवाद अ० श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका, बाँकुड़ा प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर
११८	५८	भ० गीता-मराठी अनुवाद } प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर
११९	५९	भ० गीता-गुजराती अनुवाद (छप रहा है) } प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर
१२०	६०	सात्त्विक-जीवन (हिन्दी-निबन्ध) प्र० श्रीरामगोपालजी मोहता, बीकानेर (छप रहा है)
१२१	६१	कर्मनी गहन गति (गुजराती) ले० श्रीअरविन्द पता-युगान्तर कार्या०, सूरत (छप रही है)
१२२	६२	भ० गीता (तेलगू) ले०-लो० तिलक, (मराठी), अ० श्रीसूरीसुब्रह्मण्य शास्त्री प्र० वी० रामस्वामी शास्त्री, २९२ इस्प्लेनेड, मदरास (छप रही है)

ॐ

परिशिष्ट नं० ३

निम्नलिखित गीता-सम्बन्धी साहित्य संसारकी भिन्न भिन्न पुस्तकालयोंमें रक्खा हुआ है। गीता-पुस्तकालयमें संगृहीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त ग्रन्थोंकी ही सूची नीचे दी जा रही है। प्रायः ये ग्रन्थ अभी हमें नहीं मिले हैं। गीता-प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन है कि वे इन ग्रन्थोंको खोज करके गीता-पुस्तकालयके ग्रन्थ-संग्रहमें भेजनेकी चेष्टा करें।

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		1. The British Museum Library.
		(A.) Catlogue of Sans. Printed books in the B. M. 1876.
		महाभारत (II) संस्कृत--उपाख्यान
१२३	१	भ० गीता–पंचरत्न सं०-१८५७-५८ ई० बम्बई
		महाभारत (III)
१२४	२	भ० गीता स० बाबाराम, खिदरपुर सं०–१८६६ ई०
१२५	३	भ० गीता (संस्कृत और बङ्गला--टीका) सं०–१८४१ ई० कलकत्ता
१२६	४	भ० गीता (संस्कृत; भूमिकासहित) सं०–१८५७ ई० काशी
१२७	५	भ० गीता स० दामपुरु वेङ्कट सुब्बा शास्त्री सं०–१८५८ ई० मद्रास
१२८	६	भ० गीता (संस्कृत) सं०–१८६२ ई० मेरठ
१२९	७	भ० गीता (,,) सं०–१८६४ ई० बम्बई
१३०	८	भ० गीता (,,) सं०–१८६६ ई० रत्नगिरि
१३१	९	भ० गीता टी० १ सुबोधिनी २ गौरीशंकर तर्कवागीश (बङ्गानु०) सं०–१८३५ ई० कलकत्ता
१३२	१०	भ० गीता टी० १ सुबोधिनी २ एम. शर्मन (बङ्गानु०) सं०–१८६७ ई० कल०
१३३	११	भ० गीता टी० शांकर-भाष्य स०–एन. बी. सुब्बा शास्त्री सं०–१८७१ ई० मद्रास
१३४	१२	भ० गीता टी० रामानुज-भाष्य स० असुरी(आदि सुरी) सरस्वती तिरु वेङ्कटाचार्य्य सं०–१८७२ ई० मद्रास
१३५	१३	भ० गीता टी० गुजराती-भाषान्तर सं० १८६० ई० करीब, बम्बई
१३६	१४	भ० गीता (तेलगू) टी० रामचन्द्र, प० सरस्वती (पथ्योजनी-टीका) सं०–१८६१ ई० मद्रास
१३७	१५	भ० गीता (संस्कृत, कनाड़ी) टी० रामकृष्ण सुरी (कनाड़ी टी०) सं०–१८६८ ई० बङ्गलोर
१३८	१६	भ० गीता (फ्रेञ्च) स० M. Parraud. सं०–१८७७ ई० पेरिस
१३९	१७	भ० गीता (जर्मन) स० Peiper. स०–१८३४ ई० लिपजिग, जर्मनी
१४०	१८	भ० गीता (जर्मन) स० F. Lorinser. सं०–१८६९ ई० ब्रेसलो
१४१	१९	भ० गीता (जर्मन) स० R. Boxberger. सं०–१८७० ई० बर्लिन
१४२	२०	भ० गीता (ग्रीक) स० D. Galanos. Pub. Thespesion Melos. सं० १८४८ ई० एथेन्स
१४३	२१	भ० गीता (इटालियन) स० S. Gatti. सं०–१८५९ ई० नेपल्स।

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
		(B.) Cat. of Sans. books in the B.M. Supplement. 1877—1892
		महाभारत (11)
१४४	२२	भ० गीता–पंचरत्न (संस्कृत) सं०–१८७३ ई० बम्बई
१४५	२३	भ० गीता–(संस्कृत, माहात्म्यसहित) सं०–१८७६ ई० बम्बई
१४६	२४	भ० गीता–(तेलगू) स० C.B. Brown (रवीगाबके सन् १८२३ के संस्करणके अनुसार) सं०–१८४२ ई० मद्रास
१४७	२५	भ० गीता टी० शांकरभाष्य स० कल्यानम् कुप्पूस्वामी शास्त्री सं० १८६५ ई० (q.y.) मद्रास
१४८	२६	भ० गीता सं०–१८७४ ई० (q.y.) लखनऊ
१४९	२७	भ० गीता सं०–१८७५ ई० (q.y.) दिल्ली
१५०	२८	भ० गीतोपनिषद् सं०–१८७६ ई० मद्रास
१५१	२९	उपनिषद्-वाक्य-कोष (A Concordance to the Principal उपनिषद् और भ० गीता) by G.A. Jacob. Bombay Sans.Series No 39; Dept. of Public Instruction, Bombay; सं०–१८९१ ई० बम्बई
१५२	३०	भ० गीता (पहाड़ी भाषानुवाद) सं०–१८७८ ई० बम्बई
१५३	३१	भ० गीता सं०–१८८० ई० (q.y.) बम्बई
१५४	३२	भ० गीता टी० श्रीधरस्वामी-टीका स० रामेश्वर तर्कालङ्कार सं०–१८७१ ई० कलकत्ता
१५५	३३	भ० गीता टी० बी० बन्द्योपाध्याय (बङ्गानु०) सं०–१८७१ ई० कल०
१५६	३४	भ० गीता (संस्कृत और अंग्रेज़ी: भाग १) स० गोस्वामी सं०–१८८६ ई० कल०
१५७	३५	भ० गीता (गुजराती) टी० गट्टूलाल घनश्यामजी (गुजराती–पद्यानुवाद) सं०–१८६० ई० बम्बई (विषयमाला नं०६ स० "आर्य समुदय", बम्बई)
१५८	३६	भ० गीता (संस्कृत; हिन्दी; टी०१: केवल ३ भाग)—टी० ज्वालाप्रसाद भार्गव–सज्जनमनवैषिकी सं०–१८७८ई० आगरा
१५९	३७	भ० गीता (हिन्दी) टी० ज्ञानदास सं० १८७८ई० बनारस
१६०	३८	भ० गीता मराठी टी० ज्ञानदेव मराठी पद्यानु०, सं०–१८७४ ई० बम्बई (ज्ञानेश-आत्मज शंकरद्वारा संगृहीत शब्दकोष सहित)
१६१	३९	भ० गीता (मराठी) टी०ज्ञानेश्वर सं०–१८७७ई० पूना (रावजी एम० गोपळेकरद्वारा संगृहीत शब्दकोष सहित)
१६२	४०	भ० गीता (अंग्रेज़ी; तामिल) by H. Bower. सं०-१८८६ई० मद्रास
		(C.) Supplementary Cat. of Sans. books in the B. M. 1892--1906.
		Mahabharat.- Abdrigments & Selections.
१६३	४१	भ० गीता टी०श्रीयादवेन्द्र (कृष्णातोषिणी-टीका) सं०– १८९९ई० कुंभकोणम्।

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१६४	४२	भ० गीता टी० पं०वामन-पद्यानु० (वामन ग्रन्थमाला भाग १,२,४)
१६५	४३	भ० गीता टी० १ श्रीधर स्वामी टीका २ हेमचन्द्र विद्यारत्न बङ्गानुवाद सं०-१८९५ ई० कल०
१६६	४४	भ० गीतेवरिल अभंग (मराठी पद्यानुवाद) टी० ठाकुरदास सं०-१८६७ई०
१६७	४५	भ० गीता (संस्कृत; हिन्दी) टी० पं० भीमसेन शर्मा सं०-१८६७ ई० इटावा
१६८	४६	भ० गीता (हिन्दी; फारसी) टी० लक्ष्मीनारायण सं०-१८६८ ई० आगरा
१६९	४७	गीतार्थसार (कनाड़ी; शांकर-भाष्यानुवाद; भाग ३) टी० वेङ्कटाचार्य तुप्पलु सं०- १८९८-१९०१ ई० बंगलोर
१७०	४८	भ० गीता (तामिल) स० A.S. नाताचार्य और K.R. नायडू सं०-१८६९ ई० मदरास (देवनागरी और तामिल दोनों लिपिमें मूल श्लोक)
१७१	४९	भ० गीता (तेलगू) शंकर-मतानुयायी टीका सं० २-१९०० ई० मदरास
१७२	५०	भ० गीता (तामिल) सं०-१९०० ई० मदरास
१७३	५१	भ० गीता (तेलगू) टी० वेङ्कट प्रसन्नाभि स्वामी सं०-१९०१ ई० मदरास
१७४	५२	सप्तश्लोकी गीता (गुजराती) स० मोतीचन्द कपूरचन्द गांधी ? सं०-१८९८ ई० बम्बई
१७५	५३	भ० गीता-शांकरभाष्यका अंग्रेजी अनुवाद स० एम० सी० मुकर्जी सं०-१९०२ ई० कलकत्ता
१७६	५४	भ० गीता-सारबोधिनी (अंग्रेजी) स० ब्रह्म श्री एम० योगी आर० शिवशंकर पांड्याजी सं० २-१८६७ ई० मदरास (No. 15 of the Edtitor's Hindi Excelsior Series.)
१७७	५५	भ० गीता-(अङ्गरेजी. Vol. II. Secred books of the East. Pub. Christian Literature Society, London. 1898.
		Appendix.
१७८	५६	See भ० गीता (तामिल टीका) टी० बालसुब्रह्मण्य० सं० १९०० ई० मदूरा
१७९	५७	See कृष्णानन्द सरस्वती ; गीतासारोद्धार-व्याख्या (श्लो० ६२) सं०-१८६२ ई०
१८०	५८	See कृष्णानन्द सरस्वती ; सङ्गीतसूत्रके सहित कैवल्यगाथा अर्थात भ० गीता-व्याख्या सं०-१९०३ ई०
१८१	५९	See नारायण गजपतिराव गोडे, भ० गीता-पदसूचिकादिसह सं०-१८६६ ई०
		(D.) Cat. of English printed books in B. M. 1891.
१८२	६०	The Philosophy of Spirit-illustrated by a new version of Bh. G. by W. Oxley. Glasgow 1881.
		(E.) Cat. of English printed books in B. M.Supplement. 1903.
१८३	६१	भ० गी० (संस्कृत ; अंग्रेजी ; भाग १) स० के० पी० दत्त सं०- १८८६ ई० कलकत्ता (in Progress)
१८४	६२	भ० गीता--The Divine Ode. टी० प्रमदादास मित्र पना-फ्री मैन कम्पनी. काशी सं०-१८६६ ई०
१८५	६३	भ० गीता by J. Murdoch of Madras. (Krishna as described in......the Maha-

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
		bharat, especially the Bh.G. etc. Ed.-1894.
१८६	६४	भ० गीता See M. Philps. The Bh. G. Its doctrines stated and refuted. Ed.-1893.
		(F.) Cat. of Marathi & Gujrati books in B. M. 1892. & Sup. Cat. 1915.
		❀ भ०गीता–मराठी भाषा ❀
१८७	६५	भ० गीता–पद्यरत्न सं०–१८५७ ई० बम्बई
१८८	६६	भ० गीता–पद्यरत्न प्राकृत सं०–१८६२ ई० बम्बई
१८९	६७	अर्जुन गीता सं०–१८८० ई० पूना
१९०	६८	भ० गीतेंचें सार सं०–१८४० ई०
१९१	६९	गीता–भावचन्द्रिका टी० बालजी सुन्दरजी सं०–१८५१ ई० बम्बई
१९२	७०	भ० गीता पद्यरत्न टी० रङ्गनाथ स्वामी मोगरेकर (मराठी-पद्यानुवाद) सं०–१९०६ ई० बम्बई
१९३	७१	भ० गीता ज्ञानेश्वरी (भावार्थदीपिका) स० तुकाराम टात्या सं०–१८९७ ई० बम्बई
१९४	७२	भ० गीता ज्ञानेश्वरी–सार्थ वा सटीप स० कृष्णाजी नारायण आठल्ये,नेम्भूकर सं०३–१९१० ई० बम्बई
		Appendix.
१९५	७३	गीतामाधुरी See बलवन्तरावजी पाटिल (दो मराठी-पद्यानुवाद) सं०–१९०६ ई०
१९६	७४	गीतार्णव ले० दासोपन्त See दासोपन्त (मराठी-पद्यानु०;अ०१,२,१२,१३ अपूर्ण) सं०–१९०६-७ ई०
१९७	७५	भ० गीता–ध्यानेश्वरी टी० ध्यानेश्वर (मराठी प्राचीन टीका) सं०–१८९० ई० बम्बई मू० २)
		❀ भ०गीता–गुजराती भाषा ❀
१९८	७६	भ० गीता (गुजराती अनुवाद) सं०–१८६० ई० बम्बई
१९९	७७	भ० गीतानुं सुधा–गुजराती भाषान्तर सं०–१८८० ई० अहमदाबाद
२००	७८	भ० गीता–शांकरभाष्यानु० टी० स्वा० आत्मानन्द सरस्वती स० १९१० ई० अहमदाबाद
२०१	७९	भ० गीता–गूढार्थदीपिका टी० स्वामी चिद्घनानन्दगिरि स० छोटालाल चन्द्रशंकर शास्त्री सं०–१९१० ई० बम्बई
२०२	८०	सप्तश्लोकी गीता– गुजराती अनुवाद सं० १८८८ ई०
२०३	८१	गीता स० मोतीचन्द कपूरचन्द गांधी ? (स्कन्दपुराण–सुदामा माहात्म्यान्तर्गीता)
		G.) Sup. Cat. of Hindi books in B. M. 1913.
२०४	८२	भ० गीता–हिन्दी भाषा
२०५	८३	भ० गीता–मुमुक्षु भाष्य टी० मुन्शी कुन्दनलाल (१ हिन्दी गद्यानु० २ उर्दू पद्यानु०) सं०–१९०५ ई०, अजमेर
२०६	८४	भ० गीता–माहात्म्य सहित (फारसी लिपिमें हिन्दी अनुवाद) सं०–१९०५ ई०, होशियारपुर
२०७	८५	भ० गीता–भाष्योपेता टी० १ ज्ञानामृत-हिन्दी टीका २ हनुमान प्रसाद हिन्दी अनुवाद, प्र० मु० पं० भीमसेन शर्मा, इटावा सं०–१९०८ ई०

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
२०८	८६	सार गीता सं०-१८८६ ई० लाहौर
		(H.) Cat. of Hindi, Panjabi, Sindhi and Pushtu books in B.M. 1894.
२०९	८७	गीतार्थ--बोधिनी टी० तुलसीदास (हिन्दी पद्यानु०) सं०-१८६१ ई० बम्बई
२१०	८८	भ० गीता टी० श्यामसुंदरलाल भटनागर (हिन्दी शब्दार्थ और व्याख्या सहित) सं० १८७८ ई० बनारस
२११	८९	श्रीकृष्ण रत्नावली-भ० गीताका पद्यानु० सं०-१८६७ ई० कलकत्ता
२१२	९०	गीता टी० केशवदास (हिन्दी अनुवाद ; अ० मुन्शी ब्रजलाल (फ़ारसी लिपिमें) सं० -१८७२ ई० लाहौर
२१३	९१	भ० गीता-गुरुमुखी भाषानुवाद (केवल १८वाँ अध्याय) सं०-१८७३ ई० लाहौर
२१४	९२	भ० गीता टी० भवनदास (हिन्दी पद्यानु०) सं०-१८७५ ई० बम्बई
२१५	९३	भ० गीता (गुरुमुखी-लिपिमें अनुवाद) सं०-१८७७ ई० लाहौर
		(I.) Cat. of the Hindustani books in B. M. 1889-1908.
२१६	९४	भ० गीता टी० मुन्शी लोगिन्दाराम सं०-१८९६ ई० लाहौर पृ० १६०
२१७	९५	भ० गीता टी० रामप्रसाद सं०-१८९६ ई० मेरठ
२१८	९६	गीतासार ले० देवीसहाय सं०-१८७६ ई० स्यालकोट पृ० ३२ (ज़खीराह इ रफ़ाह इ अम्म सिरीज़)
२१९	९७	श्रीकृष्ण गीता टी० रामभरोस सं०-१८७७ ई० स्यालकोट पृ० ३६
		(J. Cat. of Bengali books in B. M. 1886. and 1886-1910.
२२०	९८	भ० गीता-बङ्गला पद्यानुवाद सं०-१८४१ ई० कलकत्ता
२२१	९९	भ० गीता टी० मथुरानाथ तर्करत्न (बङ्गानु०) सं०-१८६७ ई० कल०
२२२	१००	भ० गीता टी० बैकुण्ठनाथ बन्द्यो० (बङ्गला पद्यानु०) सं०-१८७४ ई० कल०
२२३	१०१	भ० गीता टी० ब्रजवल्लभ विद्यारत्न गोस्वामी (श्रीधर-टीकानु०) सं० २-१८८० ई० कल०
२२४	१०२	भ० गीता टी० भुवनचन्द्र बैशाक (बङ्गला पद्यानुवाद) सं०-१८७८ ई० कल०
२२५	१०३	भ० गीता टी० बङ्किमचन्द्र चट्टो० और दामोदर विद्यारत्न (बङ्गानु०) सं०-१८९७ ई०
२२६	१०४	भ० गीता-बङ्गानुवाद सं०-१९०४ ई० (भागवत-पुराण; कृष्णलीला)
२२७	१०५	पद्य-गीता ले०-हरिगोपाल वसु (बङ्गला पद्यानु०) (See-Periodical Publication. Calcutta-Sahity-Sanhita.) सं०-१९०० ई० आदि
२२८	१०६	गीता-काव्य टी० मैवालिनी देवी (बङ्ग-पद्यानु०) सं०-१९०१ ई० कल०
२२९	१०७	भ० गीता-नवपियूषप्रवाहभाष्य (मूल, हिन्दी, उर्दू, फारसी, बंगला और अंग्रेजी टीकासहित) स० पं० आद्याप्रसाद मिश्र सं०१-१९०५ ई० काशी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		(K) Cat. of the Telugu books in B.M. 1912.
		* भ०गीता—तेलगु भाषा *
२३०	१०८	भ० गीता-हरिसूक्ति-तरङ्गिणी (तेलगु-पद्यानुवाद) सं०-१८६७ ई० विजगापट्टम्
२३१	१०९	भ० गीता या गीतालु ले०-वेमूगन्टीदत्तोजी (तेलगु-पद्यानु०) स० एम० भूचैय्या, मद्रास सं० १८६१ ई०
२३२	११०	भ० गीता टी० बालसुब्रह्मण्य ब्रह्मशास्त्री शंकर मतानुयायी तेलगु-टीका (Styled-गूढार्थदीपिका) सं०२-१९०० ई० मद्रास
२३३	१११	भ० गीता टी० बालसुब्रह्मण्य० (रहस्यार्थबोधिनी) सं०-१९०० ई० मद्रास
२३४	११२	भ० गीता-गर्भितभावबोधिनी टी० कोका वेङ्कट रामानुज नायडू स० नेलनुतला शिवराम शास्त्री, मद्रास सं०-१९०३ ई०
२३५	११३	भ० गीता (वराहपुराणोक्त माहात्म्यसहित) टी० वेङ्कटप्रसन्न स्वामी (तेलगू-अनु०) (Styled-तात्पर्यसंग्रहम्) सं०-१९०५ ई० मद्रास
२३६	११४	भ० गीता-माहात्म्यसहित टी० एम० सुब्बाराव, मद्रास (Styled-तात्पर्यसंग्रहम्) सं०-१९०८ ई०
२३७	११५	भ० गीता-भाष्यत्रयसार टी० श्रीनिवास जगन्नाथ स्वामी (१-शंकर, २-रामानुज, ३-माध्व,-भाष्यानुयायी टीका) सं० २-१९०९ ई० विजगापट्टम्
२३८	११६	भ० गीता-संस्कृत, अंग्रेजी, तेलगुमें शंकरभाष्यसहित सं०-१९०१ ई० मद्रास (See गोपाल शास्त्री-कृत ज्ञानलहरी)

2. Central Library, Baroda.

Cat. of the Marathi books. 1917--24.

भ०गीता-मराठी भाषा

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२३९	१	गीताधर्म ले०- वाई० वी० कोल्हाटकर सं०-१९१६ ई० पूना
२४०	२	भ० गीता—मुक्तेश्वरी ले०- एन० वी० नूनार्जी, बम्बई
२४१	३	सुगम गीता ले०- वी० वी० तिलक सं०-१९२० ई० पूना
२४२	४	भ० गीता टी० माध्वाचार्य सं०-१९१५ ई० खानापुर
२४३	५	भ० गीता—अभङ्ग ले०- के० एस० गोखले सं०-१८३० शक, बम्बई
२४४	६	गीता पदार्थशासन कोष-ले० सदाशिव धोन्दो ताम्बे सं० -१९१० ई० रत्नागिरि
२४५	७	भ० गीता--भजनप्रभाती ले० दत्तात्रेय सं०-१८८८ ई० बड़ोदा
२४६	८	भ० गीता—ज्ञानेश्वरीरहस्य ले०—एन० एच० भागवत सं०-१८१८ शक, बम्बई

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
		3. THE BH. G. FROM THE NOTICES OF SANS. MSS. BY RAJENDRALAL MITRA. CALCUTTA.
		From—Vol. I.—1871.
		Cat. No.
२४७	१	१८९-उत्तर-गीता-भाष्यम् (अध्यात्म, नवीन परिशोधित, देवनागरी-लिपि. देशी कागज, पृ०३१, पंक्ति ९से११, श्लो० ६००) टी० गौड़पादाचार्य्य। काल—? पता—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
२४८	२	३०३-सिद्धान्त-गीता (अध्यात्म, अध्याय ८, श्रीकृष्णार्जुन-संवादरूपा अथर्ववेदरहस्यान्तर्गता, नवीन, परिशुद्ध, विलायती काग़ज़, लिपि-बंगला, पृ० ६, पंक्ति ७-२२, श्लो० २७००) ग्रन्थकार—? शकाब्द १७८१ पता—बर्द्धमान राजसभा पं० तारकनाथ तर्करत्न, वंशीबाटी (हुगली)
२४९	३	४४०-भगवती-गीता (तन्त्र, प्राचीन, शुद्ध, तुलट 'पीला' काग़ज़, लिपि-बंगला, पृ० १० पंक्ति ९—१०, श्लो० ७८) ग्रन्थ० -? काल—? पता- इण्डिया गवर्नमेन्ट
२५०	४	४४५-गुरु गीता (तन्त्र, रुद्रयामलतन्त्रान्तर्गता, प्रायः शुद्ध, प्राचीन, तुलट काग़ज़, बंगला लिपि, पृ० ६, पंक्ति ७—१०, श्लो० १९५) ग्रन्थ०—? काल ?—पता- इण्डिया गवर्नमेन्ट
२५१	५	४५४-ईश्वर-गीता—उपनिषद् (अध्यात्म, कूर्मपुराणान्तर्गता, प्रायः परिशुद्ध, प्राचीन, देशी काग़ज़, अध्याय ९, लिपि-बंगला, पृ०१४, पंक्ति ८, श्लो०४४५ ग्रन्थ०-व्यास, काल—१७८३ शक, पता—इण्डिया गवर्नमेन्ट।
		FROM-OTHER VOLUMES.
२५२	६	११९० भ०-गीता (मूलसहित) टी० अमृततरङ्गिणी
२५३	७	११९१-भ० गीता (समूल) टी० तत्त्वदीपिका
२५४	८	११२२, ११२३, ११२४ } भ० गीता (समूल ,खं० ३) टी० पं० कल्याणभट्ट—रसिकरञ्जिनी
२५५	९	६९३, ६८१, ७७६ } भ० गीता टी० शंकरानन्द सरस्वती—तात्पर्यबोधिनी
२५६	१०	१५६६-गीता-प्रदीप
२५७	११	२६९६—गीतामाहात्म्य
२५८	१२	१२६१-गीतामाहात्म्य (वराहपुराणीय)
२५९	१३	१३२३-गीतार्थ-विवरण टी० विट्ठलेश्वर
२६०	१४	१९८०—गीतावली टीका
२६१	१५	२७४६—गीता-सार
२६२	१६	१६१०-गीता-सारार्थ-संग्रह
२६३	१७	२७४६-गुरु-गीता
२६४	१८	२१०८, २४६४, १८९५ } भ० गीता

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२६५	१९	६०८–भ० गीता टी० श्रीहनुमत्–पैशाच भाष्य
२६६	२०	८५०–भ० गीता–टीका
२६७	२१	४५४–भ० गीता अ० १ से १२ तक टी० गूढार्थदीपिका
२६८	२२	६२९–भ० गीता टी० विश्वेश्वर सरस्वतीका शिष्य–गूढार्थदीपिका
२६९	२३	८४९ भ० गीता (समूल) टी० हरियश
२७०	२४	२७४६ भ० गीता सार (स्कन्दपुराणीय)

4 CAT. OF SANS. AND PRAKRIT MASS IN C. P. AND BERAR.

By Rai Bahadur Hiralal B A. Nagpur-1926.

		Cat. No.
२७१	१	३४९८–भ० गीता टी० तात्पर्य-निर्णय
२७२	२	३४९९, ३५०० भ० गीता-पञ्चरत्न
२७३	३	३५०२–भ० गीता–सभाष्य
२७४	४	३५०३–भ० गीता माला
२७५	५	३५०६–भ० गीता टी० श्रीधर
२७६	६	३५०७, ३५०८–भ० गीता टी० परमानन्दसुत श्रीधर-सुबोधिनी
२७७	७	१३८१–गीता-गुटिका
२७८	८	१३८४–गीता-पञ्चरत्न
२७९	९	१३८९–गीता टी० ब्रह्मानन्द स्वामी–पदबोधिनी
२८०	१०	१३९५-गीतामाला
२८१	११	१४०१–गीतामृत
२८२	१२	१४०२–गीतामृततरङ्गिणी
२८३	१३	१४०३–गीतावली
२८४	१४	१४०४–गीताव्याख्या
२८५	१५	१४१२, १४१३–गीतासार ले० जानकीदास
२८६	१६	१४१४-गीता टी० श्रीधर स्वामी-सुबोधिनी

५ गीता–हस्तलिखित * कवीन्द्राचार्य–सूची (गैकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बरोडा)

(१७ वीं सदीका सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीका ग्रन्थसंग्रह, वेदान्तीका बाग, वरुणीतट, काशी)

		सूची नं०
२८७	१	२३९–गीताभष्य–सटीक मतत्रयका
२८८	२	२६५-गीता–मधुसूदनी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
२८९	३	२६६–गीता–श्रीधरी
२९०	४	२६७– ,, –सुबोधिनी
२९१	५	२९५–गीतार्थप्रकाश
२९२	६	३०४–ब्रह्मगीता
२९३	७	३१३–…गीता
२९४	८	३२७–कपिल गीता
२९५	९	१३२७–चतुर्धर कृत मन्त्रभारत (अन्तर्गता गीता)
२९६	१०	१४०३–भारत-कार्शांतील शेपाचे घरचें (अन्तर्गता गीता)
२९७	११	१४०४–भारत-तात्पर्यनिर्णय (,, ,,)
२९८	१२	१४०५–भारत टी० लक्षाभरण (,, ,,)
२९९	१३	१४०६–भारत टी० मिश्र (,, ,,)
३००	१४	१४०७ भारत टी० चतुर्धर (,, ,,)

6. Asiatic Society of Bengal. 1, Park St. Calcutta.

(A) Cat. of Printed and Mass. books in Sans. belonging to
The Oriental Library of A. S. B. Cal. 1903.

		Cat. no.
३०१	१	I. B. 81. गीता-माहात्म्य (लिपि देवनागरी) स्कन्दपुराणीय।
३०२	२	III, E. 214.–गीता-माहात्म्य (,, ,,) पद्मपुराणीय।
३०३	३	III. F. 178.–गीतावली (पद्य)
३०४	४	III. E. 222 –भ० गीता (लिपि-देव०) टी महाराष्ट्रीय–टीका
३०५	५	I. B. 78.–भ०गीता-सार पद्यावली टी० भावप्रकाश
३०६	६	I. B. 77.–भ०गीतार्थ सार-संग्रह (लिपि-देव०) ले०–नरहरि शर्मा कवि (पद्यानुवाद)
३०७	७	I. G. 18.–भ०गीता (,, ,,) टी० शंकर-भाष्य
३०८	८	III. C. 12 भ०गीता (,, ,,) टी० १ शंकर-भाष्य २ आनन्दगिरि-टीका
३०९	९	I. A. 35. भ०गीता … … टी० ,, ,,
३१०	१०	III. B. 3. भ०गीता (,, ,,) टी० मधुसूदन-टीका
३११	११	B. no.46.–भ०गीता-पद्यानुवाद (लिपि-बंगला)
३१२	१२	I. D. 57.–भ०गीता टी० श्रीहनुमत्-भाष्य
३१३	१३	I. D. 9.–भ०गीता–मूल (लिपि–देव०)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
३१४	१४	1. B. 70.-भ०गीता-मूल (लिपि-देव०)
३१५	१५	I11. C. 11.-भ०गीता (,, ,,) टी० श्रीधरी-टीका
३१६	१६	111.E. 215.-भ०गीता (.. ,,) टी० रामानुज-भाष्य
		(B.) PRINTED BH. G.
		7. (English-Character.)
317	1	The Bh. G. (German Trans.) by Peiper. T. R. S. Pub. Bei Friedic Fleifder, Liepzig. (Germany) Ed.-1834.
318	2	Die Bh. G. (German-Trans.) by Dr. F. Lorinser. Pub. Verlag Von G. P. Aderholz. Buchhandlung. Breslau. Ed.-1869.
		(देवनागरी-लिपि)
३१९	३	गीता (स्वा० विजय नवभक्तिरसायन) ले०--श्रीकृष्ण शास्त्री, पना- के० आर० सुब्रह्मण्य शास्त्री, श्रीगीता स्वामी मठ, हनुमान,घाट, काशी, मू० ॥) लाईब्रेरी नं० II.H. 83.
३२०	४	* भ० गीता-मूल सं०--१८६५
३२१	५	भ० गीता-मूल प्र० मु० Stephen Austin.Fore Street, Hertfort.
३२२	६	भ० गीता--पञ्चरत्न प्र० प्रयागदत्त सदाशिव
३२३	७	भ० गीता-टी० श्रीधर स्वामी (सुबोधिनी टीका) स० भवानीचरण वन्द्योपाध्याय मु० समाचारचन्द्रिका प्रेस ?, कलकत्ता सं०-१८३...।
३२४	८	भ० गीता-मूल स० रामरत्न भट्टाचार्य मु० चैतन्य चन्द्रोदय-प्रेस ?, कलकत्ता।

7. The State Library, Berlin (Germany.)

(A.) Manuscripts of the Bhagavad Gita.

Die Handschriften-Verzeichnissa der Koniglichen (now, Staatlichen) Bibliothek †, Berlin 1853.

325	1	The Bhagavad Gita with Sridharaswami's Commentary (in Bengali Script.) (fol. 159.)
326	2	Bh. G. with a commentry by an unknown author. Samvat-1588 (Chambers 285.)
327	3	Bh. G. text. Samvat-1695 (Chambers 273)
328	4	,, ,, ,, ,, (,, 589)

* नं० ४ से ८ तककी गीताओंके लाईब्रेरी नम्बर प्रायः इनमेंसे हैं:-

I.C. 13.-- I.C. 92.--I.c. 94.--I.D.65.--II G.70--I.A.68--II.G.5--VI. D.57.

† Staatlichen Bibliothek=State Library.

Serial No.	Book No.	Description.
329	5	Bh. G. Text. Samvat-1652 (Chambers 606a)
330	6	,, ,, not dated (,, 744)
331	7	,, ,, ,, (,, 845)
332	8	,, ,, ,, (Ms. or Oct. 158)
333	9	,, ,, Samvat-1723 (Ms. or fol. 414)
		A. Weber; Sanskrit and Prakrit Hand-Schriften, Berlin 1891.
334	10	Bh. G. with Commentry, Fragment (Ms. or fol. 1421.
335	11	,, ,, ,, Subodhini of Sridhara-Swami (Ms. or fol. 1443)
336	12	,, ,, ,, Subodhini of Sridhara- Swami (Ms. or fol. 1521)
		Cat. of Mss. State Library, Berlin.
337	13	Vyasa-Bh. G. (Telugu) 3978. Oct. Ms. or. 1919. 2. 613.
338	14	Bh. G. (Tamil) 4049. Oct. Ms. or. 1919.2.
339	15	Ramanuja: Gita-Bhasya (Tamil) 3712. Oct. or. 1919. 2. 321.
340	16	Ramanuja-Bh. G. Tatparyatippani (Sanskrit) 3466. Oct. Ms. or. 1919. 2. 61.
		(B.) Bh. G. Printed.
341	17	Bh. G. Calcutta 1809.
342	18	Bh. G. with the commentary of Raghendra, Kumbhaghona 1894.
343	19	Bh. G. Bombay 1857.
344	20	Bh. G. with Ramanuja's Bhasya and Vedant Desika's Tatparya-Chandrika. Ed. by M. Rangacharya with the co-operation of R. V. Krishnamachariara and A. V. Gopalacharya. Srirangam 1907.
345	21	Bh. G. and the New Testament by George Howells. Cuttack. 1907.
346	22	W. Von Humboldt, on the Bhagwad Gita. Trans. by Weigle. (In English) Ootucamund 1847.
347	23	W. Von Humboldt, on the Bh. G. (In German) Berlin 1828.
348	24	Bh G. (French Trans.) by Senart. Paris 1922.
349	25	Bh. G. (Polish Trans.) by Michalskiego. Warsaw 1927.
350	26	Bh. G. (Spanish Trans.) by Boulfer. Madrid 1896.
351	27	Denis Crafton, on the collation of a manuscript of the Bh. G. Dublin 1862.
352	28	Bh. G. by Curt Boettger. Pfullingen 1926.
353	29	La theodicee de la Bh. G. by Ph. Colinet. Lauvain 1885.

8. The Adyar Library, Madras.

(A.) Gita .— Manuscripts.

Abbreviations.

(I) Gr.=Granth. (2) De.=Devanagry. (3) Be.=Bengali. (4) Ca.=Canarese. (5) Te.=Telugu. (6) Ma.=Malayalam. (7) Nr.=Nandinagari. (8) Sa.=Sarada.

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण			
		Subject.	Title.	No. of Copies.	Character.
३५४	१	निबन्ध स्मृति	वेदादिगीताविधिः	१	Gr.
३५५	२	इतिहास	भ० गीता—महाभारत भीष्मपर्व (अन्तर्गता)	३	"
३५६	३	पुराण	गोपिका-गीता-व्याख्या टी० वेंकटकृष्ण	१	"
३५७	४	"	ब्रह्मगीता व्याख्या टी० माधवाचार्य	३	De., Te.
३५८	५	"	अमरगीता व्याख्या टी० वेंकटकृष्ण	१	Gr.
३५९	६	गीता	अथर्वणरहस्य-सिद्धान्तगीता	१	De.
३६०	७	"	अवधूतगीता	२	Te., Ca.
३६१	८	"	अष्टावक्रगीता	१	Te.
३६२	९	"	उत्तरगीता	६	Te., Gr.
३६३	१०	"	" भाष्यम्	—	—
३६४	११	"	ऋभुगीता	२	Gr.
३६५	१२	"	कपिलगीता (पद्मपुराणीय)	४	Te.
३६६	१३	"	गणेशगीता (गणेशपुराणीय)	२	De., Te.
३६७	१४	"	गर्भगीता ...	१	Te.
३६८	१५	"	गीतामृतम् या गीतासार: ...	४	Te., Gr.
३६९	१६	"	गुरुगीता ...	३	Te., Ca.
३७०	१७	"	गोपिकागीता ...	५	Gr., Te.
३७१	१८	"	गोपिकागीता टीका ...	—	—
३७२	१९	"	पाण्डवगीता ...	४	Ca.
३७३	२०	"	ब्रह्मगीता ...	१	Gr.
३७४	२१	"	ब्रह्मगीता व्याख्यासहित ...	—	—
३७५	२२	"	भगवद्गीता ...	४३	Gr., Te., Ca., De., Sa., Be.

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण			
		Subject.	Title.	No. of Copies.	Character.
३७६	२३	गीता	भगवद्गीता हिन्दुस्तानी टीकासहित	१	Gr.
३७७	२४	,,	भगवद्गीता आन्ध्र-टीकासहित	४	Te.
३७८	२५	,,	रामगीता वसिष्ठकृत	३	Gr., Ma.
३७९	२६	,,	शंकरगीता	१	Ca.
३८०	२७	,,	शिवगीता	५	De., Gr., Te.
३८१	२८	,,	,, ,, व्याख्यासहित	१	Ca.
३८२	२९	,,	श्रुतिगीता	१	Gr.
३८३	३०	,,	श्रुतिगीता—तात्पर्यचन्द्रिकासहित	४	Gr., Te.
३८४	३१	,,	श्रुतिगीता व्याख्या	१	Gr.
३८५	३२	,,	सूतगीता	१	Gr.
३८६	३३	,,	सूतगीता व्याख्या टी० माधवाचार्य	१	Te.
३८७	३४	,,	सूर्यगीता—वसिष्ठकृत	१	Ma.
३८८	३५	,,	ईश्वरगीता (कूर्मपुराणीय)	...	...
३८९	३६	,,	देवीगीता	...	...
३९०	३७	,,	अवधूतगीता टी० परमानन्द तीर्थ	...	...
३९१	३८	,,	अष्टावक्रगीता टी० विश्वेश्वर	...	...
३९२	३९	,,	उत्तरगीता टी० गौडपाद	...	...
३९३	४०	,,	गोपिकागीता टी० वेङ्कटकृष्ण	...	...
३९४	४१	,,	ब्रह्मगीता टी० माधवाचार्य	...	...
३९५	४२	,,	सप्तश्लोकीगीता	...	...
३९६	४३	,,	भ० गीता टी० हनुमत्-पैशाचभाष्य	...	...
३९७	४४	,,	,, टी० शांकर-भाष्य	...	...
३९८	४५	,,	,, टी० गूढार्थदीपिका-टीका	...	...
३९९	४६	,,	,, टी० पदयोजिनी-व्याख्या	...	...
४००	४७	,,	,, टी० सुबोधिनी-टीका	...	...
४०१	४८	,,	,, टी० पाठाचार्य-टीका	...	...
४०२	४९	,,	,, टी० रामानुज-भाष्य	...	...

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण			
		Subject.	Title.	No. of Copies.	Character.
४०३	५०	गीता	भ० गीता टी० आनन्दज्ञानी-टीका	...	...
४०४	५१	,,	,, टी० अनुभूतिस्वरूपाचार्य यति-टीका	...	...
४०५	५२	,,	,, टी० गीतार्थप्रकाश	...	...
४०६	५३	,,	,, टी० भगवद्गीता-भाष्यम्	...	...
४०७	५४	,,	,, टी० आनन्दतीर्थ-टीका ...	...	...
४०८	५५	,,	,, टी० राघवेन्द्र	...	...
४०९	५६	,,	,, टी० जयतीर्थ	...	...
४१०	५७	,,	,, टी० श्रीनिवास	...	...
४११	५८	,,	,, टी० गीताविवरणम् ...	...	...
४१२	५९	,,	,, टी० गीताविवृत्ति	...	...
४१३	६०	,,	,, टी० गीता-तात्पर्यनिरणय	...	...
४१४	६१	,,	,, टी० गीता-संग्रह	...	...
४१५	६२	,,	,, टी० गीता- सार	...	...
४१६	६३	,,	,, टी० नारायणमुनि (गीतासाररक्षा)	...	...
४१७	६४	,,	,, –भाष्य	...	...
४१८	६५	,,	,, टी० रहस्यार्थ संग्रह-टीका	...	...
४१९	६६	,,	,, –भाष्यम्	...	...
४२०	६७	,,	,, टी० गीतार्थ-संग्रहम्	...	...
४२१	६८	महात्म्य	गीता माहात्म्यम् ...	३	Te., Gr.
४२२	६९	,,	गुरुगीता माहात्म्यम्	१	Te.
४२३	७०	,,	भगवद्गीता माहात्म्यम्	१	,,
४२४	७१	स्तोत्रान्तर	गीतासारस्तोत्रम् व्यासकृत	४	Gr., Te.
४२५	७२	,,	गुरुगीतास्तोत्रम् ...	२	Te., Ca.
४२६	७३	अद्वैत	अवधूतगीता व्याख्यासहित	१	Ca.
४२७	७४	,,	अष्टावक्रगीता टी० विश्वेश्वर:	१	Te.
४२८	७५	,,	उत्तरगीता- आन्ध्रटीकासहित	१	Te.
४२९	७६	,,	,, –भाषान्तरटीकासहित	१	De.
४३०	७७	,,	,, –गौड़पादव्याख्यासहित	४	Gr. Te.
४३१	७८	,,	गीताभाष्यविवेचनम् टी० आनन्दज्ञान:	१	Gr.
४३२	७९	,,	ब्रह्मगीता व्याख्या टी० माधवाचार्य:	२	Te., De.

क्रमसं०	पु० सं०	विवरण			
		Subject.	Title.	No. of Copies.	Character.
४३३	८०	अद्वैत	भ० गीता भाष्यम् टी० शङ्कराचार्यः	५	Te., De. •
४३४	८१	,,	वाक्यार्थबोधिनी(श्रुतिगीता-व्याख्या) टी० शङ्करानन्द सरस्वती	२	Gr., Te.
४३५	८२	विशिष्टाद्वैत	गीतार्थसंग्रह-यामुनाचार्यकृत	६	Gr.
४३६	८३	,,	गीतार्थसंग्रहविभागः-नारायणमुनिकृत	१	,,
४३७	८४	,,	गीतासाररक्षा-कृरनारायणमुनिकृत	१	,,
४३८	८५	,,	भ० गीता-भाष्यम् भगवद्रामानुजाचार्यः	४	Gr.
४३९	८६	,,	टी० हनुमान-पैशाच-भाष्यम्	१	Ma.
४४०	८७	,,	भ० गीता-भाष्यार्थः टी० पक्षाबान्	१	Te.
४४१	८८	,,	श्रुति-गीता व्याख्या टी० वेङ्कटकृष्णः	१	Gr.
४४२	८९	द्वैत	भ०गीता-भाष्यम् टी० आनन्दतीर्थः	१	Te.
४४३	९०	,,	भ० गीता-भाष्यतात्पर्यम् टीका	१	Nn.
४४४	९१	शैववेदान्त	शिवगीता व्याख्या (तात्पर्यप्रकाशिका)	१	Te.
४४५	९२	साकतागम	गीतावृत्तिः	१	Gr.
४४६	९३	मंत्रशास्त्र	कालगीता	१	Gr.
४४७	९४	,,	गीताचरमश्लोकमन्त्रः	३	Gr.
४४८	९५	,,	भ० गीताचरमश्लोकजपविधिः	१	Gr.

(B.) Bh. G.- Printed.

449 | 96 | Fragrant Essence of the Gita by K. Hanumant Rao: From: Ram Mandir Jamalpur, Ahemadabad; Ed.-1916. Re. -/3/-.

450 | 97 | The Bh. G. (Translation only) by F. T Brooks. Pub. Shiambehari Mishra, Asstt. Settlement Officer, Ajmer; Print. S. M. Industrial Co. Ltd., Ajmer.

451 | 98 | Glimpses of the Bh. G. by Mukund Vaman Rao Burway, B. A. Pub. Author, Indore; Print. Vaibhava Press, Bombay. Ed.-1916. Rs. 2/8/.

452 | 99 | The Bh. G.-The Celestial Song by R. Narsinh Rao, B. A., B. L. Print. Sri Vidya Press, Kumbakonam. Ed.-1909.

453 | 100 | The Bh. G. (English Translation) by S. Ramaswami Aiyangar: Print. Coxton Press, Banglore. Ed.-1910

454 | 101 | Life and Teachings of Srikrishna by S. Gopayya, B. A. Pub. Sujanaranjani Press, Cocanada. Ed.-1897.

Serial No.	Book No.	Description.
455	102	Srikrishna the Cowherd by M. M. Dhar, M.A., B.L.; Pub. T. Pubg. House, London. Ed.-1917.
456	103	Srikrishna by B. B. Mitra, B. L., Pleader Judge's Court, Bankipore; Ed.-1900; Re. 1/-.
457	104	Srikrishna the Soul of Humanity by A. S. Ramiah; Pub. K. A. Hebber, The Kanara Press, Madras; Ed.-1918. Re. 1/.
458	105	The Philosophy of the Bh. G. (Intro.) by Radhanath Basak; Pub. B. M Press, Calcutta; Ed.-1888.
459	106	Tattva-Darshanam or the mind aspect of Salvation (Part. I.) by F. T. Brooks. Pub. Vyasashram Book Dep., Adyar, Madras. Ed.-1910; Re. -/6/-.
460	107	Samnyasa by F. T. Brooks; Pub. Vyasashrama Book Dep., Adyar, Madras; Ed.-1911.
461	108	On Good & Evil, with Ref. to Bh. Gita by A. Govindacharlu F. T. S.; (A lecture delivered before the Srirangam Club.) Ed.-1896.
462	109	An Introduction to an exposition of the Philosyphy of the Bh. G. by Chhaganlal J. Kaji; Print. Sarkari Press; Junagarh. Ed.-1898.
463	110	Key to the Esoteric Meaning of the Bh. G. by Pandit F. K. Lalan; Pub. Ransom H. Randall, Chicago, U. S. A.; Ed.-1897. Re. -/5/-.
464	111	Bh. G. by S. Narayanaswamier, Vakil High Court, Tinnevely; Ed.-1916.
465	112	The Philosophy of the Spirit-a new version of the Bh. G. by W. Oxley; Pub. F. W. Allen, London. Ed.-1881.
466	113	Bh. G. Upanishad (Part I) by Parameshwara; Print. Victoria Press, Nagercoil. Ed.-1926.
467	114	An Epitome of Bh. G. by N. K. Ramaswami Aiyer. Pub. Sri Viyda Vinod Press, Tanjore.
468	115	Sri Hamsa-Gita (with Sans. Text) by Pramadadas Mitra. Pub. Sanskrit Ratna Mala Publishing Society, Benares. Ed.-1896; Re. -/4/-
469	116	Bh. G. (Danish Translation) by V. Prochagka. Ed. 1912.
470	117	Bh. G. (Russian Translation) by Manziarly. T. Kamensky A. Ed.-1914.
471	118	Bh. G. (Russian Trans.) by A. Kamensky. From: Nsuahie Kyphan Btcthukb Teocoom, Petrograde.
472	119	Bh. G. (Dutch Trans.) by Labberton. Pub. T. P. S., Amsterdam; Ed.-1910.
473	120	Bh. G. (Dutch Trans.) by Dr. J. M. Boiswain. Pub. N. V. Theosofischic Uitgevrsmaatse-happij, Amsteldijk, Amsterdam; Ed.-1909.

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
474	121	La Bh. G. (French) by A. Kamensky. From: Imprimerie Jent S. A., Rue Necker, 9, 11, Marson Attitree a la Societe Co-operative Impression, Geneva.
475	122	La. Bh. G. (French Trans.) by Anna Kamensky.; Paris; Ed.-1926.
476	123	Bh. G. (French Trans.) Uttar Gita by A. Besant and F. C. Terror. Ed.-1908.
477	124	La Bh. G. (Spanish Trans.) by E. Trimisob. Ed.-1908.
478	125	Bh. G. (Spanish Trans.) by J. R. Borral.; From: Tip De Carbonell Yesteva-Rambla de. Calebena 118. Barcelona; Ed.-1910.
479	126	Bh. G. (Bohemian Trans.) by Dr. F. Hertmann. From: Vaelav Proch azka dapisujici clen. Theosophickeho Spalqu V. Praze; Ed.-1900.
480	127	Bh. G. Azisleniemek (Hungarian Trans.) From: Legrady Nyomda es Konyukiado. R. T. Budhapest.
481	128	Bh. G. (German Trans.) by Otto. H. N. W. Ed.-1912.

9. The Raghunath Temple Library of Jammu.

Gita in Mss.

४८२	१	भ० गीता	(लिपि–शारदा) व्यासकृत, पृ० ७६
४८३	२	,,	टी० रामचन्द्र सरस्वती-तात्पर्य परिशुद्धि (असमाप्त, प्राचीन पत्रमें) पृ० ६७
४८४	३	,,	(लिपि–काश्मीरी) टी० वनमाली–निगूढार्थचन्द्रिका पृ० २२६
४८५	४	,,	टी० अमृततरंगिणी (१ अध्याय, असमाप्त) पृ० १२
४८६	५	,,	(लिपि–काश्मीरी) टी० मधुसूदन सरस्वती–गूढार्थदीपिका पृ० २४१
४८७	६	,,	टी० मधुसूदन स०–गूढार्थदीपिका (१५ अ० रहित) पृ० १८६
४८८	७	,,	,, ,, (अ० १, २ ; अपूर्ण) (लिपि–काश्मीरी)
४८९	८	,,	,, ,, (अ० ६, संपूर्ण) पृ० ४० (,, ,,)
४९०	९	,,	,, ,, (अ० १८, ,,) पृ० ४० (,, ,,)
४९१	१०	,,	टी० पंचोली पृ० ८८
४९२	११	,,	टी० दैवज्ञ पंडित सूर्य–परमार्थप्रपा पृ० १६२
४९३	१२	,,	(लिपि–नवीन काश्मीरी) टी० पैशाचभाष्य पृ० २१
४९४	१३	,,	टी० गिरिधारीदास–गीतार्थ–कुसुम–वैजयन्ती सं० १८०२ पृ० २२७
४९५	१४	,,	(लिपि–काश्मीरी) टी० सदानन्द–भावप्रकाश पृ० २०९

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
४९६	१५	भ० गीता टी० आनन्दतीर्थ-भाष्य (प्राचीन पत्र) पृ० ६०
४९७	१६	,, टी० ,, ,, (लि०-काश्मीरी) पृ० ७२
४९८	१७	,, टी० रामानुज-भाष्य (प्राचीन पत्र) पृ० १२२
४९९	१८	,, ,, ,, (नवीन ,,) पृ० ११८
५००	१९	,, ,, ,, (लिपि-काश्मीरी) पृ० १०६
५०१	२०	,, टी० रामानुज-भाष्य (असमास, प्राचीन पत्र, १ पत्ररहित) पृ० १२१
५०२	२१	,, (लिपि-काश्मीरी) टी० श्रीधर-सुबोधिनी पृ० १७१
५०३	२२	,, टी० श्रीधर-सुबोधिनी पृ० १३४
५०४	२३	,, टी० ,, ,, (अ० १-३ , संपूर्ण) पृ० ३१
५०५	२४	,, टी० ,, ,, (अ० १ . २ ; अपूर्ण, प्राचीन पत्र) पृ० १६
५०६	२५	,, -सप्तश्लोकी पृ० १
५०७	२६	,, टी० अभिनवगुप्तपादाचार्य-गीतार्थसंग्रह (लिपि-काश्मीरी) पृ० ५४
५०८	२७	,, टी ,, ,, ,, (असमास, प्राचीनपत्र) पृ० १४
५०९	२८	,, टी० आनन्दराजानक— आनन्दी-टीका
५१०	२९	,, टी० राजानक लक्ष्मीराम—तत्त्वप्रकाशिका
५११	३०	,, टी० आनन्दगिरि—तात्पर्यनिर्णय
५१२	३१	,, टी० पैशाचभाष्य
५१३	३२	,, टी० नीलकंठ—भावदीपिका
५१४	३३	,, टी० आनन्दतीर्थ—माध्वभाष्य
५१५	३४	,, टी० सर्वतोभद्र रामकण्ठ
५१६	३५	,, टी० रणवीर-समिद्बोधिनी महाराज रणवीरसिंहसे बनवायी गयी
५१७	३६	,, टी० हिन्दी अनुवादसहित महाराज रणवीरसिंहसे बनवायी गयी।

क्रम सं०	पु० स०	विवरण

10. The Palace Library, Tanjore.

BH. G. IN MSS.

५१८	१	भ०गीता टी० आनन्दतीर्थ—तात्पर्यनिर्णय
५१९	२	,, टी० जयतीर्थ – न्यायदीपिका (तात्पर्यनिर्णयकी टीका)
५२०	३	,, –भाष्य टी० आनन्दतीर्थ–भाष्य
५२१	४	,, टी० जयतीर्थमुनि—प्रमेयदीपिका (आनन्दतीर्थ-भाष्यकी टीका)
५२२	५	,, टी० कृष्ण–भावप्रकाश (प्रमेयदीपिकाकी टीका)
५२३	६	,, टिप्पणी (आनन्दतीर्थ-भाष्यकी टीका)
५२४	७	,, टी० वेंकटनाथ-टीका
५२५	८	गीतार्थसंग्रह (अ० १–१२ तक कीड़ोंसे नष्ट)
५२६	९	गीतार्थ-विवरण
५२७	१०	,, –सार
५२८	११	,, –स्तोत्र
५२९	१२	गीता-माहात्म्य
५३०	१३	,, –विवृत्ति (आनन्दतीर्थ–भाष्यपर)
५३१	१४	,, शंकर अनन्त नारायणकृत
५३२	१५	भ० गीता टीका
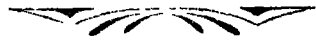
11. Imperial Library. 6, Esplanade East, Calcutta.

From Cat. 1904 - 1918.

533 1 Bh. G. by Roussel A. Legendes morales. Die Inde emprunties au Mahabharat. Vols. 1900–1 Litteratures Papulaires.

534 2 Bh. G. (French) Chant du Sergreur by A. Anduced M. Shultz. Ed.–1920. Paris.
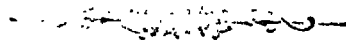
क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		FROM OTHER CATLOGUES OF IMPERIAL LIBRARY.
		*** बंगला-भाषा ***
५३५	३	जे. सी. १२. १६८. गीता (मूल, पद्य) ले० शरत्कुमार वन्द्योपाध्याय पता-प्रमथनाथ मुखोपाध्याय, ४४ मिरजापुर स्ट्रीट, कलकत्ता ।
५३६	४	जे. सी. १०. १. भ०गीता(संस्कृत, भाषा०) पता-कालिकाप्रेस, १७ नन्दकुमार चौधरी लेन, कल०मू०।-)
५३७	५	जे. सी. ११. १७. भ० गीता (संस्कृत, भाषा०) अनु० कालीमोहन विद्याभूषण स० सरत्कुमार सेन पता-गौरहरि सेन, ८८ निमुगोस्वामी लेन, कल० मू० ॥)
५३८	६	जे. सी. १२२. ६. अमिय गीता (पद्य) ले० श्रीक्षिरोदचन्द गंगोपाध्याय पता-भाषा परिषद्, १० शिमला स्ट्रीट, कल० मू० ॥)
५३९	७	जे. सी. १०. ६३. भ० गीता (मूल, बंगानु०) ले० व्रजगोपालसिंह पता-विक्टोरिया प्रेस, २ गोवाबगान स्ट्रीट, कल० मूल्य १॥)
५४०	८	जे. सी. १२. १७. भ० गीता (भाषाटीका) पता-दुर्गा स्टोर, ११ बंगला बजार, ढाका मू० ।≡)
५४१	९	जे. सी. ११. ७१. भ० गीता (संस्कृत, भाषा०) पता-श्रीप्रसाददास गोस्वामी, १९९ कार्नवालिस स्ट्रीट, कल०
५४२	१०	जे. सी. ८८. १२६. भ० गीता (मूल, भाषा०) प्र० श्रीप्रसाददास गोस्वामी, श्रीरामपुर
५४३	११	जे. डी. ११. ८. प्रणव-गीता (संस्कृत, भाषा०) प्र० ज्ञानेन्द्रनाथ मुखो०, प्रणवाश्रम, काशी मू० ३)
५४४	१२	जे. सी. ११. ७४. शान्ति-गीता (टीकासहित) अ० नर्कण्डिराय गुह पता-शिवशक्तिप्रदायिनी सभा, काली-घाट, कल० मू० ॥≠)
५४५	१३	जे. डी. ११. ६. भ० गीता (संस्कृत, भाषा०) स० यात्रामोहनदास, प्र० हरकिशोर अधिकारी, सीताकुंड, चटगांव मू० ॥।)
५४६	१४	जे. डी. ११. १५. गीतारसामृत (मूल, पद्य) पता-नकुलचन्द्र चक्रवर्ती, गेपालिया जि० त्रिपुरा सं०२-१९०३ ई० मू० ॥=) पृ० २२८
५४७	१५	जे. सी. ११. १४०. भ० गीता (मूल, सारार्थबोधिनी) स० प्र० विमलाप्रसाद सिद्धान्तसरस्वती, मु० भागवत प्रेस, व्रजपत्तन, मायापुर सं०-१९१३ ई०
५४८	१६	जे. सी. १०. ४७. भ० गीता (संस्कृत टीका, भाषा०) स० श्यामलाल गोस्वामी (तात्पर्य बंगानुवादसह) पता-इ० डी० रक्षित, १० शंभुचन्द्र चटर्जी स्ट्रीट, कल० मू० १।)
५४९	१७	जे. डी. ११।३९. १९१९ भ० गीता स० कालीप्रसन्न ज्योतिभूषन
५५०	१८	जे. सी. ११।३४०. १९१९ भ० गीता स० चंद्रकुमार चट्टो०
५५१	१९	जे. ई. ०२।६. १९२१ भ० गीता स० अरजविन
५५२	२०	जे. डी. २२।१५. १९२१ भ० गीता स० मनिन्द्रनाथ स्मृतितीर्थ
५५३	२१	जे. सी. १२।८०. १९२३ भ० गीता स० प्रफुल्लकुमार चक्रवर्ती

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
५५४	२२	जे. पी. ९८४ । १ १८२५ } भ० गीता स० वैकुण्ठनाथ वन्द्यो० (पद्य)
५५५	२३	जे. सी. ८७ । ४० १८७२ }
५५६	२४	जे. बी. ८७ । २० १८७९ भ० गीता स० रामेश्वर तर्करत्न (श्रीधरीसह)
५५७	२५	जे. सी. ८८ । ८० १८८४ भ० गीता स० मन्मथनाथ तर्करत्न (श्रीधरीसह)
५५८	२६	जे. बी. ८८ । ९० १८८६ भ० गीता स० कैलाशचन्द्र मीया (शंकरानन्दी, श्रीधरी, आनन्दगिरिटीकासह)
५५९	२७	जे. बी. ८८ । १३५ १८८९ भ० गीता टी० (रामानुज-भाष्य, श्रीधरी, मधुसूदन-टीकासह)
५६०	२८	जे. सी. ८९ । ९३ १८९३ भ० गीता स० प्रसाददास गोस्वामी (श्रीधरी सह) मु० प्रिंटिंग हाउस, श्रीरामपुर सं०-१३०० बं०
५६१	२९	जे. बी. ८९ । १३ १८९३ भ०गीता टी० १-पं० प्रसन्नकुमार शास्त्री-सरलार्थप्रबोधिनी २-पं०शशधर तर्कचूडामणि-बंगानुवाद (१ शंकर-भाष्य, २श्रीधर स्वामी-टीका ३ मधुसूदन-टीकासहित) स०प्र०पं०पञ्चशिख भट्टाचार्य, शास्त्रप्रचार कार्या० दर्जीपाड़ा, कलकत्ता सं०४-१३१८ बं० मू० ३॥) पृ० ७२५
५६२	३०	जे. पी. ८९ । २१ १८९४ भ० गीता टी० पं०हेमचन्द्र विद्यारत्न स० क्षितिन्द्रनाथ ठाकुर
५६३	३१	जे. सी. ९२ । १४२ १९२४ भ० गीता स० क्षीरोदनारायण भुयाँ
५६४	३२	जे. सी. ९२ । २३१ १९१६ भ० गीता-गीति कुसुमांजलि स० रामाचरण काव्यतीर्थ, गोपालनगर, मेदिनापुर
५६५	३३	जे. सी. ८९ । १०६ १८९२ गीता मंगलम् स० कृष्णधन ब्रह्मचारी
५६६	३४	जे. सी. ९२ । १५३ १९२४ भ० गीता सांख्यतत्त्व (अध्याय २) स० शिवचन्द्र मुखोपाध्याय
५६७	३५	जे. बी. ९१ । ५५ १९१० भ० गीता स० वैकुण्ठनाथ (रामानुज-भाष्यसह)
५६८	३६	जे. बी. ९१ । ९६ १९१२ भ० गीता स० कालीनाथ
569-599	37-67	J.D. 91. 70-1913, J.E. 92.30-1923, J.P. 89. 31-1898, J.B. 90.1-1901, J.B. 89. 26-1899, J.E. 92. 17-1923, J.E. 92. 21.Ed. 2-1921, J.C. 91.10, J.D. 92. 1, J.D.91.19, J B. 91.75, J.B. 91.70, J.B. 91. 129, J.c. 91.76, J.B. 91. 64, J.c. 91.264, J.E. 91.17, J.c. 92.22, J.c. 92.62, J.E. 92.13, J.E. 92.19, J.c. 92 132, J.c. 92.150, J.D. 92.51, J.E. 92.31, J.D. 92.57, J.d. 92.52, J.c. 92.209, J.c. 92.230, J.E. 92.35, J.c 92.237.

* उड़िया-भाषा *

६००	६८	J. B. 89. 92. भ०गीता-(मूल-पदच्छेद-अन्वय-श्रीधरी सह) उत्कल अनुवाद स० पं० विहारीलाल मु० राय प्रेस, कटक सं०-१८८५ ई०

* संस्कृत-भाषा *

६०१	६९	J. D. 90. 22. भ०गीतायां सप्तशती टी० पं० आत्मारामजी शर्मा पता--आत्माराम मोरेश्वर खत्री मु० जगदीश प्रेस, बंबई मू०।-)

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
६०२	७०	J. D.92. 22. भ० गीता-सतसईसार टी० पं० आत्माराम सर्वोदात्री
603-608	71-76	J.C. 90. 10, J. B. 91. 71, J. B. 91.66, C. 298, C.137, E. 29 (5).
		*** हिन्दी-भाषा ***
६०६	७७	J. C. 89. 74-1893 भ० गीता स० पंचानन तर्करत्न (श्रीधर-टीकासह)
६१०	७८	J. B. 90. 48-1901 भ० गीता (मधुसूदन सरस्वती-टीकासह), काशी
६११	७९	J. B. 88.5. भ० गीता (मूल, भाषा०) अ० रामावतार ओझा, जूनियर संस्कृत कालेज, पटना (शांकरभाष्य-से अनु०) मु० विहार-बन्धु प्रेस, पटना
६१२	८०	J. c. 89.81-1894 भ० गीता राघोवेंद्र दुरज्योती स० धर्मशास्त्री शंकरराम चटर्जी
६१३	८१	J. C. 91.282-1919 गीता सम्यक् ज्ञान नत्नमाला स० श्यामाप्रसन्न देव
614-620	82-89	J.C. 89.101-1884, J.C. 92.53-1922, J.c. 92.56-1922, J.c. 92.74-1923, J.E. 92. 11-1923, J.D.92. 40-1925, J.E.92.10-1923, J.c. 91.282.
		*** अंग्रेजी-भाषा ***
६२१	९०	E. 105. भ० गीता (अंग्रेजी और तामिल टी०) The Late Rev. H. Bower, D.D. पता--50, Higgimbotham & Co, मद्रास सं० १८८६ ई०
६२२	९१	J.C. 90. 42. (शांकर-भाष्यका अनुवाद) स० S. C. मुकर्जी M. A. पता-८३, श्यामबजार स्ट्रीट, कलकत्ता म० ४)
623	92	J. B. 88. 6. Ed.3-1884.
624-687	93-156	L. C 91. 9., L. E. 92.10, A. 210., A 142., J. c. 91. 77, E. 239, E. 305, E. 297, C 275, C. 24, C. 39, E.375, E. 369, E 669, E. 541, C. 579, E. 547, E. 517, C. 593, C. 581, C.575, E. 597, E. 453, 214-18/1 C 32, C. 605, C. 583, E.477, E 451, C 199 (6); E. 629, E. 201, E. 471, E. 577, A. 297 (2); E. 455, E. 555, J. D. 920-2, J. E. 922.6, J. C. 921. 45, J. D. 923.1, J. E. 925. 4, J. E. 921. 8, J. E. 915. 2, J. C. 921. 53, J. D. 921. 6, J. E. 922. 1, J.E. 925. 7, J.D. 926. 16, J. E.927.1, J. E. 927 4; J. E. 914.1, J. E. 917. 3, J. D. 922.4, J. c. 923. 33, J. c. 914. 20, J. C. 91. 273, C. 951, J. C 92. 154, C.929; 179.E.185, 179.E.487; L.D. 92 8; E. 557.

१२. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

(क) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकोंका संक्षिप्त विवरण, भाग १ से उद्धृत हस्त० गीता—

❋ रिपोर्टमें आये हुए संकेताक्षर ❋

(१) ले० = लेखक (२) सं० = संवत् (३) वि० = विषय (४) दे० = देखो (५) लि० का० = लिपिकाल (६) नि०का० = निर्माणकाल (७) क = सन् १९००ई०की खोजकी रिपोर्ट (८) ख = सन् १९०१की रिपोर्ट (९) ग = सन् १९०२की (१०) छ = १९०४को (११) छ = १९०६, ७, ८ की (१२) ज = १९०९, १०, ११की (१३) ए = रिपोर्टके नम्बरका 'ए' हिस्सा (१४) एच = रिपोर्टके नम्बरका 'एच' हिस्सा ।

क्रम संख्या	पुस्तक संख्या	विवरण
६८८	१	अवतारगीता या अवतारचरित्र ले० नरहरिदास; लि० का० सं० १८५८; वि० चौबीस अवतारोंका वर्णन; दे० (ज–२१०❋) (ग–८८)
६८९	२	उग्रगीता ले० कबीरदास, लि० का० सं० १८३६; वि० कबीर और धर्मदासके आत्मिक विषयपर प्रश्नोत्तर; दे० (छ-१७७ एच)
६९०	३	गीताभाषा ले०-तुलसीदास, परन्तु प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास नहीं; वि० श्रीमद्भगवद्गीताका भाषानुवाद, दे० (छ–८९)
६९१	४	गीतासार ले० नवनदास अलख सनेही; लि०का० सं० १९०६; वि०भ०गीताका सारांश, दे० (छ-३०४)
६९२	५	भ० गीता ले० जनभुवाल दे० (ज-१३२) लि०का०सं०१७६२, वि० कृष्ण और अर्जुनका संवाद, संस्कृत गीताका अनु०
६९३	६	भँवर-गीता ले० जनमुकुन्द उपनाम मुकुन्ददास दे० (छ–२७३) (ग–१०४ दो) (ज-१८४)
६९४	७	ज्ञानसतसई ले०–हरिदास; नि०का०सं० १८११; लि० का० संवत् १८२०; वि० भ० गीताका भाषानुवाद, दे० (छ—७२)
६९५	८	गीताभाषा (भगवद्गीता) ले०प्रसिद्ध महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, दे० (छ—५७) (छ—३२८ ए) भ०गीताका अनु० सं०१६३१के लगभग
६९६	९	अवतारगीता ले० नरहरिदास चारण, जोधपुर, दे० (ज—२१०) सं०१७००के लगभग
६९७	१०	गीतासागर ले० नवनदास अलख सनेही स्वामी, दे० (छ—३०४)
६९८	११	महाभारत भाषा (अन्तर्गतागीता) ले० निहाल (द्विज), दे० (छ—६७) सं०१८९३ के लगभग
६९९	१२	भागवद्गीता या परमानन्दप्रबोध ले० आनन्दराम, दे० (छ—१२७) (ख—८४) नि० का० सं०१७९१; लि० का० सं० १८९३; वि० भ० गीताका अनु०
७००	१३	भ० गीता ले० हरिदास ब्राह्मण, लि० का० सं० १८४९, वि० संस्कृत गीताका अनु०, दे० (छ–२५६)
७०१	१४	भ० गीता ले० हरिवल्लभ ब्राह्मण, लि० का० सं०१८५८ दूसरी प्रतिका लि० का० सं० १९४९; वि०संस्कृत गीताका अनु०, दे०(छ—२६०) (ग—९०) (ज—११७)

❋ संकेताक्षरोंके साथ जो संख्याएं दी हैं, वे नोटिसोंकी संख्याएं हैं ।

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७०२	१५	भ० गीता ले०-अनन्य नि० का०सं० १८३९; लि०का०सं० १८११; वि० भ०गीताका अनु०, दे०(ज-४५)
७०३	१६	भ० गीता भाषा ले० अज्ञात, लि० का० सं० १७१८, वि० भ० गीताका अनु० । दे०(ख-११)
७०४	१७	भ० गीताकी टीका अन्यनाम भाषामृत,ले०भगवानदास, नि०का० सं०१७५६; लि०का०सं० १८११, वि० रामानुजाचार्यकृत भाष्यका भाषानु० । दे० (क-६१)
७०५	१८	भ० गीता भाषा ले०-रामानन्द. वि० भ० गीताका अनु० । दे० (ज-२५१ ए) सं० १११३ लगभग
७०६	१९	भाष्यप्रकाश ले०-कृपाराम, नि० का० सं०१८०८; वि० रामानुजाचार्यके गीता-भाष्यके अनुसार भाषानु० दे० (क-४६)
७०७	२०	अमर गीता ले०-कालीदास, वि० गोपियोंसे ऊधोका संदेश वर्णन । दे० (ज—१४४)
७०८	२१	महाभारत भाषा (अन्तर्गता गीता) ले० लखनसेन, लि० का० सं०१८७०; वि०महाभारतके आदि, उद्योग, भीष्म, द्रोण और गदापर्वका भाषा—पद्यानुवाद । दे० (ज-१६७)
७०९	२२	महाभारतकी कथा (अन्तर्गता गीता) ले० विष्णुदास, नि० का० सं० १४९२; लि० का० सं० १८२४; वि० महाभारतकी कथाका अनु०, दे०(छ—२४८)
७१०	२३	महाभारतदर्पण (अन्तर्गता गीता) ले० गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव (तीनोंने मिलकर बनाया), वि० महाभारत और हरिवंश पुराणका भाषानु०, दे० (क—६५)
७११	२४	महाभारतभाषा (अन्तर्गता गीता) ले०-सबलसिंह चौहान, लि०का०सं०१८९२, वि०महाभारतका भाषानु० (क—६६)
७१२	२५	महाभारत भाषा (अन्तर्गता गीता) ले०-नौ कवि (रामनाथ, अमृतराय, चंद्र, कुबेर, निहाल, हंसराज, मंगलराम, उमादास और देवीदित्ताराय) वि० महाभारतके १९ पर्वोंका भाषानुवाद । दे० (क-६७) सं० १८६२ के लगभग
७१३	२६	विज्ञानगीता ले०-केशवदास, नि० का० सं० १६६७ ; लि० का० सं० १८४७ ; वि० सांसारिक वस्तुओं और सुखोंकी असारताका योगवाशिष्ठके आधारपर वर्णन । दे० (क-५२) (क-२९) (क-१२७)
७१४	२७	शिवगीता भाषार्थ ले० जयकृष्ण पुष्करणा ब्राह्मण, जोधपुर; नि० का० सं० १८२५ ; लि० का० सं०१८९८, वि० शिवजीकी महिमा वर्णन; दे० (ग-९१)

परिशिष्ट (१) और (२) सं० १९५७ से १९६८ वि० तककी रिपोर्टोंके परिशिष्टोंमें आये हुए ज्ञात और अज्ञात कवियोंके ग्रन्थः—

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७१५	२८	गीतामाहात्म्य ले०-रामप्रसाद, सुनारनिवासी ... पता- ज. प. (२) / २९
७१६	२९	अर्जुनगीता ले० अज्ञात ... पता— छ. प. (२) / ९ लि० का० १८३३
७१७	३०	अष्टावक्रगीता ले० ,, ... ,, छ. प. (२) / १० लि० का० १८५७
७१८	३१	गीताचिन्तामणि ले० ,, ... ,, ज. प. (४) / १८

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण					
७१९	३२	गीतामाहात्म्य	ले० अज्ञात	...	पता-	छ. प.(२) / ७३	लि०का० १८४०
७२०	३३	भ्रमरगीता	,,	...	,,	ज. प. (४) / ९	
७२१	३४	भ० गीता	,,	...	,,	छ. प. (२) / २७, २८, २९, ३०	लि०का० १८९९, १८११, १८४४
७२२	३५	भ० गीतापुराण	,,	...	,,	छ. प. (२) / ३२	लि०का० १८१२
७२३	३६	भ० गीता प्रश्न	,,	...	,,	छ. प. (२) / ३१	
७२४	३७	रामरत्नगीता	,,	...	,,	ज. प. (४) / ९८	
७२५	३८	शिवगीता	,,	...	,,	ग. प. (१) / २८२	

(ख) ना० प्र० के आर्यभाषा-पुस्तकालय, काशीमें रक्खी हुई मुद्रित गीताएँ:—

क्रम सं०	पु० सं०	सूची नं०	विवरण
७२६	३९	२०८६	भ० गीता टी० पं० बांकेबिहारी शुक्ल प्र० भोलानाथ अग्निहोत्री, चौक, प्रयाग सं० १—१८६७ ई०
७२७	४०	३४०३	,, (पद्य, अ० ५) ले०—महेन्द्रनारायणचन्द्र, प्र० ग्रन्थकार, सुलसैना, पुर्णियां सं० १–१९०३ ई०
७२८	४१	६११३	,, अ० छोटेलाल पराशर, प्र० हरीराम भार्गव, जयपुर सं० १—१९१३ ई०
७२९	४२	*६५	,, टी० श्यामसुन्दरलाल प्र० वाराणसी प्रेस, काशी सं० १—१८७८ ई०
७३०	४३	*३२३७	,, अ० मन्नूलाल पाठक प्र० विद्यासागर प्रेस, काशी सं० १—१९२७ वि०
७३१	४४	*१२०७	,, अ० ज्वालाप्रसाद भार्गव प्र० सत्यप्रकाश प्रेस, आगरा सं० १—१८७७ ई०
७३२	४५	२००३	,, अ० अयोध्याप्रसाद खत्री, प्र० अनुवादकर्ता, जमींदार व सौदागर, मुजफ्फरपुर सं० १–१९०९ ई०
७३३	४६	११८४	भ० गीतारत्नमाला (भाग १) प्र० डी. के. पटेल, एंड कम्पनी, नं० ४, बम्बई सं० १–१९६२ वि०
७३४	४७	१९३६	भ० गीता टी० रघुनाथप्रसाद शुक्ल (वाक्यार्थबोधिनी) स० काशीनाथ शास्त्री प्र० किशुनदयालसिंह, काशी सं० १–
७३५	४८	*२४०१	भ० गीता टी० मोहिनीलाल गुप्त (वाक्यार्थबोधिनी) प्र० विक्टोरिया-प्रेस, काशी सं० १–१९५० वि०
७३६	४९	*१६२०	भ० गीता—शंकरमतप्रकाश अ० रामावतार ओझा, प्र० बाबू शिवप्रसादसिंह, कालिजियेट स्कूल, पटना सं० १—१८८० ई०
७३७	५०	१६९५	भ० गीता टी० मक्खनलाल शर्मा—सुबोधिनी अ० हरिवल्लभ शर्मा प्र० वेंक० प्रेस, बम्बई सं०–१९५० वि०

* अप्राप्य पुस्तकें।

श्रीगीता-भवन (कुरुक्षेत्र-पुस्तकालय) थानेसर, कुरुक्षेत्र

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७३८	१	भ० गीता (देवनागरी, गुटका) अन्वयांक दो० भा० टी० ४ भाग मू० २॥=)
७३९	२	भ० ,, बृहद्भागवतामृतम् (देवनागरी) टी० नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, श्रीशचीनन्दन गोस्वामी, ताडाशभूमि प्र० रामबहादुर वनमाली वृन्दावन प्रेस सं०१--४१९ गौराब्द, मू० ३।।।) पृ० १०३१
७४०	३	भ० गीता (देव०)
७४१	४	भ० गीतामाहात्म्य (देव०, गु०) मू० ॥=)॥
७४२	५	भ० गीता (बंगला) सं० ६--१९१४ ई० पृ० २६४
७४३	६	भ० गीता (तामिल) सं० १--१९२० ई० पृ० ३६६
७४४	७	भ० गीता (तेलगु) सं०--१९२२ ई० पृ० ३९४
७४५	८	भ० गीता (कनाड़ी) सं०--१९२३ ई० पृ० ४०३
७४६	९	विज्ञानदर्पण (उर्दू, निबन्ध ९ भाग) ले० मुन्शीलाल
७४७	१०	पैगाम युधिष्ठिर (उर्दू, निबन्ध, १० भाग)
७४८	११	भ० गीता (अंग्रेजी) म० मक्समूलर
७४९	१२	भ० गीता (अंग्रेजी)ले० सी० जिनराजदास प्र० टी. पी. सोसाइटी, अडयार, मद्रास सं० १--१९१२ ई० पृ० ३०
७५०	१३	भ० गीता (जरमन) मू० ४।=)
७५१	१४	भ० गीता (जरमन) मू० ७)
७५२	१५	भ० गीता (जरमन)
७५३	१६	भ० गीता (जरमन) मू० ४।=)
७५४	१७	भ० गीता (फ्रेंच) मू० ४।=)
७५५	१८	भ० गीता (बेलजियम) सं० १--[illegible] ई० पृ० [illegible]
७५६	१९	भ० गीता (डेनिश) सं० [illegible]--१९२० ई० पृ० १६०
७५७	२०	भ० गीता (स्वेडिश) सं०--[illegible] ई० पृ० [illegible]
७५८	२१	भ० गीता (स्पेनिश)
७५९	२२	भ० गीता (इटालियन) सं०--[illegible] ई० पृ० [illegible]
७६०	२३	भ० गीता (हालैण्डकी डच भाषा) सं०--[illegible] ई० मू० [illegible]) पृ० १४०
७६१	२४	भ० गीता (देवनागरी)
७६२	२५	कर्म गीता (देव०)
७६३	२६	भ० गीता (देव०) नरवैक--दर्शना
७६४	२७	भ० गीता (देव०) ले० पं० प्राणकिशन
७६५	२८	भ० गीता--भावार्थ-दीपिका (देव०)
७६६	२९	भ० गीता (देव०)
७६७	३०	भ० गीता (देव०)
७६८	३१	गीता सार (उर्दू)
७६९	३२	भ० गीता (उर्दू) ले० अनन्तराम
७७०	३३	भ० गीता (फारसी)
७७१	३४	भ० गीता (अंग्रेजी) टी० दुर्गासहाय

क्रम नं०	पु० सं०	विवरण
		१४. श्रीहनुमान पुस्तकालय, सलकिया, हावड़ा
७७२	⊛१	भ० गीता–नवपीयूषप्रवाह–भाष्य (अ० पहिला, प्रत्येक श्लोकका कई भाषाओंमें अर्थ) टी० १ हिन्दी २ बंगला ३ उर्दू ४ फारसी ५ अंग्रेजी-भाषानुवाद ६ आनन्दगिरि ७ श्रीधर-टीकासहित म० पं० आद्याप्रसाद मिश्र, ईश्वरगंगी नयी बस्ती, काशी मु० सी० पी० प्रेस, काशी सं०– १९०५ ई०
		१५. बड़ाबज़ार पुस्तकालय, सैयदसाली लेन, कलकत्ता
		(लिपि-देवनागरी)
७७३	१	भ० गीता या कृष्णबोध (केवल भाषा) ले० मुंशी हरीराम भार्गव, जयपुर (उर्दू 'कृष्णबोध') अनु० पं०छोटेलाल शर्मा, पहासू निवासी मु० जेल प्रेस, जयपुर सं०१–१९१३ ई०पृ० ७० (पुस्तका० नं०३८६)
७७४	⊛२	भ० गीता भाषाटीकासहित प्र०मु०भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता सं०१–१८९४ ई० पृ०२१६ (पु०नं० व० ४९)
७७५	३	भ० गीता (लिपि–बंगला, हिन्दू-शास्त्र भाग ८वाँ) स०रमेशचन्द्र दत्त (अनुवादसहित) पृ० १२१(पु० न०४७)
७७६	⊛४	भ० गीता सतसई ले० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (पु० नं०–ध०३६४)
७७७	५	फागुन गीता (शिक्षा, कबीर-पथ) ले० पं० जगन्नाथ शर्मा वैद्य, प्रयाग सं० १–१९४४ वि० पृ० १३ मू०)॥ (पु० नं०–का०१२८)
		१६. बड़ाबज़ार कुमार सभा, नं० १९३।२ हरीसन रोड, कलकत्ता
		(लिपि–देवनागरी ⊛ भाषा–हिन्दी)
७७८	१	अर्जुनगीता–भाषा (भ०गीताका पद्यानु०) ले० हरिवल्लभ मु० रामचन्द्र हकीम, रावनपाड़ा, आगरा सं० १–१९४० वि० पृ० १२८ (पु० नं० ९०७)
		१७. बंगीय-साहित्य परिषद्, २८३ अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता
		(लिपि–बंग ⊛ भाषा–बंगला)
७७९	⊛१	भ० गीता (१०८ वर्ष पूर्वकी मुद्रित) स० गंगाकिशोर भट्टाचार्य सं० १–१८२३ ई० करीब
७८०	⊛२	गीता-कौमुदी (पद्य)ले०राधेशचन्द्र सेठ बी०एल०मु०अरुण-प्रेस,कार्न०स्ट्रीट,कलकत्ता सं०२–१९१०ई०पृ०१७५
७८१	३	गीता-तत्त्व (निबन्ध) ले० श्रीमती ऐनी बिसेंट (अंग्रेजी) अ० अटलबिहारीसिंह बी० एल० प्र० थीयोसाफिकल सोसाइटी, कालेज स्कायर, कलकत्ता सं०–१३२७ बं० मू० ।।।)
७८२	४	सरल-गीता टी० सुरेन्द्रनाथ दत्त प्र० ग्रन्थकार, ८१ ग्रंड ट्रंक रोड, हावड़ा मु०कर्मयोग प्रेस, हावड़ा मू० १)
७८३	५	भ० गीता टी० शशिभूषन वन्द्यो० प्र० मु० श्रीमहाप्रभु बाड़ी, विश्वेश्वर-प्रेस. कालना (Kalna) सं०–४०१ गौराब्द मू० ।)
७८४	६	भ० गीता-समालोचना (निबन्ध)
७८५	७	भगवती-गीता (मूल, पद्य) ले०क्षेमेशचन्द्र रक्षित प्र० सुरेशचन्द्र रक्षित मु०चट्टेश्वरी प्रेस, चटगाँव सं०–१३१५बं०
		१८. संस्कृत-साहित्य-परिषद्, श्यामबाजार ब्रिज रोड, कलकत्ता
		(लिपि-बंग ⊛ भाषा–बंगला)
७८६	१	भ० गीता या अध्यात्म विज्ञान ले० पं० चन्द्रकुमार चट्टो०, प्र० रामचन्द्र चट्टो०, ३१ बलरामबसु घाट रोड, भवानीपुर, कल० सं० १–१३२६ बं० मू० २॥) पृ० ५२० (पु० नं० १२/१७६)
७८७	२	गीता भाषा–सारंग रंगदा (पद्य) ले० आनन्दीराम विद्यावागीश ब्रह्मचारी, गौड़देश-निवासी (१२२६ बं० की हस्त० प्रतिसे छपी) स० वसन्तरंजनराय विद्वद्वल्लभ प्र० गौड़ीय वैष्णव कार्या०, ६६ मानिकतला स्ट्रीट, कल० सं०१– पृ० ११० (पु० नं० ११/१७१)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
७८८	३	गीता-तात्पर्यनिर्णयः (लिपि देवनागरी, संस्कृत टीका) टी० १ आनन्दतीर्थ-गीतातात्पर्यनिर्णय २ जयतीर्थ मुनि-न्यायदीपिका ३ विठ्ठलाचार्यपुत्र श्रीनिवास-न्यायदीपिका किरणावली प्र० टी. आर. कृष्णाचार्य. कुम्भकोनम् मु० निर्णय०, बंबई सं० १-१९०५ ई० पृ० ३२३ (पु० नं० $\frac{११}{१७५}$)
		१९. राममोहन पुस्तकालय, २६७ अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता
		(लिपि-बंग * भाषा-बंगला)
७८९	१	भ० गीता (पद्य) ले० नारायणचन्द्रघोष प्र० हरिहरचन्द्र, ६६ गड़पार रोड, कल०, पृ० १६० (पु० नं० $\frac{१२६}{३}$)
७९०	*२	ब्राह्मधर्म गीता (ब्राह्मधर्म व्याख्यान) ले० श्रीदेवेन्द्रनाथ ठाकुर (पद्य) अनु० पं० प्रियनाथ शास्त्री प्र० मु० आदि ब्रह्मसमाज, ५५ अपर चितपुर रोड, कल० सं० १-१८०६ शक मू० ५) पृ० ३७० (पु० नं० १७१)
७९१	३	भ० गीता (पद्य) ले० हरिदास घोष प्र० सिद्धाश्रम, ४ घोषपाड़ा लेन, सलकिया, हावड़ा मू०॥-) पृ० १२५ (पु० नं० ३५२)
७९२	४	रामकृष्ण गीता (उपदेश; भाग १, २) प्र० रामकृष्ण पुस्त०, २०१ कार्न०, कलकत्ता सं० २-१३१८ बं० मू० ॥) पृ० १६०; सं० १-१३२० बं० मू० ॥) पृ० १८० (पु० नं० १६८ । १६९)
		२०. बान्धव पुस्तकालय, कलकत्ता
		(लिपि-बंग * भाषा-बंगला)
७९३	१	भ० गीता (पद्य) ले० जनैक बन्धु प्र० दुर्योधन पात्र, कलकत्ता सं०-१३१३ बं०
७९४	२	भ० गीता (पद्य) बंगला
७९५	३	परमकल्याण-गीता ले० परमहंस शिवनारायण स्वामी पता-सारस्वत पुस्त० कार्न० स्ट्रीट, कलकत्ता सं०-१३२७ बं० मू० १॥)
		२१. पेट्रियॉटिक पुस्तकालय, कलकत्ता
		(लिपि-बंग * भाषा-बंगला)
७९६	१	भ० गीता संवादात्मक बंगानुवाद
७९७	*२	भ० गीता-भाषा प्र० भुवनचन्द्र मजूमदार, कलकत्ता (?) सं०-१३१० बं०
		२२. चैतन्य पुस्तकालय, बिडन स्ट्रीट, कलकत्ता
७९८	१	गीतासार टी० भूधर चट्टो०, कलकत्ता सं० ४-१९०१ ई० मू० ३।)
७९९	२	भ० गीता टी० वैष्णवचरण बैसाक
८००	३	भ० गीता टी० कालीप्रसन्न सरकार (अंग्रेजी और बंगला)
८०१	४	भ० गीता टी० जीवनकृष्णराय
		२३. युनाइटेड रीडिंग रूम, कलकत्ता
८०२	१	भ० गीता स० मथुरानाथ तर्करत्न
		२४. बागबजार पुस्तकालय, कलकत्ता
८०३	१	भ० गीता टी० गौरीशंकर तर्कवागीश (पुस्तका० नं० २१०)
		२५. बागबजारके पास एक बंगला पुस्तकालय, कलकत्ता
८०४	१	भ० गीता टी० गंगाकिशोर भट्टा०
८०५	२	भ० गीता टी० ब्रजवल्लभ विद्यारत्न प्र० भोलानाथ मुखो० (पुस्तका० नं० १६६)
८०६	३	भ० गीता टी० शशिभूषण बन्द्यो० (पुस्तका० नं० १७१)

परिशिष्ट नं० ४

निम्नलिखित गीता-सम्बन्धी साहित्य लोगोंकी सूचना और बड़े सूचीपत्रोंसे चुनकर लिखा गया है। ये ग्रन्थ अभी गीता-पुस्तकालयके संग्रहमें उपलब्ध नहीं हो सके हैं, गीता-प्रेमी सज्जनोंसे निवेदन है कि इन ग्रन्थोंके मिलनेका पूरा पता हमें लिखनेकी कृपा करें और संग्रहके लिये ग्रन्थोंको भेजनेकी चेष्टा करें:—

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
		1. UNITED STATE CAT. BOOKS IN PRINT. (Jan. 1.--1928)
807	1	Bh. G.-Condensed into English verse by Romesh Dutt. (Temples classics)
808	2	Bh. G.-By William W. Atkinson. Pub. Yogi Pub. Society., Chicago. U. S. A.
809	3	Bh.G.-By S. N. Ayer.
810	4	Bh. G.-By C. Jinarajadasa. Pub. Theosophical Press. Price-10C.
		2.WHITAREIS REFERENCE CAT. OF CURRENT LIT. 1928.
811	1	Bh. G.- English Prose. Trans. with notes, chapter on Hindu philosophy Index etc. 8 vo. Hertford. 1855.
812	2	Bh. G.-Theosophy of the Hindus; a review of the Bh. G. by an Englishman. 8 vo. pp. 68. Madras 1863.
		3. CLASSIFIED LIST OF 8000 GUJRATI BOOKS. 1928.
		Bh. Gita—Gujrati.
८१३	१	भ० गीता टी० कवि नर्मदाशंकर लालशंकर प्र० गुजराती प्रेस, बम्बई सं०–१८८९ ई० मू० १)
८१४	२	गीतामां ईश्वरवाद ले० दामोदर ओखतचन्द मू० ।।।)
८१५	३	भ० गीता–भाषान्तर टी० शास्त्री हरिदत्त कल्याशंकर. प्र० गुजराती प्रेस. बम्बई. सं०–१८९४ ई० मू० ।।।)
८१६	४	भ० गीतानो सार–सद्धर्मवाचन संग्रह ले० नारायण हेमचन्द्र, प्र० निर्णय०. बम्बई. सं०–१८८० ई०
८१७	५	गीता-परिचय टी० काशीभाई रेन्दलकर, बम्बई १९१६
८१८	६	भ० गीता टी० कवि प्रेमानन्द (गुज० पद्यानु०) प्र० मकजी भीमभाई नायक, सं०–१८९८ ई०
८१९	७	भ० गीता–टी० हरिलाल नरसिंहराम शास्त्री (पद्यात्मक भाषान्तर) मू० ।-)
८२०	८	भ० गीता०–ले० हरिलाल नरसिंहराम शास्त्री मू० ।।।)
८२१	९	भ० गीता–पद्यरत्न स० कल्याणजी रणछोडजी व्यास, अहमदाबाद (?) मू० ।।-)
८२२	१०	भ० गीता–भाषान्तर टी० मणिशंकर गोविन्दजी वैद्यशास्त्री मू० १)
८२३	११	भ० गीता–भाषान्तर टी० विष्णुबावा
८२४	१२	भ० गीता–वनमालीदास लधाभाई मोदी
८२५	१३	भ० गीता–टी० गनपतराम मानाभाई भट्ट, बम्बई. मू० २।)
८२६	१४	भ० गीता–टी० पं० रघुनाथ सीताराम, मू० १)
८२७	१५	भ० गीता-पद्यरत्न टी० नाथूराम शर्मा, मू० १।।)
८२८	१६	भ० गीता–अध्ययन, टी० मणिलाल नाथूभाई जोसी मू० ।।।)
८२९	१७	भ० गीता–टी० विठ्ठलदास राजाराम वकील
८३०	१८	भ० गीता–टी० मणिलाल छोटालाल त्रिवेदी मू० १)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
८३१	१९	भ० गीता–टी० प्राणजीवन उद्धवजी ठक्कर मू० ॥)
८३२	२०	भ० गीता–टी० नरहरि (प्राचीन काव्यमाला सिरीज़)
८३३	२१	भ० गीता–टी० इच्छाराम सूर्यराम देसाई (हिन्दी अनुवाद) स०–१८८९ ई० बम्बई मू० १)
८३४	२२	भ० गीता-(शंकरानन्दी टीकासहित, भाग २, अ० १२) टी० मोतीलाल रविशंकर घोड़ा (सयाजी साहित्यमाला सिरीज़, बड़ोदा राज्य) प्र० एम० सी० कोठारी, बड़ोदा सं० १–१९२८-२९ ई० मू० ४।।।=) (भाग ३ रा छप रहा है)

4. A LIST OF GITAIC-LITERATURE.

(Only List Received form Kali Krishna Bhattacharya, Pleader-Municipal Act Court, Town Hall, Calcutta.)

(A) English-Language.

835	1	The Gita with an index by A. K. Sitaram Shastri.
836	2	Vedant Philosophy as revealed in the Upnishad and the Gita by S. S. Mehta.
837	3	The Gita, by Bhandarkar.
838	4	Essays on the Gita, by Lajpat Rai.
839	5	Epic India, by C. V. Vaidya.
840	6	Shri Krishna. } By Bepin Chandra Pal.
841	7	Soul of India.
842	8	Ethics of India (Yale University Press.)
843	9	Great Epic of India. } By Hopkins.
844	10	Religion of India.
845	11	Avadhuta Gita, by Kelkar.
846	12	Hindu Ethics by Mackenzie.
847	13	Hindu Philosophy of Conduct, by M. Rangachary.
848	14	Religion of India, by Barth.
849	15	Indian Theism, by Macnicol.
850	16	Indian Philosophy, by S. A. Desai.
851	17	Indian Philosophy, by Radhakrishnan.
852	18	System of Vedantic Thought and Culture, by M. N. Sirkar. (Calcutta University)
853	19	Redemption, Hindu and Christian, by Sydney Cave.

(B) बंगला-भाषा

८५४	२०	गुह्यतत्त्वामृत ले० सोहंसिद्ध वैद्यनाथ संन्यासी, २७० गणेश्वर, काशी
८५५	२१	भारते विवेकानन्द (निबन्ध)
८५६	२२	सिद्धजीवनी ले० ब्रह्मानन्द भारती, सं०२-
८५७	२३	कृष्णचरित्र, धर्मतत्त्व ले० बंकिमचन्द्र चट्टो०
८५८	२४	भक्तियोग, कर्मयोग ले० अश्विनीकुमार दत्त
८५९	२५	भक्तियोग ले० विवेकानन्द
८६०	२६	हिन्दू (द्वितीय भाग) ले० ज्ञानेन्द्रनाथ चट्टो०
८६१	२७	सत्संग (२) ले० बेचाराम लाहिड़ी

क्रम सं०	पृ० सं०	विवरण
८६२	२८	धर्मेर साधन ओ तत्त्व ले० धीरेन्द्रनाथ चौधरी
८६३	२९	गीतार आभास ले० हरिप्रसाद वसु पता—शान्तिनिकेतन, बोलपुर
८६४	३०	भ० गीता ले० वरदाराय, बंगवासी आफिस, ६ भवानीदत्त लेन, कल०
८६५	३१	गीतारत्न पता—१०५ पंचानन टोला रोड, हवड़ा
८६६	३२	भ० गीता ले० पं० लक्ष्मण शास्त्री (विस्तृत व्याख्या), काशी
८६७	३३	गीतामृत ले० सुवर्णप्रभा सोम
८६८	३४	गीतासप्तक } ले० यदुनाथ मजूमदार
८६९	३५	गीतात्रय }
८७०	३६	गीतामाहात्म्य ले० दुर्योधन पात्र
८७१	३७	प्रकृतितत्त्व ओ गीता-रहस्य ले० ज्ञानानन्द शास्त्री
८७२	३८	गीता (शंकर-भाष्य) विवेकानन्द
८७३	३९	श्रीकृष्णगीता ले० विश्वेश्वर भागवताचार्य्य
८७४	४०	ओंकारगीतार आध्यात्मिक व्याख्या ले० नवीनानन्द स्वामी
८७५	४१	गीतांकुर ले० प्यारीचन्द्र मित्र
८७६	४२	पंचरत्न गीता ले० दिनेश भट्टाचार्य्य
८७७	४३	भ० गीता ले० नटवर चक्रवर्ती
८७८	४४	भ० गीता ले० नवकुमार मजूमदार
८७९	४५	भ० गीता ले० प्रकाशसिंह
८८०	४६	भ० गीता ले० प्रतापराय
८८१	४७	स्वराज गीता ले० अनन्तकुमार मैत्र
८८२	४८	भ०गीता प्र० बैसाक एण्ड सन्स
८८३	४९	भ० गीता ले० रमेश काव्यतीर्थ ओ राधाकिशोर मुखो०
८८४	५०	गीतामृतरस ले० लालमोहनराय
८८५	५१	भ० गीता ले० शरच्चन्द्र चक्रवर्ती
८८६	५२	पाँचजन्य ले० सुरेशचन्द्र चौधरी
८८७	५३	भ० गीता ले० हरिहर सेठ
८८८	५४	गीता समूहेर टीका (संस्कृत) ले० गंगाधर सेन
८८९	५५	भ० गीता ले० अविनाश वन्द्यो०
८९०	५६	भ० गीता ले० कालीकृष्ण मुखो०
		(C.) समाचार-पत्रोंसे गीता-निबन्ध
८९१	५७	'भारतवर्ष' (मासिक पत्र) पता—२०३ । १ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता
		वर्ष १ — खंड १ — पृष्ठ ८८७
		,, १ ,, २ ,, ३१५
		,, ४ ,, १ ,, ६४७
		,, १३ ,, २ ,, ३२१,७०१
		,, १४ ,, २ ,, ४८१
		,, १५ ,, १ ,, ३६१
		,, १५ ,, २ ,, ६४१,८०१
		,, १६ ,, १ ,, १, ६८१

क्रमसं०	पृ०सं०	विवरण
८९२	५८	'प्रवासी', पता—९२ अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता—
		वर्ष २३ — खंड २ — पृष्ठ २०४ (गीताधर्म सं० १३१२ बं०)
		,, २४ ,, १ ,, २१२, ७३१
		,, २८ ,, १ ,, ३४७, ५०६, ८०२
		,, २८ ,, २ ,, २००, ३२६
८९३	५९	'वसुमती', पता—१६६ बहुबाजार, कलकत्ता —
		वर्ष १ — खंड १ — मुक्ति ओ भक्ति
		,, १ ,, २ पृष्ठ ३३४
		,, २ ,, २ ,, ७७८
		,, ३ ,, १ ,, ३७१
		,, ५ ,, १ ,, ८९
		,, ५ ,, २ ,, ३७
		,, ६ ,, २ ,, ४१
		,, ७ ,, १ ,, ५३२
		,, ७ ,, २ ,, ९०
८९४	६०	'साहित्य संवाद'—गीतार साधना; सं०—१३२१ बं० पृष्ठ ३८०
८९५	६१	'बङ्गीय साहित्य-परिषद् पत्रिका' कलकत्ता—महाभारतेर समय; वर्ष २३ पृष्ठ १४७
८९६	६२	'विश्ववानी', १३२५ बं० वैशाख (?) मे आरम्भ; अनिलवरणरायेर—गीताव्याख्या।
८९७	६३	'नवयुग', पता—५५ कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता—वर्ष ३ खंड १—गीतापरिचय।
८९८	६४	'ब्रह्मविद्या', सं०—१३२३ बं० श्रावण इत्यादि— तत्त्वविद्या ओ मुक्ति
८९९	६५	'साधुसंवाद' (मासिकपत्रिका)
९००	६६	'साधना'—वर्ष २ पृष्ठ २६—क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग
९०१	६७	'बङ्गलक्ष्मी', वर्ष ३ पृष्ठ ८७३
९०२	६८	'वामाबोधिनी', (मासिक) गीतासारेर व्याख्या
९०३	६९	'विचित्रा', पता ४८ पटेलडांगा स्ट्रीट, कलकत्ता—वर्ष १ खंड १ पृ० ९९४; वर्ष २ खं० १ पृ० ३२६
९०४	७०	'हिन्दूमिशन', वर्ष १ पृष्ठ १४, २५, ७३, ८१, ११४, ११५, १२६ वर्ष २ पृ० ४
९०५	७१	'आत्मशक्ति', पता—११ ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट, कलकत्ता— वर्ष १ खंड ३ पृष्ठ ४० वर्ष २ खं० ३१ पृ० ५
		,, १ ,, ८ ,, ३० ,, ३ ,, ५ ,, ३
906	72	'International Journal of Ethics' July-1911 (Article on the Gita by M. Radhakrishnan.)
907	73	'Modern Review' 120 Upper Circular Rd., Calcutta. July-1914; Vol.39.pp.184. ,, 41.pp.364.
908	74	'Dawn', (Magazine.)

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण

५. कुछ लोगोंकी सूचनानुसार मिला हुआ विवरणः—

१- भ० गीता * संस्कृत-भाषा

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
९०९	१	भ० गीता–टी० पद्मनाभाचार्य (भावचन्द्रिका) पता–सी०एम० पद्मनाभाचार्य, हाईकोर्ट वकील, कोयमवटोर, मद्रास, मूल्य ६) (शान्तिनिकेतन, बोलपुरमें रक्खी)
९१०	२	भ० गीता–(केवल एक अध्याय) टी० श्रीविट्ठलेश प्रभु पता–श्रीबालकृष्ण संस्कृत पुस्तका०, बड़ा मन्दिर, बम्बई
९११	३	भ० गीता-टी० यामुन मुनि-गीतार्थसंग्रह (पद्य)
९१२	४	भ० गीता–(भीष्मपर्वसे) टी० प० रत्नगर्भ–संस्कृत टीका
९१३	५	भ० गीता-(,,) टी० पं० गणेश–संस्कृत टीका (गाणेशी टीका)
९१४	६	भ० गीता (,,) टी० अर्जुन मिश्र या पार्थ सारथि (भारतदीपिका–संस्कृत टीका) (स्थिति-काल पं० नीलकंठसे पूर्व, केवल १० पर्वकी टीका प्राप्त)
९१५	७	भ० गीता (भीष्मपर्वसे) टी० चतुर्भुज मिश्र (भारतप्रकाश—संस्कृत टीका)
९१६	८	भ० गीता (,,) टी० सर्वज्ञ नारायण (भारत-अर्थप्रकाश—संस्कृत टीका)
९१७	९	भ० गीता (,,) टी० स्वा० विमलबोध दुर्घटार्थप्रकाशिनी–संस्कृत टीका)
९१८	१०	भ० गीता (,,) टी० पं० रामकृष्ण (विरोधार्थ-भंजिनी-संस्कृत टीका)
९१९	११	भ० गीता (,,) टी० वादीराजतीर्थ (लक्षाभरण–संस्कृत टीका)
९२०	१२	भ० गीता (,,) टी० विषमपदविवरण-संस्कृत टीका
९२१	१३	भ० गीता टी० पं० मोहनलालजी महाराज (हनुमत्-भाष्यपर टीका)

२-भ० गीता * हिन्दी-भाषा

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
९२२	१	गीता-कर्मयोग टी०पं०नरोत्तमव्यास (गीतोपन्यास-टीका) प्र०हिन्दू-साहित्य-प्रचारक-माला, कलकत्ता मू०१॥)
९२३	२	साधन-संग्रह (निबन्ध) ले० पं० भवानीशंकरजी, पता–रघुनन्दनप्रसादसिंहजी, राजनगर, दरभंगा
९२४	३	भ० गीता टी० मैथिल-सम्प्रदायी पता–कन्हैयालाल कृष्णदास, रामेश्वर-प्रेस, दरभंगा मूल्य १)
९२५	४	भ० गीता-सारार्थ गद्य, पता–कन्हैयालाल बुकसेलर, तिरपोलिया बाजार, जैपुर
९२६	५	भ० गीता टी० गंगाप्रसाद तालुकेदार, हरदासपुर, रायबरेली, बिना मूल्य
९२७	६	भ० गीता टी० पं० रामशास्त्री (१ संस्कृतभाष्य–२ हिन्दी भाषाटीका) गोपालनगर पो० रउती, बलिया मु० सत्यसुधाकर प्रेस, पटना मू० ३॥)
९२८	७	भ० गीता (सर्वदेशीय टीका) मु० राधारमण प्रेस, कांदेवाडी, बंबई
९२९	८	गीतार्थपद्यावली ले० शिवचन्द भरतिया, बम्बई
९३०	९	भ० गीता टी० छुट्टनलालजी, लोछमीनारायण भूतमहल, उदयपुर } पता–ठा० श्रीचतुरसिंह करजालीकी हवेली, उदयपुर, मेवाड़
९३१	१०	भ० गीता टी० मारवाड़ी-भाषा, धामनगांव } पता–ठा० श्रीचतुरसिंह करजालीकी हवेली, उदयपुर, मेवाड़
९३२	※११	भ० गीता–हिन्दी, पता–इंडियन बुक साप, काशी मूल्य २)
९३३	१२	भ० गीता टी० पं० रामेश्वरदत्त शर्मा पता–भार्गव पुस्तकालय, काशी
९३४	१३	भ० गीता टी० भाषाटीका
९३५	१४	भ० गीता का स्वयंविमर्श–संहिता टी० स्वयं शर्मा (स्वयंप्रकाश-भाष्य) पता–ग्रन्थकार, नं० ६।१।१ केदारघाट, काशी

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
९३६	१५	भ० गीता (अ० १२ वां) टी० सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला', अयोध्या प्र० खड्गविलास-प्रेस, बांकीपुर मू० १)
९३७	१६	धर्मतत्त्व (निबन्ध) ले० बंकिमचन्द्र चट्टो० अ० महावीरप्रसाद गहमरी प्र० भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता मू० ॥≠)
		३—भ० गीता* मराठी-भाषा
९३८	१	भ० गीता टी० जीवन्मुक्ति-मराठी टीका
९३९	२	भ० गीता टी० साकीबद्ध ,, ,,
९४०	३	भ० गीता टी० आर्याबद्ध ,, ,,
९४१	४	भ० गीता पंचरत्नी टी० १ रामदासजी २ तुकारामजी ३ सुरा सरदार ४ पोरोबा आदि, पता—मराठी पुस्तक-विक्रेता, नासिक
९४२	५	ज्ञानेश्वरी टी० नारायण रामचन्द्र सोहनी, बम्बई १८९० ई० पृ० ५९०
९४३	६	भ० गीता टी० नारायण रामचन्द्र सोहनी (गद्य अर्थ)
९४४	७	भ० ,, टी० कृष्णाजी नारायण आठल्ये प्राकृत (गद्य)
९४५	८	भ० ,, (भजन प्रभातीमें) टी० गुरुदेव दत्तात्रेय (बड़ोदे)
९४६	९	भ० ,, टी० पर्वते—प्राकृतअर्थ
९४७	१०	भ० ,, टी० भास्कर दामोदर पालंदे (साक्या)
९४८	११	भ० ,, टी० अज्ञात-आर्या (गीतार्थबोधिनी टीका)
९४९	१२	भ० ,, टी० लक्ष्मणनारायण साठे
९५०	१३	भ० ,, (दृष्टान्तनिर्धार नामक प्रकरणसे) ले० रमावल्लभदास, पता—कृष्णदास सुमानगोपाल उभयकर, नारायणपुर, हुबली
९५१	१४	गीता-परिचय ले० र० गो० सिरवळकर बी० ए० पता—३८१ शनि०, पूना मू० –)
९५२	१५	सुबोध आर्या-गीता ले० पु० रो० अवलेगकर, बीड (निजाम स्टेट) मू० ।)
९५३	१६	लोकमान्यके धार्मिक विचार (गीता-निबन्ध) ले० लो० तिलक, पता—तिलकबन्धु, गंकशादबावा, पूना
९५४	१७	गीतातत्त्व टी० वामन पंडित—मराठी अनु०, नासिक १८७८ ई० पृ० ५४
९५५	१८	गीता ले० मोरो सदाशिव, बंबई १९०४ ई० पृ० १००
९५६	१९	गीतार्थ-मञ्जरी ले० शिवराम भास्कर काण, रत्नागिरि १८६८ ई० पृ० १२५
९५७	२०	गीतासुधा टी० भास्कर दामोदर पालान्दे (पद्यानुवाद तथा टीका) बम्बई सं० १८७३ ई०
९५८	२१	ज्ञानेश्वरी टी० रावजी श्रीधर गोन्धळेकर, पूना १८७८ ई०
९५९	२२	ज्ञानेश्वरी स० तुकाराम तात्या, बम्बई १८९७ ई० पृ० ५१०
९६०	२३	भ० गीता टी० सामजभट्ट (पद्यानुवाद) पलिपन १८७१ ई० पृ० ५७
		४—भ० गीता* गुजराती-भाषा
९६१	१	भ० गीतानो सार-पद्यानुवाद ले० भानुकवि, बम्बई १८९८ ई० पृ० १५०
९६२	२	गीतानो आत्मा ले० प्र० ॐ सागर ज० दा० त्रिपाठी, श्रीक्षेत्र, सरसेज, अहमदाबाद मू० ॥।)
९६३	३	भ० गीता टी० हरिशंकर कल्याणशंकर प्र० वेदधर्म सभा कार्यभारमण्डली सं० १९४४ वि० मू० ॥।≈)
९६४	४	भ० गीता टी० शास्त्री महाशंकर ईश्वरजी पता—जमुनादास कल्याणजी भाई, राजकोट मू० ॥)
९६५	५	भ० गीता (अमृततरङ्गिणीका गुजराती अनुवाद) अ० बालूलाल नारायणदास गांधी, एम. ए., एल-एल.बी. प्र० भक्तिग्रन्थमाला कार्या०, रीची रोड नं० ११० अहमदाबाद सं० १–१९१९ ई० मू० १॥)

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१६६	६	भ० गीता धर्मानुशासनम् ले० स्वामी शंकराचार्य त्रिविक्रमतीर्थजी पता-शारदापीठ ग्रन्थ० कार्या०, अह० बिना मूल्य
१६७	७	भ० गीता टी० स्वा० आत्मानन्द सरस्वती (शांकर-भाष्यानुवाद), नांदोद संस्थान-राजपीपली, पता-युनाइटेड प्रिंटिंग ऐंड जेनरल एजेन्सी, अहमदाबाद मू० ३)
१६८	८	भ० गीता प्र० शंकरलाल बुलाकीदास, रीची रोड, अह० मूल्य ॥।)
१६९	९	गीता तात्पर्य ले० श्रीविट्ठलेश दीक्षित टी० पं० रमानाथ शास्त्री (गुजराती अर्थ) मू० -)॥ पता-- बालकृष्ण पु०, बड़ामन्दिर, बम्बई
१७०	१०	गीता तात्पर्य (गुजराती) भ० प्रो० मगनलाल गणपतिराम एम० ए०, दक्षिण कालेज, पूना
१७१	११	भ० गीता पञ्चरत्न टी०जयकृष्ण महाराजटीका मू० ७) } पता-जे.एम.पंड्या, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई २
१७२	१२	महाभारत (वल्लभराम व्यासकृत पद्यमें) मू० ६)
१७३	१३	भ० गीता-समश्लोकी टी० भारतमार्तण्ड पं० गट्टूलालजी } पता-कृष्णदास नारायणदास एन्ड सन्स बुकसेलर, नानावट (सूरत)
१७४	१४	भ० गीता-तत्त्वबोधिनी (संस्कृत भाषा-गुज० लिपि)
१७५	१५	भ० गीता-मगनलाल गणपतराम शास्त्री एम. ए.
१७६	१६	भ० गीता-शांकरभाष्य स० हरिरघुनाथ भागवत, पूना मू० २)
१७७	१७	भ० गीता-बालबोधिनी टीका मू० २)
१७८	१८	भ० गीता-चिद्घनानन्दी टी० गुजराती अनुवाद प्र० गुजराती प्रेस, बम्बई

५ भ० गीता * बंगला-भाषा

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण
१७९	१	भ० गीता या श्रीकृष्णशिक्षा (भाग २) श्रीधरीटीकानुवाद स० विहारीलाल सरकार बी. एल.
१८०	२	भ० गीता टी० तुरीय स्वामी-व्याख्या
१८१	३	भ० गीता-ज्ञानानन्दलहरी षट्चक्र पता-भारत पुस्तका०, ११७ अपर चितपुर रोड, कल० मू० ।।।)
१८२	४	भ० गीता-स० मुरारजी मोहन मुखो०, कल० मू० ।-)
१८३	५	भ० ,, स० नगेनचन्द्र सेन पता-सन्याल कं०, २५ रामबगान स्ट्रीट, कलकत्ता
१८४	६	भ० ,, स० ध्रुवानन्द गिरी प्र० नगेन्द्रनाथ चक्र० (?)
१८५	७	गीतामृत (पद्य) म० सतीशचन्द्र वन्द्यो० पता-कात्यायनी बुकस्टाल, चितपुर रोड, कलकत्ता मू० ॥)
१८६	८	भ० गीता-ले० रासलालदास चक्रवर्ती प्र० नरसिंहकुमार घोष, कल० (?)
१८७	९	भ० गीता-ले० खगेन्द्रनाथ शास्त्री पता-भागवत प्रेस, कलकत्ता
१८८	१०	भ० गीता-ले० स्वामी मुक्तेश्वर गिरि, नं०२ रामघाट लेन, श्रीरामपुर, हुगली (दूसरा पता-ज्योतिर्विद्याधिराज कृष्ण चक्रवर्ती, ज्योतिष कार्या०, पुरलिया, मेदिनापुर)
१८९	११	गीताय-स्वराज्य ले० त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती प्र० एस. सी. पाकासी, कलकत्ता मू० १)
१९०	१२	भ० गीता-माध्व भाष्य पता-छात्र पुस्तका०, निवेदिता लेन, बागबजार, कल०
१९१	१३	भ० गीता-टी० परमेश्वरदास, कल० सं०-१९१३ ई० पृ० ३३०
१९२	१४	भ० गीता (अ० २ से १३) टी० १ शंकर २ आनन्दगिरी ३ श्रीधर-टीका ४ बंगानु०; कल०, सं०१८५८ई० पृ० ४५५
१९३	१५	भ० गीता-रामानुज-भाष्य, श्रीधर-टीका, बंगानु० (पृ० ४ से २१ तक अपूर्ण) पृ० १९२

क्रमसं०	पु०सं०	विवरण
९९४	१६	भ० गीता-(मूल, श्रीधर-टीका) टी० गोपालचन्द्र शर्मा-बंगानु०, कल० १८८५ ई० पृ० २१६
९९५	१७	भ० गीता-(मूल, शंकर, श्रीधर-टीका) टी०माधवचन्द्र चूड़ामणि-बंगानु०(अधूरा), ढाका सं० १८८२-८६ई०
९९६	१८	भ० गीता-मूल, श्रीधर-टीका तथा बंगभाषानु०, कल० सं० १८८६ ई० पृ० २२६
९९७	१९	गीताकी व्याख्या और इसकी शिक्षा ले० भूतनाथ सरकार, कल० १९१४ ई० पृ० ८०
९९८	२०	गीता-काव्य-(मूल सह) ले० पंचानन अधिकारी पद्यानु०, बनारस, १९१० ई० पृ० १६५
९९९	२१	गीता-लहरी- (पद्यानु०, स्वरयुक्त) ले० योगेन्द्रलाल चौधुरी, कल०, १९११ ई० पृ० १६१
१०००	२२	गीता-संगीत ले० उमेशचन्द्र वन्द्यो०-बंगपद्यानु०, मिदनापुर, १९१० ई० पृ० १६०
१००१	२३	गीतावली- ले० ब्रह्मानन्द चट्टो० कल०, १८५९ ई० पृ० ४८
		६-भ० गीता* उड़िया-भाषा
१००२	१	भ० गीता (महाभारत-अन्तर्गत; रचनाकाल १४३५ से १४६९ई०) आदि कवि शूद्र मुनि शारलादासकृत
१००३	२	भ० गीता-ले० कवि बलरामदास कायस्थ, पुरी (रचनाकाल १५०० ई०)
१००४	३	भ० गीता-टी० आचार्य हरिदास-उत्कल अनु० (श्रीधरी सह) } पता-शिवदत्तराय भोलानाथ साह,
१००५	४	भ० गीता-ले० जगबन्धुसिंह वकील (पद्य) } लाइन्स गेट, पुरी
१००६	५	भ० गीता-ले० पं० त्रिलोचन मिश्र, भूतपूर्व डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स, सम्बलपुर (उड़ीसा)
१००७	६	भ० गीता-ले० पं० बिहारीलाल काश्मीरी, कटक
		७-भ० गीता * तामिल-भाषा
१००८	१	भ० गीता ले० महामहो० चेटलुर नरसिंहाचारी स्वामी (विशिष्टाद्वैतमतानुयायी व्याख्या) पता-निगम परिमल आफिस, मालकुराममन्दिरम्, माउंट रोड, मद्रास (मुद्रित)
१००९	२	भ० गीता ले० एम. आर. जम्बूनाथ पता-चूडान कं०,१४ पर्णायाप्पान स्ट्रीट, साउकार पेठ मद्रास
		८-भ० गीता * तेलगु-भाषा
१०१०	१	भ० गीता (तेलगु-मुद्रित) ले० टी० ई० श्रीनिवासाचार्य. पता-टी० ई० सत्तगोपालाचारियर, बी० ए०. बी० एल०, एडवोकेट-तिरुप्पापुलियर
१०११	२	भ० गीता और तात्पर्य-मू० ।।)
१०१२	३	भ० गीता (मूल और शंकर-भाष्य)Original. मू०१) } पता वी०रामस्वामी शास्त्री,२१२इस्पलेनेड, मद्रास
१०१३	४	भ० गीता-सारसंकीर्तनम् मू० ≠)
१०१४	५	भ० गीता-गूढार्थदीपिका टी० परमहंस बालसुब्रह्मण्य ब्रह्मस्वामी पता-मदेती सम्यासय्या एण्ड सन्स, बुकसेलर, राजमहेन्द्री
		९-भ० गीता * मलायालम्-भाषा
१०१५	१	भ०गीता-भाष्य अ०ए० गोविन्द पिल्लाइ,रिटायर्ड हाइकोर्ट जज,त्रिवन्द्रम,पता-भारतविलासम्प्रेस,ट्रीचर(S.I.)
		१०-भ० गीता * उर्दू-भाषा
१०१६	१	भ० गीता- ले०श्रीतोताराम 'शायां' कवि
१०१७	२	कृष्णगीता पता-वैदिक पुस्तका०, मुरादाबाद मू० ।)
१०१८	३	भ० गीता-ले०बजरंगसहाय मु० इस्लामी प्रेस, काठका पुल, पटना सं०-१९२१ ई०

क्रम सं०	पु० सं०	विवरण	
१०१६	४	कदीम भ० गीता ध० सिद्धान्तभूषण श्रीनीकान्त शर्मा शास्त्री, भारत पुस्तका०, सरगुधा, माहपुर सं०-१६२५ई०	
१०२०	५	भ० गीता-ले० तोलाराम, पता-लाजपतराय एंड सन्स, लाहोर मू० ।≈)	
१०२१	६	भ० ,, टी० मुंशी लक्ष्मीनारायण तहसीलदार, मिर्जापुर सिटी	
१०२२	७	भ० ,, टी० मुंशी श्यामसुन्दरलाल, पता-नवल०, लखनऊ	
१०२३	८	भ० गीता (पद्य) ले० घासीराम मू० ॥)	पता-दौलतराम एंड सन्स, लाहोरी गेट, लाहोर
१०२४	६	भ० ,,-ले० फलक	
१०२५	१०	भ० ,,-कृष्णज्ञान मू० १)	
१०२६	११	भ० ,,-फैजी कृत फारसी गीताका अनुवाद मू०॥)	
१०२७	१२	भ० गीता अफक कृत पता-नारायणदत्त सहगल कं०, लाहोरी गेट, लाहोर मू० ।)	
१०२८	१३	भ० गीता-ले० पन्नालाल प्र० हीरालाल भार्गव मु० हीरालाल प्रेस, रामनिवास बाग, जयपुर	
१०२६	१४	भ० गीता सं० १-१८७७ ई० सियालकोट पृ० ७२	
१०३०	१५	भ० गीता० टी० व्रजलाल-हिन्दी पद्यानु०, लाहोर १८७४ ई० पृ० १०४	
१०३१	१६	माहात्म्य अध्याय भ० गीता ले० व्रजलाल, बुलन्दशहर १८७६ ई० पृ० ५६	
१०३२	१७	कृष्णबोध ले० मुंशी हरीराम भार्गव, जयपुर	

११-भ० गीता * फारसी-भाषा

१०३३	१	भ० गीता टी० गुलशने राज
१०३४	२	भ० गीता ले० दाराशिकोह-'सिरर् ए अकबर'

12-Bh. G. * English Language.

1035	1	Bh. G. by Wilkinson.	
1036	2	A general view of the doctrine of Bh. G. by M. Cousin.	
1037	3	Bh. G. by J. M. Chatterji. Pub. Trubner & Co., London, Ed. 1888.	
1038	4	Priority of the Vedant Sutras over the Bh. G. by Prof. T. R. Amalnerker.	
1039	5	Our Social Problem of Gita, by K. S. Ramswami. From: Vani Vilas Press, Srirangam.	
1040	6	An Epitom of the Bh. G.	By C. V. Narsingh Rao Sahib, B. A. B. L., Triplicane. Madras. (?)
1041	7	The Ethical ideal of the East. (According to the Gita.)	
1042	8	The God and man, and how to worship the God. (According to Bh. G.	
1043	9	The Philosophical doctrine to Bh. G.	
1044	10	The Psychology of Bh. G.	
1045	11	Study of Bh. G. By P. T. Srinivas Iyengar. From: T. P. H., Adyar, Madras.	
1046	12	Bh. G. by G. W. Judge.	
1047	13	The Academy of sciences by Wilhelm Von Humboldt. Ed. 1925-26. Berlin (Essay on Gita.)	
1048	14	Bh. G. from "The Mahabharat and Its parts" by Adolf Noltzmann. 1893.	
1049	15	Bh. G. by R. V. Khedkar (3 Chapters. Pub. In "Vedantin", Kolhapur; Rest in Mss.) From: R. V. KhedKar M. D., F. R. C. S. etc. P/o. Faridabad(Dacca)	

क्रम सं०	पु० स०	विवरण
1050	16	Bh. G. The message of the Master, by Yogi Ramchark. From:-L. N. Fowler Co. Imperial Arcade Ludgate Circus, London. E. C. Rs. 3/- pp. 150.
1051	17	Bh. G. by Charles Wilson. From:-Francis Edwards, 83, High St. Marylebone, London. W. I. Ed. 1785. Rs. 4/8/-.
1052	18	Study of Gita, by Kannomal M. A.; Dholpur State.
1053	19	Krishna as described in Puranas and Bh. G. Re.-/3/-. Pub. Christian Lit.
1054	20	Bh. G. (Pice papers on Indian Reform) Re. -/-/3.
1055	21	Bishop Coldwell on Krishna and Bh. G. (Papers for thoughtful Hindus No. 1.) Re. /-/-9 Society, Madras.
1056	22	The introductory Essay to Bh. G. (English verses) Ed. 1875.
1057	23	Krishna & Krishnism, by Balooram Mallik Ed. 1898.
1058	24	Bh. G. by T. Mahadew Rao with Shankar-Bhashya

13-Bh. G. * Foreign-Language.

क्रम सं०	पु० स०	विवरण
1059	1	Dissertation on the Gita by Wilhelm Von Humboldt, Germany. Ed. 1825.
1060	2	Weber die Bh. G by Cf. G. Humboldt, Berlin. Ed. 1823.
1061	3	Etude Sur La Bh. G. by A. Barth., German (Janv.) Ed. 1897.
1062	4	Bemer Kungen Zur Bh. G. (German Trans. by Otto Bohtlingth. Ed. 1897. Leipzig.
1063	5	Bh. G. by Languinais. Ed. 1832. Paris.
1064	6	Bh. G. (Japanese OnlyTrans. By Prof. J. Takakusu. From:-The Young East (Bookseller) Y. M. B. A. Buil. 5, San Chome, Hongo, Tokyo, Japan. Rs.2/
1065	7	Dei Bh. G. by Oppermann.
1066	8	Die Philosophie der Bh. G. By Subba Rao.

१४--अन्य-गीता

क्रम सं०	पु० स०	विवरण
१०६७	१	हरि गीता
१०६८	२	कपि गीता
१०६९	३	व्यास गीता (कूर्मपुराणान्तर्गता)
१०७०	४	उतथ्य गीता (महाभारत राजधर्म पर्व अ० ९०-९१)
१०७१	५	वामदेव गीता (,, ,, ,, ,, ९२-९३-९४)
१०७२	६	ब्रह्म गीता स्वा० विद्यारण्यकृत भाष्य सह
१०७३	७	सार गीता–नेपाली भा० टी०, पता–गोरखा-पुस्तकालय, रामघाट, काशी मू० ≠)
१०७४	८	पितृ गीता (विष्णु पु० अंश ३ अ० १४ अन्तर्गता)
१०७५	९	पितृ गीता (वराह पु० अ० ११ से २०)

क्रम सं०	पु०सं०	विवरण
१०७६	१०	रुद्र गीता (भागवत स्क० ४ अ० २४ अन्तर्गता)
१०७७	११	भिक्षु गीता („ „ ११ „ २३ „)
१०७८	१२	भूमि गीता („ „ १२ „ ३ „)
१०७६	१३	ब्राह्मण गीता (महाभारत-अन्तर्गता)
१०८०	१४	वृत्र गीता („ „)
१०८१	१५	सूत गीता (स्कंद पु० „)
१०८२	१६	पञ्चरात्र गीता (गणपति कृष्णाजी प्रेस, खुला पत्रा) सं० २– मु० निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
१०८३	१७	अष्टावक्र गीता (अङ्गरेजी) पता-कृष्णलाल, नमकमंडी, आगरा मू० ।।।)
१०८४	१८	श्रीधर्म गीता पता-जे. एम. पंड्या कं०, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई मू० २।।)
१०८५	१६	उत्तर गीता पट्चक्र (बङ्गला) पता—तारा पुस्तकालय, १०६ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता मू० ।।।)
१०८६	२०	प्रणय मंजरी या प्रेम गीता—ले० प्र० मणिलाल मोहनलाल पादराकर, पादरा पृष्ठ २१
१०८७	२१	महात्माजीकी उत्तर गीता (मराठी) मू० ।।)
१०८८	२२	सनातन गीता (बं०) पता-स्वी पुस्तका०, ३३३ अपर चितपुर रोड, कल० मू० ≠)
१०८६	२३	प्रणव गीता (बं०)
१०६०	२४	राम गीता (उर्दू) पता नवल०, लखनऊ मू० ~)
१०६१	२५	अवधूत गीता (अङ्गरेजी) ले० कन्नोमल एम० ए० पता-आर्य पब्लिशिंग, कालेज स्ट्रीट, कल० मू० १)

अन्य-गीता ❀ उड़िया-भाषा

क्रम सं०	पु०सं०	नाम		मूल्य	पता
१०६२	२६	कपटपाशा	गीता	मू० ≡)	पता—अरुणोदय प्रेस, कटक
१०६३	२७	पाण्डव	„	„ ~)।	
१०६४	२८	ज्ञान-प्रदीप	„	„ =)	
१०६५	२६	ध्वनिमञ्जरी	„	„)।।	
१०६६	३०	नहुष	„	„ ~)	
१०६७	३१	ब्रह्मबोध	„	„ =)	
१०६८	३२	भक्तगीता शत्रुजिन	„	„ ~)।	
१०६६	३३	अनन्तगोह	„	„ ~)।	
११००	३४	अमृतसागर	„	„ ≡)	
११०१	३५	आत्मबोध	„	„ ।)	
११०२	३६	भगवती	„	„ ~)।।	
११०३	३७	भिक्षु	„	„)।।	
११०४	३८	राम	„	„ ~)	
११०५	३६	हरिभक्ति	„		

परिशिष्ट नं० ५

गीता-संग्रह करनेवालोंके सुभीतेके लिये, प्रधानतया जिन भाषाओंका गीता-साहित्य जहाँ मिलता है, उन चुने हुए कुछ पुस्तक-विक्रेताओंके नाम, पते लिखे जाते हैं—(संग्रहीत ग्रन्थोंकी सूचीमें जिनका पूरा पता न छपा हो, वे भी निम्नलिखित पुस्तक-विक्रेताओंके पास मिल सकती हैं।)

भाषाका नाम †	पुस्तक-विक्रेता
सं०, हि०, अं०, ※ ...	१-मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा, लाहोर
सं० हि०, अं०, ※ ...	२-मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्ठा, लाहोर
सं०, हि०	३-जयकृष्णदास हरिदास गुप्ता, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, काशी
सं०, हि० ...	४-हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी, बड़ाबाजार, कलकत्ता
,, ,,	५-मास्टर खेलाड़ीलाल, संस्कृत-बुक डिपो, काशी
,, ,,	६-गीता-बुकडिपो, हिन्दू-सेवामण्डल, तुलसीजीका मन्दिर जोधपुर सिटी
सं०, हि०, मेवाड़ी ...	७-ठा० श्रीचतुरसिंह, करजालीकी हवेली, उदयपुर, मेवाड़
सं०, हि०, गु०, म०, ...	८-पं० नारायण मूलजी, झवेरबाग, बम्बई २
सं०, गु०, म० ...	९-तुकाराम पुंडलीक शेट्ये, माधवबाग, बम्बई
गु०, म० ...	१०-जे० एम० पंड्या एंड कं०, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई २
म० ...	११-बालकृष्ण लक्ष्मण पाठक, मोतीबाजार, बम्बई २
गु०, म०, अं०	१२-एन० एम० त्रिपाठी कं०, कालबादेवी, बम्बई २
गु०	१३-महादेव रामचन्द्र जागुष्टे, अहमदाबाद
बं०, अं०	१४-महेश पुस्तकालय, १९।१२ कार्नवालेस स्ट्रीट, कलकत्ता
सं०, बं०, अं०	१५-संस्कृत-पुस्तकालय, ५८ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता
उड़िया	१६-अरुणोदय प्रेस, कटक
कनाड़ी ...	१७-शंकर कर्नाटक पुस्तक-भण्डार, धारवाड़
,,	१८-एम० एस० राय एंड कं०, बंगलोर
हि०, उ०, फा०, ※	१९-नारायणदास जंगलीमल, दिल्ली
,, ,, ,,	२० दौलतराम एंड सन्स, लाहोरी गेट, लाहोर
,, ,, ,,	२१-नारायणदत्त सहगल एंड संस, लाहोरी गेट, लाहोर
सिन्धी	२२-पं० तेजूराम शर्मा, सनातनधर्म-सभा, कराची, सिन्ध
अं०, ता०, ते०, ※	23-T. S. Natesa Sastriar & Co., Mayavarm. (S. I.)
सं०, म०, अं०, ※	24-Oriental Book Agency, 15 Sukerwar Peth, Poona.
ता०, ते०, अं०	25-V. Ramswamy Sastrulu & Sons, 292 Esplanade, Madras.
अं०,	26-Theosophical Pubeishing Society, Adyar, Madras.
अं०, सं०, ※	27-Probsthain & Co., 41 Great Russell St, London.
,, ,, ,,	28-Luzac & Co., 46 ,, ,, ,, ,,
,, ,, ,,	29-Kegan Paul, Trench Trubnor & Co., London.
,, ,, ,,	30-Bjorck & Borjesson, Drottninggatan 62, Stockholm, Sweeden.
,, ,, ,,	31-C. Frtzes Kungl. Hovbokhandel, Fredsjatan 2, Stockholm.
,, ,, ,,	32-Otto Harrassowitz, 14 Querstrasse, Berlin, Germany.

† सं०=संस्कृत, हि०=हिन्दी, म०=मराठी, गु०=गुजराती, बं०=बंगला, ता०=तामिल, ते०=तेलगु, उ०=उर्दू, फा०=फारसी, अं०=अंग्रेजी, ※=Rare or Out of Print.

अन्तिम निवेदन !

गीता-पुस्तकालयमें संगृहीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त, परिशिष्ट-प्रकरणके सब अनुपलब्ध ग्रन्थोंके सम्बन्धमें सर्व प्रकारकी सूचनाएँ, गीता-प्रेमी-सज्जनोंको निम्नलिखित पतेपर भेजनी चाहिये। इस सूचीके या किसी भी प्रकारकी गीताके सम्बन्धमें जो कुछ पूछताछ करनी हो, वह भी इसी पतेसे करें।

मंत्री—**गीता-पुस्तकालय,**

३० बाँसतल्ला गली,

कलकत्ता।

*** हरिः ॐ तत्सत् ***

महामना मालवीयजीकी अभिलाषा

मेरा विश्वास है कि मनुष्य-जातिके इतिहासमें सबसे उत्कृष्ट ज्ञान और अलौकिक शक्ति-सम्पन्न पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण हुए हैं। मेरा दूसरा विश्वास यह है कि पृथ्वीमण्डलकी प्रचलित भाषाओंमें उन भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई भगवद्गीताके समान छोटे वपुमें इतना विपुल ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

वेद और उपनिषदोंका सार, इस लोक और परलोक दोनोंमें मंगलमय मार्गका दिखानेवाला, कर्म, ज्ञान और भक्तिके तीनों मार्गोंद्वारा मनुष्यको परम श्रेयके साधनका उपदेश करनेवाला, सबसे ऊँचे ज्ञान, सबसे विमल भक्ति, सबसे उज्ज्वल कर्म, यम, नियम, त्रिविध तप, अहिंसा, सत्य और दयाके उपदेशके साथ-साथ धर्मके लिये धर्मका अवलम्बन कर, अधर्मको त्यागकर युद्ध करनेका उपदेश करनेवाला, यह अद्भुत ग्रन्थ जिसमें १८ छोटी अध्यायोंमें इतना सत्य, इतना ज्ञान, इतने ऊँचे गम्भीर सात्त्विक उपदेश भरे हैं, जो मनुष्यमात्रको नीची-से-नीची दशासे उठाकर देवताओंके स्थानमें बैठा देनेकी शक्ति रखते हैं। मेरे ज्ञानमें पृथ्वीमण्डलपर ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है जैसा भगवद्गीता है। गीता धर्मकी निधि है। केवल हिन्दुओंकी ही नहीं, किन्तु सारे जगत्के मनुष्योंकी निधि है। जगत्के अनेक देशोंके विद्वानोंने इसको पढ़कर लोककी उत्पत्ति स्थिति और संहार करनेवाले परम पुरुषका शुद्ध सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और उनके चरणोंमें निर्मल निष्काम परमा भक्ति प्राप्त की है। वे पुरुष और स्त्री बड़े भाग्यवान हैं जिनको इस संसारके अन्धकारसे भरे घने मार्गोंमें प्रकाश दिखानेवाला यह छोटा किन्तु अक्षय स्नेहसे पूर्ण धर्म-प्रदीप प्राप्त हुआ है। जिनको यह धर्म-प्रदीप (धर्मकी लालटेन) प्राप्त है उनका यह भी धर्म है कि वे मनुष्यमात्रको इस परम पवित्र ग्रन्थका लाभ पहुँचानेका प्रयत्न करें।

मेरी यह अभिलाषा और जगदाधार जगदीशसे प्रार्थना है कि मैं अपने जीवनमें यह समाचार सुन लूँ कि बड़ेसे बड़ेसे लेकर छोटेसे-छोटेतक प्रत्येक हिन्दू-सन्तानके घरमें एक भगवद्गीताकी पोथी भगवान्‌की मूर्तिके समान भक्ति और भावनाके साथ रक्खी जाती है। और मैं यह भी सुनूँ कि और और धर्मोंके माननेवाले इस देशके तथा पृथ्वीमण्डलके और सब देशोंके निवासियोंमें भी भगवद्गीताके प्रचारका इस कार्यके महत्त्वके उपयुक्त सुविचारित और भक्ति, ज्ञान और धनसे सुसमर्थित प्रबन्ध हो गया है॥ श्रीकृष्णः प्रीणातु॥

मदनमोहन मालवीय
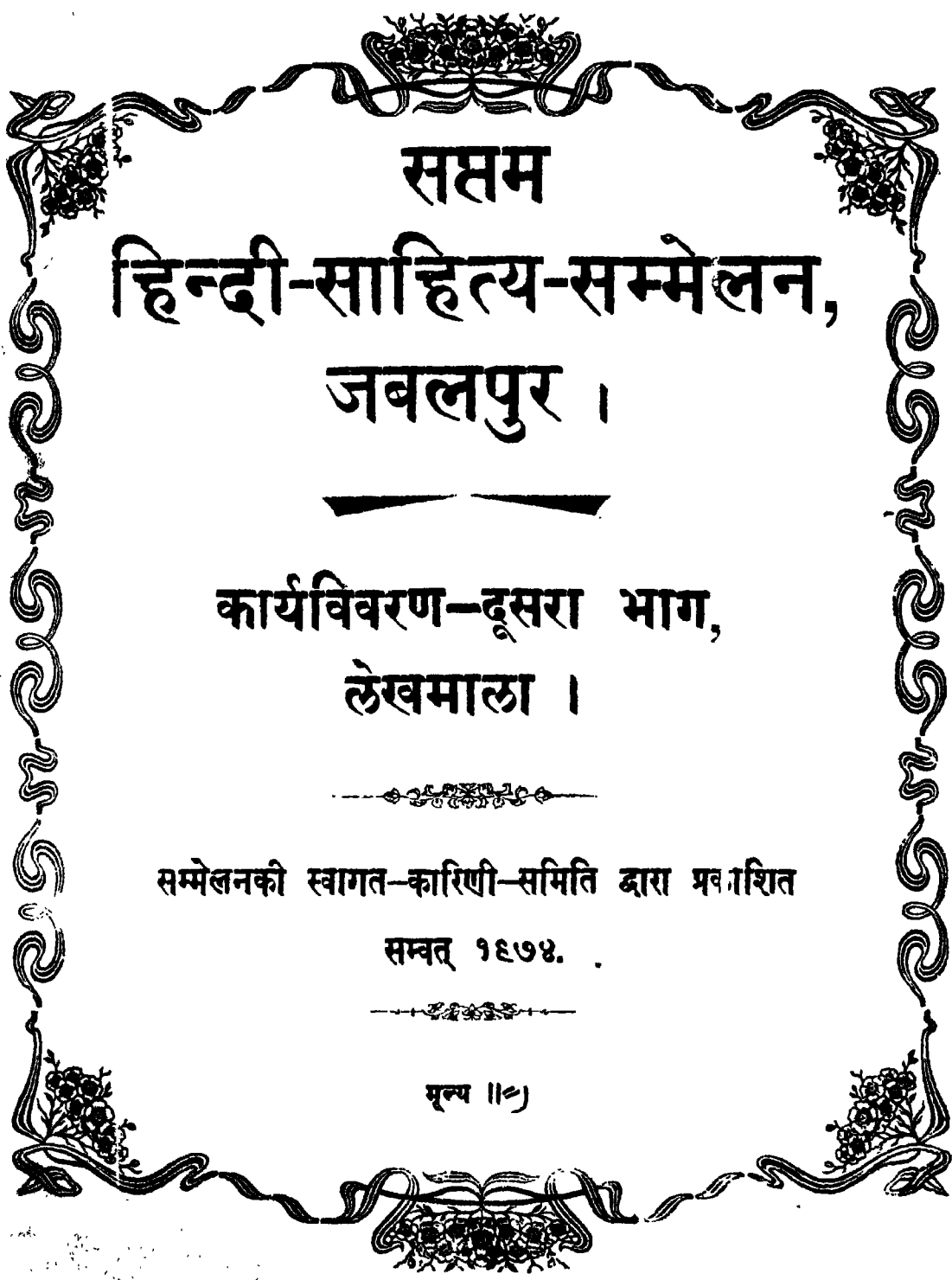
सप्तम
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
जबलपुर ।

कार्यविवरण—दूसरा भाग,
लेखमाला ।

सम्मेलनकी स्वागत-कारिणी-समिति द्वारा प्रकाशित

सम्वत् १९७४.

मूल्य ॥=)

सप्तम
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, जबलपुर।

कार्यविवरण—दूसरा भाग, लेखमाला।

सम्मेलनकी स्वागत-कारिणी-समिति द्वारा प्रकाशित

सम्वत् १९७४.

मूल्य ॥=)
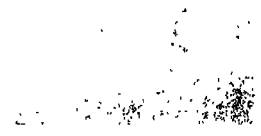
विज्ञप्ति ।

सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको हुए एक वर्ष पूरा हो गया। अनेक अनिवार्य कारणोंसे लेखमाला अभी तक प्रस्तुत न की जा सकी, इसकेलिये हमें अत्यन्त खेद है।

स्वागत-कारिणी-समितिने २६ विषयोंपर लेख लिखानेकी योजना की थी। उनमेंसे केवल १४ विषयोंपर लेख मिल सके। इन्हीं लेखोंका समावेश इस लेखमालामें हुआ है। इसके प्रायः सभी लेख हिन्दी संसारके परिचित एवं प्रतिष्ठित लेखकों द्वारा लिखे गये हैं, अतएव आशा है कि पाठक इनका भलीभांति रसास्वादन कर यथोचित लाभ उठावेंगे।

अन्यभाषा-भाषियों द्वारा हिन्दीकी सेवा वाले लेख खोजके साथ लिखे गये हैं। इतिहास प्रेमियोंको इन लेखोंसे और विशेषकर बाबू नाथूराम प्रेमी तथा संतमानसिंहजी लिखित जैन कवियों और सिक्ख साधुओंकी हिन्दी-सेवावाले लेखोंसे बहुत कुछ मसाला मिलेगा।

हिन्दीकी उन्नतिमें सहायक होनेवाले विराम चिन्होंपर भी हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित होना लाभ जनक है। इन चिन्होंके अनुचित उपयोगसे लाभके बदले हानि होनेकी संभावना है। अतएव जब तक इनके उपयोगोंके नियम निश्चित रूपसे स्थिर न हो जांय तब तक इस विषयकी चर्चा होती रहनी चाहिये।

मध्यप्रदेशवासी हिन्दी-प्रेमियोंको कानूनीहिन्दी नामक लेख ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये और साथ ही अपने कर्तव्यकर्मका स्मरण करना चाहिये।

भावव्यंजकता विषयक मिश्रबन्धुओंकी सम्मति भी विचारणीय है उसी प्रकार राष्ट्र-भाषा और लिपि-प्रचार विषयक [illegible]में सिरोठियाजीका [illegible]समारंभोंकी योजना और सामयिक पत्रोंके आवरणपत्रपर नागरीमें पता लिखे जानेका प्रस्ताव ध्यान देने योग्य विषय है।

उपन्यास, नाटक, हमारी शिक्षा और पत्रोंकी अवस्थावाले लेखोंमें प्रयोजनीय बातोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेका यत्न किया गया है।

अभिप्राय यह कि प्रायः सभी लेख गवेषणापूर्व्वक उत्तमताके साथ लिखे गये हैं और उनमें पढ़ने तथा गुनने योग्य सामग्रीकी कमी नहीं है। इस लेखमालामें सम्मिलित किये हुए सभी लेखों-के विषयका हम [illegible] पूरा परिचय देना आवश्यक होते हुए भी स्थानाभावके कारण ऐसा नहीं कर सकते और जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसी पर सन्तोष किये लेते हैं।

प्रस्तुत लेखमालामें १८ लेख गुंफित हैं। इनमेंसे केवल तीन लेखोंको ही अधिवेशनके समय [illegible]का सौभाग्य मिल सका। लेखकोंसे यह कह कर लेख लिखाये जाते हैं कि उनके लेख

अधिवेशनमें पढ़े जायँगे; पर यह प्रतिज्ञा कार्यरूपमें परिणत नहीं हो पाती। अतएव आगामी अधिवेशनों-में इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। कई सज्जन लेख लिखनेमें इसीलिये आना-कानी करते हैं कि अधिवेशनमें लेखोंको पढ़नेका समय प्रायः मिलता ही नहीं है। यदि अधिवेशनके समय लेखोंको पढ़नेके लिये पर्याप्त समय नहीं मिल सकता है तो स्मरण रखना चाहिये कि फिर अच्छे अच्छे लेखोंके मिलनेकी संभावना भी एक प्रकारसे कम हो जायगी। केवल प्रस्तावोंके शब्दोंकी काट छांट और खींचातानीमें ही साहित्य-सम्मेलनकी इतिकर्तव्यता नहीं समझलेनी चाहिये। यथार्थमें निर्दिष्ट विषयोंपर व्याख्यान तथा निबन्धपाठके लिये समुचित व्यवस्था अवश्य ही होनी चाहिये। सम्मेलन को प्रचार कार्यके समान ही प्रयोजनीय साहित्यकी वृद्धिका भी पूर्ण उद्योग करना चाहिये। चुने हुए लेखकोंको यदि अधिवेशनके समय पुरस्कार या सम्मानपत्र देनेकी व्यवस्था कीजाय तो लेखकगण उत्साह और ओजके साथ लेख लिखनेका प्रयत्न करेंगे।

इस मालाके छपवानेमें सावधानी करते हुए भी छापेकी अनेक भूलें हो गई हैं। पाठक, इन त्रुटियोंके लिये क्षमा करेंगे।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी
मनोहर कृष्ण गोलवलकर
दयाशंकरझा
मंत्री
स्वा० का० स०

लेखसूची।

* स्वागत *

लेखकः—पं० मातादीन शुक्ल।

स्वातंत्र्यसे बढ़कर न कोई, वस्तु जगमें है कहीं।
गत प्राण भी बरु हों परंतु न, छोड़िये इसको सही॥
तनसे, वचनसे और धनसे, त्राण इसका कीजिये।
सप्तर्षि-मंडल सम अटल हो, फिर सभी सुख लीजिये॥
मन्वादि ऋषियोंने हमारे हित सुझाया ज्ञान है।
हिंदी विना हम कर न सकते, किन्तु कुछ उत्थान हैं॥
दीना दशा इस मातुकी लख, भ्रातृवर? क्यों मौन हो?
सारे जगतमें व्याप्त करदो, जानते हो, कौन हो?
हित राष्ट्र-भाषाके सभी कुछ, आपको नित सह्य हो।
त्यागो न उन्नति-ध्यान इसका, नित्य ही यह लक्ष्य हो॥
संपूर्ण साहस युक्त होकर, आपदाओंको हरो।
मेटो न मनको टुक इधरसे, धैर्य्यको धारण करो॥
लय है सभी संसार क्षणमें, सार बस उपकार है।
नर देह पाकर क्या न करना, मातृका उद्धार है?
जननी समान स्वमातृ-भाषा, है सदा उपकारिणी।
बल, बुद्धि वर्द्धक, प्राण-पोषक, सकल संकट-हारिणी॥
लखना इसे यौंही निरन्तर, निंद्य बारम्बार है।
पूरण करें सद्ग्रन्थसे जो, रिक्त शुभ भंडार है॥
रण क्षेत्रमें विजयी बनाना ही हमारा काम है।
'माता समुन्नत हो' इसीमें, बस हमारा नाम है॥
दीक्षा, प्रतीक्षाएँ हमारी, फल भी होंगी तभी।
नर पुङ्गवोंकी श्रेणियाँ भी, चमचमायेंगी तभी॥

शुक्ल शरदकी चंद्रिका, कृष्ण क्यों न होजाय।
पर हिन्दी-उन्नति सदा 'पुर' में होती जाय॥
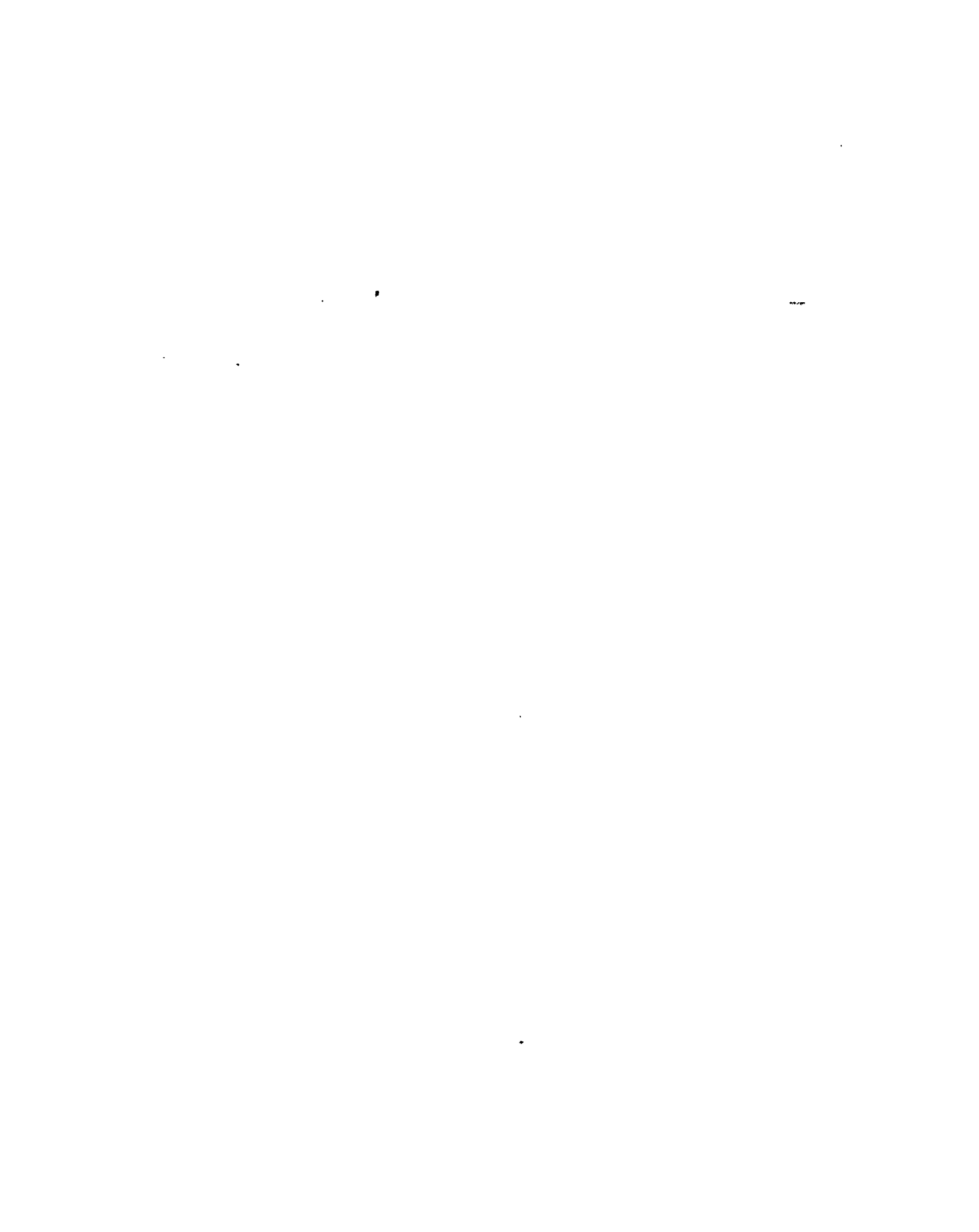
सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, जबलपुर.

कार्य्य-विवरण दूसरा भाग,

लेखमाला।

अन्य भाषा-भाषियोंके द्वारा कीगई हिन्दीकी सेवा।

(लेखक—श्रीयुत पं० लोचनप्रसाद जी पाण्डेय)

वे प्रातः स्मरणीय पुण्यश्लोक महात्मा-गण धन्य हैं जो महानुभावता और उदारताके अनन्य प्रेमजन्य भावोंसे प्रणोदित होकर जाति, धर्म्म तथा निज भाषाकी हठ धर्म्मी रूपी संकीर्णताकी धाराको विश्वप्रेमके महासागरमें विलीन करते हुए स्वमातृभाषेतर भारती भगवतीकी भव्य-भक्तिको अपना एक भूषण समझते हैं। ऐसे अवतारी पुरुष-प्रवर अपनी मातृ-भाषाके गौरव-गुरुत्व-प्रदायक मोद-महिमा-मण्डित सत्कवि-सुपण्डित, अखण्डित कीर्ति-केतु ही नहीं वरञ्च सुरसिक साहित्य सेवियों के लिए भिन्न भिन्न भाषाओंके साहित्य-सागर के सेतु तथा पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति, बन्धुत्व और विश्वकल्याणकारिणी, पतित-जाति-उद्धारिणी एकताके उत्कर्ष पूरित हर्षके हेतु भी हैं। यद्यपि ऐसे सत्पुरुषोंके द्वारा कीहुई अन्य भाषाकी सेवा अत्यधिक परिमाणमें नहीं हो सकती; पर उनकी स्वल्प सेवाही उन्हें उस भाषा-भाषियोंके अत्युच्च आदर और गम्भीर कृतज्ञताके पात्र बनानेमें समर्थ होती है।

हिन्दी भाषाको इस बातका बड़ा भारी हर्ष और अभिमान है कि उसके इस श्रेणीके सेवकोंकी नामावलीमें प्रतापशाली "दिल्ली-श्वरो वा जगदीश्वरो वा,, बादशाह अकबरका शुभ नाम है। इनके अतिरिक्त खानखाना रहीम' रसखान, मुबारक, फैजी, अब्दुल फज़ल आदि अनेकों साहित्य-प्रेमी सुकवि होगए हैं। मलिक मुहम्मद जायसीको तो अनेक लोग "वर्तमान भाषाके वस्तुतः प्रथम कवि" कहते हैं। ये भिन्न-भाषा-भाषी, भिन्न धर्मानुयायी एवं शासक श्रेणीके होकरभी हिन्दीसे जो इस प्रकार सम्बन्ध रखते थे इसका मुख्य कारण यही कहा जायगा कि उस समयभी विचारवान, दूरदृष्टि-सम्पन्न एवं पक्षपात-रहित व्यक्ति हिन्दी को भारतवर्षकी सर्व-प्रधान भाषा मानकर उसका आदर करते रहे हैं। उस समयभी हिन्दी-साहित्य समधिक पुष्टता प्राप्त कर चुका था। उस समयभी हिन्दीमें ऐसे गुण थे जो अन्य भाषा-भाषियोंकाभी हृदय अपनी ओर सहज-में आकर्षित कर सकते थे। ऊपर लिखे हुए कवियोंमेंसे रहीम और रसखानने अपनी उच्च-हृदयताका यहाँ तक परिचय दिया था कि हमारे परम देव राम और कृष्णके अनन्य भक्त बनकर हमारे पूज्य होगए हैं।

कहा करै रसखान को कोऊ चुगल लबार।
जो पै राखन हार है माखन चाखन हार॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवोनिधिको सुख नन्दकी गाय चराय बिसारौं

तथा
"मानुषहौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवकेग्वारन"

ऐसी अनन्यता प्रकट करनेवाले मुसलमान कवि हम हिंदीभाषा-भाषियोंको कृतज्ञताके पाशमें आबद्ध कर गए हैं। रसखान कविका वैष्णव धर्म पर दृढ़ आस्था रखना एक अनोखी बात नहीं तो क्या है?

आधुनिक हिन्दी साहित्यके जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी अमर वचनोंमें क्याही उत्तम कीर्तिगान कर गए हैं :—

"इन मुसलमान हरि जनन पै कोटिन हिन्दू वारिये"

अधिक क्या कहैं, हिन्दी कविताका आदर सत्कार मुसलमानोंके अन्तःपुरों तकमें हुआ है और उसकी मधुर मृदु झंकारसे महिला-हृदय-संसारमें एक विशेष चमत्कार पूर्ण मुग्धतासी छाई हुई परिलक्षित होती है। यहाँ वन्दनीय मुसलमान-महिला-मण्डन नारी-कवि 'ताज' द्वारा निर्मित एक कवित्त उद्धृत किया जाता है:-

सुनौ दिल जानी मेरे दिलकी कहानी तुम
दस्तकी बिकानी बदनामीभी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हू भुलानी
तजे कलमा कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं॥
श्यामला सलोना सिरन ताज सिर कुल्लेदार
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूंगी मैं!
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै
ताँण ग्वाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं॥

जब मुसलमान-महिलाओं तकने हिन्दी भाषाके प्रति ऐसा उदार अनुराग प्रगट किया है तब अन्य-भाषा भाषियोंका कहना ही क्या!

हिन्दीकी जो सेवा अन्य भाषा-भाषियोंके द्वाराकी गई है उस पर प्रकाश डालनेके लिए श्रम, समय और खोजकी आवश्यकता है। इस छोटेसे लेखमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्रके समयसे लेकर अब तक अन्य भाषाभाषियों द्वारा की गई हिन्दीकी सेवाके विषयमें कुछ थोड़ा लिखते हैं।

सर्व प्रथम हम हमारे प्रिय उर्दू-भाषा-भाषी बन्धुओंकी हिन्दी सेवा का उल्लेख करते हैं। हिन्दी और उर्दू का जैसा प्रेममय सम्बन्ध बादशाही जमाने में रहा है उसका परिचय सम्मेलनके प्रथम और द्वितीय अधिवेशनोंके विवरण-पुस्तकोंसे प्राप्त हो सकेगा। हमारा अभिप्राय प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुन्शी देवीप्रसादजी द्वारा लिखित "मुसलमानी राजत्वमें हिन्दी" और विख्यात साहित्यक मिश्र-बन्धु-त्रय द्वारा लिखित "हिन्दीके मुसलमानकवि" तथा हमारे परम श्रद्धा-भाजन कविवर सैयद अमीर अली 'मीर' महोदय लिखित "हिन्दी और मुसलमान" शीर्षक विवेचना और विद्वत्ता-पूर्ण लेखोंसे है। इन लेखोंके द्वारा पता लगता है कि "हिन्दीभाषा" मुसलमानोंको कैसी प्रिय थी और वे उसकी सेवा करनेमें तनिकभी लज्जित नहीं होते थे। हिन्दी उस समय मुसलमानोंकी आँखोंमें काँटोंसी नहीं चुभती थी। वह 'घृणा' और अनादरकी दृष्टिसे नहीं देखी जाती थी। न कोई उसके अस्तित्वको अस्वीकार करते थे और न कोई उसके 'अस्तित्व-लोप' का सपना देख रहे थे। पर अब वह समय न रहा। हिन्दुस्थानके कुछ अंशोंमें उर्दू और हिन्दीके बीचमें आज मत-भेद और दुराग्रहका पहाड़ खड़ा हो गया है। पर परम सौभाग्य और हर्षका विषय है कि भारतके कुछ प्रान्तोंमें हिन्दी और उर्दू में वही पुराने जमानेका स्नेह-भाव बना हुआ है। ऐसे भाग्यशाली प्रान्तोंमें हमारा मध्यप्रदेशभी है। यहाँ अबभी ऐसे उदार-हृदय, विश्वप्रेम-रत तथा देश-हित साधनेच्छुक मुसलमान सज्जन विद्यमान हैं जो 'रहीम और रसखान" तथा 'अकबर और उसमान" के हिन्दी प्रेमका झण्डा थाम्हें हुए हमारे अभिमान और साथही सम्मान के स्थान हो रहे हैं। ऐसे महानुभावोंमें अग्रगण्य सत्कवि सुलेखक देवरी कलाँ, सागर निवासी

श्रीयुत सैयद अमीरअलीजी 'मीर' हैं। आपने हिन्दीकी जो सेवाकी है, जैसी सेवा कर रहे हैं और करेंगे ये बातें उनके लेखोंपरसे स्पष्ट झलकती हैं। हिन्दीकी सेवा और उसके प्रचार-के लिए आपका अवतार समझिए। आपके शिष्य समुदायमेंसे अनेक आज सुकवि, सुलेखक और सुग्रन्थ प्रकाशक, तथा सुचित्रकार के नामसे ख्यात हो रहे हैं। "हिन्दी, हिन्दुस्थान-की राष्ट्रभाषा हो" आप इस सिद्धान्तके अनुयायी हैं। आपकी विद्या, बुद्धि, प्रतिभा और हिन्दू शास्त्र पुराणोंके कथा प्रसंगोंकी जानकारी बढ़ी चढ़ी हुई है। आपने 'स्वावलम्बन' 'देशी रोज़गार' 'स्वदेश प्रेम' 'व्यापारोन्नति' पर जो कुछ रचनाएँ की हैं वह देखने योग्य हैं। "बूढ़ेका व्याह" नामक सचित्र खण्ड-काव्य रचकर आपने भारतीय समाजका बड़ा हित साधन किया है। सरस्वती, मर्यादा, हितकारिणी, विद्यार्थी, जैन-धर्म-हितैषी आदि पत्रोंमें आपकी सामयिक कविताएँ प्रायः छपती रहती हैं। एक दो उदाहरण देखिए:—

'बूढ़ेके व्याहके अन्तमें स्त्री शिक्षापर जोर देते हुए आप कहते हैं:—

नारीका यह भाव सहज है निकट-पुरुष अपनाती है।
मिले पास जो विटप लताको लिपट उसीसे जाती है॥
ऐसा ही है हाल पुरुषका वह तरुवरका भ्राता है।
जितनी जैसे मिले लता वह सब को ही अपनाता है॥
लेकिन जो पाते हैं शिक्षा, उनमें आती गुरुता है।
उनका मन होता है हिमगिरि, नहीं हिलाये हिलता है॥
सीता हरण किया पर रावण शील न उसका छीन सका।
इसी तरह उर्वशी-मोहसे नहीं पार्थ मन जरा डिगा॥
इसी लिए कहता हूं भाई, शिक्षाका विस्तार करो।
देश-धर्मके साथ समयभी देख देख व्यवहार करो॥
नहीं फजीता होवे जिससे, नहीं कोई उपहास करै।
धर्म-मान-यश आदि बढ़ै सब घर घर सौख्य निवास करै॥

पति-पत्नीमें पूर्ण प्रेम हो, जिससे हों उत्तम सन्तान।
करें देशका जो सुख उज्ज्वल रक्खें अपने कुल का मान॥

हमारे देश और समाजके अगुआओं और उनकी धन-ईषणा तथा धनिकोंकी प्रवृत्ति पर मीरजी लिखते हैं:—

जब तक हम लोगोंके अगुआ, अचल चित्त थे धर्म धुरीन।
तब तक कोई होता नहि था नीच कर्ममें ऐसा लीन॥
बनने को ब्रह्मर्षि किये कितने उपाय 'कौशिक' निक्लिष्ट!
पर न हुआ तब तक सुपात्र वह रहे धर्म पर अड़े वशिष्ठ॥
लेकिन अब तो टका धर्म है, टका कर्म है टका सखा।
टका मोक्षदायक है इससे, सबने उसको बड़ा लखा॥
जिनके पास टका है उनको सिद्धि अलभ्य मिलजाती है।
जिनके पास टका है उनमें मद महिमा अधिकाती है॥
जिनके पास टका प्रायः वे आरतके नहिं आवें काम।
गुणी-कुटुम्बी उनके जीते पा सकते नहिं एक छदाम॥
हाँ, अलबत्ता होजाता है व्यय अनर्थसे उनका अर्थ।
शोक अयश-निन्दाको लेकर खोते हैं वे जीवन व्यर्थ॥

हमें इस बातका हर्ष और गौरव है कि हिन्दुस्थानका सर्व-प्रधान आधुनिक मुसलमान हिन्दी-कवि हमारे मध्यप्रदेशका सपुत्र-रत्न है। पर परितापका विषय है—शतवार खेदका विषय है कि हिन्दी साहित्य-संसार अन्य भाषा-भाषी हिन्दी सेवियोंके आदर-सत्कार-व्यापारमें दुःखमयी उपेक्षाका व्यवहार करने में अपनेको लाभवान समझता है: अन्यथा "हिन्दी-कोविद-रत्नमाला" के दूसरे भागकी तो बात ही नहीं प्रथम भागमें हम "मीर" महोदय-के चित्र चरित्रको संकलित पाते और 'मिश्र-बन्धु विनोद' में आपपर कई पृष्ठ लिखे जाकर उनकी सरस मधुर कविताओंका उद्धरण होता। अन्य भाषा-भाषी हिन्दी सेवियोंको ऐसा सामान्य पुरस्कार देने में भी हम यदि संकीर्णता प्रकट करेंगे तो हमारी भाषाकी सेवा करनेको क्यों

कर कोई भिन्न भाषा-भाषी उत्साहित होगा! अस्तु ।

अन्य मुसलमान हिन्दी कवियोंमें श्रीयुत सैयद छेदाशाहजीका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। आप, पौहार कानपूरके रहने वाले हैं। आपने हरगंगा रामायण तथा श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखी है। मिश्र-बन्धुविनोद भाग ३ के पृष्ट १४५१ से ज्ञात होता है कि आपने सब मिलाकर १५ पुस्तकें भिन्न भिन्न विषयों पर बनाई हैं। आपके भी लेख सामयिक पत्रोंमें निकला करते हैं। श्रीयुत जहूरबख्श श्रीयुत उमरयार बेग, मुंशी खैराती खाँ तथा अर्ज-बेगके हिन्दी लेख वा कविताएं 'हितकारणी' आदि पत्रोंमें निकला करती हैं।

खाँ साहिब मुहम्मद खाँ बी. ए. ने हिन्दी की जो सेवा की है वह मध्यप्रदेशमें विदित ही है। हिन्दी की नई पांचवी पुस्तकके दोनो भाग, मनगणित, रेखागणित, मध्यप्रदेशका भूगोल. अङ्कगणित आदिके आप रचयिता हैं। आप एक उच्चकोटिके विद्वान्, आदर्श-शिक्षक और राज-मान्य पुरुष हैं। ईश्वर दीर्घ जीवी करे तो आप हिन्दीकी औरभी सेवा कर हम सब को उपकृत करें।

हमारे प्रान्तके सरकारी-अनुवादक श्री० खाँ साहिब अब्दुल अजीजखाँ बी. ए. 'प्राज्ञ' हिन्दी भाषाके प्रेमियोंमें हैं। उनके द्वारा हिन्दी का कुछ उपकार गुप्त रूपसे अवश्यही हो रहा है। आपसे हमें बहुत कुछ आशा है।

श्रीयुत-सैयद असद अली एम. आर. ए. एस. का एक लेख 'सरस्वती' में छपा था।

हफीजुल्ला खाँ (अदौली, सीतापुर) अकरम फैज़,काजी अब्दुल्लह,गदाईशेख अलःदार,मोहम्मद अमीर खाँ (आगरा) महम्मद तकी खाँ (छतरपुर) आसियापीर आरिफ, दीनदरवेश, तेगअली, शाह मोहम्मद, शाह शफी, ईशा, इजदानी इमदहारी-मियाँ, वाजिद, फरीद फजायलखाँ, खानआलमखाँ, सुल्तान, पंथी, मिरजा, रोशन जमीर, नयाज़, नबी नजबी, पीर मुहम्मद (पीर) अब्दुलसत्तार (प्यारे) आदि मुसलमान हिन्दी प्रेमियोंके नाम, मिश्र-बन्धु विनोदमें मिलते हैं। इन सबका हिंदी-प्रेम प्रशँसनीय है और ये महाशयगण हमारे धन्यवादके पात्र हैं। इनसे हमारा सादर निवेदन है कि ये भारतके भविष्यकी ओर दृष्टि रख अपनी कृतियोंसे हिन्दी-भाषा-भण्डारको पूर्ण करते रहें। एक दिन उनके नाम आदरके साथ हिन्दीके इतिहास-में स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जायँगे।

देवनागरीलिपि और हिन्दी भाषाके प्रचारके पक्ष-पाती प्रसिद्ध विद्वान् शमसुल् उलमा मौलवी सैयद अली बिलग्रामी तथा जस्टिस शरफुद्दीन बारिस्टर एट-ला जैसे मुसलमान सज्जन भी हैं। बिलग्रामी महोदयका सचित्र जीवन चरित्र जून सन् १९०० की सरस्वतीमें छपा है।

बङ्गभाषा-भाषी।

बङ्ग-भाषा-भाषी हिन्दी सेवियोंमें जस्टिस शारदा चरण मित्र महोदयका नाम सर्व-प्रथम उल्लेख योग्य है। भारत वर्षमें एक लिपिका प्रचार हो और वह लिपी देवनागरी हो इस विषयमें आपने भगीरथ प्रयत्न किया है। आपका बङ्ग-भाषा-विभूषित एवँ देवनागरी अक्षरोंमें प्रकाशित Polyglot Magazine "देवनागर" एक अपूर्व मासिक पत्र था। खेद है कि यह शैशवावस्थामें ही कराल कालके गाल में जा पड़ा और उसके पुनर्जन्मकी अब कोई आशा नहीं। "देवनागर" के प्रकाशनके अति-रिक्त शारदाचरण महोदयने मैथिल—कोकिल विद्यापति ठाकुरकी ग्रन्थावलिकोभी देवनागरी अक्षरोंमें प्रकाशित कराया था। हिन्दी भाषा आपके इन उपकारोंको बहुत दिनतक स्मरण

रखेगी। हिन्दी कोविद रत्नमालाके दूसरे भाग-में आपका सचित्र चरित्र प्रकाशित हो चुका है।

बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान और भारत-माताके हृदय-मणि रमेशचन्द्रदत्तने जो हिन्दी की सेवा की है वह किसीसे छिपी नहीं है। यह वही वीर बङ्गाली विद्वान् हैं जिनने विलायत में I. C. S. परीक्षाके समय अल्प दिनोंके अभ्यास से नागरीलिपि लिखनेमें प्रवीणता प्राप्तकर बङ्ग-भाषी विद्वन्मण्डली एवँ अन्य भारतीय तथा विदेशी विद्यारसिकोंको देवनागरी लिपिकी सर-लता और सुबोधताका प्रमाण प्रदान किया और नागरी प्रचारिणी सभा काशीको अपने "इतिहास" ग्रंथका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करानेकी अनुमति प्रकट करनेकी उदारता दिखाई थी। बड़ोदा-के "महाराष्ट्र-साहित्य सम्मेलन" में हिन्दी विभाग का कार्यारम्भ आपनेही किया था और जब बनारसमें कांग्रेस हुई थी तब वहाँ नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा— "देवनागरी" को समस्त भारतकी एक लिपि स्वीकार करानेके लिए जो अधिवेशन हुआ था उसमेंभीआपने बड़ा स्वार्थ लिया था। अधिक क्या, आज हिन्दीको जो एक इतिहास ग्रन्थ प्राप्त हुआ है और जिसके विषय में एक हिन्दी-प्रेमी बङ्ग-कोविदने यह कहा हैः—

"सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक पण्डित गणेशबिहारी मिश्र।
श्यामबिहारी मिश्र औ शुकदेवबिहारी मिश्र॥
"मिश्र-बन्धु-विनोद" तिन खण्डे प्रकाशित करियाँ।
हिन्दी-साहित्य अतुलनीय कीर्त्ति स्थापना करिया छेन।"

उस ग्रन्थरत्नके उद्भवके कारण-स्वरूप हमारे प्यारे रमेशचन्द्रदत्तही थे।

विश्व विख्यात भारत-गौरव-रवि कवीन्द्र डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर महोदयने हिन्दी भाषा में जो पत्र-खण्ड लिखनेकी कृपा की है उसीसे हिन्दी माताके प्रति उनके अनुरागका परिचय मिल रहा है। ज्ञानी-प्रवर कबीर दासकी कविताओं को मनन कर महा कविने जो ग्रन्थ प्रस्तुत किया है वह आपके हिन्दी प्रेम और उसके प्रति आपके उपकार-का सुन्दर उदाहरण है। गीताञ्जलिके एक गान-की ये पंक्तियाँ क्या हिन्दी भाषा नहीं कही जा सकती हैं?

अन्तर मम विकशित कर अन्तर तर हे!
निर्मल कर, उज्ज्वल कर, सुन्दर कर हे।
जाग्रत कर, उद्यत कर निर्भय कर हे!
मङ्गल कर, निरलस निःसँशय कर हे!

पं० बङ्किमचन्द्र चटर्जी, बाबू अरविन्द घोष आदि विद्वानोंने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिके प्रचार एवँ उनकी शिक्षा-लाभ करनेकी सम्मति दी है। पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी जीने अपने लेख "हिन्दीकी वर्तमान अवस्था" में एक बङ्ग लेखक गिरीशचन्द्रघोसका लिखा एक पद्य-खण्ड उद्धृत किया है। वृद्ध-हिन्दी सेवी बङ्गाली-ब्राह्मण पण्डित अमृतलालचक्रवर्ती बी. ए. की हिन्दी-सेवाका वृत्तान्त किससे अगोचर है? हिन्दीके लिए आपने अपना जीवन उत्सर्ग करदिया है। कई एक हिन्दी पत्रोंका, योग्यता पूर्वक सम्पादन करके, विविध-विषयोंपर प्रौढ़ पुस्तकोंकी रचना करके आप हिन्दी सँसार में सचमुच अमर (अमृतके लाल) हो गए हैं। ऐसे पुरुष-रत्नका, ऐसे निःस्वार्थ हिन्दी-सेवी-का हिन्दी सँसारने क्या आदर किया है? यह प्रश्न उठतेही लज्जासे हमारा सिर नीचा हो जाता है। कहाँ गए हमारे हिन्दी-भाषी वे दान-वीर पुरुष जो एक एक कवित्तके लिए, एक एक दोहेके लिए, लाख लाख रुपयोंका दान बातकी बातमें दे दिया करते थे? आज एक ब्राह्मण-हिन्दी-सेवीको अभ्यर्थनाके लिए एक सहस्र-मुद्राकाभी उपहार देनेमें हिन्दी-भाषी असमर्थ हो रहे हैं!! यद्यपि चक्रवर्तीजीके सदृश कर्म्मवीर

पुरुष अपनी निष्काम हिन्दी-सेवाके बदलेमें पुरस्कार-प्राप्तिकी आशा नहीं रखते होंगे तथापि हम हिन्दी-भाषियोंको उनका सत्कार करना विधेय है। हम इस दिशामें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ध्यान आकर्षित करते हैं ।

जिनने आधुनिक बङ्ग-साहित्य-सँसारको हिन्दी-साहित्यकी स्थिति-गतिके परिचय प्रदानका पूर्ण प्रयत्न किया है एवं पारस्परिक प्रेम-प्रकाशके पवित्र भावोंका प्रचार किया है उन रसिक-शिरोमणि बङ्ग-भाषा-विद् श्रीयुक्त रसिक लालरायका हम सबको कृतज्ञ होना चाहिए! आपने जिस सहृदयता-पूर्ण-उदारताके साथ हिन्दी-साहित्यकी आलोचनाका शुभ कार्य किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। 'भारतवर्ष' नामक बँगला मासिक पत्रमें छपे हुए उनके लेखोंसे उनकी बहुभाषा-विद्वत्ता प्रकट होती है। बङ्ग भाषाका ही नहीं वरन हिन्दीकाभी दुर्भाग्य कहना चाहिए कि ऐसे उज्ज्वल नक्षत्रसे भारत साहित्याकाश आज शून्य हो गया । "हिन्दी साहित्य ओ ताहार सेवक गण" नामक लेख में आपने लिखा है :—

"उर्दू ओ हिन्दी बाहुयुद्ध करियाँ एखन उभय जुदा (प्रथक) हइया पड़ियाछे । उर्दू एत फारसी ओ आरबी कथा उदर-सात् करिया फेलियाछे जे, हिन्दीर पक्षे ताहा दुष्पाच्य । हिन्दी प्रतिशोध लइवार अभिप्राये उड़िया ओ अन्नयी-विद्या सागरी बाँगलार न्याय प्रचुर संस्कृत शब्द आत्म-सात् करितेछे । किन्तु आमरा एकलेइ भूलिया जाइतेछि जे, संस्कृत सहस्र वत्सरेर ढेउ खाइया आङ्गिया-चूरिया हिन्दी—बाँगलाय आसिया दाँडाइयाछे । सेइ भाङ्गा शरीरे मूल-संस्कृतेर एक काटाम आर जोड़ा लागिबे कि? हिन्दी ओ उर्दू किछुकिछु वर्जन ओ ग्रहण नीति अनुसरण करियाँ आबार कोला कुलि करिते चेष्टा करिबे मङ्गल हइत । बाङ्गला देशे ओ मुसलमानी-बाङ्गाला आमादेर केताबी साधु बांगलाके आज काल एकटु विभीषिका देखाइतेछे ।"

आगे चलकर अपने लेखका अन्त करते हुए राय महोदय कहते हैं :—

"हिन्दी साहित्येर अमूल्य आकरे मुसलमान युगेर भारतेतिहासे नूतन आलोक पातेर उपादान प्रच्छन्न रहियाछे । भूमण्डलेर विभिन्न प्रान्ते भारतेर अन्न जीवी ओ श्रमजीवी औपनिवेशिक-दिगेर भाषा हिन्दी । अध्यवसायी माड़ोयारी वणिक् हिन्दी भाषा बहुदेशे प्रचार करिते छेन । अतीते एवँ वर्तमाने साधु सन्यासी भक्त योगी ओ सिद्ध-पुरुष महात्मादिगेर अमूल्य उपदेश-वाणी हिन्दी-भाण्डारे रत्न राजिर न्याय विराज करितेछे । भारतीय जातीय इतिहासेर धारा-भारतवासीर धर्म्मेर, कर्म्मेर ओ चिन्तार रेखा. हिन्दीर मर्म्मे मर्म्मे अङ्कित हइया रहियाछे । से सकल सन्धान करिते हइले लुप्तरत्नेर उद्धार करिते हइले हिन्दीभाषार चर्चा ओ हिन्दी साहित्येर समादर करा आवश्यक । किन्तु सेई तत्त्वान्वेषणेर महाव्रत उद्यापन करिते हइले विपुल शक्तिर प्रयोजन । आमरा योग्यतर शक्तिमान् साहित्य सेवकदिगके सेइ गुरुभार स्कन्धे ग्रहण करिते ससम्मान आह्वान करिया, अद्यकार प्रबन्धेर उपसँहार करितेछि ।"

पं० भूदेवमुखोपाध्याय सी. आई. ई. ने बहुत पहलेमें हिन्दीकी सेवा की थी एवँ उसके प्रचार-में सहायता दी थी ।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसादशास्त्रीजी हिन्दीमें यदाकदा लेख लिखा करते हैं एवँ उससे प्रेम रखते हैं । इसी भाँति महामहोपाध्याय श्रीयुत गणनाथ सेन एम ए. एल. एम. एस. वैद्य.वतँस, हिन्दी भाषाके बड़े प्रेमी हैं और हिन्दीका उत्तम ज्ञान रखते हैं । सर गुरुदास बनर्जीका नामभी हिन्दीके हित चिन्तकोंमें लिया जा सकता है ।

प्राच्य-विद्या-महार्णव, बँगला विश्वकोष-कार श्रीयुत नगेन्द्रनाथ बसुने "हिन्दी-विश्वकोष"

प्रकाशनका निश्चय करके और कुछ भाग प्रकाशित करके हिन्दीका महदुपकार साधित किया है। जिस " वसन्त पंचमी " के सन्ध्या कालमें आपके नूतन निर्मित प्रशस्त भवनपर बङ्ग-सुधि-समाज एकत्रित हुआ था और जिस दिन आपने उपस्थित विद्वन्मण्डलीसे अपने 'विश्व कोष' के हिन्दी संस्करणके पूर्ण होनेके लिए आशीर्वाद और शुभ-कामनाके लिये प्रार्थना की थी उस समय मुझेभी वहाँ उपस्थित रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उत्सवमें बङ्ग-कविता और संगीतके साथ हिन्दीकोभी आदर प्रदान किया गया था और पं० चन्द्रशेखरपाठक रचित हिन्दी कविता और गीतकाभी पाठ हुआ था।

श्रीयुत पं० पँचकौड़ी बनर्जी महोदय एक हिन्दी पत्रके सम्पादक रह चुके हैं और हिन्दी के सुलेखक होनेके अतिरिक्त हिन्दी भाषाके एक सुवक्ताभी हैं। कलकत्तेवाली सम्मेलन-बैठक में आपने प्रसिद्ध वक्ता बाबू विपिन चन्द्र पालकी गगन-कम्पकारिणी दर्पपूर्ण वक्तृताके पश्चात् जो " सिंहके घनघोर गर्जनमें यदि कुछ रस है, कोयलके पंचम स्वर-सँयुक्त गानमें कुछ रस है तो कौवेकी काँव काँवमेंभी कुछ रस है" कहते सभाको हास्यरसके आनन्दमें मग्न करा दिया था, उसका स्मरण बहुतोंको बहुत दिनों तक रहेगा।

हिन्दीका एक बड़ा भारी उपकार पुरुलिया के वकील श्रीयुत मदनमोहन चौधरीने किया है। आपने हिन्दीके अमूल्यरत्न " राम चरितमानस " का बङ्ग पद्यानुवाद करके उसे सानुवाद समूल बङ्गाक्षरोंमें प्रकाशित करनेका जो शुभानुष्ठान किया है वह एक दम नई बात है। इससे बङ्गदेशमें हिन्दीके प्रचारमें बड़ा लाभ होगा। हिन्दी माता इन वकील महोदयकी सेवा-से परम प्रसन्न है और उन्हें शतशः साधुवाद निवेदन करती है। किसी हिन्दी-भाषीने आपको जो एक पद्य भेजा था उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:-

श्री तुलसीदास कृत, पूज्य-पुण्य रामायण
संँसार-विख्यात-सुधाभाण्ड।
मदन मोहन कृत तार बङ्ग-अनुवाद
पाइलाम आजि बालकाण्ड ॥
आहा कि अमृत मय सुमधुर पद्यचय
परिपूर्णपदहिअनुवाद।
श्री गोंसाई कवि-रत्न देखियाँ ए साधुयत्न
देन शत शत आशीर्वाद ॥
नागरी भारती भव्य चिर उपकृता आज
देन शत शुभ साधुवाद
नित शत वर्ष अन्ते बङ्ग भूमि पाइ आछे
तुलसीदासेर काव्य-स्वाद।

बङ्गाली हिन्दी लेखकोंमें "घोष-बन्धु" का नाम आदरसे लिया जाता है। बाबू गिरिजा कुमार घोष (लाला पार्वती नन्दन) और उनके अनुज बाबू शैलजा-कुमार घोष दोनों ही हिन्दीके सुलेखक और ग्रन्थकार हैं। बाबू गिरिजा कुमार जी कई हिन्दी पत्रोंके सम्पादकभी रह चुके हैं। " सम्मेलन-पत्रिका " काभी आपने सम्पादन किया है।

" प्रकृति " के अनुवादक बाबू द्वारिकानाथ मैत्र ए. एल. जीभी हिन्दीके सुलेखकोंमें से हैं।

'महाभारत' के हिन्दी अनुवादक एवँ प्रकाशक श्रीयुत शरच्चन्द्रसोमका नाम हिन्दी-साहित्य-सँसारमें सुपरिचित है। बङ्ग भाषाके सुकवि कूचविहारके बाबू अखिल चन्द्र पालित हिन्दी-के बड़े प्रेमी हैं। " स्वदेश-बान्धव " में आपने कई हिंदी लेख छपाये थे। ये 'देवनागर' के एक मुख्य लेखक एवँ प्रचारेच्छुक थे। आप " सत्यबन्धुदास " नामसे 'देवनागर' में लेख लिखा करते थे।

श्रीयुत पण्डित कोकिलेश्वर भट्टाचार्य एम. ए. भी हिन्दीके बड़े प्रेमी हैं और देवनागरी लिपिके प्रचारकोंमेंसे हैं। "मेसमेरिजम-में सिद्धहस्त" पण्डित जगदीशचन्द्र मित्रकी एक लेखमाला "श्री कमला" में निकल रही है। सरस्वतीकी पुरानी फाइलोंमें बाबू कुमुद-बन्धु मित्र, श्रीमती बङ्गमहिला भट्टाचार्य, प्रमथनाथ भट्टाचार्य, विनयकृष्ण मुखोपाध्याय, और भुजङ्गभूषण भट्टाचार्यके लेख मिलते हैं। श्रीयुत प्रियोनाथ बसक बी. ए. एल. टी. का लेख हितकारिणीमें अकसर छपा करता है। मेजर वामनदास बोसका एक हिन्दी लेख 'मर्यादा' में निकला था। श्रीयुत राखालदास बन्द्योपाध्याय एम. ए. के नाम पर एक लेखमाला "पाटलिपुत्र" में छपती थी। अध्यापक विनय-कुमार सरकार एम. ए. ने अपने रचित अंगरेजी और बँगला ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद करने करानेकी सम्मति देकर अपने हिन्दी-अनुरागका परिचय प्रदान किया है। आपने कलकत्तेके साहित्य सम्मेलनकी बैठकमें "हिन्दू-साहित्य प्रचारक" नामक एक हिन्दी निबन्ध का पाठ किया था।

कलकत्तेके प्रसिद्ध वैद्यरत्न श्रीयुत योगीन्द्र-नाथ सेन एम. ए. के परिवारमेंभी हिन्दीका अच्छा आदर है। आपके एक छोटे भाई ने "बङ्गीय-साहित्य-परिषद्" मन्दिरमें जब हिन्दीके कोविद प्रवर आमन्त्रित होकर उपस्थित थे तब हिन्दीमें एक सुन्दर वक्तृता दी थी। उस वक्तृताका सार "भारतमित्र" मेंभी छपा था।

आराके मासिक मनोरञ्जनमें "मीमांसा दर्शन" पर जो मौलिक लेखमाला छप रही थी उसके लेखक अध्यापक शरच्चन्द्र घोषाल एम. ए., बी. एल., सरस्वती, काव्यतीर्थ, "विद्याभूषण", "भारती" से हिन्दीको बहुत कुछ आशा है। उसी पत्रमें श्रीयुत अघोरनाथ सन्याल बी. ए., का "विश्वकाव्य" नामक एक सुन्दर लेख निकला था। बाबू ज्योतिषचन्द्र घोषकी लिखी एक हिन्दी कविता भी उसी पत्रमें हमारे पढ़नेमें आई थी। उस किता का प्रथम पद्य यह है :—

कुमुद कुसुम कल कान्ति युक्त गोरे तनधारी।
विमल व्योम विधु-वदन तिमिर ताप-त्रयहारी॥
भूति विभूषित देह नेहमय त्रिभुवन-स्वामी।
जयति त्रिपुर तम-सूर्य दयानिधि नित्य निकामी॥

(मासिक मनोरञ्जन भाग ३, संख्या २, पृष्ठ २४.)

"हिन्दी-कोविद-रत्नमाला" में दो बङ्ग-महिला हिन्दी लेखिकाओंके चित्र चरित्र छप चुके हैं। इन दोनों महिलाओंने हिन्दीमें उत्तमोत्तम ग्रंथ प्रणयन किये हैं। हम सब को इनका कृतज्ञ होना चाहिए। इनके नाम हैं:-

१ श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी।
२ ,, हेमन्त कुमारी देवी भट्टाचार्य।

पञ्जाब प्रवासी बाबू नवीनचन्द्रराय हिन्दीके प्रसिद्ध सेवियोंमें गिने जाते हैं। आपका चित्र कोविद रत्न माला भाग १ में छप गया है। मिश्र-बन्धु विनोद भाग ३ के 'वर्तमान प्रकरण' में इन महाशयोंका नामोल्लेख है :—पी० सी० भट्टाचार्य (प्रयाग), वरदा कान्त लाहड़ी (दीवान फरीदकोट), लावण्यप्रभाबसु और शशिभूषण चटर्जी।

इनके अतिरिक्त अन्यान्य बङ्गभाषी सज्जन जो हिन्दीकी सेवा एवं उपकार कर रहे हैं उनके नाम धामका उल्लेख यदि नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि मुझे उनकी हिन्दी-सेवासे परिचय नहीं है। माता हिन्दी उन सबकी कृतज्ञ है

जो किसी न किसी रूपमें गुप्त या प्रकटभाव से हिन्दी भाषा एवँ देवनागरी लिपिके प्रचार-का प्रयत्न कर रहे हैं या करेंगे ।

हमारे जबलपुरस्थ 'स्वयं सेवक समिति' के उपनायक बाबू सुरेशचन्द्र मुकरजी बी.ए. एल. एल. बी. जीने जो श्रम स्वीकार किया है वह आपके हिन्दी प्रेमका उत्तम उदाहरण है। आपका एक सुपाठ्य हिन्दी लेखभी हितकारिणी पत्रिकामें प्रकाशित हो चुका है आशा है कि आप मातृ-सेवा करते रहेंगे। हम सबको आपका कृतज्ञ होना चाहिये ।

इण्डियन प्रेसके मालिक श्रीयुत बाबू चिंतामणि घोषके द्वारा हिन्दीका अभूतपूर्व हित-साधन हुआ है । आपका हम सबको कृतज्ञ होना चाहिए । 'बंगवासी', 'हितवार्ता', 'वीरभारत' के मालिकोंनेभी हिन्दीका बड़ा उपकार किया है 'लखनऊ' के एँ० ओ० प्रेसके मालिकनेभी कई एक उत्तम उत्तम ग्रंथ हिन्दीमें प्रकाशित किये हैं ।

मराठी-भाषा-भाषी ।

महाराष्ट्र-भाषा-भाषी हिन्दी-हितैषियोंमें महाराज बड़ौदाका नाम सर्व प्रथम लिया जायगा । महाराज बड़ौदा-नरेश श्रीमान श्री सयाजी राव गायकवाड़के महोपकारोंको हिन्दीमाता आजन्म नहीं भूल सकती । महाराज गायकवाड़ने हिन्दीको भारत व्यापिनी भाषा बनानेके लिये जितना उदार प्रयत्न किया है उतना किसीभी हिन्दी-भाषा-भाषी राजा महा-राजाके द्वारा न तो हुआ है, न होनेकी आशा है। महाराज बड़ौदाने हिन्दीको अपनी मातृ-भाषासेभी अधिक आदर प्रदान करनेकी महो-सहृदयता दिखाकर अपनी भारत-हितैषिताका पूर्ण परिचय प्रदान किया है । कहाँ हैं हमारे हिन्दीको मातृ-भाषा कहनेवाले हिन्दी भाषी राजा महाराजा ? क्या उनकी आँखे अबभी नहीं खुलतीं ! महाराजा बड़ौदाका आदेश जिसे श्रीमानके सुयोग्य सचिव पण्डितवर रमेशचन्द्र दत्तने बड़ौदाके "महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन" के तीसरे दिनकी बैठकमें सुनाया था, क्या आप लोगोंके कर्णगोचर नहीं हुआ ? "एक लिपि और एक भाषा" पर विचार करने वाली बैठकमें दत्त महोदयने कहा था:—

महाराज गायकवाड़को इस सम्मेलनसे बहुत सन्तोष हुआ है। उन्होंने मुझे यह कहनेकी आज्ञा दी है कि वे आशा करते हैं कि इसमें जो आन्दोलन हुआ है उसका परिणाम अच्छा ही होगा। एक भाषा और एक लिपि करनेके लिए हमें गवर्नमेंटके भरोसे न रहना चाहिए। उसका प्रचार धीरे धीरे हमें खुदही करना चाहिए। हमें अपने बच्चोंको हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि सिखानी चाहिए। कुछ समयमें जब बच्चे उन्हें सीख जायँगे और वे बड़े होंगे तब उनका प्रचार-भी बढ़ेगा। उस समय हम लोग गवर्नमेंटसे इस भाषा और लिपिके सर्व-व्यापक प्रचारके लिये यदि प्रार्थना करेंगे तो हमारी प्रार्थना पर गवर्न-मेंट जरूर ही ध्यान देगी। एक बात हमें और करनी चाहिए। हमें अच्छी अच्छी पुस्तकें देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषामें प्रकाशित करना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होगा। भिन्न भिन्न प्रान्त वाले ऐसी पुस्तकें पढ़कर इस लिपि और इस भाषाको सहजमें सीख जाँयगे ।

(सरस्वती दिसम्बर १९०९. पृष्ठ ५३६.)

महाराजके आदेशानुसार बड़ौदा दरबारका सरकारी गजट नागरी लिपिमें छपता है।

डाक्टर भाण्डारकर हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके भारतव्यापी प्रचारके इच्छुक हैं। आप

बड़ौदाके ऊपर लिखी बैठकके सभापति थे। उक्त बैठकके समय रायबहादुर चिन्तामणिजी वैद्यने हिन्दी भाषामें वक्तृता दी थी। आपका यह हिन्दी-प्रेम देशके लिए हितकर है।

सन् १९०८ में जो मध्यप्रदेश और बरार की प्रदर्शिनी नागपुरमें हुई थी उसमें दरबारके अवसर पर नागपुरके भोंसले राजावंश श्रीमान् राजा रघुजी रावजीने अपना भाषण हिन्दीमें करके अपने हिन्दी प्रेमका परिचय दिया था।

बरारके प्रसिद्ध-वक्ता देश-भक्त दादाजी खापर्डे महाशय तथा नागपुरके डाक्टर मुंजे हिन्दी भाषामें बड़ी सुगमता और स्वच्छन्दता से वक्तृता दे सकते हैं। प्रसिद्ध सङ्गीताचार्य पं० विष्णु दिगम्बर शास्त्री हिन्दी भाषाका बड़ा उपकार कर रहे हैं। सूर, तुलसी, मीराबाई, कबीरआदिके अमृत-मधुर सङ्गीतका प्रचार उनके द्वारा क्या बङ्गालमें, क्या महाराष्ट्रमें, क्या मद्रासमें सब कहीं सुगमतासे होता जा रहा है। हिन्दीमें ओजस्विनी और सुधास्रवि वक्तृता देनेमें आप सिद्ध-हस्त हैं।

'भारतवर्ष' नामक बँगला मासिक पत्रमें श्रीयुत रसिक मोहन राय एम. ए. ने लिखा थाः- "कलिकाता हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-मण्डपे विशुद्ध हिन्दी भाषय जे सुललित वक्तृता प्रदान करियाछिलेन, ताहार मधुर झंकार एखन ओ आमादेर कर्णे वाजितेछे।" यह अक्षर अक्षर सत्य है।

पलुसकर महोदय साहित्य और सङ्गीतके सामञ्जस्य (Harmony) पर विशेष जोर दिया करते हैं। आपको विविध साहित्योंकाभी उत्तम ज्ञान है।

पण्डित माधवराव सप्रे बी. ए. ने हिन्दीकी जो सेवा की है और कर रहे हैं उसके लिए हम सबको उनका चिरकृतज्ञ होना चाहिए। "छत्तीसगढ़ मित्र" को सम्पादित और प्रकाशित कर आपने हिन्दी साहित्यमें समालोचनाका एक नूतन मार्ग प्रदर्शित कर दिया। साथही आपने अरण्य छत्तीसगढ़के नामको भारतव्यापी बनाकर साहित्य-संसारमें सुपरिचित करनेका पुण्य अर्जन किया।

"हिन्दी-केसरी", "हिन्दी-ग्रन्थ-माला" आदि आपके साधु और उच्च उद्देश-पूर्ण कार्योंके प्रतिबिम्ब हैं। 'दासबोध', 'भारतीय युद्ध' आदिके हिन्दी अनुवाद द्वारा आपने हिन्दीका बड़ा हित-साधन किया है। आप हिन्दीके एक बड़े ही प्रतिभावान, दक्ष और विद्वान् लेखक माने जाते हैं। समालोचकभी आप उच्च कोटिके हैं। आपकीही कृपा और परिश्रमका यह फल है कि आज हिन्दीमें महात्मा तिलक महाराजके "गीतारहस्य" का अनुवाद प्रस्तुत होकर हिन्दी संसारमें आत्मज्ञान-सुधा वर्षण कर रहा है। आपका चित्र चरित्र 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' भाग दो में छप चुका है।

"छत्तीसगढ़-मित्र" के सम्पादन और प्रकाशनमें पं० रामराव चिंचोलकर बी. ए. और श्रीयुत वामन बलिराम लाखे बी. ए. नेभी उचित योग प्रदान किया था। सच तो यह है कि इस महाराष्ट्र "त्रिमूर्ति" की लेखन-स्फूर्ति हिन्दी साहित्यके कई अभावोंकी पूर्तिमें बलवान थी पर "मित्र" का असमय अस्त हो जानेसे वह स्थगित सी हो गई।

डाक्टर लिमयेने हिन्दी—भाषियोंमें राष्ट्र भाव जागृत करनेका बड़ा यत्न किया था। उनका "स्वदेशी आन्दोलन" पर विद्यार्थियों द्वारा लेख लिखाना और उन्हें पुरस्कृत करना उनके हिन्दी प्रेमका ज्वलन्त दृष्टान्त है

"हिन्दी चित्रमय जगत" तथा हिन्दीके कई उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके प्रकाशक "चित्रशाला प्रेस" पूनाके मालिक श्रीयुत वासुदेव रावजी जोशी-

के द्वारा हिन्दीका जैसा उपकार हो रहा है वह सब पर विदित ही है। इनके निस्वार्थ हिन्दी-प्रेम और उदारताके बिना आज हिन्दीको "दासबोध" "भारतीय युद्ध", "रविवर्म्माके चित्र" आदि ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सकते।

"चित्रमय जगत" के वर्तमान सम्पादक श्रीयुत पण्डित भास्कर रामचन्द्र भालेराव हिन्दी के एक सुलेखक और सुकवि हैं। आपने खोज बलसे "महाराष्ट्रोंमें हिन्दी-चर्चा" पर नूतन प्रकाश डालकर हम लोगोंको उपकृत किया है। आप बड़ेही उत्साही और कर्म्मतत्पर लेखक हैं। आपके सम्पादन-कालमें "चित्रमय जगत" की अच्छी उन्नति हुई थी।

हमारे प्रान्तके श्रीयुत पण्डित विनायक-रावजीने हिन्दीकी जो सेवा की है वह आप को हिन्दी-साहित्य-संसारमें चिरस्मरणीय बनानेमें समर्थ है। उनके द्वारा की गई रामायणकी विनायकी टीकाकी प्रशँसा हिन्दीके पत्र-पत्रिकाओंने मुक्तकण्ठसे की है। आपने शिक्षा-विभागके लिए कई एक उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचे जिनका अच्छा आदर हुआ।

श्रीयुत विनायक गणेश साठे एम. ए. कृत "विकाश-वाद" हिन्दीका एक अमूल्य-रत्न है। प्रसिद्ध साहित्यिक पं० सखाराम गणेश देउस्कर ने हिन्दीकी खासी सेवा की। "प्रकृति-प्रलय" पर आपने कई लेख लिखे थे। 'देवनागर' में आप प्रायः लिखा करते थे। आपके आत्मीय पं० बाबूराव पराड़कर हिन्दी पत्र-सम्पादन-कला में सुनिपुण हैं। आप हिन्दीके उन निःस्वार्थ सेवियोंमेंसे हैं जिनकी संख्या अत्यल्प है। खेद है आजकल आपपर विपत्तिकी छाया पड़ी हुई है।

ज्ञानेश्वरी (गीता भाष्य) के हिन्दी अनुवादक श्रीयुत रघुनाथ माधव भगाड़े एवँ 'रामचरित मानस' के मराठी गद्य-अनुवादक श्रीमन्त यादवशङ्कर जागीरदार महोदयोंने हिन्दीका बड़ा उपकार किया है।

आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकर दाजी शास्त्री पदेनेभी हिन्दीके प्रचारके लिये प्रयत्न किया था।

मुँगेली जिला बिलासपुरके पं० गोपालराव जी तामस्कर एम. ए., हिन्दीमें गवेषणा-पूर्ण ऐतिहासिक एवँ अन्य विषयोंपर लेख लिखा करते हैं। आप एक सुलेखक हैं। आपका हिन्दी मौलिक नाटक "मानी वसन्त" प्रकाशित हो चुका है। आपसे हिन्दीको बड़ी आशा है।

श्रीयुत शंकरराव डबीरने श्रीयुत पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदीजी द्वारा सम्पादित और वर्तमान हितकारिणी पत्रिकाके रूपमें परिवर्तन "शिक्षा-प्रकाश" नामक पत्र प्रकाशित करके हिन्दीकी अच्छी सेवा की थी।

श्रीयुत पाण्डुरंग खान खोजे बी०, एस० सी० एम०डी०सी० के अनेकों सुन्दर सुन्दर लेख 'सरस्वती' में निकल चुके हैं। आप एक कर्म्मवीर पुरुष हैं। आपकी लेखनी हिन्दी लिखनेमें सिद्धहस्त है। आपका "गुरुबन्धु" निबन्ध (सरस्वती जून १९१२) हम जब जब पढ़ते हैं रोने लगते हैं। आपका हम सब को अभिमान है।

श्रीयुत पं० लक्ष्मण गोविन्द आठले (रायगढ़ म० प्र०) छात्रावस्थासे हिन्दीमें लेख लिखा करते हैं। आप आजकल बी० ए० क्लासमें पढ़ते हैं। 'प्रभा', 'हितकारिणी' 'सरस्वती' 'कमला' आदिमें आपके उत्तमोत्तम लेख समय समयपर छपते रहते हैं। हिन्दी-साहित्यसे आप का प्रगाढ़ अनुराग है। आपके द्वारा हिन्दी का विशेष उपकार होनेकी आशा है।

श्रीयुत गनपतराव खेर बी० ए० "छत्तीसगढ़ मित्र" में लेख लिखा करते थे।

श्रीयुत अनन्त बापू शास्त्री, मिः सोमनाथ भाड़खण्डो बी० ए०, गोपालराव रंगनाथ, विनायक सदाशिव आदिके लेख "देवनागर" में मिलते हैं।

श्रीयुत कृष्णकेशव सिंगवेकर तथा श्रीयुत रघुनाथ केशव सर्वटे, हिन्दीके लेखकोंमेंसे हैं।

'अव्यक्तबोध' के हिन्दी अनुवादकने हिन्दी-को अपनाकर धन्यवादका कार्य किया है।

पं० रामचन्द्र आनन्दराव देशपाण्डेयने "शिक्षा-विधि" आदि पुस्तकें हिन्दीमें लिखी हैं। पं० हरिगोपाल पाध्ये बी० ए० ने मध्यप्रदेशकी हिन्दी-पाठशालाओंके लिये कई एक पाठ्य-पुस्तकें लिखी थीं।

महाराष्ट्र सज्जन श्रीयुत पं० हरिनारायण आगटे ने "ज्ञानसागर" नामक एक उत्तम वैज्ञानिक ग्रन्थ रचा है। ये मध्यप्रदेशमें तहसीलदार थे।

श्रीयुत भीकाजी बिलोरे बी० ए० की मधुर कविताएँ 'प्रभा' में प्रायः निकला करती हैं।

बड़ौदाके श्रीयुत आत्मारामजी हिन्दीके एक विद्वान् हितचिन्तक हैं। वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री संस्कृतमें उच्चकोटिके विद्वान् होकर भी हिन्दीमें लेख लिखा करते हैं।

श्रीमान् सरदार राव बहादुर माधवराव विनायक किबे एम० ए० (इन्दोर) हिंदी भाषा और नागरी लिपिके व्यापक प्रचारके पक्ष-पाती हैं।

श्रीयुत पं० हरिरामचन्द्रदिवेकर श्रीयुत दशरथ बलवन्त जाधव, श्रीयुत सदाशिव वैशम्पायन बी० ए०, एल एल.बी०, आदि महाशयभी हिन्दीसे प्रेम रखते एवँ उसमें लेख लिखा करते हैं।

"नवनीत" तथा "तरङ्गिणी" मेंभी कई एक महाराष्ट्र विद्वानोंके लेख छपते हैं। खेद है हमें उनके नाम अभी ज्ञात नहीं होरहे हैं।

मराठी भाषा-भाषी पुरुषरत्नोंनेही हिन्दीभाषाकी सेवा की हो सो नहीं, महिलाओंनेभी हिन्दी भाषा से प्रेम करना आरम्भ करदिया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीमती गोदावरी बाईका सम्मेलनके इस अधिवेशनमें हिन्दी भाषामें कियाहुआ भाषण है।

श्रीमती सौभाग्यवती कमलाबाई किबे (देवास) ने श्रीयुत पंडित किशोरीलालजी गोस्वामीलिखित 'राजकुमारी' नामक हिन्दी भाषाके उपन्यासका मराठी भाषामें अनुवाद किया है।

गुजराती-भाषा-भाषी।

गुजरातीभाषा-भाषी हिन्दी-सेवियोंमें प्रातः स्मरणीय स्वामी दयानन्द सरस्वतीका स्थान बहुत ऊँचा है। आपके द्वारा पंजाब में हिन्दी का बहुत प्रचार हुआ है। आप हिन्दीके हृदय से हितचिन्तक थे। आपका सचित्र जीवन-चरित्र, "हिन्दी कोविद रत्नमाला" के भाग १ में छप चुका है।

कविवर गोविन्द गिल्लाभाई रियासत भाव-नगरमें रहते हैं। आप गुजरातीके उच्चकोटि-के कवि तो हैं ही, साथ ही हिन्दीके भी उत्तम कवि हैं। आपने १५. १६ काव्य-ग्रंथ हिन्दीमें रचे हैं। आपके द्वारा गुजरातियोंमें हिन्दी-का प्रचार होरहा है जो भारतके लिए शुभकर है।

श्रीयुत छबीलदास'मधुर' हिन्दी गद्य और पद्य दोनोंमें अच्छी रचनाएँ करते हैं। इनके तथा श्रीयुत केशवराव आबाजी कारखानीस, श्रीयुत हिम्मतलाल काशीराम व्यास, तथा कमलाशङ्कर प्राणशङ्करके लेख "देवनागर" में छपा करते थे।

श्रीयुत वैद्यप्रवर पं० जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी हिन्दीमें एक वैद्यक विषयक पत्र निकाल कर हिन्दीके प्रचारमें बड़े सहायक हो रहे हैं।

प्रसिद्ध देश-भक्त, महात्यागी वीर श्रीयुत मोहनचन्द्र कर्मचन्द्र गाँधी हिन्दी प्रचारके पक्षपाती हैं। आप हिन्दीमें वक्तृता देते हैं

एवँ आप समय पड़नेपर हिन्दी भाषामें पत्र भी लिखते हैं । आपके दो तीन हिन्दी पत्र "इन्दु" में प्रकाशित हुए थे ।

काशी 'हिन्दू कालेज' के अध्यापक जे० एन० ऊनवाला हिन्दीमें वक्तृता दिया करते थे ।

"पाटलिपुत्र" ३१वीं अक्टूबर १९१४ में "गुजरातमें बृजभाषा" शीर्षक लेख निकला है । उसमें लिखा है :— स्वयँ भुज-नरेश महाराज लखपतसिंह बृजभाषाके अच्छे कवि और ग्रन्थकार थे और उनके रचे ग्रन्थ कच्छ दरबारके सुशोभित उत्तम प्राचीन पुस्तक भण्डार की शोभा बढ़ा रहे हैं । उस पुस्तक भण्डार की ओर नागरी प्रचारिणी सभा या सम्मेलन की दृष्टि जानी चाहिए ।

गुजरातियोंमें बृजभाषाकी अबभी थोड़ी बहुत चर्चा है यह बात गुजराती पत्रोंके देखने से विदित होती है । प्रसिद्ध दैनिकपत्र "मुम्बई समाचार" में हर शनिवारको "पञ्चामृत" नाम का एक पद्यात्मक लेख छपते देखा था । उसमें सूर, तुलसी, कबीर, गिरधर, आदि हिन्दी कवियोंकी उक्तियाँ गुजराती भावार्थ सहित दी जाती थीं । इस "पञ्चामृत" लेखमालाके लेखक "मुम्बई समाचार" से प्रति मास ५०) पाते थे । "मुम्बई समाचार" पारसियोंका निकाला हुआ अखबार है । जब उसमें बृज-भाषा-साहित्यकी चर्चाके लिये एक वैतनिक लेखक रक्खा गया है तब अन्दाज लगाना चाहिये कि गुजरातियोंमें बृजभाषाकी अबभी कितनी चर्चा है ।"

भुजमें ब्रजभाषाके अबभी अच्छे कवि हैं, उन में से एक पंडित जीवराम अजरामर राजगुरु हैं । भट्टार्क श्री कनक कुशलजीभी ब्रजभाषाके कवि थे । ये अच्छे विद्वान् थे । इनने "राजा लखपत जी" के यश वर्णनमें काव्य लिखा था । एक नमूना देखिए :—

> अचल विन्ध्यके अनुज किधौं ऐरापत उध्धत ।
> विकट वीर वैताल 'कनक' संघट अब अद्भुत ॥
> अरिगढ़ गंजन अतुल सदल शृंखल बल तोरत ।
> झरत गण्ड मद भरत सजल सुण्डनि झक झोरत ॥
> ऐसे प्रचंड सिन्धुर अकल, महाराज जिय मानि अति ।
> पठये दिल्लीश लखपती को, कहे जगत धनि कच्छपति ॥

हमारे स्वा० का० समितिके अन्यतम मंत्री श्रीयुत पं० दयाशङ्कर झा बी. एस. सी. एल. एल. बी. एवँ उनके सुयोग्य ज्येष्ठ भ्राता प्रोफेसर पं० लज्जाशङ्कर झा बी. ए गुजराती भाषा-भाषी होकरभी हिन्दी की सेवामें जो भाग ले रहे हैं वह नितान्त प्रशंसनीय है । श्रीयुत पं० केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी महाशय ने हिन्दी में सतीमंडल नामक स्त्रियो-पयोगी एक उत्तम ग्रंथ लिखा है ।

मद्रास प्रान्तके भिन्न भिन्न भाषा-भाषी ।

स्वर्गवासी माननीय कृष्ण स्वामी आइयरका नाम मद्रास प्रान्तके हिन्दी-हितैषियोंमें बड़े आदरके साथ लिया जाता है । आपने इलाहाबादकी कांग्रेसके मण्डपमें एक-लिपि-विस्तार विषयक जो वक्तृता दी थी उसे सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गए थे । आप देवनागरी अक्षरोंके व्यापक प्रचारके पक्षपाती और हिन्दीकेभी हित-चिन्तक थे । देवनागरी वर्णमालाको निर्दोष बनानेकी इच्छासे इन्होंने कुछ नये वर्णोंकी ईजादके लिए विज्ञापन दिया था और सबसे अच्छी वर्ण-कल्पना करनेवालेको पुरस्कार भी देना चाहा था । आपकी मृत्युसे हिन्दी प्रेमियों को बड़ा दुःख है ।

यह हर्षकी बात है कि इस सम्मेलनमें मद्रास प्रांतसे एक प्रतिनिधि आये हुए हैं जिनका शुभनाम श्रीयुत वी. वी. वर्धाचार्य बी. ए. एल. एल. बी. है ।

श्रीमान् शामशास्त्री बी. ए. अपनी विद्वत्ता-बलसे "देवनागरी" अक्षरोंकी उत्पत्तिपर

"इण्डियन ऐण्टिक्वेरी" में लेख लिखकर दिगन्त व्यापिनी कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं। उनके पूर्व्व कई विद्वान् लोगोंकी यह धारणा थी कि "देवनागरी वर्णमाला एवँ भारतकी अन्य वर्णमालाएँ भारतवासियोंकी निजकी सम्पत्ति नहीं हैं। इस सिद्धान्तके दीक्षागुरु युरोपीय विद्वान् हैं" पर आपने इस कलङ्क-कालिमाको दूर कर दिया। सर शेषाद्रि अय्यरको तन्त्रशास्त्रका प्रसिद्ध ग्रन्थ "सौन्दर्यलहरी" की यह श्लोक-पंक्ति-शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीत किरण :—

पढ़ाते एवँ इसकी व्याख्या करते समय देवनागरी अक्षरोंकी उत्पत्तिका विचार उठा। आपने सोचा कि तान्त्रिक चित्रोंसे इस वर्णमालाका जन्म हुआ है। यह वर्णमाला "फिनीशिया" से यहाँ नहीं आई है।

(देवनागर वत्सर १ अङ्क ६ पृष्ठ २३२)

हिन्दी भाषा और लिपिके इतिहासके साथ आपका नाम सदैव बड़े आदरसे लिया जायगा।

देवनागरमें हमें नीचे लिखे मद्रासी हिन्दी-प्रेमी लेखकोंके नाम मिलते हैं:—

श्रीयुत वरकै रामस्वामि ऐयङ्गार बी. ए.

एन कृष्णस्वामि ऐयङ्गार.

ग. सुब्बाराव.

सितम्बर १६१६ की सरस्वतीमें हिन्दीके सुकवि एवँ सुलेखक श्रीयुत पं० गौरचरण गोस्वामी का "मदरास प्रान्तमें हिन्दी" शीर्षक लेख छपा है, उससे पता लगता है कि जिस प्रान्तमें हमलोग हिन्दीकी चर्चा बिलकुल न होगी समझते थे और समझते हैं वहाँ हिन्दीका किसी न किसी रूप में आदर अवश्य हो रहा है और उसके "भारत व्यापी सरल भाषा" होनेका प्रमाण प्रदान करता है।

उस लेखमें श्री गोपाल भट्ट गोस्वामीका एक हिन्दी गीत उद्धृत किया गया है।

युरोपियन हिन्दी-प्रेमी।

डाक्टर सर ग्रियर्सन, फ्रेड्रिक पिंकाट, डाक्टर हार्नलि, मिस्टर ग्राउस, तथा रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज़ साहबने जो हिन्दी-सेवा की है वह सब पर प्रकट है। हिन्दी कोविद रत्नमाला और 'मिश्र-बन्धुविनोद' में आप लोगोंका उल्लेख आया है।

"भाषा भास्कर" प्रणेता पादरी एथरिङ्गटन साहबने इस उत्तम ग्रन्थको लिखकर हिन्दीका बड़ा उपकार किया है।

खेदका विषय है कि आजकलके अमेरिकन तथा युरोपियन पादरी-गण तथा I. C. S. के मेम्बर लोग हिन्दी सीखने एवँ उसकी सेवा करने में नितान्त शिथिल हो रहे हैं। क्या हमें अब उन मेंसे डाक्टर सर ग्रियर्सन जैसे हिन्दी-प्रेमी विद्वान् नहीं मिलेंगे ?

कई वर्ष हुए श्रीयुत ए. बी. नेपियर साहबने जो उस समय रायपुरके डिपटी कमिश्नर थे, हिन्दीके "एकवर्ड काव्य" के लिए उसके रचयिता पं० विश्वनाथ प्रसाद दुबे को ५००) पाँचसौ रुपयोंका पुरस्कार प्रदान करनेकी उदारता दिखाई थी।

आधुनिक I. C. S. के मेम्बरोंमें बहुभाषा पारंगत पारसी विद्वान् भारतके गौरव गेह स्वर्गीय श्रीयुत कामा हिन्दीकेप्रति अपूर्व्व अनुराग रखते थे। सुनते हैं मृत्युके पूर्व आप कविवर बिहारीलाल कृत "बिहारी शतसई" का अध्ययन करते थे। आप की असामयिक मृत्युसे न केवल हिन्दी साहित्य को किन्तु संसारके मुख्य मुख्य समस्त साहित्योंको हानि पहुँची है।

उड़िया-भाषा-भाषी।

राय बहादुर कविवर राधानाथ रायऔर राय बहादुर कविवर मधुसूदन राय उभय महोदय हिन्दीके बड़े प्रेमी थे। वे नागरी लिपि एवँ हिन्दी भाषाके व्यापक प्रचारके पक्षपाती थे।

इसी प्रकार बालेश्वरके प्रसिद्ध कवि बाबू फकीर मोहन सेनापतिभी हिन्दीके साथ सहानुभूति रखते हैं। आपने अपने कई एक उड़िया उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद करनेकी अनुमति दी है।

बामण्डाके सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा सर बासुदेव सुड़ल देव के. सी. आई. ई. ने हिन्दीमें "धर्म्म शिक्षा" नामक एक ग्रन्थ लिखा है जो अपूर्ण है। इस ग्रन्थको आपके सुयोग्य-पुत्र राज-कवि राजा श्री सच्चिदानन्द त्रिभुवन देवने प्रकाशित किया है। उभय पिता-पुत्र हिन्दी भाषा के हितचिन्तकोंमेंसे थे। इनकी मृत्युसे हिन्दी को हानि पहुँची है।

खरियार (रायपुर) के राजा साहब श्रीयुत वीर विक्रमदेवने "राज कुमार शिक्षा" तथा 'गजशास्त्र' नामक दो उत्तम ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित कराये थे। आपने 'राम चरित मानस' का उत्कलानुवाद किया है जो अप्रकाशित है। आप उत्कल भाषाके एक धुरन्धर लेखक और कवि थे। खेद है कि आपकी मृत्यु केवल ३७ वर्षकी अवस्थामें ही होगई।

रेमण्डा ग्राम (सम्बलपुर) निवासी पं० स्वप्नेश्वर दास ने 'रामायण' का उत्कल पद्यानुवाद करके हिन्दीका बड़ा उपकार किया है। देखें आपका यह अनुवाद कब तक प्रकाशित होता है।

श्रीयुत पण्डित बालमुकुन्द होता (सम्बलपुर) हिन्दीमें पद्य-रचना कर सकते हैं और हिन्दीसे बड़ा प्रेम रखते हैं। आपकी कविताका नमूना देखिए :—

तेरी तो महिमा विचित्र अति है मा देवि चित्रोत्पले!
तू देती सब रोज सम्बलपुरस्थों को महानन्द है।
क्यों तू परदेश में अब मुझे सन्ताप को दूर कर,
नाहीं तो सब ठौर में उलहना दूंगा तुझे मैं सदा॥

तू तो मेघ समूहसे सतत ही है पूरती पेट को
तोभी अन्य नदी समूह भय या अपनी कमाई सभी
देती है तुम को, तथापि मद से तू अन्ध है हो रही
तेरा आश्रित जो मुझे नजर से तू देखती भी नहीं॥

तू अपने तट में मुझे जब जनी काहे न करती दया
घर से भी निकसाइ के फिर महा चिन्ताग्नि में डालती।
तीर-ग्राम निवासि बन्धु जन से मिलता नहीं मैं यदि
क्या करती अब तू हा विपद्में मालुम नहीं है मुझे॥

संस्कृतके उद्भट विद्वान् पुरीवासी पं० जगन्नाथ मिश्र 'तर्क सांख्य न्याय तीर्थ' हिन्दी भाषा-के प्रचारके इच्छुक हैं। आपका "हिन्दी-पत्र" इसका प्रमाण है।

कटक, "कृष्ण प्रिया कुटीर" के श्रीयुत लाला प्रताप नारायणरायका एक लेख "देवनागर" में छपा था।

सारंगढ़ राज्यके अन्तर्गत "सरिया" नामक ग्रामक के निवासी गोविन्द साव (तेली) ने गुसाईंजी के "रामचरित मानस" तथा "भक्तमाल" आदि कई एक हिन्दी ग्रन्थोंका उत्कलभाषामें पद्यबद्ध अनुवाद किया है। ये अनुवादित ग्रन्थ ताल-पत्रों पर लिखे गए हैं और इस अंचलमें यत्रतत्र पढ़े और गायें जाते हैं। ये ग्रन्थ एक प्रकारसे लुप्त-प्राय हो रहे हैं। यदि कोई उत्कल-भाषी धनी व्यक्ति इन अनुवादों को प्रकाशित करने की उदारता दिखाते तो उत्तम होता।

यह गोविन्द साव उच्चकोटिके वैद्य और सर्प-विष-चिकित्सक थे। ये हमारे जन्मग्राममें सपरिवार कुछ कालतक रहे थे। जहांतक हमें खबर लगी है इनके पूर्व श्रीतुलसीकृत रामायण-का उत्कलानुवाद कहीं नहीं हुआ था। ५०, ६० वर्ष पूर्व इनका देहान्त हुआ। इनके अनुवादका समय आजसे कोई ७०, ८० वर्ष पूर्व्व अवश्य होगा। इनकी मातृ-भाषा छत्तीसगढ़ी हिन्दी थी, पर ये सरिया ग्राममें रहते थे जहां उड़िया भाषाका प्रचार है। अतः उड़िया साहित्यकी ओर इनकी प्रवृत्ति थी।

नितान्त खेदका विषय है कि हमें केवल अभी अभी इस ग्रामीण कोविदका परिचय प्राप्त हुआ है। यद्यपि ये हमारे ग्राममें भी बसे हुए थे और इनके परिवारके लोग हमारे ग्रामसे ६ मीलकी दूरीपर रहाकरते हैं। इनका रामायणानुवाद सरस और सरल हुआ है। आपने उसका नाम "भक्तगोविन्द रामायण" रखा है।

आप लिखते हैं:—

तुलसीदासकृत ए रामायण-सार।
अर्थ देखि लेखइ गोविन्द साहु छार॥

ये हमारे मातामहके स्नेही मित्रथे और हमारे पूज्य पितामहसे भी बड़ा स्नेह रखते थे। हम इनके ग्रन्थोंके प्रकाशनकी चेष्टाकर रहे हैं।

इनकी प्रतिमा और साहित्यप्रेमके लिए प्रति छत्तीसगढ़ निवासीको गर्व और हर्ष होना चाहिए।

भारतवर्षके भिन्न भिन्न भाषा-भाषी हिन्दी सेवियों और हितैषियोंका जो परिचय ऊपर दिया गया है उससे पता लग सकता है कि भारतवर्ष के प्रत्येक भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तमें हिन्दी भाषाके प्रेमी और उसके प्रचारक विद्यमान हैं। यह देशके अभ्युदयकी अग्र सूचना है। द्वेष, दुराग्रह और संकीर्णताकी सीमाको लाँघकर हमारे भिन्न भाषा-भाषी बन्धु भारतके कई प्रान्तोंमें प्रचलित एवँ नितान्त सरल हिन्दी भाषाको "देश अथवा राष्ट्र-भाषा" बनानेकी जो चेष्टा कर रहे हैं, वह हमारी दुर्गतियों और अधोगतियोंके दूरी करणकी दिव्य औषधि है। एक-भाषा-प्रचारसे देश अथवा राष्ट्रमें जो ज्ञान-ज्योति फैलती है, पारस्परिक मनोभाव विनिमयसे जो एकता उत्पादित होती है, एवं राष्ट्रीय साहित्य निर्माण से देशवासियोंके विचार बल और जीवनके आदर्शमें जो स्वतंत्रता और शक्ति जागृत होती है वही जातियोंके अस्तित्व और अभ्युदयका आधार है। अपनी जन्म-भूमि हिन्दुस्थानकी भलाई चाहनेवाले भिन्न भाषा-भाषी सज्जनोंसे हमारा सानुनय निवेदन है कि हिन्दीके व्यापक प्रचार और उसकी उन्नतिके पुण्यमय कार्यमें वे चेष्टावान होकर "उद्धरेत् आत्मना ऽऽत्मानम्" के आदर्श हों। ऐसा करनेसे हम अविलम्ब उत्कर्षको प्राप्त होंगे। हर्षको प्राप्त होंगे और हमारे पुण्य पूज्य प्राचीन भारतवर्षकी उस सुर-दुर्लभ-सभ्यता और स्वाधीनताको प्राप्त होंगे।

अन्तमें मैं एक प्रार्थना करता हुआ इस लेख को समाप्त करता हूँ।

हिन्दी हिन्दुस्थानकी भव्य भाषा।
हिन्दीसे हो पूर्ण सम्पूर्ण की आशा॥
हिन्दी द्वारा हिन्दका गान गाओ।
श्री हिन्दीको देश-भाषा बनाओ॥
हिन्दी प्यारी दिव्य सारल्य युक्ता।
है हिन्दीके वर्ण शब्दबोध-मुक्ता॥
हिन्दी सीखो: हिन्दके बन्धु! आओ।
श्री हिन्दीको देश-भाषा बनाओ॥

अन्य भाषा-भाषियों द्वारा कीगई हिन्दीकी सेवा।

(लेखक-श्रीयुत पंडित गणपति जानकीराम दुबे बी. ए. ग्वालियर)

हिन्दी भाषा बड़ी पुरानी भाषा है। जब धारके राजा भोजका जमाना था और विद्वान, कवि और पंडितोंका आदर उसे विद्या प्रेमी राजाके दरबारमें होता था तो उस जमानेमें भाषा-कविताके कवियोंकाभी आदर होनेका हाल "प्रबन्धचिन्तामणि" नामक ग्रन्थमें दिया हुआ है। वह प्राकृत भाषा थी और उसका ढंग वैसेही दिखाई देता है जैसे कि आगे पृथ्वीराज रासोके रचयिता चंदबरदाईने उपयोग में लाया है। चंदके समयमें भारतवर्षमें मुसलमानोंका संघर्ष शुरू हो चुका था। इसी कारण कुछ विदेशी शब्दोंका प्रयोग चंदकी कवितामें पाया जाता है। हिन्दी भाषाका प्रथम सम्बन्ध जिन अन्य भाषा भाषियोंके साथ हुआ है वे मुसलमान हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा जो उस जमाने की थी उसे केवल सीखाही नहीं, उसका दृढ़ परिचय किया उसके साहित्यको देखा और धार्मिक भावोंको ग्रहण किया। हिन्दू पुराणों, इतिहासोंके उपाख्यानोंमेंसे कितनेही प्रसंगोंका उल्लेख उनकी कवितामें दिखाई देता है। जब रहीम कहते हैं कि

> धूर उड़ावत सीस पै, कहु रहीम किमि काज।
> जिहि रज ऋषि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

तो मालूम होजाता है कि रहीमको हिन्दू इतिहास ग्रंथोंका कितना अच्छा अभ्यास था और कितनी उत्तमतासे हिन्दू भावोंको उसने अपनी कवितामें लिखा है। कृष्ण-भक्तिके सुधासागरमें सराबोर पगे हुए रसखान, ताज, तानसेन, नजीर आदि मुसलमान कवियोंकी कविता इसबातका जीवित प्रमाण है कि मुसलमानोंने केवल भाषाही नहीं सीखी, किन्तु जिस विषयको उसमें देखा, तन्मय होगये। अपना बिराना भूल गये। हम अपने ग्वालियरके ऐन साहबका एक पद्य इसकी पुष्टि में देते हैं।

> ऐनानंद फ़कीर है परमहंस निर्वान।
> डाढ़ी मूँछ मुड़ावते भस्म करैं अस्नान॥
> भस्म करैं अस्नान रखैं पीताम्बर सारा।
> जानैं एकहि ब्रह्म तुरक हिन्दू नहिं न्यारा॥
> भिक्षुक दोऊ दीनके ऐन एकही जान।
> ऐनानंद फ़कीर है परमहंस निर्वान॥

हिन्दी भाषापर कितनेही मुसलमान कवियोंने हिन्दी कवितामें अलङ्कारग्रन्थ लिखकर साहित्यके आचार्योंका काम किया है। मलिक महंमद जायसीकी पद्मावत, रसलीन कविका रसप्रबोध, नूर महंमदकी इन्द्रावती इत्यादि ग्रंथ ऐसे हैं कि किसी हिन्दू प्रतिभाशाली कविकी लेखनीको गौरवका कारण हो सकते हैं। भावोंमें हिन्दूपन, उदाहरणोंमें हिन्दूपन, और कथाओंके चुनावमें, ग्रन्थोंके नाम धरने तकमें हिन्दू पद्धतिका अनुसरण करनेवाले मुसलमान कवियोंने हिन्दू जातिके साहित्यपर असीम उपकार करके जो आदर, जो प्रेम और जो कृतज्ञता प्राप्त की है उसका अंदाजा करना कठिन है। अंगरेजी शिक्षाके साथ व्यक्तिगत स्वाधीनताकी प्रधानता बढ़ी और अब फिर्के, जमात, समाज, बिरादरियोंकी जुदाईका जमाना है। हर प्रांतके लोग अपनी अपनी जातिके सुधार और उन्नतिके लिये यत्नशील हो रहे हैं। इससे सब भारतवर्षीय लोगोंमें ऐक्य होना कठिनतर होता जाता है, परन्तु पुराने जमानेमें जो साहित्यका काम मुसलमान जातिने हिन्दी भाषाके प्रति किया, वह काम अब नहीं होता।

प्रत्युत उर्दू के नाम हिन्दीसे विरोध ठाननेकी चेष्टा की जाती है, परन्तु यह गलती है। हम जब देखते हैं कि उर्दू के उत्तम उत्तम कवि कैसी भाषा लिखते हैं तो हमें मालूम होजाता है कि वे हिन्दी भाषा लिखते हैं और उसे केवल कुछ फारसी शब्दोंसे सजाकर उर्दू कहकर जुदा समझना भूल है। नजीरकी एक कविताका उदाहरण हम यहाँ देकर हिन्दू और मुसलमान कवियोंसे पूछते हैं कि क्या यह हिन्दी नहीं है?

यारो सुनो ये दूध खवैय्याका बालपन।
और मधुपुरी नगरके बसैयाका बालपन॥
मोहन स्वरूप निरत करैया का बालपन।
बन बन के ग्वाल गौधन चरैया का बालपन॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ १॥

ज़ाहिर में सुत नंद जसोदा के आप थे।
वरना वो आपही माई और आपही बाप थे॥
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे।
जोति सरूप कहिये जिन्हें सो वो आप थे॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ २॥

उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा।
संसार की जो रीति थी उसको रखा बजा॥
मालिक थे वो तो आप उन्हें बालपन से क्या।
वहाँ बालपन जवानी बुढ़ापा सब एक था॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ३॥

बाले हो बृजराज जो दुनिया में आगये।
लीला के लाख रंग तमाशे दिखागये॥
इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये।
इक ये भी लहर थी कि जहाँ को जता गये॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मै कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ४॥

यों बालपन तो होता है हर तिफ्ल का भला।
पर उसके बालपन में कुछ और भेद था॥
इस भेद की भलाजी किसी को खबर है क्या।
क्या जाने अपने खेलने आये थे क्या भला॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ५॥

प्यारे पाठक! ये नजीर कवि आगरेके रहने वाले थे। इनको जिन्होंने देखा है ऐसे लोग आगरेमें अभी मौजूद हैं। इन्हें गुजरे अभी बहुत बरस नहीं हुए हैं। इनकी भाषाको कौन हिन्दी न कहेगा? इनके भावोंको कौन हिन्दू भाव न कहेगा? इनलोगोंके आगे सब हिन्दी साहित्य प्रेमी सिर झुकाएँगे क्योंकि ये तास्सुब (धार्मिक-विरोध) के भूतसे पछाड़े नहीं गये थे। उन्हें तो सत्यसे प्रेम था। जो जबान सबकी है वही उनकी भाषा है उसे फारसी हर्फोंमें लिखनेसे उसका उर्दूपन कायम नहीं हो सकता। क्या "God save the king" को 'गॉड सेव्ह दि किङ्ग' इस भाँति नागरी अक्षरोंमें लिखलेनेसे उस वाक्यका अंगरेजीपन नष्ट हो जायगा? क्या हमारी भाषामें लिखी हुई कविताको फारसी अक्षरोंमें लिखदेनेसे उसका हिन्दीपन नष्ट होजायगा? कभी नहीं। हरगिज़ नहीं। हम हिन्दी साहित्य संसारकी सेवामें अत्यंत विनीत भावसे सूचना देते हैं कि मुसलमान भाईयोंने जो साहित्य उर्दू अर्थात् फारसी लिपिमें लिख रक्खा है वह हिन्दी साहित्य-ही है उसे नागरी रूप देकर हिन्दी जानने वाले संसारको परिचित करना चाहिये और उर्दू के नाम विरोध करते हुए भी मुसलमान भाई लोग जो हिन्दीका उपकार कर रहे हैं उनको हजार शुक्रिया देना चाहिये। हमारे मुसलमान साहित्य सेवियोंको, जबाँ दाँ साहबानको, लिखनेवालोंको, शाइरों और सुखुनवरोंकी खिदमतमेंभी हम बड़ी आजिज़ी और मिन्नतके साथ गुज़ारिश करते हैं

कि आप लोग जो साहित्य (Literature) बना रहे हैं उसे अपनेही तक मेहदूर रखनेकी क्यों कोशिश करते हैं उसे हिन्दूभी पढ़ें और फायदा उठावें ? क्या आप लोग इस बीसवीं सदीमें, इतनी तालीमकी रोशनीमें रहकर, इतने तंग दिल हो गये हो कि आपकी जबानके गुलबहारकी खुशबूसे और लोगभी खुश न हों ? आप लोग हिन्दी साहित्यके इतिहासको देखेंगे तो मालूम होजायगा कि अगले जमानेके मुस्लमान आलिम लोग आपसमें मेल करनेकी क्या क्या तरकीबें करते थे। आप अगर एक तरकीब करें कि जो कुछ आप लिखते हैं बदस्तूर लिखें सिर्फ उसे नागरी हर्फोंमें मया करायें तो आप और कुल हिन्दोस्तान उससे फायदा उठावेगा। आपके किताब छापनेवाले और बेचनेवाले मालामाल होजावेंगे क्योंकि अब जितने ग्राहक हैं उनसे कई गुने अधिक बढ़जायेंगे। हम इस समय 'हरीदास वैद्य और कंपनीको' अनेक धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने महाकवि ग़ालिबकी कुछ कविता और जीवनीको प्रकाशित करके हिन्दी जगतका ग़ालिबसे परिचय कराया। जोधपुरके मुंशी देवीप्रसाद और कानपुरके प्रातः स्मरणीय राय देवीप्रसाद पूर्णने कितनेही फारसी ग्रंथोंका हिन्दी तरजुमा किया है और हिन्दीके साहित्य भंडारकी पूर्ति की है। ऐसेही पूर्ति और और लोगभी उर्दू साहित्यके रत्नोंको चुनकर नागरीमें प्रकाशित करके करें तो बड़ा लाभ होगा और एक जमाना आजायगा कि हिन्दी उर्दूका झगड़ा मिटजायगा। दोनों भाइयोंमें मेलका रूप सुधर जायगा और भारतवर्ष एक राष्ट्र बननेकी बात संभवनीय हो जायगी।

(२) गुर्जर भाषा-भाषियोंका हिन्दी प्रति प्रेम।

हिन्दी जैसी प्यारी, सरल सुभावकी बड़ी बहिनसे अन्य छोटी बहिनोंका प्रेम अद्वितीय है। गुजराती सबसे छोटी बहिन मालूम होती है। गुजरातमें गुजराती भाषाके साहित्यका जन्म नरसिंह मेहता और मीरांबाईके समयसे हुआ। गुजराती भाषा बोली जाती थी, देशमें उसका प्रचार भी था, परन्तु साहित्य यदि था तो वह हिन्दी साहित्य ही था। हिन्दीके ही कवियोंके ग्रन्थोंको विद्वान् और कवि लोग पढ़ते और अभ्यास करते थे। यही कारण है कि गुजराती भाषाके साहित्यमें हिन्दीके छन्दोंकी बड़ी प्रचुरता है। जैसे सूरदासके पद प्रसिद्ध हैं वैसे अन्य किसी कविके एक छन्दपर विशेष भक्तिका उदाहरण नहीं पाया जाता। दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठा इत्यादि सब कोई लिखते रहे हैं। मरहठी भाषामें कुछ विशेषता अवश्य है। कहते हैं:-

"सुश्लोक वामनाचा, अभंगवाणी प्रसिद्ध तुकयाची।
ओवी ज्ञानेशाची, किंवा आर्या मयूर पन्ताची॥"

वामन पण्डितका सुन्दर श्लोक, तुकारामके अभंग प्रसिद्ध हैं। ज्ञानेश्वरका ओवी छंद और मोरोपन्तकी आर्या प्रसिद्ध है। वामन पंडित संस्कृतके बड़े विद्वान् थे। उनके संस्कृत श्लोकोंका महाराष्ट्र भाषाका अनुवाद अत्यन्त उच्च कोटिका है। अनुवादमें रस हानि न होकर शब्द लालित्य, यमक प्राचुर्य इत्यादिका रूप कायम रखना वामन पंडितका ही काम था। तुकारामने अभंग लिखे हैं, परन्तु उनके पूर्व नामदेव और उनके घरवालोंने कितनेही, करीब ६० करोड़के, अभंग लिख रक्खे थे, परन्तु नाम जिसके भाग में होता है उसीको मिलता है। रहीमने ठीक कहा है:-

छोटे किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्तको गिरिधर कहै न कोय॥

"अभंग वाणी" का गौरव तुकाराम महाराजके लिये ही नियत था। श्री ज्ञानेश्वर कविकी श्री भगवद्गीतापर जो सुप्रसिद्ध मराठी भाषा टीका

है वह ओवी छंदमें है। इस कारण उनका नाम ओवी छंदके जन्मदाताकी तरह प्रसिद्ध है। वैसे ओवी छंदमें लिखनेवाले कितनेही महाराष्ट्र कवि हैं, उनमें मुक्तेश्वरका नाम स्मरणीय है। महात्मा श्री समर्थ रामदासने "दास बोध" ओवी छंदमें लिखा था। इसका हिन्दी अनुवाद हिन्दी साहित्यमें जन्म पा चुका है। मोरोपन्तकी आर्यावृत्तमें कविता बहुत है। ऐसी हिन्दीमें सूरदासके सिवाय अन्य किसी कविका किसी विशेष छंदसे प्रेम अथवा किसी विशेष छंदकी उत्पत्तिका होना दिखाई नहीं देता तथापि एक बार विचार करते करते कुछ बातें नियत की थीं वे यहाँ दी जाती हैं:-

दोहा-सरस भावकी दोहिनी दोहा छंद अनूप
　　सो रहीम, तुलसी भरेउ, वृन्द, बिहारी रूप।

चौ०-चारिवर्ग फल दायिनी चौपाई सुख मूल।
　　सो तुलसी निरमी जगत रामभक्ति अनुकूल॥
　　चारि वेदको तत्व अरु ज्ञानविराग प्रतीति।
　　चारिपाद युत छंदमें तुलसी दई सुनीति॥

छंद-तुलसी के अति विमल हैं मधुर मनोहर छंद।
　　जिनके अक्षर कहत ही हरन होत दुख द्वंद॥

पद-परम पुनत रसभाव युत कांतपदार्णव लीन।
　　परम पदारथ देखिके सूरदास पद कीन्ह॥
　　भक्तिभाव युत सरस पद काव्य गुणनकी खान।
　　अलंकार कमनीय अति अनुभव की पहिचान॥
　　सूर काव्य ने करि दियो परगट ज्ञान प्रकाश।
　　हिन्दी भाषा काव्यको पंडित कीन्ह प्रभाश *॥

महाकाव्यकर्ताचंद-चंद हुए हैं जगतमें बरदाई कविराज।
　　प्रबल बाहुकी जूझमें हुए सहायक काज॥
　　महाकाव्य के रचयिता चंद एक रिपुशूल।
　　भूषण सब्बे कविनके दूषण के प्रतिकूल॥

* विकाश।

पृथ्विराजको विमलयश अमिट कीन्ह बरदाइ।
रासो रचि, पचि जनम भरि, स्वामिभक्तिदरसाइ॥

तात्पर्य हमारा यह था कि गुजराती कवियोंने हिन्दीके छन्दोंको केवल अपनाया ही नहीं किन्तु उसमें कविता लिख कर विशेषता प्राप्त की। जैसे नरसिंह मेहताकी प्रभातियाँ। मीराँबाईके भजन, सामलके छप्पय, दयारामकी गरभियाँ श्रीनर्मदाशंकरका रोलाछन्द, प्रसिद्ध है। सामलके छप्पयने तो इतना मान पाया है कि वह तुलसीदासकी पंक्तिमें बैठाया गया है। जैसे "चौपाई तुलसीदासकी, छप्पय सामल खास" गुजरातीके साहित्य-आचार्योंमें एक कवि हीराचन्द कानजी हुए हैं। उन्होंने 'पिंगलादर्श' नामका एक ग्रन्थ बनाया है और 'सुन्दर शृंगार' नामक ग्रन्थ हिन्दीमें प्रकाशित कराया था। कवि हीराचन्दने बृजभाषाके साहित्यका भली प्रकार अभ्यास किया था। भारतवर्षके प्रसिद्ध हिन्दीके महाकवि केशवदासकी प्रशंसा हीराचन्दने बड़े आदरके साथ की है। उन्होंने अपने 'मिथ्याभिमान मत खंडन' नामक ग्रन्थमें लिखा है:—

दोहा (गुजरातीमें)

रवि सम कवि कवि शीश मणि, कविपति केशवदास।
कविनी बुद्धि कविप्रिया, जेणे करी प्रकाश॥१॥
ते जो सुण एक वार तो, दीसे मोटो पंथ।
भणिने धारण जो करे, तो बन बुद्धि कंथ॥२॥

अर्थात् कविगणोंकेमस्तकका भूषण रूप,सूर्यके समान प्रभावशाली और कवियोंमें श्रेष्ठ कवि केशवदास हैं। कविकी बुद्धिमत्ताका परिपाक जिस ग्रंथमें हुवा है वह ग्रंथ कविप्रिया नामका है जिसे कविने प्रकाशित किया है। उसे जो कोई एक बार श्रवण करेगा उसे काव्य-प्रासादका राजमार्ग दिखाई देगा, और कविप्रियाको पढ़ कर जो हृदयस्थ करले तो वह बुद्धिका स्वामी बन जाय।

कविवर दयारामकी कविताको देखनेसे मालूम होता है कि उनको हिन्दीके साथ फारसी शब्द मिलाकर लिखनेका बड़ा शौक था। कहते हैं वे जैसी मजलिसमें जाते उसी मजलिसकी भाषामें काव्य बनाते थे। देखियेः—

हरदम कृष्ण कहे श्रीकृष्ण कहे तूं जबाँ मेरी ।
यही मतलब खातर करता हुं खुशामत मैं तेरी ॥टे॥
सही और दूध शक्कर रोज खिलाता हूं तुझे ।
तोभी हररोज हरिनाम न सुनाती मुझे । ॥
करे गान गोविन्दका तो तूं मुख पीवे भला ।
नहीं तो मैं खैंच निकालूंगा क्या मुख थाम बला ॥
खोई जिन्दगानी सारी सोर गुनाह माफ मेरा ।
दया मत भूले प्रभु नाम आखिर वक्त मेरा ॥

—:c:—

त्रिभुवन पति तलवार, ढाल धरणीधर धारी ।
केशव तीर कमान बाँध ले कृष्ण कटारी ॥
घर बख़्तर बलबीर, नाम भगवंत को भाला ।
बनवारी बन्दूक, भरले गोली गोपाला ॥
सतसंग गुरी यह दया, धर्म संग जोड़ले ।
काम मोह वासी मारने को, कर्म किल्ला तोड़ ले ॥

दयाराम कविके इन हिन्दी पद्योंको देख ऐसा कौन हिन्दी प्रेमी है जो गुजराती साहित्य से प्रेम न करेगा। गुजराती भाषा इतनी सरल और सुबोध है कि हिन्दीका जाननेवाला थोड़े ही समयमें उसे सीख सकता है। हम एक दो उदाहरण ऐसे देते हैं कि जिनसे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि गुजरातीका हिन्दीसे कितना थोड़ा भेद है और वह भेद थोड़ा होनेका एक कारण यह है कि गुर्जर काव्योंकी आदि भाषा हिन्दी थी। बृजभाषा उसका आधार है जिसपर गुर्जर काव्यकी इमारत खड़ी है। हिन्दीके छंद, प्रबंध, उसके रूप और अवयव हैं। बृजभाषाका आधिपत्य गुजरातीमें होनेका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ सांप्रदायके महन्तोंका आदर और वैष्णव साम्प्रदायका प्रचार गुजरातमें बहुत है। वैष्णवोंका श्रीकृष्ण भक्तिका साहित्य बृजभाषामें है और उनके कितनेही सुन्दर भजन गुजरातमें आज भी गाये जाते हैं। अतएव हिन्दी भाषाका नित्य परिचय एक न एक रूपमें गुर्जर समाजको होता ही रहा है। जैनियोंने जिस प्रकार हिन्दीकी सेवाकी है वैसी ही गुजरातीकीभी की है और जैनियोंका अधिकतर साहित्य प्राकृत (जो हिन्दीकी माताहै) में है। उसके द्वाराभी गुजराती साहित्यमें बहुतसी शुद्ध हिन्दीकी छाया बनी है।

गुजराती—

भली बनी छबि आजनी भेश बने हैा नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमे धनुष्य बाण धरो हाथ ॥

हिन्दी—

भली बनी छबि आज की, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमे धनुष बान लो हाथ ॥

गुजराती—

दरशण आेनी रे दासने, मारा गुणनिधि गिरधरलाल ।
नाथ निवारो त्रासने, आपो आप उपर अतिवहाल ॥
श्रीनटवर नंदन रे नंदना, भावे मुने मदन मनोहर रूप ।
चित ना चोटे रे माहरूं मुने अनुभव व्यापक ब्रह्म स्वरूप ॥
जपूं नहिं अजपा रे जापने, गमे ना सुणवो अनहद नाद ।
यज्ञ समाधि रे ना गमे, न गमे स्वर्ग मृत्यु ना स्वाद ॥
अन्य उपासना रे ना गमे, विना एक पुरण पुरुशोत्तम ।
फीकाँ लागे रे साधन बहु, पडी मुने प्रेम भक्तिमाँ गम ॥

कवि दयाराम ।

हिन्दी—

दरशन दीजियोजी दासको, मेरे गुणनिधि गिरधरलाल ।
नाथ बिचारो क्लेश को, आप अपनों पर अति दयाल ॥
श्रीनटवर नंदन नंद के, भावे मुझे मदन मनोहर रूप ।
चित्त लगे नहिं मेरातो, मुझे अनुभव व्यापक ब्रह्म रूप ॥

जपूं नहिं अजपा के जाप को, भावै नहिं अनहद नाद ।
यज्ञ समाधिको नहिं भजूं, रुचै नहिं स्वर्ग मृत्युके स्वाद ॥
अन्य उपासना सुहावै नहिं, बिना एक पुराण पुरुषोत्तम ।
फीके लगैं ये साधन सब, मिला मुझे प्रेम भक्ति में गम ॥

गुर्जर साहित्यका परिचय आधुनिक हिन्दी-के जन्मदाता चिरस्मरणीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को भी होना चाहिये क्योंकि उनके सुप्रसिद्ध सत्य हरिश्चन्द्र नाटकमें राजा हरिश्चन्द्रकी यह प्रतिज्ञा कि :—

चंद टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार ।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को, टरै न सत्य विचार ॥

उस गुर्जर साहित्यके महाकवि प्रेमानंदके सत्यभामा आख्यान के ।

"सूर्य चले, पृथ्वी चले, मेरु चले, नभ चले,
पण अमारूं वचन कदी चले नहिं"

वाक्यकी छाया है। यह बात सुनकर हिन्दी गुजरातीके प्रेमी प्रसन्न होंगे। गुर्जर भाषामें जितने कवि और लेखक हुए हैं बड़े प्रतिभावान् और प्रभावशाली हुए हैं। कवि प्रेमानन्दने जो काम गुर्जर साहित्यमें किया है वह सराहनीय है। कवि नर्मदाशंकरने जो साहित्यके अंगोंकी पूर्तिकी वह अद्वितीय है। यद्यपि गुर्जर साहित्य एक प्रान्तीय साहित्य है तथापि उसकी भाषा वाणिज्यप्रधान जातिकी भाषा होनेसे उसका प्रचार पृथ्वीके सब देशोंमें हो गया है। प्रेमानन्दने स्वयं गुर्जर भाषाकी तारीफमें लिखा है।

सांगोपांग सुरंग व्यंग्य ध्वनिये, धारी गिरा गुर्जरी।
पादे पाद रसाल भूषणवती, कीधी सखी ऊपरी ॥
ते गिर्वाण गिरा गणाय गणतां ते स्थान दीधूं रुडी ।
अन्ग्लाडादिक देशमां विजयि थे हा ! आश पूरी हरी ॥

उसे हम कुछ बदलकर हिन्दीमें लिखते हैं ।

सांगोपांग सुरम्य व्यंग्यवति जो मीठी गिरा गुर्जरी ।
काव्योंमें रस रंग भूषणवती मानों सुधा निर्झरी ॥
जो सर्वोपरि, योग्य है सुरुचिरा गीर्वाण वाणी सम ।
इंग्लंडादिक देश देश विचरै वाणिज्य कार्यक्रम ॥

गुर्जर साहित्य सम्मेलनने हिन्दीका प्रचार और उसे राष्ट्रभाषा बनानेका प्रस्ताव करके हिन्दी जगतको अपने अनुपम हिन्दी प्रेमका परिचय दिया है। एक भाषा हिन्दीकी हिमायतमें श्रीयुत चुन्नीलाल बापूजी मोदी "गुजराती" पत्रमें लिखते हैं। जो दर्शनीय है और उसे हम उसी मीठी गुजरातीमें यहाँ उद्धृत करते हैं।

"आपणी राष्ट्रीय सभा कलकत्तामां, मद्रासमां, मुम्बईमां, लाहोरमां, अने अलाहाबादमां भरी एटले हिन्दुस्थानना एक भागमांथी गयेला वकानी बोली बीजा भागना लोकोथी समजाती नथी तेथी तेओ पोतानां भाषणो इंग्रेजी भाषामां जुड़े छे। ए सर्व साधारण लोकने शा कामनां ? आपणा देशमां चालती सर्व भाषाओनो नाश करीने तेनी जग्या ऊपर इंग्रेजी भाषा स्थापवी, ए हिन्दुस्थानने समुद्रमां डुबावीने तेनी जग्याए ब्रिटिश बेटोने आणी मुकवा जेवूं छे। आपणा विद्वान विचारवंत लोको स्वदेशनी अने स्व जातिनी उन्नति करवा चाहे छे त्यारे आपणा देशमां सघळाने समजाय एवी एक भाषा अने ते स्वदेशनीज भाषा होवानी जरूर छे, ए वात तेमना ध्यानमां आववानी जरूर छे। इंग्रेजी भाषा जेम हमणां दश करोड़ माणसनी भाषा थई छे तेवीज आपणां देशमां एक छे। हिन्दी भाषा-हिन्दुस्थानमांना घणा खरा सर्व लोकोने समजाय छे। व्रज अथवा माथुरी, अवध, पंजाब, अने मध्यप्रान्तनी भाषाओ, हिन्दी भाषानी शाखा छे। मात्र तेओमाँ थोडो थोडोज फेर छे। ते आपणा गुजरातनी, सुरतवी, काठिआवाड़नी

अने उत्तर गुजरातनी बोलाती भाषाओना तफावत करतां वधारे नथी । सदरहु कहेली सघळी भाषा मळीने हिन्दी भाषा आज सुधी हिन्दुस्थानना दश वार करोड़नी भाषा छे । त्यारे हिन्दी जेवी महान् भाषाने राष्ट्रीय रूप आपवाने हरकत शी छे? सने १८७५-७६ मां सुरतना वतनी अने अमदावाद जिल्लाना डेप्युटि एजुकेशन इन्स्पेक्टर रा० सा० मर्हूम गणपतराम गौरीशंकर शास्त्रीए एक चोपानियुं प्रकट करीने देशी भाइयोनुं लक्ष खेंच्युं हतुं; पण ते वखते कोइए लक्षमां लीधुं न हतुं ।

आपणा देशमां ज्यारे मुसलमानी सत्ता हती त्यारे तेमणे उर्दू भाषामां बोलवा चालवानो वहेवट राख्यो हतो । उर्दू भाषा कांई जुदी भाषा नथी । तेमां अरधी हिन्दी तथा केटलीक अरबी, फारसी, मराठी, केनेड़ी वगैरे भाषा मांहेला शब्दोनुं मिश्रण छे । हिन्दी भाषा सीखवामां घणी मेहनत पड़े एम नथी । इंग्रेजी प्रमाणे ज हिन्दीमां पृथ्वीनी सर्व भाषानी समास थई शके छे । तेथी तेनो वधारो थवाने कशी अड़चण नथी । हिन्दी भाषानुं व्याकरण घणुं सहेलुं छे । तेमां अरबी, फारसी, संस्कृत, इंग्रेजी अने राक्षसी भाषाना शब्दो लई ने तेने हिन्दीनुं रूप आपी शकाशे । एवी अमोलिक सुन्दर भाषा आपणने लभ्य छतां अने ते राष्ट्रीय भाषा करवानुं एटलुं सहेल छतां, आपणा विद्वान् भाइओ हिन्दुस्थान मांहेली सार्वजनिक वातोनो मनसूबो करवाने ते सात समुद्रनी पेलीपेरथी आवेली प्राचीन मिश्र चित्रलिपि जेवी साधारण लोकोथी न समजाय एवी इंग्रेजी भाषामा शावास्ते करे छे तेनो खुलासो तेओ करशे के ? आपणी राष्ट्रीय अने सार्वजनिक सभाओमें जो ए वात मन पर लीधी तो कन्याकुमारी थी हिमालय सूधी अने सिन्धु नदी थी ते मणीपूरनी पूर्व हद सूधी तो सघळा दूरदर्शी हितचिंतको आपो आप हिन्दी भाषानो प्रसार करवाने मथन करशे । वर्तमान पत्रकरो अने ग्रंथ कारोने उत्तेजन आवशे । मद्रासिओनी पंजाबी भाई साथे मुलाकात थतां तेओ वच्चे परस्पर वात करतां अड़चण पड़शे नहीं । आपणा देवनागरी उर्फे बालबोध अक्षर थी नहीं लखाय एवी भाषा दुनियामां एक नथी । आपणा देशनी सघळी भाषामां थतां उच्चारणो आ वर्णमालिका मां छे तेथी आपणे जो ते बधी भाषा मांहेला शब्दो लईने हिन्दी भाषानो खीचड़ो बनावीशूं तोय ते देवनागरी अक्षरोथी लखी शकाशे । आवती बेठकमां राष्ट्रीय सभाए आ वातनो विचार जरूर करवो एवी तेमने मारी विनय पूर्वक सूचना छे । "

सारांश गुर्जर भाइयोंने हिन्दी भाषाको सार्वजनिक भाषा करार देकर उसकी योग्यताको भली भाँति पहिचाना है ।

गुजरातीकेभी दो पंथ हैं । एक विशुद्ध गुजराती और दूसरी पारसियोंकी गुजराती । वह उर्दू की तरह फारसी शब्द मिश्रित गुजराती है । तथापि उनमें किसी प्रकारका झगड़ा नहीं है जैसाकि हिन्दी उर्दू में है । इस का एक कारण यह है कि यद्यपि भाषामें भेद है तथापि लिपि भेद न होनेसे किसी तरहका टंटा नहीं माना जाता । ऐसा ही हिन्दी उर्दू के बीचका लिपि भेद मिटा दिया जाय तो हिन्दी उर्दू का भेद नष्ट हो जायगा । क्योंकि भाषा तो एक ही है ।

अभी कुछ दिनोंकी बात है कि सिंधमें नागरी प्रचारका यत्न और हिन्दी भाषाके प्रचारका यत्न आरम्भ कर दिया गया है । सिंध हैदराबादसे निकलनेवाले आर्य भास्कर नामक पत्रमें सिंधीके साथ हिन्दीको नागरी अक्षरोंमें स्थान दिया हुआ हमने देखा है । गुर्जर अक्षरोंके स्थानमें नागरी अक्षरोंका आधिक्य होनेसे गुर्जर भाषाका प्रचार बढ़नेकी संभावना है इसलिये हम गुर्जर

भाइयोंको सलाह देते हैं कि नागराक्षरोंका उपयोग साहित्यके ग्रंथोंमें करते जावें तो उनका साहित्य कम न होकर अधिक विशाल हो जायगा।

३ महाराष्ट्रियोंकी हिन्दीकी सेवा ।

"उत्तरादि भाषा सुन्दर। सत्सय्या ग्रन्थ म्हणती चतुर।
करिता ब्याहारीलाल कवीश्वर प्रीतिभावें नमियेलाजी॥
तुलसीदास कवीची वाणी। दोहरा गोड अमृता हुनी।
रसिकप्रिया ग्रन्थ ऐकतां श्रवणीं। केसोदास कवीनेकथला॥
आणिक उत्तरादि भाषागत। गिरधर कवि महाविख्यात।
कुण्डरिया दोहा पाहतां अर्थ। गतिन चाले हो इतरांचो"॥

पांडुरंग दाढ़ी।

लगभग १०० बरस पहिले एक महाराष्ट्र कवि कृत. हिन्दी कविरत्नोंका वर्णन महाराष्ट्र भाषामें किया हुआ देख किस हिन्दी प्रेमीका चित्त आनंदसे उन्मत्त न होगा? कविने लिखा है कि उत्तर आदिकी भाषा बड़ी सुन्दर है। उसमें सतसैय्या नामक ग्रंथ होना चतुर लोग बखानते हैं। उसका कर्ता कवीश्वर बिहारीलाल है उसे मैंने प्रेमभावसे नमन किया। कवि तुलसीदासकी वानीमें दोहा अमृतसे भी मधुर है। रसिक प्रिया नामक ग्रंथ सुननेसे ज्ञान हुआ कि वह केशवदास कविका कहा हुआ है और उत्तरादि भाषाओंमें महाविख्यात कवि गिरिधर हैं। उनकी कुण्डलिया-दोहामें अर्थ को देखकर औरोंकी गति कुंठित होजाती है।

हमारे हिन्दी साहित्य प्रेमी समाजको यह सुनकर सचमुच केवल हर्ष ही नहीं किन्तु गर्वभी होगा कि हिन्दीके साहित्य पर महाराष्ट्र कवियोंका सर्वदासे प्रेम रहा है। उन्होंने यदि अपनी मातृ भाषा में बड़े बड़े ग्रंथ लिखे तो हिन्दीमें कमसे कम कुछ पद्य तो अवश्य ही लिखे होंगे। चलिये श्रीगणेश यहींसे कीजिये।

पद ।

मङ्गल मूरत नाचत आवे॥ ध्रु० ॥
कोटि सुरज मल तेज विकासित जोतसे जोत मिलावे॥१॥
अनहद बाजत सबही बाजे सोऽहं तान सुनावे॥२॥
ज्ञान शिवगुरु सागर अवधूत, आतम भाव बतावे॥३॥

भैरव अवधूत।

भुजंग प्रयात छंद ।

कही बात येही सही ब्राह्मणों की।
अच्छीसी भली है रहानी इन्हों की॥

तुम्हारा हमारा खुदा एक भाई।
कहे देवदासो नहीं है जुदाई॥१॥

हमारे गुरुने अकल से बताया।
निराकार अल्ला तुझी में मिलाया॥

तझूमें निजाराम वाने किया है।
कहे देवदासा इल्लाही सही है॥२॥

न तारे मुझे तैं गयां छोड़ मेरो।
न छोड़ूं कभी भी पदों को, उधारो॥

न जावै कछू, जायगा नाम तेरा।
कहे देवदासा बड़ा राम मेरा॥३॥

अकल् से बड़ी वस्तु माई नहीं रे।
अकल् से बतावो रहे दिल्ल मोरे॥
अकल् बिन चले सो अग्यानी सही रे।
कहे देवदासा अकल से चलो रे॥

देवदास।

महाराजा महादजी सेंधिया स्वयं कवि थे और उनको उनके समयके साधु, संत और महात्माओं-के साथ सत्संग करनेका प्रेम था। एक समय महात्मा सोहिरोबा आँबियेको बुलवाकर बड़ा आदर किया। उन्होंने उस दरबारमें अपनी आशुक-वितांईकी तथा बेपरवाहीकी पहिचान कराने-वाली जो वाणी कही सो इस प्रकार है।

अवधूत ! नहीं गरज तेरी । हम बे परवा फकीरी ॥
तू है राजा हम हैं जोगी, पृथक पंथ हैं न्यारे ।
छत्रपती सब तेरे सरीखे, पौयन परत हमारे ॥१॥

तू है दलबल हम झोलीबल, चार खूंट जहागीरी ।
तीन लोक में दुहाइ फिरती, घर घर अलख-पुकारी ॥२॥

सोना चांदी हमें नहिं चहिये, अलख भुवन के वासी ।
महेल मुलख सब घांसबराबर, हम गुरु नाम उपासी ॥३॥

तू भी डूबे हमें डुबावे, तेरा हम क्या लीया ।
कहे सोहिरा सुनो महादजी, प्रगट योग कमाया ॥४॥

हुक्का पीनेवालोंको उपदेशः–

पद (आसावरी–जिवट)

तुम अच्छा हुक्का पीना ॥
ब्रह्म रंध्रमें त्रिकूट चिलम, प्राण अपानसे दमपर दमलेना ॥
अनाव तमाखू ज्ञानअगिन से, जलकर मायाधूम छोड़देना ॥
कहत सोहिरा सतसंगधरना, अहंमनीसेंनलीगमीलकरदेना ॥

सोहिरोबा आंबिये ।

देवनाथ महाराजका यह पद्य तो बहुतोंने सुना होगा ।

रमते राम फकीर, कोइ दिन याद करोगे ॥धृ॥
कोइ दिन ओढ़े शाल दुशाला, कोइ दिन भगवेचीर ॥१॥
कोइ दिन खावे मेवा मिठाई, कोइ दिन पीवे नीर ॥२॥
कोइदिन हाथी कोइदिन घोड़ा, कोइदिन पाँव जंजीर ॥३॥
कोइदिन बस्ती कोइदिन जंगल, कोइदिन भुजपै सीर॥४॥
कोइदिन महलों म्याने सोते, कोइदिन गंगातीर ॥५॥
तुम अहोखुशाला रहो खुश हाला, फिर न मिले ये शरीर ॥६॥
देवनाथ प्रभुनाथ गोविन्दा तू है सच्चा पीर ॥७॥

देवनाथ ।

कविवर अमृतराय हिन्दीके बड़े रसिक थे। उन्होंने हिन्दीमें "पूतना वधाख्यान" और "सुदामचरित्र" "महादेव प्रयाण वर्णन" वाल्मीकि चरित्र, भीष्म प्रतिज्ञा, कृष्ण नृत्य इत्यादि काव्य बड़े सुन्दर लिखे हैं। इसी प्रकार पद भी कितने ही कहे हैं। कुछ देवें तोभी स्थल नहीं है। तथापि–

पद ।

आजि कुंजन मों फूल के फूली बृजपत राज ॥धृ॥
फूलन के हार रुचिर शृङ्गार बन ।
फूलन के मुकुट कुण्डल विचित्र सकल साज ॥ आजि ॥१॥

फूलन की राउटी, फूलन की चौकी ।
फूलनको बीरो अनुपम से जहाज ॥ आजि ॥२॥

फूलन्ही ग्वालिन हरदम दम गावत
आन अनादत पखवाजन की आवाज ॥ आजि ॥३॥

अमृत राय साहेब मों आप मों अर्पन दर्पन ।
आप सुर सुर नर सिरताज ॥ आजि ॥४॥

प्रभाती ।

तू जाग भैय्या, त्यज त्यज त्यज निद्राभर, जोगिचित्त पैया ॥
गैया सब ठाड़ि रहीं, कांसन से दुग्ध श्रवत,
बच्छन को तलमलार, पीवन की बिरियाँ ॥१॥

ग्वालबाल चेत भये, मंथन की रई फिरत,
घूं घूं घूं शब्द करत, नवनीत खैया ॥२॥
बिनति सुनत चेत भये, मुख पेख लैय्या,
केशरके तिलक बीच, मृगमद की बिंदियाँ ॥३॥
आगे आगे आप चलत, पीछे चलत गैया,
अमृतराय निरखत है, ये छबि अजबैया ॥४॥

सब दुनियो का पालन वाला हजरत अल्ला ॥धृ॥
सिरपर जटाजूट की डाली, उसमें छुपी एक है बाला ।
अंखियन चंद्र सुरज उजियाला ।
तीजा नयन अगन की ज्वाला रखने वाला ॥ सब ॥१॥
विषसे कंठ भयो है काला, सोहत गले मुंड माला ।
हिरदे गिरिजा को सम्हाला ।
गनेश नंदन जो गुलाला ॥ सब ॥२॥

हाथ में डमरू त्रिशूल भाला, मुद्रा अगाध पूर्ण कृपाला ॥
तात सब जग के प्रतिपाला ।
अंतर ध्यान धरत मनमोहन लछिमन बाला ॥ सब ॥३॥
आसन बनारसमें डारा, चर्चित भभूत गले मृगछाला ॥
बर देवे को बड़े कृपाला ।
अमृतरायको बार बार उपराला ॥ सब ॥४॥

अमृतराय ।

जरा हँस हँस बेनु बजाओजी,
तुम्हें दुहाई नंद चरननकी ॥ ध्रु ॥

लटपट पेच मुकुट पर छूटे । हँसि आवत तोरे लटकन की ॥
घूंघट खोल दरस मोंहि दीजे । चोट चलावो उन अँखियनकी ॥
सब बनिता बिरहन की मारी । वृत्ति बिकल पल छन मनकी ॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहे । चाल चलावे जैसी मटकन की ॥
देवनाथ प्रभु दयाल तुम हो । आस लगी पद सुमरण की ॥

दयालनाथ ।

महाकवि मोरोपंतने हिन्दी भाषाका प्रेम चिन्ह दर्शक अपनी अष्टोत्तर शत रामायणोंमें एक रामायण दोहा छन्दमें लिखी है । भाषा इसकी मराठी है और छंद दोहा है । साखी छन्दभी हिन्दीसे मराठी कवियोंने उठाया है और कितने ही कवियोंने साखी छंदमें "साकी" "साक्या" नामसे लिखे हैं । मोरोपंतको हिन्दी भाषासे अच्छा परिचय था इस बातका परिचय उनके सन्तमणिमाला नामक उस ग्रन्थसे ज्ञात होता है जिसमें मोरोपंतने बहुतसे भगवद्भक्तोंका स्मरण और गुणगान किया है ।

मोरोपंतके काव्योंमें जहाँ यवनोंका विषय आया है वहाँ हिन्दी भाषाका प्रयोग किया है । जब विश्वामित्रने नंदिनी नामक कामधेनुकी कन्याका हरण वशिष्ट महर्षिके आश्रम से करना चाहा और वह जाना न चाहती थी, विश्वामित्रने कामधेनु पुत्रीको बलात् लेजानेका यत्न किया । नंदिनीको बड़ा क्रोध आया और उसके रोयरंध्रों-से असंख्य यवन पैदा हुए उन्होंने विश्वामित्र-की सेनापर आक्रमण किया तब सेना भाग पड़ी म्लेछोंने पुकार कर कहा ।

आर्या—"पकड़ो लियो, हँकालो, बे! बिसवामितर भागजावेगा ।
यवन म्हणति दावविती शब्दीं हरिकरि वराहि ज्यावेगा ॥

प्रसिद्ध जीवन्मुक्त महात्मा तुकारामके काव्योंमें कितनी ही हिन्दी कविता है उसमें दोहे हैं और पद भी हैं । वे सब भक्ति, ज्ञान, वैराग्य विषयके उपदेशसे पूर्ण हैं । हिन्दीके प्रेमियोंको तुकारामकी हिन्दी कविताकी जिज्ञासा होगी । इसलिये एक दो पद्य दिये बिना रहा नहीं जाता ।

दोहा ।

राम नाम कहरे मना, औरन से नहिं काज ।
बहुत उतारे पार प्रभु, राख तुका की लाज ॥ १ ॥
तुका बड़ो वह ना तुलें, जाहि पास बहु दाम ।
बलिहारी वा वदन की, जेहिते निकसे राम ॥ २ ॥
तुका कहे जग भ्रम परा, कही न मानत कोय ।
हाथ परेगो कालके, मारि फोरि है होय ॥ ३ ॥
तुका सुजन वह जानिये, जासों प्रेम दुनाय ।
दुर्जन का हो कृष्ण मुख, वाती प्रेम घटाय ॥ ४ ॥
चित्त मिला तो सब मिला, नहिं तो निष्फल संग ।
पानी पाथर एक संग, कोर न भीगे अंग ॥ ५ ॥

पद

क्या गाऊं कोइ सुनने वाला । देखें तो सब जगही भूला ॥ ध्रु० ॥
खेलों अपने रामके साथ । जैसि बने वैसे करिहों मात ॥१॥
कहाँ से लाऊं मधुरा बानी । रीझे ऐसी लोग बिरानी ॥२॥
गरिधरलालतो भावका भूखा । राग कला नहिं जानत तुका ॥३॥

पद

कौन जाय उस घाट गहेरे । गोत खात जहँ लोग घनेरे ॥ध्रु०॥
एकना दो सब ही संसारा । जेहि बूझो सो आगिल स्वारा ॥१॥

मोरि मैं रिधन बाँध्यो गाँठी। नहिं बचता काहू सब जावें लूटी॥२॥
देखि सबन हरि बैठा तुका। जे.वत मारग रामहि एका॥३॥

तुकाराम।

ऐसे कितने ही बड़े बड़े महाराष्ट्र कवियोंके हिन्दी भाषाके पद और कविता दी जा सकती हैं परन्तु यहाँ स्थलाभावके कारण वैसा करना उचित नहीं है। तथापि एक बहुत पुराना हिन्दीका पद्य श्री ज्ञानेश्वर महाराजका देकर हम प्राचीन महाराष्ट्र कवियोंके हिन्दीके प्रति आदर दर्शक विषयको समाप्त करेंगे।

श्रीज्ञानेश्वर महाराष्ट्र भाषाके आद्य महा कवि हैं। इनका जन्म संवत् १३३८ में दक्षिणमें अलंदी स्थानमें हुवा। इनके पिता विट्ठलपंत देशस्थ ब्राह्मण थे। विट्ठलपंतने काशी पहुँचकर रामानंद स्वामीसे सन्यास लिया। परन्तु उनकी पत्नी रुखमाबाईके आग्रह करनेपर फिर गृहस्थाश्रम करनेके लिये उन्ही रामानंद स्वामीसे आज्ञा पाई। वहाँसे लौटकर स्वदेश आये और पश्चात् निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव और मुक्ताबाई ये चार संतान हुए। ये सन्यासीकी संतान जान कर ब्राह्मण समाजने उनके यज्ञोपवीत संस्कार न करके जाति बहिष्कृत कर दिया। फिर श्री ज्ञानेश्वरने भैंसेके मुहसे वेद कहलाए और ये कोई अलौकिक व्यक्तिकी संतान हैं ऐसा ब्राह्मणोंको मानना पड़ा। ब्राह्मणोंने उन्हें अपने समाजमें मिला लिया ऐसी ज्ञानेश्वर महाराजकी पूर्व पीठिका है। इनका देह केवल २१ वर्षकी अवस्थामें छूटा-चौदहवीं सदीमें अर्थात् आजसे लगभग सवा छैसौ वर्ष पहिले श्री ज्ञानदेवने जो हिन्दीमें कविता लिखी है उससे उसके उस समयका रूप ज्ञात होगा। देखिये-

पद।

सब घट देखो माणिक मेला। जैसे न कहूँ मैं काला धवला॥
पंच रंग से न्यारा होई। लेना एक और देना दोई॥ ध्रु०॥
निर्गुण ब्रह्म भुवन से न्यारा। पोथी पुस्तक भये अपारा।
कोरा कागद पढ़कर जाई। लेना एक और देना दोई॥१॥
अलख पुरुष मैं देखा दृष्टि। कर भाजन समार मुष्टि॥
छाटा में कछुन होई। लेना एक और देना दोई॥२॥
खलख दिया त्रिलिका। तिरते तिरते यम न थका।
इस पार पावे न कोई। लेना एक और देना दोई॥३॥
निर्गुण दाता कर्ता हर्ता। सब जुग बन मो आप हिता।
सदा सर्वदा अचल होई। लेना एक और देना दोई॥४॥
निर्गुण सागर अथाह पसारा। वाको तरंग सकल संसारा।
उद्भव प्रलय वाते होई। लेना एक और देना दोई॥५॥
सप्तहि सागर शायी कर्ता। धरती जो कागद लिखो पंडिता।
एक अक्षर पढ़े न कोई। लेना एक और देना दोई॥६॥
कहे ज्ञानदेव मनमों धरियो। सप्तहि सागर आगे धरियो।
पिंड में आवे जावे होई। लेना एक और देना दोई॥७॥

प्रिय पाठक यह पद उन श्रीज्ञानेश्वर महाराजका है जिनकी भावार्थ दीपिका नामक टीका जो "ज्ञानेश्वरी" नामसे भगवद्गीता पर है, प्रसिद्ध है। चौदहवीं शताब्दिमें जब इतनी शुद्ध हिन्दी महाराष्ट्र कवि शिरोमणीने लिखी है, जो कवि महाराष्ट्र भक्तोंमें श्रेष्ठ है और महाराष्ट्र भाषाका अलंकार हैं, उन्हें देख हिन्दीके प्रेमियोंको अपनी हिन्दीके गौरवपर सच मुच धन्यताका भाव उत्पन्न अवश्य होगा।

अब हिन्दीकी सेवाके संबंधमें आधुनिक महाराष्ट्र क्या सोचता है उसकी ओर आप लोगोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है। महाराष्ट्रीय महानुभावोंने हिन्दीमें जो कुछ ५० बरस पहले तक कहा वह पारमार्थिक, धार्मिक और आत्मज्ञान संबंधी विषयों पर कहा। परन्तु देशमें अंगरेजी राज्यके प्रसारके साथ आंग्ल भाषा और यूरूपीय विज्ञान तथा समाजशास्त्रके तत्वोंका परिचय

भारतवासियोंको होने लगा। क्योंकि महाराष्ट्र देश वह देश है जिसको स्वराज्य सुखके दिन देखेहुए बहुत समय नहीं बीता था। "राष्ट्र" संबंधी कल्पनाओंका प्रथम संचार महाराष्ट्र देशमें ही हुआ और समस्त भारतकी राष्ट्रीय सभाका प्रथम अधिवेशन बंबईमें हुवा था। एक राष्ट्रके निर्माणके लिये जो सामग्री दरकार है उसमें एक लिपि और एक भाषाका होना महाराष्ट्र देश वासियोंने मान लिया है। हिन्दी भाषाही एक राष्ट्र भाषा होने की योग्यता रखती है इस बातको पहिले अगर किसीने कहा है तो वह श्रीयुत काले महाशयने प्रथम कहा है। यह बात हिन्दीके विकासके प्रेमी सब लोग जानते हैं। सन् १६०६ में बड़ोदेमें जो महाराष्ट्र-साहित्य सम्मेलन हुवा था उसमें नागरी प्रचार और हिन्दी भाषाको सार्वदेशिक रूप देनेके विषयमें श्रीयुत मंगेश कमलजी नाडकर्णीने जो प्रस्ताव उपस्थित किया था वह यहां हिन्दी प्रेमियोंके सन्मुख प्रस्तुत किया जाता है। "आज समस्त भारतवर्षके प्रान्तीय साहित्योंमें से एक प्रांतवाले दूसरे प्रान्तवाले साहित्यका अनुवाद कर रहे हैं वह अच्छी बात है परन्तु यदि सचमुच एक प्रान्तवालोंको दूसरे प्रान्तवालोंके साहित्यसे लाभ उठाना है तो कुछ संगठित यत्न और व्यवस्थित साधन निर्माण करना आवश्यक है। इस दिशामें प्रत्येक प्रान्तीय भाषाके साहित्यके समालोचनात्मक और वर्णनात्मक इतिहास तैयार होनेकी आवश्यकता है। इस प्रकार सब प्रान्तोंको एक दूसरेके साहित्यमेंसे उत्तम ग्रन्थोंका परिचय होगा और अधिक लेन देनकी सुविधा होगी। यह लेन देनका मार्ग बतलाया गया यह नागरी लिपीके विस्तारसे अधिक सार्वदेशिक होगा। संस्कृत भाषा जाननेवालोंके लिये। आर्य भाषाओंमेंसे चाहे जो भाषा बहुत परिश्रम न करके भी आ सकती है और उनमेंसे बंगाली भाषा तो बहुत ही थोड़े परिश्रमसे आ सकती है। क्योंकि उस भाषामें सौमेंसे ८० शब्द संस्कृत होना पाया जाता है। इतना होकर भी केवल लिपि भिन्नताके कारण वह पराई सी हो रही है। इसलिये इस आपत्तिको दूर करनेके लिये नागरी लिपिका प्रचार करना अत्यंत आवश्यक है। इस बातपर कोई यह बाधा खड़ी करेगा कि ऐसा करनेसे प्रांतीय लिपि केवल नामशेष हो जायगी, परन्तु यह कहना ठीक नहीं। उदाहरणके लिये देखिये कि मराठी भाषाकी दो लिपियाँ हैं। एक बालबोध अर्थात् देवनागरी और दूसरी मोड़ी। मोड़ी वह लिपि है जो जल्द लिखनेके काम में आती है। उसी तरह अन्य प्रांतीय भाषाओंमें भी जो लिपि इस समय मौजूद है वह मोड़ीके स्थान में रहे और दूसरी देवनागरी, साहित्यकी लिपि कायम की जावे। इस प्रकार प्रान्तीय लिपियाँ बनी रह कर देवनागरी लिपिका व्यवहार हो सकता है। वस्तुतः जिस प्रकार सब प्रान्तीय आर्य भाषाएँ संस्कृतसे निकली हैं उसी प्रकार सब प्रान्तीय लिपियाँ भी लेखकोंकी निरङ्कुशताके कारण, धीरे धीरे भिन्न होते होते, मूल देवनागरी लिपिसे ही उत्पन्न हुई हैं। फिर ऐसे स्वच्छन्द और तबियत खोर लोगोंकी कार्रवाईके परिणामकी इतनी मुरव्वत किस लिये की जावे? बहुत समयसे प्रचलित और परिचित लिपि होकर उसमें बहुतसा साहित्य संग्रहीत हो चुका है ऐसी प्रान्तीय लिपिको एक बार ही उठा दी जाय यह किसीका आग्रह नहीं है तथापि एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तका व्यवहार घनिष्ट होनेके लिये अधिक सुविधा होवे इस कारण देवनागरी लिपिमें पुस्तक और समाचार पत्र छापनेसे तथा जिनकी भाषा अपनी प्रान्तीय भाषासे भिन्न है ऐसे लोगोंके साथ चिट्ठी पत्री देवनागरीमें लिखनेसे देवनागरी लिपिका प्रचार सार्वदेशिक करना आवश्यक है।"

ऊपर लिखे हुए नागरी प्रचारके प्रश्नके समान अथवा उससेभी अधिक महत्वका विषय हिन्दी भाषाके सार्वदेशिक प्रसारका है । केवल प्रान्त प्रान्तमें ही नहीं किन्तु कभी कभी एकही प्रान्तके एक ज़िलेसे दूसरे जिलेको रब्त जब्त रखना हो या उनमें प्रवास करना हो तो साम्प्रत में भाषाकी बड़ी असुविधा है । नये आदमीको यदि कुछ न कुछ हिन्दी भाषा आतीहो तो उसकी निभ जाती है । इसलिये किसी एक भाषाकी योजना सार्वदेशिक उपयोगके लिये होकर उसकी शिक्षा पाठशालओं द्वारा मिलने लगे तो दूर तक यात्रा करनेमें वा व्यापार करनेमें लोगोंको बड़ी सुविधा होगी । किसी किसीका कहना है कि अंगरेजी भाषा ही एक न एक दिन समस्त भारत की आपसके व्यवहारकी भाषा होगी, परन्तु यह बात संभवनीय नहीं दिखती । शिक्षित वर्गके लिये वह कथन कदाचित् ठीक होगा परन्तु उनको छोड़ जन समाजमें अंगरेजी जाननेवाले लोग कितने निकलेंगे ? जिस किसीनें भरतभूमिके जुदे जुदे भागोंमें थोड़ी बहुत यात्रा की हैं उसने यह बात अवश्य अनुभवकी होगी कि हिन्दी भाषासे ही बहुजन समाजका निर्वाह होता है । डॉक्टर ग्रियर्सननें लिखा है:-

"Then the language fulfilled a want. It gave a lingua franca to the Hindus. It enabled men of widely different provinces to converse with each other without having recourse to the unclean words of the Mussulmans. It was easily intelligible everywhere, for its grammar was that of the language which every Hindu had to use in his business relations with Government officials and its vocabulary was the common property of all the Sanskritic languages of Northern India

इस विवेचनसे समझमें आगया होगा कि हिन्दी भाषा ही अब भारतवर्षके बहुजन समाज पर आपसके व्यवहारमें साम्राज्य प्राप्त करनेवाली है । साम्प्रतकी राजभाषा अंगरेजी का अलबत्ता कुछ परिणाम होना अपरिहार्य है और कुछ शब्द देशी भाषाओंमें अपने रूप बदलकर आनेभी लगे हैं, परन्तु अंगरेजी भाषा हिन्दीको सर्वथा नाम शेष कर देगी यह बात नहीं होसकती । आर्य भाषाएँ बोलने वाले २२ करोड़ लोगोंमेंसे सवा ६ कोटि लोगोंकी आज दिन वह जन्म भाषा-अर्थात् मातृभाषा है । उसके पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी ऐसे दो भेद माने जाते हैं और अवधी,छत्तीसगढ़ी,बृजभाषा, कन्नौजी, इत्यादि अनेक उपभेद हैं; परन्तु वे स्थानिक हैं । उनको जुदे रखकर सबकी हिन्दी यही एक भाषा है ऐसा माननेमें कोई बाधा नहीं है । हम देखते हैं कि सब प्रान्तोंमें मजदूर, किसान और ब्यौपारी लोगोंकी इस समयभी काम चलाऊ भाषा हिन्दीही है । इसलिये सामान्य व्यवहारके लिये हिन्दी भाषाका ही आश्रय लेना उचित और आवश्यक है ।"

इन्हीं तत्वोंको समझकर बड़ोदा राज्यकी जनताकी भाषा गुजराती और राजकर्ताकी भाषा मराठी होकर भी बड़ोदा राज्यकी पाठशालाओंमें हिन्दी भाषाका पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया है । हिन्दीके प्रति इस प्रकार जो सेवा महाराजा बड़ोदा, इन्दोर और ग्वालियरने की है वह महाराष्ट्रीय जातिके शासन कर्ताओंकी अनुपम सेवा है और उनके उदाहरणको देख बीकानेर, धौलपुर दतिया आदि राज्योंने हिन्दीका प्रचार करना ठान लिया है यह केवल उनका कर्तव्य है । जिन हिन्दीभाषी शासन कर्ताओंने अपने राज्योंमें अभीतक नागरी लिपि और हिन्दी

भाषाका प्रचार करना शुरू नहीं किया है वे उन्नतिके पथमें अभी बहुत पीछे हैं और जो अपनी स्वभाषा-मातृ-भाषाके प्रचारमें हिचकते हैं तो उनका मनोबल बहुतही दुर्बल होना चाहिये। महाराष्ट्र जातिके शासन कर्ता लोगोंमेंसे अपने राज्यकी हिन्दी भाषी प्रजाके लिये हिन्दी भाषामें विविध विषयोंकी पाठ्य पुस्तकें बनवाकर प्रचारित करनेका महनीय कार्य ग्वालियर महाराजने किया है। यह बात हिन्दीके पक्ष पातियोंको नितान्त हर्षप्रद होगी। ग्वालियरकी हिन्दी भाषाकी पाठ्य पुस्तकें, शीलशिक्षाकी पाठ्य पुस्तकें, सनातनधर्म सीरीज, कृषिविद्याकी पुस्तकें इत्यादि कुल मिलाकर २८ पुस्तकें प्रचलित होगई हैं। ऐसा किसी देशी राज्यके शासन कर्ताने नहीं किया। युक्तप्रान्त तो अभी हिन्दी उर्दूकी खिचड़ीवाली पाठ्य पुस्तकोंके झगड़ेसे ही नहीं निपट सका है। मध्यप्रान्त अलबत्ता कुछ संतोषजनक हालतमें है तथापि जो सीरीज मुंशी छोटेलाल, हरीगोपाल पाध्ये, इत्यादि लोगोंने पवित्र हिन्दीमें लिखी थीं वह प्रथा अब बदल दी गई है और नई किताबोंमें नयी खिचड़ी देखी जाती है। ग्वालियरकी पाठ्य पुस्तकोंकी भाषा इत्यादि सर्वथा दोष रहित नहीं है तथापि एक महाराष्ट्र जातिके राज्यकर्ता द्वारा हिन्दी पुस्तकों-का निर्माण कराया जाना अत्यन्त प्रशंसनीय है।

मिस्टर भुजुमदारने तुलसीकृत रामायणकी मराठी भाषामें टीका लिखकर हिन्दीके प्रचार-को महाराष्ट्रमें सुलभ कर दिया है। पं० माधव-राव सप्रेने दास बोध हिन्दीमें लिख कर महात्मा रामदासका परिचय हिन्दी जगतको भलीभाँति कराया है। काशीमें कितनेही महाराष्ट्र पंडित हिन्दीके प्रेमी हैं। प्रोफेसर साठे गुरुकुल कांगड़ी-में काम करके हिन्दीका उद्धार कर रहे हैं। पं० वासुदेव गोविंद आपटे इन्दौरमें हिन्दीके एक पत्रका संपादन करके उसके गौरवको बढ़ा रहे हैं। कितने ही पत्रोंमें हिन्दीके पद्य उद्धृत किये जाते हैं। अभी गत मास (सेप्टेंबर १६१६) के मनोरंजनमें एक मनोरंजक आख्यायिका देकर गुणदेव कविका एक कवित्त उद्धृत करके उसके भावका दर्शक चित्रभी दिया है। वह कवित्त यह है।

> एक समै पूरन उद्योत जोत ससि भयो,
> तुनिके गहन देखें लोक सब धायके।
> ज्योति कीसी जवाल बाल इन्दुसो मुखारबिंद,
> कहे गुनदेव मौन ठाढ़ी भई आइ के॥
> चंद और चंदमुखी, याही ग्रसूँ यही ग्रसूँ,
> ऐसोही विचार निशिचारी ही बिसाइके।
> चंद भयो अस्त चंद मुखी निज गृह आई,
> राहु गयो गेह निज हिये पछताइके॥

मराठीके पत्र संचालक हिन्दीकी एक एक कविता अपने पत्रके प्रत्येक अंकमें देते जावें तो हिन्दी हरएक महाराष्ट्रघरमें पहुंचेगी और उसका परिचय महाराष्ट्र में अधिक होगा। हम महाराष्ट्रके उन सब प्रेमियोंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देते हैं जिन्होंने कुछ भी हिन्दीकी सेवाकी है। यह सेवा उन्होंने हिन्दीकी नहीं बरन अपने देशकी की है-राष्ट्रभाषा की की है।

४ हिन्दी प्रति बंग भाइयोंकी सेवा।

बिहार जैसा हिन्दी भाषी प्रान्त बंगालका पड़ोसी होनेसे बंगालमें हिन्दीका प्रचार होना स्वाभाविक है। कलकत्ता नगर भारतवर्षकी राजधानी बहुत समयसे रही और वह व्यौपारका घर होनेसे मारवाड़ी आदि हिन्दी भाषी लोगोंका केन्द्र होगया। कलकत्तेमे हिन्दी बंगवासीने जन्म लेकर बड़ा उपकार किया है। राष्ट्रनिर्माणकी

† नोट—इस दूषण को दूर करने के लिये अब एक नई पाठ्य-पुस्तक-माला लिखवाकर प्रचलित की जायगी। म० प्र० द्विवेदी.

दिशामें "देवनागर"का उदय और अस्त चिंतनीय है। 'प्राच्य विद्या महार्णव" की उपाधिसे विभूषित नगेन्द्रनाथ वसुका अपने "विश्वकोष" का हिन्दीमें रूपान्तर करना बंगीय भ्रातागणकी हिन्दी प्रति अमूल्य सेवा है। एक लिपि विस्तार परिषद् यह संस्था बंगीय उच्च कोटिके मस्तिष्कसे निकली है। किन्तु आधुनिक हिन्दी गद्यके जन्मदाता पं० लल्लूलालजीने बंग देशमें बैठ कर प्रेमसागर-को रचा था। एक हिन्दीके नितान्त प्रेमी बंगीय पुरुषको केवल हिन्दी प्रेमके कारण सांपत्तिक उन्नतिसे हाथ धो बैठे हुए देख कर, हमें नितान्त खेद हुआ था। वह साक्षात् "चक्रवर्ती" होकर अपने कुटुम्बके पोषणके लिये व्यवसाय ढूंढ़ते पाये गये। ऐसी विभूतिको हिन्दी जगत निष्कांचन देखे! कितने खेदकी बात है! जब देखा कि हिन्दी हमारा निर्वाह नहीं कर सकती तो चक्रवर्तीजीने अपनी प्यारी प्रेममयी मातृ-भाषाकी शरण ली और कोटिबार इस अपराध की क्षमा मांगकर कि जन्म भर उसे भुलाकर हिन्दीकी मातृभाषावत् सेवा की, बंगीय भाषामें ग्रन्थ लिखना आरंभ किया है। हाय! हमारे अन्य भाषा भाषी बन्धुजन तो प्यारी हिन्दीके अर्थ अपने सर्वस्वको समर्पण करें और हमारे हिन्दी भाषी लोग उसकी ओर उदासीन भावसे देखें। हिन्दीमें बोलने, लिखने, और बात करनेमें अपना निरादर समझें तो कितने दुःखकी बात है?

बंग साहित्यके ग्रन्थोंके कितनेही हिन्दी अनुवाद छप चुके हैं। उपन्यास लेखकोंके शिरोमणि बाबू बंकिमचंद्र चट्टोपाध्यायके उपन्यासोंका प्रचार हिन्दीमें खूब हुवा है। परन्तु लिपि भेदके कारण बंग साहित्यका आनंद पूरा नहीं मिलता। जैसे महाराष्ट्र जातिने अपने साहित्यकी लिपि देवनागरी रक्खी है वैसे ही यदि बंगीय साहित्य परिषद् यह नियम कायम करदे कि बंगीय साहित्यकी लिपि देवनागरी हो तो बंगीय साहित्यका द्वार सबके लिये खुल जावेगा। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपनी ओरसेही क्यों न हो बंगीय साहित्य परिषदकी सेवामें यह निवेदन करे तो आशा की जाती है कि उसपर परिषद अवश्य विचार करेगी।

५ अंगरेजी भाषा-भाषियों द्वारा कीगई हिन्दीकी सेवा।

हिन्दीकी सेवा करनेवालोंमें मिशनरी साहबानकी सेवा महत्वकी है। काशीमें एक मेडिकल हॉल प्रेस था। उसने कितनीही हिन्दीकी पुस्तकें उस जमानेमें छापी थीं जब ना० प्र० सभा का जन्मभी नहीं हुआ था। पाद्री एथरिंगटन साहब के "भाषा भास्कर" का उदय होकर अभीतक कोई ऐसा हिन्दी भाषाका दूसरा व्याकरण नहीं बना जिसे पढ़कर "लखैं लोग पद पंथ"। हिन्दी व्याकरणके आचार्य एक मिशनरी साहब हैं; और जब तक अन्य कोई सर्व मान्य व्याकरण नहीं बनता तबतक हिन्दीके बोलने वालोंको व्याकरणा-चार्य एथरिंगटन साहबको गुरु स्थानमें वंदन करना चाहिये।

दूसरे हिन्दीके व्याकरणको अंगरेजी भाषा में लिखनेवाले फ्रेडरिक पिन्कॉट साहब हैं। इनका "हिन्दी म्यानुअल" नामक हिन्दीका व्याकरण दर्शनीय है। आप हिन्दीके बड़े पण्डित थे। पवित्र हिन्दीके पक्षपाती थे। आप हिन्दीके विकासको मानते हुए लिखते हैं:—

Since the publication of this book (Hindi Manual) the Hindi language has grown apace and can not much longer be denied its rightful place in the public offices of the sixty millions of people who speak it. There is something

anomalous in the attitude of the Indian Government towards this wide spread vernacular. Half a century ago, when very little indeed was known of the real condition of the provinces where it is spoken Urdu was adopted as an official language in the honest belief that it was the language of the people. The Court of Directors *rightfully* held that justice should not be administered in a language foreign to the mass of the people. But although the mistake has been long since discovered, the Urdu which is foreign both in Vocabulary and in the very alphabet in which it is written, is maintained as the only medium of *communication with the Government of the country* and in the administration of justice. The Hindi language is, however, rapidly forcing its way to the front and the enormous literature now in process of formation will render it impossible for the present extraordinary state of things to be long maintained."

आपकी उक्त सम्मतिसे ज्ञात हो जायगा कि आप गवर्नमेंटकी उस नीतिसे सहमत नहीं थे कि जिस देशमें हिन्दी भाषाके ६ करोड़ लोग बोलने वाले हों वहाँ उर्दू में न्याय दिया जावे। आपने राजा लक्ष्मण सिंहकी हिन्दी शकुन्तलापर टिप्पणी लिख उसका सम्पादन किया था।

डॉक्टर बीम्सका कंपैरेटिव ग्रामर ऑफ दि मॉडर्न एरियन लेङ्ग्वेजेज़ भी स्मरणीय है। आपने हिन्दी उर्दूको एक कायम किया है। आप फरमाते हैं:—

It betrays, therefore a radical misunderstanding of the whole bearing of the question and of the whole science of Philology to speak of Urdu and Hindi as two distinct languages."

डॉक्टर ग्रियर्सन जिन्होंने सम्पूर्ण भारत वर्ष की भाषाओंकी छानबीन की है हिन्दीके बड़े नामी विद्वान हैं और हिन्दीके मासिक पत्रोंमें "सरस्वती" को ध्यानसे पढ़ते हैं। जिन अधिकारी और कर्मचारियोंने हिन्दीके महत्वको माना है उनमें सरजेम्स लॅटयूश इत्यादि मान्य हैं। मिस्टर ई. ग्रीव्स साहबकी हिन्दी प्रति श्रद्धा श्लाघनीय है। इन्हीं सज्जनकी प्रेरणासे विनय पत्रिका जैसे कठिन हिन्दी काव्य पर टीका होकर वह अब सुलभ हो गया है। हिन्दीके उपकारक मिस्टर फॅलनने अपने कोष द्वारा हिन्दीका बड़ा उपकार किया है। ऐसे और कितने ही प्रेमी आंग्ल जातिमें निकलेंगे जिनको हिन्दीसे प्रेम है। केवल गवर्न्मेंटकी नीतिके कारण वे भले ही बद्ध हों परन्तु सब मुक्तकंठसे हिन्दीकी श्रेष्ठता, सार्वदेशिकता और एक रूपता मानते हैं।

इतनी चर्चा करके अब हम अन्तमें अपनी मीठी गुजरातीमें भरत वाक्य कहकर इस लंबे लेखको समाप्त करते हैं।

पद

चिरंजियो सुखी रहो तुम सकल हरिजन ।
आनंद मङ्गल आवंद सदा हरि में रहो मन मग्न॥
करम काल माया भय जनम मरण जाओ ।
शुभ मति करो संतत कुपथ न कबु धाओ ॥१॥
सद गुण सत संग सदा रहो पूरण काम ।
एही आशीष देत सदा दास दयाराम ॥२॥

अन्य भाषा-भाषियों द्वारा कीहुई हिन्दीकी सेवा।

(लेखक-श्रीयुत मदनलालजी चौधरी, बम्बई।)

हिन्दी भाषा-भाषियोंके अतिरिक्त जिन महानुभावोंने हिन्दीकी सेवाकी है उन्हें हम साधारण तया तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं।

(१) भारतवर्षसे बाहर अन्य देशोंके निवासी, यथा अंगरेज, जर्मन आदि।

(२) अन्य देशोंके निवासी जो भारतवर्षमें आकर बस गये यथा मुसलमान।

(३) भारतवासी परन्तु हिन्दीसे इतर भाषा-भाषी यथा राज्यस्थानीय, गुजराती, पंजाबी आदि।

यह विचारनेके पूर्व कि अन्य देशवासियोंने हमारी हिन्दीभाषाकी कैसी कैसी सेवाकी है, हमें यह देख लेना आवश्यक है कि उनका हिन्द देश तथा यहाँकी हिन्दीभाषासे किस प्रकार सम्बंध हुआ अथवा इस भाषाकी सेवा करनेमें उनका क्या अभिप्राय या उद्देश्य था।

अपनी महत्ताके कारण भारत चिरकालसे जगतमें विख्यात रहा है और इससे लाभ उठानेकी इच्छासे अन्य देशोंकी अनेकानेक जातियोंने समय समय पर इस देशसे सम्बन्ध स्थापितकर यहाँकी भाषा, सभ्यता और साहित्यादिसे परिचय प्राप्त करना आवश्यक समझा है। यह ऐतिहासिक शृंखला बड़ी लम्बी है। कितने दिनोंसे भारतवर्षका सम्बन्ध प्राच्य एवं प्रतीच्य देशोंसे हो रहा है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। तौभी इतना तो अब ऐतिहासिक खोजोंसे सिद्ध हो चुका है कि सिकंदरसे २७०० वर्ष पहिले अर्थात् ईस्वी सन् ३००० के पहिलेसे भारतवर्षके साथ बाबीलोन, असीरिया, इजिप्ट आदि देशोंका घनिष्ठ व्यापारिक सम्बंध था।

परन्तु इस समय हमारा लक्ष्य केवल वही समय है जिससे हिन्दी भाषाका सम्बंध है। अन्य ऐतिहासिक घटनाओंकी भाँति किसी भाषाकी जन्मतिथी निश्चित नहीं की जा सकती। क्योंकि कितनीही शताब्दियोंके परिवर्तनके पश्चात् उसका कोई एक विशेष रूप बनता है। अभी तक हिन्दीभाषाका प्रादुर्भाव होना साधारणतया सातवीं शताब्दीमें माना जाता है। सम्भव है कि अधिक खोज होनेपर हिन्दीकी आयु किसी दिन और भी वृद्धिको प्राप्त होजाय, परन्तु तब तक इसे स्वीकार करनेमें कोई हानि नहीं है। इसलाम धर्मका जन्म भी लगभग इसी समयमें हुआ था। अतः हमारे विचारक्षेत्रमें पहिले पहल मुसलमान ही पदार्पण करते हैं। भारतके ऐश्वर्यको देख इनके मुहमें पानी भर आया और न्यायान्यायका विचार न कर जैसे हो यहाँसे धनरत्न लूट लेजाना ही इनकी प्रारम्भिक नीति रही। इनके इस प्रकार आने जानेसे यद्यपि यहाँकी भाषा पर उनका कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था तथापि यह भी नहीं कहा जासकता कि उससे हिन्दी पर उनकी भाषाकी कुछ भी छाप न पड़ी हो।

दशवीं ग्यारहवीं शताब्दियोंमें मुसलमानोंकी राजनैतिक एवं धार्मिक आकाक्षाएँ बढ़ चलीं और तब उन्हें यहाँ ठहरनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। धीरे धीरे सामाजिक कारणोंने भी अपना काम किया और इस प्रकार उनकी अर्बी, फारसी भाषाओंने यहाँकी प्रारम्भिक हिन्दीसे लेनदेन करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि इस विनिमयसे एक भाषाके शब्द दूसरी भाषामें

प्रचुरतासे सम्मिलित होने लगे तथापि उनमें अबभी आकाश पातालका अन्तर था। स्वभावतः राजसिंहासन पहिली भाषाओंके पक्षमें था और लोकमत दूसरीके, परन्तु कुछ दिनके अनुभवने राजकर्ताओंको समझा दिया कि देशी भाषाएँ सीखे बिना उनका कार्य्य सुगमतासे नहीं चल सकेगा। अब कठिनता यह उपस्थित हुई कि देशी भाषाओंमेंसे किस भाषाका वे व्यवहार करें। संस्कृत भाषा उस समय जन साधारणकी भाषा न थी। उसका उपयोग केवल धर्म व्यवस्था देनेमें ही हुआ करता था। और उसकी उत्तराधिकारिणी प्रचलित सब भाषाएँ अपने अपने कूचेमें शोर होरहीं थीं। अन्तमें बहुत सोच विचारके बाद यह निश्चित हुआ कि दिल्ली आगरेकी लशकरी (फ़ौजी) भाषाको ही प्रधानता मिले। इस मिश्रित भाषाका नाम रक्खा गया उर्दू। यह उर्दू कहीं बाहरसे नहीं आई थी। यहींकी आत्मा रखने वाली, उत्तर भारतकी भाषाओं के शरीरसे बनी हुई एवं उन्हींमेंके खड़े क्रिया पदोंके अलङ्कारों-से सजाई हुई भाषा, फारसी लिपिकी पोशाक पहन उर्दू कहलाई। उस समय हिन्दी उर्दू में वास्तविक कोई अन्तर न था। वही भाषा फारसी अक्षरोंमें लिखनेसे उर्दू कहलाती और कुछ परिवर्तनके साथ देवनागरी अक्षरोंमें लिखे जाने पर हिन्दीका नाम धारण करती।

इन दो भाषाओंमें जो भेद हुआ वह पीछेका है। कुछ महाशयोंने सोचा कि हमारी भाषा हिन्दीसे सर्वथा पृथकही दिखाई दे इसीमें हमारा गौरव है और इसलिये उन्होंने उसमें अरबी फारसीके शब्दोंकी भरमार करदी। इधर हमारे विद्वताभिमानी पंडितभी पद पद पर संस्कृत भाषाके जटिल शब्दोंका प्रयोग करने लगे। बस फिर क्या था। इस प्रकारकी खैंचातानीसे साहित्यिक हिन्दी और उर्दू में खासा अन्तर हो चला। परन्तु यह अन्तर जन साधारणकी भाषामें नहीं हुआ। अशिक्षित मुसलमानों की (भारतके मुसलमानोंमें ऐसोंकी ही संख्या अधिक है) भाषामें अबभी कुछ विशेष भेद नहीं है।

उपरोक्त विवेचनसे हमें विदित होता है कि मुसलमानोंका हमारी भाषाके साथ सम्बन्ध होनेके आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कारण थे। सत्रहवीं शताब्दीसे यूरोपके भिन्न भिन्न जातिके लोगोंका यहाँ आगमन होने लगा (उन सबमें अंगरेज प्रधान हैं) और उपरोक्त कारणोंसे ही उनका भी हमारी भाषासे सम्बन्ध स्थापित हुआ। आरम्भमें वे व्यौपारी थे। उन्हें दिनरात यहाँके निवासियोंसे लेन देनका काम पड़ता था इसलिये उन्हें भी यहाँके जन साधारणकी भाषा सीखना आवश्यक होता था। क्रमशः वे यहाँके शासनकर्ता होचले और साथही साथ भारतमें यूरोपीय सभ्यता और क्रिश्चियन धर्मके प्रचार करनेका भी उन्होंने बीड़ा उठाया। कहना नहीं होगा कि ये बातें तबही होसकती हैं जबकि इन शासकों या धर्म प्रचारकोंको उस देशकी भाषाओंका ज्ञान हो जहाँ वे अपना धर्म चलाना अथवा राज्य करना चाहते हैं। इनके अतिरिक्त उनका हमारी भाषाओंसे सम्बन्ध स्थापन करनेका एक अन्य कारण भी था।

मुसलमानोंकी भाँति ये विद्याके शत्रु न थे वरन उसके बड़े प्रेमी थे। कला विज्ञानकी धुन इनके मग़ज़में समाई हुई थी और जहाँसे जो मिलता उसे ये बड़ी प्रसन्नता पूर्वक संग्रह कर उसका प्रचार अपने देशमें करते। ऊपर कहा जाचुका है कि भारत वर्ष अपनी विद्या, बुद्धि और ऐश्वर्य आदिकी महत्ताके कारणसे जगतमें सर्वदासे प्रसिद्ध है। उसकी प्रशंसा सुनते सुनते

इन यूरोपियनोंके मुंहमें पानी भर आता और उसे देखनेके लिये वे उत्कण्ठित हो उठते। अब इस सुवर्ण संयोगको प्राप्त कर उन्हें उस महत्ताका कारण ढूंढ़ निकालनेकी उत्कट इच्छा हुई। भारतीय साहित्यका प्राचीन भव्य भवन इस समय मुसलमानोंके अत्याचारोंसे नष्ट भ्रष्ट होचुका था तथापि उसके जो खंडहर अभीतक अवशिष्ट थे उन्हींकी खोज करना इन्होंने प्रारम्भ किया। अपने इस उद्योगके लिये वे सर्वदा राजसिंहासन द्वारा उत्तेजित एवं पुरस्कृत किये जाते थे। अस्तु अनेक प्रतिभाशाली विद्वानोंने निश्चिन्त हो अपने अमूल्य जीवनका एक खासा भाग भारतवर्षकी प्राचीन विद्यापीठ मथुरा, काशी, पाटलिपुत्र आदि स्थानोंमें और अनेक राजा महाराजाओंके दरबारों और पुस्तकालयों-में व्यतीत किया। इस प्रकार अनेक कठिन परिश्रमसे संस्कृत हिन्दी एवं अन्य भाषाओं-के बहुतसे लुप्त ग्रन्थ उपलब्ध होगये और भारतके प्राचीन इतिहासपर थोड़ा बहुत प्रकाश भी पड़ता गया।

इन महाशयोंका कार्य क्षेत्र अधिकतर काशी, मथुरा, पाटलिपुत्र आदि चिर प्रसिद्ध स्थानोंसे लेकर राजपूताने तक था और यहीं उन्हें बहुत कुछ मिलनेकी सम्भावनाभी थी। इन सब स्थानोंमें थोड़े बहुत अन्तरके साथ हिन्दी भाषाही बोली जाती थी और इसलिये संस्कृत और प्राकृत भाषाओंके अतिरिक्त उन्हें हिन्दी जाननेकी भी आवश्यकता हुई। यद्यपि उनके द्वारा हिन्दी भाषामें लिखे हुए ग्रन्थ इतने विरल हैं कि वे उंगलियोंपर गिने जासकते हैं तथापि उन्होंने जिस परिश्रमसे हिन्दीके लुप्तप्रायः ग्रन्थ रत्नोंका पता लगा, उनकी सूची तैयार कर और उनमेंसे कितनोंहीका अंगरेजी अनुवाद प्रकाशितकर अन्य हिन्दी सेवियोंके मार्गको जैसा सरल और परिष्कृत करदिया है उसके लिये हिन्दी भाषा-भाषी उनके चिर ऋणी रहेंगे।*

एक फरासीसी डाक्टर (फरासीसी हकीम) जॉन ईसाई आदि कितनेही सज्जनोंने ईसाई धर्मके प्रचारार्थ अपनी बाईबिल आदिका अनुवाद हिन्दी भाषामें प्रकाशित कर यूरोपीय धर्म शास्त्रोंसे परिचित होनेके लिये हिन्दी भाषा-भाषियोंका मार्ग साफ कर दिया है। यूरोपियनों द्वारा हिन्दीमें लिखे हुए अधिकतर ग्रन्थ इसी प्रकारके हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभाके चिरसहायक रेवरेंड एडविन ग्रीव्सने इसीप्रकारके पाँच ग्रन्थ लिखनेके अतिरिक्त महात्मा तुलसी-दासका जीवन चरित्र लिखकर हिन्दीके विख्यात कविके प्रति अपने प्रेमका परिचय प्रदान किया है। परन्तु इनकी सेवाका अन्त यहीं नहीं हुआ। इनमें तीन ऐसे महानुभावोंका नाम भी मिलता है कि जिन्होंने हिन्दीके काव्यामृतके आस्वादन-के साथ उक्त भाषाके व्याकरण भागका भी अच्छा अध्ययन किया था। डाक्टर रुडल्फहार्नली सी.आई.ई ने बिहारी भाषाके एक कोषके अतिरिक्त उत्तरीय भारतकी भाषाओंके व्याकरण भी बनाये और चन्दकृत पृथ्वीराज रासोका आँशिक सम्पादन भी किया। मि० फ्रेडरिकपिंकाटने हिन्दीमें सात पुस्तकें सम्पादितकी हैं जिनमेंसे कुछ तो स्वयं उन्हींकी रचित थीं। मि० जी० ए० ग्रियर्सनने Modern Vernaculars Literature

---

* इस लेखके लिखनेका भार श्रीयुत भगवानदास-जी माहेश्वरी (केला) ने अपने ऊपर लिया था परन्तु वे अपनी अस्वस्थताके कारण यहाँ अधिक न रह सके। यहाँ तकके लेखकी एक पांडुलिपि वे मुझे देगये थे उसीको मैंने ऊपर लिख दिया है। स्थान स्थान पर आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन भी किया गया है।

मदनलाल चौधरी।

of Hindusthan नामक एक पुस्तक अंगरेजीमें भारतकी प्रचलित भाषाओं पर लिखी और हिन्दीकी बिहारी सतसई, पद्मावती, भाषाभूषण और तुलसीकृत रामायण जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्नोंका भी सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त आपने बिहारी और मैथिल भाषाओंके व्याकरण लिखे और बिहारी-कृष्ण-जीवन नामक एक स्वतंत्र ग्रंथभी लिखा। कर्नेलटाडने अंगरेजीभाषामें जो राजस्थान नामक एक सुन्दर और विस्तृत इतिहास ग्रन्थ लिखा है उसकी सामग्री इकट्ठी करनेके लिये आपको राजपूतानेके राजाओंके अनेक प्राचीन पुस्तकालयोंको देखने और प्राचीनकवियों तथा भाट चारण आदिसे मिलनेका मौका पड़ा। उनके इस प्रयत्नने प्राचीन लुप्त ग्रन्थोंकी खोज करने और अनेक कवियों और उनके समयका पता लगानेमें हिन्दी भाषा-सेवियोंको बड़ी भारी सहायता दी।

लेखके प्रारम्भमें ही हिन्दीकी सेवा करनेवाले अन्य भाषा-भाषियोंको जिन तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है उनमेंसे प्रथम श्रेणीके सेवकोंका जो संक्षिप्त विवेचन ऊपर किया गया है उससे स्पष्ट होजायगा कि यद्यपि इन महानुभावोंने यत्रतत्र हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध ग्रन्थोंका सम्पादन कर और उसके व्याकरण लिख हिन्दीके साहित्य भंडारमें कुछ न कुछ वृद्धि की है तथापि उनकी अधिक कीमती सेवा ऐतिहासिक ही है। हिन्दी प्रेमियोंको उनके इस उपकारके लिये चिरकृतज्ञ रहना चाहिये।

यूरोपियनोंके पश्चात् अब मैं मुसलमानोंकी ओर कि जिन्हें मैंने दूसरी श्रेणीमें रखा है झुकता हूं। यद्यपि अधिकतर मुसलमान हिन्दी और हिन्दुओंके कट्टर शत्रु थे और हैं तथापि इनमें भी अनेक उदारचरित मुसलमानोंके नाम हमें बहुत प्राचीन कालसे मिलते चले आरहे हैं कि जिन्हें हिन्दी या हिन्दुओंसे द्वेष नहीं है इतना ही नहीं बल्कि वे स्वयं अपनी भाषा और भावतकमें हिन्दुओंसे बिलकुल हिलमिल गये हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य-भण्डारकी पूर्ति करनेमें बड़ा परिश्रम किया है और हिन्दुओंके सामाजिक, धार्मिक, एवं अन्य कितने ही विचारों और भावोंको अपनाया है और साथ साथ अपने भी विचार और भावोंका प्रचार हिन्दीमें किया है।

प्रसिद्ध पृथ्वीराज रासोके रचयिता चन्दके पहिले भी मसऊद, कुतुबअली और अकरमफ़ैज़ नामक तीन मुसलमान कवियोंके नाम मिलते हैं। चौदहवीं शताब्दीमें अमीर खुसरोने हिन्दीमें कई प्रकारकी नये ढङ्गकी कविताएं लिखी हैं। खालिक बारी जो हिन्दीसे फारसी और फारसी से हिन्दी शब्दोंके अर्थ बतानेके लिये एक प्रकारका छन्दोबद्ध कोष है इन्हीं महाशयका लिखा हुआ है; और आजभी उर्दू मकतबोंमें उसके पढ़ानेका चाल है। इनकी कविता बृजभाषा और खड़ी बोली दोनोंमें है। हिन्दी फारसी मिश्रित कविताएं भी इन्होंने लिखी हैं। इनके ढकोसले और पहेलियाँ प्रसिद्ध हैं। मुल्लादाऊदने 'नूरक और चन्दाकी प्रेम कहानी' लिखी। कुतुबन शेखका 'मृगावती प्रेम काव्य' और मलिक मुहम्मद जायसीके 'अखरावट' और 'पद्मावत' बहुतही सुन्दर और प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अकबरी दर्बारके नवरत्नके कवियोंमेंसे नवाब खानखाना भी एक थे। ये 'रहीम' के नामसे कविता लिखते थे। इनके बनाये हुये दोहे बड़े ही रसीले, सरल और मर्मस्पर्शी हैं। शृंगारके अतिरिक्त नीतिने भी इनकी कवितामें यथेष्ट स्थान पाया है। कहते हैं एकबार महाराणा प्रतापसिंहके, हिम्मत हारजाने पर इन्होंने उनको मारवाड़ी भाषामें एक सुन्दर दोहा लिखकर भेजा था और उस दोहेने महाराणा प्रतापको फिरसे साहस दिलानेमें बहुत अच्छा काम किया था। इबरा-

हीम आदिलशाह, फैजी, और स्वयं सम्राट् अकबर भी हिन्दीके अच्छे कवि होगये हैं। अबुलफजल सम्राट् अकबरके समयके इतिहास-की बहुतसी जानने योग्य बातें हमारे लिये छोड़ गये हैं। रसखानकी राधाकृष्णके प्रेममें सनी हुई कविता पढ़कर कौन कह सकता है कि वह मुसलमान थे। इनकी कविता बहुतही सरस, मनोरम और हृदयग्राही है। कादिरबख्श मुबारक, उसमान आदि भी अच्छे कवि होगये हैं। इनके कितने ही ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं हैं तथापि जो हैं वे बहुतही अच्छे हैं। ताहिर कविने कोकशास्त्रका वर्णन अच्छे मनोहर छन्दोंमें किया है। निवाज, आलम, शेख, जमाल, पठान सुलतान, महबूब, और नूर-मुहम्मद आदि भी बड़े अच्छे कवि थे। इनमें से भी कितने ही कवियोंकी कविता राधाकृष्णके प्रेमसे भरी हुई है। यद्यपि 'मीर' आदि कुछ लेखक वर्तमान कालमें भी हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं तथापि कुछ काल पूर्व मुसलमानोंमें जितने अधिक और जितने उच्चकोटिके कवि पाये जाते हैं उतने और उस कोटिके अब नहीं हैं।

यह एक आश्चर्यकी बात है कि हिन्दू मुसल-मानोंमें जाति धर्मके कारण इतना अन्तर रहते हुएभी और इसलाम धर्मके नामपर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओंपर भाँति भाँतिके अत्याचार किये जानेपरभी अनेक मुसलमान इस जमाने में ऐसे मिलते हैं कि जो न केवल भाषामें बल्कि अनेक स्थानोंपर हिन्दुओंके धार्मिक भावोंमें भी इतने मिल गये हैं कि उन्हें किसी प्रकार मुसल-मान कहनेको जी नहीं चाहता। रसखान, आलम, निवाज आदि कवियोंको राधाकृष्ण-की भक्तिके अनुपम प्रवाहमें बहते हुए देख कौन उन्हें मुसलमान कह सकता है? यदि सच पूछो तो कई मुसलमान हिन्दी कवियोंके इस विषयके वर्णन कितनेही हिन्दू कवियोंसे भी बहुत ऊँचे दर्जेके हैं। उक्त कवियोंकी कवितामें भी उस समयके अनुसार शृंगारकी ही भरमार है और यत्रतत्र नीति, भक्ति एवं [illegible]की भी झलक पाई जाती है। उस समय हिन्दीकी साहित्यिक भाषा बृजभाषाही थी और इन मुसल-मान कवियोंने भी (एक दो को छोड़ सबने) उसी भाषाका व्यवहार किया है। अमीर खुसरो की 'खड़ी बोली' की कविता मार्के की है और अनेक अंशोंमें आजकलकी कवितासे मिलजुल जाती है।

तीसरे प्रकारके हिन्दी सेवियोंमें किन किन प्रान्तोंके निवासियोंका समावेश किया जाय यह विषय सदा विवाद ग्रस्त है। विंध्याचलके दक्षिणी भागको छोड़ उत्तर भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी प्रचलित भाषाओंमें प्रायः समानता है। इन प्रान्तोंमेंसे बङ्गाल, आसाम और उड़ीसामें बङ्गला या उससे मिलती जुलती भाषाएँ बोली जाती हैं, उसी प्रकार गुजरात, काठिया-वाड़ कच्छ और सिंधमें गुजराती या उसीके थोड़े रूपान्तरके साथ अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं एवं महाराष्ट्र और मध्यप्रदेशके कुछ भागों-में मराठी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। अब रहे राजपुताना, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रदेश का कुछ भाग विहार और छोटा नागपुर। इनमें-से किन किन प्रान्तोंके निवासियोंको हम हिन्दी भाषा-भाषी कहें और किन्हें हम हिन्दीसे इतर भाषाबोलनेवालोंकी श्रेणीमें रखें यह बात विचारणीय है।

यद्यपि संयुक्तप्रान्त हिन्दीको अपनी ही पैतृक सम्पत्ति कहनेका दावा कर रहा है तथापि विहार और छोटा नागपुर आदि कुछ प्रान्तोंकी भाषाओंका भी एक प्रकारसे उसीमें समावेश कर लिया गया है; किन्तु राजपुतानेकी 'मारवाड़ी' अबभी हिन्दीसे भिन्न भाषा

समझी जारही है। मैं ऐसा नहीं मानता। मेरी समझसे राजपुतानेकी प्राचीन मारवाड़ी भाषा हिन्दीही है और जिस प्रकार बृजभाषा, पूर्वी हिन्दी आदि उसके भेद हैं उसी प्रकारसे 'मारवाड़ी' भी हिन्दीका एक भेद मात्र है। इसलिये राजपुतानेके कवियों और लेखकोंको हिन्दीसे इतर भाषा-भाषी कहना मेरी समझमें योग्य नहीं तथापि कुछ विद्वानोंका इसमें मतभेद होनेके कारण मैं उन्हें भी इस समय तीसरी श्रेणीमें सम्मिलित कर लेता हूँ। इस प्रकार तीसरी श्रेणीके हिन्दी सेवियोंमें गुजराती, मराठी, मारवाड़ी, पञ्जाबी और बंगला आदि पाँच भाषा-भाषियोंका समावेश किया जा सकता है।

उक्त पाँच प्रकारके भाषा भाषियोंमें हिन्दीका प्राचीन साहित्य जितना मारवाड़ियोंका ऋणी है उतना अन्यका नहीं। हिन्दीका प्राचीन-तम ग्रन्थ जो इस समय उपलब्ध है वह 'पृथ्वी-राज रासो' है। यह ग्रन्थ पृथ्वीराजके राज-कवि और मित्र चन्दबरदाईने तेरहवीं शताब्दी-में रचा है। इतिहास हमें बताता है कि पृथ्वीराज राजपुतानान्तर्गत अजमेरके अधिपति थे और अपने नाना अनङ्गपालकी मृत्युके पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। यद्यपि चन्द-का जन्मस्थान पञ्जाब माना जाता है तथापि यह बातभी हमें अविदित नहीं है कि वह पृथ्वी-राजका लंगोटिया मित्र था और उसका जीवन-काल बचपनसे लेकर मरण पर्यन्त पृथ्वीराजके साथ राजपुताना या उसीके आसपासके स्थानों-में कटा था। हम मि० देवस्कर आदिके उदाहरण-से भलीभाँति समझ सकते हैं कि बाल्यकालसे अपनी जन्मभूमिको छोड़ जो लोग अन्य देशोंमें निवास करने लगते हैं उनकी भाषा और वेशमें उस देशानुसार कैसा अविकल सादृश्य होजाता है। इसलिये यह कहना अनुचित न होगा कि बाल्य-कालसे राजपुतानेमें रहनेके कारण चन्दबरदाई राज्यस्थानी (मारवाड़ी) भाषा-भाषी ही था। अतएव पृथ्वीराजरासो मारवाड़ी भाषा-भाषियों-का ही रचा हुआ है इसके लिये अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं। यही नहीं पृथ्वीराज रासोके पूर्व भी जो ग्रन्थ लिखे गये थे उनके रचयिता भी प्रायःराजपुताना निवासी ही थे। उदाहरणके लिये खुमान रासाके कर्ता, और साईंदान चारणके नाम उल्लेख योग्य हैं। चन्द-बरदाईके पश्चात् अर्थात् तेरहवीं शताब्दीके अन्तसे लेकर बहुत आधुनिक समय तक हिन्दी-साहित्य-भंडारकी पूर्तिमें मारवाड़के कवियोंका प्रधान भाग रहा है। चौदहवीं शताब्दीमें उनके द्वारा बनाये हुए ग्रन्थोंमें कुमारपाल चरित्र, बीसलदेव रासो और विजयपाल रासो विशेष उल्लेख योग्य हैं। सोलहवीं शताब्दीके ग्रन्थोंमें दामोकविका 'लक्ष्मणसेन पद्मावती प्रेम-काव्य' और छीहल कविकी 'पंचसहेली' नामक प्रेम कहानीका उल्लेख किया जासकता है। सत्रहवीं शताब्दीका प्रारम्भ भारतमें एक विशेष परिवर्त करनेवाला होनेके कारण विशेष उल्लेख योग्य है। यही समय था कि जब मुगल सम्राट् अकबरकी कपट नीतिचातुरीके फंदेमें फंस भारतके अनेक शूरवीर और राजा महाराजा मुगलोंके चरणोंमें स्वेच्छासे आत्मसमर्पण कर रहे थे और आर्यत्वका अभिमान खो उनके साथ विवाह सूत्रमें आबद्ध होने जारहे थे। अकबरकी इस नीतिका हिन्दी पर भी प्रभाव पड़ा और इसी समयसे उसपर अरबी फारसीकी विशेष प्रकारसे छाप लगने लगी।

यह सब होते हुएभी इस समय हिन्दीकी बड़ी शीघ्रतासे उन्नति होरही थी और उसका साहित्य भण्डार अनेक महत्व पूर्ण ग्रन्थों द्वारा बड़ी तेजीसे भरा जारहा था। इस समय भक्ति

और प्रेमका जो अपूर्व मधुमय प्रवाह चारों ओरसे बह निकला था और जिसे प्रवाहित करनेमें जिन भक्त और महात्माओंने अपने हृदयस्थित प्रेमका उत्स खोल दिया था । उनमें मारवाड़ियोंका कुछ कम भाग नहीं है । यह सेवा केवल पुरुषोंने ही नहीं की बल्कि वहांकी देवियोंने भी इसमें यथेष्ठ योग दिया है । भक्ति शिरोमणि मीराबाईका नाम किसने नहीं सुना ? आजभी उनके रचित पद न केवल संयुक्त प्रान्त या राजपूतानेमें बल्कि गुजरात और महाराष्ट्र तकमें बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं । इस समयके अन्य कवियोंमें टोडरमल, मानसिंह, गंगाभाट, और जटमल विशेष उल्लेख योग्य हैं । इस समयके पीछेसे लेकर बहुत आधुनिक कालतक राजपुतानेके अनेक विद्वान् और विदुषियाँ हिन्दी साहित्यकी पूर्तिमें सहायता करती चली आरही हैं । महाराज जसवंतसिंह, पोहकर, राजा शंभुनाथ सोलंकी, महाराज अजीतसिंह, महाराज नागरीदास, भगवन्तराम खीची, बैरीसाल, महाराज रामसिंह, मनियारसिंह, क्षेमकरण, महराजा मानसिंह, जैसिंह बलवानसिंह, रघुराजसिंह, रामपालसिंह, सहजोबाई, रतनकुंवरि, सुन्दरकुंवरि, ठकुरानिन काकरेचीजी, चन्द्रकलाबाई, छत्रकुंवरि बाई, तीजांजी, तुलछराय, बीरांजी, प्रतापकुंवरिजी, राणी बाँकावतजी आदि कहाँतक कहें राजपुतानेके सैकड़ों विद्वान् और विदुषियोंने हिन्दीकी सेवा की है ।

यद्यपि आजकल भी कितने ही राजपुताना निवासी भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सेवा किये आरहे हैं तथापि यह बातभी अस्वीकार नहीं की जासकती कि अब उनमें शिथिलता दीख पड़ने लगी है और प्राचीन कालकी अपेक्षा आधुनिककालमें इस कार्यमें उनका भाग बहुतही थोड़ा है । कोई कोई पण्डित महाशय तो अपनी डेढ़ चाँवलकी खिचड़ी अलग पकानेके लियेही उत्सुक दीख पड़ते हैं और हिन्दीकी अपभ्रंश मारवाड़ी भाषा (बोली) को ही संस्कृतकी यवीयसी पुत्री बता, उसे साहित्यिक भाषाका गौरव प्रदान कर बालूमेंसे तेल निकालने जैसा दुस्साध्य और हास्यप्रद उद्योग करनेमें लगे हुए हैं ।

जो हो अब हमें यह देखना है कि राजस्थान के इन कवियों द्वारा हिन्दीकी कितनी और किस प्रकारकी सेवा हुई । यह तो स्पष्टही है कि हिन्दीके पद्य साहित्यकी अपेक्षा उसका गद्य साहित्य बहुत थोड़ा है और जो है वह भी आधुनिक कालका है । आधुनिक समयके आसपासके ग्रन्थोंको छोड़कर यदि हम हिन्दीके प्राचीन पद्य ग्रन्थोंकी ओर दृष्टि डालें तो हमें यह समझनेमें तनिक भी विलम्ब न लगे कि उनमें प्रधानतःयातो श्रृंगार या उसीके आवरणमें भक्ति और प्रेम आदि विषयोंकी भरमार है । अवश्यही इसमें अपवाद स्वरूप वीररस, नीति, और आध्यात्म विद्याके ग्रन्थ भी यत्र तत्र मिलते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि अन्य प्रान्त निवासियोंकी भाँति राजपूतानेके उक्त तथा अन्य कितनेही कवियोंने हिन्दीके इन अङ्गोंकी उन्नति साधन करनेमें यथेष्ट सहायता की है तथापि उनकी सेवाका अन्त यहीं नहीं होजाता । उन्होंने भाषाके एक प्रधान और अत्यावश्यक विषयका अपने ग्रन्थोंमें वर्णन कर हिन्दी भाषाभाषियोंको अपना चिर बाधित बनाया है । वह विषय इतिहास है । इतिहास यद्यपि स्वयं रोचक विषय है तथापि उसका रसीली और हृदयहारिणी कविताके साथ संमिश्रण कर उन्होंने उसे औरभी अधिक रोचक और सरस बना दिया है यदि आज हमें चन्दका पृथ्वीराज रासो उपलब्ध न होता तो हम अपने अन्तिम प्रतापी सम्राट महाराज पृथ्वीराजके सम्बन्धमें कितने अनभिज्ञ रहे होते ? यही बात अन्य कितनेही

रासा ग्रन्थों और चरित्र ग्रन्थोंके सम्बन्धमें कही जासकती है।

यह तो हुई कुछ पढ़े लिखे या प्रतिभा सम्पन्न पुरुषोंकी बात। अब यदि हम जन साधारण के प्रति ध्यान दें तो हम देखेंगे कि उन्होंने भी हिन्दीका भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें प्रचार करनेमें बड़ी सहायता की है। मारवाड़ी अधिकतर व्यौपारी लोग हैं इसलिये उन्हें भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें जाने और वहाँ रहनेकी अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक आवश्यकता पड़ती है। अन्य प्रान्तवासियोंके साथ जब कभी उन्हें बात करने-का अवकाश मिलता है तब सदैव वे हिन्दी भाषाका ही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार एक छोटे-से दुकानदार या दलालसे लेकर बड़े बड़े सेठ साहूकार तक सबही मारवाड़ी किसी न किसी हद्द तक हिन्दीके प्रचारका कारण होते हैं। यद्यपि इनसे हिन्दीके साहित्यकी कुछभी वृद्धि नहीं होती तथापि यह बातभी अस्वीकार नहीं की जासकती कि इन्हीके कारण भारतवर्षमें हिन्दी समझनेवालोंकी संख्या इतनी अधिक है।

इस कक्षाके हिन्दी सेवियोंमें राजपुताना निवासियों (मारवाड़ी) के पीछे गुजरातियोंका नम्बर है। यद्यपि उनके द्वारा रचित हिन्दीभाषा-के ग्रन्थ अपेक्षाकृत थोड़े हैं तथापि उन्होंने हिन्दीके अनेक सरसकाव्य ग्रन्थोंको अपनाकर उनका प्रचार अपने देशमें किया है और इस प्रकार जो सहायता उन्होंने हिन्दी प्रचारमें की है वह कम नहीं है। गुजरातके हिन्दी सेवियों-में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका नाम सबसे पहिले उल्लेख योग्य है। हिन्दीही भारतकी एक भाषा होसकती है यह सिद्धान्त उन्होंने भली भाँति हृदयङ्गम करलिया था। यही कारण है कि उन्होंने अपने वैदिक धर्मको भारतके कोने कोनेमें फैलानेके लिये भारतकी भावी राष्ट्रभाषा हिन्दीका ही सहारा लिया। यद्यपि स्वामी दयानन्दके गुजरातमें जन्म लेनेके कारण यह उचित था कि हिन्दीका प्रचार गुजरातमें ही अधिक होता, परन्तु कुछ विशेष कारणवश ऐसा न होकर वह पञ्जाबमें ही अधिक हुआ।

गुजरातमें जो हिन्दीकी जड़ जमी उसका मूल कारण वल्लभीय सम्प्रदाय है। वल्लभाचार्य महाप्रभुका पंथ गुजरातमें बड़ी तेज़ीसे फैलरहा था और उसके साथ उनके एवं उनके भक्तोंके सरस भक्ति पूर्ण काव्यका भी (जो प्रायःहिन्दीमें ही थे) प्रचार यहाँ होने लगा। जूनागढ़के नरसी महता और नरमियोंने भी हिन्दीमें कुछ कविता की। यद्यपि इनकी कविता कुछ ऊँची श्रेणीकी न थी तथापि भक्तिसे पगी रहनेके कारण उसका प्रचारभी गुजरातमें होगया। पुहकर, रञ्जबजी, रघुराम, और दयाल आदि कवियोंने भी हिन्दीमें ग्रन्थ रचे। अहमदा-बादके दलपतिराय बँसीधरका अलङ्कार रत्नाकर ग्रन्थ बहुत उत्तम हुआ। इसमें उन्होंने अपनी कविताके अतिरिक्त हिन्दीके कितने ही उत्कृष्ट और प्रसिद्ध कवियोंकी कविता सङ्कलित की है। स्वामी दयानन्दको छोड़ गुजरातके हिन्दी सेवियोंमें लल्लूजीलालजी सेवा सबसे अधिक है। इन्होंने व्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोलीमें प्रेमसागर आदि कितनेही गद्य ग्रन्थ लिखे। यद्यपि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने गद्यकी भाषाको औरभी परिष्कृत एवं स्थिर बनादिया तथापि आधुनिक गद्यके जन्मदाता वास्तवमें वे ही कहे जाते हैं।

गुजरातियोंके पश्चात् [illegible] बहुत ऋणी है। लगभग ५०० वर्ष पूर्वसे मिथिला निवासी; हिन्दी-साहित्य [illegible] पूर्तिमें यथेष्ट योग देरहे हैं। विद्यापति ठाकुर, जयदेव और उमापति इन तीन कवियोंने एकही कालमें

हिन्दीकी बहुत उत्तम सेवा की है। अभी तक हिन्दीमें नाटक लिखनेकी चाल न थी। विद्यापति ठाकुरने ही पहिले पहल नाटक लिख हिन्दी सेवियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। लक्ष्मीनारायण, भोलन झा, लल्लु झा, हरिनाथ झा, महाराजा प्रतापसिंह दरभंगानरेश, रामचन्द्र नागर, माधवदास, ललित किशोरी, ललित माधुरी और वैष्णवदास आदि बंगालके भिन्न भिन्न स्थानोंके कितनेही कवियोंने हिन्दी-साहित्य-भंडारके भरनेमें बहुतही सराहनीय प्रयत्न किया है। इनमेंसे विद्यापति ठाकुर एवं और भी दोतीन कवियोंकी कविता बड़ीही उत्कृष्ट और बड़े मार्केकी है।

हिन्दी साहित्य पञ्जाबियोंका भी कुछ कम ऋणी नहीं है। वहाँके प्रसिद्ध सिक्ख सम्प्रदायके प्रवर्तक गुरुनानकने भी अपने धर्मके 'ग्रन्थ साहब,' साखी, अष्टांग योग आदि जितने ग्रन्थ लिखे हैं उनमें पञ्जाबी भाषाके साथ हिन्दीका इतना अधिक संमिश्रण किया है कि अनेक स्थलों पर उनकी भाषा हिन्दीमें बिलकुल मिलजुल गई है। रामचन्द्रमिश्र, आनन्दकायस्थ, नैनसुख, हृदय राम, ताज (स्त्री) बलिराम गुलाबसिंह, गुरु गोविन्दसिंह, एवं और भी कितने ही पंजाबी कवियोंने हिन्दीमें कितनेही ग्रन्थ लिखे हैं। स्वामी दयानन्दके पूर्वतक पंजाबकी प्रधान भाषा उर्दू थी परन्तु आर्यसमाजके प्रचारके साथ साथ उसका स्थान गिरता गया और उसकी जगह हिन्दीका अधिकार होता गया। पंजाबियोंके सिवा देवदत्त, केशवदास आदि कुछ काश्मीरी कवियोंने भी हिन्दी भाषामें ग्रन्थ रचे हैं।

उत्तर भारतके निवासियोंके अतिरिक्त कुछ दाक्षिणात्य सज्जनोंने भी हिन्दीकी सेवाकी हैं जिनमेंसे रतनजी भट्ट और पद्माकर भट्ट प्रधान हैं। रतनजी भट्टने 'रतनसार' नामक एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है और पद्माकर भट्टका नाम तो हिन्दी संसारमें प्रसिद्धही है। ये महाशय तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके 'जगद्विनोद' आदि ग्रन्थ हिन्दी साहित्यमें ऊँचे दर्जेके ग्रन्थ समझे जाते हैं। शृङ्गारके अतिरिक्त इनकी वीर रसकी कविता भी उत्तम है।

महाराष्ट्रप्रान्तके† प्राचीन हिन्दी सेवियोंके नाम मेरे देखनेमें नहीं आये। आधुनिक कालमें इस प्रान्तके निवासियोंने हिन्दीके गद्य भागकी अच्छी सेवाकी है। कितनेक महाराष्ट्रीय सज्जनोंने हिन्दीके कई उत्तम सामायिक पत्रोंका बड़ी योग्यतासे सम्पादन किया है और कितनेकोंने हिन्दीमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं। [illegible]राम भट्ट, विनायकराव, रामराव चिंचोलकर, अनन्त-बापू शास्त्री, गोविन्दराव दिनकर, दाजी शास्त्री पदे, बाबूराव पराड़कर, बालाजी माधवलघाटे, लक्ष्मण गोविन्द आठले, सखाराम गणेश देवस्कर, माधवराव सप्रे बी. ए. आदि सज्जनोंके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

कुछ समयसे भारतवर्षमें जागृतिके लक्षण दीख पड़ने लगे हैं। जातीयताका भाव भारतवासियोंके हृदयमें स्थान पाने लगा है। अब वे प्रान्तगत सङ्कीर्ण भावोंको छोड़ समस्त भारतको एकताके सूत्रमें बाँध लेनेके लिये उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। संस्कृत इस समय भारतकी भाषा नहीं है, अंगरेजीकाभी भारतमें पूर्ण प्रचार होनेके लिये अभी हजारों वर्ष लगेंगे इसलिये भारतकी प्रचलित एक ऐसी भाषाका भारत भरमें प्रचार करनेकी आवश्यकता है कि जो सब प्रान्तोंमें आसानीसे समझी जासके और जिसके द्वारा एक प्रान्तवाला भलीभाँति अन्य प्रान्त-वालोंके प्रति अपने भावोंको व्यक्त कर सके। हिन्दी ही इस कार्यके लिये उपयुक्त समझी गई और उसके राष्ट्रभाषा होनेकी घोषणाके साथ ही

†चित्र-मय-जगत् में कई महाराष्ट्र भक्तों के पद्यों के नमूने प्रकाशित हो चुके हैं —सम्पादक।

समस्त प्रान्तवालोंने उसकी उपयुक्तताको एक स्वरसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हिन्दीको राष्ट्रभाषाका स्थान मिलने पर उसके साहित्यकी फिरसे वृद्धि होने लगी और अन्य प्रांतवासियोंमें जो शिथिलता कुछ कालसे आगई थी उसका नाश हो नवीन उत्साहके साथ उसका साहित्य भंडार बड़ी तेजीसे भरा जाने लगा। अबकी बार साहित्य-सेवियोंका लक्ष्य गद्य पर अधिक रहा। यद्यपि आधुनिक कालके ग्रन्थों में उपन्यासोंकी ही भरमार है तथापि यत्र तत्र अन्य उपयोगी ग्रन्थोंका भी सर्वथा ही अभाव नहीं है।

राजपुताना निवासियोंने यद्यपि अभी काव्यकी ओर ही अधिक लक्ष्य रक्खा है तथापि उनमें इतिहासकी खोज करनेवाले, पत्रोंके सम्पादक, गद्यके सुलेखक और अन्य कितने ही विषयोंके प्रतिपादकभी निकले हैं। इस प्रकारके साहित्य सेवियोंमें मुंशी देवीप्रसाद, माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, राधाकृष्णमिश्र जैन वैद्य, पूर्णानन्द शास्त्री, गिरधरशर्म्मा, भगवानदास हालना, रामकुमार गोयनका, शिवचन्द्र भरथिया, भगवानदासकेला, राधाकृष्ण चिसावा, गोवर्धनदासशर्म्मा, कन्वरदास कलंत्री, झावरमलओझा, पन्नालाल ब्राह्मण, लज्जाराम महता आदिके नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं। आधुनिक कालके राजपूतानेके कवियोंमें चन्द्रकलाबाई, बांगली विष्णुप्रसाद कुंवरि, राधाबाई, जाड़ेचीजी श्री प्रतापबाला, चंडीदान, प्रभूदान, कन्हैयालाल पोदार (सेठ), गोपीनाथ पुरोहित, बालचन्द्रशास्त्री, मंसाराम, लालसिंह, जगदीशलाल गोस्वामी, इन्द्रमल, साँवलदास, हनुमन्तसिंह हाड़ा, धनुर्धर, खेतड़ीनरेश महाराजा अजीतसिंह, जदूदान, ईश्वरीसिंह, मीठालालव्यास, किशनलाल, माधौसिंह आदिके नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

आधुनिक कालके बङ्गाली हिन्दी-साहित्य-सेवी यद्यपि थोड़े हैं तथापि जो हैं उन्होंने हिन्दीमें एक विशेष अभावकी पूर्तिकी ओर कदम बढ़ाया है। बाबू महेशचरणसिंहने 'हिन्दीकेमिस्ट्री' और 'विद्युत् शास्त्र' नामक पदार्थविद्याके दो सुन्दर ग्रन्थलिखे। पण्डित अमृतलालचक्रवर्तीने कई सामयिक पत्रोंका अच्छी योग्यतासे सम्पादन किया। चन्द्रप्रभा, ठाकुर लक्ष्मीनाथ मैथिल, गिरजाकुमार घोष, पी. सी. चटर्जी, भुजङ्ग भूषण भट्टाचार्य, शशिभूषण चटर्जी, आदिभी अच्छे लेखक थे और हैं। श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधरी, हेमन्तकुमारी देवी (भट्टाचार्य) आदि कुछ बङ्ग महिलाएँभी हिन्दीकी सुलेखिका हैं। इनके अतिरिक्त जस्टिस मित्र आदि कितने ही ऐसे बङ्गाली सज्जन भी हैं कि जिन्होंने हिन्दीके प्रचार और उसकी उन्नतिमें अच्छा परिश्रम किया और कर रहे हैं।

पञ्जाबभी आधुनिक कालमें पश्चात्पद न रहा। उसनेभी हिन्दीसाहित्य भंडारकी पूर्तिमें योग देनेके लिये मास्टर आत्माराम, महात्मा मुंशीराम, लाला लाजपतराय, आर्यमुनि, देवराज, प्रोफेसर रामदेव, रामचन्द्र शास्त्री, इन्द्र, ब्रह्मदत्त, आदि कितने ही सुलेखक और सुवक्ता उत्पन्न किये हैं। गुजरातमें इन दिनों हिन्दी-सेवियोंकी अपेक्षाकृत कमी रही। कवि गोविन्द गिलाभाई, मेहता लज्जाराम, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, केशवराम विष्णुलाल पंड्या, आदि कुछ थोड़े ही सज्जन ऐसे हुए हैं जिन्होंने हिन्दीमें ग्रन्थ रचे हैं या उनके सम्बन्धमें ऐतिहासिक खोज की है।

मुसलमानोंमें अबदुल्लाह, आरिफ, इजदानी, ईशा नेगअली, मुराद, नबी, रहमतुल्ला, पीरमहम्मद, अकरमफैज़ काज़ी, अमीरअली (मीर) महम्मद अकुलस (प्यारे) लतीफ, आदि सज्जन हिन्दीके सुलेखक एवं कवि हैं।

उपरोक्त विवेचनसे आपको ज्ञात हो गया होगा

कि मैंने उसे यथा साध्य संक्षिप्त किया है। यदि प्रधान प्रधान लेखकके विषयमें थोड़ा थोड़ा भी कहा जाता तो इस लेखका एक पोथा तैयार हो जानेकी सम्भावना थी। जो हो हिन्दीकी इतर भाषा भाषियोंने इतनी अधिक सेवाकी है कि उनकी उस सेवाके लिये हिन्दी-भाषा-भाषियोंको चिरकृतज्ञ रहना ही पड़ेगा। प्रथम श्रेणीके विदेशी हिन्दी-सेवियोंने अधिकतर ऐतिहासिक खोजकी है और अन्य दोनों श्रेणियोंके हिन्दी-सेवियोंने इतिहासकी खोजके अतिरिक्त उसके साहित्य भंडारको भरनेका भी बड़ा प्रयत्न किया है। इतिहास, काव्य पदार्थविज्ञान, आध्यात्मविद्या, नीति शास्त्र, धर्मशास्त्र, तत्वज्ञान, व्याकरण, भूगोल, खगोल, गणित, वैद्यक, पत्र सम्पादन, व्याख्यान, आदि एक भी ऐसा विषय नहीं कि जिसकी हिन्दीमें वृद्धि करनेके लिये अन्य भाषा-भाषियोंने प्रयत्न न किया हो। *

* इस लेखके लिखनेमें मुझे मिश्र बन्धु-विनोदसे बड़ीसहायता मिली है अतः उसके लेखक मिश्र बन्धुओंकामैं हृदयसे कृतज्ञ हूं।

हिन्दी-जैनसाहित्यका इतिहास।

अथवा

जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी—साहित्यकी सेवा।

लेखक-श्रीयुत बाबू नाथूराम जी प्रेमी सम्पादक-जैनहितैषी, बम्बई।

सभापति महाशय और सभ्यवृन्द!

भारतवर्षको अपनी धार्मिक सहिष्णुताका अभिमान है। इस पुण्यभूमिमें आस्तिक, नास्तिक, वैदिक, अवैदिक, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी आदि सभी परस्परविरुद्ध विचार रखनेवाले एक दूसरेको कष्ट दिये विना फलते-फूलते और वृद्धि पाते रहे हैं। हजारों वर्षों तक यहाँ यह हाल रहा है कि एक ही कुटुम्बमें वैदिक, जैन, और बौद्ध धर्म एक साथ शान्तिपूर्वक पाले जाते रहे हैं। मतविभिन्नता के कारण यहाँ के लोग किसीसे द्वेष या वैर नहीं करते थे, बल्कि दूसरोंको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। यही कारण है जो यहाँ चार्वाक-दर्शनके प्रणेता 'महर्षि' के महत्त्वसूचक पदसे सत्कृत किये गये हैं और वेदविरोधी भगवान् ऋषभदेव तथा बुद्धदेव 'अवतार' माने गये हैं।

पर हमारी यह अभिमानयोग्य परमतसहिष्णुता पिछले समयमें न रही और जबसे यह काम होने लगा, तभीसे शायद भारतका अधःपतन होना शुरू हो गया। लोग मतभिन्नताके कारण एक दूसरेसे घृणा करने लगे और वह घृणा इतनी

बढ़ गई कि धीरे धीरे यहाँ परमतसहिष्णुता और विचारौदार्यको हत्या ही हो गई। 'हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' जैसे वाक्य उसी समय गढ़े गये और धार्मिक द्वेषके बीज बो दिये गये।

इस असहिष्णुता या अनुदारताने देशकी बौद्धिक और राष्ट्रीय उन्नतिके मार्गमें खूब ही काँटे बिछाये। इससे हमारी मानसिक प्रगतिको लक़वा मार गया और हमारे साहित्यकी बाढ़ अनेक छोटी बड़ी सीमाओंके भीतर अवरुद्ध हो गई। इसकी कृपासे ही हमारा बहुतसा साहित्य पड़ा पड़ा सड़ गल गया और बहुतसा नष्ट कर दिया गया। यद्यपि अब भी हमको इस बलाके पंजेसे छुट्टी नहीं मिली है–न्यूनाधिक रूपमें उसका व्यक्त अव्यक्त प्रभाव हमारे हृदयों पर अब भी बना हुआ है; तो भी सौभाग्यवश हम नये ज्ञानके प्रकाशमें आ पड़े हैं जिससे हमारी आँखें बहुत कुछ खुल गई हैं। हम धीरे धीरे अपने पुराने मार्गपर आने लगे हैं, विचारभिन्नताका आदर करने लगे हैं और अपने पराये सभी धर्मोंको उदार दृष्टिसे देखने लगे हैं।

आज हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके इस शुभ अवसर पर मुझे जो 'जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा' पर यह निबन्ध लिखने की आज्ञा दी गई है सो मेरी समझमें इसी प्रकाशका ही परिणाम है। मुझे आशा है कि हमारी यह उदारता दिन पर दिन बढ़ती जायगी और कमसे कम हमारी साहित्यसम्बन्धी संस्थाओंसे तो धार्मिक पक्षपात सर्वथा ही हट जायगा।

प्रसंगवश ये थोड़ेसे शब्द कहकर अब मैं अपने विषयकी ओर आता हूँ।

१ जैनसाहित्यका महत्त्व।

हिन्दीका जैन साहित्य बहुत विशाल है और बहुत महत्त्वका है। भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे उसमें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो जैनेतर साहित्यमें नहीं हैं।

१ हिन्दीकी उत्पत्ति और क्रमविकासके इतिहासमें इससे बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। हिन्दीकी उत्पत्ति जिस प्राकृत या मागधीसे मानी जाती है, उसका सबसे अधिक परिचय जैन विद्वानोंको रहा है। अभीतक प्राकृत या मागधीका जितना साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसका अधिकांश जैनोंका ही लिखा हुआ है। यदि यह कहा जाय कि प्राकृत और मागधी शुरूसे अबतक जैनोंकी ही सम्पत्ति रही है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। प्राकृतके बाद और हिन्दी-गुजरातीके बननेके पहले जो एक अपभ्रंश भाषा रह चुकी है उस पर भी जैनोंका विशेष अधिकार रहा है। इस भाषाके अभी अभी कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, और वे सब जैन विद्वानोंके बनाये हुए हैं। प्राकृत और अपभ्रंशके इस अधिक परिचयके कारण, जैन विद्वानोंने जो हिन्दी रचना की है उसमें प्राकृत और अपभ्रंशकी प्रकृति सुस्पष्ट झलकती है; यहाँ तक कि १६ वीं और २० वीं शताब्दीके जैनग्रन्थोंकी हिन्दीमें भी औरोंकी अपेक्षा प्राकृत और अपभ्रंश शब्दोंका प्रयोग अधिक पाया जाता है। ऐसी दशामें स्पष्ट है कि हिन्दीकी उत्पत्ति और क्रमविकाशका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हिन्दीका जैनसाहित्य बहुत उपयोगी होगा।

२ गुजराती साहित्यके विद्वानोंका खयाल है कि गुजराती भाषाका जो प्राचीनरूप है, वह अपभ्रंश प्राकृत है। हमारी समझमें प्राचीन हिन्दीका आदिस्वरूप भी, जैसा कि आगे दिखाया जायगा, प्राकृतके अपभ्रंशसे मिलता जुलता है। यह संभव है कि प्राचीन हिन्दीकी शरीररचनामें अन्य भाषाओंका भी थोड़ा बहुत हाथ रहा हो, पर उसकी मूल जननी तो अपभ्रंश

ही है। ऐसा जान पड़ता है कि प्राकृतका जब अपभ्रंश होना आरंभ हुआ, और फिर उसमें भी विशेष परिवर्तन होने लगा, तब उसका एक रूप गुजरातीके साँचेमें ढलने लगा और एक हिन्दीके साँचेमें। यही कारण है जो हम १६ वीं शताब्दीमें जितने ही पहिलेकी हिन्दी और गुजराती देखते हैं, दोनोंमें उतनी ही अधिक सदृशता दिखलाई देती है। यहाँ तक कि १३ वीं १४ वीं शताब्दीकी हिन्दी और गुजरातीमें एकताका भ्रम होने लगता है। उदयवन्त मुनिके 'गौतम-रासा' को जो वि० संवत् १४१२ में बना है विचारपूर्वक देखा जाय, तो मालूम हो कि उसकी भाषाकी गुजरातीके साथ जितनी सदृशता है, हिन्दीके साथ उससे कुछ कम नहीं है*। गुजराती और हिन्दीकी यह सदृशता कहीं कहीं और भी स्पष्टतासे दिखलाई देती है। कल्याणदेवमुनिके 'देवराज वच्छराज चउपई' नामके ग्रंथसे-जो सं० १६४३ में बना है और जिसकी भाषा गुजराती-मिश्रित हिन्दी है-हमने कुछ पद्य आगे उद्धृत किये हैं, जिनमें बहुत कम शब्द ऐसे हैं जिन्हें प्राचीन हिन्दी जाननेवाला या प्राचीन गुजराती समझनेवाला न समझ सकता हो। गुजरातके पुस्तकालयोंमें ऐसे बीसों रासे मिलेंगे, जो गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीके निकटसम्बन्धी हैं; पर वे गुजराती ही समझे जाते हैं। माल कविका 'पुरंदर-कुमर-चउपई' नामका जो ग्रन्थ है उसे लोगोंने अभीतक गुजराती ही समझ रक्खा था; पर अब सुगृहीत मुनि जिनविजयजीने उसको अच्छी तरह पढ़ करके मुझको लिखा है कि वह निस्सन्देह हिन्दी ग्रन्थ है। गरज यह कि हिन्दी और गुजराती एक ही प्राकृतसे अपभ्रंश होकर बनी हैं; इस कारण उनके प्रारंभके-एक दो शताब्दियोंके-रूप मिलते-जुलते हुए हैं। हिन्दी भाषाका इतिहास बिना इन मिलते-जुलते रूपोंका अध्ययन किये, नहीं लिखा जा सकता। इस कारण इसके लिए हिन्दीका जैनसाहित्य खास तौरसे पढ़ा जाना चाहिए। इस कार्यमें यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

३ जिस तरह संस्कृत और प्राकृतके जैन-साहित्यने भारतके इतिहासकी रचनामें बहुत बड़ी सहायता दी है, उसी तरह हिन्दीका जैनसाहित्य भी अपने समयके इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालेगा। जैन विद्वानोंका इतिहासकी ओर सदासे ही अधिक ध्यान रहा है। प्रत्येक जैन लेखक अपनी रचनाके अन्तमें अपने समयके राजाओंका तथा गुरुपरम्पराका कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य करता है। यहाँ तक कि जिन लोगोंने ग्रन्थोंकी नकलें कराई हैं, और दान किया है उनका भी कुछ न कुछ इतिहास उन ग्रन्थोंके अन्तमें लिखा रहता है। जैन लेखकोंमें विशेष करके श्वेताम्बरोंमें पौराणिक चरित्रोंके सिवाय ऐतिहासिक पुरुषोंके चरित्र लिखनेकी भी पद्धति रही है। खोज करनेसे भोजप्रबन्ध, कुमारपाल-चरित्र, आदिके समान और भी अनेक ग्रन्थोंके मिलनेकी संभावना है। 'मूता नेणसीकी ख्यात' जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ भी जैनोंके द्वारा लिखे गये हैं जो बहुतसी बातोंमें अपना सानी नहीं रखते। श्वेताम्बर यतियोंके पुस्तकालयोंमें इतिहासकी बहुत सामग्री है और वह हिन्दी या मारवाड़ीमें ही है। कर्नल टाडको अपना ग्रन्थ 'राजस्थान' लिखनेमें जिनसे बड़ी भारी सहायता मिली थी, वे ज्ञानचन्द्रजी यति एक जैन साधु ही थे। कविवर बनारसीदासजीका आत्मचरित अपने समयकी अनेक ऐतिहासिक बातोंसे भरा हुआ है। मुसलमानी राज्यकी अंधाधुंधीका उसमें जीता जागता चित्र है। इस तरह इतिहासकी दृष्टिसे भी हिन्दीका जैनसाहित्य महत्त्वकी वस्तु है।

---

* गौतमरासाके पद्योंके कुछ नमूने आगेके पृष्ठोंमें दिये गये हैं।

४ अभी तक हिन्दी साहित्यकी जो खोज हुई है उसमें पद्यग्रन्थोंकी ही प्रधानता है। गद्य ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। परन्तु जैनसाहित्यमें गद्य ग्रन्थ भी बहुतसे उपलब्ध हैं। आगे ग्रन्थकर्ताओंकी सूचीसे मालूम होगा कि उन्नीसवीं शताब्दीके बने हुए पचासों गद्यग्रन्थ जैनसाहित्यमें हैं। अठारहवीं शताब्दीके भी पाँच सात गद्यग्रन्थ हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें पं० हेमराजजीने पंचास्तिकाय और प्रवचनसारकी वचनिकायें लिखी हैं। समयसारकी, पांडे रायमल्लजीकृत बालावबोधटीका इनसे भी पहलेकी बनी हुई है। आश्चर्य नहीं जो वह सोलहवीं शताब्दी या उससे भी पहलेकी गद्य-रचना हो। पर्वत धर्मार्थीकी बनाई हुई 'समाधि-तंत्र' नामक ग्रन्थकी एक वचनिका है जो सोलहवीं शताब्दीके बादकी नहीं मालूम होती। गरज यह कि जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थ बहुत हैं, इसलिए गद्यकी भाषाका विकासक्रम समझनेके लिये भी यह साहित्य बहुत उपयोगी है।

२ जैनसाहित्यके अप्रकट रहनेके कारण।

१ ज्यों ही देशमें छापेका प्रचार हुआ त्यों ही जैनसमाजको भय हुआ कि कहीं हमारे ग्रन्थ भी न छपने लगें। लोग सावधान हो गये और जीजानसे इस बातकी कोशिश करने लगे कि जैनग्रन्थ छपने न पावें। इधर कुछ लोगोंपर नया प्रकाश पड़ा और उन्होंने जैनग्रन्थोंके छपानेके लिए प्रयत्न करना शुरू किया। लगातार २० वर्ष तक दोनों दलोंमें अनवरत युद्ध चला और अभी वर्ष ही दो वर्ष हुए हैं, जब इसकी कुछ कुछ शान्ति हुई है। फिर भी जैनसमाजमें ऐसे मनुष्योंकी कमी अब भी नहीं है जिन्हें पक्का विश्वास है कि ग्रन्थ छपाने वाले नरकमें जायँगे और वहाँ उन्हें असह्य यातनायें सहनी पड़ेंगी। अन्य समाजोंमें भी थोड़ा थोड़ा छापेका विरोध शुरू शुरूमें हुआ था, पर जैनसमाज सरीखा विरोध शायद ही कहीं हुआ हो। इसने इस विषयमें सबको नीचा दिखला दिया। अभी तीन ही चार वर्ष हुए हैं जब 'जैनरत्नमाला' और 'जैनपताका' नामके मासिक पत्र छापेका विरोध करनेके लिए ही निकलते थे और ग्रन्थ छपानेवालोंको पानी पी पीकर कोसते थे। ऐसी दशामें जब कि स्वयं जैनोंको ही हिन्दीका जैनसाहित्य सुगमतासे मिलनेका उपाय नहीं था, तब सर्वसाधारणके निकट तो वह प्रकट ही कैसे हो सकता था।

२ एक तो जैनसमाज इतना अनुदार है कि वह अपने ग्रन्थ दूसरोंके हाथमें देनेसे स्वयं हिचकता है और फिर जैनधर्मके प्रति सर्वसाधारणके भाव भी कुछ अच्छे नहीं हैं। नास्तिक वेद-विरोधी आदि समझकर वे जैनसाहित्यके प्रति अरुचि या विरक्ति भी रखते हैं। शायद उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि हिन्दीमें जैनधर्मका साहित्य भी है और वह कुछ महत्त्व रखता है। ऐसी दशामें यदि जैनसाहित्य अप्रकट रहा और लोग उससे अनभिज्ञ रहे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

३ हिन्दीका जैनसाहित्य दो भागोंमें विभक्त है एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रधान भाषा हिन्दी है, और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी गुजराती। श्वेताम्बरोंकी बस्ती यद्यपि राजपूताना, युक्तप्रान्त और पंजाबमें भी कम नहीं है; परन्तु उक्त प्रान्तोंमें शिक्षाप्राप्त जैनोंकी कमीसे और गुजरातमें शिक्षित जैनोंकी अधिकतासे इनकी धार्मिक चर्चामें गुजराती भाषाका प्राधान्य हो रहा है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंमें भी गुजराती जाननेवालोंकी ही संख्या अधिक है, इसलिए उनके द्वारा भी सर्वत्र गुजरातीकी ही तूती बोलती है। ऐसी दशामें यदि हिन्दीका श्वेताम्बरसाहित्य पड़ा रहे, उसकी कोई ढूंढ खोज न करे, तो क्या आश्चर्य है। जहाँ तक हम जानते हैं, श्वेताम्बर सम्प्रदायके बहुत ही कम लोगोंको यह मालूम है कि हिन्दीमें

भी श्वेताम्बर साहित्य है। इस तरह हिन्दी-भाषा-भाषी श्वेताम्बरोंकी उपेक्षा, अनभिज्ञता और गुजरातीकी प्रधानताके कारण भी हिन्दीके जैनसाहित्यका एक बड़ा भाग अप्रकट हो रहा है।

४ जैनसमाजके विद्वानोंकी अरुचि या उपेक्षा-दृष्टि भी हिन्दी-जैनसाहित्यके अप्रकट रहनेमें कारण है। उच्च श्रेणीकी अँगरेजी शिक्षा पाये हुए लोगोंकी तो इस ओर रुचि ही नहीं है। उन्हें तो इस बातका विश्वास ही नहीं है कि हिन्दीमें भी उनके सोचने औरविचारने की कोई चीज मिल सकती है। अभी तक शायद एक भी हिन्दीके जैनग्रन्थको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है कि उसका सम्पादन या संशोधन किसी जैन ग्रेज्युएटने किया हो। शेष रहे संस्कृतज्ञ सज्जन, सो उनकी दृष्टिमें बेचारी हिन्दीकी-भाखाकी-औकात ही क्या है? वे अपनी संस्कृतकी धुनमें ही मस्त रहते हैं। हिन्दी लिखना भी उनमेंसे बहुत कम सज्जन जानते हैं।

३ खोजकी जरूरत।

हम पहले कह चुके हैं श्वेताम्बरोंका हिन्दी साहित्य अभीतक प्रकाशित ही नहीं हुआ है, पर हमें विश्वास है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी बहुतसा साहित्य तलाश करने से मिल सकता है। अभी थोड़े ही दिन पहले हमने जोधपुरके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीको पत्र लिखकर हिन्दीके जैन साहित्यके विषयमें कुछ पूछताछ की थी। उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था कि "ओसवालोंके बहुतसे ग्रन्थ यहाँ ढूंढ़नेसे मिल सकते है। मैंने उनकी कविता संग्रह की है। आप छापें, तो मैं ग्रन्थाकारमें तैयार करा कर भेजूं। हर एक कविकी कुछ कुछ जीवनी भी है।"

१ राजपूताना और मालवेके यतियोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दीके प्राचीनग्रन्थोंके मिलनेकी आशा है। अभी हमने इन्दौरके यतिवर्य श्रीयुत माणिकचन्दजीकी सेवामें एक पत्र इस विषयमें लिखा था कि उन्होंने अपनी 'जगद्रूप-जति लायब्रेरी' के १०० से अधिक जैन ग्रन्थोंकी सूची तैयार करके भेज दी जिनमें उनके कथनानुसार हिन्दी या हिन्दीमिश्रित गुजराती ग्रन्थ ही अधिक हैं और उनमेंसे जिन चार ग्रन्थोंके देखनेकी हमने इच्छा प्रकट की, उन्हें भी भेज दिया। इस तरह और और यतियोंके पुस्तकालयोंमें भी सैकड़ों ग्रन्थ होंगे।

२ पाटण, जैसलमेर, ईडर, जयपुर आदिके प्राचीन पुस्तकभण्डारोंमें हिन्दी ग्रन्थोंका अन्वेषण खास तौरसे होना चाहिए। अभीतक इन भण्डारोंका अन्वेषण संस्कृतके पण्डितोंने ही किया है, जिनकी दृष्टिमें भाषाका कोई महत्त्व नहीं है। यह भी संभव है कि उक्त भण्डारोंके प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ प्राकृत समझ लिये गये हों। अभी मुनि महोदय जिनविजयजीको पाटणके भण्डारमें मालकविके 'भोजप्रबन्ध' और 'पुरन्दर-कुमर-चउपई' नामके दो हिन्दी ग्रन्थ मिले हैं।

३ इस निबन्धमें आगे हमने जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है, उनका बहुत बड़ा भाग आगरे और जयपुरके आसपासका बना हुआ है। बुन्देलखंड आदि प्रान्तों में भी बहुतसे हिन्दी जैन-ग्रंथ मिलनेकी संभावना है। जयपुरमें कोई दोसौ तीनसौ वर्षोंसे ऐसा प्रबन्ध है कि यहाँसे ग्रन्थ लिखा लिखाकर दूर दूरके लोग ले जाते हैं अथवा लिखकर मँगवा लेते है। यही कारण है जो सारे दिगम्बर सम्प्रदायमें यहींके और यहाँसे निकट सम्बन्ध रखनेवाले आगरेके ही बने हुए हिन्दी-ग्रन्थोंका फैलाव हो गया है। अन्यत्र जो ग्रन्थ बने होंगे, वे प्रचारकी उक्त सुविधा न होनेके कारण वहीं पड़े रहे होंगे। यह सच है कि आगरे और जयपुरमें विद्वानोंका समूह अधिक रहा है। इतना और स्थानोंमें नहीं रहा है, तो भी यह नहीं कहा

जा सकता कि अन्यत्र विद्वान् थे ही नहीं और उन्होंने ग्रन्थरचना सर्वथा की ही नहीं । अतः अन्यत्र खोज होनी चाहिए ।

४ जहाँ जहाँ दिगम्बर सम्प्रदायके भट्टारकोंकी गद्दियाँ हैं वहाँ वहाँके सरस्वतीमन्दिरोंमें भी अनेक हिन्दीके ग्रंथोंके प्राप्त होनेकी आशा है । हमारा अनुमान है कि भट्टारकोंके बनाये हुए हिन्दीग्रन्थ बहुत होने चाहिए, परन्तु हमारे इस निबन्धमें आप देखेंगे कि चार ही छह भट्टारकोंके ग्रन्थोंका उल्लेख है । जयपुरमें तेरह पंथका बहुत जोर रहा है, इसी कारण उसके प्रतिपक्षी भट्टारकोंके ग्रन्थोंका वहाँसे अधिक प्रचार नहीं हो सका है । भट्टारकोंका साहित्य उन्हींके भंडारोंमें पड़ा होगा ।

५ दक्षिण और गुजरातमें भी खोज करनेसे हिन्दीग्रन्थ मिलेंगे । गुजराती और मराठीमें दिगम्बरी साहित्य प्रायः बिल्कुल नहीं है, इस कारण इन प्रान्तोंके दिगम्बरियोंका काम हिन्दी-ग्रन्थोंसे ही चलता रहा है । अतएव वहाँके भण्डारोंमें भी हिन्दीके दिगम्बर ग्रन्थ मिलेंगे । दो तीन वर्ष पहले हमने बार्सी (शोलापुर) से दो ऐसे हिन्दी ग्रन्थ मँगाकर देखे थे, जो इस ओर कहीं भी नहीं मिलते हैं ।

४ अपूर्ण खोज ।

मेरा यह निबन्ध पूरी खोजसे तैयार नहीं हो सका है । जयपुरमें बाबा दुलीचन्दजीका एक हस्तलिखित भाषाग्रन्थोंका एक अच्छा पुस्तकालय है । उसकी सूची से, बाबू ज्ञान-चन्द्रजी लाहौरवालोंकी ग्रन्थनाममालासे, छपे हुए ग्रन्थोंसे, पूज्य पं० पन्नालालजी द्वारा बनीहुई जयपुरके कुछ भण्डारोंकी सूचीसे और बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरके पुस्तकालयके ग्रन्थोंसे मैंने यह निबन्ध तैयार किया है । जिन लेखकोंका समयादि नहीं मिला है, उनको प्रायः छोड़ दिया है । यदि लेखकके सामने सबके सब ग्रन्थ होते, तो वह इस निबन्धको और भी अच्छी तरहसे लिख सकता ।

लेखकको विश्वास है कि खोज करनेसे हिन्दीके प्राचीन जैनग्रन्थ बहुत मिलेंगे और उनसे यह निश्चय करनेमें सहायता मिलेगी कि हिन्दी-का लिखना कबसे शुरू हुआ ।

'जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा' यह विषय ऐसा है कि इसमें सन् संवत् न दिया जाता तो भी काम चल सकता था; परन्तु जब निबन्ध लिखना शुरू किया गया, तब यह सोचा गया कि इसके साथ साथ यदि लेखकोंका इतिहास भी दे दिया जाय, तो एक और काम हो जायगा और समय भी अधिक न लगेगा । अतः इसमें कवियोंका थोड़ा थोड़ा परिचय भी शामिल कर दिया गया है । ऐसा करनेमें निबन्ध बहुत बढ़ गया है और इस कारण मुझे भय है कि इसके पढ़नेके लिए समय मिलेगा या नहीं; तो भी यह निश्चय है कि मेरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा । हिन्दीके सेवक इससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायेंगे ।

५ उपलब्ध जैनसाहित्यके विषयमें विचार ।

१ उपलब्ध जैनसाहित्य दो भागोंमें विभक्त हो सकता है-श्वेताम्बर और दिगम्बर । श्वेताम्बर सम्प्रदायके साहित्यमें कथाग्रन्थ ही अधिक हैं, तात्त्विक या सैद्धान्तिक ग्रन्थ प्रायः नहींके बराबर हैं, पर दिगम्बर साहित्यमें जितने कथा-ग्रन्थ हैं लगभग उतने ही तात्त्विक और सैद्धा-न्तिक ग्रन्थ हैं । गोम्मटसार, राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, आत्मख्याति, भगवती आराधना, प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी वचनिकायें दिगम्बरसाहित्यमें मौजूद हैं । किसी किसी ग्रन्थके तो दो दो चार चार गद्यपद्यानुवाद मिलते हैं । देवागम, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, आप्तमीमांसा आदि न्यायके ग्रन्थों तकके हिन्दी अनुवाद कर डाले गये हैं । ऐसा कहना चाहिए कि दिगम्बरियोंके संस्कृत और

प्राकृत साहित्यमें जिन जिन विषयोंके ग्रन्थ मिलते हैं प्रायः उन सभी विषयों पर हिन्दीमें कुछ न कुछ लिखा जा चुका है। हिन्दीके लिए यह बड़े गौरवकी बात है। यदि कोई चाहे तो वह केवल हिन्दी भाषाके द्वारा दिगम्बर जैनधर्मका ज्ञाता हो सकता है। इसका फल भी स्पष्ट हो रहा है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो लोग संस्कृत और प्राकृत नहीं जानते हैं, उनमें धार्मिक ज्ञानका प्रायः अभाव देखा जाता है-प्रायः लोग मुनि-महाराजोंके ही भरोसे रहते हैं; पर दिगम्बर सम्प्रदायमें यह बात नहीं है। यहाँ जैनधर्मकी जानकारी रखनेवाले जगह जगह मौजूद हैं, गोम्मटसार आदिकी गंभीर चर्चा करनेवाले सैकड़ों ऐसे भाई हैं, जो संस्कृतका अक्षर भी नहीं जानते हैं। गाँव गाँवमें शास्त्रसभायें होती हैं और लोग भाषा ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते हुए नजर आते हैं।

२ हिन्दीके जैनग्रन्थोंका प्रचार केवल हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तोंमें ही नहीं है; गुजरात और दक्षिणमें भी है। दक्षिण और गुजरातके जैनोंके द्वारा हिन्दीके कई बड़े बड़े ग्रन्थ छपकर भी प्रकाशित हुए हैं। सुदूर कर्नाटक तकमें-जहाँ हिन्दी बहुत कम समझी जाती है-बहुतसे हिन्दी ग्रन्थ जाते हैं और पढ़े जाते हैं। एक तरहसे हिन्दी दिगम्बर सम्प्रदायकी सर्वसामान्य भाषा बन गई है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि 'जैनमित्र' आदि हिन्दी पत्रोंके एक चौथाईसे भी अधिक ग्राहक गुजरात और दक्षिणमें हैं। इस तरह दिगम्बर सम्प्रदायके हिन्दी साहित्यके द्वारा हिन्दी भाषाका दूसरे प्रान्तोंमें भी प्रचार हो रहा है।

३ जैनधर्मका एक सम्प्रदाय और है जिसे 'स्थानकवासी' या 'ढूँढ़िया' कहते हैं। हम समझते थे कि इस सम्प्रदायका भी हिन्दी साहित्य होगा। क्योंकि इस सम्प्रदायके अनुयायी ४-५ लाख समझे जाते हैं और वे राजपूताना तथा पंजाबमें अधिक हैं. परन्तु तलाश करनेसे मालूम हुआ कि इस सम्प्रदायमें हिन्दीके ग्रन्थ प्रायः नहींके बराबर हैं। स्थानकवासी सम्प्रदायके साधु श्रीयुत आत्मारामजी उपाध्यायसे इस विषयमें पूछताछ की गई तो मालूम हुआ कि स्थानकवासियोंमें पं० हरजसरायजी आदि दो तीन ही कवि हुए हैं जिनके चार पाँच ग्रन्थ मिलते हैं और थोड़ी बहुत पुस्तकें अभी लिखी गई हैं। इस सम्प्रदाय पर भी गुजराती भाषाका आधिपत्य हो रहा है। संभव है कि खोज करनेसे इस सम्प्रदायके भी दश पाँच हिन्दी ग्रन्थ और मिल जावें।

४ श्वेताम्बरी और दिगम्बरी साहित्यमें एक उल्लेख योग्य बात यह नजर आती है कि सारे श्वेताम्बरसाहित्यमें दो चार ही ग्रन्थ ऐसे होंगे जिनके कर्ता गृहस्थ या श्रावक हों, इसके विरुद्ध दिगम्बर साहित्यमें दश पाँच ही हिन्दी ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनके कर्ता भट्टारक या साधु हों। प्रायः सारा ही दिगम्बर साहित्य गृहस्थों या श्रावकोंका रचा हुआ है। दिगम्बर सम्प्रदायमें साधु संघका अभाव कोई ४००-५०० वर्षोंसे हो रहा है। यदि इस सम्प्रदायके अनुयायी श्वेताम्बरोंके समान केवल साधुओंका ही मुह ताकते रहते, तो आज इस सम्प्रदायकी दुर्गति हो जाती। इस सम्प्रदायके गृहस्थोंने ही गुरुओंका भार अपने कन्धोंपर ले लिया और अपने धर्मको बचा लिया। इन्होंने गत दो तीन सौ वर्षोंमें हिन्दी साहित्यको अपनी रचनाओंसे भर दिया।

५ इन दोनों सम्प्रदायोंके साहित्यमें एक भेद और भी है। श्वेताम्बर साहित्यमें अनुवादित ग्रन्थ बहुत ही कम है, प्रायः स्वतंत्र ग्रन्थ ही अधिक हैं, और दिगम्बर साहित्यमें स्वतंत्र ग्रन्थ बहुत

कम हैं, अनुवादित ही अधिक हैं। इसका कारण यह मालूम होता है कि परम्परागत संस्कारके अनुसार गृहस्थ या श्रावक अपनेको ग्रन्थरचना-का अनधिकारी समझता है। उसे भय रहता है कि कहीं मुझसे कुछ अन्यथा न कहा जाय। इस लिए दिगम्बर साहित्यकी रचना करनेवाले गृहस्थ लेखक और कवियोंको स्वतंत्र ग्रन्थ रचनेका साहस बहुत ही कम हुआ है-सबने पूर्वरचित संस्कृत ग्रन्थोंके ही अनुवाद किये हैं। कई अनुवादक इतने अच्छे विद्वान् हुए हैं कि यदि वे चाहते, तो उनके लिए दो दो चार चार स्वतंत्र ग्रन्थोंकी रचना करना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। जब हम पं० जयचन्द्रजीके अनुवाद किये हुए ग्रन्थों-की सूचीमें 'भक्तामरचरित्र' का नाम देखते हैं, तब इनकी 'प्राचीन-श्रद्धा' पर आश्चर्य होता है। संस्कृत में भट्टारकोंके बनाये हुए ऐसे पचासों ग्रन्थ हैं जो रचनाकी दृष्टिसे कौड़ी कामके नहीं हैं, तो भी उनके हिन्दी अनुवाद हो गये हैं और अनुवाद करनेवालोंमें बहुतसे ऐसे हैं जो यदि चाहते तो मूलसे भी कई गुणी अच्छी रचना कर सकते थे-वे स्वयं ही मूलसे अच्छी संस्कृत लिखनेकी योग्यता रखते थे।

६ हिन्दीके जैनसाहित्यको हम चार भागोंमें विभक्त करते हैं,-एक भागमें तो तात्त्विक ग्रन्थ हैं, दूसरेमें पुराण चरित्र कथादि हैं, तीसरेमें पूजा पाठ हैं और चौथेमें पदभजन विनती आदि हैं। इनमेंसे पहिले तीन प्रकारके ग्रन्थोंका परिमाण लगभग बराबर बराबर होगा। पहिले दो विषय ऐसे हैं कि उन पर चाहे जितना लिखा जा सकता है, पर यह बात लोगोंकी समझमें कम आयगी कि पूजापाठके ग्रन्थ भी उक्त दोनों विषयोंके ही बराबर हैं। सचमुच ही इस विषयमें जैनोंने 'अति' कर डाली है। हमने अपने इस निबन्धमें जो जुदे जुदे कवियोंके ग्रन्थ बतलाये हैं, उनमें पूजापाठके ग्रन्थ प्रायः छोड़ दिये हैं और जिन कवियोंने केवल पूजापाठोंकी ही रचना की है, उनका तो हमने उल्लेख भी नहीं किया है। एक ही एक प्रकारके पूजा पाठ दश दश बीस बीस कवियोंने बनानेकी कृपा की है। चौबीसी पूजापाठ तो कमसे कम २०-२५ कवियोंके बनाये हुए होंगे। इनका ताँता अबतक भी लगा जा रहा है; लोगोंको अब भी संतोष नहीं है। केवलारी (सिवनी) के एक सज्जनने अभी हाल में ही एक पूजापाठ रचकर प्रकाशित किया है। कुचामनके पं० जिनेश्वरदासजीने भी सुनते हैं कि एक चौबीसी पूजापाठ बना डाला है। मजा यह है कि इन सब रचनाओंमें विशेषता कुछ नहीं। सबमें एक ही बात। एक दूसरेका अनुकरण। इनका बनाना भी चूरनके लटकोंसे ज्यादा कठिन नहीं है। जिसके जीमें आता है वही एक पूजा बना डालता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि संस्कृत और प्राकृतमें पूजापाठके ग्रन्थ बहुत ही कम उपलब्ध हैं, और जो हैं वे उच्च श्रेणीके हैं। पर हिन्दीवालोंने इसके लिए मूलग्रन्थोंका सहारा लेनेकी जरूरत नहीं समझी। बस, इसी एक विषयके ग्रन्थोंकी हिन्दी-जैनकवियोंने सबसे अधिक स्वतंत्र रचना की है। पिछले दिनोंमें जैनसम्प्रदायमें पूजा प्रतिष्ठाओंको जो विशेष प्रधानता दी गई है, उसीका यह परिणाम है। इस समयकी दृष्टिसे जैनोंका सबसे बड़ा काम पूजा-प्रतिष्ठा करना-कराना है। पद-भजन-स्तवनादि सम्बन्धी चौथे प्रकारका साहित्य पहिले तीन प्रकारके साहित्यों जितना तो नहीं है, तो भी कम नहीं है। परिश्रम करनेसे कई हजार जैनपदोंका संग्रह हो सकता है। भूधर, द्यानत, दौलत, भागचन्द, बनारसी आदि के पद अच्छे समझे जाते हैं। इनका प्रचार भी खूब है। इस साहित्यसे और पूजासाहित्यसे जैनधर्ममें 'भक्तिरस' की बहुत पुष्टि हुई है।

किसी किसी कविने तो इस रसके प्रवाहमें बहकर मानो इस बातको भुला ही दिया है कि 'जैनधर्म ईश्वरके कर्तापनेको स्वीकार नहीं करता, अतः उसमें भक्तिकी सीमा बहुत ही मर्यादित है।' इस विषयमें जान पड़ता है जैनधर्म पर वैष्णवधर्मके भक्तिमार्गका ही बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। कहीं कहीं यह प्रभाव बहुत ही स्पष्ट हो गया है। एक कवि कहता है-"नाथ मोंहि जैसे बने तैसे तारो; मोरी करनी कछु न विचारो।" 'करनी' को ही ईश्वर माननेवाले जैन कविके इन वचनोंमें देखिए ईश्वरके कर्तृभावका कितना गहरा प्रभाव है।

७ हिन्दीके जैनसाहित्यकी प्रकृति शान्तरस है। इसके प्रत्येक ग्रन्थमें इसी रसकी प्रधानता है। शृंगारादि रसोंके ग्रन्थोंका इसमें प्रायः अभाव है। इतने बड़े साहित्यमें एक भी अलंकार या नायिकाभेद आदिका ग्रन्थ देखनेमें नहीं आया। जयपुरके एक पुस्तकभण्डारकी सूचीमें दीवान लालमणिके 'रसप्रकाश अलंकार' नामके ग्रन्थका उल्लेख है; पर हमने उसे देखा नहीं। सुनते हैं हनुमच्चरित्र और शान्तिनाथचरित्रके कर्त्ता सेनाराम राजपूतने भी एक 'रसग्रन्थ' बनाया था; पर वह अप्राप्य है। कविवर बनारसीदासजीकी भी कुछ शृंगाररसकी रचना थी, पर उन्होंने उसे यमुनामें बहा दिया था।

संस्कृत और प्राकृतमें जैनोंके बनाये हुए शृंगारादिके ग्रन्थ बहुत मिलते हैं। उस समयके जैनविद्वानोंको तो इस विषयका परहेज नहीं था। यहाँ तक कि बड़े बड़े मुनियोंके बनाये हुए भी काव्यग्रन्थ हैं जो शृंगाररससे लबालब भरे हुए हैं। तब यह एक विचारणीय बात है कि हिन्दीके लेखकोंने इस ओर क्यों ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यही जान पड़ता है कि जिस समय जैनोंने हिन्दीके ग्रन्थ लिखे हैं उस समय उन्हें जैनधर्मका ज्ञान फैलानेकी, और जैनधर्मकी रक्षा करनेकी ही धुन विशेष थी। उनका ध्येय धर्म था, साहित्य नहीं। इसी कारण उन्होंने इस ओर कोई खास प्रयत्न नहीं किया, पर उन्हें इस विषयसे कोई परहेज नहीं था। यही कारण है जो उन्होंने स्त्रियोंके नखशिखवर्णन और विविध शृंगारचेष्टाओंसे भरे हुए आदि पुराण आदिके अनुवाद लिखनेमें संकोच नहीं किया है। हाँ खालिस शृंगार और अलंकारादिके निरूपण करनेवाले ग्रन्थ उन्होंने नहीं लिखे।

८ यह हमें मानना पड़ेगा कि जैन कवियोंमें उच्च श्रेणीके कवि बहुत ही थोड़े हुए हैं। बनारसीदास सर्वश्रेष्ट जैनकवि हैं। रूपचन्द, भूधरदास, भगवतीदास, आनन्दघन, उच्चश्रेणीमें गिने जासकते हैं। दीपचंद, द्यानतराय, माल, यशोविजय, वृन्दावन, बुलाकीदास, दौलतराम, बुधजन आदि दूसरी श्रेणीके कवि हैं। इनकी संख्या भी कम है। तीसरे दर्जेके कवि अगणित हैं। जो उच्चश्रेणीके कवि हुए हैं, उन्होंने प्रायः ऐसे विषयोंपर रचना की हैं जिनको साधारण बुद्धिके लोग समझ नहीं सकते हैं। चरित या कथाग्रन्थोंकी यदि ये लोग रचना करते तो बहुत लाभ होता। चरितोंमें एक पार्श्वपुराण ही ऐसा है जो एक उच्चश्रेणीके कविके द्वारा रचा गया है; फिर भी उसमें नरक स्वर्ग, त्रैलोक्य, कर्म-प्रकृति, गुणस्थानादिका विशेष वर्णन किये बिना कविसे न रहा गया और इसलिए वह भी एक प्रकारसे तात्त्विक ग्रन्थ बन गया है। उसमें कथाभाग बहुत कम है। इस तरह साधारणोपयोगी प्रभावशाली चरितग्रन्थोंका जैनसाहित्यमें प्रायः अभाव है और जैनसमाज तुलसीकृत रामायण जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थोंके आनन्दसे वंचित है। शीलकथा, दर्शनकथा, और खुशालचन्दजीके पद्मपुराण आदिकी रद्दी निःसत्व कविताको पढ़ते पढ़ते जैनसमाज यह भूल ही गया है कि अच्छी कविता कैसी होती है।

१० गद्यलेखकोंमें तथा टीकाकारोंमें टोडरमल्ल सर्वश्रेष्ठ हैं। जयचन्द, हेमराज, आत्माराम, नेणसी मूता अच्छे लेखक हुए हैं। सदासुख, भागचन्द, दौलतराम, जगजीवन, देवीदास आदि मध्यम श्रेणीके लेखक हैं। बाकी सब साधारण हैं। गद्यमें श्वेताम्बरोंका साहित्यप्रायः है ही नहीं, मुनि आत्मारामजीके अवश्य ही कुछ ग्रन्थ हैं जो गणनीय हैं। शेष श्वेताम्बरी साहित्य पद्य में है। श्वेताम्बरी साहित्य जितना उपलब्ध है, उसमें तात्त्विक चर्चा बहुतही कम है, केवल कथा ग्रन्थ ही अधिक हैं।

११ आधुनिक समयके जैनलेखकोंने सर्वोपयोगी और सार्वजनिक पुस्तकोंका लिखना भी शुरू कर दिया है। उन्होंने अपने प्राचीन क्षेत्रसे—केवल धार्मिक साहित्यसे—बाहर भी कदम बढ़ाया है। अभी ५–७ वर्षोंसे इस विषयमें खासी उन्नति हुई है। उच्चश्रेणीकी अँगरेजी शिक्षा पाये हुए युवकोंका ध्यान इस ओर विशेष आकर्षित हुआ है। ऐसे सज्जनोंका परिचय इस निबन्धके अन्तमें दिया गया है। आशा है कि थोड़े ही समयमें जैनसमाजमें हिन्दी लेखकोंकी एक काफी संख्या हो जायगी और उनके द्वारा हिन्दीकी अच्छी सेवा होगी।

६ सामयिक साहित्य।

जैनसमाजके कई हिन्दी पत्र भी निकलते हैं। इनकी संख्या खासी है। अधिकांश हिन्दी पत्र दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। साप्ताहिकोंमें जैनगजट और जैनमित्र हैं। जैनमित्रकी दशा अच्छी है, पर जैनगजट तो पत्रोंका कलङ्क है। मासिकोंमें जैनहितैषी, ज्ञानिप्रबोधक, जैनप्रभात, दिगम्बर जैन और सत्यवादी हैं। इनमेंसे पिछला पुराने विचारवालोंका मुखपत्र है। 'दिगम्बर जैन' केवल यहाँ वहाँके समाचारों और लेखोंको आँख बन्द करके संग्रह करदेनेवाला है। उसके कोई खास खयाल नहीं हैं। उसमें आधी गुजराती भी रहती है। 'ज्ञातिप्रबोधक' केवल सामाजिक सुधारका काम करता है। इसके सम्पादक एक ग्रेज्युएट हैं। 'जैनप्रभात' सेठोंकी एक सभाका पत्र है, इसलिए उसे बहुत कुछ दबकर लिखना पड़ता है। 'स्थानकवासी कान्फरेंस प्रकाश' स्थानकवासी सम्प्रदायका साप्ताहिक पत्र है। यह गुजराती और हिन्दी दो भाषाओंमें निकलता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साप्ताहिक 'जैनशासन' में भी हिन्दीके कुछ लेख रहते हैं। 'जैनसंसार' और 'जैन मुनि' क्रमसे श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायके नवजात पत्र हैं।

इनके पहिले हिन्दीके और भी कई पत्र निकलकर बन्द हो चुके हैं। जहाँतक हम जानते हैं, सबसे पहला हिन्दी जैनपत्र 'जैनप्रभाकर' था, जो अजमेरसे निकलता था। यह कई वर्ष तक चलता रहा। यह कोई २०–२२ वर्ष पहलेकी बात है। लाहौरकी 'जैनपत्रिका' ८–१० वर्ष तक चलकर बन्द हो गई। जैनतत्त्वप्रकाशक, जैनपताका, जैननारीहितकारी, जैनसिद्धान्तभास्कर कोई दो दो वर्ष चलकर बन्द हो गये। इनमें 'सिद्धान्तभास्कर' उत्तम श्रेणीका पत्र था। आत्मानन्द जैनपत्रिका श्वेताम्बरसम्प्रदायकी मासिक पत्रिका थी। यह ५–७ वर्ष चलकर बन्द हो गई। 'जैनरत्नमाला' और 'जैनी' एक एक वर्ष तक ही जीवित रहे। 'स्याद्वादी' और 'चित्तविनोद' का एक ही एक अंक निकला। जयपुरसे 'जैनप्रदीप' नामका पत्र भी कुछ महीनोंतक निकलता रहा था।

एक दो सार्वजनिक पत्र भी जैनोंके द्वारा प्रकाशित होते हैं। देहलीके साप्ताहिक 'हिन्दी समाचार' के स्वामी सेठ माढ़मलजी और देहरादूनके 'भारतहितैषी' के सम्पादक और प्रकाशक लाला गुलशनरायजी जैनी हैं। हिन्दीके

सुप्रसिद्ध अम्लंगन 'समालोचक' पत्रके स्वामी मि० जैनवैद्य भी जैनी थे।

७ जैनोंद्वारा हिन्दीकी उन्नतिकी चेष्टा।

आपको मालूम होगा कि बम्बईके हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालयके संचालक जैनी हैं। बम्बईकी नवजात 'हिन्दीगौरवग्रन्थमाला' के स्वामी भी जैनी हैं। झालरापाटणकी हिन्दी साहित्य समितिका जो ११-१२ हजार रुपयोंका स्थायी फण्ड है, वह केवल जैनोंका दिया हुआ है। इसके द्वारा हिन्दीके उत्तमोत्तम ग्रन्थ लागतके मूल्यसे बेचे जायँगे। इन्दौरकी मध्यभारत हिन्दी साहित्यसमितिको भी जैनोंकी ओरसे कई हजार रुपयोंकी सहायता मिली है। खण्डवेकी हिन्दी-ग्रन्थप्रसारकमंडलीके संचालक बाबू माणिकचन्द्‌जी वकील भी जैनी है। हमको आशा है कि भविष्यमें हिन्दीसाहित्यकी उन्नतिमें जैनसमाजका और भी अधिक हाथ रहेगा।

८ जैनग्रन्थप्रकाशक संस्थायें।

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, जैनसाहित्य-प्रसारक कार्यालय, और रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बईकी ये तीन संस्थायें हिन्दीके जैनग्रन्थ प्रकाशित करनेवाली हैं। इनमेंसे तीसरीके स्वामी श्वेताम्बर हैं, शेष दोके दिगम्बर। लाहौरके बाबू ज्ञानचन्द्रजीने हिन्दीके बहुत ग्रन्थ छपाये हैं पर इस समय उनका काम बन्द है। देवबन्दके बाबू सूरजभानजी वकीलने भी ग्रन्थप्रकाशनका कार्य बन्द कर दिया है। कलकत्तेकी सनातन-जैनग्रन्थमाला अब हिन्दीके ग्रन्थ भी प्रकाशित करने लगी है। सूरतके दिगम्बरजैनकार्यालयसे, कोल्हापुरके जैनेन्द्रप्रेससे और बम्बईके जैनमित्र कार्यालयसे भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इसके सिवाय और भी कई सज्जन थोड़े बहुत हिन्दी ग्रन्थ छपाया करते हैं। श्वेताम्बरसम्प्रदायकी ओरसे हिन्दीग्रन्थप्रकाशक संस्थाओंके स्थापित होनेकी बहुत आवश्यकता है।

९ हिन्दीका इतिहास।

जैनसाहित्यका इतिहास बतलानेके पहिले हमें हिन्दीसाहित्यका इतिहास देख जाना चाहिए। शिवसिंहसरोजके कर्त्ता और मिश्रबन्धुओंके विचारानुसार हिन्दीकी उत्पत्ति संवत् ७०० से मानी जाती है। सं० ७७० में किसी पुष्य नामक कविने भाषाके दोहोंमें एक अलंकारका ग्रन्थ लिखा था। सं० ८९० के लगभग किसी भाट कविने 'खुमान रासा' नामक भाषा ग्रन्थ लिखा। ये दोनों ही ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। इनके बाद चन्द कविने वि० सं० १२२५ से १२४९ तक 'पृथ्वीराज रासा' बनाया। उसके बादके जगनिक केदार और बारदर बेणा नामक कवि हुए, पर इनकी रचनाका पता नहीं। चन्दका बेटा जल्हण हुआ उसने पृथ्वीराज रासाका शेष भाग लिखा। उसके बाद 'कुमारपाल-चरित' नामका ग्रन्थ सं० १३०० के लगभग बना। कुमारपाल अणहिलवाडेके राजा थे। इनके बाद १३५४ में भूपतिने 'भागवतका दशम स्कन्ध' बनाया। १३५४ में नरपति नाल्हने 'बीसलदेव-रासा,' १३५५ में नल्हसिंहने 'विजयपालरासा,' और १३५७ में शारंगधरने 'हम्मीररासा' बनाया। १३८२ में अमीर खुसरोका देहान्त हुआ, जो उर्दू फारसीके सिवा हिन्दीके भी कवि थे। इनके बाद १५०७ से गोरखनाथका कविताकाल शुरू होता है।

हमारी समझमें इस इतिहासमें बहुतसी बातें विना किसी प्रमाणके, भ्रमवश लिखी गई हैं असलमें सबसे पहिला ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' गिना जाना चाहिए। इसके पहलेके ग्रन्थ केवल अनुमानसे या भ्रमसे समझ लिये गये हैं कि हिन्दीके हैं। पर वास्तवमें यदि वे होंगे तो प्राकृत या अपभ्रंश भाषाके होंगे। आज कल जिस प्रकार भाषा कहनेसे हिन्दीका बोध होता है उसी प्रकार एक समय 'भाषा' कहनेसे 'प्राकृत'का भी

बोध होता था। पुष्य कविका 'दोहाबद्ध अलंकार' और 'खुमानरासा' ये दोनों ही ग्रन्थ प्राकृतके होने चाहिए। चन्दके बादका 'कुमारपालचरित' भी भ्रमसे हिन्दीका समझ लिया गया है। इसका दूसरा नाम 'प्राकृत द्व्याश्रय महाकाव्य' है। यह जैनाचार्य हेमचन्द्र द्वारा बनाया गया है और १३ वीं शताब्दीमें ही-कुमारपालके समयमें ही-इसकी रचना हुई है। इसे बम्बईकी गवर्नमेंटने छपाकर प्रकाशित भी कर दिया है। इसमें प्राकृत, सौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश भाषाओंका संग्रह है और इन सबको 'भाषा' कहते हैं। जान पड़ता है, इसी कारण यह हिन्दीका ग्रन्थ समझ लिया गया है। इसके सिवाय इसका अपभ्रंश भाग (श्रीमान् मुनि जिनविजयजीके कथनानुसार) पुराने ढंगकी हिन्दीसे १०-१२ आने भर मिलता है। इस कारण भी इसके हिन्दी समझ लिये जानेकी संभावना है। इसके बादके भूपति कविकी भाषासे यह बोध नहीं होता कि वह संवत् १३५४ के लगभगका कवि है। उसकी भाषा सोलहवीं सदीसे पहिलेकी नहीं मालूम होती। नाल्ह आदिकी रचनाके विषयमें भी हमें सन्देह है। मिश्रबन्धुओंने इसके सम्बन्धमें कोई भी सन्तोषदायक प्रमाण नहीं दिये हैं। अतः चन्दको छोड़कर सबसे पहिले निश्चित कवि महात्मा गोरखनाथ हैं जिनका समय खोजके लेखकोंमें सं० १४०७ निश्चित किया है (यद्यपि हमें इस समयमें भी सन्देह है)। अर्थात् पृथ्वीराज रासोको छोड़कर हिन्दीके उपलब्ध साहित्य का प्रारंभ विक्रमकी १५ वीं शताब्दीसे होता है।

१० हिन्दीका प्रारंभ।

हमारे विचारसे हिन्दीका प्रारंभ तेरहवीं शताब्दीके मध्यभागसे होता है। जो समय भारतके राष्ट्रीयभावोंमें बड़ा भारी परिवर्तन करता है वही उसकी भाषाओंमें भी सविशेष परिवर्तन करता है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहानके पतनके बाद भारतके स्वातंत्र्यका जिस तरह एकदम स्वरूप बदलने लगता है वैसे ही भारतीय भाषाओंका भी रूप परिवर्तित होने लगता है। इसके पहिले उत्तर और पश्चिमभारतमें वह अपभ्रंश भाषा कुछ थोड़ेसे हेर-फेरके साथ बोली जाती थी, जिसका व्याकरण हेमचंद्र-सूरिने अपने 'सिद्धहैम-शब्दानुशासन' नामक महान् व्याकरणके अष्टमाध्यायके चतुर्थपादके ३२९ वें सूत्रसे लेकर अंतिम सूत्र ४४८ वें तक (१२० सूत्रोंमें) लिखा है। हेमचंद्रसूरि अपने समयके सबसे बड़े वैयाकरण थे। उन्होंने अपने व्याकरणके पहले ७ अध्यायोंमें संस्कृतका सर्वांग-पूर्ण व्याकरण लिख कर आठवें अध्यायमें प्राकृत वगैरह व्यावहारिक भाषाओंका व्याकरण बनाया। अंतमें अपनी मातृभाषा-प्रचलित देश-भाषा-कि जिसका नाम उन्होंने 'अपभ्रंश' रक्खा है, उसका व्याकरण भी लिख डाला। यह काम सबसे पहिले उन्होंने ही किया। उन्होंने अपभ्रंशका केवल व्याकरण ही नहीं लिखा; बरन कोश और छन्दोनियम भी बना दिये। व्याकरण कोश और छन्दोंके उदाहरणोंमें सैकड़ों पद्य आपने उन ग्रन्थोंके दिये हैं जो उस समय देशभाषाके सर्वोत्तम और प्रतिष्ठित ग्रन्थ गिने जाते थे।

हेमचंद्र सूरिने अपनी जन्मभाषाका गुजराती, हिन्दी और मराठी आदि कोई खास नाम न रख-कर 'अपभ्रंश' ऐसा सामान्य नाम रक्खा है जिसका कारण यह है कि वह भाषा उस समय, उसी रूपमें बिलकुल थोड़ेसे भेदके साथ भारतके बहुतसे प्रदेशोंमें बोली जाती थी। इस लिए आचार्य हेमचंद्रने उसे खास किसी प्रदेशकी भाषा न मान कर सामान्य अपभ्रंश भाषा मानी। अच्छा तो अब यह बात उपस्थित होगी कि यह अपभ्रंश (विकृतरूप) किस भाषाका था। इस प्रश्नका

उत्तर हमें केवल जैनसाहित्यसे ही मिलेगा और किसीसे नहीं। इसके लिए हमें उन प्राकृत ग्रंथों-को देखना चाहिए जो हेमचंद्राचार्यके पहले क्रमसे ३-४ शताब्दियोंमें, लिखे गये हैं। यद्यपि उन सबका अवलोकन अभी तक ठीक ठीक नहीं किया गया है तो भी जितना किया गया है उससे इतना तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह अपभ्रंश, शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतका था। दशवीं शताब्दीके पहलेके जितने जैन प्राकृतग्रंथ हैं उनमें इन्हीं दोनों भाषाओंकी प्रधानता है। दशवीं शताब्दीके बादके जो ग्रंथ हैं, उनमें ये भाषायें क्रमसे लुप्त होती जाती हैं और अपभ्रंशका उदय दृष्टिगोचर होता है। महाकवि धनपाल, महेश्वरसूरि और जिनेश्वरसूरि आदिके ग्रंथोंमें अपभ्रंशका आदि आकार तथा रत्नप्रभाचार्यकी उपदेशमाला की 'दोघट्टी वृत्ति' और हेमचंद्रसूरिके ग्रन्थोंमें उसकी उत्तरावस्था प्रतीत होती है। ऊपर लिखा जा चुका है कि दशवीं शताब्दीके पहलेके ग्रन्थोंमें शुद्ध सौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत हैं और बादमें उनका विकृतरूप है। कालकी गतिके साथ होनेवाले उन भाषाओंके स्वरूपके भ्रंशहोको हेमचंद्रसूरिने अपभ्रंश नाम दिया और शौरसेनी तथा प्राकृतके बाद ही अपने व्याकरणमें उसका भी व्याकरण लिपिबद्ध कर दिया।

हेमचंद्रसूरिके देहान्तके बाद थोड़े ही वर्षोंमें भारतमें राज्यक्रांति हुई और राष्ट्रीय परिस्थितिमें घोर परिवर्तन होने लगा। हममें परस्पर ईर्ष्याग्नि सुलगने लगी और विदेशी विजेता उसका लाभ उठाने लगे। देशोंका पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध टूटा और एक राज्यके रहनेवाले दूसरे राज्यके रहनेवालोंको शत्रु मानने लगे। इसी कारण, गुजरात, राजपूताना, अवन्ती और मध्यप्रान्तके निवासियोंका इसके पहिले जितना व्यावहारिक सम्बन्ध विस्तृत था उसमें संकुचितता आई। इस संकुचितताने इन प्रदेशोंकी जो व्यापक भाषा अपभ्रंश थी उसके भावी विकाशको प्रान्तीय-भाषाओंके भिन्न भिन्न भेदोंमें विभक्त कर दिया। यहींसे, गुजराती, राजपूतानी, मालवी, और हिन्दी भाषाओंके गर्भका सूत्रपात हुआ और धीरे धीरे १५ वीं शताब्दीमें पहुँचकर इन भाषाओंने अपना स्वरूप स्पष्टतया प्रकट कर दिया।

ऐसी दशामें हेमचंद्राचार्यके अपभ्रंशको ही इन उपर्युक्त भाषाओंका मूल समझना चाहिए। इसकी पुष्टिमें अपभ्रंशके कुछ पद्य यहाँ पर उद्धृत कर देना आवश्यक है, जो हेमचंद्रसूरिने अपने व्याकरणमें उदाहरणार्थ, उस समयके प्रचलित लोकग्रन्थोंमेंसे-रासाओंमेंसे उद्धृत किये हैं।

ढोला[1] मइं तुहुं वारिया[2] मा कुरु दीहा[3] माणु।
निद्दए[4] गमिही रत्तडी[5] दडवड[6] होइविहाणु[7] ॥
बिट्टीए[8] मइ भणिय तुहुं मा कुरु वंकी दिट्ठि[9]।
पुत्ति[10] सकण्णी भल्लि जिवं मारइ हिअइ[11] पइट्ठि[12] ॥
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु[13] जइ भग्गा घरु एन्तु ॥

इन पद्यों के साथ 'पृथ्वीराजरासो' या उसी समयके लिखे गये किसी और ग्रंथके पद्योंका

---

१ रात्रिके प्रारंभमें स्त्रीपुरुषके प्रणयकलहकी समाप्तिपर किसी नवयौवनाकी अपने पतिके प्रति यह उक्ति जान पड़ती है। 'ढोला' शब्द नायकके सम्बोधनमें है। २ वारितः-रोका। ३ दीर्घ। ४ निद्रायां-नींदमें। ५ रात। ६ जल्दी। ७ प्रभात ८ रोषातुर पुत्रीके प्रति स्नेही पिताकी उक्ति बिट्टीए-हे बेटी। ९ वक्रदृष्टि। १० पुत्री। ११ हृदयमें पैठकर। १२ भावार्थ-हे बहिन भला हुआ जो मेरा पति मर गया। यदि भागा हुआ घर आता तो मैं सखियोंमें लज्जित होती। १३ वयस्यानां मध्ये।

यदि मिलान किया जाय तो भाषाविषयक बहुत कुछ सादृश्य ही नहीं बिलकुल एकता दिखाई देगी। ऐसी दशामें 'पृथ्वीराजरासो' यदि हिन्दीहीका ग्रंथ गिना जाने योग्य है, तो उसके आसपासके बनेहुए जैनग्रंथ भी जिनका उल्लेख आगे किया गया है हिन्दीके ग्रंथ गिने जाने योग्य हैं।

इस उल्लेखसे, हमने जो हिन्दीका प्रारंभ १३ वीं शताब्दीके मध्यसे माना है वह भी युक्तिसंगत मालूम देगा और साथ में, जिस तरह अजैनोंके रचे हुए हिन्दी ग्रंथ, उसके प्रारंभकालके मिलते हैं वैसे जैनोंके भी मिलनेके कारण हिन्दीका इतिहास लिखनेमें उनकी उपयोगिता कितनी अधिक है यह भी भली भाँति ज्ञात हो जायगा।

हमने अगले पृष्ठों पर १३ वीं, १४ वीं और १५ वीं शताब्दीके जिन जैनग्रंथोंको हिन्दीके या उससे बहुत मिलती जुलती हुई भाषाके माने हैं उनके अवलोकनसे हिन्दीके विकाशकी बहुत कुछ नई नई बातें और नये नये रूप मालूम होंगे, जो हमारी भाषाके शरीरसङ्गठनका इतिहास लिखने में अति आवश्यक साधन हैं। अजैन साहित्यमें, चंदके बाद गोरखनाथका ग्रंथ ही दृष्टिगोचर होता है—मध्यका कोई नहीं। पर जैनसाहित्यमें इस बीचके पचासों ग्रंथ खोज करने पर मिल सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि हिन्दीका संपूर्ण इतिहास तैयार करनेमें जैनसाहित्यसे महत्त्वकी सामग्री मिल सकती है।

तेरहवीं शताब्दी।

१ जम्बूस्वामी रासा। बड़ौदा महाराजकी सेंट्रल लायब्रेरीकी ओरसे निकलनेवाले 'लाइब्रेरी मिसलेनी' नामके त्रैमासिक पत्रकी अप्रैल १९१५ की संख्यामें श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल एम. ए. का एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने पाटणके सुप्रसिद्ध जैन-पुस्तकालयोंकी खोज करनेसे प्राप्त हुए अलभ्य संस्कृतप्राकृत-अपभ्रंश और प्राचीन गुजरातीके ग्रन्थोंका विवरण दिया है। उसमें 'जम्बूस्वामी रासा' नामका एक ग्रन्थ है। यह महेन्द्रसूरिके शिष्य धर्मसूरिने सं० १२६६ में बनाया है। लेखक इसकी भाषाको प्राचीन गुजराती बतलाते हैं और इसे उपलब्ध गुजराती साहित्यमें सबसे पहिला ग्रन्थ मानते हैं; परन्तु हमारी समझमें चन्दकी भाषा आजकलके हिन्दी जाननेवालोंके लिए जितनी दुरूह है, यह उससे अधिक दुरूह नहीं है और गुजरातीके साथ इसका जितना सादृश्य है उससे कहीं अधिक हिन्दीसे है। उक्त विवरणपरसे हम यहाँ उसके प्रारंभके दो पद्य उद्धृत करते हैं:—

जिण चउ-विस पय नमेवि गुरु चरण नमेवि ॥
जंबू स्वामिहि तणुं चरिय भविउ निसुणेवि ॥
करि सानिध सरसत्ति देवि जीयरयं (?) कहाणउ।
जंबू स्वामिहि (सु) गुणगहण संखेवि वखाणउ ॥
जंबुदीवि सिरि भरहखित्ति तिहिं नयर पहाणउ।
राजग्रह नामेण नयर पहुवी वक्खाणउ ॥
राज करइ सेणिय नरिंद नरवरहं जु सारो।
तासु तणइ अति बुद्धिवंत मति अभयकुमारो* २

२ रेवंतगिरि रासा। पाटनके संघवीपाड़ाके भाण्डारमें 'रेवंतगिरि रासा' नामका एक ग्रन्थ और भी विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीका बना हुआ है। वस्तुपालमंत्रीके गुरु विजयसेनसूरिने संवत् १२८८ के लगभग-जब कि वस्तुपालने गिरनारका

१ पद-चरण। २ चरित्र। ३ भविक-भव्य। ४ सुनो। ५ संक्षिप्त। ६ नगर। ७ प्रधान। ८ पृथिवी में। ९ विख्यात। १० श्रेणिकराजा। ११ तनय पुत्र।
* जिस प्रतिसे ये पद्य लिये गये हैं, वह शुद्ध नहीं है, इसलिये इनमें छन्दोभंग ज्ञात पड़ता है।

संघ निकाला था-इसे बनाया है। इसमें गिरनार का और वहाँके जैनमन्दिरोंके जीर्णोद्धारका वर्णन है। इसकी भाषाको भी दलाल महाशय प्राचीन गुजराती बतलाते हैं। प्रारंभके कुछ दोहे देखिए:—

परमेसर तित्थेसरह[1] पयपंकज[2] पणमेवि[3] ।
भणिसु रासु रेवंतगिरि-अंबिकदिवि[4] सुमरेवि[5] ॥१॥
गामागर-पुर-वण-गहण सरि-सरवरि-सुपएसु[6] ।
देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु[7] सोरठ देसु ॥ २॥
जिणु तहि मंडल-मंडणउ मरगय-मउड[8]-महंतु ।
निम्मल-सामल[9]-सिहर[10] भर, रेहइ[11] गिरि रेवंतु ॥ ३ ॥
तसु सिरि सामिउ[12] सामलउ[13] सोहग[14] सुन्दर सारु ।
...इव निम्मल-कुल-तिलउ[15] निवसइ नेमिकुमारु ॥४॥
तसु मुहदंसणु[16] दस दिसवि देस दिसंतरु संघ ।
आवइ भाव रसालमण उहलि [?] रंग तरंग ॥५॥
पोरवाडकुलमंडणउ नंदणु आसाराय ।
वस्तुपाल वर मंति[17] तहि तेजपालु दुइ भाइ ॥ ६ ॥
गुर्जर (वर) धर धुरि धवल वीर धवल देवराजि ।
बिउ[18] बंधवि[19] अवयारियउ[20] समउ[21] दूसम माझि[22] ॥ ७ ॥

हमारी समझमें यह प्राचीन हिन्दी कही जा सकती है।

३ नेमिनाथ चउपई। पाटणके भण्डारोंमें एक 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' नामका ४० पद्योंका ग्रन्थ है। इसके कर्ता रत्नसिंहके शिष्य विनयचन्द्र सूरि हैं। इनका समय विक्रमकी १३ वीं शताब्दीका अन्तिम भाग है। मल्लिनाथ महाकाव्य, पार्श्वनाथचरित, कल्पनिरुक्त आदि अनेक संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ इनके बनाये हुए उपलब्ध हैं। इस चउपईकी मूल प्रति भी सं० १३५५-५८ की लिखी हुई है। अतः यह तेरहवीं शताब्दीके अंतकी रचना है। इसके प्रारंभकी पाँच चौपाइयाँ इस प्रकार हैं:—

सोहग[1] सुन्दर घण लायन्नु[2], सुमरवि सामिउ सामलवन्नु[3] ।
सखि पति राजलचडि उत्तरिय, बार मास सुणि जिम वज्जरिय
नेमि कुमर सुमरवि गिरनारि, सिद्धी राजल कन्न कुमारि ।
श्रावणि सरवणि कडुए[4] मेहु, गज्जइ विरहि रिझिज्झइ देहु ॥
विज्जु[5] झबक्कइ रक्खसि[6] जेव, नेमिहि विणु सहि[7] सहियइ केव
सखी भणइ सामिणि[8] मन झूरि, दुज्जण तणा मनवंछित पूरि
गयउ नेमि तउ[9] विनठउ काइ, अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥२
बोलइ राजल तउ इहि वयणु, नत्थि नेमि सर समवर-रयणु[10] ॥
धरइ तेजु गहगण[11] सवि ताउ[12], गयणि[13] न उग्गइ दिणयर[14] जाव[15] ३
भाद्रवि[16] भरिया सर पिक्खेवि, सकरुण रोवइ राजल देवि ।
हा एकलडी[17] मइ निरधार, किम उवेखसि करुणासार ॥५॥

१ तीर्थेश्वरके। २ पदपंकज। ३ प्रणम्य-प्रणामकरके ४ गिरनारपर्वतकी अम्बिका देवी। ५ स्मृत्वा-स्मरण करके। ६ सुप्रदेश। ७ मनोहर। ८ मरकत मणिके मुकुटसे शोभित। ९ श्यामल। १० शिखर। ११ राजे। १२ स्वामी। १३ श्यामल। १४ शोभक-शोभायुक्त। १५ तिलक। १६ मुखदर्शन। १७ मंत्री। १८ दोनों। १९ बन्धु। २० अवतरित किया। २१ सुखमय। २२ दुःषमकालमें।

१ सुभग। २ लावण्य। ३ श्यामल वर्ण। ४ मेघ। ५ बिजली। ६ राक्षसीके समान। ७ सखि। ८ हे स्वामिनि। ९ यदि नेमि चला गया तो क्या विनष्ट (बिगड़) गया, और बहुतसे वर हैं। यह इस चरणका अभिप्राय है। १० वररत्न। ११ ग्रहगण-नक्षत्र। १२ तब तक। १३ गगन या आकाशमे। १४ दिनकर-सूर्य। १५ यावत् जब तक। १६ भादोंमें। १७ अकेली।

४ उवएसमाला कहाणय छप्पय। यह भी उपर्युक्त विनयचन्द्रसूरिहीकी रचना है। धर्मदास-गणिकी बनाई हुई प्राकृत उपदेशमालाके अनुवाद रूपमें ये छप्पय बनाये गये हैं। इसमें सब मिलाकर ८१ छप्पय हैं। छप्पय छन्दोंकी तरफ विचार किया जाय तो वे प्रायः हिन्दीके ग्रन्थोंमें अधिक देखे जाते हैं—गुजरातीमें बहुत कम। चंदका 'पृथ्वीराजरासो' प्रायः इन्हीं छप्पय छन्दोंमें बना हुआ है। अतः इस ग्रन्थको हिन्दीग्रंथ कहनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं है। भाषा भी चंदके रासोसे बिल्कुल मिलती जुलती है। इसके आदि-अंत छप्पय इस प्रकार हैं:—

बिजयनरिंद जिणिंद-वीरहत्थिहिं-वय-लेविणु[1]।
धम्मदास गणि नामि गामि नयरिहिं विहरइ पुणु।
नियपुत्तह[2] रणसीहराय-पडिबोहण सारिहिं।
करइ एस उवएसमाल[3] जिणवयणवियारिहिं।
सय पंच च्यालगाहा-रमण-मणिकरंड[4] महियलि मुणउ।
सुहभावि सुद्ध सिद्धंत सम सवि साहु सावय[5] सुणउ।

अंत:—

इणि परि सिरि उवएसमाल (सुरसाल) कहाणय[6]।
तव-संजम-संतोस-बिणयविज्जाइ पहाणय[7]।
सावय-संभरणत्थ[8] अत्थपय[9] छप्पय छंदिहिं।
रयणसिंह सूरीस-सीस, पभणइ आणंदिहिं।
अरिहंत आण अणुदिण उदय, धम्ममूल मत्थइ हाउ।
भो भविय भत्तिसत्तिहिं सहल, सयल-लच्छिलीला लहउ॥ १॥

चौदहवीं शताब्दी।

१ सप्तक्षेत्रिरास-कर्ताका नाम अभी तक स्पष्ट ज्ञात नहीं हुआ; पर रचना-काल संवत् १३२७ है। इसमें जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप (श्वेताम्बर सम्प्रदायमें माने हुए) सात पुण्यक्षेत्रोंकी उपासनाका वर्णन है। यद्यपि इसमें कितने ही शब्दप्रयोग गुजरातीकी ओर झुकते हुए दिखाई देते हैं पर हिन्दीके साथ सादृश्य रखनेवाले शब्दोंकी प्रधानता अवश्य है। नमूनेके लिए कुछ अंतके पद्य देखिए:—

सात क्षेत्र[4] इम बोलिया पुण एकु कहीसिइ।
कर जोड़ी श्रीसंघपासि अविणउ मागीसइ।
कांइ ऊणं आगउं बोलिउ उत्सूत्र।
ते बोल्या मिच्छादुक्कड श्रीसंघनदीतुं॥ ११६॥

मूं मूरख[6] (?) तोइ एकुण मात्र पुण सुगुरुपसाओ।
अनइ ज त्रिभुवनसामि वसइ हियडइ जगनाहो।
तीणि प्रमाणिइ सातक्षेत्र इम कीधउ रासो।
श्रीसंघु दुरियह अपहरउसामी जिणपासो॥ ११७॥

१ जिनेन्द्रवीरके हाथसे जिन्होंने व्रत (दीक्षाव्रत) लिया था, वे धर्मदासगणि। २ निजपुत्र रणसिंहराजके प्रतिबोधनार्थ। ३ उपदेशमाला। ४ गाथारूप रत्नोंका मणिकरण्ड या पिटारा। ५ श्रावक। ६ उपदेशमाला-कथानक। ७ तप-संयम-संतोष-विनय-विद्यामें प्रधान। ८ श्रावकस्मरणार्थ। ९ अर्थपद।

१ प्रभणति-कहते हैं। २ आज्ञा। ३ भक्तिशक्तिसे। ४ सकललक्ष्मीलीला अर्थात् केवलज्ञान। ५ सात क्षेत्र इस प्रकार कह कर मैं फिर एक बात कहूंगा-हाथ जोड़कर श्रीसंघके पास अविनय माँगूगा अर्थात् क्षमा माँगूगा कि यदि कुछ 'ऊणं' न्यून 'आगउं' अधिक या 'उत्सूत्र' शास्त्रविरुद्ध कहा गया है तो श्रीसंघमें प्रसिद्ध 'मिच्छादुष्कृत' हो। ६ मैं मूर्ख हूँ इसलिए मैं कौनमात्र हूँ—क्या चीज हूँ; परन्तु सुगुरुके प्रसादसे और त्रिभुवनस्वामी जगन्नाथ हृदयमें बसते हैं इससे यह 'रास' बना सका हूं।

संवत तेर सत्तावीसए माह मसवाडइ।
गुरुवारि आवीय दसमि पहिलइ पखवाडइ।
नहि पूरू हुउ रासु सिवसुखनिहाणूं।
जिण चउवीसइ भवियणइ करिसिइ कल्याणूं ॥१२८॥

२ संघपतिसमरा-रास। अणहिलपुर पट्टनके ओसवाल शाह समरा संघपतिने सं० १३७१ में शत्रुंजय तीर्थका उद्धार अगणित धन व्यय करके किया था। इस उद्धारको लक्ष्य करके नागेन्द्र गच्छके आचार्य पासड सूरिके शिष्य अंबदेवने यह रासा बनाया है। इसमें गुजराती प्रयोगोंके स्थानमें राजस्थानी भाषाके शब्द अधिक दिखाई देते हैं इससे, इसके कर्ताका वासस्थान संभवतः राजपूतानाका कोई प्रदेश होना चाहिए। राजस्थानी भषाओंका जितना सादृश्य गुजरातीके साथ है उससे कई गुना अधिक हिन्दीसे है और यह आज भी प्रत्यक्ष है।

पट्टनसे संघ निकाल कर समरा शाहने जब शत्रुंजयकी तरफ प्रयाण किया उस समयका कवि वर्णन करता है:-

वाजिय संख असंख नादि काहल दुडुदुडिया।
घोडे चडइ सल्लारसार राउत सींगडिया।
तउ देवालउ जोत्रि वेगि धाघरि रवु झमकइ
सम विसम नवि गणइ कोई नवि वारि[illegible] थकइ ॥१॥
सिजवाला धर धडहडइ वाहिणि बहुवेगि।
धरणि धडक्कई रजु उडए नवि सूझइ मागो।
हय हींसइ आरसइ करह वेगि वहइ वहलु।
साद्‌किया थाहरइ अवरु नवि देई बुलु ॥ २ ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पारु न पामियए वेगि वहइ सुखासणु।
आगेवाणिहि संचरए संघपति साहु देसलु।
बुद्धिवंतु बहु पुंनिवंतु परिकमिहि सुनिश्चलु ॥ ३ ॥

इन पद्योंकी रचना तो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीके राजपूतानाके चारणीय रासोंसे भी विशेष सरल और सहजमें समझमें आजानेवाली है।

२ थूलिभद्र फागु। इस नामकी एक छोटीसी पुस्तक खरतर गच्छके आचार्य जिनपद्मसूरिने विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें, चैत्र महीनेमें फाग खेलनेके लिये बनाई है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार है:—

पणमिय पास जिणंदपय, अनु सरसइ समरेवि।
थूलभद्दमुणिवइ भणिसु. फागु बंधि गुणकेवि ॥ १ ॥

अह सोहग सुन्दर रूपवंतु गुणमणिभंडारो।
कंचण जिम झलकंत कंति संजम सिरि हारो ॥
थूलिभद्र मुणिराउ जाम महियली बोहंतउ।
नयरराय पाडलिय मांहि पहुतउ विहरंतउ ॥

'कच्छुलिरासा' आदि और भी कई कृतियाँ इस शताब्दीकी मिलती हैं।

३ संस्कृतमें जैनाचार्य मेरुतुङ्गकृत प्रबन्धचिन्तामणि नामका एक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जो शास्त्री रामचन्द्र दीनानथ द्वारा छपकर प्रकाशित हो गया है। यह विक्रम संवत् १३६१ में बनकर समाप्त हुआ है। इसके कई प्रबन्धोंमें यत्र तत्र कुछ दोहे दिये हुए हैं जो अपभ्रंश भाषाके हैं और हिन्दी जैसे जान पड़ते हैं। ग्रंथकर्ताके समयमें वे जनश्रुतियोंमें या प्रचलित देशभाषाके किसी जैनग्रन्थमें प्रसिद्ध होंगे, इस कारण उन्हें चौदहवीं शताब्दीके या उससे पहलेके कह सकते हैं।

१ स० १३२७ मसवाड़ (मार्गसिर ?), पहिले पखकी दशमी, गुरुवार।

१ सरस्वति। २ स्थूलभद्र मुनिपति। ३ नगरराज-श्रेष्ठ नगर। ४ पाटलीपुत्रमें।

(पृष्ठ ६२)

जा मति पाछइ संपजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंजु भणइ मुणालवइ[1], विघन न बेढ़इ कोइ ॥

(पृष्ठ ७०)

जइ यह रावणु जाइयो, दह मुहु इक्कु सरीरु ।
जननि वियंभी[2] चिन्तवइ, कवनु पियाइये खीरु[3] ॥

(पृष्ठ १२१)

कसु[4] करु पुत्र कलत्र धी, कसु करु करसण वाड़ि ।
आइवु जाइवु एकला, हत्थ...वि[5]बवि झाड़ि ॥

(पृष्ठ ५६)

मुंजु भणइ मुणालवइ, जुव्वण[6]गु गयउ न झूरि ।
जइ शक्कर सयखंड थिय, तोइ स मीठी चूरि ॥

इन पद्योंमें अपभ्रंश शब्द अधिक हैं, तो भी इनके समझनेमें पृथ्वीराज रासोकी अपेक्षा अधिक कठिनाई नहीं पड़ती । इसलिए इनकी भाषाको प्राचीन हिन्दी कहनेमें हमें कोई संकोच नहीं होता ।

पन्द्रहवीं शताब्दी ।

१ गौतमरासा । पन्द्रहवीं शताब्दीका सबसे पहिला ग्रंथ 'गौतमरासा' मिला है । इसे संवत् १४१. में उदयवंत या विजयभद्र नामके श्वेताम्बर साधुने बनाया है । पाटनमें इसकी एक प्रति १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्धकी लिखी हुई मिली है । यह ग्रन्थ छप गया है, पर शुद्ध नहीं छपा । इसके प्रारंभके कुछ पद्य ये हैं:—

वीर जिणेसरचरणकमल-कमलाकय[1]वासो,
पणमवि पभणिसु सामि[2] साल गोयम[3]गुरुरासो ।

१ मृणालवती । २ विजृंभित होकर—चकराकर । ३ क्षीर-दूध । ४ कृषि कर । ५ दोनों । ६ यौवन ।

१ कमलाकृतवासः—जिनमें लक्ष्मीका निवास है । २ स्वामि । ३ गोतम ।

मणु तणु वयणु एकंतु, करवि निसुणउ[4] भो भविया,
जिम निवसइ तुम्ह देहि गेहि गुणगण गहगहिया १
जंबुदीवि[5] सिरिभरहखित्ति[6] खोणीतलमंडणु[7],
मगधदेस सेणिय[8] नरेस रिउ[9]-दलबल खंडणु ।
धणवर गुव्वर नाम गामु जहिं गुणगणसज्जा[10],
विप्पु[11] वसे वसुभूइ[12] तत्थ जसु पुहवी[13] भज्जा ॥ २ ॥
ताण पुत्तु सिरि इंदभूइ[14] भूवलयपसिद्धउ,
चउदहविज्जा[15] बिविहरूप नारी-रस विद्धउ ।
विनय विवेकि विचार सार गुणगणह मनोहरु,
सात हाथ सुप्रमाण देह रूपिहिं रंभावरु ॥ ३ ॥
[16]नयणवयण करचरणि जिण वि पंकजजलि पाडिय,
तेजिहि[17] ताराचंद सूर आकासि भमाडिय ।
[18]रूविहि मयणु अनंग करवि मेल्हिउ निद्धाडिय,
धीरिम मेरु गंभीरि सिंधु चंगिम चय चाडिय ४

२ ज्ञानपंचमी चउपई । मगधदेशमें विहार करते समय जिनउदयगुरुके शिष्य और ठक्कर-माल्हेके पुत्र विद्धणूने संवत् १४२३ में इसकी रचना की है उदाहरण:—

जिणवर सासणि आछइ सारु, आहु न लब्भइ अंत अपारु
पढहु गुणहु पूजहु निसुनेहु, सियपंचमिफलु कहियउ एहु १

४ सुनो । ५ जम्बूद्वीप । ६ श्रीभरतक्षेत्र । ७ क्षोणीतलमंडन । ८ श्रेणिक । ९ रिपु । १० सज्जी हुई । ११ विप्र । १२ वसुभूति । १३ पृथ्वी नामकी भार्या । १४ इन्द्रभूति । १५ विद्या ।

१६ अपने नेत्रों, वचनों, हाथों और चरणोंकी शोभासे पराजित करके जिसने पंकजोंको जलमें पटा दिये । १७ तेजसे चन्द्रसूर्यको आकाशमें भमाया । १८ रूपसे मदनको अनंग (विना अंगका) बनाके निर्धाटित कर दिया या निकाल दिया । १९ ज्ञानपंचमी ।

बिथयंचमि फलु जाणइ सोइ, जो नर करइ सो दुहिउ न होइ
संजम मन धरि जो नर करइ, सो नर निब्भय दुत्तरु तरइ २
ॐकार जिणइ (?) चउवीस, सारद सामिनि करउ अगीस।
वाहण हंस चढी कर वीण, सो जिण सासणि अच्छइ लीण ३
अठदल कमल ऊपनी नारि, जेण पयासिय वेदइ चारि।
ससिहर बिंबु ग्रमियरसु फुरइ, नमस्कीर तसु 'विहुणु' करइ ४
चिंतासायर जवि नइ परइ, घर धंधल सयलइ वीसरइ।
कोहु मानु माया (मद) मोहु, जर ककंबे पयिउ संदेहु ॥ ५ ॥
दान न दिन्नउ मुनिवर जोगु, ना तपे तपिउ न भोगेउ भोगु
शवय घरहि जियउ तवताउ, ग्रमुदिभुमनि चिंतहु नवकारु

इस ग्रन्थकी प्राचीन हिन्दी और भी अधिक स्पष्ट है। यह गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीकी ओर बहुत अधिक झुकती हुई है।

३ धर्मदत्तचरित्र—इस ग्रन्थका उल्लेख मिश्रबन्धुओंने अपने इतिहासमें किया है। इसे संवत् १४८६ में दयासागरसूरिने बनाया था।

सोलहवीं शताब्दी ।

१ ललितांगचरित्र। इसे शान्तिसूरिके शिष्य ईश्वरसूरिने मण्डपदुर्ग (मांडलगढ़) के बादशाह ग्यासुद्दीनके पुत्र नासिरुद्दीनके समय (वि० सं० १५५५-१५६६) में, मलिक माफरके पट्टधर सोनाराय जीवनके पुत्र पुंज मंत्रीकी प्रार्थनासे सं० १५६१ में बनाया है। इसकी रचना बड़ी सुन्दर है। प्राकृत और अपभ्रंशका मिश्रण बहुत है। कवि स्वयं अपने काव्यकी प्रशंसा आर्या छन्दमें इस प्रकार करता है:—

सालंकारसमत्थं सच्छंदं सरससुगुणसंजुत्तं।
ललियंगकुमरचरियं ललणाललियव्व निसुणेह॥

अब थोड़ेसे पद्य और देखिए:—

महिमहति मालवदेस, धण कणयलच्छि निवेस।
तिहं नयर मंडवदुग्ग, अहिनवउ जाण कि सग्ग ६७
तिह अतुलबल गुणवंत, श्रीग्याससुत जयवंत।
समरत्थ साहसधीर, श्रीपातसाह निसीर ॥ ६८ ॥
तसु रज्जि सकल प्रधान, गुरु रूवरयण निधान।
हिंदुआ राय वजीर, श्रीपुंज मयणह वीर ॥ ६९ ॥
सिरिमाल=वंशवयंस, मानिनीमानसहंस।
सोनाराय जीवनपुत्त, बहुपुत्त परिवर जुत्त ॥७०॥
श्रीमलिक माफर पट्टि, हयगय सुहड़ बहु चट्टि।
श्रीपुंज पुंज नरिंद, बहु कवित केलि सुछंद ॥७१॥
नवरस विलासउ लोल, नवगाहगेयकलोल।
निजबुद्धि बहुअ विनाणि, गुरुधम्मफल बहुजाणि॥७२
इयपुण्यचरिय प्रबंध, ललिअंग नृपसंबंध।
पहु पास चरियह चित्त, उद्धरिय एह चरित्त ॥७३॥

२ सार सिखामन रासा। यह ग्रंथ इन्दौरके श्रीमान् यति माणिकचन्द्रजीके भण्डारमें है; और यति महोदयकी कृपासे हमें प्राप्त हुआ था। बड़ तपगच्छके जयसुन्दर सूरिके शिष्य संवेगसुन्दर उपाध्यायने सम्वत् १५४८ में इस की रचना की है। कोई २५० पद्योंमें यह समाप्त हुआ है। रचना साधारण है। रातको न खाना, छना हुआ पानी पीना, जीवघात नहीं करना, अमुक अमुक अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाना आदि बातोंकी शिक्षा (सिखापन) इसमें दी गई है। भाषामें गुजरातीकी झलक है—कहीं कहीं अधिक है—तो भी वह हिन्दी है। कविको श्वेताम्बर सम्प्रदायकी प्रधान भाषा गुजरातीका परिचय अधिक रहा है, ऐसा जान पड़ता है।

१ दुःखी। २ दुस्तर।

१ कनक—सुवर्ण। २ अभिनव। ३ स्वर्ग।

१ राज्य में। २ हिन्दू। ३ मन्त्री। ४ श्रीमालवंश—के अवतंस—मुकुट। ५ विज्ञानी। ६ प्रभु। ७ पार्श्व।

४ यशोधर चरित्र। लाहौरके बाबू ज्ञानचन्दजीने अपनी सूचीमें फफोंदू ग्रामनिवासी गौरवदास नामके जैनविद्वान्के बनाये हुए इस ग्रन्थका उल्लेख किया है और इसके बननेका समय १५८१ बतलाया है। जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीके सरस्वतीसदनमें इसकी एक प्रति मौजूद है। बाबाजीने अपनी जैनशास्त्रमालामें इसे लिखा है।

४ कृपणचरित्र। यह छोटासा पर बहुत ही सुन्दर और प्रसादगुणसम्पन्न काव्य बम्बई दिगम्बर जैनमन्दिरके सरस्वतीभण्डारमें एक गुटकेमें लिखा हुआ मौजूद है। इसमें कविने एक कंजूस धनीका अपनी आँखों देखा हुआ चरित्र ३५ छप्पय छन्दोंमें वर्णन किया है। घेल्हके पुत्र ठकुरसी नामके कवि इसके रचयिता हैं। वे १६वीं शताब्दीके कवि हैं। पन्द्रहसौ अस्सीमें उन्होंने इसकी रचनाकी है, जैसा कि वे अन्तके छप्पयमें कहते हैं:—

इसौ जाणि सहु कोई, मरम मूरिख फल संच्यौं।
दान पुण्य उपगारि, दिंत धणु किवण न संच्यौं॥
मैं पन्द्रा सौ असइ, पोष पांचै जगि जाणौं।
जिसौ कृपणु इक दीठ, तिसौ गुणु ताणु बखाण्यौं॥
कवि कहइ ठकुरसी घेल्हतणु, मैं परमत्थु विचारियउ।
खरचियौं त्याहं जीत्यौं जनमु, जिहिसंच्यौं ति हारियौ॥

कवि अपनी कथाका प्रारम्भ इस प्रकार करता है:—

कृपणु एकु परसिद्ध, नयरि निवसंतु निलक्खणु।
कही करम संजोग तासु घरि, नारि विचक्खण॥
देखु दुहकी जोड़, सयलु जग रहिउ तमासें।
याहि पुरिषकै याहि, दई किम दे इम भासें॥
वह रह्यो रीति चाहैं भली, दाण पुज्ज गुणसील मति।
यह दे न खाण खरचण किवैं, दुवै करहिं दिणि कलह अति।
गुरसौं गोठि न करैं, देव देहुरौं न देखै।
मांगिण भूलि न देइ, गालि सुणि रहै अलेखै॥
सगी भतीजी भुवा बहिणि, भाणिजी न ज्यावै॥
रहै रूसणौ माड़ि, आप न्यौंतौ जब आवै॥
पाहुणौ सगौ आयौ सुणै, रहइ छिपिउ मुहु राखि करि।
जिव जाय तव हि पणि नीसरइ, इम धनु संच्यौ कृपण नर॥

एक दिन कृपणकी स्त्रीने कहा कि गिरनारजीकी यात्राके लिए बहुतसे लोग जा रहे हैं, यदि आप भी मुझे लेकर यात्रा करा लावें, तो अपना धन पाना सफल हो जाय। इस पर सेठ जी बड़े खफा हुए। दोनोंमें बहुत देर तक विवाद होता रहा। सेठानीने धनकी सफलता दान भोग आदिसे बतलाई और सेठने उसका विरोध किया। अन्तमें सेठजी तंग आकर घरसे चल दिये। मार्गमें उनका एक पुराना मित्र मिला, वह भी कंजूस था। उसने पूछा, आज तुम उन्मना और दुचार क्यों हो रहे हो? सेठजी उत्तर देते हैं:—

कृपणु कहै रे मीत, मज्झु घरि नारि सतावै।
जात चालि धणु खरचि, कहै सो मोहि न भावै॥
तिहि कारण दुब्बलौ, रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरणु आइयौ, गुज्झु थाग्यौ तु आगै॥
तउ कृपण कहै रे कृपण सुणि, मीत न कर मनमाहि दुखु।
पीहरि पठाइ दे पापिणी, ज्यौं बैठा दिण नूं करि सुखु॥२५॥

स्थानाभावसे अब हम और पद्य उद्धृत नहीं कर सकते। आखिर सेठजी घर आये और एक झूठी चिट्ठी घरवालीके सामने पढ़कर बोले कि तुम्हारे बड़े भाईके पुत्र उत्पन्न हुआ है, इसलिए उन्होंने तुम्हें बुलानेके लिए यह चिट्ठी देकर आदमी भेजा है। तुम्हें पीहर चला जाना चाहिए। बेचारीको जाना पड़ा। इसके बाद यात्रियोंका संघ चला गया। जब कुछ समयके बाद वह सकुशल लौट आया और उसमें सेठने देखा कि कई

१ गोष्ठी बातचीत।

१ यात्रा। २ गुह्य—गुप्त बात। ३ कह दिया।

लोग मालामाल होकर आगये हैं, तब उसे बड़ा दुःख हुआ कि मैं क्यों न गया। मैं जाता तो खूब किफायतशारीसे रहता और इनसे भी अधिक धन कमा लाता। इस दुःखमें वह रात दिन दुःखी रहने लगा और धीरे धीरे मरणशय्यापर पड़ गया। लोगोंने बहुत समझाया कि अब तू कुछ दानधर्म कर ले, पर उसने किसीकी न सुनी। वह बोला, मैं सारे धनको साथ ले जाऊँगा। उसने लक्ष्मीसे प्रार्थना कि मैंने तुम्हारी जीवनभर एकनिष्ठतासे सेवा की, अब तुम मेरे साथ चलो। लक्ष्मीने कहा, कि मेरे साथ ले चलनेके जो कई दानादि उपाय थे उन्हें तूने किये नहीं, इसलिये मैं तेरे साथ नहीं आ सकती। कृपण मर गया और नरकमें तरह तरहके दुःख भोगने लगा। इधर उसके मरनेसे लोग बहुत खुश हुए और कुटुम्बी आदि आनन्दसे धनका उपभोग करने लगे। यही इस चरित्रका सार है। कविने कथा अच्छी चुनी है। रचना उसकी एक आँखों देखी घटना पर की गई है, इस कारण उसमें प्राण हैं। मालूम नहीं, इस कविकी और भी कोई रचना है या नहीं।

५ रामसीताचरित्र। इस ग्रन्थका उल्लेख मिश्रबन्धुओंने अपने हिन्दीके इतिहासमें किया है। इसे बालचन्द जैनने विक्रम संवत् १५७८ में बनाया है।

सत्रहवीं शताब्दी।

इस शताब्दीके बने हुए जैनग्रन्थ बहुत मिलते हैं। इसमें हिन्दीकी खासी उन्नति हुई है। हिन्दीके अमर कवि तुलसीदासजी इसी शताब्दी में हुए हैं।

१ बनारसीदास। इस शताब्दीके जैनकवि और लेखकोंमें हम कविवर बनारसीदासजीको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। यही क्यों, हमारा तो ख्याल है कि जैनोंमें इनसे अच्छा कवि कोई हुआ ही नहीं। ये आगरेके रहनेवाले श्रीमाल वैश्य थे। इनका जन्म माघ सुदी ११ सं० १६४३ को जौनपुर नगरमें हुआ था। इनके पिताका नाम खरगसेन था। ये बड़े ही प्रतिभाशाली कवि थे। अपने समयके ये सुधारक थे। पहिले श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी थे, पीछे दिगम्बर-सम्प्रदायमुक्त हो गये थे; परन्तु जान पड़ता है, इनके विचारोंसे साधारण लोगोंके विचारोंका मेल नहीं खाता था। ये अध्यात्मी या वेदान्ती थे। क्रियाकाण्डको ये बहुत महत्त्व नहीं देते थे। इसी कारण बहुतसे लोग इनके विरुद्ध होगये थे। यहाँ तक कि उस समयके मेघविजय उपाध्याय नामके एक श्वेताम्बर साधुने इनके विरुद्ध एक 'युक्तिप्रबोध' नामका प्राकृत नाटक (स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासहित) ही लिख डाला था, जो उपलब्ध है। उससे मालूम होता है कि इनको और इनके अनुयायियोंको उस समयके बहुतसे लोग एक जुदा ही पन्थके समझने लगे थे।

बनारसीदासजीके बनाये हुए चार ग्रन्थ-१ बनारसीविलास, २ नाटक समयसार, ३ अर्द्ध कथानक और ४ नाममाला (कोष) प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे पहिले तीन उपलब्ध हैं। दो छप चुके हैं और तीसरेका आशय पहिलेके साथ प्रकाशित हो चुका है। बनारसीविलास कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है; किन्तु उनकी कोई ६० छोटी बड़ी कविताओंका संग्रह है। यह संग्रह जगजीवन नामके एक आगरेके कविने संवत् १७०१ में किया था। सूक्तमुक्तावली, समयसारकलशा, और कल्याणमन्दिरस्तोत्र नामकी तीन कविताओंको छोड़कर इस संग्रहकी सब रचनायें स्वतंत्र हैं, और एकसे एक बढ़कर हैं। अध्यात्मके प्रेमी उनमें तन्मय हो जाते हैं। समयाभावके कारण हम दो चार दोहे सुनाकर ही संतोष करेंगे।

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोइ ।
मनकी दुविधा मानकर, भये एकसौं दोइ ॥७॥
दोऊ भूले भरममें, करें वचनकी टेक ।
'राम राम' हिन्दू कहें, तुरुक 'सलामालेक' ॥८॥
इनकैं पुस्तक बांचिए, वे हू पढ़ें किते‌ब ।
एक वस्तुके नाम द्वय, जैसैं 'शोभा' 'जेब' ॥९॥
तिनकौं दुविधा–जे लखें, रंग विरंगी चाम ।
मेरे नैनन देखिए, घट घट अन्तर राम ॥१०॥
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहर यह माहिं ।
जबलग यह कछु ह्वैरहा, तबलग यह कछु नाहिं ॥११॥

दूसरा ग्रन्थ नाटक समयसार है । प्राकृत भाषामें भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ समयसार नामका एक ग्रन्थ है और उस पर अमृतचन्द्राचार्य कृत संस्कृत व्याख्यान है। नाटक समयसार इन्हीं दोनों ग्रन्थोंको आधार मानकर लिखा गया है । मूल और व्याख्यानके मर्मको समझ कर उसे इन्होंने अपने रंगमें रंगकर अपने शब्दोंमें अपने ढंगसे लिखा है। बड़ा ही अपूर्व ग्रन्थ है। इसका प्रचार भी खूब है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायोंमें इसका खूब ही आदर है। इस पर कई टीकायें भी बन चुकी हैं और उनमेंसे दो छप भी गई हैं। जो सज्जन वेदान्तके प्रेमी हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थको अवश्य ही पढ़ें। जैन–धर्मकेसिधान्तों- का जिन्हें परिचय है वे इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। इसका केवल एक ही सीधा साधा पद्य सुनाकर मैं आगे बढ़ूँगाः—

भैया जगवासी, तू उदासी ह्वैके जगतसौं,
एक छ महीना उपदेस मेरो मानु रे ।
और संकलप विकलपके विकार तजि,
बैठिके एकन्त मन एक ठौर आनु रे ॥
तेरो घट सर तामैं तू ही ह्वै कमल ताकौ,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे ॥
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसैं तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यौंही जानु रे ॥

भाषाकी दृष्टिसे भी इसकी रचना उच्चश्रेणी की है । भाषापर कविको पूरा अधिकार है। शब्दोंको तोड़े–मरोड़े बिना उन्होंने उनका प्रयोग किया है। छन्दोभंगादि दोषोंका उनके ग्रन्थमें अभाव है।

तीसरा ग्रन्थ अर्धकथानक है। यह ग्रंथ उन्हें जैनसाहित्यके ही नहीं, सारे हिन्दी साहित्यके बहुत ही ऊँचे स्थानपर आरूढ़ कर देता है। एक दृष्टिसे तो वे हिन्दीके बेजोड़ कवि सिद्ध होते हैं। इस ग्रंथमें वे अपना ५५ वर्षका आत्मचरित- लिखकर हिन्दीसाहित्यमें एक अपूर्व कार्य कर गये हैं और बतला गये हैं कि भारतवासी आजसे तीन सौ वर्ष पहले भी इतिहास और जीवनचरित- का महत्त्व समझते थे और उनका लिखना भी जानते थे। हिन्दीमें ही क्यों, हमारी समझमें शायद सारे भारतीय साहित्यमें (मुसलमान बादशाहोंके आत्मचरित्रोंको छोड़कर) यही एक आत्मचरित है, जो आधुनिक समयके आत्म- चरित्रोंकी पद्धति पर लिखा गया है। हिन्दी भाषियोंको इस ग्रन्थका अभिमान होना चाहिए।

अर्धकथानक छोटासा ग्रंथ है। सब मिलाकर इसमें ६७३ दोहा–चौपाइयाँ हैं। इसमें कविने अपना विक्रम संवत् १६९८ तकका ५५ वर्षका जीवन- चरित लिखा है। ग्रन्थके अन्तमें कविने लिखा है कि आजकलकी उत्कृष्ट आयुके हिसाबसे ५५ वर्ष की आयु आधी है। इस लिए इस ५५ वर्षके चरित्रका नाम 'अर्धकथानक' हुआ है। यदि जीता रहा और बन सका, तो मैं शेष आयुका चरित भी लिख जाऊँगा। मालूम नहीं कविवर आगे कब तक जीते रहे और उन्होंने आगेका चरित लिखा या नहीं। जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीने अपनी सूचीमें बनारसीपद्धति नाम का ५०० श्लोकपरिमित एक और ग्रन्थका उल्लेख किया है। आश्चर्य नहीं, जो उसीमें उनकी शेष- जीवनकी कथा सुरक्षित हो।

अर्धकथानकमें कविवरने अपने जीवनकी तमाम छोटी मोटी दुखसुखकी बातोंका बहुत ही अच्छे ढंगसे वर्णन किया है। जिनका पढ़नेवालों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उन्होंने अपने तमाम बुरे और भले कर्मोंका-गुणों और अवगुणोंका-इसमें चित्र खींचा है। वे जहाँ अपने गुणोंका वर्णन करते हैं वहाँ दुर्गुणोंका भी करते हैं। दुर्गुण भी ऐसे वैसे नहीं, जिन्हें साधारण लोग स्वप्नमें भी नहीं कह सकते हैं, उन्हें उन्होंने लिखा है। इससे उनकी महानुभावता प्रकट होती है-यह मालूम होता है कि उनकी आत्मा कितनी उन्नत और संसारके मानापमानसे परे आकाशमें विहार करनेवाली थी। अपनी जीवनकथासे सम्बन्ध रखनेवाली उस समयकी उन्होंने ऐसी अनेक बातोंका वर्णन किया है जो बहुत ही मनोरंजक और कुतूहलवर्द्धक हैं। मुगल बादशाहोंके राज्यमें वणिक महाजनोंको जो कष्ट होते थे, साधारण प्रजा जो कष्ट पाती थी, अधिकारी लोग जो अत्याचार करते थे, उनका वर्णन भी इसमें जगह जगह पर पाया जाता है। विक्रम संवत् १६७३ में आगरेमें प्लेग रोगका प्रकोप हुआ था, इस घटनाका भी कविने उल्लेख किया है:—

इस ही समय ईति विस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग, परगट भया गांठका रोग ५७४
निकसैं गांठि मरैं छिन माहिं, काहूकी बसाय कछु नाहिं।
चूहे मरैं वैद्य मर जाहिं, भयसौं लोग अन्न नहिं खाहिं ७५

बनारसीदासजी पर एक बार बड़ी विपत्ति आई थी। उनके पास एक पाई भी खर्च करनेके लिए नहीं थी। सात महीने तक वे एक कचौरीवालेकी दूकानसे दोनों वक्त पूरी कचौरी उधार लेकर खाते रहे। जब हिसाब किया, तो उसका दाम कुल १४ रुपया हुआ। अर्थात् उस समय आगरे जैसे शहरमें दो रुपये महीनेमें आदमी दोनों वक्त बाजारकी पूरी कचौरी खा सकता था। इससे उस समयके 'सुकाल' का पता लगता है। जिस समय बादशाह अकबरके मरनेका समाचार जौनपुर पहुँचा, उस समय वहाँके निवासियोंकी दशाका वर्णन कविने इस प्रकार किया है:—

इसही बीच नगरमैं सोर, भयौ उदंगल चारिहु ओर।
घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट ॥५२॥
भले वस्त्र अरु भूषन भले, ते सब गाड़े धरती तले।
हंडवाई (?) गाड़ी कहुं और, नगद माल निभररमी ठौर ५३
घर घर सबनि विसाहे शस्त्र, लोगन्ह पहिरे मोटे वस्त्र।
ठाढ़ौ कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेस ॥ ५४ ॥
ऊंच नीच कोउ न पहिचान, धनी दरिद्री भये समान।
चोरी धारि दिसै कहुं नाहिं, यौंही अपभय लोग डराहिं ५५

इससे श्रोतागण उस समयके राजशासनकी परिस्थितियोंका बहुत कुछ अनुमान कर सकेंगे।

समय न रहनेके कारण मैं इस ग्रन्थका और अधिक परिचय नहीं दे सकता। जो महाशय अधिक जानना चाहते हों, वे मेरे द्वारा सम्पादित बनारसीविलासके प्रारंभमें इस ग्रन्थका विवरण पढ़नेका कष्ट उठावें।

यद्यपि इस ग्रन्थकी रचना नाटकसमयसार जैसी नहीं है, तो भी विषयके लिहाजसे यह खासी है। कहीं कहींका वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है। अपने भाई घनमलकी मृत्युका शोक कविने इस प्रकार वर्णन किया है:—

घनमल घनदल उड़ि गये, काल-पवन-संजोग।
मात पिता तरुवर तए, लहि आतप सुत-सोग ॥ १९ ॥

जब कविवर एक बड़ी बीमारीसे मुक्त होकर ससुरालसे घर आये तब:—

माय पिताके पद गहे, मा रोई उर ठोकि।
जैसे चिरी कुरीजकी, त्यौं सुत दशा विलोकि ॥ १९४ ॥

एकबार परदेशमें कवि अपने साथियोंके सहित कहीं ठहरे कि इतनेमें मूसलधार पानी बरसने लगा। तब भागकर सरायमें गये, पर वहाँ जगह न मिली, कोई उमराव ठहरे हुए थे; बाजारमें खड़े होनेको जगह न थी, सबके किवाँड़ बन्द थे। उस समयका चित्र कविवर इस तरह खींचते हैं:—

फिरत फिरत फावा भये, बैठ कहै न कोइ।
तलै कीचसों पग भरे, ऊपर बरसत तोइ ॥ ९४ ॥
अंधकार रजनी विषैं, हिमरितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यौ, पुरुष उठ्यौ लै बाँस ॥ ९५ ॥

बनारसीदास अपने दूसरे पुत्रकी मृत्युका उल्लेख इन शब्दोंमें करते हैं—

बानारसिके दूसरो, भयौ और सुत-कीर।
दिवस कैकुमै उड़ि गयौ, तजि पंजिरा सरीर ॥

चौथा ग्रंथ नाममाला हिन्दीका दोहाबद्ध कोश है। इसे हमने अभीतक देखा नहीं है, पर खोजनेसे यह मिल सकता है। कविवरका एक और ग्रंथ शृंगाररसकी रचनाओंका संग्रह था जिसे उन्होंने स्वयं जमुनामें बहा दिया था। उन्हें इस विषयसे घृणा होगई थी और यही कारण था जो उन्होंने उसका अस्तित्व ही न रहने दिया।

२ कल्याणदेव। ये श्वेताम्बर साधु जिनचन्द्र सूरिके शिष्य थे। इनके बनाये हुए 'देवराज बच्छराज चउपई' नामक एक ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति हमें श्रीमान् यति माणिकचन्द्रजीकी कृपासे प्राप्त हुई है। संवत् १६४३ में यह ग्रंथ विक्रम नामक नगरमें रचा गया है। इसमें एक राजाके पुत्र बच्छराज और देवराजकी कहानी है। बच्छराज बड़ा था, परन्तु मूर्ख था. इस कारण राज्य देवराजको मिला। बच्छराज घरसे निकल गया, पीछे अनेक कष्ट सहकर और अपनी उन्नति करके आया। भाईने बहुतसी परीक्षायें लीं। अन्तमें बच्छराज उत्तीर्ण हुआ और आधे राज्यका स्वामी हो गया। रचना साधारण है। भाषामें गुजरातीका मिश्रण है और यह बात श्वेताम्बर सम्प्रदायके हिन्दी साहित्यमें अकसर पाई जाती है। नमूना—

जिणवर चरणकमल नमी, सुहगुरु हीय धरेवि।
सद्गुरुयौं सवि सुख संपजइ, भाजइ म-ल कलेसि ॥ १ ॥

बुद्धइ घणसुख पाइए, बुद्धइ लहिए राज।
बुद्धइ अति गरुअउपणउ, बुद्धि सरइ सवि काज ॥ २ ॥

विद्याधर कुल ऊपनी, सुरवेगा अभिधान।
राजानी अति मानिता, वनितामाहिं प्रधान ॥ ७६ ॥

संवत सोल त्रयाला वरसिइ, एह प्रबन्ध किय उ मन हरसिहि।
विक्रम नयरइ रिषभ जिणेसा, जसु समरण सवि टलइ किलेसा ॥

३ मालदेव। ये बड़गच्छीय भावदेवसूरिके शिष्य थे। साधारणतः ये 'माल' के नामसे प्रसिद्ध हैं। अपने ग्रन्थोंमें भी ये 'माल कहइ' या 'माल भणइ' इस तरह अपना उल्लेख करते हैं। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक 'भोजप्रबन्ध' और दूसरा 'पुरन्दरकुमरचउपई'। 'पुरन्दरकुमरचउपई' विक्रम संवत् १६५२ का बना हुआ है। यह ग्रंथ श्रीयुत मुनि जिनविजयजीके पास है। इसके विषयमें आप अपने पत्रमें लिखते हैं कि "यह पुरन्दर कुमर चउपई ग्रंथ हिन्दीमें है (गुजरातीमें नहीं)। इसे मैंने आज ही ठीक ठीक देखा है। रचना अच्छी और ललित है। जान पड़ता है 'माल' एक प्रसिद्ध कवि हो गया है। गुजरातीके प्रसिद्ध कवि ऋषभदासने अपने 'कुमारपाल रास' में जिन प्राचीन कवियोंका स्मरण किया है, उनमें मालका नाम भी है। वह 'माल' और कोई नहीं किन्तु 'भोजप्रबन्ध' और 'पुरंदर चउपई' का कर्ता ही होना चाहिये। पुरन्दर चउपईका आदि और अन्तिमभाग यह है:—
आदि:—

वरदाई सुत देवता, गुरु प्रसादि आधार ।
' कुमर-पुरंदर ' गाइस्यूं, शीलवंत सुविचार ॥
नरनारी जे रसिक ते, सुणियहु सब चितु लाइ ।
ठूठ न कब हि घुमाइयहिं, विना सरस तरु नार ॥
सरस कथा जइ होई तो, सुणइ सविहिं मन लाइ ।
जिहाँ सुवास होवहि कुसुम, तास मधुप तिहाँ जाइ ॥
अंत :-भावदेवसूरि गुणनिलउ, वडगछ-कमल-दिणंद ।
तासु सुसीस शिष्य (!) कहइ, मालदेव आनन्द ॥ "

ये लोग सिन्ध और पंजाबके मध्यमें रहा करते थे। ऐसा सुना गया है कि भावदेवसूरिके उपाश्रय अब भी बीकानेर राज्यके ' भटनेर ' और ' हनुमानगढ़ ' नामक स्थानोंमें हैं।

दूसरा ग्रन्थ ' भोजप्रबन्ध ' उक्त मुनि महोदयने मेरे पास भेज देनेकी कृपा की है। इसकी प्रतिमें शुरूके दो पत्र, अन्तका एक पत्र और बीचके २० से २४ तकके पृष्ठ नहीं हैं। पद्यसंख्या १८०० है। इसमें तीन सम्बन्ध या अध्याय हैं। पहलेमें भोजके पूर्वजोंका, भोजके जन्मका और वररुचि धनपालादि पण्डितोंकी उत्पत्तिका वर्णन है, दूसरेमें परकायाप्रवेश, विद्याभ्यास, देवराजपुत्र-जन्म, और मदनमंजरीका विवाह तथा तीसरेमें देवराज वच्छराज विदेशगमन और भानुमतीके समागमका वर्णन है। यद्यपि यह प्रबन्धचिन्तामणि तथा बल्लालके भोजप्रबन्ध आदिके आधारसे बनाया गया है; तथापि इसकी रचना स्वतंत्र है। ' कविरनुहरतिच्छायां ' के अनुसार उक्त ग्रन्थोंकी छाया ही ली गई है। भाषा प्रौढ है; परन्तु उसमें गुजरातीकी झलक है और अपभ्रंश शब्दोंकी अधिकता है। वह ऐसी साफ नहीं है जैसी उस समयके बनारसीदासजी आदि कवियोंकी है। कारण, कवि गुजरात और राजपूतानेकी बोलियोंसे अधिक परिचित था। वह प्रतिभाशाली जान पड़ता है। कोई कोई पद्य बड़े ही चुभते हुए हैं:—

भलउ हुयउ जइ नीसरी, अंगुलि सरिप मुहाहु ।
ओछे सेती प्रीतड़ी, जदि तुट्टइ तदि साहु ॥ ९१ ॥

सिन्धुल लौटकर जब राजा-मुंजके समीप आया, तब मुंज कपटकी हँसी हँसकर उसके गलेसे लिपट गया। इसको लक्ष्य करके कवि कहता है:—

पूरन राजा मुंज पणि, मिल्लउ उठि गलि लागि ।
को जाणइ घन दामिनी, जल महिं प्राछइ आगि ॥१२०॥
घणु वरसइ सीयल सलिल, सोई मिलि हइ विज्जु ।
गरयहँ हुयइँ जीवयइ, कटइँ विणसइ कज्ज ॥ १२१ ॥

तैलिपदेवकी लड़ाईमें हार कर राजा मुंज भागा और एक गाँवमें आया, उस समयका कविने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है:—

वननें वन छिपतउ फिरउ, गव्हर वनहँ निकुंज ।
भुखउ भोजन माँगिवा, गोवलि आयउ मुंज ॥ ४५ ॥
गोकुलि काई ग्वारिनी, ऊँची बइठी खाटि ।
सात पुत्र सातइ बहू, दहीं बिलोवहिं माटि ॥ ४८ ॥
काढ़हिं दूध कहुं केइ मिलि, मारवणु काढ़हिं केइ ।
केइ पयारहि घीउ तहँ, जिसु भावइ तिसु देइ ॥ ४९ ॥
गाइ वाछरू कटरू, महिषी आंगणि देखि ।
ग्वाजइ पीजइ विलसियइ, गरव करइ सुधिसेखि ॥ ५० ॥

जिस समय मृणालवतीके विश्वासघात करनेसे फिर मुंज पकड़ा गया और बड़ी दुर्दशाके साथ नगरमें घुमाया गया, उस समय मुंजके मुँहसे कविने कई बड़े मार्मिक दोहे कहलवाये हैं:—

---

१ सर्पके मुँहसे । २ है । ३ मिट्टीके बर्तनमें ।

खंडित घृतबिंदू मिसइँ[1], रे मडका[2] मत रोइ ।
नारी कउण न खंडिया, मुंज इलापति जोइ ॥ ७ ॥
मिखिन बख तूं वाफके, अगनि आंचि मति रोइ ।
अगिनि विना हउँ[3] दासियइँ, भसम कियउ किम जोइ ११
बालि मुसलि तूं ताडियउ, मुस कपडा लिय छीनि ।
दासि कटाच्छहिं मारियउ, कीयउ हउँ सबहीन ॥ १२ ॥

इस ग्रन्थकी यह बात नोट करने लायक है कि इसमें हिन्दीके दोहोंको 'प्राकृतभाषा दोहा' लिखा है। मालूम होता है उस समय हिन्दी उसी तरह प्राकृत कहलाती होगी जिस तरह बम्बईकी ओर इस समय मराठी 'प्राकृत' कहलाती है।

इस ग्रन्थमें बहुतसे श्लोक 'उक्तं च' कहकर लिखे गये हैं, जिनमें बहुतोंकी भाषा अपभ्रंशसे बहुत कुछ मिलती हुई है। यथाः—

दुज्जण जण बंबूलवण, जर सिंचइ अमिएण ।
तोई सु कांटा बींधणा, जातहि तणई गुणेण ॥

इसमें बहुतसे पदोंकी ढालें लिखी हुई हैं, जैसे 'मृगांकलेखा चउपईकी ढाल'। इन दोनों बातोंसे यह अनुमान होता है कि इस ग्रन्थसे पहिले पुरानी हिन्दीके अनेक ग्रन्थ रहे होंगे जिनसे उक्त 'उक्तं च' लिये गये हैं और जिनकी ढालोंका अनुकरण किया गया है। मृगांकलेखाकी कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायमें बहुत प्रसिद्ध है। अतएव 'मृगांकलेखाकी चउपई' कोई जैनग्रन्थ ही था।

४ हेमविजय। ये अच्छे विद्वान् और कवि थे। सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरिके शिष्योंमेंसे थे। इन्होंने विजयप्रशस्ति महाकाव्य और कथारत्नाकर आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की है। हिन्दीमें भी इनकी छोटी छोटी रचनायें मिलती हैं। ये आगरा और दिल्ली तरफ बहुत समय तक विचरण करते रहे थे, इस लिए इन्हें हिन्दीका परिचय होना स्वाभाविक है। इन्होंने हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरि आदिकी स्तुतिमें छोटे छोटे बहुतसे हिन्दी पद्य बनाये हैं। तीर्थंकरोंकी स्तवनाके भी कुछ पद रचे हुए मिलते हैं। नमूनेके तौर पर नेमिनाथ तीर्थंकरके स्तुतिपद्यको देखिए।

घनघोर घटा उनयी जु नई, इततैं उततैं चमकी बिजली ।
पियुरेपियुरे पपिहा बिललातिजु. मोर किंगार(?)करंति मिली
बिच बिंदु परें दृग आँसु झरें, दुनिधार अपार इसी निकली
मुनि हेमके साहिब देखनकूं, उग्रसेन लली सु अकेली चली ।
कहि राजिमती सुमती सखियानकूं, एक खिनेक खरी रहुरे ।
सखिरी सगरीअंगुरी मुही बाहि करति? बहुत?इसेनिहुरे ।
अबही तबही कबही जबही, यदुरायकूं जाय इसी कहुरे ।
मुनि हेमके साहिबनेमजी हो, अब तोरनतें तुम्ह क्यूंबहुरे ।

५ रूपचन्द। ये कविवर बनारसीदासजीके समय आगरेमें हुए हैं। बनारसीदासजीने अपने आत्मचरितमें और नाटकसमयसारमें इनका उल्लेख किया है और इन्हें बहुत बड़ा विद्वान् बतलाया है। ये जैनधर्मके अच्छे मर्मज्ञ थे। आध्यात्मिक पाण्डित्य भी इनमें अच्छा था, यह बात इनके 'परमार्थी दोहाशतक' और पदोंके देखनेसे जान पड़ती है। परमार्थी दोहाशतकको हमने पाँच छह वर्ष पहले जैनहितैषीमें प्रकाशित किया था। बड़े ही अच्छे दोहे हैं। उदाहरण :—

चेतन चित् परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै कछू न हत्थ ।
चेतनसौं परिचय नहीं, कहा भये व्रतधारि ।
माछि बिहूनैं खेतकी, वृथा बनावत वारि ॥
बिना तत्त्वपरिचय लगत, अपरभाव अभिराम ।
ताम और रस रुचत हैं, अमृत न चाख्यो जाम ॥
भ्रममैं भूल्यौ अपनपौ, खोजत किन घटमाहि ।
विसरी वस्तु न कर चढ़ै, जो देखै घर चाहि ।

---

१ मिपसे । २ मटका–मिट्टीका बर्तन । ३ मुझे ।

घट भीतर सो आपु है, तुमहिं नहीं कछु यादि ।
वस्तु मुठीमैं भूलिकै, इत उत देखत वादि ॥

प्रत्येक दोहेके पूर्वार्धमें एक बात कही गई है और उत्तरार्धमें वह उदाहरणसे पुष्ट की गई है । सबके सब दोहे इसी प्रकारके हैं । इनमें परमार्थका या आत्माका तत्व बड़ी ही सुन्दरतासे समझाया गया है ।

'गीत परमार्थी' नामका ग्रंथ भी आपका बना हुआ है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं है। हमने एक 'परमार्थ जकड़ीसंग्रह' नामकी पुस्तक छपाई है, उसमें आपके बनाये हुए छह पद संग्रहीत हैं । जान पड़ता है, ये उसी 'गीत-परमार्थी' के गीत या पद होंगे । इनमें भी परमार्थ तत्वका कथन है । एक गीतका पहिला पद सुनिए :—

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ।
अमृतवचन हितकारी, सद्गुरु तुमहि पढ़ावै ॥
सद्गुरु तुमहिं पढ़ावें चित दै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी ।
तबहू तुमहिं न क्योंहू आवै, चेतनतत्व कहानी ॥
विषयनिकी चतुराई कहिए, को सरि करै तुम्हारी ।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसे, चेतन अचरज भारी ॥

आपका एक छोटासा काव्य 'मंगलगीत-प्रबन्ध' जैनसमाजमें बहुत ही प्रचलित है । 'पंचमंगल' के नामसे यह पाँच छह बार छप चुका है । इसमें तीर्थंकर भगवानके जन्म, ज्ञान, निर्वाण आदिके समय जो उत्सवादि होते हैं उनका साम्प्रदायिक मानताओंके अनुसार वर्णन है । रचना साधारण है ।

६ रायमल्ल । ये भट्टारक अनन्तकीर्तिके शिष्य थे। इनका बनाया हुआ एक 'हनुमच्चरित्र' नामका पद्यग्रन्थ है । यह विक्रम संवत् १६१६ में बनाया गया है । यह ग्रन्थ हमें मिल नहीं सका, इसलिए इसकी रचना किस दर्जेकी है, यह हम नहीं कह सकते । हमारे एक मित्रने इसकी कविताको साधारण बतलाया है । कविवर बनारसीदासजीने जिन रायमल्लजीका उल्लेख किया है, मालूम नहीं वे येही थे अथवा इनसे भिन्न । बनारसीदासजीने लिखा है कि पाण्डे "रायमल्ल जी 'समयसार नाटक' के मर्मज्ञ थे, उन्होंने समयसारकी बालावबोधिनी भाषा टीका बनाई जिसके कारण समयसारका बोध घर घर फैल गया।" यह बालावबोध टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है । मालूम होता है यह बनारसीदासजीके बहुत पहिले बन चुकी थी । उनके समय इसका खासा प्रचार था । अवश्य ही यह पन्द्रहवीं शताब्दीकी रचना होगी और भाषाकी दृष्टिसे एक महत्वकी वस्तु होगी।

एक और रायमल्ल ब्रह्मचारी हुए हैं जिन्होंने सम्वत् १६६७ में 'भक्तामर-कथा' नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है। ये सकलचन्द्र भट्टारकके शिष्य थे और हुमड़जातिके थे। मालूम होता है भविष्यदत्तचरित्र (छन्दोबद्ध) और सीताचरित्र (छन्दोबद्ध) नामक ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुए हैं । इनमेंसे पहिला ग्रन्थ सं० १६६३ में बना है, ऐसा ज्ञानचन्द्रजीकी सूचीसे मालूम होता है ।

७ कुंवरपाल । ये बनारसीदासजीके एक मित्र थे । युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासजी अपनी शैलीका उत्तराधिकारत्व इन्हींको सौंप गये थे । प्रवचनसारकी टीकामें पाँड़े हेमराजजीने इनको अच्छा ज्ञाता बतलाया है । ये कवि भी अच्छे जान पड़ते हैं । इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है; परन्तु बनारसीदासकृत सूक्तमुक्तावलीमें इनके बनाये हुए कुछ पद्य मिलते हैं । लोभकी निंदाका एक उदाहरण :—

परम धरम वन दहै, दुरित अंबर गति धारहि ।
कुयश धूम उदगरै, भूरि भय भस्म बिथारहि ॥
दुख फुलिंग फुंकरै, तरल तृष्णा कल काढ़हि ॥
धन ईंधन आगम सँजोग दिन दिन अति बाढ़हि ॥
लहलहै लोभ-पावक प्रबल, पवन मोह उद्धत बहै ॥
दज्झहि उदारता आदि बहु, गुण पतंग 'कँवरा' कहै ५८॥

पाँड़े जिनदास—इनके बनाये हुए जम्बूचरित्र और ज्ञानसूर्योदय ये दो पद्यग्रन्थ हैं। कुछ फुटकर पद भी हैं। जम्बूचरित्र को इन्होंने संवत् १६४२ में बनाया है।

६ पाँड़े हेमराज । इनका समय सत्रहवीं शताब्दीका चतुर्थपाद और अठारहवींका प्रथम पाद है। पण्डित रूपचन्द्रजीके ये शिष्य थे। पंचास्तिकायके अन्तमें लिखा है—"यह श्रीहेमराज ने अपनी बुद्धि माफिक लिखत कीना।" इनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं—प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका और भाषा भक्तामर। प्रवचनसार टीकाको इन्होंने संवत् १७०९ में समाप्त किया था :—

सत्रह सय नव उत्तरै, माघ मास सितपाख ।
पंचमि आदितवारकौं, पूरन कीनी भाख ॥

पंचास्तिकाय टीका पीछे बनाई गई है। ये दोनों ग्रन्थ गद्यमें हैं और इनमें शुद्ध अध्यात्मका वर्णन है। जैनसमाजमें ये ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वके समझे जाते हैं। इनकी भाषा सरल और स्पष्ट है। उदाहरण—

"जो जीव मुनि हुवा चाहै है सो प्रथम ही कुटंब लोककों पूछि आपकों छुटावै है बंधु लोग निसौं इसि प्रकार कहै है—अहो इसि जनके शरीरके तुम भाइबंध हो इसि जनका आत्मा तुम्हारा नाहीं यों तुम निश्चय करि जानों।"

"ऐसैं नाहीं कि कोइ काल द्रव्य परिणाम बिना होहि जातैं परिणाम बिना द्रव्य गदहेके सींग समान है जैसैं गोरसके परिणाम दूध दही घृत तक्र इत्यादिक अनेक हैं इनि अपने परिणामनि बिना गोरस जुदा न पाइए जहाँजु परिणाम नाहीं तहाँ गोरसकी सत्ता नाहीं तैसें ही परिणाम बिना द्रव्यकी सत्ता नाहीं।"

चौथा ग्रंथ 'भाषा भक्तामर' है। यह मानतुंगसूरिके सुप्रसिद्ध स्तोत्र 'भक्तामर' का हिन्दी पद्यानुवाद है। अनुवाद सुन्दर है और इसका खूब ही प्रचार है। इससे मालूम होता है कि हेमराजजी कवि भी अच्छे थे। एक उदाहरण :—

प्रलय पवन करि उठी आगि जो तास पटंतर ।
वमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलैं निरंतर ॥
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानो ।
तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुंदिशा उठानो ॥
सो इक छिनमें उपशमै, नाम-नीर तुम लेत ।
होइ सरोवर परिनमैं, विकसित कमल समेत ॥४१॥

इस अनुवादमें एक दोष यह है कि इसके लिए जो चौपाईछन्द चुना गया है, वह मूल शार्दूलविक्रीडित छन्दोंका भाव प्रकट करनेमें कहीं कहीं असमर्थ हो गया है और इस कारण कहीं कहीं क्लिष्टता आ गई है। छप्पय और नाराच छन्दोंमें यह बात नहीं है। इन छन्दोंमें जो अनुवाद है वह सरल है।

गोम्मटसार और नयचक्रकी वचनिका (सं० १७२४) भी इनकी बनाई हुई है। 'चौरासी बोल' नामकी एक छन्दोबद्ध रचना भी इनकी है।

सत्रहवीं शताब्दीके नीचे लिखे कवियोंका उल्लेख मिश्रबन्धुविनोदमें मिलता है:—

१ उदयराज जती। इनके बनाये हुए राजनीतिसम्बन्धी फुटकर दोहे मिलते हैं। रचनाकाल १६६० के लगभग। ये बीकानेरनरेश रायसिंहके आश्रित थे जिन्होंने १६३० से १६८८ तक राज्य किया है।

२ विद्याकमल । भगवती-गीता बनाया । इसमें सरस्वतीका स्तवन है। रचनाकाल संवत् १६६९ के पूर्व ।

३ मुनिलावण्य । 'रावणमन्दोदरी संवाद' सं० १६६९ के पहले बनाया।

४ गुणसूरि । १६७६ में 'ढोलासागर' बनाया।

५ लूणसागर । सं० १६८९ में 'अंजनासुन्दरी संवाद' नामक ग्रंथ बनाया ।

अठारहवीं शताब्दी ।

१ भैया भगवतीदास । ये आगरेके रहनेवाले थे। ओसवाल जाति और कटारिया इनका गोत्र था। इनके पिताका नाम लालजी और पितामह का दशरथसाहु था। इनकी जन्म और मृत्युकी तिथि तो मालूम नहीं है; परन्तु इनकी रचनाओंमें वि० संवत् १७३१ से लेकर १७५५ तकका उल्लेख मिलता है। वि० संवत १७११ में जब पं० हीरानन्दने पंचास्तिकायका अनुवाद किया है, तब भगवतीदास नामके एक विद्वान् थे। उनका उसमें जिक्र है। शायद वे आप ही हों। 'भैया' शायद इनका उपनाम था। अपनी कवितामें इन्होंने जगह जगह यही 'छाप' रक्खी है। 'ब्रह्मविलास' नामके ग्रन्थमें जो कि छप चुका है इनकी तमाम रचनाओंकी संख्या ६७ है। कोई कोई रचनायें एक एक स्वतंत्र ग्रन्थके समान हैं। ये भी बनारसीदासजीके समान आध्यात्मिक कवि थे। प्रतिभाशाली थे। काव्यकी तमाम रीतियोंसे तथा शब्दालंकार अर्थालङ्कार आदिसे परिचित थे। बहुतसे अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका और चित्रबद्ध काव्य भी इन्होंने बनाये हैं। अनुप्रास और यमककी झंकार भी इनकी रचनामें यथेष्ट है।

मुनि रे सयाने नर कहा करै 'घर घर,'
तेरो जो सरीर घर घरी ज्यौं तरतु है ।
छिन छिन छीजै आय[1] जल जैसैं घरी जाय,
ताहूकौ इलाज कछु उर हू धरतु है ॥
आदि जे सहे हैं ते तो यादि कछु नाहिं तोहि,
आगैं कहो कहा गति काहे उछरतु है ।
घरी एक देखोख्याल घरीकी कहाँ है चाल,
घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है ॥
लाईहौं लालन बाल अमोलक, देखहुतौ तुम कैसी बनीहै ।
ऐसी कहूं तिहुंलोकमैं सुन्दर, और न नारि अनेक घनीहै ॥
याहीतैंतोहिकहूं नितचेतन, याहुकीप्रीतिजो तोसौंसनीहै ।
तेरीऔ राधेकी रीझअनंत, सोमोपै कहूं यहजात गनीहै ॥
शयन करत हैं रयनमैं, कोटी धुज अरु रङ्क ।
सुपनमैं दोउ एकसे, वरतैं सदा निशंक ॥
हूँ हूँ लोचन सब धरैं, मणि नहिं मोल कराहिं ।
सम्यकदृष्टी जौहरी, विरले इह जग माहिं ॥
सारे विभ्रम मोहके, सारे जगतमँझार ।
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार ॥

पद ।

कहा परदेशीको पतियारो; [टेक]
मनमानै तब चलै पन्थकौं, साँझ गिनै न सकारो ।
सबै कुटम्ब छाँडि इतहीं पुनि, त्यागिचलै तन प्यारो ॥
दूर दिसावर चलत आपही, कोउ न राखनहारो ।
कोऊ प्रीति करौ किन कोटिक, अंत होगयो न्यारो ॥२॥
धनसौं राचि धरमसौं भूलत, झूलत मोह मँझारो ।
इहिविधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भवपारो ॥३
साँचे सुखसौं विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो ।
चेतहु चेत सुनहु रे 'भैया,' आप ही आप सँभारो ॥ ४ ॥

आपकी सारी रचना धार्मिक भावोंसे भरी हुई हैं। शृंगाररससे आपको प्रेम नहीं था। इसी कारण आपने कविवर केशवदासकी 'रसिकप्रिया' को पढ़कर उन्हें उलहना दिया है:

बड़ी नीत लघु नीत करत है, बाय सरत बदबोय भरी
फोड़ा आदि फुनगनी मण्डित सकल देह मनो रोग-दरी ॥
शोणित-हाड़-मांसमय मूरत, तापर रीझत घरी घरी ।
ऐसीनारि निरखकरि केशव, 'रसिकप्रिया' तुमकहाकरी ॥

[1] आयु ।

इस ग्रन्थकी बहुतसी रचनायें साम्प्रदायिक हैं जिनका आनन्द जैनेतर सज्जनोंको नहीं आसकता; परन्तु बहुतसी रचनायें ऐसी भी हैं जिनके स्वादका अनुभव सभीको होसकता है। कोई कोई रचना बहुत ही हृदयग्राहिणी है। भगवतीदासजी इस शताब्दिके नामी कवियोंमें गिने जाने योग्य हैं।

२ भूधरदास। आप भी आगरेके रहनेवाले थे। जातिके आप खण्डेलवाल थे। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें आप विद्यमान थे। आपके विषयमें इससे अधिक कुछ ज्ञात नहीं हुआ। आपके बनाये हुए तीन ग्रंथ हैं:—१ जैनशतक, २ पार्श्वपुराण और ३ पदसंग्रह। ये तीनों ही छप चुके हैं। जैनशतकमें १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। प्रत्येक पद्य अपने अपने विषयको कहनेवाला है। इसे एक प्रकारका 'सुभाषित-संग्रह' कहना चाहिए। इसका प्रचार भी बहुत है। हजारों आदमी ऐसे हैं जिन्हें यह कण्ठाग्र हो रहा है। कुछ उदाहरण:—

बालपने न सँभारसक्यौ कछु, जानतनाहिं हिताहितहीको।
यौवनवैसवसी वनिता उर, कै नित राग रह्यौ लछमीको।
यौं पन दोइ बिगोइ दये नर, डारतक्यौं नरकैनिजजीको।
आये हैं 'सेत' अजौं सठचेत, गईसुगई अब राख रहीको॥

काननमैं बसै ऐसो आन न गरीब जीव,
प्रानसौं प्यारो प्रान पूंजी जिस यहै है।
कायर सुभाव धरै काहूसौं न द्रोह करै,
सबहीसौं डरै दाँत लियैं 'तिन' रहै है।
काहूसौं न रोष पुनि काहूपै न पोष चहै,
काहूके परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेकु स्वाद सारिवेकौं ऐसे मृग मारिवेकौं,
हा हा रे कठोर! तेरो कैसे कर बहै है॥ ५५॥

यह विक्रम संवत् १७८१ में बनकर समाप्त हुआ है। दूसरा ग्रन्थ पार्श्वपुराण संवत् १७८९ में समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थकी जैनसमाजमें बड़ी प्रतिष्ठा है। हिन्दीके जैनसाहित्यमें यही एक चरित्रग्रन्थ है जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है और जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है। यों तो सैकड़ों ही चरितग्रंथ पद्यमें बनाये गये हैं, परन्तु उन्हें प्रायः तुकबन्दीके सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। यह ग्रन्थ स्वतंत्र है, किसी खास ग्रन्थका अनुवाद नहीं है। मूलकथानक पुराने ग्रन्थोंसे ले लिया गया है; पर प्रबन्धरचना कविने स्वयं की है। इसमें तत्त्वोंका और स्वर्ग, नरक, लोक गुणस्थान, आदिका जो विस्तृत वर्णन है, वह काव्यदृष्टिसे अच्छा नहीं मालूम होता है, मामूलीसे बहुत अधिक हो गया है, पर फिर भी रचनामें सौन्दर्य तथा प्रसाद गुण हैं। थोड़ेसे पद्य देखिये :-

उपजै एकहि गर्भसौं, सज्जन दुर्जन येह।
लोह कवच रक्षा करै, खांड़ो खंडै देह॥

पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार।
ताअम्बुजमैं मूढ़ अलि, उरझि मरै अविचार॥

पोषत तो दुख दोष करै सब, सोखत सुख उपजावै।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै॥

राचन जोग स्वरूप न याको, विरचनजोग सही है।
यह तन पाय महा तप कीजै, यामैं सार यही है॥

यथा हंसके वंसकौं, चाल न सिखवै कोइ।
त्यौं कुलीन नरनारिकै, सहज नमन गुण होइ॥

जन-जननी रोमांच तन, जगी सुगन्ध मन जान।
किधौं मकरंदक कमलनी, विकसी निसि-अवसान॥

पहरे सुभ आभरन तन, सुन्दर वसन सुरंग।
कल्पवेल जंगम किधौं, चली सखीजन संग॥

रागादिक जलसौं भरयो, तन तलाब बहु भाय।
पारस-रवि दरसन सुखै, अघ सारस उड़ जाय॥

सुलभ काज गरुवोगनै, अलप बुद्धिकी रीत।
ज्यौं कीड़ी कन ले चले, किधौं चली गढ़ जीत॥

तीसरा ग्रन्थ "पदसंग्रह" है। इसमें सब मिलाकर ८० पद और विनती आदि हैं। नमूनेके तौर पर एक पद सुन लीजिए :-

राग कालिंगड़ा ।

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना ॥ टेक ॥
पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना ।
छीदी हुई पांखड़ी पसली, फिरै नहीं मनमाना ॥ १ ॥
रसना तकलीने बल खाया, सो अब कैसे खूँटै ।
सबद सूत सुधा नहिं निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै ॥ २ ॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे ।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ई हारे ॥ ३ ॥
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै ।
पलटा बरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै ॥ ४ ॥
मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरझेरा ।
अंत आगमें ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सबेरा ॥ ५ ॥

३ द्यानतराय। ये आगरेके रहनेवाले थे। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र गोयल था। पिताका नाम श्यामदास और दादाका वीरदास था। इनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ था। उस समय आगरेमें मानसिंह जौहरीकी "सैली" थी। उसके उद्योगसे वहाँ जैनधर्मकी अच्छी चर्चा रहती थी। मानसिंह और विहारीदासको द्यानतरायने अपना गुरु माना है। क्योंकि इन्हींके सहवाससे और उपदेशसे इन्हें संवत् १७४६ में जैनधर्मपर विश्वास हुआ था पीछे ये दिल्लीमें जाकर रहने लगे थे। दिल्लीमें जब ये पहुँचे तब वहाँ सुखानन्दजीकी सैली थी। इनका बनाया हुआ एक 'धर्मविलास' नामका ग्रन्थ है, जो कुछ आगरेमें और कुछ दिल्लीमें रहकर बनाया गया है। १७८० में इसकी समाप्ति हुई है। इसे द्यानतविलास भी कहते हैं। कुछ अंशको छोड़कर यह छप चुका है। इसमें द्यानतरायजीकी तमाम रचनाओंका संग्रह है। संग्रह बहुत बड़ा है। अकेले पदोंकी संख्या ही ३३३ है। इन पदोंके सिवाय और पूजाओंके सिवाय ४५ विषय और हैं जो धर्मविलासके नामसे छपे हैं। इसके देखनेसे मालूम होता है कि द्यानतरायजी अच्छे कवि थे। कठिन विषयोंको सरलतासे समझाना इन्हें खूब आता था। ग्रन्थके अन्तमें आपने कितने अच्छे ढंगसे कहा है कि इस ग्रन्थमें हमारा कर्तृत्व कुछ नहीं है :-

अच्छरसेती तुक भई, तुकसौं हूए छंद ।
छंदनिसौं आगम भयौ, आगम अरथ सुछंद ॥
आगम अरथ सुछंद, हमौंनैं यह नहिं कीना ।
गंगाका जल लेइ, अरघ गंगाकौं दीना ॥
सबद अनादि अनंत, ग्यान कारन विनमच्छर ।
मैं सब सेती भिन्न, ग्यानमय चेतन अच्छर ॥

ग्रन्थमें कविने एक विस्तृत प्रशस्ति दी है जिसमें उस समयकी अनेक जानने योग्य बातोंका उल्लेख किया है। आगरेका वर्णन कवि इस भाँति करता है :-

इतै कोट उतै बाग जमना वहै है बीच,
पच्छिमसौं पूरव लौं असीम प्रवाहसौं ।
अरमनी कसमीरी गुजराती मारवारी
नदी सेती जामैं बहु देस बसै चाहसौं ॥
रूपचंद बानारसी चंदजी भगौतीदास,
जहाँ भले भले कवि द्यानत उछाहसौं ।
ऐसे आगरेकी हम कौन भाँति सोभा कहैं,
बड़ो धर्मथानक है देखिए निगाहसौं ॥ ३० ॥

संसारके दुःखोंको देखकर कविके हृदयमें यह भावना उठती है :—

सरसों समान सुख नहीं कहूं गृह माहिं,
दुःख तौ अपार मन कहाँ लौं बताइए ।
तात मात सुत नारि स्वारथके सगे भ्रात,
देह तौ चलै न साथ और कौन गाइए ॥
नर भौ सफल कीजै और स्वादछांड़ि दीजै,
क्रोध मान माया लोभ चित्तमैं न लाइए ।

ज्ञानके प्रकासनकौं सिद्धथानवासनकौं,
जीमैं ऐसी आवै है कि जोगी होइ जाइए ॥ ७८ ॥

४ जगजीवन और ५ हीरानन्द । आगरेमें जिस समय बादशाह जहाँगीरका राज्य था, संगही अभयराज अग्रवाल बड़े भारी और सुप्रसिद्ध धनी थे । उनकी अनेक स्त्रियोंमें 'माहनदे' लक्ष्मीस्वरूपा थीं । जगजीवनका जन्म उन्हींकी कुक्षिसे हुआ था । जगजीवन भी अपने पिताहीके समान प्रसिद्ध पुरुष हुए । "समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ, ज्ञानिनकी मण्डलीमें जिसकौ विकास है ।" वे जाफरखाँ नामक किसी उमरावके मंत्री हो गये थे जैसा कि पंचास्तिकायमें लिखा है :-

ताकौ पूत भयौ जगनामी, जगजीवन जिनमारगगामी ।
जाफरखाँके काज समारै, भया दिवान उजागर सारै ॥५॥

जगजीवनजीको साहित्यका अच्छा प्रेम था । आपकी प्रेरणासे हिन्दीमें कई जैनग्रन्थोंकी रचना हुई है । आप स्वयं भी कवि और विद्वान थे । बनारसीदासजीकी तमाम कविताका संग्रह बनारसीविलासके नामसे आपहीने विक्रम संवत् १७०१ में किया है । बनारसीके नाटक समयसारकी आपने एक अच्छी टीका भी लिखी है, जो हमारे देखनेमें नहीं आई, पर उसके आधारसे जो गुजराती टीका लिखी गई है और भीमसी माणकके प्रकरणरत्नाकरमें प्रकाशित हुई है उसे हमने देखा है ।

जगजीवनके समयमें भगवतीदास, धनमल, मुरारि, हीरानन्द आदि अनेक विद्वान थे । हीरानन्दजी शाहजहानाबादमें रहते थे । जगजीवनजीने उनसे पंचास्तिकाय समयसारका पद्यानुवाद करनेकी प्रेरणा की और तब उन्होंने संवत् १७११ में इस ग्रन्थको रचकर तैयार कर दिया । उन्होंने इसे केवल दो महीनेमें बनाया था । यह ग्रन्थ छप चुका है; गतवर्ष जैनमित्रके उपाहारमें दिया गया था । इसमें शुद्ध निश्चयनयसे जैनदर्शनमें मानी हुई (कालद्रव्यको छोड़कर शेष) पाँच द्रव्योंका स्वरूपनिरूपण है । तात्विक ग्रन्थ है । कविता बनारसी, भगवतीदास आदिके समान तो नहीं है, पर बुरी भी नहीं है । उदाहरण :—

सुखदुख दीसै भोगता, सुखदुखरूप न जीव ।
सुखदुख जाननहार है, ग्यान सुधारसपीव ॥ ३२१ ॥
संसारी संसारमैं, करनी करै असार ।
सार रूप जानै नहीं, मिथ्यापनकौं टार ॥ ३२४ ॥

पं० हीरानन्दजीने इसके सिवाय और कोई ग्रंथ बनाया या नहीं, यह मालूम नहीं हो सका ।

६ आनन्दघन । श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ये एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं । उपाध्याय यशोविजयजीसे, सुनते हैं इनका एक बार साक्षात् हुआ था । यशोविजयजीने आनन्दघनजीकी स्तुतिरूप एक अष्टक बनाया है, अतः इन्हें यशोविजयजीके समसामयिक ही समझना चाहिए । ये पहुँचे हुए महात्मा और आध्यात्मिक कवि थे । आपकी केवल दो रचना उपलब्ध हैं एक स्तवनावली जो गुजराती भाषामें है और जिसमें २४ स्तोत्र हैं और दूसरी 'आनन्दघन बहत्तरी' जिसमें ७२ पद* हैं और हिन्दीमें है । आनन्दघनजीके निवासस्थान

*रायचन्द्र काव्यमालामें जो 'आनन्दघन बहत्तरी' छपी है उसमें १०७ पद्य हैं । जान पड़ता है, इसमें बहुतसे पद औरोंके मिला दिये गये हैं । थोड़े से परिश्रम करनेसे हमें मालूम हुआ कि इसका [illegible] पद 'अब हम अमर भये न मरेंगे' और [illegible] 'तुम ज्ञान-विभौ फूली बसन्त' ये दोनों द्यानतरायजीके हैं । इसी तरह जाँच करनेसे औरोंका भी पता चल सकता है ।

आदिका कुछ भी पता नहीं है; परन्तु उनके विषयमें गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक मनसुखलाल रवजीभाई मेहताने एक ४०-४२ पृष्ठका निबन्ध लिखा है और उक्त दोनों ग्रन्थोंकी भाषा पर विचार करके 'भाषाविवेकशास्त्रकी दृष्टिसे अनुमान किया है कि अमुक अमुक प्रान्तोंमें उन्होंने भ्रमण किया होगा और वे रहनेवाले अमुक प्रान्तके होंगे । आनन्दघन बहत्तरीकी प्रसिद्धि गुजरातमें बहुत है । उसके कई संस्करण छप चुके हैं । गुजरातियों द्वारा प्रकाशित होनेसे यद्यपि उसमें गुजरातीपन आगया है, तथापि भाषा उसकी शुद्ध हिन्दी है । उसकी रचना कबीर सुन्दरदास आदिके ढंगकी है और बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी है । आनन्दघनजीकी मतमतान्तरोंके प्रति समदृष्टि थी । इनकी रचना भरमें खण्डन मण्डनके भाव नहीं हैं । उदाहरण,—

जग आशा जंजीरकी, गति उलटी कछु ओर ।
अकर्यो धावत जगतमें, रहै छुटो इक ठोर ॥
आतम अनुभव फूलकी, कोउ नवेली रीत ।
नाक न पकरै वासना, कान गहै न प्रतीत ॥

राग सारंग ।

मेरे घट ज्ञान भान भयो भोर ॥ टेक ॥
चेतन चकवा चेतन [illegible], भागो विरहको सोर ॥ १ ॥
फैली चहुं दिशि [illegible] रुचि, मिट्यो भरम-तम-जोर ।
आपकी चोरि आप [illegible] नत, औरै चाहत न चोर ॥२॥
अमल कमल [illegible] भूतल, मन्द विषय शशिकोर ।
'आनँदघन' इक [illegible] लागत, औरन लाख किरोर ॥३॥

७ यशो[illegible] । [illegible] श्वेताम्बर सम्प्रदायके बहुत ही [illegible] हुए हैं । इनका जन्म सं० १६८० के [illegible] हुआ था और देहान्त सं० १७४५ में [illegible]के डभोई नगरमें हुआ । ये नयविजयजीके शिष्य थे । संस्कृत, प्राकृत गुजराती और हिन्दी इन चारों भाषाओंके आप कवि थे । आपका एक जीवनचरित अँगरेजीमें प्रकाशित हुआ है । उससे मालूम होता है कि संस्कृतमें आपने छोटे बड़े सब मिलाकर *लगभग ५०० ग्रंथ बनाये हैं और उनमेंसे अधि*कांश उपलब्ध हैं । न्याय, अध्यात्म आदि अनेक विषयोंपर आपका अधिकार था । यद्यपि आप गुजराती थे, पर विद्याभ्यासके निमित्त कितने ही वर्ष काशीमें रहे थे, इस कारण हिन्दीमें भी व्युत्पन्न हो गये थे । 'सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह' नामके मुद्रित संग्रहमें आपके हिन्दी पदोंका संग्रह 'जसविलास' नामसे छपा है । इसमें आपके ७५ पदोंका संग्रह है । इसी संग्रहमें आपके आठ पद 'आनन्दघन अष्टपदी' के नामसे जुदा छपे हैं जो आपने महात्मा आनन्दघनजीके स्तवनस्वरूप बनाये थे । इन सब पदोंके देखनेसे मालूम होता है कि यशोविजयजी हिन्दीके भी अच्छे कवि थे । आपकी इस रचनामें गुजरातीकी झलक बहुत ही कम-प्रायः नहींके बराबर-है । परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि उक्त संग्रह छपानेवालोंने हिन्दीकी बहुत ही दुर्दशा कर डाली है । अच्छा हो यदि कोई श्वेताम्बर सज्जन इस संग्रहको शुद्धतापूर्वक स्वतंत्ररूपसे छपा दें । आपकी हिन्दी कवितामें अध्यात्मिक भावोंकी विशेषता है ।

हम मगन भये प्रभु ध्यानमें । बिसर गई दुबिधा तनमनकी,
अचिरा-सुत-गुनगानमें ॥ हम मगन० ॥ १ ॥
हरि हर ब्रह्म पुरन्दरकी रिधि, आवत नहिं कोउ मानमें ।
चिदानन्दकी मौज मची है, समतारसके पानमें ॥हम०२॥
इतने दिन तू नाहिं पिछान्यौ, जन्म गँवायौ अजानमें ।
अब तो अधिकारी ह्वै बैठे, प्रभुगुन अखय खजानमें ॥३॥
गई दीनता सभी हमारी, प्रभु तुझ समकित-दानमें ।
प्रभुगुन अनुभवके रसआगे, आवत नहिं कोउ ध्यानमें ४॥

जिनही पाया तिन हि छिपाया, न कहै कोऊ कानमैं ।
ताली लगी जबहि अनुभवकी, तब जानै कोउ सानमैं ॥५॥
प्रभुगुन अनुभव चन्द्रहास ज्यौं, सो तो रहै न म्यानमैं ।
वाचक 'जस' कहै मोह महा हरि, जीत लियो मैदानमैं ६

आपका बनाया हुआ 'दिग्पट चौरासी बोल' छप गया है। यह भी हिन्दी-पद्यमें है। पाँडे हेमराजजीका बनाया हुआ एक 'सितपट चौरासी बोल' नामका खण्ड ग्रन्थ है, जिसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो चौरासी बातें दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध मानी गई हैं उनका खण्डन है। 'दिग्पट चौरासी बोल' उसीके उत्तरस्वरूप लिखा गया है। संभव है कि इनकी हिन्दीरचना और भी हो, पर हम उससे परिचित नहीं हैं।

८ विनयविजय। ये भी श्वेताम्बरसम्प्रदायके विद्वान् थे और यशोविजयजीके ही समयमें हुए हैं। सुनते हैं इन्होंने यशोविजयके ही साथ रह कर काशीमें विद्याध्ययन किया था। उपाध्याय कीर्तिविजयके ये शिष्य थे और संवत् १७३६ तक मौजूद थे। ये भी संस्कृतके अच्छे विद्वान और ग्रन्थकर्ता थे। इनके बनाये हुए अनेक ग्रंथ हैं और वे प्रायः उपलब्ध हैं। इनका 'नयकर्णिका' नामका न्यायग्रन्थ अँगरेजी टीका सहित छप गया है। काशीमें रहनेके कारण हिन्दीकी योग्यता भी आपमें अच्छी हो गई थी। जिस संग्रहमें यशोविजयजीके पद छपे हैं उसीमें आपके पद भी 'विनयविलास' के नामसे छपे हैं। पदोंकी संख्या ३७ है अच्छी रचना है। एक पद देखिए:—

घोरा झूटा है रे, मत भूले असवारा। तोहि मुधा ये लागत प्यारा, अंत होयगा न्यारा ॥ घो० ॥

चरै चीज अरु डरै कैदसौं, ऊवट चले अटारा।
जीन कसै तब सोया चाहै, खानेकौं होशियारा ॥२॥

खूब खजाना खरच खिलाओ, द्यो सब न्यामत चारा।
असवारीका अवसर आवै, गलिया होय गँवारा ॥ ३ ॥

छिनु ताता छिनु प्यासा होवै, खिजमत करावन हारा (?)।
दौर दूर जंगलमें डारै, झूरै धनी विचारा ॥ ४ ॥

करहु चौकड़ा चातुर चौकस, द्यो चाबुक दो चारा।
इस घोरेकौं 'विनय' सिखावो, ज्यौं पावो भवपारा ॥५॥

९ बुलाकीदास। लाला बुलाकीदासका जन्म आगरेमें हुआ था। आप गोयलगोत्री अग्रवाल थे। आपका व्यंक 'कसावर' था। आपके पूर्वपुरुष बयाने (भरतपुर) में रहते थे। साहु-अमरसी-प्रेमचन्द-श्रमणदास-नन्दलाल और बुलाकीदास यह इनकी वंशपरम्परा है। श्रमणदास अपना निवासस्थान छोड़कर आगरेमें आ रहे थे। आपके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पण्डित हेमराजजीने (प्रवचनसार-पंचास्तिकाय-टीकाके कर्त्ताने) अपनी कन्या ब्याह दी। उसका नाम 'जैनी' था। हेमराजजीने इस लड़कीको बहुत ही बुद्धिमती और व्युत्पन्न की थी। बुलाकीदासजी इसीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये अपनी माताकी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं:—

हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरो, सब पूजै जिस पाइ ॥
उपजी ताकै देहजा, 'जैनी' नाम विख्यात।
सीलरूप गुन आगरी, प्रीतिनीतिकी पाँति
दीनी विद्या जनककैं, कीनी अति व्युत्पन्न।
पंडित जापै सीख लैं, धरनीतलमैं धन्न ॥

सुगुनकी खानि कीधौं सुकृतकी बानि सुभ,
कीरतिकी दानि अपकीरति-कृपानि है।
स्वारथविधानि परस्वारथकी राजधानि,
रमाहूकी रानि कीधौं जैनी जिनवानि है ॥
धरमधरनि भव भरम हरनि कीधौं,
असरन-सरनि कीधौं जननि-जहानि है।
हेमसौं...पन सीलसागर...भनि,
दुरितदरनि सुरसरिता समानि है ॥

बुलाकीदासजी पीछे अपनी माताके सहित दिल्लीमें आ रहे थे। पाण्डवपुराण या 'भारत भाषा' की रचना आपने दिल्लीमें ही रहकर की थी। इनकी माता 'जैनी' या 'जैनुलदे' ने जब शुभचन्द्र भट्टारकका बनाया हुआ संस्कृत पाण्डवपुराण पढ़ा, तब वह उन्हें बहुत पसन्द आया, इसलिए उन्होंने पुत्रसे कहाः—

ताकौ अर्थ विचारकै, भारत भाषा नाम ।
कथा पांडुसुत पंचकी, कीजै बहु अभिराम ॥
सुगम अर्थ श्रावक सबै, भनैं भनावैं जाहि ।
ऐसो रचिकै प्रथम ही, मोहि सुनावौ ताहि ॥

इस आज्ञाको मस्तक पर चढ़ाकर बुलाकीदासजीने इस ग्रंथकी रचना की है। इसीलिए इस ग्रंथके प्रत्येक सर्गमें 'श्रीमन्महाशीलाभरणभूषितायां जैनीनामाङ्कितायां भारतभाषायां' इस प्रकार लिखकर उन्होंने अपनी माताकी स्मृति रक्षा की है। ग्रन्थके अन्तमें भी कविने अपनी माताके प्रति बहुत भक्ति प्रकट की है। ग्रन्थकी श्लोकसंख्या ५५०० है। रचना मध्यम श्रेणीकी है, पर कहीं कहीं बहुत अच्छी है। कविमें प्रतिभा है, पर वह मूलग्रन्थकी कैदके कारण विकसित नहीं होने पाई। मूलग्रन्थकी ही रचना बढ़िया नहीं है। यह ग्रन्थ संवत् १७५४ में समाप्त हुआ है।

१० किसनसिंह। ये सांगानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल थे। इनका गोत्र पाटणी था। 'संघी' पद था। कल्याणसिंगईके सुखदेव और आनन्दसिंह दो बेटे थे। सुखदेवके थान, माल और किशनसिंह ये तीन बेटे हुए। किशनसिंहजीने संवत् १७८४ में क्रियाकोश नामका छन्दोबद्ध ग्रंथ बनाया, जिसकी श्लोकसंख्या २९०० है। रचना स्वतंत्र है; पर कविताकी दृष्टिसे बिलकुल साधारण है। इस ग्रन्थका प्रचार बहुत है। भद्रबाहुचरित्र (सं० १७८५) और रात्रिभोजनकथा (सं० १७७३) ये दो छन्दोबद्ध ग्रन्थ भी आपहीके बनाये हुए हैं।

११ शिरोमणिदास। ये पण्डित गंगादासके शिष्य थे। इन्होंने भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे, सिहरोन नगरमें रहकर, जहाँ राजा देवीसिंह राज्य करते थे, सं० १७३२ में, दोहा-चौपाईबद्ध 'धर्मसार' नामके ग्रंथकी रचना की। इसमें ७६३ दोहा चौपाई हैं। रचना स्वतंत्र है। किसी ग्रन्थका अनुवाद नहीं है। कविता साधारण है।

१२ रायचन्द। इनका बनाया हुआ 'सीताचरित' नामका छन्दोबद्ध ग्रंथ है जिसकी श्लोकसंख्या ३३०० है। रविषेणके पद्मपुराणके आधारसे यह बनाया गया है। बननेका समय संवत् १७१३ है। कवितामें कवि अपना नाम 'चन्द्र' लिखता है। कविता साधारण है।

१३ मनोहरलाल। इन्होंने संवत् १७०५ में धर्मपरीक्षा नामका ग्रंथ बनाया है। यह आचार्य अमितगतिके इसी नामके संस्कृत ग्रन्थका पद्यानुवाद है। कवि अपना परिचय इस प्रकार देता है:—

कविता मनोहर खंडेलवाल सोनी जाति,
मूलसंघी मूल जाको सांगानेर वास है।
कर्मके उदयतैं धामपुर मैं वसन भयौ,
सबसौं मिलाप पुनि सज्जनकौ दास है॥
व्याकरण छंद अलंकार कछु पढ़्यौ नाहिं,
भाषामें निपुन तुच्छ बुद्धिकौ प्रकास है।
बाईं दाहिनी कछु समझै संतोष लीयैं,
जिनकी दुहाई जाकै जिनहीकी आस है॥

कविता साधारण है। कोई कोई पद्य बहुत चुभता हुआ है।

१४ जोधराज गोदीका। इनका बनाया हुआ "सम्यक्त्वकौमुदी" नामका ग्रन्थ है

उसके अन्तमें इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

अमर पूत जिनवर भगत, जोधराज कवि नाम ।
बासी सांगानेरको, करी कथा सुखधाम ॥
संवत सत्राहै चौदेत्त, फागुन वदि तेरस सुभदीस ।
सुकरवार संपूरन भई, यह कथा समकित गुन ठई ॥

इसकी रचना संस्कृत 'सम्यक्त्वकौमदी' के आधारसे की गई है । इसमें सब मिलाकर ११६८ दोहा चौपाई हैं । कविता साधारण है । इनके बनायेहुए और छह ग्रन्थोंका उल्लेख बाबू ज्ञानचन्द्रजीने अपनी ग्रन्थसूचीमें किया है । प्रीतंकरचरित्र (सं० १७२१), धर्मसरोवर, कथाकोश (१७२२), प्रवचनसार (१७२६); भावदीपिका वचनिका और ज्ञानसमुद्र । इनमेंसे भावदीपिकाको छोड़कर सब पद्य हैं ।

१५ खुसालचन्द काला । ये सांगानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल थे । रचनामें तो कोई सत्त्व नहीं है, पर इन्होंने बड़े बड़े ग्रन्थोंका पद्यानुवाद कर डाला है । इनकी तमाम रचनाकी श्लोकसंख्या ५०-६० हजारसे कम न होगी । इन्होंने हरिवंशपुराण संवत् १७८० में, पद्मपुराण १७८३ में और उत्तरपुराण १७९९ में बनाया है । धन्यकुमारचरित्र, व्रतकथाकोश, जम्बूचरित्र और चौबीसी पूजापाठ भी इन्हींके बनाये हुए हैं । बम्बईके मंदिरमें खुशालचन्द्रजीका बनाया हुआ एक यशोधरचरित्र है, जो संवत् १७८१ में बना है । मालूम नहीं, इसके कर्त्ता खुशालचन्द हरिवंश आदिके कर्त्तासे भिन्न हैं या वे ही हैं । इन्होंने अपनेको सुन्दरका पुत्र लिखा है और दिल्ली शहरके जयसिंहपुरामें रहकर ग्रंथ बनाया है । छन्दोबद्ध सद्भाषितावली भी इन दोमेंसे किसी एककी बनाई हुई है जो संवत् १७७३ में बनी है ।

१६ रूपचन्द । ये पाँड़े रूपचन्द्रजीसे भिन्न हैं । इनकी बनाई हुई बनारसीकृत नाटकसमयसारकी टीका हमने एक सज्जनके पास देखी थी । बड़ी सुन्दर और विशद टीका है । सं० १७९८ में बनी है । उसमें ग्रन्थकर्त्ताका परिचय भी दिया गया है, पर वह अब हमें स्मरण नहीं है ।

१७ नेणसी मूता । ये ओसवाल जातिके श्वेताम्बर जैन थे । जोधपुरके महाराजा बड़े जसवन्तजीके दीवान थे । मारवाड़ी भाषामें राजस्थानका एक इतिहास लिखकर-जिसे 'मूता नेणसीकी ख्यात' कहते हैं-ये अपना नाम अजर अमर कर गये हैं । सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुन्शी देवी प्रसादजीने इस ग्रन्थकी बड़ी प्रशंसा की है और इसे एक अपूर्व और प्रामाणिक इतिहास बतलाया है । यह संवत् १७१६ से १७२२ तक लिखा गया है । ऐसी सैंकड़ों बातोंका इसमें उल्लेख है जिसका कर्नल टाडके राजस्थानमें तथा दूसरे ग्रन्थोंमे पता भी नहीं है । इसमें राजपूतोंकी ३१ जातियोंका इतिहास दिया है । इसके पहले भागमें पहले तो एक एक परगनेका इतिहास लिखा है । उसमें यह दिखाया है; कि परगनेका वैसा नाम क्यों हुआ, उसमें कौन कौन राजा हुए, उन्होंने क्या क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुरके अधिकारमें आया । फिर प्रत्येक गाँवका थोड़ा थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है, फसल कौन कौन धान्योंकी होती है, खेती किस किस जातिके लोग करते हैं, जागीरदार कौन है, गाँव कितनी जमाका है, पाँच वर्षोंमें कितना कितना रुपया बढ़ा है, तालाब नाले और नालियाँ कितनी हैं, उनके इर्द-गिर्द किस प्रकारके वृक्ष हैं । इत्यादि । यह भाग कोई चार पाँचसौ पत्रोंका है । इसमें जोधपुरके राजाओंका इतिहास राव सियाजीसे महाराजा बड़े जसवन्तसिंहजीके समयतकका है ।

दूसरे भागमें अनेक राजपूत राजाओंके इतिहास हैं। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि कोई जैन धनिक इसे प्रकाशित करा देवे, तो बड़ा लाभ हो। मूता नेणसी इस ग्रन्थको लिखकर जैनसमाजके विद्वानोंका एक कलंक धो गये हैं कि ये देशके सार्वजनिक कार्योंसे उपेक्षा रखते हैं।

१८ दौलतराम। ये बसवाके रहनेवाले थे और जयपुरमें आ रहे थे। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। ये राज्यके किसी बड़े पद पर थे। हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें लिखा है:—

सेवक नरपतिको सही, नाम सु दौलतराम।
तानैं यह भाषा करी, जपकर जिनवर नाम ॥ २५॥

संवत् १७९५ में जब इन्होंने क्रियाकोश लिखा था, तब ये किसी राजाके मंत्री थे जिसका संक्षिप्त नाम 'जयसुत' (जयसिंहके पुत्र) लिखा है। उस समय ये उदयपुरमें थे:

सम्वत सत्रासै पिच्यासिव, भादवसुदि बारस तिथिजानव।
मङ्गलवार उदैपुरमाहीं, पूरन कीनी संसै नाहीं ॥
आनँदसुत जयसुतको मन्त्री, जयको अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनि-दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥

हरिवंशपुराणकी रचनाके समय जयपुरमें रतनचन्द्रजी दीवान थे, ऐसा उक्त पुराणमें उल्लेख है। उसमें यह भी लिखा है कि इस राज्यके मंत्री अकसर जैनी होते हैं। रायमल्ल नामक एक धर्मात्मा सज्जन जयपुरमें थे। उनकी प्रेरणासे दौलतरामजीने आदिपुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराणकी वचनिकायें या गद्यानुवाद लिखे हैं। हरिवंशपुराणकी वचनिकाके लिए तो उन्होंने मालवेसे पत्र लिखकर प्रेरणा की थी। वे मालवेको किसी कार्यके लिये गये थे। वहाँ भाषा पद्मपुराण और आदिपुराणसे लोगोंका बहुत उपकार हो रहा था, यह देख उन्होंने हरिवंशपुराणकी भी वचनिका बनाईजानेकी आवश्यकता समझी। इससे उनका भाषाप्रेम प्रकट होता है। सचमुच ही जैनसमाजको इन ग्रंथोंका भाषानुवाद हो जानेसे बहुत ही लाभ हुआ है। जैनधर्मकी रक्षा होनेमें इन ग्रन्थोंसे बहुत सहायता मिली है। ये ग्रन्थ बहुत बड़े बड़े हैं। हरिवंशपुराणकी वचनिका १९ हजार श्लोकोंमें और पद्मपुराणकी लगभग २० हजार श्लोकोंमें हुई है। आदिपुराण इससे भी बड़ा है। वचनिका बहुत सरल है। केवल हिन्दीभाषाभाषी प्रान्तोंमें ही नहीं, गुजरात और दक्षिणमें भी ये ग्रन्थ पढ़े और समझे जाते हैं। इनकी भाषामें ढूंढारीपन है, तो भी वह समझ ली जाती है।

हरिवंशकी रचना संवत् १८२९ में, आदिपुराणकी १८२४ में और पद्मपुराणकी १८२३ में हुई है। योगीन्द्रदेवकृत परमात्म-प्रकाशकी और श्रीपालचरित्रकी वचनिका भी आपकी ही बनाई हुई है। पं० टोडरमल्लजी पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी भाषाटीका अधूरी छोड़ गये थे। वह भी दौलतरामजीने पूरी की है। पुण्यास्रवकी वचनिका सं० १७७७ में बनी है। मालूम नहीं वह इन्हींकी है या किसी अन्य दौलतरामकी।

१९ खड्गसेन (आगरानिवासी)। त्रिलोकदर्पण छन्दोबद्ध (चि०सं१७१३)।

२० जगतराय। आगमविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, और पद्मनंदिपच्चीसी (सं० १७२१)। सब छन्दोबद्ध।

२१ जिनहर्ष (पाटननिवासी)। श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्ध (१७२४)।

२२ देवीसिंह (नरवरनिवासी)। उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला छन्दोबद्ध (संवत् १७६६)।

२३ जीवराज। (बड़नगरनिवासी) परमात्मप्रकाश वचनिका (सं० १७६२)।

२४ ताराचन्द। ज्ञानार्णव छन्दोबद्ध। (सं० १७२८)।

२५ विश्वभूषणभट्टारक। जिनदत्तचरित्र छन्दोबद्ध (सं० १७३८)।

मिश्रबन्धुविनोदमें इस शताब्दीके नीचे लिखे कवियोंका भी उल्लेख किया है:—

१ हरखचन्द साधु। श्रीपालचरित्र। रचनाकाल १७४०।

२ जिनरंगसूरि। सौभाग्यपंचमी। समय १७४१।

२६ धर्ममन्दिर गणि। प्रबोधचिन्तामणि, चोपीमुनिचरित्र। रचनाकाल १७४१-१७५०।

४ हंसविजय जती। कल्पसूत्रकी टीका। समय १७८०।

५ ज्ञानविजय जती। मलयचरित्र। संवत् १७८१।

६ लाभवर्द्धन। उपपदी। संवत् १७११।

उन्नीसवीं शताब्दी।

१ टोडरमल। इस शताब्दीके सबसे प्रसिद्ध लेखक पं० टोडरमलजी हैं। दिगम्बर्जैन सम्प्रदायमें आप ऋषितुल्य माने जाते हैं। केवल ३२ ही वर्षकी अवस्थामें आप इतना काम करगये हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। आपकी रचनासे जैनसमाजमें तत्त्वज्ञानका बन्द हुआ प्रवाह फिरसे बहने लगा। जहाँ कर्म फिलासफीकी चर्चा करना केवल संस्कृतके-प्राकृतके विद्वानोंके हिस्सेमें था, वहाँ आपकी कृपासे साधारण हिन्दी जाननेवाले लोग भी कर्मतत्त्वोंके विद्वान बनने लगे। आप जयपुरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। सुनते हैं जयपुरराज्यके दीवान अमरचन्द्रजीने आपको अपने पास रख कर विद्याध्ययन कराया था। १५-१६ वर्षकी उम्रमें ही आप ग्रंथरचना करने लगे थे। जैनधर्मके असाधारण विद्वान् थे। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गोम्मटसार वचनिका' है, जिसमें क्षपणासार और लब्धिसार भी शामिल है। इसकी श्लोकसंख्या लगभग ४५ हजार है। यह नेमिचन्द्र स्वामीके प्राकृत गोम्मटसारकी भाषाटीका है। इसमें जैनधर्मके कर्मसिद्धान्तका विस्तृत विवेचन है। दूसरा ग्रंथ त्रैलोक्यसार वचनिका है। यह भी प्राकृतका अनुवाद है। इसमें जैनमतके अनुसार भूगोल और खगोल का वर्णन है। इसकी श्लोकसंख्या लगभग १०-१२ हजार होगी। तीसरा ग्रंथ गुणभद्रस्वामीकृत संस्कृत आत्मानुशासनकी वचनिका है। इसमें बहुत ही हृदयग्राही आध्यात्मिक उपदेश है। भर्तृहरिके वैराग्यशतकके ढंगका है। शेष दो ग्रंथ अधूरे हैं १ पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी वचनिका और २ मोक्षमार्गप्रकाशक। इनमेंसे पहले ग्रन्थको तो पं० दौलतरामजी काशलीवालने पूर्ण कर दिया था; परन्तु दूसरा ग्रंथ मोक्षमार्गप्रकाशक अधूरा ही है। यह छप चुका है। ५०० पृष्ठका ग्रंथ है। बिलकुल स्वतंत्र है। गद्य हिन्दीमें जैनोंका यही एक ग्रंथ है जो तात्त्विक होकर भी स्वतंत्र लिखा गया है। इसे पढ़नेसे मालूम होता है कि यदि टोडरमलजी वृद्धावस्थातक जीते, तो जैनसाहित्यको अनेक अपूर्व ग्रंथ रत्नोंसे अलंकृत कर जाते। आपके ग्रंथोंकी भाषा जयपुरके बने हुए तमाम ग्रंथोंसे सरल, शुद्ध और साफ है। अपने ग्रंथोंमें मंगलाचरण आदिमें जो आपने पद्य दिये हैं, उनके पढ़नेसे मालूम होता है कि आप कविता भी अच्छी कर सकते थे। आपकी जन्म और मृत्युकी तिथियाँ हमें मालूम नहीं हैं। आपने गोम्मटसारकी टीका विक्रम संवत् १८१८ में पूर्ण की है और आपके पुरुषार्थसिद्ध्युपायका शेष भाग दौलतरामजीने सं० १८२७ में समाप्त किया है। अर्थात् इससे वर्ष दो वर्ष पहले आपका स्वर्गवास हो चुका होगा और यदि आपकी मृत्यु ३२-३३ वर्षकी अवस्थामें हुई हो तो आपका जन्म वि० संवत्

१७६३के लगभग माना जा सकता है। आपकी लिखी हुई एक धर्ममर्मपूर्ण चिट्ठी भी है जो आपने मुलतानके पंचोंको लिखी थी। यह एक छोटी मोटी पुस्तकके तुल्य है। छप चुकी है।

२ जयचन्द्र। इस शताब्दीके लेखकोंमें पं० जयचन्द्रजीका दूसरा नम्बर है। आप भी जयपुरके रहनेवाले थे और छावड़ा-गोत्री खंडेलवाल थे। आपने नीचे लिखे ग्रंथोंकी भाषावचनिकायें लिखी हैं। इन सब ग्रन्थोंकी श्लोकसंख्या सब मिलाकर ६० हजारके लगभग है।

१ सर्वार्थसिद्धि	विक्रम संवत् १८६१।
२ परीक्षामुख (न्याय)	" १८६३।
३ द्रव्यसंग्रह	" १८६३।
४ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा	" १८६६।
५ आत्मख्याति समयसार	" १८६४।
६ देवागम (न्याय)	" १८८६।
७ अष्टपाहुड	" १८६७।
८ ज्ञानार्णव	" १८६९।
९ भक्तामरचरित्र	" १८७०।
१० सामायिक पाठ	समय मालूम नहीं।
११ चन्द्रप्रभकाव्यके द्वितीयसर्गका न्यायभाग	
१२ मतसमुच्चय (न्याय)	
१३ पत्रपरीक्षा (न्याय)	

ये सब ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृतके कठिन कठिन ग्रन्थोंके भाषानुवाद हैं। पाँच ग्रंथ तो केवल न्यायके हैं। (भक्तामरको छोड़कर) शेष सब उच्चश्रेणीके तात्त्विक ग्रन्थ हैं। पद्य भी आप अच्छा लिख सकते थे। आपने फुटकर पद और विनतियाँ भी बनाई हैं जिनकी श्लोकसंख्या ११०० है। द्रव्यसंग्रहका पद्यानुवाद भी आपने किया है। आपकी लिखी हुई एक चिट्ठी हमने वृन्दावनविलासमें प्रकाशित की है जो संवत् १८७० की लिखी हुई है और पद्यमें है। आपकी गद्यलेखशैली अच्छी है। आपके बनाये हुए कई बड़े बड़े ग्रन्थ छप चुके हैं। लेख बड़ा हो गया है, इस कारण हम आपकी रचनाके उदाहरण नहीं दे सकते।

३ वृन्दावन। वृन्दावनजीका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक ग्राममें संवत् १८४८ में हुआ था। आप गोलयगोत्री अग्रवाल थे। आपके पिताका नाम धर्मचन्द्रजी था। जब आपकी उम्र १२ वर्षकी थी तब आपके पिता आदि काशीमें आ रहे थे। काशीमें बाबरशहीदके गलीमें आपका मकान था। आपके वंशके लोग इस समय आरामें मौजूद हैं। आपका विस्तृत जीवन-चरित हमने वृन्दावनविलासकी भूमिकामें लिखा है। आपका देहान्त कब हुआ, यह पता नहीं। आपकी सबसे अन्तिम रचना संवत् १९०५ की है।

आप अच्छे कवि थे। आपका बनाया हुआ मुख्य ग्रन्थ 'प्रवचनसार' है, जो प्राकृत ग्रन्थका पद्यानुवाद है। इसे आपने बड़े ही परिश्रमसे बनाया है। इसको सर्वश्रेष्ठ बनानेके लिए आपने तीन बार परिश्रम किया था। यथा :—

तब छन्द रची पूरन करी, चित न रुची तब पुनि रची।
सोऊ न रुची तब अब रची, अनेकान्त रसमैं मची॥

दूसरा ग्रन्थ 'चतुर्विंशतिजिनपूजापाठ' और तीसरा 'तीस चौबीसीपूजापाठ' है। दूसरे ग्रन्थका बहुत अधिक प्रचार है। कई बार छप चुका है। इसमें तीर्थंकरोंकी पूजायें हैं। शब्दालङ्कार अनुप्रास यमक आदिकी इसमें भरमार है; पर भावकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना शब्दोंकी ओर दिया गया है। चौथा छन्दशतक है। यह बहुत ही अच्छा ग्रन्थ है। इसमें अधिक उपयोगी १०० प्रकारके छन्दोंके बनानेकी विधि और छन्दशास्त्रको प्रारम्भकी बातें

पद्यमें लिखी हुई है। विद्यार्थी बहुत ही थोड़े परिश्रमसे इसके द्वारा छन्दशास्त्रका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब तक इसके जोड़का सरल सुपाठ्य और थोड़ेमें बहुत प्रयोजन सिद्ध करनेवाला दूसरा छोटा छन्दोग्रन्थ नहीं देखा गया। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी प्रथमा परीक्षामें यह पाठ्य पुस्तक बननेके योग्य है। संस्कृतके वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थोंकी नाईं प्रत्येक छन्दके लक्षण और नाम आदि उसी छन्दमें दिये हैं और प्रत्येक छन्दमें अच्छी अच्छी निर्दोष शिक्षायें भरी हुई हैं। एक उदाहरण :—

चतुर नगन मुनि दरसत, भगत उमग उर सरसत ।
नुति थुति करि मन हरसत, तरल नयन जल बरसत ॥

इसमें छन्दका नाम और लक्षण बहुत ही खूबीसे दिया गया है। यह ग्रन्थ सं० १८९८ में कविने अपने पुत्र अजितदासके पढ़ानेके लिए केवल १५ दिनमें बनाया था।

चौथा ग्रन्थ कविकी तमाम फुटकर कविता-ओंका संग्रह 'वृन्दावन विलास' है। इसमें पद, स्तुति, पत्रव्यवहार आदि हैं। एक और ग्रन्थ 'पासा केवली' है जिसमें पासा डालकर शुभा-शुभ जाननेकी रीति लिखी है।

४ यति ज्ञानचन्द्र। ये उदयपुर राज्यके माण्डलगढ़में रहते थे। राजस्थानके इतिहासके अच्छे जानकार और इतिहासके साहित्यका संग्रह रखनेवाले थे। राजस्थानका इतिहास लिखनेमें कर्नल टाडको इन्होंने बहुत सहायता दी थी। टाड साहब इन्हें अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थमें इनके उपकारोंका उल्लेख किया है। ये अच्छे कवि थे। इनकी बनाई हुई कुछ फुटकर कवितायें मिलती हैं। मिश्रबन्धुओंने इनका पद्य रचनाकाल १८४० लिखा है।

५ भूधर मिश्र। आगरेके समीप शाहगंजके रहनेवाले ब्राह्मण थे। आपके गुरुका नाम पण्डित रंगनाथजी था। पुरुषार्थसिद्धुपाय नामक जैन-ग्रन्थमें अहिंसातत्त्वकी मीमांसा पढ़नेसे आपको जैनधर्म पर भक्ति हो गई थी। आपने रंगनाथजीसे अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया और फिर पुरुषार्थ-सिद्धुपायकी एक विशद भाषाटीका बनाई। यह विक्रम संवत् १८७१ की भाद्रपद सुदी १० को समाप्त हुई है। इस टीकामें अपने बीसों जैन-ग्रन्थोंके प्रमाण देकर अपने विचारोंको पुष्ट किया है। चर्चासमाधान नामका एक और ग्रन्थ भी आपका बनाया हुआ मिलता है। आप कवि भी अच्छे थे। पुरुषार्थसि० का मंगलाचरण देखिए :—

नमों आदि करता पुरुष, आदिनाथ अरहंत ।
द्विविध धर्मदातार धुर, महिमा अतुल अनंत ॥ १ ॥
स्वर्ग-भूमि—पातालपति जपत निरंतर नाम ।
जा प्रभुके जस हंसकों, जग पिंजर विश्राम ॥ २ ॥
जाकौं सुमरत सुरतमौं, दुरत दुरत यह भाय ।
तेज फुरत ज्यौं तुरत ही, तिमिर दूर दुर जाय ॥ ३ ॥

इन पद्योंसे यह भी मालूम होता है कि आपको जैनधर्म पर अच्छा विश्वास था।

६ बुधजन। बुधजनका पूरा नाम विरधी-चन्दजी था। आप खण्डेलवाल थे और जयपुरके रहनेवाले थे। आपके बनाये हुए चार पद्यग्रन्थ उपलब्ध हैं—१ तत्त्वार्थबोध, २ बुधजनसतसई, ३ पंचास्तिकाय और ४ बुधजनविलास। ये चारों क्रमसे १८७१, ८१-९१ और ९२ संवत्के बने हुए हैं। इनकी कवितामें मारवाड़ीपन बहुत है। बुधजनसतसईकी रचना कुछ अच्छी है अन्य सब रचनायें साधारण हैं। तत्त्वार्थबोध और पंचास्ति-कायको छोड़कर इनके लगभग सब ग्रन्थ छप गये हैं।

७ दीपचन्द । ये आमेर (जयपुर) के रहने-वाले काशलीवाल गोत्रीय खण्डेलवाल थे। इनके जो ग्रन्थ हमने देखे, उनमें समय आदि कुछ भी नहीं लिखा है, तो भी अनुमानसे ये १९ वीं शताब्दीके कवि हैं। इनके बनाये हुए गद्य पद्यके अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे दो छप चुके हैं—१ ज्ञान-दर्पण और २ अनुभवप्रकाश। इनमें पहला पद्यमें और दूसरा गद्य में है। पद्यरचना सुन्दर, छन्दोभंग आदि दोषोंसे रहित और सरल है। गद्यका नमूना यह है :—

"इस शरीरमंदिरमें यह चेतन दीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै पर सासना रतन दीप ज्योंका त्यौं रहै। व्यवहारमैं तुम अनेक स्वांग नटकी ज्यौं धरे। नट ज्यौंका त्यौं रहै। वह स्पष्ट भाव कर्मकौ है। तौऊ कमलिनीपत्रकी नाईं कर्मसौं न बँधै न स्पर्शै।"

इससे मालूम होता है कि गद्यरचना कितनी अच्छी और साफ है। आजसे लगभग १०० वर्ष पहले इतना अच्छा गद्य लिखा जाने लगा था। इनके बनाये हुए अनुभवप्रकाश अनुभवविलास, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्मपुराण, स्वरूपानन्द, उपदेशरत्न, और अध्यात्मपचीसी ये पद्यके ग्रन्थ और भी हैं। ये सब ग्रन्थ स्वतंत्र हैं और यही इनकी विशेषता है।

८ ज्ञानसार या ज्ञानानन्द। आप एक श्वेताम्बर साधु थे। संवत् १८६६ तक आप जीवित रहे हैं। आप अपने आपमें मस्त रहते थे और लोगोंसे बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कहते हैं कि आप कभी कभी अहमदाबादके एक स्मशानमें पड़े रहते थे! 'सज्झाय पद अने स्तवन संग्रह' नामके संग्रहमें आपके 'ज्ञानविलास' और 'समयतरंग' नामसे दो हिन्दी पदसंग्रह छपे हैं जिनमें क्रमसे ७५ और ३७ पद हैं। रचना अच्छी है। आपने आनन्दघनकी चौबीसी पर एक उत्तम गुजराती टीका लिखी है जो छप चुकी है। इससे आपके गहरे आत्मानुभवका पता लगता है।

९ रंगविजय। ये तपागच्छके विजयानन्द-सूरि समुदायके यति थे। इनके गुरुका नाम अमृतविजय कवि था। इन्होंने बहुतसे आध्यात्मिक और प्रार्थनात्मक पद बनाये हैं। इनकी इन कृतियोंका एक संग्रह, जो स्वयं इन्हींके हाथका लिखा हुआ है, श्वेताम्बर साधु प्रवर्तक श्रीकांति-विजयजीके शास्त्रसंग्रहमें है। इस संग्रहमें कोई २०० पद इनके बनाये हुए हैं। रचना सरल और सरस है। वैष्णव कवियोंने जैसे राधा और कृष्णको लक्ष्य कर भक्ति और शृंगारकी रचना की है वैसे ही इन्होंने भी राजीमती और नेमिनाथके विषयमें बहुतसे शृंगारभावके पद लिखे हैं। नमूने के लिए यह एक पद देखिए :—

आयन दे री या होरी।
चंदमुखी राजुलसौं जंपत, ल्याउं मनाय पकर बरजोरी ॥
फागुनके दिन दूर नहीं अब, कहा सोचत तू जियमैं भोरी ॥
बाँह पकर राहा जो कहाबूं, छाँडूँ ना मुख माँडूँ रोरी ॥
सज मनगार सकल जदुवनिता, अबीर गुलाल लेइभर झोरी॥
नेमीसर संग खेलें खिलौना, चंग मृदँग डफ ताल टकोरी ।
हैं प्रभु समुदविजैके छौना, तू है उग्रसैनकी छोरी ॥
'रंग' कहै अमृतपद दायक, चिरजीवहु या जुग जुग जोरी ॥

संवत् १८४९ में इन्होंने एक गजल बनाई है जिसमें ५५ पद्य हैं और जिसमें अहमदाबाद नगरका वर्णन है यह खड़ी हिन्दीके ढंगकी भाषा है।

१० कर्पूरविजय या चिदानन्द। ये संवेगी साधु थे, पर रहते थे सदा अपने ही मतमें मस्त। इन्हें मतभेदका कर्कश पास कुछ भी नहीं कर सकता था। इच्छा हुई तो गुहाओंमें जा डेरा डाल देते

और मौज हुई तो सुन्दर मकानोंमें आकर जम जाते। ये योगी अच्छे थे और अपना साम्प्रदायिक नाम छोड़ कर 'चिदानन्द' के अभेदमार्गीय नामसे अपना परिचय देते थे। इन्होंने बहुतसे आध्यात्मिक पद बनाये हैं। स्वरशास्त्रके ये अच्छे ज्ञाता थे, इस लिए 'स्वरोदय' नामका एक प्रबंध भी इन्होंने स्वरज्ञानविषयक बनाया है। कहते हैं ये संवत् १६०५ तक विद्यमान थे। इनकी रचना आनन्दघनके जैसी ही अनुभवपूर्ण और मार्मिक है। एक पद देखिए :--

जौं लौं तत्व न सूझ पड़ै रे ।
तौंलौं मूढ़भरमवश भूल्यौ, मत ममता गहि जगसौं लड़ै रे
अकर रोग शुभ कंप अशुभलख, भवसागर इण भांतिमड़ै रे।
धान काज जिमि मूरख खितहड़, उखर भूमिको खेत खड़ै रे
उचितरीत ओलख विन चेतन, निश दिन खोटोघाटघड़ैरे।
मस्तकमुकुट उचित मणिअनुपम, पग भूषण अज्ञानजड़ै रे ॥
कुमतावश मन वक्रतुरग जिम, गहिविकल्प मगमांहिं अड़ैरे
'चिदानन्द' निजरूप मगन भया, तब कुतर्क तोहि नाहिं नड़ैरे

गुजरातमें निवास होनेके कारण इसमें कुछ कुछ गुजरातीकी झलक है।

११ टेकचन्द। इनके बनाये हुए ग्रन्थ-१ तत्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका (सं० १८३७), सुदृष्टितरङ्गिनी वचनिका (१८३८) षट्पाहुड़ वचनिका, कथाकोश छंदोबद्ध, बुध-प्रकाश छं०, अनेक पूजा पाठ। इनका सुद-ष्टितरङ्गिणी ग्रन्थ बहुत बड़ा है। इस ग्रंथकी श्लोक संख्या साढ़े सत्रह हजार है।

१२ नथमल विलाला। (भरतपुरनिवासी खजांची)। इनका एक ग्रन्थ सिद्धान्तसार हमने देखा है। यह सकलकीर्तिके संस्कृत ग्रन्थका अनुवाद है। सम्वत् १८२४ में बना है। श्लोकसंख्या लगभग ७५०० है। जिन-गुणविलास, नागकुमारचरित्र (१८३४), और जीवंधरचरित्र (१८३५), और जम्बूस्वामीचरित्र, ये ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुए हैं। सब पद्यमें हैं। कविता साधारण है।

१३ डालूराम। (माधवराजपुरनिवासी अग्रवाल)। गुरूपदेशश्रावकाचार छन्दोबद्ध (१८६७), सम्यक्त्वप्रकाश (१८७१) और अनेक पूजायें।

१४ देवीदास। (खण्डेलवाल बसवानिवासी) सिद्धान्तसारसंग्रह वचनिका (१४८४) और तत्वार्थसूत्रकी वचनिका।

१५ देवीदास। (दुगोदह केलगवाँ जिला झांसी निवासी)। परमानन्दविलास छन्दोबद्ध (सं० १८१२), प्रवचनसार छं०, चिद्विलास-वचनिका, चौबीसी पाठ।

१६ सेवाराम। (राजपूत)। हनुमच्चरित्र छन्दोबद्ध (१८३२), शान्तिनाथपुराण छं० और भविष्यदत्तचरित्र छं०।

१७ भारामल्ल। ये फर्रुखाबादके रहनेवाले सिंगई परशुरामके पुत्र थे और खरौआ जातिके थे। इन्होंने भिण्ड नगरमें रहकर सम्वत् १८१३ में चारुदत्तचरित्र बनाया। सप्तव्यसनचरित्र, दानकथा, शीलकथा, रात्रिभोजन कथा ये सब छन्दोबद्ध ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुए हैं

१८ गुलाबराय। शिखरविलास छं० सं० १८४२ में बनाया।

१९ थानसिंह। सुबुद्धिप्रकाश छन्दोबद्ध (सं० १८४७)।

२० नन्दलाल छावड़ा। मूलाचारकी वचनिका सं० १८८८ में।

१ किसान। २ ऊसर। ३ पहिचान। ४ जड़ना आधादेना।

२१ मन्नालाल सांगाका । चारित्रसारकी वचनिका सं० १८७१ में ।

२२ मनरंगलाल । (कन्नौज के रहनेवाले पल्लीवाल) । सं० १८५७ में चौवीसी पूजापाठ बनाया। कविता अच्छी है । नेमिचंद्रिका, सप्तव्यसनचरित्र और सप्तर्षिपूजा ये ग्रन्थ भी इनके बनाये हुए हैं ।

२३ लालचन्द । (सांगानेरी) । षट्कर्मोपदेशरत्नमाला सं० १८१८) वरांगचरित्र, विमलनाथपुराण, शिखरविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, आगम शतक, और अनेक पूजाग्रन्थ । सब छन्दोबद्ध ।

२४ सेवारामशाह । (जयपुरनिवासी) चौवीसी पूजापाठ (सं० १८५४) और धर्मोपदेश छन्दोबद्ध ।

२५ कुशलचन्द्र गणि यति । यति बालचन्द्रजी खामगांव वालोंने आपका बनाया हुआ 'जिनवाणीसार' नामका ७०० हिन्दी पद्योंका ग्रन्थ बीकानेरके यतियोंके पास देखा है । अध्यात्मिक ग्रन्थ है, रचना भी कहते हैं अच्छी है।

२६ यति मोतीचन्द । उक्त यतिजीके कथनानुसार ये जोधपुरनरेश मानसिंहजीके सभा के रत्नोंमेंसे एक थे । इन्हें मानसिंहजीने 'जगद्गुरु भट्टारक' पद प्रदान किया था । हिन्दीके श्रेष्ठ कवि थे ।

२७ हरजसराय । ये स्थानकवासी सम्प्रदायके थे । हिंदीके अच्छे कवि थे । साधुगुणमाला, देवाधिदेवरचना और देवरचना नामके ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं । 'देवाधिदेवरचना' छप चुकी है। यह संवत् १८६५ में समाप्त हुआ है।

२८ क्षमाकल्याण पाठक । इन्होंने संवत् १८५० में जीवविचारवृत्तिकी रचना की । साधुप्रतिक्रमणविधी, श्रावकप्रतिक्रमणविधी, सुमतिजिनस्तवन आदि और भी कई ग्रन्थ इनके रचे हुए हैं। पिछला स्तवन छप गया है। रचना अच्छी है।

विजय कीर्ति—ये नागौरकी गद्दीके भट्टारक थे। इन्होंने सं० १८२० में श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्धकी रचना की है।

बीसवीं शताब्दी ।

१ सदासुख । इस शताब्दीके पुराने ढंगके लेखकोंमें सदासुखजी बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका रत्नकरण्ड श्रावकाचार बहुत बड़ा लगभग १५-१६ हजार श्लोक प्रमाण गद्यग्रंथ है। जैनसमाजमें इसका बहुत अधिक प्रचार है। दो बार छप चुका है। एक डेड़ सौ श्लोकके इसी नामके मूल ग्रंथका यह विशाल भाष्य है। एक प्रकारसे इसे स्वतंत्र ग्रन्थ कहना चाहिये। इनका दूसरा ग्रंथ अर्थप्रकाशिका है। यह भी लगभग उतना ही बड़ा है। यह तत्वार्थसूत्रका भाष्य है। गद्यमें है। भगवती आराधनाकी टीका भी आपने लिखी है जिसकी श्लोक संख्या २० हजार होगी। यह विक्रम संवत् १९०८ में बनी है। बनारसीकृत नाटक समयसारकी टीका, नित्यपूजाटीका और अकलंकाष्टककी टीका भी आपकी बनाई हुई है।

२ पन्नालाल चौधरी। संस्कृत ग्रंथोंके ये बड़े भारी अनुवादक हुए हैं। इन्होंने ३५ ग्रन्थोंकी वचनिकायें (गद्यानुवाद) लिखी हैं जो प्रायःसब ही उपलब्ध हैं:-१ वसुनंदिश्रावकाचार, २ सुभाषितार्णव, ३ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, ४ जिनदत्तचरित्र, ५ तत्त्वार्थसार, ६ सद्भाषितावली, ७ भक्तामरकथा, ८ आराधनासार, ९ धर्मपरीक्षा, १० यशोधरचरित्र, ११ योगसार, १२ पाण्डवपुराण, १३ समाधिशतक, १४ सुभाषितरत्नसंदोह, १५ आचारसार, १६ नवतत्त्व, १७ गोतमचरित्र, १८ जम्बूचरित्र, १९ जीवंधरचरित्र, २० भविष्यदत्तचरित्र, २१ तत्वार्थसार-

दीपक, २२ श्रावकप्रतिक्रमण, २३ स्वाध्यायपाठ, विविध भक्तियाँ और विविधस्तोत्र।

३ भागचन्द्र। ये ईसागढ़ (ग्वालियर) के रहनेवाले ओसवाल थे, पर दिगम्बरसम्प्रदायके अनुयायी थे। बहुत अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत और भाषा दोनोंके कवि थे। ज्ञानसूर्योदय, उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला (षष्ठिशतप्रकरण), अमितगतिश्रावकाचार, प्रमाणपरीक्षा (न्याय), और नेमिनाथपुराण, इतने ग्रंथोंकी आपने गद्य टीकायें लिखी हैं जो प्राय: उपलब्ध हैं। आपकी कई रचनायें संस्कृतमें भी हैं। आपके पदभजनोंका संग्रह छप चुका है। अच्छी कविता है।

४ दौलतराम। ये सासनीनिवासीपल्लीवाल थे। सुनते हैं, छीपीका काम करते थे; परन्तु बहुत अच्छे विद्वान् थे। गोम्मटसार सिद्धान्तके अच्छे मर्मज्ञ समझे जाते थे। आपका बनाया हुआ एक छहढाला नामका सुन्दर पद्यग्रंथ है, जो कमसे कम ७-८ बार छप चुका है। जैनपाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तक है। इसमें जैनधर्मका सार भरा हुआ है। सर्वथा स्वतंत्र है। इसके सिवाय आपके बनाये हुए बहुतसे पद और स्तवन हैं जिनमेंसे लगभग १२५ का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। चार बार छप चुका है। पदरचना भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे अच्छी है।

५ मुनि आत्माराम। ये श्वेताम्बरसम्प्रदायके बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं। इनका जीवनचरित्र सरस्वतीमें निकल चुका है। शायद इनके बाद इस सम्प्रदायमें कोई ऐसा उद्भट विद्वान् नहीं हुआ। इनका जन्म वि० सं० १८९३ के लगभग हुआ था और देहोत्सर्ग १९५३ में। आपकी जन्मभूमि पंजाब थी। पाश्चात्यदेशोंतक आपकी ख्याति थी। आपके शिष्य श्रीयुत वीरचन्द राघवजी गांधी बी. ए. बैरिस्टर एट ला. चिकागो (अमेरिका) की धर्ममहासभामें गये थे। उन्होंने वहाँ आपकी बहुत ही प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। आपकी 'चिकागो-प्रश्नोत्तर' नामकी पुस्तक उसी समयके प्रश्नोत्तरोंकी है। आपने अपनी सारी रचना हिन्दीमें की है आपके कई बड़े बड़े ग्रंथ हैं उनमें जैनतत्त्वादर्श, तत्त्वनिर्णयप्रसाद, और अज्ञानतिमिरभास्कर मुख्य हैं। आप स्वामी दयानन्दके ढंगके विद्वान् थे। खण्डन मण्डनसे आपको बहुत प्रेम रहा है। अन्य धर्मों और सम्प्रदायों पर आपने बहुत आक्रमण किये हैं। आपकी भाषामें कुछ पंजाबीपन मिला हुआ है, पर वह समझमें अच्छी तरह आती है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आपकी स्मृतिकी रक्षाके लिए बहुत प्रयत्न किये गये हैं। कई सभायें आपके नामसे चल रही हैं और कई मासिकपत्र और ग्रन्थमालायें भी आपके स्मरणार्थ निकलती हैं। आपके प्राय: सभी ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं। उनका प्रचार खूब है।

६ यति श्रीपालचन्द्र। ये यति बीकानेरके रहनेवाले थे। सुयोग्य थे। कई वर्षोंतक अनवरत परिश्रम करके आपने 'जैनसम्प्रदायशिक्षा' नामका ग्रन्थ बनाया था। यह ग्रन्थ आधा भी न छप पाया था कि आपका देहान्त हो गया। आपके ग्रन्थको अब निर्णयसागर प्रेसके मालिक चार रुपयेमें बेचते हैं। बोलचालकी शुद्ध हिन्दीमें इसकी रचनाहुई है। यतिजीका देहान्त हुए केवल ७-८ वर्ष हुए हैं।

७ चंपाराम। (पाटननिवासी)। गौतमपरीक्षा (सं० १९१६), वसुनन्दिश्रावकाचार, चर्चासागर, योगसार। ये सब ग्रंथ गद्यमें हैं।

८ छत्रपति। (पद्मावतीपुरवार)। द्वादशानुप्रेक्षा (१९०७) मनमोदनपंचशति (१९१६),

उद्यमप्रकाश (१६२२), शिक्षाप्रधान । ये सब ग्रन्थ पद्यमें हैं । ये अच्छे कवि मालूम होते हैं । इनकी मनमोदनपंचशती छपकर प्रकाशित हो रही है ।

९ जौहरीलाल शाह । पद्मनन्दि पंचविंशतिकाकी वचनिका (१६१५) ।

१० नन्दराम । योगसारवचनिका (सं० १६०४), यशोधरचरित्र छ० और त्रैलोक्यसार पूजा ।

११ नाथूलाल दोसी । (जयपुरनिवासी) । गद्यमें सुकमालचरित्र, महीपालचरित्र, समाधितंत्र, और पद्यमें दर्शनसार, परमात्मप्रकाश, सिद्धप्रियस्तोत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार ।

१२ पन्नालाल (दूनीवाले) । विद्वज्जनबोधक (विशालग्रन्थ), उत्तरपुराण वचनिका और अनेक पूजापाठ ।

१३ पारसदास । (जयपुरनिवासी) । पारसविलास (छ०) ज्ञानसूर्योदय और सारचतुर्विंशतिकाकी वचनिका ।

१४ फतेहलाल । (जयपुरी) । विवाहपद्धति, दशावतारनाटक, राजवार्तिकालंकार, रत्नकरण्ड, न्यायदीपिका और तत्त्वार्थसूत्रकी, वचनिकायें ।

१५ बख्तावरमल-रतनलाल । (दिल्लीनिवासी) । जिनदत्तचरित्र, नेमिनाथपुराण, चन्द्रप्रभपुराण, भविष्यदत्तचरित्र, प्रीतिंकरचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, व्रतकथाकोश आदि छन्दोबद्ध ग्रन्थ ।

१६ मन्नालाल बैनाड़ा । प्रद्युम्नचरित्र वचनिका (१९१६) ।

१७ महाचन्द्र । महापुराण संस्कृत-प्राकृत और भाषामें, सामायिकपाठ, फुटकर संस्कृत और भाषाके पद ।

१८ मिहिरचन्द्र । ये सुनपत (दिल्ली) के रहनेवाले थे । संस्कृत और फारसीके अच्छे विद्वान् थे । आपने सज्जनचित्तवल्लभ काव्यकी संस्कृत टीका और हिन्दी पद्यानुवाद बनाया है जो छप चुका है । कविता अच्छी है । शेख शादीके सुप्रसिद्ध काव्यद्वय गुलिस्तां और बोस्तांका हिन्दी अनुवाद भी आपका किया हुआ है जो एक बार छप चुका है । सुनते हैं, और भी आपकी कई हिन्दी रचनायें हैं ।

१९ हीराचन्द अमोलक । ये फलटण जिला साताराके रहनेवाले हूंवड़ वैश्य थे । आपकी मातृभाषा हिन्दी न थी तो भी आपने हिन्दीमें अनेक अच्छे पद बनाये हैं जो छप चुके हैं । पंचपूजा भी आपकी बनाई हुई है ।

२० शिवचन्द्र (दिल्लीवाले भट्टारकके शिष्य) । नीतिवाक्यामृत, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार और तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिकायें ।

२१ शिवजीलाल (जयपुरनिवासी) रत्नकरण्ड, चर्चासंग्रह, बोधसार, दर्शनसार, अध्यात्मतरंगिणी आदि अनेक ग्रन्थोंकी वचनिकायें और तेरहपंथखण्डन ।

२२ स्वरूपचन्द । मदनपराजयवचनिका, त्रैलोक्यसार छ० आदि ।

वर्तमान समयके परलोकगत लेखक ।

१ राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द । ये महाशय सं० १८८० में उत्पन्न हुए और १९५२ में इनका स्वर्गवास हुआ । श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायके आप अनुयायी थे । आप शिक्षा विभागके उच्च कर्मचारी थे और राजा तथा सी आई ई. की उपाधियोंसे विभूषित थे । वर्तमान खड़ी हिन्दीके आप जन्मदाता समझे जाते हैं । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी आपको अपना गुरु मानते थे । उन्होंने अपना मुद्राराक्षस नाटक आपको ही समर्पित किया था । आप हिन्दीके बड़े पक्षपाती थे । आपकी ही दयासे शिक्षाविभागसे हिन्दीका देशनिकाला

होता होता रह गया। शिक्षाविभागके लिए आपने हिन्दीकी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें इतिहास तिमिरनाशक बहुत प्रसिद्ध हैं। आपके धार्मिक विचार बहुत स्वतंत्र थे। जैनसमाजको आपका अभिमान है।

२ बाबू रतनचन्द्र वकील । आप इलाहाबादके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। बी. ए. एल एल. बी और वकील थे । अभी कुछ ही वर्षोंपहिले आपका स्वर्गवास हुआ है । आप हिन्दीकेअच्छे लेखक थे। आपका नूतनचरित्र प्रयागके इंडियन प्रेसने प्रकाशित किया है । न्यायसभा नाटक, भ्रमजालनाटक, चातुर्थार्णव, वीरनारायण, इन्दिरा, हिन्दी-उर्दू नाटक, आदि कई ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं । 'भ्रमजाल' आदि अँगरेजीसे अनुवादित हैं, कुछ स्वतंत्र हैं और कुछ आधार लेकर लिखे गये हैं।

३ बाबू जैनेन्द्रकिशोर । आप आराके एक जमींदार थे । अग्रवाल जैन थे। आराकी नागरी-प्रचारिणी सभा और प्रणेतृसमालोचक सभाके उत्साही कार्यकर्ता थे । हिन्दीके सुलेखक और सुकवि थे । आपकी बनाईहुई खगोलविज्ञान, कमलावती, मनोरमा उपन्यास आदि कई पुस्तकें छप चुकी हैं । जैनकथाओंके आधारसे आपने कई नाटक और प्रहसन लिखे थे जिनमेंसे 'सोमसती' व्यंकटेश्वर प्रेससे प्रकाशित हो चुका है, शेष सब अमुद्रित हैं। आपने कई वर्ष तक हिन्दी जैनगजटका सम्पादन किया था। कोई ६-७ वर्ष हुए, आपका देहान्त हो गया। आपका जीवन-चरित आरेकी नागरीहितैषिणी पत्रिकामें निकल चुका है।

४ मि० जैन वैद्य । मि० जैन वैद्यका नाम जवाहिरलाल था। आप खण्डेलवाल जैन थे। 'वैद' आपका गोत्र था। आपका जन्म संवत् १९३७ में हुआ था। आपने अँगरेजी तो म्याट्रिक तक ही पढ़ी थी, पर विद्याभिरुचिके कारण उसमें उन्नति अच्छी कर ली थी। रायल एशियाटिक सुसायटी और थियॉसोफिकल सुसायटीके आप मेम्बर थे। बंगला उर्दू, मराठी और गुजराती भी आप जानते थे। हिन्दीके बड़े ही रसिक थे और नागरीके प्रचारका सदैव यत्न किया करते थे। आपने हिन्दीके कई पत्र निकाले पर वे चल नहीं सके। आपका सबसे नामी पत्र 'समालोचक' निकला। उसे आपने चार सालतक बड़े परिश्रम और अर्थव्ययसे चलाया। इससे आपकी हिन्दी संसारमें बड़ी ख्याति हुई। इस पत्रमें बड़े ही मार्केके लेख निकलते थे। छात्रावस्थामें इन्होंने कमलमोहिनीभँवरसिंह नाटक, व्याख्यानप्रबोधक और ज्ञानवर्णमाला नामक तीन पुस्तकें लिखी थीं। नागरी प्रचारिणीसभाके ये बड़े सहायक थे। इन्होंने जयपुरमें एक 'नागरी भवन' नामक पुस्तकालय खोला था, जो अबतक अच्छी दशामें है। आपने 'संस्कृत कविपंचक' आदि हिन्दीके कई अच्छे ग्रंथ अपने खर्चसे प्रकाशित किये थे। आपकी मृत्यु संवत् १९६६ में हो गई।

मुंशी नाथूरामजी लमेचू । ये करहल जिला मैनपुरीके रहनेवाले थे, पर पीछे कटनी मुड़वारामें आरहे थे। कोई दशवर्ष हुए जब आपकी मृत्यु हो गई। छापेके प्रचारकोंमें आपभी एक अगुआ थे। इसके कारण आपने भी खूब गालियाँ सुनीं, अपमान सहन किया और मार तक खाई! आप गद्य और पद्य दोनों लिखते थे। पद्यमें आपने लावनियाँ बहुत बनाई हैं, जिनमेंसे कुछ 'ज्ञानानन्दरत्नाकर' के नामसे छपी हैं। गद्यमें आपने जैन प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ पुस्तक और हिन्दीकी पहिली दूसरी-तीसरी आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। कई पुस्तकोंकी टीकायें और पद्यानुवाद भी आपने किये हैं। आप पुस्तकप्रकाशक थे। सैकड़ों छोटी

बड़ी पुस्तकें आपने छपाई थीं। आपके विचार सुधारकोंके ढंगके थे, इस कारण सर्व साधारणसे आपकी बहुत ही कम बनती थी। जैन कथाग्रन्थों-की असंभव बातों पर आपकी अश्रद्धा थी और जैनभूगोलके सिद्धान्तोंका आप विरोध किया करते थे। इस विषयमें उस समय आपने लाहौर-की 'जैनपत्रिका' में कुछ लेख भी प्रकाशित कराये थे। आपके पुत्र बाबू नन्दकिशोरजी बी ए. असिस्टेंट सर्जन हैं। उन्होंने आपके पुस्तकालयकी तमाम पुस्तकें कटनीकी जैनपाठशालाको दे डाली हैं।

वर्तमान लेखक।

बाबू सूरजभानजी। आप देवबन्द जिला सहारनपुरके रहनेवाले अग्रवाल जैन हैं। वकील हैं। लगभग २०-२२ वर्षसे आप हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। जैनसमाजमें नई जागृति उत्पन्न करने-वालोंमेंसे आप एक हैं। जिससमय सारा जैन-समाज जैनग्रन्थोंके छपानेका विरोधी था, उस-समय आपने बड़े साहसके साथ इस कामको उठाया और हरतरहके कष्ट उठाकर जारी रक्खा। आप अपनी धुनके बड़े पक्के हैं। हिन्दी जैनगजट-के जन्मदाता आप ही हैं। आपने कई वर्षतक उसे साप्ताहिक रूपमें बिना किसीकी मददके चलाया। इसके बाद दो मासिकपत्र आपने और निकाले जो कुछ वर्ष चलकर बन्द हो गये। द्रव्यसंग्रह, पुरुषा-र्थसिद्ध्युपाय, परमात्मप्रकाश आदि कई ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद आपके लिखे हुए हैं। हिन्दीकी स्त्रीोपयोगी पुस्तकें भी आपने कई लिखी हैं। आपकी 'ब्याही बहू' नामकी छोटीसी पुस्तक अभी हाल ही प्रकाशित हुई है। 'मनमोहिनी' नामका स्वतंत्र उपन्यास भी आपका लिखा हुआ है। आपकी 'ज्ञानसूर्योदय' नामकी पुस्तक बहुत अच्छी है जो पहिले उर्दूमें लिखी गई थी। इस समय आप वकालतका काम छोड़कर जैन-समाज की सेवा किया करते हैं। आपकी अवस्था ५० वर्षके लगभग होगी।

पं० पन्नालालजी बाकलीवाल। आप सुजान-गढ़ जिला बीकानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन हैं। जैनसमाजमें ग्रन्थोंके छपाने और प्रचार करनेवालोंमें आप अग्रणी हैं। आप भी कोई बीस वर्षसे केवल यही काम कर रहे हैं। बम्बईके जैन-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी जड़ जमानेवाले आप ही हैं। काशीकी स्याद्वादपाठशालाकी स्थापना करने-में भी आपका हाथ था। आप बड़े स्वार्थत्यागी हैं। जैनहितैषी पत्रके जन्मदाता भी आप ही हैं; इसे शुरूमें आपने कई बार निकाला और कई वर्षतक चलाया था। धर्मपरीक्षाका अनुवाद, रत्नकरंड, द्रव्यसंग्रह, और तत्त्वार्थसूत्रकी छात्रोप-योगी टीकायें, जैनबालबोधक, स्त्रीशिक्षा आदि जैनधर्मकी पुस्तकें भी आपने कई लिखी हैं। आजकल आप कलकत्तेसे 'सनातन जैनग्रन्थ-माला' नामक संस्कृत ग्रन्थोंकी सीरीज निकाल रहे हैं। इस समय आपकी उम्र लगभग ४८ वर्षकी होगी।

पं० गोपालदासजी बरैया। आप आगरेके रहनेवाले हैं और बरैया आपकी जाति है। आज-कल मोरेना (ग्वालियर) में रहते हैं। दिगम्बर-सम्प्रदायके धुरंधर विद्वानोंमें आपकी गणना है। न्यायवाचस्पति, वादिगजकेसरी स्याद्वादवारिधि आदि कई पदवियाँ आपको मिली हुई हैं। आप बड़े स्वार्थत्यागी हैं। मोरेनाका जैनसिद्धान्तविद्या-लय-जिसमें कोई हजार रुपया मासिक खर्च होता है-आपहीके परिश्रम और स्वार्थत्यागसे चल रहा है। आपके द्वारा जैनसमाजमें न्याय और कर्म-सिद्धान्तके जाननेवाले बीसों विद्वान् तैयार हुए हैं और हो रहे हैं। बम्बईका 'जैनमित्र' जो अब

साप्ताहिक होगया है, सबसे पहले आपहीने निकाला था। इसका सम्पादन आप ६-७ वर्षतक करते रहे हैं। आप खासी हिन्दी लिखते हैं। सुशीला उपन्यास, जैनसिद्धान्तदर्पण, और जैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका ये तीन हिन्दीके ग्रन्थ आपके रचे हुए हैं। पिछली पुस्तकका जैनसमाजमें खूब प्रचार है। इस समय आपकी अवस्था ४८ वर्षके लगभग होगी। मोरेनामें आपकी आढ़तकी दूकान है।

बाबू जुगलकिशोरजी। आप देवबन्द जिला सहारनपुरमें रहते हैं। अग्रवाल जैन हैं। मुख्तारी-का काम छोड़कर अब केवल साहित्यसेवा करते हैं। अभी आपकी उम्र ४० वर्षसे कम है। जैन-साहित्यके बड़े नामी समालोचक हैं। अभी अभी आपने चार पांच जैन ग्रंथोंकी विस्तृत समालोच-नायें लिखकर जैनसमाजमें एक हलचल मचा दी है। बड़े ही परिश्रमशील लेखक हैं। जैनधर्मसम्ब-न्धी इतिहास पर भी आप बहुत कुछ लिखा करते है। आगे आपसे जैनसाहित्यका बहुत उपकार होनेकी संभावना है। आप कई वर्षतक साप्ताहिक जैनगजटका सम्पादन कर चुके हैं। आर्यमतलीला, पूजाधिकारमीमांसा, विवाहका उद्देश्य आदि कई अच्छी अच्छी पुस्तकें आपकी लिखी हुई हैं।

पं० अर्जुनलालजी सेठी। आप जयपुरके रहने-वाले खण्डेलवाल जैन हैं। बी. ए. हैं। किसी राजनैतिक अपराधके सन्देहमें आप कोई तीन वर्षसे कैद हैं। आप हिन्दीके परम प्रेमी और देश-भक्त हैं। जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचारक समिति और वर्द्धमानविद्यालय ये दो संस्थायें आपहीने अपने असीम परिश्रम और स्वार्थत्यागके बलसे स्थापित की थीं। जैनसमाजमें हिन्दीकी प्रतिष्ठाके लिए आपने उद्योग किया है। आपने महेन्द्रकुमार नाटक आदि दो तीन हिन्दी पुस्तकें भी लिखी हैं।

लाला मुंशीलालजी। आप अग्रवाल जैन हैं, ग्रेज्युएट हैं और संस्कृतके एम. ए. हैं। पहिले लाहौरके किसी कालेजमें प्रोफेसर थे। इस समय पेन्शनर हैं और लाहौरमें ही रहते हैं। आप उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओंके लेखक हैं। हिन्दीमें आपकी लिखी हुई कई अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं-१ दरिद्रतासे श्रेय, २ कहानियोंकी पुस्तक, ३ शील और भावना, ४ शीलसूत्र, ५ छात्रोंको उपदेश आदि। संस्कृतके भी आप अच्छे विद्वान हैं, इस लिए आपने क्षत्रचूडामणि काव्यका हिन्दी अनुवाद लिखा है और पंजाबके शिक्षा-विभागके लिए संस्कृतकी चार पुस्तकें लिख दी हैं। उत्तराध्ययन सूत्रका भी आपने हिन्दी अनुवाद किया है। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है, वृद्धावस्था है, तो भी आप हिन्दीमें कुछ न कुछ लिखा ही करते हैं।

बाबू दयाचन्दजी गोयलीय। आप अग्रवाल जैन हैं और बी. ए. हैं। इस समय लखनऊके कालीचरण हाईस्कूलमें मास्टर हैं। हिन्दीकी सेवाका आपको बहुत ही उत्साह है। अच्छी हिन्दी लिखते हैं। हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरकार्यालय द्वारा आपकी १ मितव्ययता, २ युवाओंको उपदेश, ३ शान्तिवैभव, ४ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा, ५ चरित्रगठन और मनोबल, ५ पिताके उपदेश, ६ अब्राहम लिंकन आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जैनधर्मकी भी आपने कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। गत वर्षसे आप एक 'जाति-प्रबोधक' नामका मासिकपत्र निकालने लगे हैं।

मि० वाडीलाल मोतीलाल शाह। आप अहमदाबादके रहनेवाले श्रीमाल जैन हैं और गुजरातीके प्रभावशाली पत्र जैनहितेच्छुके सम्पा-दक हैं। गुजरातीके आप लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। हिन्दी आपकी मातृभाषा नहीं है, तो भी आप अपने हिन्दीभाषी भाइयोंके लिए कुछ न कुछ

लिखा ही करते हैं। आपके जैनसमाचारपत्रमें हिन्दीके लगभग आधे लेख रहते थे। हिन्दीसे आपको बहुत ही प्रेम है। अभी थोड़े ही दिन पहले झालरापाटनमें जो 'राजपूताना हिन्दी-साहित्य-समिति'की स्थापना हुई है और जिसमें लगभग १०-११ हजारका चन्दा केवल जैन सज्जनोंने दिया है, वह आपके ही उद्योगका फल है। आपने उसमें स्वयं अपनी गाँठसे दो हजार रुपयेकी रकम दी है। इस समितिका काम आपके ही हाथमें है। इसके द्वारा बहुत ही जल्दी अच्छे अच्छे ग्रन्थ लागतके मूल्य पर प्रकाशित होंगे।

बाबू सुपार्श्वदासजी गुप्त। आप आराके रहनेवाले अग्रवाल जैन हैं। एम. ए. के विद्यार्थी हैं। हिन्दी लिखनेका आपको बहुत उत्साह है। लिखते भी अच्छा हैं। सरस्वतीमें प्रायः लिखा करते हैं। अभी आपने एक 'पार्लमेंट' नामका लगभग ४०० पृष्ठका ग्रन्थ लिखा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

बाबू मोतीलालजी। आप आगरेमें स्कूल मास्टर हैं। पल्लीवाल जैन हैं। बी. ए. हैं। आपने स्माइल्सके 'सेल्फ हेल्प' की छाया लेकर 'स्वावलम्बन' नामका ग्रन्थ लिखा है जो बहुत पसन्द किया गया है। इन्दौरकी होलकर्स हिन्दी कमेटीने इससे प्रसन्न होकर आपको पारितोषिक दिया है। कविता भी अच्छी लिखते हैं। आगे आपके द्वारा हिन्दीकी बहुत कुछ सेवा होगी।

बाबू वेणीप्रसादजी। आप बाबू मोतीलालजीके भाई हैं। अभी एम. ए. के विद्यार्थी हैं। हिन्दी बड़ी अच्छी लिखते हैं। सरस्वती आदि-पत्रोंमें आपके कई प्रतिभापरिचायक लेख प्रकाशित हुए हैं। आगे आपसे हिन्दीकी बहुत कुछ सेवा होनेकी आशा है।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। आप लखनऊके रहने वाले अग्रवाल जैन हैं। ७-८ वर्ष से आप गृहत्यागी होगये है। बम्बई के जैनमित्रका सम्पादन इन दिनों आप ही करते हैं। गृहस्थधर्म, छहढालकी टीका, नियमसारकी टीका, अनुभवानन्द आदि कई जैनधर्मसम्बन्धी ग्रन्थ आपके लिखे हुए हैं।

मुनि जिन विजयजी। आप श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधु है। बहुत अच्छे विद्वान् हैं। आपका ऐतिहासिक ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा है। पाटन आदिके पुस्तकभण्डारोंके ग्रन्थोंसे आप सविशेष परिचित हैं। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंके लेखक हैं. और मजा यह कि दोनों भाषाओंमें आप मातृभाषाके समान शुद्ध लिख सकते हैं। विज्ञप्ति-त्रिवेणी, कृपारस-कोष प्रशस्तिसंग्रह आदि कई संस्कृत ग्रन्थोंका सम्पादन आपने किया है और बड़ी योग्यता से किया है। इन ग्रन्थोंकी आपने बहुत बड़ी बड़ी विस्तृत भूमिकायें हिन्दीमें ही लिखी हैं जो इतिहासपर अपूर्व प्रकाश डालती हैं। जैनधर्मके भी आप अच्छे मर्मज्ञ हैं। आपके लेख सरस्वती आदि अनेक पत्रपत्रिकाओंमें प्रकाशित हुआ करते हैं।

बाबू माणिकचन्दजी। आप पोरवाड़ हैं और बी. ए. एल.एल. बी. हैं। खंडवेमें वकालत करते हैं। छात्रावस्थासे ही आपको हिन्दी लिखनेका शौक है। आप कुछ समय तक प्रयागके अभ्युदयके सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। खंडवेकी हिन्दी-ग्रन्थप्रसारक मण्डली आपके ही अध्यवसाय और परिश्रमसे चल रही है। आपके ही प्रयत्नसे मंडली कई नामी नामी ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेमें समर्थ हुई है। जीवदया, सुखानन्दमनोरमा नाटक आदि कई पुस्तकें आपने छात्रावस्थामें लिखी हैं।

हिन्दीका आपके द्वारा बहुत उपकार हुआ है और होगा ।

बाबू कन्हैयालालजी । आप श्रीमाल जैन हैं। भरतपुरकी पल्टनमें हेडक्लार्क हैं । आपने 'अंजनासुन्दरी' नामका एक नाटक लिखा है जिसे व्यंकटेश्वर प्रेसने प्रकाशित किया है। नाटक स्वतंत्र है और अच्छा है। आपने सुनते हैं और भी कई पुस्तकें लिखी हैं, पर हम उनसे परिचित नहीं।

पं० उदयलालजी काशलीवाल। आप खण्डेलवाल जैन हैं। सत्यवादी नामक पत्रका आप दो वर्षतक सम्पादन करते रहे हैं। जैनधर्मके कई संस्कृत ग्रन्थोंका आपने अनुवाद किया है। आप अच्छी हिन्दी लिखते हैं। इस समय आप बम्बईमें रहते हैं। हिन्दीजैनसाहित्यप्रसारक 'कार्यालयके मालिकोंमें हैं। इस वर्ष आपने 'हिन्दी गौरव-ग्रन्थमाला' नामकी सीरीज निकालनेका प्रारंभ किया है।

पं० दरयावसिंहजी सोधिया। आप गढ़ाकोटा जिला सागरके रहनेवाले हैं । आजकल इन्दौरमें रहते हैं । हिन्दीमें आपने कृषिविद्या हिन्दीव्याकरण, कहावतकल्पद्रुम आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। अभी लगभग एकवर्ष पहिले आपने 'श्रावकधर्मसंग्रह' नामक जैनग्रन्थ लिख कर प्रकाशित कराया है।

बाबू खूबचन्दजी सोधिया। आप पं० दरयावसिंहजी सोधियाके पुत्र हैं। बी. ए. तथा एल टी. हैं और हिन्दीके होनहार लेखक हैं। अभी आपने हेल्पसके निबन्धोंका अनुवाद 'सफलगृहस्थ' के नामसे लिखा है और प्रकाशित कराया है। आप और भी कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख रहे हैं।

बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी.। आप काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर हैं। खण्डेलवाल जैन हैं। जैनहितैषी, विज्ञान आदि पत्रोंमें आपके हिन्दीके कई लेख प्रकाशित हुए हैं। हिन्दीसे आपको अतिशय प्रेम है। आप इस समय एक विज्ञानसम्बन्धी ग्रन्थ लिख रहे हैं।

पं० वंशीधरजी शास्त्री। आप सोलापुरकी जैनपाठशालामें अध्यापक हैं। संस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं। अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि अनेक ग्रंथोंका आपने सम्पादन और संशोधन किया है। हिन्दीमें आत्मानुशासनका अनुवाद आपने लिखा है। जैनगजटके सहकारी सम्पादकका काम भी आपने कुछ समय तक किया है।

पं० खूबचन्दजी शास्त्री। आप वंशीधरजीके भाई हैं। आजकल सत्यवादीका सम्पादन करते हैं। हिन्दी अच्छी लिखते हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड, न्यायदीपिका और महावीरचरित काव्यका आपने हिन्दी अनुवाद किया है।

मुनि शान्तिविजयजी। आप श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधु हैं। मानवधर्मसंहिता, जैनतीर्थ गाइड, उपदेशदर्पण आदि कई पुस्तकें आपने लिखी हैं। खण्डन मण्डन आपको बहुत प्रिय है। आपकी भाषा उर्दू मिश्रित होती है।

लाला न्यामतसिंहजी। आप हिसारके रहनेवाले अग्रवाल हैं। इस समय जैनसमाजमें आपके थियेट्रिकल गानोंकी धूम है। इस प्रकारकी आप एक दर्जनसे अधिक पुस्तकें बना चुके हैं। दर असलमें आपके कोई कोई पद बहुत अच्छे होते हैं

यति बालचन्द्राचार्यजी । आप खामगांव (बरार) में रहते हैं। श्वेताम्बर यति हैं। इतिहासके जानकार हैं। आपको भी खण्डन मण्डन बहुत प्रिय है। आपने जगकर्तृत्वमीमांसा, मानवकर्तव्य आदि कई हिन्दी पुस्तकें लिखी हैं। आपने

हमको इस लेखके लिखनेमें भी बहुत कुछ सहायता दी है।

मुनि माणिकजी। आप श्वेताम्बर साधु हैं। आपकी मातृभाषा शायद गुजराती है, पर हिन्दी भी आप लिख सकते हैं और हिन्दीसे आपको बहुत प्रेम है। आपने मेरठ जिलेमें हिन्दीके कई सार्वजनिक पुस्तकालय खुलवाये हैं। समाधितंत्र, कल्पसूत्र, आदि कई पुस्तकोंके आपने हिन्दी अनुवाद भी किये हैं और प्रकाशित कराये हैं।

बाबू सुखसम्पतिरायजी भण्डारी। आप श्वेताम्बरसम्प्रदायके ओसवाल हैं। इस समय इन्दौरके 'मल्हारि मार्तण्ड विजय' के सम्पादक हैं। इसके पहले हिन्दीके और भी कई पत्रोंका सम्पादन आप कर चुके हैं। महात्मा बुद्धदेव, स्वर्गीय जीवन, उन्नति, आदि कई पुस्तकें आपकी लिखी हुई हैं।

बाबू सूरजमलजी। आपकी जाति लमेचू है। हरदेमें आपका घर है। इस समय इन्दौरमें रहते हैं। पहले आप जैनमित्रके सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। आज कल जैनप्रभातका सम्पादन करते हैं। जैन इतिहास, पर्युषणपर्व आदि कई पुस्तकें आप लिख चुके हैं।

बाबू कृष्णलालजी वर्मा। जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचारक समितिके आप विद्यार्थी हैं। राजपूत जैन हैं। इस समय बम्बईमें रहकर 'जैनसंसार' का सम्पादन करते हैं। चम्पा, राजपथका पथिक, दलजीतसिंह नाटक आदि कई पुस्तकें आपने लिखी हैं।

पं० लालारामजी। पद्मावतीपुरवार हैं। संस्कृतके अच्छे पण्डित हैं। इन्दौरके जैन हाईस्कूलमें अध्यापक हैं। हिन्दी अच्छी लिखते हैं। आपने सागारधर्मामृत और आदिपुराण इन दो ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद किये हैं। पिछला ग्रन्थ बहुत बड़ा है।

बाबू शंकरलालजी। आप मुरादाबादके रहनेवाले खण्डेलवालजातीय हैं। अच्छे वैद्य हैं। दो तीन वर्षसे 'वैद्य' नामक हिन्दी मासिक पत्रका सम्पादन करते हैं। वैद्यके लेख अच्छे होते हैं। आपने कई वैद्यक-ग्रन्थ भी लिखे हैं।

इस निबन्धके लेखक द्वारा पहले पाँच छह वर्ष तक जैनमित्रका सम्पादन हुआ और अब लगभग सात वर्षसे जैनहितैषीका सम्पादन हो रहा है। नीचे लिखी रचनाओंके सिवाय बहुतसे जैनग्रन्थों और सार्वजनिक हिन्दी ग्रन्थोंका भी इसने सम्पादन-संशोधन आदि किया है:—

१ विद्वद्रत्नमाला प्रथम और द्वितीयभाग (इतिहास)।
२ दिगम्बरजैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ।
३ भट्टारक-मीमांसा (आलोचनात्मक निबन्ध)।
४ बनारसीदासजीका जीवनचरित।
५ कर्नाटक-जैन-कवि (इतिहास)।
६ भक्तामरस्तोत्रका पद्यानुवाद और अन्वयार्थ।
७ विषापहारका पद्यानुवाद।
८ उपमितिभवप्रपंचाकथाके दो भाग (संस्कृतसे अनुवादित)।
९ पुरुषार्थसिद्धयुपायकी हिन्दीभाषाटीका।
१० ज्ञानसूर्योदयनाटक (संस्कृतसे अनु०)।
११ प्राणप्रिय काव्य (संस्कृतसे)।
१२ सज्जनचित्तवल्लभ काव्य "
१३ पुण्यास्रवकथाकोश "
१४ धूर्त्ताख्यान (गुजरातीसे अनुवादित)।
१५ चर्चासमाधानकी टीका।
१६ जान स्टुआर्ट मिलका जीवनचरित।
१७ प्रतिभा (बंगलासे अनुवादित)।
१८ फूलोंका गुच्छा "
१९ दियातले अँधेरा (मराठीसे)।

१ ॐ श्री वाह गुरुजीकी फतह ॥

सिक्खों द्वारा की हुई हिन्दीकी सेवा ।

लेखक—श्रीयुत सिक्ख-साधु सन्तमानसिंह जी, बनारस ।

मान्यवर सभ्यगण! मैं अपनी निर्बल लेखनीसे लिखे हुए इस छोटेसे निबन्ध द्वारा आपको एक सुखद और हितकर समाचार सुनाना हूँ जिसे सुनकर आप अत्यन्त प्रसन्न होंगे।

यह समाचार सिक्ख संप्रदाय और हिन्दीके विषयमें है। संभवतः यह बात आपने आज पर्यन्त कभी न सुनी होगी कि, पंजाब देशवासी सिक्ख संप्रदायका भी हमारी प्यारी हिन्दीसे कोई संबन्ध है, मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि पड़ोसमें रहनेवाली जगत प्रसिद्ध सिक्ख-जातिके साहित्यके विषयका आप लोगोंको बहुत कम परिचय है। ऐसा होना आपके लिए उचित नहीं है। सिक्ख संप्रदाय भी आपका ही एक अंग है-आपका प्यारा बन्धु है। उसने आज पर्यन्त जो कुछ किया है आपके लिए किया है। आज पर्यंत उसने जो अनन्त कष्ट सहे हैं आपके लिये सहे हैं। अभी बहुत दिन नहीं हुए उसने इस हिन्दू और हिन्दीके लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया था—अपने छोटे छोटे बच्चोंको और वृद्ध पिताको इसपर न्योछावर किया था। अभी तो उसके वे घाव भी नहीं सूखने पाए हैं जो उसने इस पूज्य हिन्दू तथा हिन्दीके लिये खाये हैं।

मैं चाहता हूँ कि इस उपयोगी समयमें और और विषयोंको छोड़ केवल सिक्ख संप्रदायके हिन्दी प्रेमकी एक आवृत्ति करूँ। धर्मात्मा सिक्ख जातिका भूतपूर्व हिन्दीके साथ क्या संबन्ध था, उसने इसकी उन्नतिके लिए कौन कौनसे प्रयत्न किये थे, और उसे इस दुस्साध्य उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कौन कौनसी विघ्न—बाधाओंका सामना करना पड़ा था एवं सिक्ख गुरुओंके हिन्दीके विषयमें कैसे विचार थे। आजसे अनुमान ४०० सौ वर्ष पूर्वका सिक्ख-साहित्य देखनेसे हमको पता लगता है कि सिक्खगुरु और सिक्ख—समुदायके लोग हमारी हिन्दी और हिन्दू—धर्म्मका ही उद्धार करते थे। क्या उनकी धार्मिक पुस्तकें, क्या इतिहास चाहे जिसे उठाकर देखिये आपको सब हिन्दीही हिन्दी नज़र आवेगी। वे पंजाबके निवासी थे। पंजाबी भाषाकेही साथ उनका विशेष संबंध था, पंजाबीके उद्धारका भारभी उन्होंने अपने ही ऊपर लिया था और अपनी बलवान लेखनी उसके लिये पहिले पहल उन्होंनेही उठाई थी; जो आजतक अबाध्य रूपसे चल रही है; परन्तु फिरभी सिक्खोंके विषयमें अधिक विश्वासके साथ यही कहा जा सकता है कि उनका हिन्दीमें ही अधिक प्रेम था और हिन्दी प्रचारके लिए ही उन्होंने अधिक प्रयत्न किये। सिक्ख इतिहाससे इसी बातके हमें अनन्त उदाहरण मिलते हैं। सबसे पहले हम श्रीगुरु नानक देवजीके हिन्दी प्रेमके विषयमें लिखते हैं। जब हमारा पूज्यभारत हमारी पश्चिमोत्तरीय भिन्न धर्मावलंबी जातियों द्वारा पद दलित और अपमानित होचुका था। जब हमारी परंपरा प्राप्त पवित्र ग्रंथराशि नष्ट भ्रष्ट होचुकी थी और हमको अपने प्यारे धर्मका त्राणकर्ता और आश्रयदाता कहीं भी कोई दिखाई नहीं पड़ता था। हम आश्रय वहीन और देश वहीन होगए थे। ऐसे विकट समयमें अब

कि तोपोंकी गड़ गड़ाहट कानोंको फाड़ रही थी और धर पकड़की भयावनी ध्वनि हम लोगोंके हृदयोंको विदीर्ण कर रही थी, ठीक ऐसे ही समयमें एक श्वेत समश्रु दीर्घाकाय महापुरुष हमको आश्रय प्रदान करनेके लिये, हमारी मंगल कामनाके लिये, विश्वाधार परमात्मासे दोनों हाथ उठाकर जो प्रार्थना कर रहे थे वह प्रार्थना हिन्दीमें ही थी। उन्होंने भूत प्रेत, मीरां मदार, मढ़ी मसाणी आदि मिथ्या देव पूजाको छुड़ाकर, हमको एक परमात्माकी पूजाके लिये जो उपदेश दिये थे वह भी हिन्दीमें ही थे। हमारे गृह-विवाद और वैष्णव-शैवादि झगड़ोंको मिटाकर परस्पर भ्रातृभाव और सम्मिलनशीलता तथा ऐक्यकी वृद्धिके लिए जो अमृत तुल्य उपदेश उन्होंने दिए थे, वे भी हिन्दीमें ही थे। तिब्बत, सीलोन, बंगाल आसाम, जगन्नाथ, द्वारिका, मक्का मदीना, आदि स्थानोंमें जाकर हमारे उद्धार तथा सुख शान्ति प्रदान करनेके लिए जो जो वचन उन्होंने कहे वह भी हिन्दी भाषामें ही थे। कहाँ तक कहा जाय मुझे तो गुरु नानक देवजीके पवित्रोपदेशोंमें सिवाय हिन्दी भाषाके और कोई अन्य भाषा नहीं ज्ञात होती। वही उपदेश परम्परा द्वारा प्राप्त अबभी हिन्दीमें ही है। बारीकीके साथ देखनेसे उसमें दूसरी भाषा भी मिलती है पर वह नहींके बराबर है। वे हिन्दी-भाषासेही प्रधानतः प्रेम करते थे। समयके अनुकूल और सबसे प्रथम नवीन प्रथाके अनुसार उन्होंने किस प्रकार हिन्दीभाषाके उद्धारका कार्य प्रारंभ किया था और किस प्रकार हिन्दी-उद्धारकी श्रृंखलाबद्ध परंपराप्राप्त प्रथा सिख संप्रदायमें गुरुनानकदेवजी द्वारा आज पर्यन्त प्रचलित है, यह बात भी उनके उपदेशोंसे ज्ञात हो सकती है। परम्परानुसार "गुरु अर्जुनदेवजीने" जो हिन्दीकी सेवाकी है उसका भी थोड़ा बहुत वर्णन करनेका मैं आगे प्रयत्न करता हूँ।

सिक्खोंके पाचवें गुरु, गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखक थे। आपने गुरुनानक देवजी, गुरु अंगदजी, गुरु अमरदासजी, तथा गुरु रामदासजीकी, हिन्दीमय वाणीका संग्रह कर और अपनी निज वाणीको उसमें मिलाकर, अपने पूर्व्वज गुरुओंकी स्मृति स्वरूप 'गुरु ग्रन्थ साहब' की रचना की। यह अनुपम ग्रन्थ, 'गुरु ग्रन्थसाहब' तबसे आज पर्यन्त सिक्खोंका धर्म ग्रन्थ है और आगे जब तक पृथ्वी है तब तक रहेगा। इसमें हिन्दी भाषामें लिखे हुए मनुष्योपयोगी ज्ञान और भक्ति मय अनंत उपदेश हैं, जिनको पढ़कर तथा मनन करके मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, साथही संसार जालसे बचकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। संवत १६६६ में गुरु अर्जुनदेवजीने पंजाबके प्रसिद्ध अमृतसर नगरमें इसकी प्रतिष्ठा की थी। यह 'ग्रन्थसाहब' करतारपुर नामक ग्राममें अब तक मौजूद है। जो जो ग्रंथ आज पर्यंत सिक्खोंमें प्रचलित हुए हैं सब इसीकी अक्षर परिवर्त्तनरूप प्रतिलिपी हैं। इसमें प्रायः हिन्दीकी ही प्रधानता है। प्रातःस्मरणीय गुरु गुरुतेग बहादुरजी, जिन्होंने हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिए दिल्लीमें आत्मबलिदान किया था- अपना पवित्र मास हिन्दू धर्मपर न्योछावर कियाथा। उन्होंने धर्म विनाशक औरंगजेबके सम्मुख जो सब साधारणको संसारकी असारतापर उपदेश दिए थे, वह भी शुद्ध हिन्दी भाषामें ही थे। निमानाके मान, निराश्रितोंका आश्रय, वीरसिरोमणि गुरु गोविन्दसिंहजीने, रक्तमिश्रित धूलिमेंसे हमारे मुख और नासिकाको उठाकर, अपने हाथसे साफकर और अपने पवित्रकंठसे लगा जो हमको वीरोचित शिक्षा दी थी वहभी हिन्दीमें ही थी। कहाँ तक लिखाजाय मुझे तो सिक्ख धर्मके ग्रंथोंमें सिवाय हिन्दीके अन्य भाषा बहुत कम प्रतीत होती है। जिधरसे सुनता हूं धर्ममय हिन्दी भाषाके शब्द सुनाई पड़ते हैं। इसी कारण

कहता हूं कि, हिन्दी भाषाका सिक्ख धर्मसे घनिष्ट संबन्ध है । जब तक सिक्ख धर्मकी तेजोमय ज्योत्सनायें भारतवर्षमें चमकती रहेंगी, तब तक हिन्दी भाषाके साथ सिक्खधर्मका यह अटूट संबंध बना रहेगा ।

सिक्ख संप्रदाय उन प्रान्तोंसे भी वैसाही संबंध रखता है जिनके निवासी अधिक हिन्दी भाषा भाषी हैं । क्योंकि इसके धर्माचार्योंने युक्त-प्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहारादि प्रान्तोंमें भ्रमण करके वहांके निवासियोंको भी सुद्ध हिन्दीमें ही धार्मिक उपदेश दिए थे काशी, प्रयाग, अयोध्या, पटना, मथुरा, आगरा, ग्वालियर आदि स्थानोंमें उनके स्मारक स्वरूप बने हुए धर्ममंदिर आदि स्थान इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

वीराग्रगण्य श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीका जन्म पटनेमें हुआथा । उन्होंने अपनी बाल्यावस्थाके अधिक दिन वहीं व्यतीत किये थे और वहीं उन्होंने संस्कृतकी उच्चशिक्षा तथा हिन्दीकी शिक्षा पाई थी । इस कारण भाषाके साथ-साथ देशसे जो उनका वैसाही संबंध था, जैसाकि पंजाबके साथ था ।

सिक्खगुरुओंने स्वप्नमें भी कभी इस बातकी कल्पना न की होगी कि हमारे धर्मोपदेश-पंजाबप्रान्तमें ही सीमाबद्ध रहेंगे । वे समझते थे कि हमारा देश केवल पंजाब ही नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष है । हमारा संप्रदाय मनुष्य-संप्रदाय है । सम्पूर्ण हिन्दुका उद्धार करना हमारा परम कर्त्तव्य है । इसीलिए उन्होंने अपने पवित्र विचारोंकी व्याख्या हिन्दुस्थानकी प्रधान भाषा हिन्दीमें ही की थी । सम्पूर्ण हिन्दुस्थानमें भ्रमण करके उन्होंने देशके साथ अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित किया था, जो आज पर्यन्त सुरक्षित है और भविष्यमें भी सुरक्षित रहेगा ।

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी संस्कृत और फारसीके अद्वितीय विद्वान और बृजभाषा-हिन्दीके अनुपम कवि थे । वे अपने समयकी देश-दशासे बहुत अच्छी तरह परिचित थे । बिगड़ी हुई भारतकी दशाके सुधारनेके पक्षपाती थे । भारतपर मुसलमानों द्वारा होनेवाले अत्याचारोंके विरोधी थे । भारतवर्षकी विद्या और बलको यथा साध्य समुन्नत करनाही उनका एक मात्र अभीष्ट था ।

गुरु गोविन्दसिंहजीके समयमें भारतीय भाषाओंकी शिक्षाका एकदम अभाव था और प्रायः अन्य विषयोंकी शिक्षाका भी अभावही था । परम्परागत भारतके देशी विद्यालय नष्ट हो चुके थे । भारतकी उन्नत भाषाओंमें लिखे हुए कला कौशल विषयक ग्रंथ मुसलमानों द्वारा जला दिये गए थे । देशमें अविद्यान्धकारका साम्राज्य स्थापित होगया था । अधिकांश वर्ग शिक्षाके नामसे चिढ़ता था । देश मूर्खता और अज्ञानकी पाशमें खूब जकड़कर बंधा हुआ था । कहीं कहीं मस्जिदोंमें थोड़ी बहुत फारसी-उर्दूकी शिक्षाका प्रबंध था । यह शिक्षा मस्जिदोंके मुल्लाओं द्वारा मुसल्मान बालकोंको दी जाती थी । यदि किसी हिन्दूको कुछ पढ़ना लिखना सीखनेकी इच्छा होती तो वह भी उन मुल्लाओंसे ही सीखता था । यह शिक्षा हिन्दुओंकी प्रकृतिके सर्वथा प्रतिकूल थी । संस्कृत भाषा तो उस समय लुप्तप्राय होरही थी । यदि किसी प्रकार यह कहीं थी तो केवल ब्राह्मणोंके पास थी । वे महापुरुष उसमेंसे एक अक्षर भी किसीको देना पसन्द नहीं करते थे । यहां तक कि परस्परभी किसीको नहीं पढ़ाते थे । जिसके पास जो पुस्तक आजाती थी वही उससे लाभ उठाता था । परिणाम यह हुआ कि देशके ब्राह्मण भी धीरे धीरे निरक्षर होगये और ब्राह्मणों-द्वारा होनेवाले धर्मकार्य भी एक प्रकारसे बन्द होगए । शिक्षाके अभावसे परस्परका प्रेम नष्ट

होगया। एक हिन्दू दूसरे हिन्दूको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा।

हमारे पूज्य, कर्तव्यप्रिय गुरु गोविन्दसिंहजी शिक्षाकी इस शोचनीय दशाको भला कब देख सकते थे। उन्होंने शिक्षा-विस्तारका अन्य कोई उपाय न देख सम्वत् १७४३ में दूर दूरके ब्राह्मणों-को एकत्रकर उनके प्रति देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरोंमें संस्कृत और हिन्दी भाषाकी पाठशालाएँ खोलनेका अपना मन्तव्य प्रगट किया। इस कार्य्य-में होनेवाले धन व्ययका सम्पूर्ण भार उन्होंने अपने ऊपर लेनेकी प्रतिज्ञा की। परन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि देश-दशाको न जानने-वाले ब्राह्मणोंने, देशहितैषी गुरुके इस प्रश्नका उत्तर कर्कश और अप्रिय शब्द-रूपमेंही दिया और दक्षिणा ले लेकर वे अपने अपने गृह को चलते बने। यह हाल देखकर गुरुके आशान्वित हृदय पर एक गहरी चोट लगी। तबसे गुरुजी ब्राह्मणोंकी ओरसे इतने निराश और उदासीन होगये कि उन्होंने फिर कभी अपने किसी कार्यको ब्राह्मणोंके आसरेपर नहीं छोड़ा। गुरु गोविन्दसिंहजीको आशा थी कि वे इन विद्वान् और परमार्थप्रिय ब्राह्मणों द्वारा सर्वसाधारणको शिक्षा दिलाकर सफल मनोरथ होंगे; किन्तु परिणाम इसके विपरीत हुआ।

गुरु गोविन्दसिंहजी ऐसी तुच्छ विघ्न बाधा-ओंके कारण अपने महानुद्देश्यसे विरत होनेवाले न थे। उन्होंने शीघ्रही अपने सिक्ख-समुदायमेंसे पाँच बुद्धिमान् सिक्ख ब्रह्मचारियों-को चुनकर संस्कृत सीखनेके लिए काशीमें भेजा। इसके पश्चात् स्वयं महाराजने ही अपनी प्रचण्ड लेखनीको हिन्दीका उद्धार करनेके लिए उठाया और मनुष्योपयोगी वीर रस पूर्ण हिन्दी भाषाकी कवितामें पुस्तक रचना प्रारंभ कर दी। गुरुजीके पास उस समय वृत्तिभोगी बावन कवि रहते थे। जो उस समय तक केवल आमोद प्रमोद-के लिए ही कविता रचकर गुरुजीको प्रसन्न किया करते थे। किन्तु अब उनके लिए भी गुरुजी द्वारा आज्ञा प्रचारित की गई कि सब कविगण अपनी अपनी रुचिके अनुसार हिन्दी भाषाकी कवितामें पुस्तक लिखना प्रारंभ करदें। सर्वोपयोगी संस्कृत पुस्तकोंका अनुवाद विशेषकर गुरुजी ही किया करते थे।

सिक्ख गुरुओंका प्रारम्भसे ही यह विचार रहा था कि संस्कृत भाषा प्राचीन अवश्य है, परंतु इसकी शिक्षासे सर्व्वसाधारण अधिक लाभ नहीं उठा सकते। अगाध समुद्रके समान अनेक ग्रंथों-का मंथन कर, पूर्ण विद्वान् बनना बड़ा दुर्घट है। यदि किसीने प्रगाढ़ परिश्रम कर संस्कृत भाषा किसी तरह पढ़ भी ली तोभी उससे कुछ अधिक लाभ नहीं होगा। इसलिये गुरुओंने भाषाको ही अधिक पसन्द किया था। इसके लिये हिन्दी भाषाही उत्तम समझी गई थी। क्योंकि इसी भाषाको सर्व्व-साधारण सुखेन समझ सकते थे और समझ सकते हैं। इस कार्य्यसे बहुतसे लोगोंने उनकी यह कहकर निन्दा की है कि वे संस्कृत भाषा जानते ही नहीं थे। परन्तु यह उन निन्दकोंकी भूल है।

अब गुरुजी इस प्रकार हिन्दीके प्रचारमें लगेहुए थे कि कुछ काल पश्चात् काशीमें पढ़नेके लिए भेजे हुए पांचो सिक्ख ब्रह्मचारी भी गुरुजीके पास विद्या प्राप्तकर लौट आए। उनके द्वारा गुरुजीकी आज्ञासे पाँच स्थानोंमें पाँच पाठशालाएँ खोली गईं। हर पाठशालामें शत शत विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। साथहीसाथ भाई बीरसिंहजी, रामसिंहजी, गण्डासिंहजी, सेनासिंहजी और करमसिंहजीभी हिन्दीमें पुस्तक रचना करने लगे। इस प्रकार भारतके एक खंडमें गुरु कृपासे हिन्दी भाषाका प्रवाह बहने लगा। उस समय जिधर देखो उधर हिन्दीके ही कवि दृष्टिगोचर होते थे। महाकवि गाई

सन्तोषसिंहजीने इस अनुपम हिन्दी भाषाके प्रचार-का वर्णन करते हुए लिखाहै कि गुरुके सईसभी उस समय हिन्दीमें कविता करते थे। ऐसे आनन्द-के समयमें, हिन्दीके इस अनुपम प्रचारको और संस्कृत पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादोंको देखकर स्पर्धाप्रेमी बहुतसे लोगोंने गुरुके इस कार्य्यकी निन्दाकी और संस्कृतका अपमान करताहै कहकर स्थान स्थानपर उनके विरुद्ध भयंकर अपवाद खड़े करदिए। इस प्रकार भारत माताके सच्चे हितैषी गोविन्दसिंहजीके हिन्दी प्रचारमें एक और विघ्न आ खड़ा हुआ। फिरभी गुरु गोविन्दसिंहजीने इन अनुचित अपवादोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने निर्भयतासे अपनी शक्तिभर हिन्दीभाषाकी सेवाके लिए अपनी लेखनीको और भी स्वतंत्रता देदी। समयकी दशाको न समझकर अनुचित अभिमानके कारण अनधिकारकी दुहाई दे देशको शिक्षासे वंचित रखनेके पक्षपातियोंकी बातों पर गुरुजी किस प्रकार ध्यान दे सकते थे?

विधिकी विचित्र माया है। उसको तो उस समय कुछ औरही प्रिय था। ठीक ऐसेही समयमें जबकि महाराज, भारतकी एक प्रसिद्ध भाषाके उद्धार-कार्य्यमें लगे हुए थे कुछ लोगोंके शिकायत करनेपर या स्वयँ उस समयके बादशाह औरंगजेबने गुरु गोविन्दसिंहजीको हिन्दुओंका मुखिया एवं हिन्दुओंको मुसलमानोंके विरुद्ध उभारनेवाला राजविद्रोही कहकर उनपर चढ़ाई करदी। पंजाब-भरकी मुसलमानसेना गुरु गोविन्दसिंहजी पर टिड्डीदलकी तरह चढ़ आई। उस समय गुरु गोविन्दसिंहजीके पास मुशकिलसे चालीस पचास हजार पैदल और सवार-सेना थी। फिर भी सिक्खोंने बादशाही फौजके साथ टक्कर ली। इतनी बड़ी बादशाही फौजके सम्मुख वह कबतक ठहर सकते थे। बीसियों दिन सामना करने पर भी अन्तमें अन्दपुरका पहाड़ी किला उन्हें छोड़नाही पड़ा। उस समय गुरुका संचय किया हुआ हिन्दी-पुस्तक-भँडार मुसलमानोंके हाथ लग गया। उन्होंने उसे सिक्खोंकी अलौकिक शक्तिका कारण समझकर सदाके लिए, पंजाबकी सतलज नदीके समर्पण करके; मानो यह सूचित किया कि बस कुछ काल पर्य्यन्त हिन्दीभाषा इसी सीमा-में बद्ध रहेगी।

गुरु गोविन्दसिंहजीके हिन्दी-भंडारका इस प्रकार अन्त होनेपर भी गुरुजीकी मृत्युके समय सम्वत् १७७८ में प्रसिद्ध सिक्ख भाई मनीसिंहजी-ने गुरु द्वारा लिखित या गुरु द्वारा अनुवादित हिन्दीके अनेक ग्रंथोंका-जो यत्र तत्र सिक्खोंके पास शेष रहगए थे, संग्रह करके गुरु गोविन्दसिंह-जी की स्मृति स्वरूप एक 'दशमग्रंथ' नामका ग्रन्थसाहब प्रतिष्ठित किया। अभी उसकी अधिक प्रतियां नहीं लिखी गई थीं कि संवत् १७९५ में भाई मनीसिंहजी लाहौरके किलेके पास सर्व-साधारणके सम्मुख मुसलमान धर्मको न स्वीकार करनेके कारण नवाब बहादुर खाँ द्वारा कतल किए गए। फिर न मालुम उस समय वह ग्रन्थसाहब कहाँ लोप होगया। फिर १८१६ में पंजाबके प्रसिद्ध धार्मिक स्थान 'दमदमे' साहबमें सिक्ख समु-दायने मिलकर गुरु गोविन्दसिंहजीके स्मृति स्वरूप रहेसहे हिन्दी ग्रन्थोंको एकत्र कर एकऔर ग्रंथसाहब स्थापित किया, जो आज पर्यन्त सिक्खों-में प्रचलित है। इस ग्रन्थमें बहुत पुस्तकोंका संग्रह है जिनकी रचना हिन्दी-कवितामें है।

आप लोगोंके सुभीतेके लिए इस पुस्तक-संग्रहका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है। जिससे इन ग्रन्थोंको देखनेके समय कुछ सुभीता हो सकेगा। इस संग्रहमें मुख्यतः जाप, अकाल-उस्तति, चंडीचरित्र, विचित्रनाटक, ज्ञान-प्रबोध, चौबीस अवतार, शस्त्रमालादि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

१ जाप नामक ग्रंथका विषय विष्णु सहस्र नाम-की तरह है। यह गुरु गोविन्दसिंहजीका स्वयं लिखा हुआ है और हिन्दीकी कविताके छोटे छोटे २०३ छन्दोंमें समाप्त होता है। सिक्ख लोग प्रातःकाल बड़े आदरसे इसका पाठ करते हैं।

उदाहरणके लिये दो एक पद्य इस ग्रन्थसे हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं:-

१

नमो काल काले-नमो सर्व पाले।
नमो सर्व गौणे-नमो सर्व रौणे ॥ २ ॥
परं धर्म धर्मं-स्वरं प्रोढ पालं।
सदा सर सदा-सिद्धि दाता दयालं ॥ १७ ॥
अछेदा अभेदी-अनामं अकामं।
समस्तोप राजी-समस्तस्त धामं ॥ १८ ॥

(२)

सर्व गंता सर्व हन्ता सर्वते अनभेख।
सर्व सास्त्र न जानही जिहं रूप रंग अरु रेख ॥
परम वेद पुराण जाकहं नेत भाखत नित्त।
कोटि सिंमृति पुरान सास्त्रन आवई वहु चित्त ॥७॥

२ अकाल उस्तति (अस्तुति या स्तुति) नामक ग्रन्थमें परमात्माकी स्तुतिकी गई है। यह ग्रन्थभी गुरुगोविन्दसिंहजी द्वारा लिखा गया है। इसमें २०१ छन्द हैं। भाषा इसकी शुद्ध हिन्दी है। उदहरणार्थ कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं:-

कवित्त।

कतहूं सुचेत हुकै चेतनाको चार कियो,
कतहूं अचिन्त हुकै सोवत अचेत हो ॥
कतहूं भिखारी हुकै माँगत फिरत भीख,
कहूं महाँदान हुकै माँगये धन देत हो ॥
कहूं महाँराजनको दीजत अनन्त दान,
कहूं महाँराजनते छीन छित लेत हो ॥
कहूं बेद रीत कहूं ता-यो बिपरीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सगुन समेत हो ॥१॥

(२)

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि,
भूपनके भूपहो कि दाता महाँ दान हो।
प्राणके बचैया दूध पूतके दिवैया रोग सोग के,
मिटैया किधो मानी महाँमान हो ॥
बिद्याके बिचार हो कि अद्वै अवतार हो कि,
सिद्धताकी सूर्त हो कि सुद्धताकी सान हो।
जोबनके जाल हो कि कालहू के काल हो कि,
सत्रुनके सूल हो कि मित्रनके प्राण हो ॥२॥

इसी पुस्तकमें आपने कई कवित्तोंमें साधुओंको बताया है कि मठोंमें रहनेसे, विभूत रमानेसे, मौन-साधनेसे, बनमें वास करनेसे और दुधाधारी आदि होनेसे मुक्ति नहीं होती, पर ज्ञानसे मुक्ति होती है। इसका भी उदाहरण देखिये।

फूक मल हारी गज गदहा बिभूति धारी,
गिदूआ मसाण बास करयोई करत हैं।
घुघू मठबासी लगे डोलत उदासी मृग,
तरवर सदीव मोन साधेई मरत हैं ॥
बिन्दुके सिधैया ताहिं हीजकी बड़ैया देत,
बन्दरा सदीव पाय नागेही फिरत हैं।
अंग ना अधीन काम क्रोध मैं प्रवीन एक,
ज्ञानके बिहीन छीन कैसेके तरत हैं ॥ १ ॥

इसी ग्रन्थमें एक स्थानमें दुर्गाजीकी स्तुति इस प्रकार है: —

त्रिभंगी छन्द।

दुरजन दल दंडन असुर विहंडन दुष्ट निकन्दन आदि वृते।
चछरासुर मारण नरक निवारण पतित उधारण गूढ़ गते ॥
अछै अखंडे तेज प्रचंडे खंड उदंडे अलख मते।
जैजै हो सी महिसासुर मरदन रंमक प्रदन छत्र छिते ॥१॥

३ छोटासा ग्रन्थ 'ज्ञान प्रबोध' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें महाभारतके पश्चात्के परिक्षित, जनमेजय आदि कई एक राजाओंका संक्षिप्त जीवन चरित्र है। इसमें ३३५ छन्द हैं।

४ सबसे बड़ा ग्रन्थ इसमें 'विचित्र नाटक' है जिसकी रंगभूमि हमारी यह 'भारतमाता' है। इस भारतमाताने समय समय पर अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए और अपने पर होनेवाले अत्याचारोंके मिटानेके लिए जिन अनेक महापुरुषोंको तथा सती साध्वी स्त्रियोंको उत्पन्न किया है; वेही इस नाटकके अभिनयकर्ता हैं। इस नाटकके अन्तर्गत बहुतसे ग्रन्थ हैं जो बड़ी ही वीररस पूर्ण ओजस्विनी व्रजभाषा रूपी हिन्दीमें लिखे गये हैं। इन ग्रन्थोंका विषय प्रायः जीवन चरित्र है।

विचित्रनाटकमें सबसे प्रथम गुरुगोविन्द-सिंहजी का स्वयं लिखा हुआ संक्षिप्त आत्मावृत्त है। जो कहीं कहीं अधूरा रह गया है। इसके देखनेसे मालूम होता है कि अपना असली जीवन-चरित्र जो गुरुजीने लिखाथा वह तो लुप्त हो गया, पर उसका कोई कोई अंशजो बच गया है वही इस पुस्तक में सुरक्षित है। इसमें सब मिलाकर ४७१ छन्द हैं।

विचित्रनाटकमें चंडीचरित्र अर्थात् दुर्गाका जीवन इतिहास भी है। यह संस्कृतकी प्रसिद्ध पुस्तक दुर्गा सप्तशतीका भावानुवाद है। यह दुर्गा-चरित्र वास्तवमें दर्शनीय दुर्गाका जीवन इतिहास है। इसकी कविता बड़ीही रसीली और भाव पूर्ण है। इसके पढ़नेसे कायरसे भी कायर पुरुषका हृदय वीर रससे भर जाता है और इसका पुनः पुनः पाठ करनेको मन चाहता है। जो लोग संस्कृत नहीं पढ़ सकते उनके लियके पढ़नेके लिए यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी है। एक चंडीचरित्र और है जो शुद्ध पंजाबी भाषामें है। वह पंजाबीके ५५ सिरखिड़ी (सिखरणी) छन्दोंमें समाप्त होता है। सिक्ख लोग दुर्गा-चरित्रको भोजन करनेके पहिले कभी नहीं पढ़ते। क्योंकि ऐसा करनेसे उनके विश्वासानुसार परस्पर लड़ाई झगड़ा होनेकी संभावना रहती है। हिन्दीका चंडीचरित्र दो खण्डोंमें दो प्रकारसे लिखा हुआ है। पहिला कवित्त सवैयोंमें और दूसरा रुआमाल, भुजंगप्रयातादि छन्दोंमें है। विषय दोनों-का एक ही है। दोनोंमें आठ आठ अध्याय हैं। एकमें २३३ छन्द और दूसरेमें २६२ छन्द हैं। यह भी गुरुगोविन्दसिंहजीकी लेखनी द्वारा ही लिखा गया है।

इसी ग्रन्थ में अनन्त हिन्दुओंके मान्य, चौबीस अवतारोंके संक्षिप्त जीवन चरित वर्णन किये गये हैं। ये बड़ीही रोचक भाषामें लिखे गये हैं, पर कई अवतारोंका इतिवृत्त बहुत ही संक्षिप्त है जो नहींके बराबर कहा जा सकता है। तथापि वाल्मीकीय रामायणका भावानुवाद-रामचरित्र, और भागवतके दशम स्कन्धका भावानुवाद-कृष्णचरित्र, भविष्यपुराणका भाषा-नुवाद-कल्कीचरित्रादि अत्यन्त मनोहर और पठनीय हैं। स्वयं पढ़नेसे ही उनका रसास्वादन किया जा सकता है। मेरी लेखनी इतनी बलवती नहीं है कि जो आपलोगोंको उनकी योग्यताका परिचय करा सके। तौभी इतना अवश्य कह सकता हूं कि यदि कोई पुरुष वीररसकी पराकाष्ठाका परिचय चाहता हो या यों कहिये कि मूर्तिमान वीररसका दर्शन करना चाहता हो तो वह इन ग्रन्थोंद्वारा कर सकता है। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं लिख सकता। इन ग्रंथोंके विषयको लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। क्योंकि सब लोग उन संस्कृत ग्रंथोंके विषयोंसे परिचित हैं, जिनके ये अनुवाद हैं। इसमें रामचरित्रके ८६४ छंद हैं, और कृष्णचरित्रके २४९२ छन्द तथा कल्की-चरित्रके ५८८ छन्द हैं॥

इस ग्रन्थके आरम्भमें कविने खड्गकी स्तुति कई छन्द और सवैयोंमें की है। उसका एक छन्द इस प्रकार है :—

छन्द त्रिभङ्गी ।

खग खंड बिहंडं, खलदल खंडं, अति रणमंडं, बरबंडं ।
भुज दंड अखंडं, तेज प्रचंडं, जोति अमंडं, भानु प्रभं ॥
सुख सन्तां करणं, किल्विख हरणं, असि सरणं ।
जैजै जग कारण, सृष्टि उबारण, मम प्रति पारण, जैतेगं श्रीतेगं

भागवतके आधारपर श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन भी कविने बड़ीही उत्तमतासे किया है। यह वर्णन इतने विस्तारके साथ किया गया है कि यदि हर एक विषयका एक ही एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाय तो एक बृहत् संग्रह होजाय। अतः स्थानाभावके कारण केवल दो चार उदाहरण देकर ही सन्तोष किये लेते हैं।

पूतना बध (सवैया)

गोद दयो जसुधा तब ताके सुचन्न मनैं तबही गुन लीनो
भाग बड़े दुरबुद्धनके भगवानहिंको जिन अम्र चन दीनो ॥
छीर रकत सु ताहिके प्रान सु एँच लये सुरमों यह कीनो
ज्यौं गगड़ी तुमड़ी मन लायकैं, तेल लए गुन काढ़िकैं पीना

त्रणावर्त बध (सवैया)

जौ हरिजौ नभ बीच गयो, करतौ अपने बलुको तन चट्टा
रूप भयानकको धरिकैं, मिलि युद्ध कर्‌यो तब राछस फट्टा
फेरि सँभारि दसो नख आपने, कैं कैतुरा सिर सत्रुको कट्टा।
कंठ गिर्‌यो जनु पेड़ गिर्‌यो, इम मुंड पर्‌यो जनु डारते लट्टा

सवैया ।

कान्हको आरसमान त्रिया, ब्रिज कुंज गलीनमें खेल मचायो
गाय उठी मोद गीत भलीबिधि, जो हरिके मन भीतर भायो ॥
देव गंधार औशुद्ध मल्हार, बिलैं सोऊ भाखि ख्याल बसायो ।
रीझ रह्यो सुर मंडल सौ, सुरमंडलपैं जिनहू सुनि पायो ॥१

जरासंध आदिके युद्धका वर्णन कविने बड़ीही वीररसपूर्ण कवितामें किया है। जान पड़ता है कि कविने युद्धवर्णनके लियेही इतना बड़ा ग्रंथ लिखनेका प्रयास किया है।

सवैया ।

सीस कटे कितने रनमें, मुखते तेऊ मारही मार पुकारैं ।
दौरत बीच कबन्ध फिरैं, जहँ स्याम लरैं तिहँ ओर पधारैं॥
जो भट आइ भिरैं इनसों, तिनको हरि जानकै धाय प्रहारैं ।
जो गिरि भूमि परैं मरकै, करते करवार न भूपर डारैं ॥

कवित्त ।

कोप अति भरे रन भूमिते न टरे,
दोऊ रीझ रीझ लरे दल दुंदुभी बजाइकै ।
देव देखैं खरे गन अच्छ असुर रे नभते,
पुहुप डरे मेघ बूंद ज्यों आइकै ॥
केते जूझ मरे केते अपछरन बरे,
केते गोधन चरे केते गिरे घाई खाइकै ।
केहरि ज्यौं अरे केते खेत देख डरे केते,
लाजि भारि भरे दौर परे अरिराइकै ॥

सवैया ।

यों सुनकैं बतियाँ तिहँकी, हरि कोपकह्यो, हम युद्ध करैंगे ।
बान कमान गदा गहिकैं, दोऊ भ्रात सबै अरिसैन हरैंगे ॥
सूर सिवादिकते न भजैं, हनिहैं तुमको, नहिं जूझ परैंगे ।
मेरु हलैं सुखिहैं निधिबार, तऊ रनकी छिति ते न टरैंगे ।

सवैया ।

छत्रिको पूत हौं बाह्मनको नहिं कै तपु आवत है जु करौं ।
अरु और जंजार जितो गृहको तुहि त्याग कहाँ चित तामैं धरौं
अबरीझके देहु दई हमको जो अहौं बिनती करतार करौं ।
जब आइकीऔध निदान बनैं अतिही रनमैं तब जूझ मरौं ॥
धन्न जियो तिहँको जगमैं मुखते हरि चित्तमें युद्ध बिचारैं।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़ै भवसागर तारैं ॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सुदीपक ज्यों उजिआरैं ।
ज्ञानहिंकी बढ़नी मनो हाथलै कायरता कुत बार बुहारैं ॥

इस संग्रहमें एक पारसनाथचरित्र भी है। सम्भवतः इस विषयमें कुछ लिखनेकी आवश्यकता है। क्योंकि आप लोग इन पारसनाथ-जीसे बहुत कम परिचित होंगे॥

पारसनाथजी हमारे मान्य जैनसंप्रदायके तीर्थंकर नहीं हैं। गुरुमहाराजने इनको रुद्रका

अवतार लिखा है, और ये गोरखनाथजीके शिष्य मछन्दरनाथ द्वारा उपदेशित हुए थे। पारसनाथजीने पहिले समग्र पृथ्वीको विजय किया। पश्चात् संपूर्ण देशके विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ किया, फिर सब सन्यासियोंको एकत्र करके उनके मत्स्यासिकादि चढ़नेके विषयमें उनसे शास्त्रार्थ किया और विजय पाकर उन्हें नौकाओं पर चढ़ा चढ़ाकर समुद्रमें डुबो दिया। इसके अनन्तर अपने समीपवर्ती राजाओंसे पूछा कि बताओ अब मेरा कोई शत्रु तो शेष नहीं रहा। तब एक राजाके बताने पर मछन्दरनाथको अगाध समुद्रमेंसे ढूंढ़कर निकाला। और मछलीके पेटसे निकले हुए मछन्दरनाथसे पूछा कि अब तुम बताओ कि मेरा कोई शत्रु तो शेष नहीं है। तब मछन्दरनाथजीने निरभयतासे कहा कि राजन! तुम्हारा एक ऐसा शत्रु अब भी है जिसको जीते बिना आज पर्यंत तुमने जो कुछ किया है वह सब व्यर्थ है और वह शत्रु तुम्हारा मन है। पारसनाथके पूछने पर मछन्दरनाथजीने आसुरी संपत्ति तथा दैवीसम्पत्तिका वर्णन किया। फिर दैवीसम्पत्ति और आसुरीसम्पत्तिका परस्पर युद्ध हुआ। तब इनकी जीत हुई और मन वशीभूत हो गया। इन पारसनाथके अपूर्व चरित्रके वर्णन में भी वीररसकी ही अधिकता है। यह बहुत प्रिय ग्रंथ है और इसमें ३५८ छन्द हैं। नीचेके दो एक उदाहरणोंसे आपको इसकी सत्यता ज्ञात होगी :—

बसन्त बिसनपद।

इहिबिधि फाग कृपानन खेले।
सोभत ढालमाल ढढमालै मूठ गुलालन सेले॥
जान तुरंग भरत पिचकारी सूरन अंग लगावत।
निकसत श्रोण अधिक छबि उपजत केसर जान सुहावत॥
श्रोणत भरी जटा अति सोभत छबिहि न जात कह्यो।
मानहु परमप्रेम सो डार्‌यो रंगुर लाग रह्यो॥

जहँ तहँ गिरत भए नाना बिधि सायक बहु परोय।
आतुर होत भमार पसार के अधिक भ्रमित हूँ सोय॥१॥

सवैया।

का भयो जो सबही जग जीत सु लोगनको बहु त्रास दिखायो।
औरकहा जुपै देसबिदेसन, माहि भले गज गाहि बधायो॥
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सर्‌यो नहिं लोग गयो परलोग गमायो॥

छप्पै।

जवन अ,हंके ग्रुह्र करत कैरव रन घाव।
जासकोपके कीन सीस दस सीस गवाव॥
जौन अ,हंके किये देव दानव रन जुम्मे।
जास क्रोधके कीन बहु कुल यादव जुम्मे॥
सो क ता समान सैनाधिपत जदि नरेस बहु भाय है।
बिन इकबिबेक तुम हो नृपति प्रबर समूह को जाय है॥२॥

सवैया।

जोकहूंकालते भाजिके बाचित तोकिहकूट कहोभाजिजैयै।
आगेहूंकाल धरे असि गाजत छाजतहैं तिहते नसि पैयै॥
या तेनके गयो कोवहु दावरे जाहि उपायसें घाव बचैयै।
जाते न छूटिये मूढ़ कहूं बिधि ताकी न क्यों शरण गति पैयै

और एक उल्लेख योग्य दत्तात्रयजीका जीवन चरित्र है। इसमें दत्तात्रयजीके चौबीस गुरुओंका विवरण दिया है। इसमें ४९८ छन्द हैं। इनके अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंहजीके लिखे हुए औरभी अनेक ग्रन्थ हैं।

महाराज गुरु गोविन्दसिंहजीके हिन्दी ग्रंथोंके विषयमें एक औरबात अलौकिकता रखती है। वह यह कि उन्होंने संस्कृत पुस्तकोंके जो अनुवादादि किए हैं या करवाए हैं उनमें मूल ग्रन्थके भावोंमें नाममात्रको भी अन्तर नहीं आनेदिया है। ऐसी अवस्थामें जबकि पुराण और देवी देवताओंकी तरफसे उनके विचारोंमें परिवर्तन हो चुका था, संभव था कि उसमें कुछ अपने भाव भर दिए होते; परन्तु उन्होंने नाम मात्रके लिए भी ऐसा नहीं किया। भूमिकामें उन्होंने अवश्य लिखा है

कि मैं एक परब्रह्म परम पुरुषका दास हूँ। सिवाय उसके मेरा और कोई उपास्य देवता नहीं है। सब देवी देवता उसीकी आज्ञासे और उसीमेंसे आए हैं। यह सब अन्तवान हैं। अन्तमें उसी बेअन्तमें मिल जायँगे। जिसकी लाखोंही ब्रह्मा, लाखोंही विष्णु, लाखोंही रुद्र,लाखोंही पीर पैगंबर,लाखोंही-अन्यदेवी देवतादि दिनरात खड़े स्तुति कररहे हैं। वही परमेश्वर मेरा उपास्य देवता है। उसके अतिरिक्त किसीके लिए मेरे अन्तःकरणमें स्थान नहीं है। मैं उनको संसारके महापुरुष और उद्धार-कर्त्ता स्वीकार करता हूँ। जब जब संसारमें अत्याचार होते हैं परमात्माकी आज्ञासे आकर महापुरुषही उनको नष्ट करते हैं। इत्यादि इस प्रकार श्रीगुरु गोविन्दसिंहके स्मृति स्वरूप 'दशम ग्रन्थका' यह संक्षिप्त विवरणहै। कहना नहीं होगा कि इनसम्पूर्ण ग्रन्थोंकी लिपि 'गुरुमुखी' और भाषा शुद्ध हिन्दी है। यद्यपि परम्परासे गुरमुखी लिपि होनेसे इन सुरक्षित ग्रन्थोंमें कहीं कहीं लिपि दोश आगया-है; परन्तु मेरे पास अनुमान दो सौ वर्ष पूर्वके हस्त लिखित प्राचीन ग्रंथ मौजूद हैं जिनमें लिपि-दोशकी बहुत कम संभावना है। सिक्ख सम्प्रदायमें परम्परासे मर्यादाचली आतीहै कि आदि 'ग्रन्थ-साहिब' या 'दशमग्रन्थ साहिब' में लिखे हुए वाक्योंमें कोई पुरुष एक मात्राभी अधिक या न्यून नहीं कर सकता। इसके विपरीत होनेसे सिक्खोंमें खलबली पड़जाती है और इसका भयंकर परिणाम होता है। सदा स्मरण रखनेके लिए मैंने यहबात-यहाँ लिखदी है॥ अस्तु॥

यहांपर गुरु गोविन्दसिंहजीद्वारा प्रचारित-हिन्दीभाषाका प्रथम उद्योग समाप्त होताहै।

इसके अनन्तर बहुत काल पर्यन्त अपनी मातृ-भूमिको स्वाधीन करनेके लिए सिक्खोंके, मुसलमानोंके साथ युद्ध होते रहे। स्वाधीनता प्राप्त करनेके पश्चात् फिरभी एकबार सिक्खोंने हिन्दीकी वृद्धिके लिये उद्योग किया। दूसरे उद्योगमें अग्रगण्य हिन्दी प्रेमी सिक्ख, भाई सन्तोखसिंहजी, सन्त गुलाबसिंहजी, तथा ज्ञानी ज्ञानसिंहजी हैं। सिक्खोंमें भाई संतोखसिंहजी हिन्दी भाषाके महा कवि कहे जाते हैं। आपने एक सिक्ख इतिहास स्वरूप "सूर्य प्रकाश" नामक बड़ा ग्रंथ निर्माण किया है। इसमें गुरु नानकजीसे लेकर गुरु गोविन्दसिंहजी-के परलोकवास पर्यन्तका इतिहास बड़े विस्तार-के साथ कथारूपसे वर्णन किया गया है। हिन्दीके अनेक छन्दोंमें लिखा हुआ यह ग्रन्थ बड़ी बड़ी सात जिल्दोंमें समाप्त हुआ है। यह ग्रन्थ नानक प्रकाश, बारहराशी, षटऋतु, उत्तरायन, और दक्षिणायन आदि पाँच भागोंमें विभक्त है। सिक्ख मन्दिरोंमें प्रतिदिन इस ग्रंथकी कथा बड़ी श्रद्धासे सुनी जाती है। और यह ग्रन्थ सिक्खोंमें सर्व-मान्यहै।

भाई सन्तोखसिंहजीकी जीवनीके विषयमें हमें एक छप्पयसे अधिक और कुछ भी नहीं मिलता। यह छप्पय उन्होंने नानक प्रकाश नामक ग्रन्थके अन्तमें लिखा है।

॥ छप्पय ॥

श्रीजमना सुख करनि हरनि दुख दलनी कलमल!
सुमति सदन विधिबदन कुमति कदली स्यामजल॥
मन मोहन की प्रिया प्रवाह पावन बहि धरनी।
सविता सुता सुजान त्रास जमदूत निप्ररनी॥
तिह तीर बुरिया नगर इक कवि निकेत लखिए तहाँ।
कर ग्रन्थ समाप्तिको भले गुरु जसु जिस मह सुठ महाँ॥१॥

यह सूर्यप्रकाश नामक ग्रन्थ भाई सन्तोखसिंह-जीने सम्वत् १८८० में समाप्त कियाहै। इनका विस्तृत जीवनवृत जाननेके उद्योगमें मैं लगा हुआ हूँ। ज्ञात होनेपर यथा समय प्रकाशित करूँगा। उस समयके दूसरेकवि महात्मा गुलाबसिंहजीहैं। हिन्दीभाषासे सम्बन्ध रखनेवाला इनका संक्षिप्त-जीवन बड़ाही रोचक है। अपने गुरु गोविन्दसिंह-जीने अपने पाँच सिक्खोंको काशीमें संस्कृत

पढ़नेके लिए भेजाथा तबसे सिक्ख लोग बराबर काशीमें आते रहे और संस्कृत तथा हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त करते रहे।

सन्त गुलाबसिंहजीभी इसी नियमके अनुसार काशीमें आये और रघुनाथ नामी किसी पंडितके घरमें रहने लगे। इधर काशीमें पहिलेही यह समाचार कुछ कुछ फैल चुका था कि ये लोग संस्कृत पुस्तकोंका हिन्दी भाषामें अनुवाद करके संस्कृत भाषाका बड़ा अपमान कर रहे हैं। इसलिए जहाँतक होसके इनको संस्कृत भाषा नहीं पढ़ानी चाहिये। परन्तु सन्त गुलाबसिंहजी बड़े गुरुभक्त थे। आपने यथा साध्य पंडितजीके घरका सब-काम अपने ऊपर लेलिया। यहां तक कि पानी-भरना झाड़ना बहारना, बरतनमलना, पंडितजीके इकलौते छोटे लड़केका लालन पालन करना आदि अनेक कामकाज करनेलगे। परन्तु पंडितजी फिरभी उनको अच्छी तरह नहीं पढ़ाते थे और काम-के लालचसे उनको घरसे निकालभी नहीं सकते थे। जहाँपर पंडितजी अपने और और विद्यार्थियोंको पढ़ाया करते थे, सन्त गुलाबसिंहजीकी कुटिया उससे प्रायः मिली हुईसी थी। ऐसी अवस्थामें पंडितजी जो पाठ अपने शिष्योंको पढाया करते थे, सन्त गुलाबसिंहजी उसको अपनी कुटियामें बैठे बैठे याद करलिया करते थे। और जब कभी उनको कामकाजसे अवकाश मिलता था तो पढ़ेहुए पाठको हिन्दी भाषाकी मनोहर कवितामें लिख-लिया करते थे। हिन्दीमें कविता करना उन्होंने पहिलेही अपने गुरु सन्त मानसिंहजीसे सीख-लिया था। इसी प्रकार धीरेधीरे इनके पास हिन्दीमें एक अच्छा संग्रह होगया। सन्त गुलाब-सिंहजीकी मनोकामना थी कि लोकोपकारके लिए लिखाहुआ यह संग्रह ग्रंथ अपने गुरुकी भेट कर उनको प्रसन्न करूँगा। परन्तु इस पुस्तकके अधिकारी एक औरही गुरु प्रादुर्भूत हुए। वे गुरु और कोई नहीं, वे ही पंडित रघुनाथजी थे।

जब अपना काम समाप्त करके सन्त गुलाब-सिंहजी काशीसे पञ्जाबके लिए प्रस्थान करनेकी तैयारी कररहे थे, ठीक उसी समयमें उक्त पंडितजीको संतजीकी पुस्तकका पता लगगया, जिसे वे आज-तक गुप्त रीतिसे रखे हुए थे। जिस बातका पंडित-जीको भय था वही बात सामने खड़ी दिखाई दी। धीरे धीरे रघुनाथजीके घरमें पंडित मण्डली एकत्र होगई।

पंडितोंकी सलाहसे पंडित रघुनाथजीने अपने गुरुभक्त शिष्यसे गुरुदक्षिणामें वही पुस्तक माँगी। सन्तगुलाबसिंहजीसे यदि शरीरभी माँगा जाता तो गुरुके लिए अदेय नहीं था। परन्तु उस पुस्तकको देते समय उन्हें बड़ा कष्ट हुआ तौभी उस समय रुदन करते करते वह पुस्तक उन्होंने पंडितजीको समर्पण करदी। पंडितजीने उक्त सन्तजीकी उपस्थितिमेंही वह उपयोगी पुस्तक, जो असीम कष्टके साथ संग्रह की गई थी, सदाके लिए गंगाजीकी पवित्र धाराको समर्पण करदी। कहते हैं कि सन्त गुलाबसिंहजी उस समय पागलोंकीसी दशामें पंजाब पहुंचे थे। फिर उन्होंने अपनी शेष आयुके दिन कुरुक्षेत्रकी पवित्र भूमिमें व्यतीत किए। इनके लिखे हुये आजकल हमको चार ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अध्यात्मरामा-यण, प्रबोधचन्द्र नाटक, मोक्षपंथ, भावरसामृत. ये सब ग्रंथ हिन्दीमें हैं और नागरी अक्षरोंमें छप चुके हैं। मुझे अच्छी तरह मालूम नहीं कि मोक्षपंथ हिन्दी (नागरी) में छपा है या नहीं। यह मोक्षपंथ नामक ग्रन्थ वेदान्तके उच्चविचारोंसे अलंकृत है। पंजाबमें इसके पढ़नेका बड़ा रिवाज है। वेदान्तकी कुछ शिक्षा पाकर ही यह ग्रन्थ पढ़ा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

तीसरे हिन्दीके कवि ज्ञानी ज्ञानसिंहजी हैं जो अबतक जीवित हैं। बहुत [illegible] महाराजापटि-यालाका आश्रय पाकर आज तक वहीं निवास करते हैं। आपका हिन्दी-कवितामें लिखा हुआ

'पंथप्रकाश' नामक ग्रंथ सिक्खोंमें बहुत प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ सम्वत् १९३५ में लिखा गया था। इस ग्रंथमें महाराज गुरु नानकजीसे लेकर सिक्खोंके पंजाबको स्वाधीन करने पर्यन्तका संक्षिप्त इतिहास है। इसकी हिन्दी कविता बड़ीही मनोहर है। इनकी कविताके दो एक उदाहरण यहाँपर दिये जाते हैं।

सवैया ।

फूटत मूंड भुजा उर टूटत छूटत खूनकी धार अपारी ।
घूटत जोगनियाँ भर खप्पर लूटत आमिख धामि बचारी ॥
भैरव भूत पिशाच भरे मुद नच्चत नच्चत दै किलकारी ।
छिन्द कबंध फिरैं इततैं उत मारहुमार गिरा कर भारी ॥१॥
भान भयानकि तान तजें कित तान कमान सड़ाक सड़ाके ।
और धड़क धड़ूख बन्दूक धचूकत जम तड़ाक तड़ाके ॥
चक्र सेल सलोत्र सैहथी छूटत झुराड झड़ाक झड़ाके ।
तुट्टत बीरन हुट्टत कुट्टत फुट्टत ढाल फड़ाक फड़ाके ॥२॥
भेद्रू मास कलान कौं कीच मच्यं धर बीच नगीच महाती।
स्रोनतकी सरता सुनली बहि अन्य करी सिलखंड दिखाही।
पैरत लुन्थन जुन्थन ऊपर काकरु गीध महा मुद माही ।
होयत पार बटाऊ मनों जग जंग जनंमको जीत तहांही ॥३॥

पंजाबमें खोज करनेसे और भी बहुत पुस्तकें मिल सकती हैं। गोबिन्दगीता, नीतिसागर, प्रेम-सुमार्ग, उपनिषत् भाषा और महाभारत आदि बहुतसे ग्रंथ लुप्त हो गए। अब इन ग्रन्थोंका उल्लेख अन्य ग्रन्थोंमें कहींकहीं मिलता है। यहाँपर एक बात और भी लिखदेनी उचित होगी कि सिक्ख-संप्रदायने सबसे पहिले हिन्दी प्रचारका कार्य्य प्रारम्भ किया था। पंजाबी होने पर भी उसने हिन्दकी प्यारीभाषा हिन्दीसे अनुराग किया था। सिवाय सिक्ख संप्रदायके और किसी पंजाबीने कभी हिन्दीके लिए कलम उठाई हो सो मुझे मालूम नहीं।

आजसे अनुमान साढ़े चारसौ वर्ष पहिले जब सिक्खोंने हिन्दी भाषाकी परमावश्यकता समझकर उसके प्रचारके लिए बीड़ा उठाया था और अपनी शक्तिभर इसके प्रचारका कार्य प्रारंभ किया था, बहुत अच्छा होता कि उस समयमें भी आजकी तरह इस देशमें हिन्दी प्रेमी होते। दुःख है कि उस समय उनके अमृत तुल्य हिन्दी प्रचारके इन उपयोगी विचारोंपर किसीने ध्यान देना तो दूर रहा उल्टे उस कार्यका अपनी शक्तिभर विरोध किया। न जाने उस समय सिक्ख सम्प्रदायके इस नवांकुरित हिन्दीप्रेमपर कैसा प्रभाव पड़ा होगा और उस समय उनके मनमें कैसी गुजरी होगी। एक तरफ हमारे देशके ब्राह्मणोंने उनको संस्कृतका नष्टकर्ता और अधर्मी कहकर उनकी निन्दाकी। दूसरी तरफ देशके विचित्र शासन कर्ताओंने उन्हें राजविद्रोही कहकर उनके विरुद्ध पचासों वर्ष पर्यन्त भयंकर लड़ाइयाँ कीं। किन्तु वीर सिक्ख संप्रदायने उन संपूर्ण कष्टोंको अपने कोमल और असहाय शरीरोंपर खुशी खुशीसे एकएक करके सहन किया; पर अपने उद्देश्यसे वे एक पग भी पीछे नहीं हटे और न निराश हुए। उस समयके उनके उन्नत कार्य हमको बता रहे हैं कि वे सीधे और साफ रास्तेपर थे। उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा बहुत पहिले जान लिया था कि जब तक भारतवर्षमें एक भाषा न होगी-जब तक भारतके भिन्न भिन्न-टुकड़ोंमें रहनेवाले भारतीय लोग किसी एक भाषा-द्वारा परस्पर वार्तालाप नहीं कर सकेंगे तबतक इस विशाल भारतकी सर्वांग समुन्नति होनी दुर्घट है। इसी कारण वे अत्यन्त कष्ट उठाकर भी सर्वोन्नत हिन्दी भाषाका ही अधिक प्रचार करना चाहते थे। यदि मैं भ्रान्तिमें नहीं हूँ तो सचमुच मैं आज धर्मरक्षक हिन्द और हिन्दीके उद्धारकर्ता श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी उसी बलवान इच्छाको इस हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके रूपमें देखरहा हूँ। यदि यह बात सत्य है तो मैं गुरु भक्तिपूर्ण हृदयसे इस हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका अभिनन्दन करता हूँ।

स्वागत करता हूँ और अपने अतःकरणमें सदाके लिए इसको निवास देता हूँ।

हिन्दी-उद्धारकी इस सफलताको देखकर और यह समझकर कि अब हिन्दीकी वृद्धिके मार्गमें कोई विघ्नबाधा नहीं है, इसकी अबाध्य गतिको अब कोई नहीं रोक सकता, वर्त्तमान् सिक्ख संप्रदाय इस तरफसे निश्चिन्त होकर अब कुछ कालसे अपनी मातृभाषा पंजाबीका उद्धार करनेमें कटिबद्ध है। इस कार्य को संपादन करनेके लिए उन्होंने एक 'सिक्ख एजूकेशनल कानफरंस' नामकी सभा स्थापित की है। इसका उद्देश्य पंजाब प्रान्तके ग्राम ग्राममें पंजाबी भाषाके शिवालय खोलना है। वह इस कार्यमें आशातीत सफलता प्राप्त कररहा है। इस सभाका प्रति वर्ष विशाल अधिवेशन होता है और प्रति वर्ष एक लाख रुपएसे अधिक रुपया केवल सिक्ख संप्रदायसे ही मिलजाता है। इस रुपएसे प्रति वर्ष एक सिक्ख हाई स्कूल खोल दिया जाता है और सैंकड़ों सिक्ख विद्यालयोंको सहायता दी जाती है। सिक्खसंप्रदायके ललाटमें कुछ ऐसी टेढ़ी लकीर पड़ी हुई है कि जो कार्य वह करता है उसका लाभ उस कार्यके सफल होनेपर सर्वसाधारणको समझमें आता है पहिले नहीं। पंजाबी बोलनेवाले बहुतसे हिन्दू मुसलमान, पंजाबी भाषाकी गिरी दशाको अपनी आँखों देख रहे हैं; परन्तु सिवाय सिक्खोंके और कोई उसके लिये एक अक्षरभी लिखना पसन्द नहीं करता। हिन्दीकी तो बात ही दूर रही। अस्तु। चाहे सिक्खधर्म इस समय कुछभी क्यों न कर रहा हो उसका कर्तव्य है कि वह गिरी हुई अपनी मातृभाषाका भी उद्धार करे; किन्तु यदि मैं भूलमें नहीं हूँ तो कह सकता हूँ कि जब कभी किसी भाषाको भारतके राष्ट्रीय सिंहासनपर बैठानेका विचार होगा तो वह (सिक्खसम्प्रदाय) हिन्दीके पक्षमें ही अपनी बलवान संमति प्रकाश करेगा। अपने पूज्य गुरुओंके कर कमलोंमे सुसंस्कृता संवर्धिता हिन्दीभाषाकोही भारतके सिंहासनपर बैठावेगा। तथाहि भवतु।

हिन्दी भाषामें उपन्यास।

(लेखक श्रीयुत पंडित नर्म्मदाप्रसाद मिश्र, विशारद और पंडित रामप्रसाद मिश्र)।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे॥ *

(काव्यप्रकाश)

(१) विषयारम्भ।

विषयका आरम्भ करनेके पहिले इस बातपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ उपन्यासोंकी स्थिति कैसी है–दर्शन, विज्ञान, काव्य, इतिहास आदि अतुलनीय रत्नोंसे भरे हुए, विश्वविख्यात एवं विद्वज्जन-वन्दित आर्यभाषाकी साहित्य-सृष्टिमें उपन्यास-भवन किस स्थल पर कैसा निर्मित है।

इस बातपर विचार करनेके पूर्व "साहित्य" शब्दका अर्थ जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि "साहित्य" बहुत व्यापक शब्द है। उसमें काव्य, गणित, भूगोल, इतिहास, दर्शन

* काव्यसे यश, द्रव्यलाभ, व्यवहार–ज्ञान, दुःखनाश, तत्काल आनन्द, और कान्ताके समान रमणीय उपदेशोंकी प्राप्ति होती है।

आदि सभी विषय सम्मिलित हैं, तथापि अधिकांश विद्वान् साहित्यको काव्यसे भिन्न मानते हैं। उनके मतके अनुसार काव्य और साहित्यका कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि उनसे पूछा जाय कि आपके मतके अनुसार हिन्दी भाषामें साहित्य-ग्रन्थ कौन कौनसे हैं, तो वे काव्य-प्रभाकर, अलङ्कार-प्रकाश, जगद्विनोद, छन्दःप्रभाकर आदिका नाम ले देते हैं। काव्य-ग्रन्थोंमें पद्मावत रामायण, सूरसागर, बिहारी-सतसई आदिकी गणना कीजाती है। यही हाल संस्कृतके पण्डितों-का भी है। वे भी साहित्यको काव्यसे भिन्न समझते हैं एवं साहित्य-ग्रन्थोंमें काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण, रस-गंगाधर, आदिकी गणना करते हैं। पर इन ग्रन्थोंके नाम मात्रपर ही विचार करनेसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि जिन लोगोंने ये नाम रखे हैं वे काव्य, साहित्य एवं रस को एक दूसरेसे भिन्न नहीं मानते हैं; क्योंकि तीनों ग्रन्थोंका प्रतिपादित विषय एकसा होने-पर भी, काव्य, साहित्य एवं रसमें कोई अन्तर नहीं समझा गया है। दूसरी दृष्टिसे देखा जाय तो "साहित्य" शब्द बहुत व्यापक दिखता है। इतिहास-ग्रन्थोंमें जहाँ कहीं यह उल्लेख मिलता है कि अमुक समयमें साहित्यकी बड़ी उन्नति रही वहाँ उसका यही अभिप्राय पाया जाता है कि उस समय, काव्य, उपन्यास, गणित, दर्शन, इतिहास आदि विषयोंपर कई उपयोगी ग्रन्थ रचे गये। आजकल हिन्दी भाषामें साहित्य शब्दका बहुधा वही व्यापक अर्थ लिया जाता है जो अंगरेजीमें लिटरेचर (Literature) से लिया जाता है।

संस्कृतमें साहित्य और काव्यको कई लोग भलेही भिन्न भिन्न मानें; पर साहित्य शब्दकी व्युत्पत्तिपर ध्यान देनेसे स्पष्ट दिखता है कि वह बहुत व्यापक है तथा उसमें काव्य आदि सभी विषय सम्मिलित हैं। प्रकरणके अनुसार साहित्य शब्दके कई *अर्थ होते हैं; पर साधारणतः उसका यह अर्थ होता है कि सहितस्य भावः साहित्यं-अर्थात्, साथका जो भाव है वही साहित्य है। जो संयुक्त संहत, मिलित, परस्परापेक्षित और सहगामी है उसके भावका नाम साहित्य है। पं० रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ, इसका दूसरा अर्थ यह बताते हैं कि जो हितके साथ वर्तमान् है वह है सहित। उसका जो भाव है वह है साहित्य। अर्थात् जो हमारे हितकारी भाव हैं वही साहित्य है। इस अर्थके अनुसार काव्य, इतिहास, भूगोल, पुराण, दर्शन, गणित आदि सभी साहित्यके अन्तर्गत आजाते हैं। जिन जिन भावोंका संग्रह करके हम अपनेको उत्तम और उन्नत बना सकते हैं, जिनका अवलम्बन करके हम अपने परम पुरुषार्थके लिये गन्तव्य पथ पर अग्रसर हो सकते हैं, तथा जिनके ऊपर हमारा मनुष्यत्व अवलम्बित है उन्हींका संग्रह साहित्य है। जिसमें चित्तमानन्द, स्वच्छ और निर्मल होकर क्रमशः परमलाभका अधिकारी होसके वही हमारा साहित्य है। इस लेखमें साहित्य शब्दका व्यवहार इसी व्यापक अर्थमें किया जायगा।

काव्यके-अथवा साहित्यके दो प्रधान अङ्ग हैं:- एक गद्य और दूसरा पद्य। जिस निबन्धमें पद्य-बद्ध कविता न हो उसे गद्य-काव्य कहते हैं। यही "गद्य-काव्य" आज कल उपन्यासमें रूढ़ होगया है। लोग उपन्यासकोही गद्य काव्य मानने लगे हैं, यद्यपि आज कलके अधिकांश

* (१) साहित्यं मेलनम्।
(२) परस्पर सापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रिया-न्वयित्वं साहित्यम् इति श्राद्धविवेकः।
(३) तुल्यवदेक क्रियान्वयित्वं बुद्धविशेष विषयित्वं वा साहित्यम् इति शब्दशक्ति प्रकाशिका।
(४) मनुष्यकृत श्लोकमय ग्रंथविशेषः साहित्यम् इति शब्द कल्पद्रुमः।

उपन्यास गद्य-काव्य नहीं हैं। काव्यके लिये अलौकिक * बात चाहिये । उसके पढ़नेमें अलौकिक आनन्द मिलना चाहिये; परन्तु आज-कल तो उपन्यासोंको ही गद्य-काव्य माननेकी परिपाटी चल निकली है; अतः इसीके अनुसार विचार करना आवश्यक है।

(२) "उपन्यास" शब्द ।

उपन्यासोंको गद्य-काव्य मानकर अब यह देखना है कि "उपन्यास" शब्द कहाँसे आया ? क्या प्राचीन साहित्यमें भी "उपन्यास" शब्द मिलता है ? और, यदि मिलता है, तो क्या उसका वही अर्थ है जो आजकल लगाया जाता है ?

अमरसिंहके अमरकोषमें उपन्यासको ‡ वाङ्मुख बताया है,अर्थात् "किसी बातका उपक्रम करना ही उपन्यास है;" परंतु इस लक्षणसे उपन्यासको गद्य-काव्य नहीं कह सकते और इस प्रकार उपन्यासका वर्तमान् अर्थ सिद्ध नहीं होता।

महापात्र श्री विश्वनाथने अपने "साहित्य-दर्पण" में भाणिका-निरूपणके प्रसङ्गपर कहा है कि भाणिकामें सात अङ्ग होने चाहिये। इन सात अङ्गोंमें एक अङ्ग § उपन्यास बताया गया है। परन्तु भाणिका गद्य-काव्यका भेद नहीं है। बात तो यह है कि नाट्यके दो भेद हैं:—रूपक और उपरूपक। फिर उपरूप के १८ भेद हैं। उन १८ भेदोंमेंसे भाणिका एक भेद है। इस प्रकार भाणिका नाट्य शास्त्रके अंतर्गत है और नाट्य दृश्य-काव्य माना गया है। इस प्रतिपादनसे विदित होता है कि उपन्यास दृश्य काव्य है; परन्तु आजकल उपन्यासको गद्य-काव्य कहते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि "उपन्यास" शब्द यद्यपि प्राचीन साहित्यमें मिलता है; परन्तु वह उस अर्थमें व्यवहृत नहीं होता जिसमें आजकल हो रहा है।

(३) संस्कृत भाषामें उपन्यास ।

हिन्दी भाषामें उपन्यासोंकी उत्पत्ति कब हुई-इसका विचार करनेके पूर्व संस्कृतके उपन्यासोंका निरीक्षण करना कुछ बुरा न होगा। क्योंकि हिंदीका संबंध संस्कृत भाषासे बहुत घनिष्ठ है। अधिकाँश विद्वानोंके मतानुसार हिन्दीकी उत्पत्ति प्राकृतसे हुई, अर्थात् हिंदी प्राकृतका रूप है, यद्यपि संस्कृतादि अन्य भाषाओंसे इसकी अंग-पुष्टि अवश्य हुई है। ‡

संस्कृत-साहित्य पद्य-प्रदान है। प्रायः सभी विषय, कोष, वैद्यक तक पद्य-बद्ध पाये जाते हैं। इसमें संदेह नहीं, संस्कृतमें पद्य रचना बहुत हुई है; परंतु आश्चर्यका विषय है कि उसमें गद्य-काव्य बहुत ही कम है। गद्य-काव्यकी बात जाने दीजिये, गद्य ही बहुत कम मिलता है और जो मिलता है वह "दार्शनिक लपेट" का है।

विक्रम संवत्की आठवीं शताब्दीमें सुबन्धु कविने "वासवदत्ता" नामक एक गद्य-काव्य लिखा। भारत-रत्न, भारत-भूषण-साहित्याचार्यादि विविध पदवी-विभूषित पं० अम्बिकादत्त व्यास-का कहना है, कि इस गद्य-काव्यमें अपूर्व चमत्कार है, पद पद पर श्लेष और यमक हैं; परंतु स्वाभाविक उक्तिका अभाव है। गद्य-काव्यके नातेसे "बृहत्कथा" एवं भट्टारहरिश्चंद्रका भी नाम लिया जाता है। इसके बाद, बाण कविका

---

* रमणीयार्थ-प्रतिपादक-शब्दः काव्यम् ।
(पंडितराज जगन्नाथ)
रसात्मकं वाक्यं काव्यम् । (महापात्र विश्वनाथ)

‡ उपन्यासस्तु वाङ्मुखम् ।

§ उपन्यासः प्रसंगेन भवेत्कार्यस्यकीर्तिनम् ।
(साहित्य-दर्पण, ६ परिच्छेद)

‡ मिश्र-बन्धु कृत "हिन्दी-साहित्यका इतिहास तथा कवि कीर्तन"। (प्रथम भाग, प्रथम अध्याय)।

प्रसिद्ध "हर्ष-चरित" है। इससे उत्तम उसी कविकी "कादम्बरी" है जिसकी कीर्ति देश-देशान्तरोंमें फैल रही है। कदाचित् इसी कादम्बरीके अनुकरणपर मराठी भाषामें उपन्यासको "कादम्बरी" संज्ञा दी गई है। बाणकी कविताके विषयमें एक विद्वान्का कहना है कि उसमें पद-माधुर्य तो अधिक है, वर्णन भी अतुलनीय तथा बृहत है, अर्थ-गौरव भी प्रशस्य है; परंतु कथामें कल्पनाकी कहीं कहीं त्रुटिसी झलकती है और अनेक विषय अस्वाभाविक हैं। पद और अलंकारके लोभसे तो जिस पृष्ठको पढ़िये वहीं आनंद मिलता है; परंतु इस कथाका वास्तविक आनंद लेनेके लिये पढ़ना हो तो एक पृष्ठ पढ़ते पढ़ते जी घबड़ा जाता है। दण्डीके "दशकुमार" में यह अभाव नहीं है; परंतु उस ग्रन्थमें अर्थ और कथा-कल्पनाकी अति है। अस्तु।

इस विवेचनसे प्रकट होता है कि संस्कृत-साहित्यमें गद्य-काव्य बहुतही थोड़ा है और जो कुछ थोड़ा बहुत है भी, उसकी वर्णन-शैली तथा आजकलके गद्य-काव्यकी शैलीमें जमीन आसमानका अंतर है।

(४) प्रारम्भिक एवं माध्यमिक हिन्दी भाषामें उपन्यास।

हिन्दीकी जननी संस्कृत भाषाके गद्य-काव्यका तो यह हाल है। अब हिन्दीके गद्य-काव्य पर विचार करते हुए प्रस्तुत विषयके प्रधान अंशपर विचार करना है। आजकल गत ३०-३२ वर्षोंसे हिन्दी-संसारमें उपन्यासोंका प्रवाह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। यह प्रवाह कहाँ जाकर रुकेगा इसके विचार-मात्रसे हृदय आनन्द-सागरमें हिलोरें लेने लगता है। निस्सन्देह, आजकल उपन्यास-ग्रन्थोंकी बहुत प्रचुरता है। यह इतने महत्वका विषय है कि इसपर आगे चलकर विचार किया जायगा। सर्व प्रथम प्रारंभिक एवं माध्यमिक कालके हिंदी-उपन्यासों पर दृष्टि-पात करना है।

विचार करते ही सबसे पहिली बात जो दिखती है वह यह है कि माध्यमिक हिंदीमें गद्य-काव्यकी कौन कहै, गद्यकाही एक प्रकारसे अभाव है। संस्कृतके समान, हिंदी भाषाका प्राचीन साहित्यभी काव्य-मय है।

गद्यका-इतिहास बहुत पुराना नहीं है। वह पाँचसौ वर्षोंसे अधिक पुराना नहीं है। सबसे पहिले गद्य-लेखक, जिनका नाम "हिंदी-साहित्य-इतिहास" के विद्वान् लेखकोंको मिल सकता है, महात्मा गोरखनाथ हैं। इनका रचना-काल विक्रम संवत् १४०७ के लगभग माना गया है। इसके पहिलेके गद्यके कुछ उदाहरण काशी-नगरी प्रचारिणी सभाको मिले हैं; परन्तु उस गद्यमें और आजकलके गद्यमें बहुत अंतर पड़जाता है। महात्मा गोरखनाथके बाद लगभग दो सौ वर्षों तक, किसी गद्य-लेखकका पता नहीं लगता है। संवत् १६०० के लगभग महात्मा विठ्ठलनाथ जी कुछ गद्य लिखते थे। इनके गद्यमें * शुद्ध ब्रज-भाषाका प्रयोग है; परंतु संस्कृत शब्द अधिक हैं। संवत् १६८० में जटमल कविने "गोरा बादलकी कथा" नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थमें खड़ी बोलीका प्राधान्य है। इसकी भाषा वर्तमान् भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। §

---

* विठ्ठलनाथजीके गद्यका उदाहरण:—

"प्रथमकी सखी कहत है जो गोपीजनके चरण विषै सेवककी दासी करि जो इनके प्रेमामृतमें डूबके इनके मन्दहास्यने जीते हैं अमृत समूहता करि निकुंज विषै शृङ्गार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।" (तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्य-विवरण, दूसरा भाग, पृष्ठ ३)

§ जटमल कविके गद्यके उदाहरण— "उस जग चालीवान बाबा राज है। मसीह बांका लड़का है सो सब पठानोंमें सरदार है। जयेसे तारोंमें चंद्रमा है आयसा वो है"। (वही कार्य-विवरण। पृष्ठ ४)

जटमलके बाद, तुलसीदास, चिंतामणि, देव, सूरतिमिश्र, श्रीपति, दास आदिने गद्यका प्रयोग किया है। १८१० के लगभग किसी अज्ञात कविने "चकत्ताकी पातस्याही-की परम्परा" नामक १०० पृष्ठोंका गद्य-ग्रंथ खड़ी बोलीमें रचा। इसमें मुगल बादशाहों और उनकी राज-परिपाटीका कुछ वर्णन है।

इसके लगभग ५७ वर्षके बाद, लल्लूलाल और सदलमिश्र ही प्रसिद्ध ग्रन्थ-लेखक मिलते हैं। इसे हिंदी-गद्यका प्रारम्भिक काल कह सकते हैं। इस कालमें यद्यपि गद्य कुछ कुछ लिखा गया; परंतु गद्य-काव्यकी रचना बहुत ही कमहुई। सूरति मिश्रकी "बैताल-पचीसी" ही ऐसा ग्रन्थ है जिसे गद्य-काव्य कह सकते हैं।

संवत् १८६० से १९२४ तक गद्यका माध्यमिक काल रहता है। इस समयमें लल्लूलाल, सदलमिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद आदि गद्य-लेखक मिलते हैं। इन्होंने गद्यकी बहुत उन्नतिकी और उसे वर्तमान रूप देनेकी चेष्टा की। सदलमिश्रका "नासकेतोपाख्यान" गद्य-काव्यका अच्छा नमूना है। राजा शिवप्रसादका "राजा भोजका सपना" आदि ग्रंथ भी प्रौढ़ गद्य-काव्यके अच्छे नमूने हैं।

(५) वर्तमान् हिन्दी भाषामें उपन्यास।

वर्तमान् हिन्दीका समय हम संवत् १९२५ से मानते हैं जबकि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने गद्यमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचकर वर्तमान गद्यकी नींव डाली। इन्हींके समयसे हिन्दी-गद्यकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। लेखकोंकी संख्या दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। भारतेन्दुके समय तक कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं बना जिसे हम उपन्यास कह सकें। वैसे तो बैताल-पचीसी आदि ग्रन्थ लिखे गये जो उपन्यासोंके भेदोंमें आसकते हैं; परंतु उपन्यास शब्द आजकल जिस अर्थमें रूढ़ होरहा है उस अर्थवाले कोई उपन्यास नहीं लिखे गये। मिश्र-बन्धुओंने "हिन्दी-नवरत्न" में (पृष्ठ ३७६ पर) लिखा है, "इन (भारतेन्दु) के समय तक हिंदीमें उपन्यास नहीं लिखे गये थे। अतः इन्होंने लोगोंको उपन्यास लिखनेके लिये प्रोत्साहित किया और स्वयं भी दो उपन्यास लिखने आरंभ किये थे, परन्तु वे अपूर्ण रहे। उनके नाम हैं:—'एक कहानी कुछ आप बीती और कुछ जग बीती' और 'हम्मीर हठ'।

इससे विदित होता है कि हिन्दीमें भारतेन्दु-के समयसे, अर्थात् लगभग ३० वर्षोंसेही, उपन्यासोंकी रचना हो रही है। आजकल प्रायः प्रत्येक प्रेससे उपन्यास धड़ाधड़ निकल रहे हैं। हमारा अनुमान है, गत ५ वर्षोंसे आज तक, हिन्दीमें जितने उपन्यास लिखे गये हैं उतने हिन्दीके जन्मकालसे पाँच वर्ष पूर्व तक न निकले होंगे।

पं० अम्बिकादत्त व्यास कृत। "गद्य-काव्य-मीमांसा" के अंत में ७६ उपन्यासोंके नाम तथा प्रकाशित होनेकी तिथि आदि दी है। उसके देखनेसे विदित होता है कि लाला श्रीनिवास कृत "परीक्षा-गुरु" ही पहला उपन्यास है। वह सन्१८८२ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद अन्य उपन्यास प्रकाशित हुए तथा होते जारहे हैं।

(६) वर्तमान् हिन्दी-उपन्यासोंमें परिवर्तन।

आजकल बहुतसे लोग उपन्यास उन्हीं ग्रन्थोंको मानते हैं जिनमें कथाका आरंभ विचित्र रीतिसे किया जाय। उदाहरणके लिये:—"आधीरातका समय है। वायु सनसन बह रही है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। ऐसे समयमें राजा मानसिंह साधूका वेष धारण करके घूम रहे हैं। इतनेमें पीछेसे धड़ाकेका शब्द होता है। राजाको

गोली लगती है। वे बेहोश होते हैं। " इत्यादि। हिन्दीके अधिकांश पाठक केवल उन्हीं ग्रन्थोंको जिनमें इस प्रकारका वर्णन होगा, कथाका आरंभ इसी प्रकार किया गया होगा, कई घाटियाँ और खंदक रहेंगे, कहीं प्रकाश और कहीं अन्धकार रहेगा उन्हें ही उपन्यास मानेंगे। परंतु यदि वही कथा इस प्रकार सीधी रीतिसे कही जावे कि, "ऐसे ऐसे एक राजा थे। वे एक रातको साधूका वेष बना कर घूम रहे थे। इतनेमें उनके वैरी आये। उन्होंने राजाको मारडाला।" इत्यादि। तो कदाचित् इस प्रकारकी वर्णन-शैलीसे लिखे गये ग्रन्थोंको हिंदीके अधिकांश पाठक उपन्यास न मानेंगे, यद्यपि गद्य-काव्यके अन्तर्गत यहभी आजाता है। हिन्दीके अधिकाँश पाठकोंका तो यह हाल है; परन्तु हम समझते हैं, संस्कृतके अनेक विद्वान् दोनों रीतियोंसे लिखे गये ग्रन्थोंको कदाचित् गद्य-काव्य या उपन्यास न कहेंगे। वे तो उन्हीं ग्रंथोंको गद्य-काव्य-ग्रन्थ कहेंगे जिनमें अनूठी उक्ति, पद-लालित्य, रचना-वैचित्र्य आदि गुण रहेंगे।

इन बातोंपर विचार करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि आजकल उपन्यासोंके विषयमें लोगोंकी रुचि परिवर्तित होती जा रही है। और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। बात तो यह है कि हिन्दीमें उपन्यासोंका वर्तमान रूप अभी हालका है। उपन्यासोंका यह रूप कहाँसे आया-इसका विवेचन आगे चलकर किया जायगा। अभी तो यह देखना है कि लोगोंकी रुचि किस प्रकार परिवर्तित होती आरही है। यद्यपि हिन्दीमें अभी तक बहुत कुछ उन्नति हो गई है, तथापि उपन्यासोंके लिये यह समय बिलकुल नया ही है। उपन्यासोंमें विचित्रता लानेके लिये ऐयारी, तिलस्मी, एवं जासूसी जाल बनाये जारहे हैं। काव्यका मुख्य उद्देश्य इन गद्य-काव्य कहलाये जानेवाले अधिकांश उपन्यासोंमें बहुत कम दिखाई पड़ रहा है। आजकल अनेक उपन्यास लेखक इस बातका विचार नहीं कर रहे हैं कि उपन्यासोंमें स्वाभाविक उक्ति, चरित्र-चित्रण, पद-लालित्य, प्रकृति-चित्रण आदिका होना भी आवश्यक है। यदि ऐसा होता तो तिलस्मी चक्करमें पाठक न फँसाये जाते। साहित्याचार्य बाबू जगन्नाथप्रसाद "भानुकवि" ने बहुत ही ठीक कहा है कि * वर्तमान् कालीन अधिकांश महाशय उपन्यासको ही गद्य-काव्य कहने लगे हैं···परन्तु इस रायसे हम पूर्णतः सहमत नहीं हैं। कारण कि हमने जितने उपन्यासोंको आज तक देखा और पढ़ा है उनमें प्रायः थोड़ेही ऐसे निकलेंगे कि जिनमें नीति एवं उपदेश जनक हितवार्ताका समावेश हो सकता है। शेष सब उपन्यासोंने तो एक ही तान छेड़ी है, अर्थात् उपन्यास-लेखकोंको परम-सुन्दरी लावण्यवती, मनोहारिणी, नवयौवना स्त्री और सकल-कला सम्पन्न, अति सुन्दर, रूपवान् कामी नवयुवक पुरुष ही विशेषतासे मिल सकें हैं। आधुनिक उपन्यास-लेखक प्रायः बड़ेही रसिक हुआ करते हैं। × × × कितने लेखक तो ऐयारीके चक्करमें पड़ कर पाठकोंको भी ऐसे चक्करमें डाल देते हैं कि पन्नेपर पन्ने पलटते जाइये; पर ऐयारकी ऐयारीका खातमा ही न होगा। यदि पढ़नेवाला आशय न समझे तो लेखककी बला से! वे बिना परिस्तानमें पहुँचे हुए, मध्यमें ठहरना जानतेही नहीं। एक जीना नीचे उतारा तो दो जीने ऊपर चढ़नेकी नौबत आजाती है। एक कमरा पानेके लिये सैकड़ों किवाड़ खोलने पड़ते हैं। उधर शेर का मुंह दबाया कि दरवाजा खुल गया तिलिस्मीकी भी हद नहीं। फूक मारी कि पुरुषसे स्त्री, डुबकी लगाई कि बूढ़ेसे जवान, आदि। कहाँ तक कहें ऐसी बे परकी उड़ाते हैं कि पढ़नेवालोंके भी होश उड़ जाते हैं। भले

* काव्य-प्रभाकर, १२८ पृष्ठ।

भले घरोंके स्त्री पुरुषोंको ऐसे ऐसे कुत्सित अपराध लगा दिये जाते हैं कि उन्हें नरकमें भी ठिकाना न मिले। कभी कभी तो वे उन्हें गली गली पागलोंकी नई एक दूसरेपर आसक्त दशामें घुमाया करते हैं। हाय! ऐसे निर्दयी लेखकोंको तनिकभी दया नहीं आती। कपोल-कल्पित बातके लिखनेमें भी वे इतने सिद्धहस्त होजाते हैं कि कूटोंके बादशाहके भी कान काटते हैं। दूत और दूतियोंके छल-छन्द पढ़ पढ़ कर पढ़े लिखे स्त्री-पुरुष ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं कि थोड़ी ही कोशिश करनेके पश्चात्, वे आसक्तशालाके परीक्षोत्तीर्ण ग्रेज्युएट बन जाते हैं।

सारांश यह कि अधिकांश वर्तमान उपन्यासों की प्रवृत्ति उचित मार्गकी ओर नहीं जारही है। यह प्रवृत्ति किस प्रकार सुसंस्कृत हो सकती है इस पर विचार करना आवश्यक है।

(७) उपन्यासोंके महत्त्व और उद्देश्य।

साहित्य-भवनके लिये उपन्यास आधार-स्तम्भ है। साहित्यमें उसका महत्व बहुत बढ़ा-बढ़ा है। इतिहासमें सत्य बातोंका भले ही समावेश हो; परन्तु ऐतिहासिक उपन्यास इतिहाससे कई गुने बढ़कर हैं। उपन्यास समाजके जीते-जागते चित्र हैं। अंगरेजी भाषामें इनका महत्व बहुत चढ़ा बढ़ा है। अंगरेजी में ही क्यों, प्राय: सभी उन्नत भाषाओंमें उपदेश देने एवं मनोरंजन करनेका एक बहुत बड़ा भाग उपन्यासके बाँटे पड़ता आया है। उपन्यास कान्ता-सम्मत उपदेशके लिये प्रसिद्ध हैं। आज हिन्दीका प्रचार जो इतना अधिक बढ़ रहा है-हिन्दी पाठकोंकी संख्या बढ़ रही है-उसका एक कारण उपन्यास भी है। उपन्यासोंने हजारों लोगोंमें हिन्दीके प्रति प्रेम उत्पन्न कराया है। एक समय था, और उसे हुए बहुत वर्ष नहीं हुए, जबकि हिन्दी-संसारमें बाबू देवकीनन्दनकी "चन्द्र-कान्ता" की बड़ी माँग थी। बालक और बुड्ढे जो थोड़ा-सा लिखना-पढ़ना जानते थे, जिनका अधिकांश समय तोतामैनाकी किस्सा, हातिमताई, सिंहासन-बत्तीसी आदिके पढ़नेमें बीतता था, चंद्र-कांताको मन लगाकर पढ़ने लगे और अबभी पढ़ते हैं; यद्यपि अब वैसी प्रबल रुचि नहीं दीख पड़ती है। चन्द्र-कान्ताकी भाषा और विषयमें चाहे कितनीभी त्रुटियाँ क्यों न बताई जायँ; परन्तु इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, कि लोगोंकी रुचि हिन्दीके प्रति आकर्षित करनेमें चन्द्रकांताने जो काम किया है, वह सैकड़ों उपदेशकोंसे न होसकेगा। यहाँ हम किसी विशेष ग्रन्थकी अनुचित प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। हम केवल यह बताना चाहते हैं कि उपन्यास कम-पढ़े-लिखे लोगोंकी रुचि खींचनेके लिये प्रधान साधन है। "सरस्वती" पत्रिकाके विद्वान् सम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने, "हिंदी-साहित्यकी वर्तमान् अवस्था" शीर्षक अपने विचार-पूर्ण लेखमें कहा है-"उपन्यासोंकी बदौलत हिंदी-पाठकोंकी संख्यामें विशेष वृद्धि हुई है। उपन्यास चाहे जासूसी हो, चाहे मायावी, चाहे तिलस्मी, विशेष करके कम उम्रके पाठकोंको उन्होंने हिंदी पढ़नेकी ओर अवश्य आकृष्ट किया है।" सारांश यह, कि उपन्यास साहित्यका एक बहुत प्रधान अंग है जिस उपन्यासके हाथमें इतना अधिकार है कि वह लाखों लोगोंकी रुचि अपनी ओर खींच सकता है, उसका उद्देश्य क्या होना चाहिये। इसपर विशेष कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यके जीभ हिलानेसे लाखों मनुष्य किसीभी मार्गपर चल सकते हैं वही मनुष्य यदि उन्हें सन्मार्गपर न ले चल कर कुमार्गपर लेजावे तो कहना चाहिये कि वह महान् घोर पातक कर रहा है। इस पातकका प्रायश्चित वह जितने शीघ्र करे उतनाही अच्छा है। ऐसे प्रभावशाली उपन्यासका उद्देश्य जितना ही पवित्र

उच्च एवं गम्भीर होगा, उससे उतना ही लाभ होगा। उपन्यासका उद्देश्य केवल मनोरंजन ही न होना चाहिये। वर्तमान् समयके प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं।

"केवल मनोरंजन न कविका कर्म होना चाहिये।
उसमें उचित उपदेशका भी मर्म्म होना चाहिये॥"

उपन्यासोंको समयके सच्चे प्रतिनिधि होनेके साथही, लोगोंकी रुचिको सुसंस्कृत करनेकी ओर लक्ष्य ले जाना चाहिये। उनके द्वारा कम पढ़े लिखे लोगोंमें उच्च आदर्श सहज ही फैल सकते हैं। जिन लेखकोंके हाथमें उपन्यासोंके साधन हैं उन्हें क्षणभर ठहर कर अपने उद्देश्योंपर विचार कर लेना चाहिये।

(८) उपन्यासोंकी वर्तमान शैली कहाँसे आई?

ऊपर कहा जा चुका है कि उपन्यासोंकी आधुनिक शैली प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत साहित्यकी शैलीसे बहुत भिन्न है। पर अब हम बातपर विचार करना है कि यह भिन्नता कहाँसे आई। हिंदीके प्राचीन साहित्यमें विविध विषयोंके ग्रन्थोंका एक प्रकारसे अभाव ही है। आजकल जो भिन्न भिन्न विषयोंपर ग्रंथ दिखाई दे रहे हैं, वे अंगरेजी साहित्यके कारण हैं। "हिंदी-साहित्य-इतिहास" के विद्वान् लेखकोंने भी इस बातको स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है। "अब तक (संवत् १८८६ तक) हमारी भाषामें रोचक, किंतु अनुपयोगी विषयोंकी विशेषता रही थी; परंतु अब अंगरेजी राज्यके साथ संसारी लाभदायक बातोंकी ओर लोगोंकी प्रवृति होने लगी है। इसीकी वास्तवमें हम लोगोंको अत्यंत आवश्यकता थी, सो अंगरेजी राज्यने इस भाँति हमारा महा उपकार किया है, जिसे हम लोगोंको कभी न भूलना चाहिये*।" हिंदी उपन्यासोंके लिये भी हमें अंगरेजी साहित्यका कृतज्ञ होना चाहिये। "यद्यपि संस्कृत और हिंदीमें प्राचीन समयसे ही कथा-ग्रन्थ लिखे जाते हैं, तथापि उपन्यासोंकी उत्पत्ति अंगरेजी राज्यके आरम्भसे पीछे की ही है और इनका प्रचार अंगरेजी नावल्स (Novels) की देखा देखी हुआ है"।

* गहमर-निवासी बाबू गोपालराम जी भले ही कहें कि, "उपन्यास विदेशी वस्तु नहीं है, न हमारे देशमें विलायतकी नकलसे चले हैं;" ‡ पर केवल कहनेसे ही काम न चलेगा। हम सरासर देखते हैं कि उपन्यासकी बात दूर है गद्यका ही विशेष प्रचार हिन्दीमें अभी हालमें ही हुआ है। अंगरेजीके समयसे ही गद्य-काव्यमें परिवर्तन हो रहा है और यह परिवर्तन भी अंगरेजी गद्य-काव्यके ही अनुकूल है। इसके सिवाय, अंगरेजी भाषा एवं जातिका प्रभाव भारत वर्षीय भाषा एवं जातिपर पड़ रहा है। फिर भला हम कैसे स्वीकार न करें कि हिंदीमें उपन्यास विलायतकी नकलसे नहीं चले हैं।

(९) हिन्दीके वर्तमान उपन्यास।

वर्तमान हिन्दी-संसारमें उपन्यास बरसाती मेंढकके समान निकल रहे हैं। कोने कोने और गली गलीमें वे दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। कुछ समय पहिले तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासोंकी बड़ी धूम थी; परन्तु अब वह हाल नहीं है। अब सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासोंका बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें, पानीपत, महाराष्ट्र-प्रभात, राजपूत-जीवन-संध्या, लच्छमा, दीप-निर्वाण, सिराजुद्दौला आदिका

* हिन्दी-साहित्यका इतिहास, पृष्ट १६२।

* हिन्दीका हानिकर साहित्य, पृष्ठ ११८।

‡ प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका कार्य-विवरण, दूसरा भाग, पृष्ठ ८८।

उल्लेख किया जा सकता है। समाजिक उपन्यासोंमें आदर्श-दम्पती, सुशीला-विधवा. आदर्श-हिंदू, आँखकीकिरकिरी, शैलवाला, मँझली बहू, आदि उल्लेख-योग्य हैं। नैतिक उपन्यासोंमें परीक्षा गुरु, प्रतिभा आदि अपने ढंगके निराले हैं। सौन्दर्य्योपासक आदि अपने उच्च विचारों एवं परिष्कृत शैलीके लिये कोई सानी नहीं रखते। वैज्ञानिक उपन्यासोंमें रसातल-यात्रा आदि उल्लेख-योग्य हैं, सारांश यह, आजकल प्रत्येक विषयके उपन्यास बनते जारहे हैं। इंडियन प्रेस (प्रयाग) व्यंकटेश्वर प्रेस (बम्बई); खड्गविलास प्रेस. (बाँकीपुर) भारत जीवन प्रेस, (काशी); हरिदास कंपनी (कलकत्ता); हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली (खंडवा); हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, (बम्बई) आदिने कई उत्तमोत्तम उपन्यास छापे हैं और बराबर छाप रहे हैं।

परन्तु आजकल अनुवादोंकी ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। किसी भाषाकी उत्तमोत्तम. पुस्तकोंका अनुवाद करना कुछ बुरा नहीं है। अनुवाद करना. भिन्न भिन्न भाषाओंके विचारोंको अपनी भाषामें रखना और उनके द्वारा उसे पुष्ट करना है। इस उद्देश्यसे जितने कार्य किये जायँगे उनमें बहुधा कोई त्रुटि न होगी; परन्तु आजकल बहुतसे लेखक केवल प्रसिद्धि पानेकी ही लालचसे अनुवाद कर रहे हैं और कभी कभी वे इस बातको बिलकुल भूल जाते हैं कि कैसे उपन्यासोंका अनुवाद करना चाहिये। जो उपन्यास, चाहे वे कैसे ही गँदले क्यों न हों. उनके हाथ पड़ जाते हैं, उनका अनुवाद किया जाता है। फिर भी, इस बातको स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारी भाषामें बंगलाके श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकों; जैसे, बंकिम-चन्द्र. रवीन्द्र नाथ आदि ग्रन्थोंका भी अनुवाद विद्यमान है जो सर्वथा प्रशंसनीय है।

(१०) उपन्यासोंका सुधार और उपसंहार।

हम साहित्याचार्य भानुकविके इस कथनसे सहमत नहीं हैं कि "अब उपन्यास बहुत हो चुके हैं।* साम्प्रत उनकी विशेष आवश्यकता नहीं।" आपके कथनको कोई मनुष्य इस प्रकार भी कह सकता है—चूंकि नदीमें तैरना सीखनेमें कई लड़कोंकी जान जा चुकी है; इसलिये तैरना बहुत कम कर दिया जाय। हम कहते हैं कि ऐसा प्रबंध क्यों न कर दिया जाय कि तैरना सीखनेवालोंकी जान न जाय, क्यों न नदीमें बहुतसी नावें और तैरनेमें कुशल मनुष्य देखरेखके लिये रखे जायँ। इसी प्रकार यदि उपन्यासोंकी रचना उचित रीतिसे नहीं की जा रही है. तो समालोचकोंका कर्तव्य है कि वे इस कार्यमें अग्रसर होवें. उपन्यासका आदर्श बराबर लेखकोंके साम्हने रखें, बुरी रचनाओंकी घोर निन्दा करें एवं अच्छी और उपयोगी रचनाकी प्रशंसा कर रचयिताओंको प्रोत्साहित करें। इसके सिवाय. हम इस बातको नहीं मान सकते कि "अब उपन्यास बहुत हो चुके हैं।" बंगला आदि भाषाओंमें विविध विषयोंसे संबंध रखनेवाले उपन्यासोंकी जैसी बाहुल्यता सुनी जाती है वैसी अभी हिंदीमें कहाँ है? हिंदी भाषामें गद्यका तो एक प्रकारसे प्रारम्भिक काल ही है। अभी उसका संगठन होरहा है। अभी उसमें विविध विषयोंकी ग्रन्थ-रचनाका श्रीगणेश ही हुआ है। अभी साहित्यके अंगको पुष्ट करनेके लिये बहुत समय चाहिये। फिर उपन्यास सरीखे अत्यावश्यक अंगकी पुष्टिके लिये तो बहुतही अधिक समयकी आवश्यकता है। इसके सिवाय, जिस समय भानुकविजीको बहुतसे उपन्यास दिखाई देते थे तबसे लेकर अबतक पचासों उत्तमोत्तम उपन्यास लिखे जाचुके हैं; पर फिरभी अभी नहीं कहा जासकता कि हिंदीमें उपन्यासोंकी आवश्यकता नहीं है। अब भी विज्ञान, दर्शन आदि विषयोंपर एक भी उपन्यास नहीं है जिनकी बहुत आवश्यकता है।

* काव्य-प्रभाकर, पृष्ठ १२९।

हम इस बातको मानते हैं कि अभी हिंदीमें अन्य भाषाओंसे अनुवादित किये गये उपन्यासों-की प्रचुरता है। इतना ही नहीं, हम यह भी कह सकते है कि यदि आज हिंदीमें अनुवादित उपन्यास अलग कर दिये जायँ तो कदाचित् दो चार मौलिक उपन्यासोंको छोड़ ऐसे उपन्यास ही न मिल सकेंगे जिन्हें हम उपन्यास कह सकें।

इसलिये अब हम बातकी आवश्यकता है कि जिन लोगोंमें मौलिक उपन्यास लिखनेकी शक्ति है वे अनुवाद न करके मौलिक उपन्यासोंके लिखनेमें हाथ लगावें और अनुवाद करनेका भार दूसरोंपर छोड़ें। इसमें सन्देह नहीं कि मौलिक ग्रंथ लिखनेकी अपेक्षा अनुवाद करनेमें विशेष योग्यता चाहिये। परन्तु इन दोनों प्रकारकी योग्यताका क्षेत्र अलग अलग है। अनुवाद करनेके समय "मक्षिका स्थाने मक्षिका" से काम न लेना चाहिये। अनु-वादकको स्मरण रखना चाहियेकि जहाँ तक संभव हो अनुवादमें देश, काल, एवं पात्रका विचार रहे। अक्षरशः अनुवाद करनेकी अपेक्षा आधार पर लिखना अधिक अच्छा है।

उपन्यास-लेखकोंको सबसे पहिले उपन्यास-का विषय ऐसा चुनना चाहिये जो पाठकोंको विशेष रोचक होवे। जो घटनाएँ मामूली होगई हैं यदि उन पर लिखना आवश्यक दिखे तो ऐसी बातें लिखनी चाहिये जिनसे कुछ विशेषता आवे। वर्णन-शैली ऐसी हो कि "नित प्रति नव रुचि बाढ़त जाई।" ज्यों ज्यों पढ़ते जावें त्यों त्यों आगे बढ़नेकी रुचि उत्पन्न होती जावे। भाषा, विषयके अनुसार रहे। लेखककी ओरसे जो कथन किया जाय उसकी भाषा चाहे जैसी रहे; पर पात्रोंकी भाषा, उनकी योग्यता, जाति, स्वभाव आदिके अनुसार ही रहे। मुंशीके मुंहसे संस्कृत उगलवाना, पंडितजीका अरबी ऊँटोंकी तरह बलबलाना, ग्रामीण स्त्रियोंसे शीन सपाटे भरवाना अस्वाभाविक है। चरित्र-चित्रणमें अस्वा-भाविकता बिलकुल न आने पावे। बुरे कामोंका बुरा और अच्छोंका अच्छा परिणाम दिखानेमें कदापि न हिचकना चाहिये। घटनाओंका तार-तम्य ऐसा रहे कि वे घटनायें पाठकोंकी आँखोंके साम्हने झूलने लगें। उपन्यास-लेखककी पूर्ण सफलता तब समझनी चाहिये जबकि उपन्यासके पढ़नेवाले उसकी कल्पित घटनाओंको भी सत्य ही समझने लगें। साथही, उपन्यास-लेखकको मनोरंजनके साथ अपना उच्च लक्ष्य न खो देना चाहिये। उसका उद्देश्य मनोरंजनके साथ ही साथ, पाठकोंको ज्ञान-वृद्धि, समाज-सुधार आदि होनाही चाहिये।

समय बदल रहा है। परिवर्तनके चिन्ह दिखाई देरहे हैं। पिष्टपेषणकी अब जरूरत नहीं। नवीनता ढूँढनी चाहिये। उसीका आदर होगा। बाबू मैथिलीशरणगुप्तने कवियोंको प्रोत्साहित करते हुए जो कुछ कहा है वही हम उपन्यास-लेखकोंके प्रति कहते हुए अपने इस अल्प प्रबन्धको समाप्त करते हैं:—

करते रहोगे पिष्टपेषण और कब तक कवियरो !
कच, कुच, कटाक्षों पर अहो ! अब तो न जीते जी मरो।
है बन चुका शुचि अशुचि अब तो कुरुचिको छोड़ो भला,
अब तो दया करके सुरुचिका तुम न यों घोंटो गला॥

आनन्द-दात्री शिक्षिका है सिद्ध कविता-कामिनी,
है जन्मसे ही वह यहाँ श्रीरामकी अनुगामिनी।
पर अब तुम्हारे हाथसे वह कामिनी ही रह गई,
ज्योत्स्ना गई देखो अँधेरी यामिनी ही रह गई॥

अब तो विषयकी ओरसे मनकी सुरतिको फेर दो।
जिस ओर गति हो समयकी उस ओर मतिको फेर दो।
गाया बहुत कुछ राग तुमने योग और वियोग का,
संचार कर दो अब यहाँ उत्साह का, उद्योग का॥

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये।
उसमें उचित उपदेशका भी मर्म होना चाहिये,
क्यों आज "राम-चरित्र-मानस" सब कहीं सम्मान्य है?

सत्काव्य-युत उसमें परम आदर्शका प्राधान्य है ॥
धैर्यच्युतोंको धैर्यसे कवि ही मिलाना जानते,
वे ही नितान्त पराजितोंको जय दिलाना जानते।
होते न पृथ्वीराज तो रहते प्रताप अर्जी कहाँ !
ग्रीस कैसे जीतता होता न यदि सोलन वहाँ !
संसारमें कविता अनेकों, क्रान्तियाँ है कर चुकी,
मुरझे मनों में वेग की विद्युत्प्रभाएँ भर चुकी।
है अन्धसा अन्तर्जगत कवि-रूप-सवितांके बिना।
सद्भाव जीवित रह नहीं सकते सु-कविताके बिना ॥

मृत जातिको कवि ही जिलाते रस-सुधाके योगसे ।
पर मारते हो तुम हमें उलटे विषयके रोगसे ।
कवियो ! उठो, अब तो अहो ! कवि-कर्मकी रक्षा करो,
सब नीच भावों को हरण कर उच्च भावोंको भरो ॥

ईश्वर करे, हमारे गद्य-कवि चेतें, स्वयं ही न चेतें वरन अपने देश और जातिका भला चेतें, कर्तव्य-जागरूक हों एवं समयको देखकर उत्तमोत्तम ग्रंथोंकी रचनाकर साहित्यको गौरवशाली बनावें। एवमस्तु।

❀ हिन्दी भाषामें उपन्यास ❀

लेखक—श्रीयुक्त लक्ष्मण गोविन्द आठले, राजनान्दगाँव ।

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
(हितोपदेश)

(१)

प्रस्तावना ।

हिन्दीभाषा ।

'हिन्दी' यह शब्द 'हिन्द' से बना है। इस दूसरे शब्द 'हिन्द' की कहाँसे उत्पत्ति हुई, इस-पर भिन्न भिन्न विद्वान् अपनी भिन्न भिन्न राय देते हैं। इनमेंसे बहुतोंकी राय है कि यह शब्द 'सिन्धु' (नद) का अपभ्रंश है। कोई इसे एक प्रकारकी गाली समझते हैं। इनके मतमें, जिस प्रकार हम लोग मुसलमानोंको म्लेच्छ कहा करते थे, उसी प्रकार मुसलमान लोग हमें 'हिन्दू' कहने लगे। इसी कारण कई इसे त्याज्य समझते हैं। वे 'हिन्दू' कहलानेमें अपनी बड़ी मान हानि समझते हैं। 'हिन्दू' के बदले 'भारतवासी या आर्य' और 'हिन्दी' के बदले 'आर्यभाषा' या सिर्फ 'भाषा' लिखनेकी चाल इन्हीं लोगोंमें निकली है। स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजीभी इसी मतके माननेवाले थे। आपकी रामायणमें 'हिन्द' 'हिन्दू' या 'हिन्दी' शब्दोंका नाम तक नहीं है।

हालमें ही महाराष्ट्रके प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्रीयुत काशीनाथ राजवाड़ेने इसकी उत्पत्तिपर एक नई ही कल्पना की है। मेरी समझमें यह कल्पना बहुत कुछ सत्यकी खोज पर स्थित है। वह कल्पना इस प्रकार है:—

"विष्णुपुराण पुराने भारतका एक प्रसिद्ध भौगोलिक ग्रन्थ है। इस पुराणके अनुसार, उस समयका जाना हुआ संसार, नव द्वीपोंमें विभक्त था। उनमेंसे एक द्वीपका नाम 'इन्द्रद्वीप' था। यह 'इन्द्र द्वीप' वर्तमान पंजाबके पश्चिमी विभागमें सुलेमान पर्वत तक फैला हुवा था। सुलेमान पर्वतकी दूसरी ओर, विष्णुपुराणके अनुसार, म्लेच्छ लोग रहते थे। ये म्लेच्छ लोग पासके इस छोटेसे 'इन्द्रद्वीप' के नामपर ही वर्तमान सारे भारतवर्षको जानते थे। वे उसे 'इन्द' कह कर पुकारते थे। 'ह' कारका उस तरफ अधिक प्रचार होनेके कारण, उच्चारणकी

सुगमतासे कुछ दिनोंमें इस 'इन्द' का 'हिन्द' रूपान्तर होगया। परन्तु खास भारतवर्षमें इसका प्रचार न था। कालान्तरमें जब इन्हीं म्लेच्छ लोगोंने भारतवर्षपर विजय प्राप्तकी और जब वे यहांके अधिकारी हुये, तब अपने साथ वे इस शब्दको भी लेते आये। अपनी प्राचीन पद्धतिके अनुसार यहाँ आनेपर भी उन्होंने 'भारत' का नाम 'हिन्द' ही रक्खा। इनके राजत्वकालमें धीरे धीरे सारे भारतवर्षमें (खास कर उत्तरी भारत में) इस शब्दका प्रचार हुआ। इस प्रकार 'हिन्द' शब्दकी उत्पत्ति हुई और भारतमें इसका इस प्रकार प्रचार हुआ।"

उदाहरणके लिये वर्तमान India (इण्डिया) शब्द लीजिये। अंगरेजोंके आनेके पहिले यहाँ इसका प्रचार न था। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यका उदय होनेहो, अंगरेजोंका अनुकरण करते हुये, अब हम लोगभी 'भारत वर्ष' या 'आर्यावर्त' को 'इण्डिया' कहकर सम्बोधन करते हैं। यह 'इण्डिया' शब्द ग्रीक * लोगोंसे यूरोपमें फैला। ग्रीक लोग 'इण्डिया' को एलेकजेण्डरकी विजयके कई वर्ष पहिलेसे ही जानते थे, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। इस 'इण्डिया' शब्दकी उत्पत्तिभी, मेरी समझमें, इसी 'इन्द' शब्दसे है। अंगरेजोंके राजत्वकालमें जिस प्रकार यहाँ 'इण्डिया' शब्दका प्रचार हुवा, उसीप्रकार मुसलमानी राज्यमें 'हिन्द' का हुआ। इस हिसाबसे 'हिन्दू' हिन्द या 'हिन्दी' कोई लाञ्छनास्पद शब्द नहीं हैं; किन्तु ये शब्दभी उतने ही ग्राह्य हैं जितने कि 'इण्डिया' या 'इण्डियन'।

India शब्दका ठीक अर्थ जिस प्रकार 'हिन्द' है, उसी प्रकार 'हिन्दीभाषा' का ठीक अर्थ Indian language होना चाहिये। तब यहाँ एक कठिनाई उपस्थित होती है, जो कि आज-कल कई विद्वानोंके वादविवादका मुख्य विषय होरही है। इनके हिसाबसे 'हिन्दीभाषा' नामकी भारतमें कोई एक विशेष भाषा नहीं है। Indian language का अर्थ है 'हिन्दीभाषा' Indian language के कहनेसे जिस प्रकार भारतकी किसी एक विशेष भाषाका बोध नहीं होता, उसी प्रकार 'हिन्दीभाषा' कहनेसे भी भारतकी किसी एक विशेष भाषाका बोध नहीं होना चाहिये। अर्थात् भरत-की प्रचलित सब भाषाओं-जैसे बंगाली, मराठी, उड़िया, तेलंगी, गुजराती इत्यादि-को जिस-प्रकार हम Indian languages कह सकते हैं, उसी प्रकार इन्हीं सब भाषाओंको हम 'हिन्दी-भाषा' भी कह सकते हैं। इस हिसाबसे बंगाली एक हिन्दीभाषा है। मराठी, हिन्दीभाषा है। गुजराती, हिन्दीभाषा है। तेलंगी एक हिन्दीभाषा है। तब भारतवर्षमें 'हिन्दीभाषा' कोई एक विशेष भाषा कहाँसे रही?

भारतीय-भाषा-विज्ञ कई एक विद्वान् अंगरेज और इन्हींका अनुकरण करते हुये, कई एक मुसलमान विद्वान तथा हिन्दू, इस बातपर जोर देते हैं कि 'हिन्दीभाषा नामकी एक तो भारतमें कोई एक विशेष भाषा ही नहीं। कोई भाषा अगर ऐसी है, तो वह 'उर्दू' है। इसेही भारत-की प्रमुख भाषा-हिन्दुस्तानी भाषा, या 'हिन्दी' कहना चाहिये, क्योंकि उत्तरी भारतकी-हिन्दु-स्तानकी-जातीय भाषामें जो कुछ गुण पाये जाना चाहिये, वे सब इस-उर्दू भाषामें हैं। इस बातका उत्तर देना, या इसका खण्डन करना, सहज नहीं है। जितनी ही सूक्ष्मतासे देखा जाय उतनी ही अधिक कठिनता इस विषयमें उपस्थित होती है। तब क्या 'उर्दू' हिन्दी भाषा है?

* जिन्हें संस्कृत भाषामें 'यवन' कहते हैं। यह 'यवन' शब्द फारसी 'यूनान' से निकला, जो कि प्राचीन 'ग्रीक शब्द' Indian (अयोनियन) का रूपान्तर है। लेखक.

यही प्रश्न आगे रखकर, भारतमित्रके भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दगुप्तने 'हिन्दी-भाषा' नामकी एक छोटीसी पुस्तक लिखी है। पुस्तक अधूरी है। पुस्तक पूरी होनेके पहिले ही, खेद है कि आपका परलोकवास होगया। परंतु जो कुछ आप लिख गये हैं उससे यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि आप 'हिन्दी' और 'उर्दू' में कोई अधिक अन्तर नहीं मानते थे। आपकी समझसे 'हिन्दी' 'उर्दू' एक ही भाषा है। "परन्तु यदि वह फारसी लिपिमें लिखी जावे तो 'उर्दू' और देवनागरीमें लिखी जावे तो वही 'हिन्दी' कहलाती है। इस 'हिन्दी' की उत्पत्ति, आपके कथनानुसार शाहजहाँके जमानेमें हुई।

इस विषय पर चर्चा करनेवाला दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ "मिश्रबन्धुविनोद" है। यह किसी अंगरेजी ग्रन्थका अनुवाद नहीं है। न किसी अंगरेज विद्वानके मतका समर्थक है। परन्तु उपरोक्त गुप्तजीकी 'हिन्दीभाषा' के समान यह भी स्वतंत्र बुद्धिसे लिखा गया है। इसके लेखक हैं तीन प्रसिद्ध और अनुभवी स्वतंत्र लेखक। इसीसे विशेष सराहनेकेयोग्य है। इसके हिसाबसे 'हिन्दी' और 'उर्दू' में कोई सम्बन्ध नहीं। 'हिन्दी' एक स्वतंत्र भाषा है। यह 'उर्दू' से प्राचीन है। यह ८ वीं-६ वीं शताब्दिमें भी भारतवर्षमें पाई जाती है। Doctrine of Evolution (विकास-वाद) के समान हिंदीके क्रमशः परिवर्तनका मनोरंजक इतिहास इसमें दिया गया है। भारतके लिये यह एक श्रेष्ठ रत्न है। हम मानते हैं कि यह सर्वथा पूर्ण ग्रंथ नहीं। इसमें कई एक भारी भारी दोष हैं। कई त्रुटियां हैं। तौभी यह ग्रन्थ, इस विषय पर चर्चा करनेवाले किसी नवीन लेखकका, आगे बड़ा ही अच्छा पथ दर्शक होगा, इस अभिप्राय से इसकी जितनी प्रशँसा कीजाय उतनी थोड़ी है।

इस ग्रन्थके लेखकोंने यह सिद्ध किया है कि 'हिन्दी भाषा' भारतकी एक 'विशेष भाषा' है। इसकी उत्पत्ति भारतकी किसी एक विशेष प्राचीन या अर्वाचीन-भाषासे नहीं। परन्तु यह उत्तरी भारतकी पुरानी या प्रचलित जितनी भाषायें हैं, उन सबके इकट्ठे निष्कर्षसे उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि यह भारत भरमें सुगमतासे समझी जाती और साहित्यके अंगमें अभी तक अत्यन्त पंगु होने पर भी, भारतकी एक राष्ट्रभाषा होनेका निर्विवाद गौरव प्राप्त करनेके लिये आगे बढ रही है। इस (हिन्दी) के क्रमशः विकासका इतिहास जिसे जाननेकी इच्छा हो, वह 'मिश्रबन्धु विनोद' को ध्यान पूर्वक अवलोकन करे।

उपन्यास।

किसीभी भाषाकी उत्तरोत्तर उन्नति करता हुवा जो भाषाके साथ साथ चले और हर प्रकार-से उसकी त्रुटियोंको पूर्ण करता जाय उसे उस भाषाका 'साहित्य' कहते हैं। 'भाषा-साहित्य' शब्द अलंकारिक है, और मेरी समझमें 'यज्ञ-साहित्य' से लिया गया है। जिस प्रकार 'दर्भ' समिधा, घी, अन्न इत्यादि इकट्ठे रूपमें एक यज्ञका साहित्य है, उसी प्रकार काव्य, नाटक, उपन्यास इत्यादि भाषाका साहित्य है। साहित्यके बिना 'यज्ञ' या 'भाषा' हो नहीं सकती। साहित्य जितना ही अधिक हो उत्तरोत्तर-वृद्धि पर हो-उतनाही अधिक आनन्द होता है। 'उपन्यास' भाषा-साहित्यका एक प्रमुख अंग है। हिन्दीभाषामें भी उपन्यास हैं। हिन्दी भाषामें उपन्यास लिखनेकी प्रणाली कब, क्यों और कैसे उत्पन्न हुई, इस पर थोड़ेमें विचार करेंगे।

"जो ग्रन्थ मनुष्यके बाहरी, अच्छे, बुरे स्वभाव तथा आचरणका, उसके हृदय एवं

विचारोंका चित्र, लिखित शब्दोंमें मनोरंजकताके साथ, पाठकोंके आगे उपस्थित करता है, वह 'उपन्यास-ग्रन्थ' है । ऐसे ग्रन्थोंको अंगरेजीमें Fiction or Novel, मराठीमें 'कादम्बरी' (क्योंकि, ये ग्रन्थ, प्रसिद्ध संस्कृत गद्यलेखक 'बाण' की 'कादम्बरी' नामक कथाकी लेखन शैलीका अनुकरण करते हैं ।) और बंगाली तथा हिन्दीमें 'उपन्यास' कहते हैं ।

हिन्दीमें उपन्यास लिखनेका कार्य आरम्भ हुये कुल २५ या ३० वर्ष ही हुये हैं । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके देहावसानके पश्चात् ही हिन्दीका उपन्यास काल आरम्भ होता है । स्वयं भारतेन्दुजीने भी एक उपन्यास लिखा है । परन्तु खेद है कि आप उसे पूरा न कर पाये । बीचमें ही आप कराल कालके गालमें कवलित हो गये ।

हिन्दीमें उपन्यास लिखनेकी ओर लोगोंकी रुचि क्यों और कैसे हुई, इसका सिर्फ एक कारण बताया जा सकता है । हिन्दी उपन्यासोंका उत्पत्ति और केन्द्रस्थान काशी है । भारतेन्दुजीकी सभाने आपके नाटकोंने, काशीकी सभ्य मण्डलीपर बड़ाही प्रभाव डाला । हिन्दीपर लोगोंका अनुराग दिन दिन बढ़ने लगा । यहाँ तक कि, उस समय, प्रत्येक पढ़ा लिखा आदमी, इस उठती उमंगकी तरंगमें तैरता हुवा, किसी न किसी तरह हिन्दीकी सेवा करनेके लिये अग्रेसर होने लगा । परन्तु सेवा करें तो करें कैसी? नाटक लिखना हरएकका काम नहीं । जटिल, गम्भीर एवं कठिन विषयोंपर पहिले ही पहिल पुस्तक लिखना हँसी दिल्लगी नहीं । अगर कोई विषय आसान था, तो वह या तो तुकबन्दी करना या छोटे छोटे उपन्यास लिखना । इस समय 'बंगला भाषा' में उपन्यासोंकी धूम थी । काशीमें अंगरेजी और बंगाली जाननेवाले नागरिकोंकी संख्या कम नहीं थी । ये लोग लिटन, स्काट, रैनल्ड, बंकिम बाबू इत्यादिके उपन्यासोंका रस चख चुके थे । इन लोगोंने सोचा कि इन्हीं उपन्यासोंका आदर्श सामने रख, हिन्दीमें ऐसीही पुस्तकें लिख, हिन्दीकी सेवा क्यों न की जाय? बस, इसी ढेर्रे पर धड़ाधड़-उपन्यास लिखे जाने लगे । उर्दू के बुल बुल हजार दास्तां, हातिमताई इत्यादिसे जो अधिक विज्ञ थे, उन्होंने अपने उपन्यासोंमें जादू-तिलस्म, ऐय्यारी वगैरहकी चक्करदार बातोंका लिखनाभी शुरू कर दिया । बाबू राधाकृष्ण वर्मा, बाबू देवकीनन्दनखत्री, गोस्वामी किशोरीलालजी जैसे उपन्यास लेखक, धीरे धीरे रंगभूमि पर आये । जहाँ उपन्यासोंका नाम न था वहाँ बीसही वर्षके भीतर उपन्यासोंका एक दूसरा हिमालय खड़ा होगया । इतना भी बस न हुवा । उपन्यासोंकी माँग इतनी बढ़ी कि अकेली काशी उसे पूरी न कर सकी । तब कलकत्ता, बम्बई, प्रयाग, आरा, कानपुर प्रभृति स्थानोंमें बड़े बड़े उपन्यास लेखक पैदा होने लगे । जो आजतक धड़ाधड़ अपना कार्य करतेही चले जारहे हैं ।

अत्यन्त संक्षेपमें हिन्दी भाषा और उसके उपन्यासों की यह राम कहानी हुई । अब यह देखना है कि हिन्दीमें उपन्यासोंका क्रमशः कैसे विकास हुवा ।

(२)

हिन्दीके उपन्यासोंका क्रमशः विकास ।

इस 'विकास' के सम्बन्धमें यह एक आश्चर्यजनक बात दृष्टि पड़ती है कि जिस क्रमसे मनुष्यकी मानसिक शक्तिका विकास होता है । उसी क्रमसे हिन्दीके उपन्यासोंका विकास हुआ ।

(१) बाल्यावस्थामें मनुष्यकी मानसिक प्रवृत्ति अप्रत्यक्षरूपसे, मनुष्य समाजपर घटित होनेवाली, बन्दर, भालू, गीदड़, बाघ इत्यादि जानवरोंकी कहानियाँ सुननेकी ओर अधिक होती है । ऐसा कौन पुरुष होगा जिसने छुटपनमें ऐसी कहानियाँ

सुननेके लिये अपनी नानी, माँ, या किसी 'शम्भूकी दाई' को तंग न किया हो। ये छोटी छोटी कहानियाँ ही आजकलके बड़े बड़े उपन्यासों-की जनक-जननियाँ हैं। हिन्दी जाननेवाले प्रान्तों-में इनकी कमी नहीं परन्तु घर घर सुनी जानेवाली इन कहानियोंका, किसी लेखकने संग्रह कर, प्रकाशित करनेका बीड़ा अभीतक नहीं उठाया। पंचतंत्र, हितोपदेश, इसापनीति सरीखी दो चार पुस्तकें बहुत दिनोंसे हिन्दीमें प्रकाशित हो चुकी हैं; किन्तु ये अन्य भाषाओंसे अनुवादितकी हुई हैं। यह पहिली सीढ़ी है।

(२) साधारण बुद्धि आतेही बालकी रुचि बन्दर, भेड़ियोंकी कहानियोंसे हट कर, मनुष्यके कल्पित अद्भुत अद्भुत कर्मोंकी कहानियाँ सुननेकी ओर जाती है। ठीक इसी प्रकार हिन्दीके उपन्यासोंकी दूसरी सीढ़ीका हाल है। इस सीढ़ीमें सिंहासनबत्तीसी, बैताल पच्चीसी, शुक-बहत्तरी, चित्तविनोद, अकबर-बीरबल, अलिफ लैला सरीखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जो ऊपर लिखी बातके लिये साक्षी स्वरूप हैं।

(३) इसके पश्चात् मनुष्यकी चित्तवृत्ति बहुत कम प्रेमकी ओर जाते हुये, बड़े बड़े भयंकर, अमानुषी, जादू, तिलिस्म सरीखी, तर्कके आगे प्रायः बिलकुलही न ठहरनेवाली बातोंपर जाती है। हिन्दीके उपन्यासोंकी तीसरी सीढ़ीका यही हाल है। इस सीढ़ीमें चन्द्रकान्ता, कुसुमलता, चन्द्रभागा सरीखी बड़ी विचित्र तथा चक्करदार बातें बतानेवाले उपन्यास निकले।

(४) इसके बादकी वह सीढ़ी है जिसमें 'महेन्द्रकुमार' 'रंगमहल' सरीखे उपन्यास प्रकाशित हुये। इन उपन्यासोंमें हलके प्रेमकी बातें होनेके अतिरिक्त तर्कसे टक्कर लेनेवाली 'ऐय्यारी-तिलिस्मी' की बातें भी हैं।

(५) इसके पश्चात पाँचवी सीढ़ीमें मनुष्य संसारमें प्रवेश करता है। उसकी मानसिक और विचार शक्तिका इस समय बहुत कुछ विकाश हुआ रहता है। अब वह सच्चे मनुष्य समाजमें घुसकर जानना चाहता है कि मनुष्य कैसे कैसे स्वभाववाले होते हैं। "भिन्नरुचिर्हिलोकः" का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है। अच्छे कैसे होते हैं? बुरे कैसे होते हैं? इत्यादि। हिन्दी साहित्यके उपन्यास आजकल इसी श्रेणीमें विद्यमान हैं।

सारांश, पहिले किस्से कहानियाँ, फिर ऐय्यारी तिलिस्मी उपन्यास, फिर साधारण उपन्यास और अन्तमें सामाजिक चित्र खींचने-वाले उत्तम उपन्यास, इस क्रमसे हिन्दीके उपन्या-सोंका क्रमशः विकास हुआ है। इस प्रकार प्रका-शित हुये इन उपन्यासोंपर एक सरसरी दृष्टि डालना जरूरी है।

(३)

हिन्दीके वर्तमान् उपन्यासोंपर एक दृष्टि।

आख्यायिकायें, किस्से कहानियाँ यद्यपि मनुष्य समाजसे सम्बन्ध रखती हैं; तोभी इनकी गिन्ती उपन्यासोंमें नहीं की जाती। इन्हें छोड़ कर, हिन्दी साहित्यमें जितने उपन्यास हैं। वे निम्न-लिखित मोटे मोटे चार विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं:—

(१) चमत्कारिक उपन्यास, (२) सामाजिक उपन्यास, (३) जासूसी उपन्यास, और (४) ऐतिहासिक उपन्यास।

(१) चमत्कारिक या अद्भुत उपन्यास।

इस उपन्यास खण्डके दो स्थूल विभाग हैं। एक वह जो ऐय्यारी-तिलिस्मकी चक्करदार बातें सुनाता है। दूसरा वह जो दूसरे ही प्रकारकी बड़ी बड़ी अचरज भरी बातें बताता है। इनमेंसे पहिले हम ऐय्यारी-तिलिस्मी उपन्यासोंका वर्णन करते हैं।

(अ) ऐय्यारी-तिलिस्मी उपन्यासः—

हिन्दीमें इस समय सबसे अधिक यदि किसी विषयके उपन्यास हैं, तो इसी विषयके। हिन्दी-संसारमें सबसे अधिक उपन्यास यदि किसी विषयके पढ़े गये होंगे तो इसी विषयके। कदाचित बाबू देवकीनन्दनजीखत्री इन उपन्यासोंके उत्पादक हैं। आपकी चन्द्रकान्ता ४ भाग, चन्द्रकान्ता सन्तति २४ भाग, भूतनाथकी जीवनी ८ भाग इस श्रेणीके बड़ेही प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन उपन्यासोंके बाद कुसुमलता, चन्द्रभागा, पुतली महल, मोती महल, चंचल मोहनी आदि भी इस श्रेणीके अच्छे उपन्यास हैं।

जितने तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यास हैं, सबोंके लिखनेका ढंग एकसा ही है। उपन्यासोंमें एक नायक और एक नायिका रहती है। संसार भरके जितने आदर्श सद्गुण हैं, वे सब नायक-नायिकाओंमें बताये जाते हैं। दोनों राजबालक। सत्य बोलनेमें दोनों युधिष्ठिरसेभी बढ़े चढ़े। बल और पराक्रममें नायक, भीम अर्जुन या हनुमानसे किसी तरह कम नहीं। सुन्दरतामें दोनों रति और काम से एक डिग्री बढ़ कर। ऐसे इन अद्वितीय कुमार-कुमारियोंकी किसी तरह, एकाएक, आपसमें देखा देखी हो जाती है। चार आंखें होते देर नहीं कि (और कहीं कहीं तो सिर्फ चित्र देखकर ही) "गुणा गुणैः सगमनु-व्रजन्ति" के न्यायानुसार दोनों एकदम एक दूसरे पर अत्यन्त आसक्त हो जाते हैं। यह भी इतना कि पहिलीही देखा देखीमें, वियोगके कारण, दोनोंका खाना पीना तक बिलकुल छूट जाता है। अब इस पवित्र प्रेमके बीचमें एक प्रतिस्पर्धी दुष्ट पुरुष उत्पन्न होता है। यह भी किसी एक देशका राजा ही होता है, परन्तु प्रत्येक बातमें यह कुमारसे विरुद्ध। संसार भरके दुर्गुणोंकी खानि। सूरत शक्लमें अफरिकाके हबशियोंको भी मात करता है। ऐसा यह विचित्र पुरुष उक्त कुमारीपर; उसके घृणा करते रहने पर भी, आसक्त हो जाता है। ऐसा होनेपर स्वभावतः वह कुमारसे द्वेष करने लगता है। इन दोनों पुरुषोंमें बहुत दिनों तक बड़ी बड़ी चालें, युद्ध तथा कुश्ती होती, और दोनों ओर ऐय्यार नामके सेवक नियुक्त रहते हैं। इन ऐय्यारोंमें यह विशेषता होती है कि जिस समय चाहे जहाँ-कहीं कहीं तो दौड़ते दौड़ते-किसी भी पुरुषका अभेद रूपधारण कर, उसके बाप तकको भ्रमभँवरमें डाल देते हैं। कहीं कहीं तो ४०-५० वर्षका बूढ़ा ऐय्यार १८ वर्षके लड़केका रूप धारण करता है और कहीं कहीं ३०-४० सालकी अधेड़ ऐय्यारा, १६ सालकी किसी सुकुमार तरुणीका रूप धारणकर उसके आसक्त तकको धोखेमें डाल देती है। इस तरह दोनों ओर बड़ी बड़ी खटपट होती है। इसी खटपटमें स्वयं कुमारी, उस दुष्ट पुरुषके द्वारा, कभी बेहोशीकी हालतमें या कभी धोखा देकर, अपने पिताके महलसे निकाली जाती है। निकाली जानेपर वह कभी जादूगरोंके घरोंमें या कभी इन जादूगरोंके बनाये हुए 'तिलिस्म' में धोखे धोखेमें ही फंस जाती है। ग्रीसके इतिहासमें क्रीटके राजा मीनोसका बनवाया अद्भुत 'लेबिरिन्थ,' या अमेरिकाके विश्वकर्मा एडीसन साहबका भवन इन तिलिस्मी मकानोंके और राजाओंके सामने × तिलोंके समान क्या होगा? इन तिलिस्मी मकानोंमें बड़ी जायदाद रहती है। बड़े बड़े कल पुर्जोंके सहारे यह बना रहता है। इसके भीतर घुसकर फिर बाहर निकलना असम्भवसे भी असम्भव। परन्तु एक पुस्तक रहती है। जिसे इसकी 'चाबी' कहते हैं। इस चाबीके बनाये हुए राहोंसे भीतर घुस, तिलिस्म तोड़, धन निकालना अधिक कठिन नहीं। परन्तु इस चाबीमें भी एक करामात रहती है। वह यह कि जिसके नामपर तिलिस्म तोड़नेका रहता है, उसे ही यह मिलती, दूसरोंको नहीं। अस्तु। कुमारीके वहां फंस जानेपर, कुमार इसी चाबीके सहारे (क्योंकि वह

उसीके नामपर रहती है ।) तिलिस्म तोड़ कुमारीका उद्धार करता, प्रतिस्पर्धीनृशंस पुरुष भगाया जाता, और अन्तमें कुमार कुमारियोंका विवाह होता है ।" इसी नीवपर ऊपर लिखे उपन्यासोंकी इमारत है ।

'महेन्द्र कुमार' 'रंग महल' इत्यादि उपन्यासभी इसी धर्ती पर हैं । अन्तर इतनाही है कि इनमें 'तिलिस्मी या ऐय्यारी' की जो बातें हैं, वे कुछ अक्लमन्दीके साथ लिखी गई हैं । अर्थात् तर्कसे कुछ टक्कर लेनेवाली हैं, बिलकुलही 'तूल-तवील' नहीं ।

(ब) अद्भुत उपन्यास :— इन उपन्यासोंमें तिलिस्म-ऐय्यारीकी बातें नहीं, कुमार कुमारीका प्रेम नहीं । परन्तु बड़ी अचरज भरी बातें सुनाते हैं । बात नामसेही मालूम हो सकती है । जैसे:-बिना सवारका घोड़ा, कटे मूंड़की दो दो बातें, नर पिशाच, हवाई नाव, सखा बहादुर इत्यादि ।

(२) सामाजिक उपन्यास ।

"जो उपन्यास अपनी समाजकी कुरीतियों या अच्छी रीतियोंका वर्णन, दर्पणके समान, पाठकोंके आगे उपस्थित करता है, उसे सामाजिक उपन्यास कहते हैं ।" ऐसे उपन्यास दो प्रकारके होते हैं । एक दुःखान्त और दूसरा सुखान्त । *जिस उपन्यासका अन्त करुणरस* पूर्ण हो वह दुःखान्त और जिसका शृंगार रस पूर्ण हो वह सुखान्त । हिन्दीमें ऐसे उपन्यास दो तरहसे लिखे गये हैं । एक वह जिसमें उपन्यासका नायक, अथसे इति पर्यन्त, स्वयं अपने मुखसे अपना वृत्तान्त पाठकोंको सुनाता जाता है । जैसे संसार चक्र, कुली कहानी । दूसरा वह, जिसमें उपन्यासकार अपनी भाषामें अपने नायक और अन्य पात्रोंका वर्णन करता है । जैसे राजकुमारी, विष वृक्ष ।

दुःखकी बात है कि हिन्दीके प्रायः सभी अच्छे अच्छे सामाजिक उपन्यास दूसरी भाषाओंसे ज्योंके त्यों अनुवादित किये गये हैं । ये सामाजिक उपन्यास बंगला या अंगरेजी समाजका भलेही अच्छा दिग्दर्शन करावें, परन्तु हिन्दी जहांकी मातृभाषा है, ऐसे युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश या मध्य-भारतकी सामाजिक दशाका ज्ञान इनसे नहीं हो सकता । इन्हें हिन्दीके सामाजिक उपन्यास कहनेमें शर्म मालूम पड़ती है । मेहता लज्जाराम शर्माके लिखे हुये उपन्यासोंको, तथा और कुछ थोड़ेसे गिने गिनाये उपन्यासोंको छोड़कर,

हिन्दीमें सच्चे सामाजिक उपन्यास हैं ही नहीं ।

दूसरी भाषाओंसे अनुवादित किये उपन्यास उस भाषाके सच्चे उपन्यास हो नहीं सकते ।

सूक्ष्म रीतिसे हिन्दीके इस उपन्यास श्रेणीके तीन विभाग किये जासकते हैं । कनिष्ट, मध्यम और उत्तम ।

(अ) कनिष्ट—इस श्रेणीमें हम हिन्दीके उन उपन्यासोंको रखते हैं, जो मनुष्योंके अन्तःकरण की हलचल तक नहीं पहुँचे हैं । वे सिर्फ समाजमें प्रचलित मोटी कुरीतियोंका वर्णन करते हैं । इनके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं । नामसे ही इनकी भीतरी बात मालूम हो सकती है । ऐसे उपन्यास बाबू रामकृष्ण वर्माने अधिक लिखे हैं । ये प्रायः सभी उर्दू उपन्यासोंके अनुवाद मात्र हैं । जैसे:-अमला वृत्तान्तमाला, पुलिस वृतांतमाला, संसार दर्पण कांष्टेबिल वृत्तान्तमाला इत्यादि ।

(ब) मध्यम :— इस श्रेणीके प्रसिद्ध उपन्यास लेखक हैं मेहता लज्जाराम शर्मा । इनमें नायक या नायिका, अस समाजमें, आदर्शके समान उपस्थित किये जाते हैं । दूसरी ओर दुष्टता और नृशंसताका चित्र खींचा जाता है । जितने अच्छे अच्छे सद्गुण हैं, जितनी आदर्श बातें हैं सब नायक-नायिकाका मुख्यमंत्र होता है ।

स्थान स्थान पर इनके आदर्श गुणोंसे और विरुद्ध पक्षके दुर्गुणोंसे कलह होती है। आरंभ आरंभमें आदर्श गुण दुःखमें पड़ते और दुर्गुणोंकी जीत सी होती है। परन्तु अन्तमें नायक या नायिकाके आदर्श गुणोंकी ही जीत रहती है। जैसे स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी, आदर्श हिन्दू, बिगड़ेका सुधार या सती सुख देवी । इत्यादि। गोस्वामी किशोरीलालने भी इस श्रेणीके दो एक साधारण उपन्यास लिखे हैं। उनमें, राजकुमारी, चपला या हिन्दू नव्य समाजका चित्र अच्छे उपन्यास हैं। इनके सिवाय आदर्श बहू, छोटी बहू, लक्ष्मी बहू, शान्ता, जयन्ती, प्रतिमा, संसार चक्र इत्यादि इस श्रेणीके उत्तम उपन्यास हैं।

(स) उत्तम :— सामाजिक उपन्यासोंमें सर्व श्रेष्ठ उपन्यास वे हैं, जो जन समाजका चित्र, मनुष्यके अन्तः करणका असली चित्र पूर्ण रीतिसे भलीभांति खींच देते हैं। उनके नायक या नायिका भी क्यों न हो, परन्तु जहाँ मनुष्य स्वभावकी स्वाभाविक दुर्बलताका बताया जाना अवश्य है, वहाँ वे उसे अवश्य अङ्कित करेंगे। कनिष्ठ और मध्यम श्रेणीके उपन्यास, नीति और आदर्शकी बड़ी बड़ी बातोंमें लिपटे रहनेके कारण, उनका मनुष्य स्वभावका चित्र अङ्कित करनेका कार्य बड़ाही अस्वाभाविक होना है। परन्तु उत्तम श्रेणीके उपन्यासोंका ऐसा हाल नहीं। वे मनुष्यके सच्चे स्वभावका, उनके अन्तः करणकी दुर्बलता-सबलताका सच्चा, स्वाभाविक और ठीक ठीक चित्र खींचनेमें लगे रहते हैं। ऐसे उपन्यास समाजको विशेष लाभ पहुँचा सकते हैं। निजकी कल्पनासे लिखा गया ऐसा उपन्यास हिन्दीमें हमारे देखनेमें अभीतक एकभी नहीं आया। बंगालीसे अनुवादित जो कुछ उपन्यास इस श्रेणीके हिन्दीमें हैं, थोड़ेमें उनके नाम ये हैं :— विषवृक्ष, आंखकी किरकिरी, नौका डूबी, स्वर्ण लता, सीताराम इत्यादि।

(३) जासूसी उपन्यास ।

तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यासोंके समान जासूसी उपन्यासोंका हिन्दीमें बड़ा प्रचार है। हिन्दीमें इन उपन्यासोंके उत्पादक बहुत करके गहमर निवासी बाबू गोपालराम जी हैं। आपके 'जासूस' मासिक पत्रने आजतक सैकड़ों इस तरहके उपन्यास हिन्दीमें प्रकाशित किये हैं। बाबू रामकृष्ण वर्माने इस श्रेणीके दो चार बड़े मार्केके उपन्यास लिखे हैं। इनमें मनोरमा, मायाविनी, प्रमिला बहुत प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आजकल कलकत्तेकी 'रामलाल वर्मन् एण्ड कम्पनी' 'दरोगा दफ्तर' नामका एक मासिक पत्र निकाल रही है। जासूसी उपन्यासोंका इसमें समावेश है। इसने सैकड़ों उपन्यास प्रकाशित करदिये और न मालूम कितने अभी और प्रकाशित करेगी। बाबू गोपालराम गहमरीके लिखे जासूसी उपन्यास, प्रायः सभी, बड़े ही चित्ताकर्षक और मनोरंजक होते हैं। जीवनमृत रहस्य, नौलाखकी चोरी, भयंकर बदलौवल इत्यादि आपके बड़े ही रोचक उपन्यास हैं।

इन उपन्यासोंका नायक एक जासूस (गुप्तचर) रहता है। समाजमें जो बड़े बड़े डाके पड़ते हैं, खून खराबियाँ होती हैं, बड़ी बड़ी चोरियाँ होती हैं, उन्हींके अनुसन्धानमें ये जासूसराम बाहर निकलते हैं। बड़ी चतुराई, बड़ी दक्षता, जीवन मरणके बड़े बड़े कठिन प्रसंगोंसे बचते हुये, उन डाकुओं, हत्या कारियों, और चोरोंका पता लगाते हैं। जासूसकी इन हर एक चालाकियों, विकट प्रसंगोंका वर्णन इन उपन्यासोंमें रहता है। कभी कभी जासूसरामके साथ एक तेज कुत्ता भी रहता है। चोरोंका पता लगानेमें यह उसके दाहिने हाथसे बढ़कर उपयोगी होता है।

ये जासूसी उपन्यास कुछतो लेखकोंने निजकी कल्पनासे लिखे हैं और कुछ क्यों अधिक तर

बंगला भाषाके प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास लेखक ' बाबू पाँच कौड़ी दे ' की कृतियोंके अनुवाद हैं।

(४) ऐतिहासिक उपन्यास।

ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यासका ही एक अंग है। इस उपन्यासका नायक या नायिका कोई ऐतिहासिक व्यक्ति होता है। किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना पर ये उपन्यास लिखे जाते हैं। इसलिये इनमें लिखी गई बातें प्रायः सच हुवा करतीं हैं। प्रोफेसर ' मेक मिलन ' इन उपन्यासों पर लिखते हैं कि- " Historical novels give us brilliant pictures of history, which from their vividness make a far deeper impression than the duller pages of historical text books."

हिन्दीमें ऐसे उपन्यास जितने चाहिये उतने नहीं हैं। बाबू गंगाप्रसाद वर्मा, गोस्वामी किशोरी लाल, बलदेवप्रसाद मिश्र प्रभृति हिन्दीके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लेखक हैं। ' पूनेमें हलचल' ' वीर जयमल ' ' रजिया बेगम, ' ' [illegible] मस्तानी ' ' पानीपत ' ' दीप निर्वाण ' ' जीवन संध्या ' ' अमृत पुलिन ' ' ठग वृत्तान्त माला, ' ' जयन्ती ' ' रूठीरानी ' ' शोणित तर्पण ' आर्योंका आत्मोत्सर्ग, ' चान्द बीबी ' इत्यादि इस श्रेणीके अच्छे उपन्यास हैं।

संक्षेपमें हिन्दी उपन्यासोंकी यह आलोचना हुई। अब उपन्यासोंके परिवर्तन काल तथा लेखकोंके रुचिके बहाव पर थोड़ेमें विचार करेंगे।

(४)

परिवर्तन काल।

काशीके प्रसिद्ध उपन्यास लेखक और प्रकाशक बाबू देवकीनन्दनखत्रीके परलोकवासी होने और ' हिन्दी उपन्यास सागर ' के प्रकाशक बाबू रामलालवर्माके कलकत्ते चलेजाने पर, हिन्दी उपन्योंके ' केन्द्रस्थल ' का मान 'काशी' से उड़ गया। उपन्यासोंके हक्कमें यह एक बड़ी भारी बात हुई। यहाँ तक कि १६१२ ई० से हिंदी उपन्यासोंके लिये एक नयाही युग आरंभ हुवा समझना चाहिये। पहिलेके उपन्यासोंमें और इस नवीन युगके उपन्यासोंमें कई बातोंमें बड़ा अंतर है। इस अंतरको देखकर हम यह भी बता सकेंगे कि अब हिंदी उपन्यास लेखकोंकी रुचिका बहाव किस ओर है।

सबसे पहिला अन्तर भाषाका है। काशीसे जितने उपन्यास निकले हैं, उनमें-विशेष कर तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यासोंमें-उम्दी मुहाविरेदार उर्दू भाषाका उपयोग किया गया है। परन्तु इस नवीन युगके उपन्यासोंका ऐसा हाल नहीं। इनमें उर्दू शब्दोंपर एक प्रकारसे एकदम तिलांजलि देदी गई है। उनके बदले संस्कृत शब्दोंका अधिक उपयोग किया गया है। यह बात आजकल प्रकाशित होनेवाले उपन्यासों और पुराने तिलिस्मी-ऐय्यारीके उपन्यासोंको तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेपर मालूम हो सकती है।

दूसरी बात: काशीसे केन्द्रस्थलका मान उठते ही तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यासोंका हिंदीमें निकलना एकदमसे बन्द होगया। बिलकुल नया लिखा हुवा तिलस्मी-ऐय्यारी उपन्यास खोजनेपर भी, हिंदीमें अब शायद ही मिले। तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यासोंका काल हो चुका। अब सामाजिक उपन्यासोंकी धूम है।

तीसरी बात, निज कल्पनासे स्वतंत्र उपन्यास लिखनेवाले लेखक, अब नामको नहीं दिखते? आजकल उपन्यास लिखनेकी यदि किसीको इच्छा हुई कि लेखक झट डा० रविन्द्र नाथ टागोर, बाबू बंकिम चन्द्र चटर्जी, बा० पांच कौड़ी दे, या रेनाल्डके पास दौड़ लगाते हैं! बम्बईकी

मनोरंजक ग्रंथ प्रकाशक मण्डली, प्रयागका इण्डियन प्रेस, गहमरका 'जासूस' कलकत्तेकी आर. एल बर्म्मन एन्ड कम्पनी इत्यादि हिंदीकी आजकलकी उपन्यास प्रकाशित करनेवाली कम्पनियोंके निकाले हुये उपन्यासोंसे यह बात सहजमें जानी जा सकती है। बाबू देवकीनन्दनके तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यास 'तूल तवील बातों-का खजाना' भले ही हो, परंतु ध्यान रहे कि वे स्वकल्पनासे, स्वतंत्र रीतिसे, अपने दिमागसे लिखे गये हैं। किसी भाषाके उच्छिष्ट नहीं। आज कल स्वतंत्र बुद्धिसे, निज कल्पनासे, लिखा गया उपन्यास नामको नहीं दिखता? जहाँ देखो वहाँ "बंगलाके प्रसिद्ध उपन्यास लेखक......... के......उपन्यासका यह सरल हिंदी-अनुवाद है।" या "उपन्यास लेखकोंके सम्राट रैनाल्डके ....का हिंदी अनुवाद है"। इत्यादि। इससे यह जान पड़ता है कि हिंदीमें स्वकल्पनासे लिखनेका स्रोत कुछ दिनोंके लिये बन्द होगया?

चौथी बात। दूसरी भाषाओंकी पुस्तकोंका अनुवाद करनेमें एक नई रीतिका आरंभ सा हो रहा है। बाबू गंगाप्रसाद गुप्त तथा बाबू हरिकृष्ण जौहरीने 'रैनाल्ड' के उपन्यासोंका जो अनुवाद किया है, वह बिलकुल अक्षरशः है। परंतु गोस्वामी किशोरीलालने 'लार्ड लिटन' की 'लुक्रेशिया' का जो अनुवाद किया है, वह ऐसा नहीं। आपने 'लुक्रेशिया' (चपला) को ऐसा हिन्दुस्थानी कपड़ा पहिना दिया है कि उसमें अंगरेजीकी बू तक न रही। पाण्डेय रूपनारायण ने 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का जो अनुवाद किया है, वह भी अक्षरशः नहीं। 'कमलाकान्तका दफ्तर' ऐसा नाम न देकर आपने उसका 'चौबे-का चिट्ठा' यह घरेलू नाम दिया। मेरी समझमें दूसरी भाषाओंकी पुस्तकोंका अनुवाद करते समय उसे इस तरह 'अपना लेना' बहुत अच्छा है। ऐसा अच्छी तरह कर लेनेके लिये प्रतिभाकी आवश्यकता है। आजकल अनुवादकोंकी रुचिका बहाव भी ऐसे ही अनुवाद करनेकी ओर अधिक दीख पड़ता है।

हालमें काशी नगरी प्रचारिणी सभा एक "मनोरंजक ग्रन्थ माला" निकाल रही है। इस मालामें अभी तक शायद एकही उपन्यास पुष्प ग्रथित हुवा है। परन्तु उसके विज्ञापन देखनेसे मालूम हो सकता है कि अब हिंदी लेखकोंकी रुचिका बहाव, उच्च श्रेणीके स्वतंत्र सामाजिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक, उपन्यास लिखनेकी ओर अधिक है।

(५)

हिन्दी उपन्यासोंका उद्देश और उनका विस्तार।

पाठकोंके चित्तका मनोरंजन करना ही सिर्फ उपन्यासका कार्य नहीं है। उपन्यास पाठकोंका मनोरंजन करनेके सिवा और कई उत्तम उद्देश्योंकी पूर्ति करते हैं। कोई भी उपन्यास लेखक हो, स्वतंत्र उपन्यास लिखते समय, वह एक विशेष उद्देश सामने रख कर उसकी पूर्तिके लिये उपन्यास लिखता है। कोई, समाजकी कुरीतियोंका पूरा पूरा चित्र, उसका भयंकर परिणाम इत्यादि बता उसे दूर करनेके उद्देश्यसे उपन्यास लिखता है। कोई, एक नये सुधारको समाजमें प्रचलित करनेके उद्देशसे लिखता है। कोई, भूलेहुएको रास्तेसे लगानेके लिये, दुखित हृदयको सहारा देनेके लिये, अनजान, अनभिज्ञको संसार-से पूर्ण परिचित करनेके लिये, उपन्यास लिखते हैं। उपन्यास हमें "हितंमनोहारिच दुर्लभं वचः" का खण्ठन करते हुये उत्तम उपदेश देते, मनुष्यका आदर्श बताते, सत्य गुणोंकी पहिचान, बुरेका परिचय कराते और सांसारिक कार्य्योंमें पद पद पर सहायता देनेके लिये तत्पर रहते हैं। इतने उद्देश सामने रखकर अगर उपन्यास लिखे जावें तो वे सच्चे उपन्यास हैं। हिन्दीमें जितने उपन्यास

लिखे गये हैं। वे किस उद्देशके पूरक हैं? उनमेंसे कोई ऊपर लिखा उद्देशभी पूरा करते हैं?

ऐय्यारी-तिलिस्मी उपन्यास इनमेंसे किसी एकभी उद्देशसे नहीं लिखे गये हैं। पाठकोंको चमत्कार बातें सुना, उनके चित्तको, कभी उलझन कभी सुलझनमें डाल, मनोरंजन कर, द्रव्योपार्जन करना ही इनके लेखकोंका मुख्य उद्देश है। कहते हैं कि 'केवल चन्द्रकान्ता' पढ़नेके लिये ही कई आदमियोंने हिन्दी पढ़ना लिखना सीखा। बात सच हो, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि लेखकने 'चन्द्रकान्ता' उसी लिये लिखी हो।

जासूसी उपन्यासोंका उद्देश इससे कुछ अच्छा है। सर्कारके 'जासूसी और पुलिस विभागको वह चालाक बना सकता है। सिवाय वह हमें बहुतसे हृदयोंकी पहिचानभी करा सकता है।

हिन्दीमें जितने सामाजिक उपन्यास हैं उनके उद्देश क्या हैं, यह बताना ज़रा कठिन बात है। जिस समाजकी मातृभाषा हिन्दी है, उस समाजका दिग्दर्शन करानेवाला एकभी उपन्यास हिन्दीमें नहीं है। मेहता लज्जाराम शर्मा और एक दो कतिपय लेखकोंके उपन्यासोंको छोड़कर हिन्दीके सब समाजिक उपन्यास बंगाली या अंगरेजी समाजका चित्र अवश्य बताते हैं। यहभी फायदेमन्द अवश्य है। परन्तु उतना नहीं। पहिले अपने घरकी बात, घरका सुधार, फिर दूसरोंकी। कई ऐसे हैं जिन्हें यह तक नहीं मालूम कि हमारी निजकी समाजमें क्या क्या गुण दोष हैं। अतएव ऐसे उधारी सामाजिक उपन्यास हिन्दीमें सिर्फ द्रव्योपार्जन, और नामके लियेही अधिक लिखे गये हैं।

आज कल एक चिल्लाहट सुनाई पड़ती है कि हिन्दीमें खूब उपन्यास होगये। अब उपन्यासोंका लिखना बन्द किया जाय। परन्तु इस प्रति पादनसे पाठकोंको ज्ञात हो सकता है कि ऐसा सोचना सरासर भूल है। सचमुच, हिन्दीमें सच्चे सामाजिक उपन्यास हैं ही नहीं! इन उधारी उपन्यासोंका लिखना कम किया जाय और उसके बदले सच्चे हिन्दी समाजिक उपन्यास लिखे जाँय।

परन्तु लेखकके द्रव्योपार्जन उद्देशको इन हिन्दीके उपन्यासोंने, आशासे कहीं अधिक पूर्ण किया है। आप हिन्दी प्रेमी किसी आदमीका निजी पुस्तकालय या कोई 'सार्व्वजनिक पुस्तकालय' देखिये। सबसे पहिले ऐसे उपन्यास ढेरके ढेर दीख पड़ेगें।

उपन्यास प्रकाशक कम्पनियाँ जितनीही अधिकहों, उतनाही उपन्यासोंका अधिक फैलाव समझना चाहिये। इस हिसाबसे कुल २०-२५ सालमेंही हिन्दी उपन्यास प्रकाशित करनेवाली कितनी कम्पनियाँ कहाँ कहाँ पर हैं यह नीचे लिखी सूची से ज्ञात पड़ेगा।

कलकत्ता (१) कलकत्तेमें सबसे बड़ी उपन्यास प्रकाशक कम्पनी है "मेसर्स आर० एल० बर्मन एण्ड कम्पनी ४०१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता" इसके संचालक बाबू रामलाल वर्मा हैं। आप काशी निवासी हैं। काशीसे आप 'उपन्यास-सागर' नामका एक पत्र निकालते थे। काशीसे कलकत्ते गये आपको कुल ७ या ८ ही साल हुये हैं। आप स्वयंभी हिन्दी उपन्यास लेखकोंमेंसे हैं। आपका 'पुतलीमहल' उपन्यास प्रसिद्ध है। आपके यहाँ हरएक प्रकारके हिन्दीके पुराने उपन्यास मिलते हैं। जो आपका सूचीपत्र देखनेसे मालूम हो सकते हैं। आप एक 'दरोगा-दफ्तर' नामका जासूसी उपन्यास प्रकाशित करनेवाला मासिकपत्र निकालते

हैं। रैनाल्डके 'मिस्ट्रीज आव दी कोर्ट आव लण्डन' का 'लन्दन दर्बार रहस्य' नामका हिन्दी अनुवादभी आप करा रहे हैं। शायद २४ भाग इसके प्रकाशित हो गये हैं। परन्तु हमारी समझमें अंगरेजीके ऐसे कूड़े कचरेका हिन्दीमें लाया जाना हिन्दीके लिये अच्छा नहीं। अंगरेजीके अच्छे अच्छे उपयोगी ग्रन्थोंका अनुवाद, आप करा कर प्रकाशित किया करें तो, विशेष नाम और फायदा हो।

(२) भारतमित्र प्रेस, मुक्ताराम बाबूष्ट्रीट कलकत्ता। यहाँसे 'भारतमित्र' नामका एक दैनिक और एक साप्ताहिकपत्र प्रकाशित होता है। इसके उपहारमें हरसाल दोएक उत्तम उपन्यास रहते ही हैं। यहाँसे प्रकाशित उपन्यासोंमें "जीवनमृत रहस्य, विचित्रविचरण, पानीपत, कठीरानी, जयन्ती" बड़ेही उत्तम उपन्यास हैं।

(३) हिन्दी बंगवासीप्रेस कलकत्ता। भारतमित्रके समान इसकाभी हाल है। 'मण्डेल भगिनी' नामका एक विचित्र उपन्यास यहाँका प्रसिद्ध हैं। शायद बाबू बालमुकुन्द गुप्तका लिखा हुआ है।

(४) हरिदास कम्पनी २०१ हरिसन रोड कलकत्ता। यह एक नई कम्पनी है। हिन्दीके नवीन नवीन लेखकोंके लिखे थोड़ेसे उपन्यासभी यहाँ छपे हैं और शायद आगे भी छपेंगे। कम्पनी दिनोंदिन उन्नति पर है।

बाँकीपुर (१) खड्ग विलास प्रेस-(विहार) बाबू बंकिमचन्द्रचटर्जीके लिखे प्रायः सब उपन्यासोंका हिन्दी अनुवाद यहाँ मिलता है।

बनारस (१) भारतजीवन प्रेस काशी। हिंदी उपन्यासोंकी यह पुरानी खानि है। बाबू रामकृष्ण वर्माके परलोकवासी होनेके पश्चात्से इस प्रेसमें बड़ी शिथिलता आगई है। नया सामान कुछ भी नहीं। पुराने प्रकाशित सब उपन्यास यहाँ मिलते हैं।

(२) लहरीप्रेस काशी। यह बाबू देवकी-नन्दनजीका प्रसिद्ध प्रेस है। 'चन्द्र कान्ता' 'चन्द्र कान्ता सन्तति' 'भूत-नाथ' 'काजलकी कोठरी' इत्यादि उनके लिखे सब उपन्यास यहाँ मिलते हैं। 'भूतनाथ' के भाग शायद यहाँसे आजकल भी प्रकाशित हो रहे हैं।

(६) बाबू जयरामदास गुप्त, उपन्यास बहार आफिस काशी। आप स्वयं उपन्यास लेखक हैं। आपके यहाँ हिंदीके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सब पुराने तथा नये हरएक प्रकारके उपन्यास मिलते हैं।

(३) नागरी प्रचारिणी सभा काशी। यह सभा कुछ दिनोंसे एक ग्रन्थमाला निकाल रही है। इसमें उपन्यास पुष्पभी ग्रथित किये जायगें। शायद इसके प्रकाशित उपन्यास हिंदीके सर्वश्रेष्ट उपन्यास हों। क्योंकि प्रत्येक ग्रन्थ योग्य पुरुष द्वारा लिखा-कर, बड़ी योग्यताके साथ सम्पादित हो, बाहर निकलता है।

प्रयाग (१) इण्डियन प्रेस प्रयाग। बंगलाके प्रसिद्ध प्रसिद्ध उपन्यासोंका हिंदी अनुवाद यहाँ प्रकाशित होता है। ऐसे बहुतसे उपन्यास प्रकाशित होचुके हैं, और होते आरहे हैं। परंतु निज कल्पनासे लिखा उपन्यास, यहाँ शायद एकही (धोखेकी टट्टी) है!

इसके सिवाय प्रयागमें 'ॐकार प्रेस' 'गृह लक्ष्मी प्रेस' और श्रीमती यशोदा-देवी 'स्त्री धर्म शिक्षक' की सम्पादिका, आदि कई छोटे मोटे शिक्षाप्रद सामाजिक उप-न्यास निकालते ही रहते हैं।

गहमर (१) बाबू गोपालराम 'सम्पादक 'जासूस' गहमर जि० गाजीपुर। 'हिंदी-के अत्यंत रोचक और प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास आप निकालते हैं।

प्रयाग और खण्डवाकी प्रसिद्ध हिंदी ग्रंथ प्रसा-रक मण्डली एक नई ही संस्था है। मिश्र बन्धुओंके लिखे सर्वोत्तम हिंदी ग्रंथ इसके यहाँ मिलते हैं। आगे शायद बाबू रवीन्द्र नाथ टागोरके उपन्यास यहाँसे निकलें।

बम्बई (१) 'मनोरंजक हिंदी जैन ग्रंथ प्रकाशक मण्डली हीराबाग बम्बई। जिसके उत्त-मोत्तम ग्रन्थोंके सिवाय यहाँ अच्छे अच्छे दो चार उत्तम श्रेणीके उपन्यास भी प्रका-शित हुए हैं। यह मण्डली भी दिनों दिन उन्नति पर है।

(२) श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस खेत-वाड़ी बम्बई। यह बम्बईके प्रसिद्ध सेठ खेमराज श्री कृष्णदासका यन्त्रालय है। यहाँ हिंदी संस्कृतके बड़े बड़े अनमोल ग्रंथ मिलते हैं। पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पण्डित लज्जारामशर्माके प्रायः सब उत्तमोत्तम ग्रन्थ और उपन्यास यहाँ मिलते हैं और-भी यहाँ भिन्न भिन्न प्रकारके उपन्यास ग्रन्थ मिलते हैं, जो यहाँकी सूची देखनेसे ज्ञात पड़ेगा।

इनके सिवाय और भी हिंदी-उपन्यास प्रकाशक और विक्रेता स्थान भारतमें हों, पर हमें उनका स्मरण नहीं। अतएव हम उनके क्षमा प्रार्थी हैं।

(६)

उपसंहार।

इन उपन्यासोंने हिन्दी भाषा और हिन्दू समाजपर क्या प्रभाव डाला?

यद्यपि हिन्दी साहित्य समुद्रकी यह औपन्यासिक तरंग, मराठी, गुजराती, बंगला औपन्यासिक तरंगसे इस समय बहुत छोटी है, तोभी कई एक हिन्दी प्रेमी, अमीर, इसे देख देख कर घबरा रहे हैं। वे कहते हैं कि इस तरंगसे हिन्दी भाषा या हिन्दू समाजको कुछ भी लाभ नहीं। उनके विचारसे इस तरंगने साहित्यकी दूसरी उत्तमोत्तम तरंगोंको रोक दिया है। समाजके चित्तको अपनी ऊपरी चपल चटकीली, चाल-के चक्करमें घूर्णित कर अब यह उसे किसी दूसरी ओर लहरायमान न होने देनेकी चतुराई चला रही है। इसके भीतरी अनिष्टकारी कार्योंको न देखते हुये लोग केवल इसके ऊपरी राग पर वैरागी हो रहे हैं। परन्तु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। मेरी समझमें इस औपन्यासिक तरंगने, प्रसिद्ध "गल्फ स्ट्रीम" का सा काम किया है। जिसप्रकार "गल्फ स्ट्रीम" अटलांटिक सागर-में नया उत्साह भर देती है। उत्तरकी ओरके बर्फसे भरे आर्कटिक समुद्रको कठिन ठंडसे छुड़ाती है और सारे समुद्रमें नये उत्साह और साहसकी लहरें पैदा कर देती है। उसी प्रकार इस औपन्यासिक तरंगने हिन्दी भाषा और हिन्दू समाज रूपी समुद्रमें कार्य किया है। इसने उत्तरसे आनेवाली, उर्दू, फारसीकी, कठिन जकड़नेवाली ठंढी वायुके झकोरोंको झटकके, हिन्दी भाषाको बचाया और सारे समाजमें एक दम एक नये साहस तथा उत्साह-की विलक्षण खलबली पैदा कर दी।

यह उपन्यास तरंग उठनेके पूर्व हिन्दी भाषा और समाजकी कैसी दशा थी, और अब वह

कैसी है। इसका इतिहास ध्यानमें लाने ही मालूम हो सकता है कि इस तरंगने इनको क्या क्या लाभ पहुँचाये। भारतेन्दुके समयमें काशी-के एक कोनेमें विकासको प्राप्त हुई प्रचलित हिन्दीभाषाको पूरे संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, राजपूताना, बिहार तथा पंजाबमें बिजलीके समान फैलानेका, भोजपुरी बुन्देल-खण्डी, छत्तीसगढ़ी सरीखी प्रान्त प्रान्तको थोड़े थोड़े अन्तरसे विभाजित करनेवाला, ग्रामीण भाषाओंको दबा, उनपर हिन्दीका अखण्ड साम्राज्य जमा, उपरोक्त प्रान्तोंमें एक साम्राजी भाषा पैदा करनेका विलक्षण कार्य थोड़े ही समयमें किसने किया? कहना पड़ेगा कि निस्सन्देह इन सब विराट कार्योंको करनेवाली हिन्दी-सागर-की यही अद्भुत औपन्यासिक तरंग है।

इस समय हिन्दी भाषाकी उन्नतिके लिये, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, राजपूताना, पंजाब, उतनेही जीजानसे कोशिश कर रहे हैं जितना कि संयुक्तप्रान्त। इन सब बातोंको देख कर कहना पड़ता है कि, इस औपन्यासिक तरंगकी बदौलत, भारतेन्दुजीके मूल मंत्र :—

"निज भाषा उन्नति अहै, सबउन्नति को मूल"

की (देशकी) सब उन्नतिको देखनेका सुअवसर हमें शीघ्र ही प्राप्त होनेवाला है।

॥ इति शुभम्भूयात् ॥

हिन्दी भाषामें नाटक ग्रन्थ और वर्तमान् नाटक कम्पनियाँ।

लेखक—साहित्याचार्य आयुर्वेदविशारद पंडित हनुमानप्रसादजी जोशी-बम्बई।

पूर्वाभाग

नटवर विश्व महानाटकके सूत्रधार सतचित आनन्द!
तव प्रसाद पानेको नितनव अभिनय करते हम सानन्द।
दयालु! यदि हम अयोग्य ठहरें तो सुधार कर लिये द्वन्द्व।
श्री "प्रसाद" को प्रभुवर! देकर पुरस्कार करिये सानन्द॥

मनुष्यकी सबही प्रवृत्तियाँ आनन्दप्राप्तिके लिये हुआ करती हैं। कारणका धर्म कार्यमें, बीजका वृक्ष और फलमें एवं पिताका पुत्रमें होना जैसा प्राकृतिक है वैसाही सुखलिप्सु और आनन्द-सम्भूत मनुष्यकी आनन्दलिप्साभी अप्राकृत नहीं। दिनरात हमारी आँखोंके सामने होनेवाली प्रत्येक घटनापर विचार करनेसे यही एक सूक्ष्म तत्व हमारे ध्यानमें आवेगा कि आनन्द ही मनुष्यका प्रधान ध्येय है। संसार वृक्ष है और आनन्द उसका बीज है, मूल है, तत्व है, जीवन है और सब-कुछ है। आनन्दमें, नहीं नहीं उसके चिन्तनमात्रमें वह शक्ति है कि जिसकी सहायतासे मनुष्य उत्तप्तवालुका परिपूर्ण मरुभूमिको भी शीतल और सुरम्य नन्दनकानन बना सकता है। उन आनन्दात्मक प्रवृत्तियोंका उद्गमस्थान मन है। मनकी प्रेरणासे मनुष्य अंगोंकी भिन्न भिन्न प्रकार-की चेष्टाओंद्वारा ही पहिले पहल उस आनन्दको प्रकट किया करता है। यह अंगविक्षेपही नृत्यका प्रथम रूप है। गात्रविक्षेप और नृत्य शब्दोंका समानार्थवाची होना इसके लिये प्रमाण है। आनन्द प्राप्तिके साधनोंमेंसे अनुकरण एक मुख्य साधन है और उसकी उत्पत्ति गात्रविक्षेपकी सहायतासे हुई। यों तो अनुकरणप्रियता किसी न किसी रूप और परिमाणमें प्राणीमात्रमें पाई जाती है परन्तु मनुष्यमें उसकी मात्रा अधिक होनेके ही कारण विद्वानोंने उसके लिये अनुकरण-प्रिय और गतानुगतिक आदि शब्दोंका विशेष रूपसे प्रयोग किया है। इस अनुकरणमें न केवल गात्रविक्षेप ही बल्कि वाणीकी सहायता-

की भी आवश्यकता होती है। और वही वाणी एक विशेषरूपमें परिवर्त्तित होनेपर गायन कहलाती है। ये तीनों वृत्तियाँ, अर्थात् गात्रविक्षेप, गायन, और अनुकरण या परिष्कृत भाषामें जिन्हें हम नृत्य, संगीत और अभिनय कह सकते हैं, मनुष्यमें स्वभावसे ही पाई जाती हैं। इस अवस्थामें रही हुई इन अस्पष्ट और अव्यक्त वृत्तियोंके सम्मिलित रूप द्वारा उन्हें सुस्पष्ट बना, जन साधारणको किसी अपूर्व आनन्दकी उपलब्धि करादेनेके लिये ही नाटककी सृष्टि हुई। यदि हम सूक्ष्म विचारसे देखें तो हमें प्रतीत हो जायगा कि हमारा जीवन भी वस्तुतः एक नाटक ही है और इस भूमण्डलके विशाल रंगमंचपर हम सब प्राणी किसी न किसी प्रकारसे जन्मभर अभिनय ही किया करते हैं। इस नाटकको प्रारंभ हुए २-४ हजार या लाख दो लाख वर्ष ही नहीं हुए बल्कि उसकी उत्पत्ति उसी समय होचुकी थी जबकि आनन्दमय सच्चिदानन्दने इस अनन्त, अनादि विश्वकी सृष्टि की थी। इस प्रकार जगन्नाटकके सूत्रधार सच्चिदानन्द और उसका मायापट जब अनादि है, विश्वकी नाट्यशालाके प्रारंभकाभी जब कोई पता नहीं चलता, परमात्माके ज्ञानभंडार वेदोंका अनादि होना भी जब निर्विवाद है और उन्हींके भीतर जब नृत्य, गान एवं सम्वादरूप अभिनयका मूल पाया जाता है तब कौन कह सकता है कि परमात्माके दिव्यांश मनुष्यकी उन तीन दिव्यवृत्तियोंका परिणत फलस्वरूप और आनन्द पंकजका सौरभमय शतदल नाटक अनादि नहीं ?

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य अनुकरण प्रिय है और इसलिये जैसा वह देखता या सुनता है वैसाही करने लग जाता है। सुननेकी अपेक्षा देखनेका प्रभाव बहुत अधिक, शीघ्र, और चिरस्थायी होता है। अतएव भ्रमप्रमादशील मनुष्यको उन्नतिके मार्ग पर लानेके लिये और उन्नत जातियोंमें जातीय जीवनको चिरस्थायी करनेके लिये आदर्श महात्माओंका अनुकरण प्रधान सहायक होता है। अस्तु। राष्ट्रका जीवन, अन्धकारमय नेत्रोंका सत्पथप्रदर्शक प्रकाश, शिक्षा उपदेशका मुख्य एवं सुगम द्वार, संसारी परीक्षाओंमें सफलताप्राप्त करनेका प्रधानसाधन, नीरस, कठोर, अज्ञानमय और दुःख-दग्ध हृदयका सरस, मृदु, ज्ञानमय, आनन्दमय और शान्ति पूर्ण बनानेवाला, साहित्यका एक प्रधान अंग, कलाओंका आकर, महापुरुषोंके ज्ञान कणोंको प्रतिभाशाली कवियोंकी वाङ्माधुरीमें सानकर बनाया हुआ, सच्चरित, चतुरनटों द्वारा प्रस्तुत, श्रुतिमधुर, नयनरुचिर और मनःपुष्टिकर रसायनस्वरूप, ललित और सरल भाषामें लिखा हुआ सभ्यतापूर्ण और कुशलता पूर्वक दिखाया हुआ, वह लोकानुरञ्जन कि जिसे देख कर दर्शक तन्मय एवं चित्रितप्राय होकर तद्गत विषयोंका सत्य सत्य अनुभव करने लगें, सच्चा नाटक कहलाता है।

संक्षिप्त प्राचीन इतिहास।

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा कि जो भारतके लिये यह न कहे कि "यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति नतत्क्वचित्" अर्थात् ऐसी कोई विद्या या कला नहीं कि जिसका मूल भारतमें न पाया जाता हो और भारतसे ही जिसका प्रायः अन्य देशोंमें प्रचार न हुआ हो। अतः नाटककी उत्पत्ति सबसे पहिले भारतमें ही हुई यह कहना निर्विवाद है। जिस समयका अवलोकन करनेमें हमारे ऐतिहासिक चक्षु भी असमर्थ हैं उससे भी बहुत पहिले यहाँ नाट्यकलाका प्रचार था। इतना ही नहीं बल्कि इस विषयकी अनेकानेक समालोचना एवं रचना प्रणालीके सम्बन्धमें भी अनेक विस्तृत ग्रन्थ थे। उस समयके परममान्य और आजकलके हमारे गौरव स्वरूप प्रातः स्मरणीय देवताओंकी सभाओंमें भी इस कलाका यथेष्ट आदर था। वे इसे एक उत्तम कोटिकी विद्या

समझते थे । परन्तु कालकी ज्वालामयी बारूदने उस नाट्यभवनकी स्वर्णमयी भित्तियोंको वह आघात पहुँचाया है कि जिससे हम उसके उस भव्य स्वरूपको देख नहीं सकते, केवल उसके खंडहरोंको देखकर उसकी कल्पना मात्र कर सकते हैं ।

पाँच हजार वर्ष पहले यहाँ नाटकोंका कितना प्रचार था यह बात इतनेसे ही भलीभाँति समझी जा सकती है कि उस समय भगवान् श्रीकृष्ण जैसे संसारके पूजनीय महात्मा अपने आपको नटवर कहलानेमें अपनी बड़ी प्रतिष्ठा समझते थे न कि आजकलकी तरह हीनता । महाभारतमें साम्ब, और हरिवंशमें यादवोंके नाटक खेलनेके वर्णन क्या यह सिद्ध नहीं करते कि उस समयके जन समाजमें नाटकोंका प्रचार इतनी बहुलतासे था कि बड़े बड़े राजवंशीय नररत्न भी उन्हें बहुत चावसे खेलते थे ? लगभग तीन साढ़े तीन हजार वर्षसे पहिलेके समयमें इस शास्त्रके कितने ही आचार्योंका होना पाया जाता है । भरतका नाट्यशास्त्र तो प्रसिद्ध ही है। पातंजल महाभाष्यमें भी कृष्णलीला आदिके वर्णन पाये जाते हैं । उससे पीछेके समयसे लेकर दसवीं शताब्दी तक भास, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति आदि अनेकानेक प्रसिद्ध कवियोंने संस्कृत साहित्यमें नाट्यकलाकी कितनी वृद्धि की है इसका पता इस बातसे सहजही लग जाता है कि इस विषयके अनेक ग्रन्थ लुप्त हो जानेपर भी आजदिन संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें ३०० से कम नाटक नहीं हैं । ये नाटक केवल पुस्तक बद्ध रहनेके लिये ही नहीं थे बल्कि उनका अभिनय भी समय समय पर हुआ करता था । इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं । यूरोपमें इस कलाका प्रचार हुए बहुत थोड़े दिन हुए हैं । लगभग २५०० वर्ष हुए इसका सूत्रपात ग्रीस देशमें हुआ था और फिर ईस्वी सन् १२०० के लगभग इसका प्रचार इटली, इंगलेंड, फ्रांस, और जर्मनी आदि देशोंमें क्रमशः हो गया ।

गत एक हजार वर्षोंसे भारतमें नाटकोंकी अवनति होने लगी और साथ साथ उनकी शृंखला असम्बद्ध होनेके अतिरिक्त तद्विषयक उत्तम ग्रन्थोंकी उत्पत्ति भी रुकती गई । अभिनयकी दशा तो इससे भी खराब रही । यद्यपि रामलीला, कृष्णलीला, खेल स्वांग और इसी प्रकारके अन्य तमाशोंके रूपमें वह अभीतक जारी है तथापि उसकी पद्धति कुछ इस ढंगकी हो गई है कि जिससे मुख्य उद्देश्यका सफल होना तो दूर रहा कभी कभी विपरीत फल भी होना देखा गया है ।

नाटकोंकी उपयोगिता और महत्व ।

यह बात कही जा चुकी है कि नाटकका मुख्य उद्देश्य मनोरंजनके साथ साथ लोक शिक्षा भी है । प्रायः यह बात सर्वसम्मत है कि किसीभी देशमें चाहे वह कितनाही उन्नत क्यों न हो विद्वान् और धर्मात्मा पुरुषोंकी संख्या कम होती है और जनसमाजमें अधिकतर साधारण विद्या-बुद्धिके ही लोग पाये जाते हैं । अतएव यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि संसारमें सदुपदेशकी सर्वदा आवश्यकता बनी ही रहती है । यह उपदेश तीन प्रकारका होता है । यथा :—राजसम्मित, मित्रसम्मित और कान्ता सम्मित । इनमेंसे पहले उपदेशसे हमारा विशेष सम्बन्ध नहीं क्योंकि उसके साथ साथ शक्ति रहा करती है और उसके भयसे मनुष्य प्रायः उन उपदेशोंको माननेके लिये बाध्य होते हैं । दूसरे दो प्रकारके उपदेशोंके प्रचारके लिये उपदेशकोंकी आवश्यकता होती है । वे लोग अपने कार्यमें तब ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं जबकि उनकी उपदेश देनेकी प्रणाली मनोरंजक हो और उसमें युक्तिपूर्ण तर्कोंका सिलसिला बराबर जारी रक्खा जाय नहीं तो इसका फल कभी कभी बहुत ही

भयंकर हुआ करता है। यद्यपि समय समय पर ऐसे भी अनेक असाधारण प्रतिभाशाली मनुष्य पाये जाते हैं कि जिनकी जीभकी फटकार और श्रुतिमधुर झनकारसे ऐसे ऐसे कार्य बहुत ही सरलतासे हो जाते हैं कि जिन्हें लाखों चमकती हुई तलवारों और असंख्य मनुष्योंका घोर गर्जन भी करानेमें समर्थ नहीं हो सकता। जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने निःशस्त्र रह कर भी एक ग्लायमान और शिथिल-शरीर व्यक्तिसे वह कार्य कराय था कि जिसके पढ़ने और सुनने मात्रसे इस समय भी कायर और अनुत्साही जनोंमें भी एक बार वह शक्ति और उत्साह उत्पन्न हो जाता है कि जिससे वे अपने देश अपनी जाति अपने धर्म कर्म और कर्तव्यके लिये निछावर होनेमें इस नश्वर शरीर नहीं नहीं अजर, अमर, अनन्त शक्ति सम्पन्न परमात्माके दिव्यांश आत्माके मानव देहको पुराने वस्त्रकी तरह उतार कर फेंक देनेमें आत्मगौरव व और आनन्द समझता है- वे उक्त प्रकारके एक उपदेशक थे। जिस भूषण कविने केवल अपने १२ छन्दों द्वारा ही महाराज शिवाजी-की शत्रुसंहारिणी तलवारद्वारा मुगलोंकी अनन्त सैन्यका नाश करा दिया वह भी एक ऐसा ही उपदेशक था। सारांश यह कि उपदेश एक ऐसी जीवनी शक्ति है कि वह मृतप्राय अज्ञानकमें चेतनाशक्तिका संचार कर उन्हें उन्नत और आत्मनिर्भर बनादेती है। उपदेश, साधारण तया, व्याख्यान, कविता, संगीत और अभिनय, इन चार प्रकारों द्वारा दिया जा सकता है। इनमेंसे क्रमशः प्रथमकी अपेक्षा द्वितीयका प्रभाव अधिक पड़ता है और अभिनयमें पहिलेकी तीनों बातोंका समावेश होनेके कारण उसका प्रभाव सर्वाधिक और चिरस्थायी होता है। अनेक विषय ऐसे गहन होते हैं कि जिनके तत्वोंको हृदयंगम करना साधारण बुद्धिवालोंके ही नहीं बल्कि अच्छे विद्वानोंके लिये भी कठिन होता है। परन्तु नाटक (अभिनयसे) में वही मनोरंजनके साथ बहुत ही सरलतासे समझाये जासकते हैं।

नाटक अहृदयोंको सहृदय बना देता है, और सहृदयोंको आवर्जित कर देता है, चिन्ताग्रस्त और दुःखित व्यक्तियोंके चित्तको आल्हादित कर उन्हें शान्ति प्रदान करता है। देश, जाति, धर्म और समाजकी उन्नतिका साधन होता है। भाषा-का प्रचार कर उसे पुष्ट बनाता है। अवनत राष्ट्रों का उत्थानकर उनमें नवीन जीवनका संचार करता है। प्राचीन एवं नवीन आदर्श महात्माओंके मनोहर चित्रोंको दर्शकोंके हृदयपटपर अङ्कित कर उन्हें सुमार्ग पर चलनेके लिये प्रेरित करता है। जनसमाजको इतिहाससे परिचित बनाता है। कुरीति-योंका नाश कर सुरीति प्रचार करनेके लिये उन्हें उत्तेजित करता है। किसी विषय-विशेषका आन्दोलन करता है। कहाँ तक कहें एक भी ऐसी बात नहीं कि जिसे नाटक सरलता और सुन्दरतासे सहजमें ही न कर सकता हो। नाटक केवल दूसरोंको उपदेश देने और उन्हें सुधारनेके लिये ही नहीं है बल्कि उसके खेलनेवाले शिक्षित नटोंपर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। नाटकमें बार बार वे जिन जिन विषयोंकी शिक्षा, अनेक आदर्श पुरुषोंकी भूमिकाओंके द्वारा देते हैं उन उनके अनुकूल अनेक सद्गुणोंसे उन्हें अपने आपको सजाना पड़ता है और ऐसा करते रहनेसे उनके शरीर और आत्माभी वैसेही बन जाते हैं।

हिन्दी भाषाके नाटकोंका इतिहास।

जिस देशका भाषा-साहित्य जितना और जैसा विस्तृत एवं अनेक विषयोंके उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नोंसे समलंकृत होता है, तदनुसार ही उस देशके महत्व और लघुत्वकी कल्पना की जा सकती है। साहित्य देश और जातिकी वास्तविक आँख है एवं शब्दमय जीवित चित्र है।

हमारी प्राचीन भाषा संस्कृतमें, अनेक अत्याचारोंके विषमय वज्रपातोंसे शतशः विदीर्ण एवं सहस्रशः नष्टभ्रष्ट किये जानेपर भी प्रायः प्रत्येक विषयके मौलिक ग्रन्थरत्न पाये जाते हैं और यही कारण है कि हमारा देश और हमारी जाति आज भी संसारमें सबसे प्राचीन और सराहनीय मानी जाती है। परन्तु हिन्दी जो संस्कृत भाषाकी सुयोग्य उत्तराधिकारिणी है एवं जिसका हमारे राष्ट्रके दिव्य-मातृ-सिंहासनपर राज्याभिषेक होचुका है उसके प्रायः सबही अंग अपूर्ण एवं अनलंकृत हैं। ऐसे अनेकानेक विषय हैं कि जिनपर हिन्दीमें एकभी पुस्तक नहीं है, और कितनेही ऐसे हैं कि जिनमें अनुवादोंकी ही भरमार है, और तात्विक एवं मौलिक विस्तृत ग्रन्थोंका एक प्रकारसे अभाव ही है। जैसे और और विषयोंके उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नोंका मातृभंडारमें अभाव है वैसेही या उससे भी कई दर्जे बढ़कर नाटक विषयक ग्रंथोंका अभाव है। हमारे जिस शाकुन्तल पंकजपर जर्मनी, फ्रांस, ग्रेटब्रिटन आदि देशोंके बड़े बड़े साहित्यरसिक मधुप उसका रसपान कर अभीतक लट्टू हो रहे हैं उसीके समकेसे यदि आज कोई इतर देश निवासी भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीके साहित्योपवनमें प्रवेश कर वैसेही किसी कमलकी खोज करे, तो हम नहीं जानते कि हम किन किन ग्रन्थ कमलोंसे उनका आतिथ्य सत्कार कर उन्हें तृप्त कर सकते हैं। जो हो इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यह बात विचारणीय है। नाटकीय विषयकी आलोचनाके पूर्व मैं यह उचित समझता हूँ कि हिन्दी भाषाके नाटक ग्रंथोंका थोड़ासा इतिहासभी यहाँ दे दिया जाय।

हिन्दीमें नाटकोंका जन्म पहिले पहल विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिमें* विद्यापति ठाकुरसे मिथिलके द्वारा हुआ। उन्होंने इस विषयपर दो अनुवादात्मक ग्रन्थ लिखे। इसके पश्चात् सौ वर्षतक कोई नाटक ग्रन्थ लिखा गया या नहीं इसमें सन्देह है। सत्रहवीं शताब्दीके लिखे हुए कुछ नाटक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। अट्ठारहवीं शताब्दीके लेखक प्रायः इस विषयमें उदासीन रहे। उन्नीसवीं शताब्दीमें फिरसे इस विषयपर ग्रंथ लिखनेकी ओर लोगोंने साधारण तौरसे ध्यान दिया। इस तरहसे अभीतक इस विषयके ग्रन्थ लिखे जानेकी चाल बहुतही धीमी थी, परन्तु वर्तमान् शताब्दीके प्रारंभने इसमें एक विलक्षण परिवर्तन करदिया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका जन्म भी इसी समय हुआ और उन्होंने अपने थोड़ेसे जीवनमें हिंदी नाट्य जगतमें वह काम कर दिखाया कि जिससे लोगोंका उसकी ओर जो दुर्लक्ष्य था वह सर्वथा विनष्ट होगया और उनका हृदय इस ओर झुकचला।

सचतो यह है कि हिंदी भाषाके वास्तविक प्रथम नाटककार बाबू हरिश्चन्द्र ही हुए और और हिंदीके अन्य अन्य अंगोंकी भाँति इस अंगकोभी आपने १८ रत्नाभरणोंसे अलंकृत किया। यद्यपि उनके बाद अनेक विद्वानोंने इस विषयपर कितनेही ग्रंथ लिखे; परंतु उनमें जहाँ उनकी अपेक्षा उच्चतर श्रेणीके ग्रंथ होने चाहिए थे वहाँ कहा जासकता है कि प्रायः वे उस दर्जेके भी न हुए। तथापि जिस उत्साहसे वर्तमान् सुलेखक इस ओर झुके हुए हैं उससे नाटकोंका प्रकाशमय भविष्य अनतिदूर जान पड़ता है। यह बात नीचे दी हुई नाट्यकारों, नाटकग्रंथ एवं उनके समयादिकी संक्षिप्त तालिकासे भलीभाँति समझी जा सकती है।

पन्द्रहवीं शताब्दी-विद्यापति ठाकुर-रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण।

सत्रहवीं " केशवदास—विज्ञानगीता
कृष्णजीवन—करुणाभरण
हृदयराम पंजाबी—हनुमन्नाटक
यशवन्तसिंह—प्रबोध चंद्रोदय

अट्ठारहवीं शताब्दी—नेवाज—शाकुन्तल
देव—देवमाया प्रपंच
" आलम—माधवानल कामकंदला
उन्नीसवीं " महाराज विश्वनाथ-आनंदरघुनंदन
" मनजू—हनू नाटक
" मंसाराम—रघुनाथरूपक, गोगादेरूपक
" हरिराम-जानकीरामचरित्र नाटक
" कृष्णशरणसाधु—रामलीला विहार नाटक
बीसवीं " लक्ष्मण—रामलीला नाटक
" ईश्वरप्रसाद कायस्थ—ऊषा निरुद्ध नाटक
" श्री गिरिधर दास—नहुष नाटक
" राजा लक्ष्मणसिंह—शाकुन्तल
" फ्रेडरिकपिंकाट— "
" भा० बा० हरिश्चंद्र—मुद्रा राक्षस, सतीप्रताप, सत्य हरिश्चंद्र आदि १८ नाटक
" प्रताप नारायण मिश्र—कलिकौतुक, संगीत शाकुन्तल
" बाल कृष्ण भट्ट—बालविवाह, चंद्रसेन, पद्मावती
" श्रीनिवासदास—रणधीर प्रेममोहिनी, तप्तासंवरण
" अम्बू बहादुर—महारस, बालविवाह-विदूषक, भारतआरत, कल्पवृक्ष, हरितालिका, भारतमोहिनी
" गणेशदत्त—सरोजिनी
" गदाधर भट्ट—मृच्छकटिक
" गोकुल चंद्र—बूढ़े मुंहमुहासे,
" केशवराम भट्ट—शमसाद सौसन, सज्जाद सम्बुल

बीसवीं शताब्दी—तोताराम—केटो कृतान्त
" रामचंद्र बी. ए.—न्यायसभा, (हिंदी-उर्दू)
" जानी बिहारीलाल—ज्ञान विभाकर
" ठाकुर दयालसिंह—मृच्छकटिक, वेनिसका सौदागर
" दामोदर शास्त्री—मृच्छकटिक, रामलीला
" गदाधर भट्ट—मृच्छकटिक
" बदरी नारायण चौधरी—वारांगना-रहस्य,
" अम्बिकादत्तव्यास-गो संकट, भारत सौभाग्य, ललिता आदि
" शीतलप्रसादत्रीपाठी—जानकीमंगल
" राधा कृष्णदास—दु० सियवतीबाला पद्मावती, राजस्थान केसरी
" बालेश्वरप्रसाद-वेनिसका सौदागर
" देवकीनन्दनतिवारी-जयनारसिंहकी
" आनन्दप्रसादखत्री—कलियुगनाटक
" शार्ङ्गगोपाल-प्रबोधचंद्रोदय, लीला विज्ञान।
" शुकदेवनारायण-नारदमोह नाटक
" सीताराम बी. ए.—मालती माधव, मालविकाग्निमित्र, नागानन्द, आदि
" राय देवीप्रसाद पूर्ण—चंद्रकला भानुकुमार नाटक
" ग्रंथप्रकाशिनी समिति—उत्तम
" शालिग्राम वैश्य—माधवानल कामकन्दला
" व्रजनन्दनसहाय—सत्यासामा मंगल, उद्धवनाटक।

बीसवीं शताब्दी-रामदहिनमिश्र-निर्भयभीमव्यायोग
,, वचनेश मिश्र-भर्तृहरिनिर्वेद नाटक
,, बद्रीनाथ भट्ट-चुंगीकी उम्मेदवारी, वेणीसंहार, मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त
,, कृष्णबलदेववर्मा—भर्तृहरि नाटक
,, रूपनारायणपांडेय--दुर्गादास, सूम-के घर धूम।
,, "लक्ष्मण"—कुलीप्रथा
,, माधव शुक्ल—महाभारत
,, मिश्रबन्धु—नेत्रोन्मिलन
,, मैथिलीशरणगुप्त-तिलोत्तमा, चन्द्रहास।
सत्यनारायण—उत्तररामचरित
,, ,, महाराणाप्रताप
,, ,, स्वप्न वासवदत्ता
,, शिवचंद्रभरतिया--फाटका जंजाली आदि (मारवाड़ीमें)
,, मदनलाल चौधरी—भारत दुर्दशा

यद्यपि यह तालिका पूर्ण नहीं है और इनके अतिरिक्त अनेक नाटककार और नाटक ग्रन्थ खोज करनेपर मिल सकते हैं तथापि प्रधान प्रधान नाटकों और इस विषयके प्रायः सब ही नामी लेखकोंके नामोंका इसमें समावेश करनेका प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी नाटकोंपर एक दृष्टि।

यदि हम उपरोक्त तालिकाको ध्यानसे देखेंगे तो हमें यह समझनेमें विलम्ब न लगेगा कि भिन्न भिन्न समयके लेखकोंके भावोंमें क्रमशः एक प्रकारका परिवर्तन होता चला आरहा है। १५ वीं शताब्दीसे लेकर बाबू हरिश्चंद्रके पहिले तक जो नाटक ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें प्रायः पौराणिक भावोंका ही सहारा लिया गया है। इनमें कितने ही तो रामायणके आधार पर लिखे गये हैं, कितनोंमें ही अध्यात्मज्ञानकी शिक्षा दीगई है और कुछ संस्कृतके प्रसिद्ध नाटकोंके अनुवाद मात्र हैं। बाबूहरिश्चंद्रने हिन्दी नाट्य संसारमें एक अपूर्व परिवर्तन उपस्थित किया। यद्यपि उन्होंने भी सत्यहरिश्चंद्र, सतीप्रताप आदि कुछ पौराणिक नाटक लिखे हैं तथापि उनका कार्य-क्षेत्र समयानुकूल कुछ अन्य विषयोंमें ही अधिक रहा है। जगद्गुरू भारतकी समयके फेरसे कैसी दशा होगई है यह बात समझानेका आपने भारत-दुर्दशा, भारत-जननी आदि नाटकोंमें अच्छा प्रयत्न किया है। जिन आर्यललनाओंका एक समय भारतमें बड़ा भारी मान और आदर था, उनकी इस समय कैसी शोचनीय अवस्था होगई है इसका दृश्य आपने नीलदेवी नाटकमें बहुत ही अच्छी तरह दिखाया है। आपने संस्कृत-से, धनंजयविजय, मुद्राराक्षस, रत्नावली, और कर्पूरमंजरी; बंगलासे 'विद्या सुन्दर' और अंगरेजीसे दुर्लभ बन्धु आदि ग्रन्थोंका अनुवाद भी बहुत उत्तम किया है। प्रेमयोगिनी, माधुरी और चंद्रावलीसे आपकी स्वाभाविक वर्णनकी शक्ति, सहृदयता और रसिकताका अच्छा परिचय मिलता है। पाखंडविडम्बना, अंधेर-नगरी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, और विषस्यविषमौषधम् इन ४ प्रहसनों द्वारा आपने प्रचलित सामाजिक कुरीतियोंके चित्र अंकित करनेका अच्छा प्रयत्न किया है। नवीन विषयोंके नवीन भावोंको आपने परिष्कृत नवीन भाषाकी पोशाक पहना हिन्दी संसारका वास्तवमें बड़ा उपकार किया है। हिन्दी ही क्यों भारतकी अन्यभाषाओंमें भी आपके कितने ही ग्रन्थोंके अनुवाद हो चुके हैं अतः वे भी आपकी उपकृत हैं।

बाबू हरिश्चंद्रके पूर्वके नाटकोंमें कतिपय संस्कृत नाटकोंकी भांति शृंगार, भक्ति, वैराग्य

और क्वचित् वीररसके वर्णन ही प्रधानतया मिलते हैं और उन्हींकी तरह पद्यकी भी खूब भर मार मिलती है। परन्तु उनके समकालीन या पीछेके लेखकोंका लक्ष्य उस ओर कम रहा है और हरिश्चंद्रकी भाँति उन्होंने भी समाज संस्कार, जातीय सुधार और देशोन्नतिका लक्ष्य रख अनेक रूपक एवं प्रहसन रचे हैं। प्रतापनारायणमिश्र, बालकृष्णभट्ट, खड्गबहादुर गोकुलचन्द्, आनंदप्रसादखत्री, और मिश्रबन्धुओं आदि लेखकोंके ग्रन्थ इसी कोटिके हैं। बद्रीनाथभट्टका चुंगीकी उम्मेदवारी, और लक्ष्मणका कुलीप्रथा आदि ग्रन्थ भी यद्यपि इस कोटिके कहे जा सकते हैं तथापि उनमें राजनैतिक भावोंकी विशेषता है। निलहे गोरोंके अनुचित अत्याचारोंका चित्र कुलीप्रथामें बहुतही सुन्दर और हूबहू अंकित करनेमें निर्भीकतासे अच्छा काम लिया गया है। संस्कृतके नाटकोंके अनुवादका कार्यभी अभीतक जारी है और सत्यनारायण, रामदहिन, वचनेशमिश्र, बद्रीनाथभट्ट, जयशंकरप्रसाद, शुकदेवनारायण, ठाकुरदयालसिंह आदि सज्जनोंने संस्कृतके भिन्न भिन्न नाटकोंके अच्छे और सुन्दर अनुवाद प्रकाशित किये हैं। अंगरेजी साहित्यसे भी हिन्दी नाट्य जगतमें दिनों दिन कुछ न कुछ सामग्री आती ही जाती है। लाला श्रीनिवासदासका रणधीरप्रेममोहिनी, मैथिलीशरणगुप्तका तिलो त्तमा और माधवशुक्लका महाभारत (यद्यपि इनमें नवीन बातोंका वर्णन नहीं है) बहुत उत्तम और सुन्दर हुए हैं। ऐतिहासिक नाटकोंकी हिंदीमें बहुत कमी है। बद्रीनाथभट्टका चंद्रगुप्त, रूप नारायणपांडेयका दुर्गादास और श्रीराधाकृष्णदास का महाराणा प्रताप ये तीन उल्लेख योग्य ऐतिहासिक नवीन नाटक अभी तक हिंदीमें बने हैं। जिनमें एक तो बंगलाका अनुवाद है और शेष दोनों अन्य भाषाके ग्रन्थोंकी छायापर रचे गये हैं।

नाटक ग्रन्थोंका उद्देश्य केवल साहित्यकी वृद्धि करना और पठन-पाठन द्वारा आनन्द लाभ कराना ही नहीं है, बल्कि अभिनयके द्वारा सर्व साधारणको शिक्षा देना भी उनका एक प्रधान उद्देश्य है। जिन नाटक ग्रन्थोंका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं उनमें अधिकतर ग्रंथ ऐसे हैं कि जो नाटकका कसौटीपर कसनेसे सौ टंचके सोनेकी तरह सर्वोत्तम नहीं ठहर सकते। यद्यपि उनमें अनेक ऐसे हैं कि जिन्हें हम काव्यकी दृष्टिसे बहुत ही उत्तम कोटिके कह सकते हैं, तथापि अभिनयकी दृष्टिसे वे बहुत ही निम्न श्रेणीके हैं। उपरोक्त ग्रंथोंमें २-४ को छोड़ शायद ही कोई नाटक ग्रंथ ऐसा निकलेगा कि जो रंगमंचपर सफलतासे खेला जासके। भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्रके प्रायः सभी नाटकोंका कहीं न कहीं अभिनय होचुका है, परन्तु खेलनेके पूर्व उनमें परिवर्तन करनेकी भी सर्वत्र आवश्यकता हुई है। अन्य अनेक नाटक ग्रंथोंके सम्बंधमें भी यही बात कही जा सकती है।

अब देखना यह है कि यह बात क्यों हुई? इतने बड़े बड़े विद्वान् लेखकों द्वारा उत्तम उत्तम ग्रंथ लिखे जानेपर भी यह एक बड़ी त्रुटि क्यों रहगई? मेरी समझसे इसका प्रधान कारण यही है कि या तो उन लेखकोंको रंगमंचका ख्यालही न था और या उन्होंने जानबूझकर उसपर लक्ष्य नहीं दिया। इनमेंसे पहिली बात ही अधिक युक्तिसंगत ज्ञात होती है। वास्तविक बात यह है कि नाटक लिखना कोई खिलौना नहीं है। केवल काव्यके ज्ञानसे ही कोई उपयुक्त नाटककार नहीं बन सकता। साहित्यके पूर्ण ज्ञानके साथ साथ उसे रंगमंचके दृश्योंका भी यथेष्ट परिचय होना चाहिये। समकालीन समाजके धार्मिक, सामाजिक नैतिक विचार उसे भलीभांति अवगत होने चाहिये। भावभंगी और भाषा आदिपर मनुष्यकी चित्तवृत्तियोंका भिन्न भिन्न

समय कैसा कैसा प्रभाव पड़ता है इसके सूक्ष्म ज्ञानके साथ साथ मानव स्वभावका यथेष्ट अनुशीलन करना भी उसके लिये आवश्यक है। संगीत शास्त्रका भी वह जानकार होना चाहिये। इन सब प्रकारके ज्ञानोंसे परिपूर्ण एक प्रतिभाशाली और कल्पना-शक्ति-सम्पन्न मनुष्यही वास्तविक नाटककार कहलानेके योग्य होता है।

कहना नहीं होगा कि हिन्दीमें इस प्रकारके नाटककारोंका एक प्रकारसे अभाव ही है, और यही कारण है कि उनके रचित ग्रन्थ सर्वांग सम्पूर्ण नहीं हुए। पहिले रंगमंचकी ही बात लीजिये। स्टेजपर बीसियों प्रकारके दृश्योंको दिखानेके लिये सैकड़ों पड़दे होते हैं। जिनमेंसे कुछ आगे और कुछ पीछेकी ओर रहते हैं। बिना किसी प्रकारके सामानके केवल पड़दोंसेही जो दृश्य दिखाये जाते हैं वे प्रायः आगे की ओर होते हैं। और राजदर्बार, नदी, पुल, जंगल, पर्वत, स्मशान आदिके दृश्य जिनमें अनेक दूसरी तरहके सामानोंकी जरूरत होती है पीछेकी ओर होते हैं। पिछले प्रकारके दृश्योंको तैयार करनेमें समयभी अधिक लगता है। अब नाटककारको नाटक लिखनेके पूर्व इन बातोंको खूब सोच विचार लेना चाहिये कि उनके नाटकमें इस प्रकारके बड़े बड़े दो तीन दृश्य लगा तार तो नहीं आजाते हैं। एक दृश्यमें दूसरेको तैयार करनेके लिये काफी समय मिल गया है या नहीं। या इसी प्रकारकी अन्य कोई असुविधा तो नहीं होती. परन्तु उक्त लेखकोंमेंसे शायद ही किसीने इस बातपर भलीभांति लक्ष्य रखा होगा।

इसके पश्चात बात है समयकी। नाटककारको अपना नाटक प्रकाशित करनेके पूर्व यह देख लेना चाहिये कि वह नाटक कितने समयमें अभिनीत किया जा सकता है। यदि समय थोड़ा हुआ तो दर्शकोंपर यथोचित प्रभाव नहीं पड़ता और यदि बहुत लम्बा हुआ तो वे उकता जाते हैं और उसके द्वारा उनके स्वास्थ्यमें हानि पहुँचनेकी सम्भावना रहती है। मेरी समझमें नाटकाभिनयका समय कमसे कम ३ घंटे और अधिकसे अधिक ५ घंटे होना चाहिये और इस बीचमें कमसे कम दो बार विश्राम भी मिलना चाहिये। परन्तु हिन्दीके नाटककारोंने इस बातपर भी कम ध्यान दिया है। भा० बा० हरिश्चन्द्रका माधुरीनाटक बहुत छोटा और मुद्रा राक्षस बहुत बड़ा है, यही बात प्रायः अन्य लेखकोंके लिये भी कही जा सकती है।

तीसरी बात घटनाओंकी है। कुछ इस प्रकारकी असंभव और अघटित (असंगत) घटनायें प्राचीन और कहीं कहीं नवीन नाटकोंमें भी पाई जाती है कि जिनके अभिनयमें बहुत प्रयत्न करनेपर भी पूर्ण सफलता नहीं होती। संस्कृत और हिन्दीके प्रायः सभी पौराणिक नाटकोंमें कुछ न कुछ अलौकिक घटनायें दिखाई जाती हैं और किसी दैवी या पैशाचिक शक्ति या मंत्र तंत्र द्वारा कार्य कराये जाते हैं। वे सब प्रकृतिके नियमके विरुद्ध होते हैं। और उनका मनुष्यके हृदयपर क्षणिक आश्चर्य और कौतूहलके सिवा और कोई लाभदायक चिरस्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। कभी कभी ग्रंथकर्त्ता अपने किसी नायकके चरित्रको बहुत ऊँचा दिखानेके लिये मानव स्वभाव विरुद्ध कार्य भी करा देते हैं। जिस समय महाराज युधिष्ठिर कौरवोंके दर्बारमें सर्वस्व हार बैठते हैं और उनके सामने उनकी प्राणाधिकप्रिया सती द्रौपदीका निर्दयता एवं निर्लज्जतासे अपमान किया जाता है उस समय उसका अतिनाद श्रवण करते हुए भी उनका अविकृतभावसे शांत हो बैठे रहना और भीमादिक अपने उत्तेजित भ्राताओंको भी शांत रखना वास्तवमें बड़ी आश्चर्यकी बात है, बल्कि यों कहिये कि यह बात सर्वथा मानवस्वभावविरुद्ध है। इसके विरुद्ध जिस समय शकुंतला

कण्वसे विदा हो पतिगृहको प्रस्थान करती है उस समय जो बातें कण्वने शकुंतलासे कही हैं वे बिलकुल मानवस्वभावके अनुकूल हैं। यद्यपि कण्व जैसे तपस्वी और ज्ञानी पुरुषको साधारण मनुष्यकी भाँति वियोग जन्य दुखसे दुःखित होना अनुचित था तथापि यह भी कब सम्भव था कि उन्हें उस समय बिलकुल ही दुःख न होता। अस्तु। जिस धैर्य और गम्भीरतासे कविवर कालिदासने कण्वके मुखसे उनकी उस समयकी व्यथाका वर्णन कराया है वह ऋषि जीवन अथच मानवस्वभावके पूर्णतया योग्य है। सारांश यह है कि जनसमाजकी कालक्रमसे परिवर्तित रुचिका विचार कर देश कालपात्रानुसार नाटककारोंको अपने नाटकोंमें वे ही घटनायें दिखानेका प्रयत्न करना चाहिए कि जो प्राकृतिक और स्वाभाविक हों अर्थात् जिन्हें देखतेही दर्शकोंको अपना नित्यकी प्रत्यक्ष, घटनाओंका उनमें प्रतिबिंब दिखाई देने लगे। उदाहरणके तौरपर गोदशा, बालविवाह, बेजोड़ विवाह आदिसे संबंध रखनेवाले समाजके आभ्यन्तर गुह्यचित्रोंको इस तरहसे दिखाया जाय कि हृदयमें नीतिविरुद्ध रीतियोंके लिये साधिक्षेप व्यंगोंकी प्रबल तरंगें उठने लगें।

ऊपर कहा जा चुका है कि वार्त्ता और कविता दोनोंसे संगीतका प्रभाव मनुष्यपर अधिक होता है, अतः नाटकके लिये यह आवश्यक है कि उसमें यथा स्थान कुछ ऐसे श्रुतिमधुर गायनोंका समावेश कर दिया जाय कि जिनकी झंकार द्वारा मनुष्यके हृदयमें उस नाटककी शिक्षाकी चिरकाल तक आवृत्ति होती रहे। हिंदी एवं संस्कृतके भी नाटकोंमें कविताकी बहुत भरमार मिलती है इससे यह न समझना चाहिये कि वह सर्वदा ही यथा स्थान होती है, बल्कि प्रायः ऐसे स्थलोंपर भी उसका समावेश कर दिया गया है कि जहाँ उसका होना अनुचित दिखता है। अधिकांश हिंदी लेखकोंने संस्कृत प्रणालीका अनुसरण करके ही ऐसा किया है। भा० बा० हरिश्चंद्रभी इससे बरी नहीं किये जा सकते। भारत दुर्दशा नाटकमें भारत दुर्दैवके सामने फौजदार एवं सैनिकोंका गाते हुए ही प्रवेश करना और गाते हुये ही उनके प्रश्नोंका उत्तर देना असंबद्ध नहीं तो और क्या है? नीलदेवीमें राजा सूर्यदेवका फौजको संगीतमें आदेश देना भी इसी प्रकारका है। इसी प्रकारके बल्कि इनसे भी बढ़कर असंबद्ध बातोंके उदाहरण अनेकानेक ग्रंथकारोंके ग्रंथोंसे दिये जा सकते हैं। केवल असंबद्धता ही नहीं कभी कभी तो उन गायनोंमें सार भी बहुत थोड़ा रहता है। यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि अभिनयमें मनुष्य जो कुछ सुनता है या देखता है, उनमेंसे वे ही बातें और दृश्य उसे अधिक समय तक याद रहा करते हैं जो उसने गायनमें सुने हैं और उसके साथ देखे हैं। यदि वे गायन सुन्दर और सरल लयमें हों तो उन्हें छोटे छोटे बच्चे तक याद करलेते हैं। इसलिये नाटककारको यह उचित है कि वह उन गायनोंमें यथा सम्भव और यथा स्थान अपनी शिक्षाओंको सरलतासे भर दे। नाटकोंमें लम्बे और अधिक गायन रखना भी एक दोष है। लम्बे गायनोंसे दिल ऊब जाता है और वे याद भी मुश्किलसे रहते हैं और अधिक गायनोंमें भी अनेक प्रकारके स्वर और ताल होनेके कारण दर्शकोंको उन्हें याद रखनेमें गड़बड़ होजाती है। इसी प्रकार गायन न रहनेसे नाटकमें रूखापन आजाता है। अंगरेजीमें इस प्रकारके अनेक नाटक हैं और हिंदीमें उन्हें अनुवादित करतीवार कितने ही अनुवादकोंने उसी प्रणालीको ग्रहण किया है। उदाहरणके लिये "जयन्त" का उल्लेख किया जा सकता है।

पाँचवीं बात हास्यरसके सम्बंधमें है। संस्कृतमें विदूषक नाटकका एक प्रधान पात्र होता है।

वह ब्राह्मण होता है और मिष्टान्न भक्षणके लिये उत्सुक रहता है। यद्यपि वह अन्य प्रकारकी मार्मिक बातेंभी कभी कभी कहदेता है परंतु बहुधा उसकी दिल्लगी भोजनकी ही होती है। हिंदीके भी कितनेही ग्रन्थकारोंने हास्यरसका आधार इसी प्रणालीपर रक्खा है। प्राचीन कालमें चाहे इन बातोंसे हास्यरसका अच्छा उद्रेक होता होगा परन्तु आजकल तो इनका बहुतही कम आदर होता है। यह सत्य है कि कितनी ही बातें जो साधारण रीतिसे कही जाती हैं मनुष्यको हँसा तक नहीं सकतीं वे ही यदि किसी अन्य प्रकारके भावभंगी सहित विकृत स्वरादिमें कही जांय तो श्रोताओंको लोटपोट करदेती हैं, परन्तु नाटककारको इसी बातपर सन्तोष नहीं करलेना चाहिये बल्कि उसे चाहिये कि हास्यके प्रसंगमें बड़ी बड़ी मर्मभेदी बातोंको वह ऐसे ढंगसे रक्खे कि जिनसे लोगोंका मनोरंजन हो और साथही वे बातें उनके हृदयमें भलीभाँति स्थान अधिकृत करलें।

नाटककी भाषा बहुतही सरल, परिष्कृत, अथच सरस एवं पात्रोंकी योग्यताके अनुकूल होनी चाहिये। हिन्दीके नाटक ग्रंथोंमें कभी कभी पात्रोंके मुखसे ऐसी भाषाका भी प्रयोग देखा जाता है कि जिसके योग्य वे नहीं होते। नाटककारको इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिये कि कथानकका संबंध बराबर भलीभाँति बना रहे। कितने ही नाटकोंमें दृश्य बड़े बड़े करदिये जाते हैं कि जिनमें संवाद या स्वगतभाषण (Soliloquy) भी बहुत अधिक समय तक कराये जाते हैं। उसका फल प्रेक्षकोंपर अच्छा नहीं होता। अधिक समय तक एकही प्रकारके विशेष वर्णनसे उनका दिल उकता जाता है। एक नाटकमें (चाहे वह किसीभी रसकी प्रधानता रखता हो) अनेक प्रकारके रसोंका समावेश करना चाहिये और इसपर भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक दृश्यके परिवर्तनपर नवीन रसका दृश्य आवे और वे एक दूसरेसे अधिक रोचक हों।

नाटकोंकी रचना यद्यपि उनकी रचना प्रणालीके नियमोंके अनुसारही होनी चाहिये। परन्तु मेरे ध्यानसे संस्कृत साहित्यमें जिस तरहसे और जितने इसके नियम हैं उनके उस प्रकारके जटिल बंधनमें बंधे रहनेकी आवश्यकता नहीं है। हिन्दीमें इस विषयपर विशेष प्रकाश डालनेके लिये नाटकोंकी रचना प्रणाली एवं आलोचनादि विषयके कोई ग्रंथ ही नहीं हैं। हाँ, बाबू हरिश्चंद्रका नाटक और पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीका नाट्यशास्त्र ये दो पुस्तकें हैं जो इस विषयकी गहराई देखते बहुत छोटे और निबंध मात्र हैं। उनसे उस अभावकी पूर्ति नहीं हो सकती। संस्कृत साहित्यमें नाटकोंके अनेक भेद माने गये हैं। परन्तु उनमें एक दूसरेसे इतना कम फर्क है कि जिससे उनको भिन्न भिन्न समझनेमें और तदनुसार नाटक निर्माण करनेमें सफलता प्राप्त करना वर्त्तमान् समयके लेखकोंके लिये दुस्तर कार्य है और उसकी आवश्यकता भी नहीं।

यूरोपीय नाट्यशास्त्रके नियमानुसार नवीन नाटकोंके साधारण तया तीन प्रकार होते हैं। यथा ड्रामा (वार्तारूपक) आपेरा (गीतिरूपक) और फार्स (प्रहसन) इनमें क्या भेद है यह बात इनके नामसे साफ प्रकट होती है। ये सब फिर दो प्रकारके होते हैं, संयोगान्त और वियोगान्त। हमारे यहाँ 'आदावन्तेच मंगलम्' का सिद्धान्त बड़े जोरोंपर चला आरहा है और यही कारण है कि हमारे यहाँ एक भी प्राचीन वियोगान्त नाटक नहीं पाया जाता। इसे एक प्रकार दोष ही समझना चाहिये। पहिले कहा चुका है कि स्वाभाविक बातोंको ही मनोरंजक और उपदेशप्रद रीतिसे दिखाना

नाटकोंका प्रधान उद्देश्य है तो फिर स्वाभाविक वियोगान्त दृश्य नाटकद्वारा क्यों न दिखाये जायँ? यूरोपीय भाषाओंमें ऐसे अनेक नाटक हैं और उनका प्रभावभी दर्शकोंपर बहुत अच्छा पड़ता है यह बात उन नाटकोंके अभिनय-दर्शकोंसे अविदित नहीं है। यद्यपि हिन्दीमें रणधीर प्रेममोहिनी, जयन्त आदि कुछ नाटक अंगरेजी नाटकोंके आधार और अनुकरणपर रचे गये हैं (और हृदयपर उनका प्रभावभी बहुत अच्छा होता है) तथापि हिन्दीभाषामें इस प्रकारके अनेकानेक ग्रंथोंके लिखे जानेकी आवश्यकता है।

वर्त्तमान् नाटक कम्पनियाँ।

भारतके बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रायः सभी प्रान्तिकभाषाओंकी नाटक कम्पनियाँ बहुत समयसे अभिनय दिखाती आरही हैं, परन्तु यह एक बड़े ही दुःखकी बात है कि किंचित्कालपूर्व हिन्दी भाषामें अभिनय करनेवाली एक भी नाटक कम्पनी न थी। यद्यपि बहुतही थोड़े समयसे अभागिनी हिन्दीको भी दो एक नाटक कम्पनियाँ रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; तथापि जैसी उनकी अवस्था है उससे उनका होना न होना बराबरसा मालूम होता है। मथुरा, वृन्दावनके रासधारी, हाथरस और राजपूतानेके स्वाँगिया और अवध प्रान्तके रामलीलावाले बहुत दिनोंसे अपनी रासलीला, और ख्याल दिखाकर एक प्रकारसे नाटकके अभावकी पूर्त्ति करते रहे हैं, परन्तु उनके यहाँ न तो रंगमंच होता है, न वे दृश्योंको ही उत्तमतासे दिखा सकते हैं, और न उनके पास नाटकोंके योग्य पूरे साधन ही होते हैं। अब तक बिचारी हिंदी और हिन्दी भाषियोंको उर्दू नाटक कम्पनियों पर ही सन्तोष करना पड़ा है, परन्तु अव्वल तो उनका हिन्दीसे सरोकार ही नहीं, और दूसरे हरिश्चन्द्र आदि जैसे पौराणिक नाटकोंमें जहाँ कहीं हिन्दीकी नितान्त ही आवश्यकता आ पड़ती है वहाँ उनमें इसका एक विचित्र ढंगसे व्यवहार कर बिचारी हिन्दीकी चिन्दी निकालनेमें कुछ भी कसर नहीं रक्खी जाती। अब इस विषयमें जो कुछ नाममात्रका सहारा बिचारी हिन्दीको रहा वह सिर्फ इनीगिनी २-४ नाट्य समितियोंका। उनमेंसे प्रयागकी हिन्दी नाट्यसमिति विशेष उल्लेख योग्य है। हर्षकी बात है कि हमारे समाजके नेताओं और विद्वानोंमेंसे अनेकोंने इन समितियोंमें योग दिया है और देते जारहे हैं। उनके द्वारा जो अभिनय होते हैं उनका महत्वभी अधिक होता है; क्योंकि प्रथम तो वे सभी विद्वान् और साहित्यरसिक होते हैं, दूसरे निःस्वार्थ देश-सेवा-व्रतको धारण करके ही वे कार्यक्षेत्रमें उतरते हैं। यही नहीं वे जिन विषयोंकी शिक्षा जनसमाजको देना चाहते हैं उनके वे भलीभाँति मर्मज्ञ होते हैं और प्रायः उन्हीं रंगोंमें रँगे भी होते हैं। यह सब होते हुए भी ये थोड़ीसी समितियाँ नाटक कम्पनियोंके अभावको पूर्ण नहीं कर सकतीं; क्योंकि अनेक सांसारिक कामोंमें लगे रहनेके कारण वे साल भरमें १ या २ से अधिक अभिनय कर ही नहीं सकतीं और उनको भी वे जहाँ स्वयँ रहती हैं वहाँ या विशेष कारण वश किसी अन्य आसपासके स्थानके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं दिखा सकतीं। और और दिक्कतोंके सिवाय उनको इस काममें यह एक बड़ी भारी दिक्कत होती है कि धनाभावके कारण वे नये नये और बढ़िया बढ़िया दृश्य, वेश, आभूषण आदि सब परिच्छद नहीं रख सकतीं और उनके भावोंको पूर्णतया प्रकट करनेवाले ऐसे सामान अन्य जगहोंसे उन्हें मिल भी नहीं सकते।

यों तो कितनेही स्कूल, कालेजोंमें भी समय समयपर हिंदीमें नाटक खेले जाते हैं, और, काशी,

प्रयाग, कानपुर आदि स्थानोंकी सभा समितियाँ, वर्धाकी मारवाड़ी-विद्यार्थीगृह-समिति और बम्बईकी मारवाड़ी समेलन-नाट्य समिति विशेष विशेष जातीय उत्सवोंपर शिक्षापूर्ण नाटक खेला करती हैं, परन्तु अन्य प्रान्तिक भाषाओंकी जैसी जब तक अच्छी अच्छी व्यापारी नाटक कम्पनियाँ हिन्दीमें कायम न होंगी तब तक यह अभाव ज्यों-का त्यों बना रहेगा और हिन्दी-भाषाभाषी, मनोरंजन एवं शिक्षाके इस सर्वोत्तम साधनके लाभसे वंचित रहेंगे।

आजकलकी प्रायः सभी प्रान्तोंकी नाटक कम्पनियाँ जो नाटक खेलती हैं वे नाटक बहुधा कुछ कुछ अंगरेजी ढंगपर ही होते हैं। मराठी, गुजराती और उर्दू भाषामें जो नाटक खेले जाते हैं उनमें सर्वदा ड्रामा, आपेरा, और फार्स इन तीनोंका ही समावेश हो जाता है, परन्तु बंगलामें इन सबके अलग अलग भी अभिनय किये जाते हैं। यद्यपि इस प्रकारके सम्मिलित नाटक बहुतही रोचक और प्रभावशाली होते हैं तथापि उनमें जिस प्रकार निरर्थक और बेमौके गायनों और भद्दी दिल्लगियोंकी भरमार कर दी जाती है उससे उन नाटकोंका महत्व बहुत घट जाता है।

बंगला और मराठीके अतिरिक्त गुजराती और उर्दू नाटकोंमें जो संगीत और दिल्लगियाँ होती हैं वे प्रायः बहुत नीचे दर्जेकी और कविताके गुणोंसे हीन होती हैं। शृंगार रसका वर्णन तो उनमें कभी कभी अश्लीलताकी हदतक पहुँच जाता है। पात्रोंका वेश विन्यास भी अकसर अनुचित और अक्षम्य होता है। किसी पात्रकी भलाई या बुराई दिखाती बार उनमें कभी कभी इतना तूलदिया जाता है कि जिससे उसकी असलियतही मारी जाती है। पतिको झाड़ूसे पीटना, और एक सुशिक्षिता स्त्रीका अपने पतिसे बूटोंको साफ करवाना आदि कितनी ही बातें इसके उदाहरणमें कही जा सकती हैं। कभी कभी तो पात्रोंका डील और रूपरंगभी बेढंगा होता है, और उनकी रहन सहन तो गजब ही कर डालती है। एक गुजराती कम्पनीके 'सती अनसूया' नाटकमें अनसूयाका बूट चढा कर कुर्सी पर डटना इसी प्रकारका एक विचित्र दृश्य है।

यद्यपि मराठी और बंगला नाटक कम्पनियाँ भी ऐसी ऐसी गलतियाँ करती देखी जाती हैं, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य सबकी अपेक्षा वे श्रेष्ठ होती हैं। उनके नाटकोंमें केवल शृंगार ही नहीं होता बल्कि वीररस और भक्तिकी मात्राभी यथेष्ट होती है। समाजका वास्तविक चित्र खींचने और ऐतिहासिक आदर्शपुरुषोंके चरित्रोंको प्रदर्शित करनेमें ये कम्पनियाँ विशेष पटु होती हैं। अनेक समय इनका हास्यरस भी ऊँचे दर्जेका होता है और इनके गायनोंमें उर्दू और गुजराती नाटकोंकी भाँति न तो थोथी तुकबन्दी होती है और न उनकी तरह इनमें संगीत और कवित्वकी हत्या ही की जाती है। राष्ट्रीयता और जातीयताके भाव भी प्रायः इनमें लबालब भरे रहते हैं।

बंगलाके दुर्गादास, राणा प्रताप, मीरकासिम, चांदबीबी, छत्रपति शिवाजी आदि और मराठीके वीरतनय, कमला, मानापमान, कीचक वध आदि नाटकोंका यदि हम खूबसूरतबला, असीरेहिर्स, मतलबीदुनियाँ, सुधाचन्द्र, कीमती आँसू, इन्द्रसभा आदि उर्दू, गुजराती और हिन्दी नाटकोंसे मिलान करें तो हमें उनमें आकाश पातालका अंतर मालूम होगा। यद्यपि गुजराती और उर्दू कंपनियोंकी भाँति मराठी कंपनियोंके पोशाक परिच्छद और दृश्य इत्यादि बहुत हलके दर्जेके और कम होते हैं, तथापि उनके अंग संचालन, भावभंगी और संगीत आदि ही दर्शकोंके मन लुभानेको यथेष्ट होते हैं। बंगला कम्पनियोंमें तो अक्सर ये दोनों बातें भी पाई जाती हैं। उर्दू और गुजराती

नाटक कम्पनियोंका विशेष जोर सुन्दर नटियों और दृश्य आदि ऊपरी बटक मटकपर ही होता है।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि इन कम्पनियोंमें ये दोष क्यों हैं? मेरी समझमें इसका यही उत्तर है कि प्रथम तो उनका उद्देश्य केवल धन कमाना होता है अथवा वे अपने नाटकोंमें उन्हीं बातोंकी प्रधानता रखते हैं कि जिनको कम पढ़े लिखे या अपढ़-आँखके अन्धे गांठके पूरे-पसन्द करते हों, दूसरे उन कंपनियोंके नाटकोंके लेखक भी साहित्यके ऊँचे दर्जेके मर्मज्ञ नहीं होते। सामाजिक एवं राजनैतिक दशापर उनका लक्ष्य प्रायः नहीं होता और जिन नाटक कम्पनियोंमें ये दोष नहीं होते उनके नाटक भी ऊँचे दर्जेके होते हैं यह ऊपर कहा जा चुका है।

उपसँहार।

उपरोक्त विवेचनसे यह बात तो स्पष्ट हो ही गई कि हिन्दी भाषाका नाटकीय अंग अभी इतना अपूर्ण है कि जिससे वह अपनी कई एक प्रान्तिक भाषाओंकी बराबरी भी नहीं कर सकता। प्यारी हिन्दी माताके सच्चे सपूतो और सुलेखको! हमारा यह प्रधान कर्तव्य है कि अपनी शक्तिभर-तन, मन, और धनकी सहायतासे हिन्दी माताकी इस कमीको पूर्णकर माताके दिव्य आशीर्वाद एवं अतिशय प्रेमके भाजन बनें। आशा है प्रतिभा शाली सुलेखक इस ओर ध्यान देंगे और अल्प समयमें ही उत्तमोत्तम, मौलिक और तात्त्विक, नाटक ग्रन्थोंके द्वारा मातृ-भंडारको पूर्ण कर देंगे और यही बात नाटक कम्पनियोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है।

यूरोप आदि देशोंकी बात जाने दीजिये, भारतवर्षमें भी कितनी ही नाटक कम्पनियाँ ऐसी हैं, जो आरंभमें बहुतही हीन दशामें शुरू कीगई थीं; परंतु शीघ्र ही वे लाखोंकी मालकिन बनगई। कावसजी खटाऊकी अल्फ्रेड कंपनी, गुजराती नाटक मंडली, कलकत्तेकी एल्फिन्स्टन् नाटक कम्पनी और बंगालाकी कई एक नाटक कम्पनियाँ इसके लिये प्रमाणभूत हैं। वास्तविक बात तो यह है कि नाटक कम्पनियोंके द्वारा न केवल देश-सेवाही की जा सकती है, बल्कि व्यापारिक दृष्टिसे उनके द्वारा आर्थिक लाभ भी यथेष्ट होता है; तो-भी हमारे हिन्दी प्रेमी इस ओर दुर्लक्ष्य रखते हैं, यह एक आश्चर्य की बात है। हिन्दी भाषा समझनेवालोंकी संख्या भारतमें सबसे अधिक है। इसलिये हिन्दीकी नाटक कंपनियोंको सुभीता भी अन्य भाषा भाषियोंकी नाटक मंडलियोंसे अधिक है। जहाँ तक हमें मालूम है, हिन्दीमें अभी तक, विद्वज्जन संगीत मंडली, सूरविजय नाटक समाज और एक बीकानेरकी नाटक कम्पनी-इन तीन नाटक कम्पनियोंके सिवा और कोई कंपनी नहीं है। यद्यपि हमें इन तीनों ही नाटक कंपनियों-के देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, तथापि जहाँतक हमने समाचार पत्रों और मित्रोंके मुखसे जाना है, वहाँ तक प्रतीत होता है, कि, चाहे वे अच्छे अच्छे नाटक दिखा हिन्दी भाषा और धर्म-की अच्छी सेवा कररही हों, तोभी उनकी दशा सर्वरीत्या सन्तोष जनक नहीं कही जा सकती। इस अवस्थामें १-२ नहीं बल्कि १०-५ ऐसी हिन्दी नाटक कम्पनियोंकी आवश्यकता है कि, जिनके पास पर्याप्त धन हो, भड़कदार पोशाक, पड़दे और गहने हों; सुगठित और सुयोग्य नट हों; विद्वान् और साहित्यका मर्मज्ञ सूत्रधार हो; और नाटक लिखनेके लिये सुयोग्य लेखक हों। इस विषयका कार्यक्षेत्र खूब विस्तृत पड़ा है। धनकी कमी नहीं है; पर आवश्यकता है केवल उत्साही सज्जनों की। आशा है मातृभाषा हिंदीके सच्चे सहायक, सच्चे उत्कर्षेच्छुक-सज्जन इस कमीको भी पूर्ण कर यश-धनके भागी होंगे।

हिन्दी भाषामें नाटक ग्रन्थ और वर्त्तमान् नाटक कम्पनियाँ।

लेखक—पं० श्यामविहारी मिश्र तथा पं० शुकदेवविहारी मिश्र।

यह एक बहुत बड़ा विषय है और नाटक ग्रंथोंकी कुछ भी समालोचना लिखनेसे इसका बहुत बड़ा विस्तार हो सकता है। यहाँ पर ऐसे विस्तारकी हमें कोई आवश्यकता नहीं समझ पड़ती। हम मुख्यतया केवल नाटक कम्पनियोंके विचारसे अपने नाटक ग्रंथोंका, कथन करेंगे। हिन्दीमें नाटक विभाग अन्य काव्य ग्रंथोंकी अपेक्षा बहुत ही शिथिल दशामें है। आनुषंगिक दृष्टि छोड़ देनेसे भी हमारा नाटक विभाग उन्नत नहीं कहा जा सकता। हिन्दी भाषी अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा नाटकोंका मान तथा चलन विहारमें कुछ विशेष रहा है। हमारे प्रथम नाटककार प्रसिद्ध कवि विद्यापति ठाकुर हैं जो संवत् १४४५ के लगभग विहारमें होगये हैं। आपने दो नाटक ग्रन्थ रचे जो साहित्यकी दृष्टिसे भी अच्छे हैं। इनके पीछे विहारी कवियोंमें लालझा (सं० १८३७) भानुनाथझा (सं १९०७) हर्षनाथझा आदि नाटककार ये हैं जिनके ग्रन्थोंने विहार प्रान्तमें अच्छी ख्याति पाई। बाबू व्रजनन्दन सहाय और शिवनन्दन सहाय आजकलके विहारी नाटककार हैं।

हिन्दी भाषा भाषी शेष प्रान्तोंमें सबसे पहले नाटककार नेवाज कविने कालिदासके आधार पर शकुन्तला नाटक बनाया, किन्तु यह ग्रन्थ पूर्ण नाटक नहीं है, क्योंकि इसमें जवनिका दिका प्रबन्ध ठीक नहीं। व्रजबासी दासका प्रबोध चंद्रोदय नाटक भी कुछ कुछ ऐसा ही है। केशवदास कृत विज्ञानगीता और देवकृत देवमाया प्रपंच नाटक भी नाटक नहीं कहे जासकते। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके पिता बाबू गिरिधरदासने इधर पहिला नाटक ग्रन्थ रचा, जो पूर्ण नाटक है इसका नाम है नहुष नाटक। इसके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह कृत शकुन्तला नाटक भी पूर्ण नाटक है, किन्तु यह कालिदासकी शकुन्तलाका अनुवाद मात्र है। भारतेन्दुजीने कई नाटक ग्रन्थ रचकर हिन्दीका प्रचुर उपकार किया है। आपके नाटक हमारी भाषाके इस विभागके शृंगार हैं। इनमेंसे कईका अभिनय भी होचुका है। इनके अतिरिक्त श्रीनिवासदास, काशीनाथ खत्री, पुरोहित गोपीनाथ, राधा कृष्णदास, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि महाशय इधरके नाटककार हैं। इस प्रबन्धके लेखकोंने भी दो नाटक ग्रन्थ रचे हैं, किन्तु कहना ही पड़ता है कि भारतेन्दुजीके पीछे अभी तक कोई अच्छा निकलता हुवा नाटककार हमारी भाषामें नहीं हुवा है।

उपरोक्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णनसे प्रिय पाठकोंको प्रकट हुवा होगा कि हमारे यहाँ इस विभागकी बहुत कमी है। इसका कारण खोजनेको हमें दूर नहीं जाना होगा। हमारी नाटक मंडलियोंसे हमारे इस विभागको उचित क्या कुछ भी सहायता नहीं मिलती। हमारे यहाँकी कम्पनियाँ हिन्दीका वहिष्कार किये हुये हैं और केवल उर्दूके चरणोंकी रज अपने मस्तकपर धारण करतीं हैं। यही कारण है कि वर्त्तमान् समयकी उन्नतिमें भी हमारा नाटक विभाग प्रायः जैसे का तैसा बना हुवा है। यह कमी देखकर बहुतसे धार्मिक पुरुषोंने रामलीला खेलनेवाली कम्पनियाँ स्थापितकीं हैं और वे जो काम करती हैं, वह अच्छा भी करती हैं, किन्तु फिर भी उन्नत नाट्य मंडलियोंके आगे उनकी कुछ भी गणना नहीं हो सकती। जहाँतक हिन्दीसे सम्बन्ध है, हमारे यहाँ अभिनयका कार्य्य अकबरके समयसे चला, जब मथुरा वृन्दावनके कुछ महात्माओंने रामलीला खेलनेकी चाल चलाई थी। धीरे धीरे रास मंडलियाँ स्थिर हुई और समयपर रामलीलाकी कम्पनियाँ चलीं, किन्तु अभीतक हिन्दीके नाटक खेलनेवाला कोई भी अच्छा थियेटर नहीं है। रीवामें महाराजा साहब बहादुरकी एक कम्पनी है जो हिन्दीके दो चार नाटकोंको खेलती है, किन्तु

शेष नाटक उनमें भी उर्दूके हैं। यदि कोई महाशय प्रयत्न करके हिन्दीके नाटक खेलनेवाली दो चार कम्पनियाँ भी कायम करादेवें, तो वे हमारे नाटक विभागके बहुत बड़े उपकारक समझे जावेंगे। बंगालमें अनेकानेक नाटक कम्पनियाँ हैं, जिनके कारणसे वहाँका यह विभाग बड़ी ही उन्नतावस्थामें है। वहाँ प्रत्येक विषयके अनेकानेक उत्कृष्ट नाटक प्रस्तुत हैं किन्तु हमारे यहाँ इसका कई अंशोंमें अभाव है।

नाटक ग्रंथ भी दो प्रकारके होते हैं, अर्थात एक तो वे कि जिनका अभिनय सम्भव और रोचक होगा, और दूसरे वे जिनका अभिनय या तो हो ही नहीं सकता या रुचिकर न होगा। नाट्यकारोंको महाकवि शेक्सपियरके नाटकोंमें से भी काट छाँट करके खेलने योग्य संस्करण (Playing editions) बनाने पड़े हैं। इसलिये नाटककारोंको यह कभी न समझना चाहिये कि खेलने योग्य नाटक बनाना कोई सुगम काम है। इसके लिये नाट्यप्रबन्धकी भीतरी दशापर ध्यान करना पड़ता है। प्राचीन समयमें नाटक देखनेवालोंके लिये प्रेसके अभावसे कोई विज्ञापन आदि नहीं दिखाया जा सकते थे, सो प्रस्तावना द्वारा उन्हें खेलेजानेवाले नाटकका विषय कुछ कुछ समझाना पड़ता था। अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं रहगई है सो प्रस्तावनाका लिखना अनावश्यक मानना चाहिये। पूर्वकालमें राजाओंके यहाँ विदूषक समयमें हुवा करते थे, सो पुरानी कथाओंके वर्णनमें हास्यरसके आविर्भावका कार्य्य इस प्रकार सुगमतासे चल जाता था। अब राजाओंके यहां विदूषक रखनेकी परिपाटी उठगई है, सो इसका भी वर्णन कालविरुद्ध दूषणसे खाली नहीं होगा। फिर भी हास्यरसोत्पादक अभिनयके एकदम अभावसे नाटक सूना लगेगा।

हास्यरसका आविर्भाव करना सुगम नहीं है। प्राचीन कालमें विदूषकों द्वारा हास्यरसका जो वर्णन आता था उसका मूल सूत्र प्रायः यही होता था कि विदूषक एक बड़ा ही मूर्ख, लालची, जिह्वा लोलुप अथवा छोटी बुद्धिका मनुष्य है। इन भावोंसे जो हास्यरस लाया जावेगा वह उच्च प्रकारका कभी नहीं कहा जा सकता। हास भी कवितामें कई प्रकारका कहा गया है, जैसे मृदुहास, सुखहास, हास, महाहास, अट्टहास आदि। जैसा पात्र होगा वैसा ही हास्य भी रखना पड़ेगा, किन्तु इतना सदैव ध्यान रखना चाहिये कि हास्यकी मात्रा जितनी ही बढ़ती जाती है उतना ही वह बुरा होता जाता है। काव्यमें उत्तम, मध्यम और अधम नामकी हास्यकी तीन श्रेणियाँ कही गई हैं। जहाँ तक हो सके वहाँतक काव्योत्कर्षपर सदैव ध्यान रक्खा जावे। आजकलके अच्छे थियेटरोंमें भी अभिनयमें हास्यार्थ अश्लीलताकी मात्रा बहुत देखी जाती है। यह देहकी गतिसे भावव्यंजकता द्वारा आती है और शब्दोंमें भी प्रकट रूपसे कही जाती है। ये दोनों बातें कैसी निन्द्य हैं सो प्रकट ही है, किन्तु बहुतसे थियेटरवाले समझते हैं कि स्टेजपर आनेसे वे साधारण सांसारिक नियमोंसे परे होजाते हैं। बंगालका स्टेज इस मामलेमें भारतके शेष स्टेजोंसे बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा है। वहाँ आप कन्या और बहनोंके साथ भी बेखटके थियेटर देख सकते हैं। वहाँ थियेटरोंमें आपका कभी अपना शिर नीचा नहीं करना पड़ेगा।

हास्यके अतिरिक्त द्रष्टागणकी रुचिकी ओर नाटककारोंको भी विशेष ध्यान देना पड़ेगा। वही वर्णन एक उपन्यास अथवा साधारण साहित्य ग्रन्थमें बहुत अच्छा लगेगा, किन्तु कुछ भी लम्बा होजानेसे नाटकके द्रष्टागणको असह्य हो जावेगा। कोई लम्बा वर्णन बहुत ही रोचक होनेसे द्रष्टाओंको धैर्य्ययुक्त रख सकता है, अन्यथा नहीं। जैसे भारतेन्दुका, नाटकमें काशी वर्णन अत्यन्त लम्बा होजानेसे नाटकके अयोग्य

होगया है, यद्यपि किसी अन्य ग्रन्थमें होनेसे वही वर्णन उसकी शोभा बढ़ा सकता है। अच्छे नाटककार ऐसा नाटक रचते हैं जिसके खेलमें दर्शकोंमें Pin-drop silence होजावे, अर्थात् ऐसा मौनहो कि एक सुई गिरनेसे उसकी भी आवाज सुन पड़े। बंगालके कई सुलेखक अपने नाटकमें साधारण बातचीतमें भी बड़े वाक्य नहीं लाते और छोटे ही छोटे वाक्यों द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। नाटकोंमें एक ही प्रकारका साधारण वर्णन फीका जँचने लगता है, सो पेंच पेंचकी आवश्यकता है। आगे होनेवाली घटना सदैव पहिले वर्णनोंसे आभासित न हो जानी चाहिये, पात्रोंका भी विचार पूर्णतया रखना चाहिये। जिस नाटकमें एक दो भी पात्र उदासीन पूर्ण और शिक्षाप्रद नहीं हैं उसका बनना न बननेके समान है। सब बातोंमें प्राकृतिक नियमों और स्वभावोक्तिपर भी ध्यान रखना आवश्यक है, नहीं तो नाटक प्रभावोत्पादक और यथार्थ न होगा। संक्षिप्त गुण भी नाटकोंके लिये परमावश्यक है जैसा कि अभी कहा जाचुका है।

अंकों और दृश्योंका पूर्वापर क्रम उचित प्रकारेण स्थिर न रखनेसे कोई भी नाटककार अच्छा लेखक नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक अंकका अन्तिम दृश्य बड़ा प्रभावोत्पादक होना चाहिये जिससे छुट्टीके समयमें दर्शकोंका चित्त खाली न होने पावे और अन्तिम दृश्यकी भावी घटनामें उनका मन लगा रहे। फिर किसी ऐसे दृश्य दिखलानेके पहिले, कि जिसके लिये कार्य्यकर्त्ताओंको भारी प्रबन्ध करना पड़े, दो एक छोटे छोटे सीन रखने चाहिये, जिससे वह सब काम पर्देके पीछे होजावे। सारांश यह है कि अभिनयका कुछ अनुभव होनेसे लेखक अच्छा नाटककार हो सकता है।

हमारी शिक्षा किस भाषामें हो ?

(लेखक—श्रीयुक्त पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, एम० आर० ए० एस० कलकत्ता।)

आजकलका यह प्रचलित प्रश्न है कि, हमारी शिक्षा किस भाषामें हो ! यदि यही प्रश्न विलायतमें कोई अंगरेज करे तो वह अवश्य पागल समझा जायगा क्योंकि यह प्रश्न वैसाही निरर्थक है जैसा यह कि, हम स्थलमें रहें या जलमें ? इसका उत्तर इसके सिवा और क्या हो सकता है कि, प्रकृति जहाँ कहे वहीं रहो। इसी प्रकार जिसकी जो मातृभाषा या देशभाषा है उसीमें उसकी शिक्षा होनी चाहिये और यही नैसर्गिक नियम भी है। पर हमारे भारतवर्षकी बात ही निराली है [illegible] ऐसे ही मनगढ़ प्रश्न उठा करते हैं और उनपर खूब तर्क वितर्क होता है। कभी कभी वह कार्य्यमें भी परिणत होजाते हैं। इसीसे विदेशी लोग भी कृपाकर हमारे हितके लिये नयी नयी उद्भावनायें किया करते हैं। इन हितचिन्तक नामधारियोंकी हम प्रशंसा करें या निन्दा, यह अभी हमारी समझमें नहीं आया है। कुछ दिनोंसे हमारे एक नये हितचिन्तक उत्पन्न होगये हैं। आपका नाम रेवरेण्ड जे. नोल्स (Rev. J. Knowles) है। आपकी राय है कि, भारतमें राष्ट्र लिपि होनेके योग्य यदि कोई लिपि है तो वह रोमन ही है। आप राय देकर ही चुप नहीं हुए, परोपकारसे प्रेरित हो उसके लिये

परिश्रम भी कर रहे हैं, क्योंकि आप पादड़ी हैं, परोपकारी हैं और पथ प्रदर्शक हैं। यह रोमन लिपि कैसी है, यह आगे चलकर बताऊँगा। अभी दिग्दर्शनके लिये इतना ही कहना अलम् होगा कि, किसी ने रोमनमें लिखा "अच्युत प्रसाद" और एक अंगरेज प्रिनसिपल (Principal) ने उसे पढ़ा "एच्यूटा प्रसाड!"

अच्छा, अब मैं अपने प्रश्नकी ओर आता हूँ। सारे भारतवर्षका विचार छोड़कर अपने हिन्दी-भाषी प्रदेशोंकी ही बात आज कहता हूँ। यहाँ विधि विडम्बनासे अंगरेजी, उर्दू, हिन्दी इन तीन भाषाओंका तिगड्डम होगया है। इसीसे प्रश्न उठता है कि, हमारी शिक्षा अंगरेजीमें हो या हिन्दी-उर्दूमें। अंगरेजी राजभाषा है, हिन्दी मातृ-भाषा और उर्दूको दाल भातमें मूसलचन्दकी भाषाके सिवा और क्या कहें? क्योंकि यह न राजाकी भाषा है और न प्रजा। हिन्दी उर्दूकी बात फिर कभी कहूँगा। आज राजभाषा अंगरेजीका ही गुणगान करता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि, हमारा भारतवर्ष एक विचित्र देश है। विदेशी चाल चलन, रहन सहन, रीति नीति, भाषाभेष आदि सीखनेमें जैसा यह बहादुर है, वैसा और कोई देश नहीं। और बातें छोड़कर आज मैं भाषाके सम्बन्धमें ही कुछ कहूँगा। जो भाषा हमारी आत्माके, हमारे शारीरिक संगठनके, सम्पूर्ण प्रतिकूल है उसे एक मनुष्य नहीं, एक जाति नहीं, सारा देश ग्रहण कर बैठा है। पोशाक जातीयताका जैसा चिन्ह है भाषाभी वैसा ही है। जिस देशकी जैसी जलवायु होती है वहाँकी पोशाक भी वैसी ही होती है। भाषाकी भी वही दशा है। शरीर और मुखकी बनावटसे भाषाका बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य जातिका संगठन देशकाल पात्रके अनुसार होता है। इसीसे सब जातियोंका चाल चलन एकसा नहीं है। जैसा देश वैसा वेष। भाषाभी देशके अनुसार ही बनती है। इन सबकी बनानेवाली प्रकृति देवी (Nature) है। वह एक दिनमें नहीं, कई युगोंमें देशकी जल-वायुके अनुकूल वेष और भाषा तैयार करदेती है। किसीकी खाल खेंचना उसे जानसे मार डालना है। उसपर दूसरेकी खाल चढ़ाना असम्भव है, एक जातिकी पोशाक छीन कर दूसरेको पहना देना सम्भव है, पर परिणाम इसका भी वैसाही है। भाषाके बारेमें भी वही बात है। गर्म मुल्कवाले ढीला ढाला महीन कुरता पहनते और सर्द मुल्कवाले काला, मोटा, चुस्त कोट तथा पेंट। उत्तर ध्रुवका निवासी मलमलका ढीला ढाला कुरता पहने तो वह जाड़ेसे जकड़ जायगा और सहाराका भी मोटा ऊनी कोट पहने तो वह गर्मीसे घबरा जायगा। हमारे स्वास्थ्य और शरीरके लिये विदेशी परिच्छद जितना हानिकारक है, मानसिक शक्तिके लिये विदेशी भाषा भी उतनी ही है। जो भाषा हमारी आत्माके, हमारे मानसिक और शारीरिक गठनसे, हमारे भाव और विचारोंसे बिलकुल विपरीत है उसे दबावमें पड़कर ग्रहण करना कैसा भयानक कार्य्य है।

भारतकी प्रायः सब भाषाएँ संस्कृतसे निकली हैं। संस्कृत विशुद्ध और सरल भाषा है। अतएव उससे निकली हुई भाषाएँ भी विशुद्ध और सरल हैं, इसमें सन्देह नहीं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि, अंगरेजीका भी उद्गम स्थान आर्य्यभाषा संस्कृत ही है, क्योंकि इसमें लैटिन और ग्रीक भाषाओंके साथ संस्कृतका भी पुट है। यदि यही बात है, तो मैं कहता हूँ कि, अंगरेजी अनार्य्य भाषासे निकली है। क्योंकि इसमें अनार्य्य भाषाके भी बहुतसे शब्द हैं। संस्कृतसे अंगरेजी कदापि नहीं निकली है।

हमारी संस्कृत भाषा उन महात्माओंकी बनायी है जो भाषा विज्ञानके पार दर्शी थे। इसीसे यह सर्व्वाङ्ग सुन्दर है। वर्ण, मात्रादि

भाषाके जितने अङ्ग हैं, वह सब इसमें पूर्ण रूपसे हैं। अपूर्णताकी तो इसमें गन्ध तक नहीं है। इसका व्याकरण पूर्ण और नियम सुदृढ़ हैं ऐसे सुदृढ़ कि, जिन्हें तोड़नेका कोई साहस नहीं कर सकता है। क्या अंगरेजीमें भी ऐसा कोई पक्का नियम है? कदापि नहीं। अंगरेजी भाषामें नियम है और न व्याकरण। है केवल गड़बड़ झाला। उच्चारण, शब्द रचना, वाक्य रचना, वर्णविन्यास (Spelling) आदिकी विभिन्नता ही इसका प्रमाण है।

संस्कृतकी शिक्षा प्रणाली वैज्ञानिक और नियमानुकूल है परन्तु अंगरेजीकी ठीक इसके विपरीत है। इसीलिये अंगरेजी शिक्षा हमारी मानसिक शक्तिपर व्याघात पहुँचानेके सिवा और कुछ नहीं करती है। अंगरेजी पढ़ना अपना शरीर नष्ट करना है। स्वभावके विरुद्ध आचरण करनेका यही फल है। जिन्हें इस बातका विश्वास न हो वह आँखें खोलकर अंगरेजी शिक्षित समाजको देखलें। उनमें किसीकी आँखें खराब होगयी हैं तो किसीका हाजमा बिगड़ गया है; किसीके मन्दाग्नि है तो किसीके और कुछ। मतलब यह कि, प्रायः सबही कृश और बलहीन मिलेंगे। चर्मचक्षुओंपर चश्मा लगानेकी तो चाल्सी चल पड़ी है। इनमें कुछतो शौकसे आँखें रहते अन्धे बनते हैं पर बाकी अंगरेजी शिक्षाका ही फल भोगते हैं।

हमारी शिक्षा वैज्ञानिक कैसे है, यहतो संस्कृत और अंगरेजीकी वर्णमालाएँ मिलाकर देखनेसे ही मालूम हो जायगा। आपको संस्कृतकी वर्णमाला पूर्ण और अंगरेजीकी अपूर्ण मिलेगी। संस्कृतके अक्षर सीधेसादे और पूरे हैं। प्रत्येक अक्षरकी एक विशेष ध्वनि है। जैसी ध्वनि है अक्षर भी वैसाही है। अहा! जरा देखिये तो सही कि, यह अक्षर कैसी सुन्दरता और नियमसे बनाये गये हैं। व्यञ्जन पाँच वर्गोंमें विभक्त हैं क, च, ट, त और प यही पाँच वर्ग हैं। कवर्गका उच्चारण जिह्वाके मूलसे होता है अर्थात् कण्ठसे च वर्गका तालूसे होता है। यह स्थान कण्ठसे जरा आगे है। ट वर्गका मूर्द्धासे। यह तालूके जरा आगे है त वर्गका दाँतोंसे और प वर्गका होठोंसे होता है। यह स्थान भी क्रमशः आगे बढ़ते आये हैं। इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके अक्षर क्रमानुसार रखे गये हैं। स्वरोंको भी देख लीजिये। उच्चारणके अनुसार इनका भी क्रम है। अब जरा अंगरेजी अक्षरोंकी कथा सुन लीजिये वह पूरे हैं या अधूरे यह मैं कुछ न कहूँगा। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि, उसमें त वर्ग नहीं है। वहाँ एकही अक्षरको कई अक्षरोंके काम करने पड़ते हैं। अब इसीसे आपको जो कुछ समझना हो, समझलें। कई अक्षरोंकी ध्वनि अस्पष्ट और गड़बड़ है। I, U, Y, W, X, V, Z, इसके नमूने हैं। आपही कहिये, इनके उच्चारणमें भला कौनसा नियम है? क्रम भी "तथैवच" है। व्यञ्जनोंका उच्चारण और भी गजब ढाहता है। हमारे यहाँ प्रत्येक व्यञ्जनके अन्तमें अ है पर अंगरेजीमें इसका कोई नियम नहीं है। किसीके आगे A (ए) है तो किसीके पीछे E (ई) है। अक्षरोंका क्रम भी माशे अल्लाह है! "अ" का पता ही नहीं और (A) आ बैठा है। न E (ई) का ठिकाना और न ब का, पर A (ए) के बाद B (बी) विराज रही हैं। अगर कोई पूछ बैठे कि, यह B (बी) कहाँ से आ टपकी तो अंगरेजीवाले क्या जवाब देंगे? यह सब कोई जानते और मानते हैं कि, स्वरकी सहायता बिना व्यञ्जनका उच्चारण नहीं हो सकता। E (ई) की सृष्टि अभी हुई नहीं और न ब का ही जन्म हुआ फिर इन दोनोंका योग कैसे होगया? क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है? W (डबल्यु) कभी स्वर और कभी व्यञ्जन माना जाता है। इसके व्यञ्जन होनेमें तो कुछ सन्देह नहीं

पर यह स्वर कैसे होगया यही आश्चर्य है। एक विचित्र बात और भी है। इसका नाम ती है डबल्यु यानी दो यु। पर ई (E) के साथ इसका संयोग होते ही यह "वी" (We) होजाता है। U, S तो "अस" होता है फिर डबल्यु, ई (W, E) 'वी' कैसे होगयी? इसे तो 'ई' होना चाहिये था। और, हमारे अक्षरोंमें यह सब दोष नहीं हैं। यह सरल हैं। इन्हें एक बच्चा भी अनायास सीख सकता है। क्योंकि यह वैज्ञानिक रीतिसे बनाये गये हैं। इसीसे इनमें सरलता आगयी है। सरलता-का ही नाम विज्ञान है।

अब तनिक अंगरेजी शब्दोंका मुलाहजा कीजिये। एकही शब्दमें कई प्रकारकी ध्वनियाँ होती हैं। नमूनेके लिये Foreigner हाजिर है। इसमें चार स्वर हैं। इन चारोंके उच्चारणकी ओर ध्यान दीजिये। वर्णमालामें उनका जो उच्चारण है यहाँ उससे बिलकुल विलक्षण है। एक व्यञ्जन-का तो उच्चारण ही लोप है। कहिये कैसी अद्भुत भाषा है? भला ऐसी भाषाके अध्ययनमें अपना समय लोग क्यों नष्ट करते हैं? अंगरेजी भाषामें जो शब्द लैटिन या ग्रीक भाषाओंसे आये हैं, उनमें उपसर्ग और प्रत्यय (Prefixes and suffixes) लगते हैं और उनका विशेष अर्थ धातुओंके अनुसार हमारी भाषाकी तरह नियमसे होता है। पर अंगरेजी (Anglo saxon) के जो विशुद्ध शब्द हैं, उनके बारेमें कुछ मत पूछिये। उनकी बनावटमें बड़ा गड़बड़ाध्याय है। नियमका तो वहाँ नियम नहीं है और न व्युत्पत्तिका वहाँ ठिकाना है। मनमानी घरजानी है। अंगरेजी भाषाके विशुद्ध शब्द (Strong) बलवान कह-लाते हैं। पर हैं वह नियम विरुद्ध। जो नियमबद्ध हैं उनका नाम है Weak-दुर्बल। नियम विरु-द्धताके माने बलवत्ता और नियमबद्धताके माने दुर्बलता है। भाव प्रकाश करनेका कैसा अच्छा ढंग है!

जहाँ भावका अभाव है वहाँ शब्दोंका भी है। अंगरेजी भाषा पहिले नितान्त दरिद्र थी। इसीसे अन्य भाषाओंके शब्दोंसे उसे अपना पेट भरना पड़ा है। संसारमें आर्य्य या अनार्य्य ऐसी कोई भाषा नहीं, जिससे इसने ग्रहण न लिया हो। पर इसमें भी बड़ी चालाकी है। अन्य भाषाओंके शब्द इस तरह तोड़े फोड़े और मरोड़े गये हैं कि, उनके असली रूपका पता लगाना कठिन होगया है। उदाहरणके लिये Orange सामने है। कहिये इसका मूलरूप क्या है? मैं समझता हूँ, नारंगीने ही Orange का रूप धारण किया है।

अब इसके रूपान्तरकी रामकहानी भी जरा सुन लीजिये। किसी चतुर अंगरेजके हाथ एक नारंगी लगी। उसने अपनी भाषामें उसे A norangi लिखा। कुछ दिनोंके बाद a noran-gi का N (एन) A (ए) के साथ जामिला। तब a norangi की an orangi बन गयी। फिर घिस जानेसे i (आई) की e (ई) होगयी। बस a norangi का खासा An orange बनगया। कहिये कैसा जादू है। इसी तरह और शब्दोंका भी काया कल्प हुआ है। लेख बढ़जानेके भयसे केवल एकही उदाहरण दिया है। इस काया कल्प की चाल हिन्दी, बंगलादि भारतीय भाषाओंमें भी है पर देववाणी संस्कृतमें नहीं है।

अब जरा अंगरेजी व्याकरणकी लीला देखिये! एक वचनसे बहुवचन बनानेका कोई पक्का नियम ही नहीं है। Loaf का बहु वचन है Loaves है पर Hoof का बहु वचन Hoofs। man का men; Boy का Boys; mouse का mice और Cow का Kine होता है।

लिङ्ग प्रकरणमें भी वही गड़बड़ झाला है। असली अंगरेजी पुलिङ्ग शब्दोंके स्त्रीलिङ्ग बनानेमें विकार नहीं होता है। उनका रूपान्तर होजाता है। जैसे Bachelor = Maid; Hart = Roe;

King = Queen; आदि। पर Emperor = Empress; actor = actress आदिको भी मुलाहजा कर लीजिये। यह विदेशी शब्द हैं। अंगरेजी वैयाकरणोंकी प्रतिभा स्त्रीलिङ्गके लिये नये नये शब्द गढ़ते गढ़ते जब कुण्ठित होगयी तब पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गका भेद बतानेके लिये उन्होंने शब्दोंमें He, she; man, maid; cock, Hen जोड़देनेकी प्रथा निकाली। जैसे He-goat, she-goat; man-servant, maid-servant; cock-sparrow, Hen-sparrow आदि।

उच्चारण और वर्ण विन्यास (Pronounciation and spelling) की दशा औरभी हास्य जनक है। इनके लिये न कोई नियम है और न कायदा। केवल बाबा वचनका भरोसा है। जैसा सुनो वैसा कहो। भला इस जबरदस्तीका भी कुछ ठिकाना है! जी + ओ = गो (go) और डी + ओ=डू (do), एच + ई + आर + ई = हीअर (Here), टी + एच + ई+आर+ई = देअर (There); डी+डब्लई+आर = डीअर (Deer) और डब्लयु + डब्लई+के= वीक (Week); डी+ई+ए+आर = डीअर (Dear) आदिमें क्या कोई नियम है? "जी" के साथ तो 'ओ' का ओ बनारहा पर 'डी' के साथ 'ऊ' होगया। एच + ई + आर + ई = here (हीअर) होता है तो टी+एच+ई + आर + ई=दीअर होना चाहिये। जब w, e, a, k वीक होता है तब d, e, a, r डीअर न होकर डीअर क्यों हुआ? w, e, e, k वीक होता है तो d, e, e, r डीर होना उचित है। पर क्यों ऐसा नहीं हुआ यह भगवान ही जाने। c सी के उच्चारणमें भी बड़ी आफत है। कहीं तो वह 'क' (k) का काम देती है और कहीं 'स' का। जैसे Circumference इस एकही शब्दमें "सी" (c) ने दोरूप धारण किये हैं। अगर कहा जाय कि, शब्दके आरंभमें "सी" (c) का उच्चारण 'स' सा और मध्यमें 'क' सा होता है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि हमारे Calcutta में ऐसा नहीं होता है। यहां आदि और मध्य दोनों जगह 'सी' (c) ने 'क' का रूप धारण किया है। एकबात और है। जब कलकत्ते और कानपुरमें "सी" (c) का साम्राज्य है तब कालका और काल्पी पर "के" (k) की कृपा क्यों हुई? क्या कोई इसका कारण कथन कर सकता है? अच्छा आगे चलिये। पी + यु + टी = पुट (Put) और बी + यु + टी = बट (But), पी + आई + जी=पिग (Pig), एस + आई+आर=सर (Sir) आदि शब्द तो अंगरेजी भाषाकी त्रुटियां डंकेकी चोट बता रहे हैं। कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके सब अक्षरोंका उच्चारण ही नहीं होता है। जैसे G, N, a, t=नैट, P, S, E, U, D, O, N, Y, M=सुडोनियम, P, S, A, L, M= साम, K, N, O, W, L, E, S=नोल्स आदि। नेट (gnat) में 'जी' (G) का सुडोनियम, (Pseudonym) में 'पी' (P) और 'ई' (E) का, साम (Psalm) में "पी" (P) और 'एल' (L) का उच्चारण नहीं होता है। नोल्स (Knowles) में 'के' (K) काली करवट लेगया है, डबल्यु (W) डर गया है और 'ई' (E) बेचारी बे मौत मरगयी है। यह वही नोल्स हैं जो भारतमें रोमन लिपि चलाने की चेष्टा कररहे हैं। नोल्सके नामका रोमनमें यह परिणाम है तो उसका काम कैसा है, यह आप स्वयं सोचलें। जब इन अक्षरोंका उच्चारण ही नहीं होता है, तब इन्हें इन शब्दोंमें मिलाकर लिखनेकी जरूरत ही क्या थी? कुछ ऐसेभी शब्द हैं जो लिखे जाते कुछ और पढ़े जाते कुछ। जैसे Lieutinant आदि। यह लिखा जाता है लिउटिनेन्ट पर पढ़ा जाता है लेफ्टिनेन्ट। अगर कोई इन बातोंका कारण पूछे तो अंगरेजीके वैयाकरणों-से चुप रहनेके सिवा और कुछ जवाब देते न बनेगा। ऐसे एक या दो नहीं सैकड़ों शब्द मिलेंगे मैंने तो उदाहरणके लिये केवल दो चार शब्द लिखदिये हैं।

अच्छा अब शब्द योजनाकी भी चातुरी देख लीजिये । A flying fox and running water का मतलब तो आपने समझ ही लिया होगा पर a walking stick and a drinking cup का क्या मतलब है ? अगर flying fox का अर्थ भागती हुई लोमड़ी और running water का बहता पानी है तो Walking stick का अर्थ टहलती हुई छड़ी और drinking cup का पीता हुआ प्याला होना चाहिये पर होता है टहलनेकी छड़ी और पीनेका प्याला । इस एकही प्रकारकी शब्द योजनामें दो प्रकारके अर्थ क्यों ? क्या इसका कुछ कारण है ?

इन कई शताब्दियोंमें अंगरेजी भाषा बहुत परिवर्तित हुई है । यह भी ध्यान देने योग्य बात है चौसरकी अंगरेजी आजकल की अंगरेजी से बिल्कुल विभिन्न है । शेक्सपीयरकी अंगरेजी समझ लेना सहज नहीं है । लोग कहते हैं कि वह व्याकरण की परवाह नहीं करता था । उस समय व्याकरण की ही नहीं था तो वह परवा किस की करता ! जो हो, उसके भाव सुन्दर और ऊंचे थे इसमें सन्देह नहीं ।

प्रियसज्जनों ! इन कई उदाहरणोंसे आपको मालूम होगया होगा कि अंगरेजी कैसी भाषा है । इसमें न व्याकरण है, न नियम है और न कायदा है । अगर कुछ है, तो वह अक्षरों का अभाव, वर्णविन्यासका व्यतिक्रम और उच्चारणकी उच्छृङ्खलता है । यह भी मैं पहले कह चुका हूँ । इन कारणोंसे ही यह भारतवर्षके उपयुक्त भाषा नहीं है । इसे पढ़ना अपने समय और शक्तिका सत्यानास करना है । केवल यही नहीं, इससे स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है । अंगरेजी भाषा हमारी मानसिक शक्तिको दुर्बल कर डालती है । इससे हमारी सच्ची उन्नति नहीं होती है उलटे उसमें रुकावट पहुंचती है । बालकोंको मातृभाषामें गणित, विज्ञान, भूगोल और इतिहास पढ़ानेसे वह बहुत जल्द समझ लेते हैं । पर वही चीजें अंगरेजीमें पढ़ानेसे कठिन होजाती हैं । लड़के उन्हें जल्द नहीं समझ सकते हैं । किसी लड़केसे मौसमी हवा Monsoon के बारेमें पूछिये तो वह अंगरेजीमें ठीक ठीक उत्तर देदेगा पर हिन्दीमें समझाने कहिये तो उसको नानी मर जायगी । क्योंकि उसने स्वयं समझा नहीं है । तोतेकी तरह केवल रट लिया है ।

जो विषय कालेजके छात्र भी नहीं समझ सकते वह मातृभाषामें बतानेसे हमारे छोटे छोटे बच्चे अनायास समझ लेते हैं । हम भारत-वासियोंके लिये अंगरेजी जैसी दुरूह भाषामें किसी विषयको सीखना बड़ी कठिनताका काम है । दुधमुहें बच्चोंको विदेशी भाषा पढ़नेके लिये लाचार करना बड़ा अन्याय है । इसमें भी दोष हमारा ही है । आजकल हमारी अवस्था ऐसी होरही है उसमें हम अंगरेजी पढ़े बिना कुछ नहीं कर सकते । जोकुछ पाश्चात्य विज्ञान और शिल्पकला हमने सीखी है वह इन्ही अंगरेजोंके अनुग्रहसे । अतएव हमें इनका कृतज्ञ होना चाहिये । अभी हमें बहुत कुछ सीखना बाकी है । अंगरेजी भाषा जरूर सीखनी चाहिये पर उसके अध्ययन (study) की आवश्यकता नहीं । क्योंकि इसके अध्ययनसे विशेष कुछ लाभ नहीं । भाषा तत्वविद् भलेही इसका अध्ययन करें पर सब लोगोंको इसके लिये परिश्रम करनेकी क्या जरूरत है ? इसमें जो अच्छे विषय हैं, उन्हें सीखना ही हमारा उद्देश्य है, कुछ भाषाकी चोरी किया नहीं । फिर क्यों हम अपना समय, स्वास्थ्य और शक्ति इसके अध्ययनमें नष्ट करें ? इससे क्या लाभ होगा ? मैं जानता हूं, ऐसे मनुष्य भी हैं जो अंगरेजी भाषाकी बारीकियाँ और खूबियाँ जाननेके लिये अपना सारा समय और सारी शक्ति लगा देते हैं । वह केवल नाम पैदा करनेके लिये ऐसा

करते हैं। क्या वह अपने इस परिश्रमसे अंगरेजी भाषाको उन्नत करदेंगे ? कभी नहीं। जो ऐसा विचारते हैं वह भूलते हैं। अंगरेजीकी उन्नतिके लिये अंगरेजोंको ही छोड़ दीजिये। आप अपना घर सम्हालिये। उधरकी अपेक्षा इधर आपको नाम पानेका ज्यादा मौका है। जोकुछ थोड़ासा उत्साह आपके पास है उसे फालतू कामोंमें व्यर्थ नष्ट मत कर दीजिये।

अब प्रश्न यह है कि, अंगरेजी भाषा हमें सीखनी है तो कौनसी भाषा सीखनी चाहिये ? चौसरकी या शेक्सपीयरकी, जौनसनकी या मेकौलेकी, अंगरेजी कवियोंकी या पंडिताभिमानियोंकी, नगर निवासियोंकी या देहाती गँवारोंकी ? मैं कहूँगा इनमेंसे किसीकी भी नहीं।

हमें हेनबी (Hanby), डारविन (Darwin) और स्पेनसर (Spencer) की भाषा सीखनी चाहिये। विज्ञानी, शिल्पी, और व्यवसायियों (Business man) की भाषा सीखनी चाहिये। यह बड़े दुःखकी बात है कि, हमारी युनिवर्सिटियाँ बड़ी निर्दयतासे अंगरेजी भाषा अध्ययन करनेके लिये हमपर दवाव डालती हैं। इसीसे प्रतिवर्ष सैकड़े पीछे ४०-५० लड़के अंगरेजीमें फेल होते हैं। यदि शेक्सपीअर और मिलटन स्वयं आते तो वह भी इन परीक्षाओंमें अवश्य फेल होते। फिर बेचारे भारतवासियोंकी गिनती ही क्या है ?

किसी भाषाके सीखनेमें समय लगाना उसे वृथा खोना है। भाषाका ज्ञान तो विषयके साथ साथ होता है। जो विषयके बिना भाषा सीखते हैं, वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। हक्सली साहब (Huxley) की राय है कि भाषा सीखनेमें समय नष्ट करना उचित नहीं। वह कहते हैं कि, लड़कियाँ कपड़े पहननेमें जैसे समय खराब करती हैं वैसे ही लड़के भाषा सीखनेमें करते हैं। बुरी आदतें तुरन्त छुड़ानी चाहिये, पर अफसोस ! इस अभागे देशकी दशा ही विचित्र है। युनिवर्सिटियाँ हमें Classical English अर्थात् उच्चश्रेणीकी प्राचीन अंगरेजी पढ़ानेके लिये कसम खाकर बैठी हैं। नतीजा चाहे कुछभी हो पर वह तो जबरदस्ती सड़ी गली चीजें हमारे गलेमें ठूँसेंगी।

युनिवर्सिटियाँ एक ऐसी भाषा सिखलावेंगी जिसका न कुछ मानी है और न मतलब। उससे हमारी मानसिक शक्तिपर इतना जोर पहुँचता है कि, वह नाश न होती हो तो बिगड़ जरूर जाती है। तोतेकी तरह हम रटाये जाते हैं और उसी तरह हम बोलते भी हैं। लड़कोंको अंगरेजी मुहावरे (Idioms) के पीछे हैरान न होना चाहिये क्योंकि अधिकांश मुहावरे बे मतलब और बेमानी हैं। पर वह बेचारे करें क्या ? उनके गुरु तो नहीं मानेंगे। वह तो परीक्षामें उत्तीर्ण करानेके हेतु खोज खोजकर Idioms रटाते हैं। मैं जब मुँगेरके जिला स्कूलमें पढ़ता था तब वहाँके एक मास्टर को भी Idioms रटानेकी बीमारी थी। उनकी राय थी कि, Idioms याद किये बिना अच्छी अंगरेजी नहीं आती है। इसीसे वह एक घंटा रोज Idioms रटातेथे। आनन्दकी बात है कि मैं उनके पंजेसे निकल गया हूँ। और सकुशल निकला हूँ। मेरे कई सहपाठी तो बिलकुल बेकाम होगये हैं। उन लोगोंने परीक्षाएँ तो बहुत पास कीं पर शारीरिक बल उनमें कुछ नहीं है। मेरे साथ दो मुसलमान लड़के पढ़ते थे। वही (First) और सेकेन्ड (Second) होते थे। मेरा नम्बर बराबर तीसरा रहता था। यह अवस्था पाँचवें दरजेसे लेकर एनट्रेंस क्लासतक रही। वह दोनों मुझसे बुद्धिमें तीव्र नहीं थे पर परिश्रमी बड़े भारी थे। जो फर्स्ट होता था वह किताबका कीड़ा होगया था। दिन रातमें कुल तीनचार घंटे सोता था। दोनों ही दुबले पतले और कमजोर थे। जब कभी फर्स्ट और सेकेन्ड होनेके

कारण वह शोखी करते तो मैं कहता कि "आओ कुश्ती लड़लो।" इसपर हँसकर वे चुप होजाते थे। जो फर्स्ट रहता था वह एन्ट्रेंससे बी० ए० तक बराबर फर्स्ट डिवीजनमें पास होता गया। एन्ट्रेंस तथा एफ० ए० में उसे छात्र वृत्ति (Scholarship) भी मिली थी। उस समय इन परीक्षाओंके यही नाम थे। बी०ए० पास करने पर वह मुझसे मिला था। वह बहुत कमजोर होगया था। उसके गलेसे अकसर खून गिरता था। पीछे वह विलायत चलागया। अब मालूम नहीं उसकी क्या दशा है और वह कहाँ है। जो सेकण्ड होता था वह अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि, अब दुनियाँमें नहीं है। एन्ट्रेंस और एफ० ए० की परीक्षाओंमें तो वह पहली बार ही उत्तीर्ण होगया था पर बी० ए० में आकर अटक गया। रटनेवालोंकी प्रायः यही दशा होती है। तीन चार बार फेल होकर वह पास हुआ सही पर उसकी तनदुरुस्ती पहिले ही जवाब देचुकी थी। आखिर वह थोड़े ही दिनोंमें चलबसा! वहीं एक बी० ए०पास मास्टर थे जो बहुत अच्छी अंगरेजी लिखते थे पर उन्हें मैंने नीरोग कभी नहीं देखा। एक न एक रोग उन्हें घेरे ही रहता था। छात्रावस्थामें अधिक श्रम करनेके कारण ही उनकी ऐसी दशा थी! भागलपुरमें एक वकील थे। उनकी अच्छी चलती बनती थी। वह राय बहादुर भी थे। पर सदा बीमार रहते थे। बद-हजमीके डरसे कभी भरपेट नहीं खाते थे। उन्हों ने अपने रसोइयेको जायकेदार चिरपरी चीजें बनाने के लिये मना कर दिया था। अच्छी चीजें बननेसे ज्यादा खा लेते थे पर पीछे बीमार हो जाते थे। इसीलिये उन्होंने ऐसा नियम बना रखा था। न स्वादिष्ट भोजन बनेगा और न ज्यादा खाकर बीमार पड़ेंगे। ऐसे एक नहीं अनेक उदा-हरण दिये जा सकते हैं। पर विस्तार भयसे यहीं बस करता हूं। देखिये क[illegible]

हमारी युनिवर्सिटियाँ हैं। इनके मारे हमारे बच्चे दिन पर दिन दबते चले जाते हैं। जब तक इनका सुधार न होगा तब तक उन्नतिका नाम लेनाही वृथा है। इन युनिवर्सिटियोंकी तरफ देखकर जब अपने होनहार बच्चोंकी ओर देखता हूं तो होश हवाश उड़ जाते हैं। अंगरेजी पढ़ना ही बुरा नहीं उसके पढ़ानेकी प्रणाली भी बुरी है। इस प्रणाली-से मनुष्यकी मानसिक शक्ति बढ़नेके बदले और घट जाती है। पढ़नेवालोंपर पुस्तकोंका इतना बोझ लाद दिया जाता है कि वह वहीं दब जाते हैं। वह शेर होनेके बदले गीदड़ हो जाते हैं। स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र पं० प्रताप नारायण मिश्र, पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि जिन सज्जनोंका स्मरण हम श्रद्धा और प्रेमसे करते हैं वह अगर विश्वविद्यालयका मुख देखलेते तो शायद आज मुझे उनके नामलेनेका अवसर हाथ न लगता। यह लेख हिन्दीका है इससे मैंने केवल हिन्दीके ही लेखकों और कवियोंके नाम लिये हैं। विस्तार भयसे भारतकी अन्यान्य भाषाओंके लेखकोंके नाम छोड़दिये। यह लोग पहली ही मंजिलसे ठोकरखाकर लौट आये, इसीसे बचगये। मेरे कहनेका यह तात्पर्य्य नहीं कि, विश्वविद्यालयके सब ही कृतविद्य निकम्मे होते हैं। पर इतना अवश्य कहूँगा कि, उनकी संख्या अधिक है।

हमारा प्रधान उद्देश्य अंगरेजी भाषा सीखना होना चाहिये उसका अध्ययन करना नहीं। अंगरेजी कविता सबको पढ़नेकी जरूरत ही क्या है? क्या हमारी भाषामें कविता नहीं है? हमारी भाषाका एक एक शब्द विदेशी भाषाकी बड़ी बड़ी कविताओंके तुल्य है। हमारे यहाँ आलंका-रिकभाव इतने हैं कि वह कल्पों तक चलेंगे। काव्योंकी आवश्यकता उन्हें ही होती है जो अपनी अत्यधिक चंचल प्रकृतिको शान्त और [illegible]ना चाहते हैं। हम [illegible]गोंको तो

काव्यकी अधिकताने बिलकुल ढीला और प्राण-हीन बना डाला है। हमें अगर कुछ जरूरत है तो गद्यरचना की। वह शिल्प और विज्ञानके रूपमें होनी चाहिये। सरल भाषामें शिल्प, विज्ञान, इतिहास, जीवन चरित आदिकी पुस्तकें हमें पढ़ायी जानी चाहिये। हम अंगरेजी साहित्य नहीं चाहते और न हमें उससे कुछ मतलब है।

यदि अंगरेजी साहित्य पढ़ना ही है तो हमें एडीसन (Addison) और गोल्डस्मिथ (Goldsmith) जैसोंकी रचनाएँ पढ़नी चाहिये। जोनसन (Johnson) मेकौले (Macaulay) स्माइल्स (Smiles) और कारलाइल (Carlyle) की नहीं। पहिले दोनोंने पाण्डित्य दिखाने-के लिये शब्दाडम्बर तो बहुत किया है पर उनमें कुछ सार नहीं है। पिछले दोनोंमें कुछ सार है तो वह कष्ट कल्पित है। यदि किसीको अंगरेजी साहित्य सीखनेकी अभिरुचि है तो उसके लिये अलग क्लास होना चाहिये। सबको इसके सीखनेके हेतु विवश करना उचित नहीं। केवल अंगरेजी भाषा सीखनेवालोंके लिये शब्दोंकी व्युत्पत्ति, धातु, अर्थ, व्यवहारादि आरम्भमें व्याकरणसे सीखनेकी जरूरत नहीं है। कानोंसे सुन और आँखोंसे देखकर सीखना चाहिये। यहाँके विश्वविद्यालयोंमें भाषा सिखानेका ढंग बिलकुल बेहूदा है। यहाँ छः वर्षोंमें भाषाका ज्ञान होता है। वह भी पूरा नहीं। पर उक्त ढंगसे छः महीनेमें ही काम बन जाता है। एक जर्मनने फरासीसी भाषा सीखने-के लिये उस भाषाका व्याकरण घोंट डाला, कोश रट डाला, स्कूलमें जाकर लेक्चर सुन डाला, पर फल कुछ न हुआ। उसकी एक साल की मिहनत योंही गयी। इसके बाद वह सब किताबें फेंककर फरासीसी लड़कोंकी संगत करने लगा। बस छः महीनेमें ही वह फरासीसी भाषामें बातचीत करने लग गया! मद्रासके परिया किसी स्कूलमें पढ़ने नहीं जाते पर अङ्गरेजोंके साथ रह कर मजेमें अंगरेजी बोललेते हैं। किसी देशकी भाषा सीखनेके लिये पहले कानों और आँखोंका सहारा लीजिये पीछे पुस्तकें पढ़िये। बस आप वह भाषा उस देशके निवासियोंकी तरह बोलने और लिखने लगेंगे। थोड़े ही दिनोंमें आप उसमें पारङ्गत हो जायँगे। देखिये इस ढंगसे आपका कितना समय बचता है।

अगर अंगरेजी भाषाका लेहजा सीखना हो तो अंगरेजोंकी संगत कीजिये और उनकी बातचीत ध्यानसे सुनिये। बोलनेके समय उनके मुखकी ओर ध्यानसे देखिये और उनकी जीभ और होठोंकी गति भलीभाँति अवलोकन कीजिये। उच्चारण सीखनेका यह बहुत सीधा उपाय है। पर प्रश्न यह है कि, हम इतना श्रम क्यों करें? इससे फायदा? कुछ भी नहीं। भारतवासियोंको अंगरेजीके वास्ते इतना श्रम न करना चाहिये। उनके लिये यह अस्वाभाविक काम है। शीतप्रधान देशवालोंकी बनावट ऊष्णप्रधान देशवालोंसे नहीं मिलती है। सर्दी उत्तेजित करती और गर्मी दबाती है। सर्दीसे फुर्ती आती है और गर्मीसे सुस्ती। सर्दी नसें जकड़ देती है और गर्मी ढीली करती है। जब नसें तनी रहती हैं तब आवाज ऊँची, तीखी और कर्कस, निकलती है और ढीली रहनेसे धीमी, नीची, और भारी। पट्ठेकी तरह नसें भी गर्म मुल्कोंमें ढीली पड़जाती हैं। गर्म देशवालोंके चमड़े और होंठ सर्द मुल्कवालोंसे मोटे होते हैं। सीना तथा फेफड़ा छोटा होता है। जिनकी नसें मजबूत और तनी होती हैं उनकी आवाज स्वभावसे कर्कस और बेसुरी होती है पर जिनकी नसें ढीली हैं उनकी आवाज मीठी, सुरीली और धीमी होती है। हमारी वर्णमाला तथा शिक्षा प्रणाली ऐसी है कि, हम सब कुछ

उच्चारण कर सकते हैं। अंगरेजी भाषा अनगढ़, रूखी, कड़ी और नीरस है। पर हमारी भाषा कोमल मधुर, सहज और सरस है। यह पक्षपात नहीं, सत्य है। हम अंगरेजोंकी नकल कर सकते हैं पर इसकी जरूरत ही क्या है? क्या फरासीसी, इटालियन और जर्मन कभी नकल करते हैं? नहीं। फिर हम ही क्यों करें? जो कुछ हजम हो सके वही खाना अच्छा है। हम न भाषा ही हजम कर सकते हैं और न लेहजा ही। इतना सरतोड़ परिश्रम करनेपर भी अंगरेजोंकी तरह अंगरेजी लिखनेवाले भारतवर्षमें कितने हैं? मुश्किलसे एक दर्जन निकलेंगे जापानियोंकी तरफ देखिये! वह फ्रान्स, जरमनी और इङ्गलेंड जाकर भाषा सीखते हैं, अध्ययन (study) नहीं करते। भाषा सीखकर वहाँकी शिल्पकलाकी शिक्षा लाभ करते हैं। फिर अपने देशमें आकर देशवासियोंको अपनी भाषामें शिल्पकला सिखलाते हैं। इसीसे जापानी आसानीसे सब बातें सीख लेते हैं। अगर अंगरेजी या और किसी विदेशी भाषामें वह शिक्षा दीजाती तो जापानी कभी नहीं उन्नति कर सकते। उलटे उन्हें औंधे मुँह गिरना पड़ता। प्रायः एक शताब्दीसे हम इङ्गलेंडसे शिक्षा पारहे हैं। विज्ञान और शिल्पकी शिक्षा भी पचास सालसे मिलती है पर हम जहाँके तहाँ हैं। जापानने अल्प समयमें जितना सीख लिया है उसका सौवाँ हिस्सा भी हम इतने दिनोंमें क्यों नहीं सीख सके। इसका सबब यह है कि, हम सुमार्गसे नहीं चलते। हमारा समय भाषाके अध्ययनमें ही बीत जाता है। शिल्प और विज्ञान सीखनेकी नौबत ही नहीं आती है।

सचीसी बात यह है कि, जापानके हाथमें जो सब सुबीते और मौके हैं वह हमारे हाथमें नहीं हैं। अगर होते तो क्या हम कुछ नहीं कर दिखाते, जरूर कर दिखाते। जापानकी ओर देखते हैं तो लज्जासे गर्दन नीची होजाती है। हम जहाँके तहाँ खड़े हैं और वह सरपट भाग रहा है। हम दौड़ें कैसे? हमारे पैरोंमें तो जँजीर और सिर पर बोझ है। इङ्गलेंड पाश्चात्य विज्ञान सिखानेकी चेष्टा कर रहा है पर हम उससे लाभ उठानेमें असमर्थ हैं।

मैंने जो कुछ कहा उसका यह मतलब नहीं कि, आजही सब लड़के स्कूल कालेजोंसे नाम कटवालें और हम अंगरेजोका बहिष्कार करदें। मेरा कहना यही है कि, लोग आँखें मूँद कर अंगरेजी न पढ़ें और न उसके पीछे पागल होजायँ। बोलने चालने और लिखने पढ़ने योग्य अंगरेजी अवश्य सीखें क्योंकि यह राजभाषा है। इसके जाने बिना हम कोई काम आजकल नहीं कर सकते हैं। हाँ अध्ययन (study) को आवश्यकता नहीं। जो भाषाविद् होना चाहें वे कर सकते हैं। सबके लिये इसकी पाबन्दी न होनी चाहिये। मेरी तुच्छ सम्मति है कि, फ्रान्स, जर्मनी और इङ्गलेंडकी, इतिहास, जीवन चरित, विज्ञान और शिल्पकला सम्बन्धी अच्छी अच्छी पुस्तकोंका हिन्दीमें उल्था हो और वही पढ़ायी जायँ। विश्वविद्यालयोंमें अंगरेजी दूसरी भाषा हो और वह पसन्द पर रहे। उसके पढ़नेके लिये जबरदस्ती न कीजाय। जो जिस प्रान्त—का वासी है उसकी आरम्भिक शिक्षा तो उसी प्रान्तकी भाषामें हो पर साधारण शिक्षा हिन्दीमें हो क्योंकि यह राष्ट्रभाषा सिद्ध हो चुकी है।

हम हिन्दी भाषाभाषी हिन्दुओंका आशा भरोसा माननीय मालवीयजीके हिन्दू विश्व—विद्यालय पर था। उसके हिन्दीहीन होजानेसे हिन्दू हताश हो हिम्मत हार बैठे हैं। वहाँ अंगरेजीका अटल आधिपत्य अवलोकन कर सब लालसाओंपर पाला पड़ गया है। अब सम्मेलनको सचेष्ट हो सदुद्योग करना चाहिये जिससे हिन्दीमें हमारी शिक्षा हो। जब तक

मातृभाषामें हमारी शिक्षा न होगी तब तक हम कदापि उन्नति नहीं कर सकेंगे। उन्नतिका मूल मंत्र मातृभाषामें सब विषयोंकी शिक्षा है।

हिन्दीके विषयमें मेरा क्या सिद्धान्त है यह सुना कर इसे समाप्त करता हूँ।

बानी हिन्दी, भाषनकी महरानी ।
चन्द सूर तुलसीसे यामें, कवी भये लासानी ॥
दीन मलीन कहत जो याकौं, हैं सो अति अज्ञानी ।
या सम काव्य छन्द नहिं देख्यो, है दुनियाँ भर छानी ॥
का गिनती उरदू बंगलाकी, भरे अंगरेजिहु पानी ।
आजहुं याको सब जग बोलत, गोरे तुरुक जपानी ॥
है भारतकी भाषा निहचय, हिन्दी हिन्दुस्थानी ।
जगन्नाथ हिन्दी भाषाको, है सेवक अभिमानी ॥

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिके प्रसारके उपाय ।

लेखक—श्रीयुक्त पंडित भगवानदत्तजी सिरोठिया-राजनान्दगाँव ।

अब महाराष्ट्र, मदरास, बंगाल तथा पंजाब आदि प्रान्तोंके अग्रगण्य लोगोंने इस बातको स्वीकार कर लिया है कि सम्पूर्ण भारतवर्षके लिये राष्ट्र-भाषाकी आवश्यकता है। तथा समस्त देशमें जितनी भाषायें प्रचलित हैं उनमें सबसे सुलभ, सरल, अल्प-श्रमसाध्य सुन्दर और व्यापक ऐसी भाषा हिन्दी ही है कि जिसे राष्ट्रभाषा होनेका गौरव दिया जासकता है। सो इसी बातको यहाँ पर पुनः सप्रमाण स्थापित करनेकी आवश्यकता नहीं। बात कुछ ऐसी नहीं है कि इस आवश्य-कताको देशके लोग आज देखने लगे हैं या उसे दस पाँच वर्षके पूर्व स्थापित की हो। यह चर्चा पुरानी है। इस आवश्यकताको स्थापित हुए न्यूनाधिक २७ वर्ष होते हैं। सबके पहिले इसे देखने और उसके सिद्ध्यर्थ आन्दोलन करनेका यश हमारे इस मध्यप्रदेशको ही प्राप्त है। २८ वर्ष-के पूर्व हिन्दी भाषामें "राष्ट्र" शब्दका उपयोग लोग क्वचित्‌ही करते थे। तब हिन्दीके समा-चार पत्रोंमें "नेशनलकांग्रेस" शब्दका उलथा "जातीयमहासभा" होता था। जाति और राष्ट्रमें अंतर है। उस समय भी देशमें यत्र तत्र हिन्दी हितैषिणी सभायें थीं अवश्य, परन्तु वे सब अशृंखलाबद्ध थीं। काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा उस समय गर्भमें आरही थी। कौशल्याके गर्भधारण करनेपर जिस भाँति देवता लोग राम जन्मकी अगवानीके लिये टकटकी लगाये मार्ग प्रतीक्षा करने लगे थे:-

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा ।
हरि मारग चितवहिं रनधीरा ॥
गिरि कानन जँह तँह भरपूरी ।
रह निज निज अनीक रचि रूरी ॥

तुलसी ।

ठीक उसी भाँति ये सभायें भी सब सभाओंको शृंखलाबद्ध करनेहारी सभाके जन्मकी बाट जोहती थीं। ऐसे ही समयमें गर्भवती काशीने हमारी "नागरी प्रचारिणी सभा" प्रसव की।

मध्यप्रदेशके अन्तर्गत राजनांदगांव एक राजस्थान है। यहाँके उत्साही नरेशके आश्रयमें राजधानीके लोगोंने सन् १८८९ में एक "देश-हितकारिणी सभा" स्थापित की थी। ऐसे ही समय इस सभाके देश हितैषी लोगोंके मनमें हिन्दीको "राष्ट्रभाषा" बनानेकी कल्पना उठी। जिन लोगोंने यह कल्पना की थी उनमेंसे तबके पंडित और अबके रेवरेण्ड नारायणवामनतिलकका नाम उल्लेखनीय है। सभाने इस कल्पनाको देश-हितकारी और अत्यावश्यक समझ उस समयके हिन्दी और मराठीके पत्रोंमें तद्विषयक आन्दोलन आरंभकर दिया था। इस सभाने राष्ट्रभाषा प्रसारार्थ

जो जो आन्दोलन किये उनमें "हिन्दी-वक्तृत्वोत्तेजक समारम्भ" की स्थापना मुख्य थी जो कि मराठी वक्तृत्वोत्तेजक समारम्भके ढंगपर की गई थी। ये समारम्भ चार पाँच वर्ष तक अर्थात् अबतक संस्थानाधिप राजा बहादुर बलरामदास जी जिये-होते रहे। इनका फल भी बहुत अच्छा हुआ। महाराष्ट्र बन्धुओंने "राष्ट्रभाषा" के विषयको अपने हाथमें लिया। धूलिया-के सज्जनों ने "केसरी" में एक विज्ञापन दिया कि जो मनुष्य "सम्पूर्ण भारतवर्षके लिये एकभाषा" की आवश्यकतापर सर्वोत्तम पुस्तक लिखेगा उसे ३००) रु० पारितोषक दिये जायँगे। इस विषयपर कुछेक पुस्तकें तथा अनेकानेक लेख लिखे गये। इधर राजनांदगांववाले समारम्भमें भी महाराष्ट्रवक्ता बन्धुओंका अच्छा जमाव होने लगा। एक वर्ष तो लगभग २३ महाराष्ट्र जिगीषु एकत्र हुए थे। इनमें एक एम. ए., दो महाराष्ट्र पत्रोंके सम्पादक और एक दो महाराष्ट्र-साहित्यज्ञ थे। इसी समय (सन् १८९३ में) पूनेकी 'वक्तृत्वोत्तेजक' सभा-ने अपने भाषण समारम्भमें इस विषय (राष्ट्रभाषा) को लिया। और सबसे उत्तम वक्ता बम्बईके केशववामन पेठेको ४०) रु० पारितोषक दिये। इन पेठे महाशयने सप्रमाण सिद्ध किया था कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। इस बीचमें काशीमें नागरी-प्रचारिणी सभा अवतीर्ण हो चुकी थी। राजनांदगांवकी देश हितकारिणी सभाने चाहा कि अब एतद्विषयक आन्दोलनको हिन्दी भाषाको क्रीड़ा भूमि सँयुक्त प्रान्त अपने हाथमें लेवे। इस अभिप्रायसे सभाने संयुक्त प्रान्तके हिन्दीक्षेत्रसे कीर्तिपर चढ़े हुए हिन्दीके नामाङ्कित विद्वान वै० वा० घटिकाशतक, शता-वधानी, भारत रत्न, बिहारभूषण इत्यादि अनेक उपाधिधारी साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यासको इस समारम्भके सभापतिका आसन सुशोभित करनेके लिये निमंत्रित किया और आपने कृपाकर वह आसन सुशोभित भी किया। तबके विद्यार्थी और अबके बैरिष्टर पं० प्यारेलाल मिश्रको भी इस समारम्भके एक वर्षके विजयी जिगीषुओंमें सर्वोच्च पारितोषक पानेका गौरव प्राप्त हुआ था। इस भाँति चार पाँच वर्ष तक हिन्दीकी यत्किंचित् किन्तु अपूर्व सेवाकर राजा बहादुर बलरामदासके गोलोकवासके साथ ही यह समारम्भ समाधिस्त होगया। सारांश यह कि, हिन्दी ही भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा है इस बातको स्थापित हुए आज २७ वर्ष होते हैं। अब "राष्ट्रभाषा" और "राष्ट्रलिपी" के प्रसारार्थ मुझे जो जो बातें कहना है उन्हींको समास रूपमें कहता हूं।

ज्ञानके प्रसारार्थ तीन साधन आवश्यक माने-गये हैं अर्थात् (१) समाचारपत्र (२) पुस्तकालय और (३) वक्तृत्व। मेरे विचारमें भाषाके प्रसार-के लिये भी इन्हीं तीन साधनोंकी आवश्यकता है। मैं इन तीनोंमें प्रधानता "वक्तृत्व" को देता हूं। क्योंकि समाचारपत्र और पुस्तकालय हिन्दीके बोलनेहारोंकी सृष्टि नहीं कर सकते। जब बोलनेहारे किसी भाषाके यथेष्ट नहीं तो उस भाषाके समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ेगा कौन? "वक्तृत्व" ही इन बोलनेहारोंकी सृष्टि करेगा। बोलना आजानेपर लोग उस भाषाको पढ़ेंगे और पढ़नेपर पुस्तकें तथा समाचारपत्र बाँचेंगे। अतएव बोलनेवाले तैय्यार करनेके लिये वक्तृत्व समारम्भोंकी स्थापना आवश्यक है। इन समारम्भोंका हिन्दी जगतमें एकदम अभाव है। नाटकोंमें अभिनय द्वारा जो कार्य साधन होता है वही कार्य सुवक्ता अपनी वक्तृतासे साधता है। सुवक्ता अपने श्रोताओंको युक्तियों द्वारा अपने उद्देशमें तन्मय कर डालता है। कभी वह लोगोंको करुणारसमें डुबाकर रुलाता है। कभी हास्यरस-की वर्षाकर सबको हँसाताहै। वह कभी लोगोंके मन दयामें द्रवित करता है और कभी उन्हें महाक-ठोर पाषाण बनाता है। जयध्वनि, हर्षध्वनि,

करतलध्वनि, और धिक्कारध्वनिसे वह सभाको शोभित करता है । एक नामांकित आंग्लकवि कहता है:—

"वक्तृता जगतकी स्वामी है । सुवक्ता ही प्रत्येक दीर्घ आन्दोलनका अधिष्ठाता हुआ करता है । वही लोगोंमें देशभक्ति जागृत करता है । वही उनके शरीरोंको उत्साहसे ओतप्रोत भर देता है । वही लोगोंको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गपर लाता है । वही लोगोंकी धर्मपर श्रद्धा और अधर्मपर घृणा उत्पन्न करता है । वही लोगोंमें महत्वाकांक्षा उभाड़ता है और वही बड़ी बड़ी कठिनाइयोंको सहल करता है ।"

कहते हैं वारनहेस्टिंग्सपर दोषारोपण करते समय बर्कने जो कई दिनों तक भाषण किया था उससे पार्लिमेंटके अन्य श्रोताओंकी तो बात क्या-स्वयम अभियुक्त हेस्टिंग्स पानी पानी हो गया था और अपनेको धिक्कारता था । जगत हितैषी ब्राडला भी ऐसे ही असाधारण वक्ता थे । संप्रति हमारे यहाँ भारतवर्षमें विदुषी एनी बसन्त, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पं० बालगंगाधर तिलक भी ऐसे ही असाधारण वक्ता हैं । हिन्दीके सौभाग्यसे इस समयमें भी पं० दीनदयाल शर्मा और पं० मदनमोहनमालवीय हमारे संतोषके कारण हैं । परन्तु हिन्दी-भाषी वक्ताओंकी संख्या हमारे क्षेत्रमें यथेष्ट नहीं है । जरा सोचियेतो सही । यदि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पं० बालगंगाधर तिलक । विजयराघवाचार्य, विदुषी बसन्ती आदि सिद्धहस्त वक्ताओंमें हिन्दी बोलनेकी योग्यता होती तो हमारी सभाके उद्देशको सिद्धि "राष्ट्रभाषा" का प्रसार कितनी शीघ्रतासे हुआ होता । तथा अंततोगत्वा देशका कितना उपकार हुआ होता, क्योंकि देशमें एक "राष्ट्रत्व फैलानेके लिये जो चार बातें (१) एक-भाषा (२) एकधर्म (३) एकजाति (४) एक राज्य आवश्यक हैं उनमें राष्ट्रभाषा सर्वोपरि है । हमारा मत है कि हिन्दीमें मराठी भाषाके ढंगपर "हिन्दी-वक्तृत्व समागम" की रचनाहो और उनके द्वारा हिन्दीभाषा भाषियोंके अतिरिक्त-मुख्य कर महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, बंगाली, मंद्रासी, पंजाबी और काश्मीरी बंधु हिन्दी बोलनेमें जिगीषा कर सुवक्ता बनायें जावें । यही लोग सपाटेके साथ राष्ट्रभाषाका प्रसार करेंगे । (अप्रिय-सत्य कहनेके लिये क्षमा किया जाऊँ ।) हमारी अपेक्षा बंगाली, महाराष्ट्र, पंजाबी और मद्रासियोंमें द्विगुणित देशानुराग और उत्साह है । अथवा यों कहिये कि हमारे यहाँकी मनुष्य संख्यामें यदि प्रति सैकड़ा २५ देशानुरागी हैं तो इन प्रान्तोंमें ५० समझिये । बात केवल यह है कि इनके चित्तपर यह भाव उतारदेना चाहिये कि यह परमावश्यक देशोपकार और देशसेवा है । इससे शीघ्र देश-हित होगा । यदि ये लोग चारों दिशाओंसे इस उद्योगमें लग जावें तो हिन्दीके राष्ट्रभाषा बननेमें बहुत समय न लगेगा ।

अब प्रथम प्रश्न यह उठेगा कि इन समारम्भों-में जो तीन चार दिनका समय लगेगा सो कहाँसे आवेगा जबकि दिसंबरकी छुट्टियोंमें हमारे नेता नेशनलकांग्रेस, सामाजिक परिषद, औद्योगिक-सभा और अपनी अपनी जाति सुधारकी सभाओं-में लगे रहते हैं । ईस्टरमें प्रायः प्राविंशियल कान्फ़रेंस हुआ करती हैं तथा मुहर्रम आदिके दिनोंमें कोई न कोई ऐसाही काम हुआ करता है हमारा कथन है कि यदि इन छुट्टियोंके सिवाय दुर्गापूजा दीवालीकी अन्य कोई छुट्टियोंमें इनका होना सम्भव हो तो उस समय ये समारम्भ किये जायँ । यदि इन प्रसंगोंपर भी अवकाश न हो तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा नागरी-प्रचारिणी-सभा अपने वार्षिक अधिवेशनोंके साथ इनको करे । अर्थात् दिनको सभाका कार्य्य और रात्रिको तीन तीन घन्टे इन समारम्भोंका कार्य हुआ करे । इसमेंदो सुभीते होंगे अर्थात् एक तो जमाव अच्छा होगा और दूसरे लोगोंको सालमें दुबारा आने जानेका खर्चा और क्लेश न उठाना पड़ेगा ।

इन समारम्भोंमें वे ही विषय लिये जावेंगे जिनसे सभाके उद्देश्यकी पूर्ति हो। विवरणके लिये इस सभाके विषयोंकी सूची देखिये जिसमें २६ विषय अंकित हैं। यदि मेरी प्रार्थना में कुछ सार हो तो इन विषयोंके साथ दो एक विषय और जोड़ दिये जायँ अर्थात्:—

(१) शिक्षाखातेकी हिन्दी-पाठ्यपुस्तकोंके दोषोंका दिग्दर्शन और सुधारकी सम्मति।

(२) मध्यप्रदेशकी हिंदी-टेक्स्टबुक कमेटी-में हमारे प्रदेशके हिन्दी ज्ञाताओंको स्थान।

प्रत्येक वक्ताको अपने अपने व्याख्यानकी एक एक प्रति सभाके मंत्रीको देनेका नियम कर देनेसे प्रत्येक विषयपर साहित्य की अच्छी सामग्री भी मिला करेगी। अब सभा सर्वोत्तम व्याख्यानोंकी सामग्रीका उपयोग लेकर अपने पंडितों द्वारा सम्पादित करा पुस्तका-कार छपा लिया करे तो इनकी बिक्रीसे एक अच्छी रकम सभाको मिला करेगी। जिससे और नहीं तो निदान समारम्भका खर्चा तो निकला करेगा। इस भाँति "आमके आम और गुठलियोंके दाम" भी वसूल होंगे। हिंदी-वक्तृत्वोत्तेजक-समारम्भ" स्थापित करनेके प्रस्तावको यदि सभा स्वीकार करे तो फिर इस विषय सम्बन्धी अन्य छोटे छोटे ब्योरे जैसे :— परीक्षार्थियोंका चुनाव पारितोषकोंका विचार, परीक्षकोंकी नियुक्ति आदि बातें पीछेसे निश्चय हो जावेंगी।

राष्ट्रीय भाषाके प्रसारका दूसरा साधन "पुस्तकालय" है। पुस्तकालयोंमें रखनेके लिये हमें पुस्तकें चाहिये। हमारे सौभाग्यसे हिन्दी भाषाके भण्डारमें पद्यग्रंथोंकी कमी नहीं है। यदि कमी है तो गद्यग्रन्थों की। इनके लिखानेके लिये सभा उद्योग कर रही है सही परन्तु मन्द गति से। हमारे विचारमें आता है कि जिन विषयोंके ग्रन्थोंका हमारे यहाँ अभाव है उन विषयोंपर सुयोग्य लेखकोंको लिखनेके निमित्त उत्साहित करनेके लिये सभा प्रतिवर्ष ऊँचे पारितोषकोंके दिये जानेके विज्ञापन देवे। और ऐसे ग्रंथोंको स्वयम् प्रकाशित करे। ये ग्रंथ लाभके लिये न प्रकाशित किये जाँय किन्तु केवल लागत वसूल करनेके लिये। प्रकाशन कार्य ऐसी काट कसरके साथ हो कि जिसमें पुस्तकोंका मूल्य स्वल्प हो और गरीबसे गरीब हिन्दी रसिक उन्हें खरीद सकें और अपने यहाँ हिन्दी ग्रन्थोंका छोटासा पुस्तकालय रख सकें। हिन्दी ग्रंथ प्रकाशकोंकी संख्या उँगलियोंपर गिनने योग्य है। यह हमारा दुर्भाग्य है। मनुष्य संख्याकी प्राचीन रिपोर्टपरसे एक गणकने भिन्न भिन्न भाषा बोलनेहारोंकी संख्याका लेखा यों लगाया था। हिन्दी १० कोटि, बंगाली ४ कोटि, मराठी २ कोटि, गुजराती १ कोटि, पंजाबी व सिंधी २ कोटि, उड़िया ९३ लक्ष, तामिल १½ कोटि, तेलंगी २ कोटि, कानडी १ कोटि, मलयाली ६० लक्ष इतर भाषायें तीन कोटि २७ लक्ष, एकत्र मनुष्य संख्या २८ कोटि। गणक कहता है कि सिवाय इसके कि निखालिस हिन्दी बोलनेवाले १० कोटि हैं। १० कोटि लोग ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी न होने पर भी वे हिन्दी समझ लेते हैं और बोलभी सकते हैं। हिन्दीके लिये इससे अधिक सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है? इसीलिये तो "राष्ट्रभाषा" होनेका गौरव न्यायपूर्वक हिन्दीको प्राप्त हुआ है। यह हाल होकर दुख इस बातका है कि हिन्दीमें बंगाली, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंकी अपेक्षा ग्रंथ-प्रकाशकोंकी संख्या बहुत ही कम है। विस्मय इस बातका है कि जो थोड़े बहुत हैं भी वे सब हिन्दी-भाषा-भाषी नहीं। कुछेककी मातृभाषा भिन्न है। प्रश्न उठता है कि इन भिन्न भाषा-भाषियोंने हिन्दीको क्यों अपनाया? हमारे गुरुदेव कहा करतेथे कि यदि तुम शीघ्र और सर-लतापूर्वक ख्यात होना चाहो या व्यापार द्वारा

नफा उठाना चाहो तो भूल कर दीर्घ विद्वानोंके मध्य मत घुसना। यदि तुम अल्प विद्वानोंमें घुसागे तो "निरस्त पादपे देश एरंडोऽपिद्रुमायते" कहावतकी भाँति शीघ्र ख्यात और धनी हो जाओगे। इसी सिद्धान्तानुसार कुछेक दूरदर्शी हमारे भिन्न-भाषा-भाषी बन्धुओंने हिन्दीको अपनाया। बुन्देलखंडमें कहावत है कि "माता-से जो अधिक प्यार दिखावे सो पूतना"। स्मरण रहे कि कपटकलेवर दीर्घ कालतक नहीं छिपताः—

> कर कुवेश जग बंचक जेऊ।
> बेष प्रताप पूजियत तेऊ॥
> उघरहिं अन्त न होय निवाहू।
> कालनेमि जिमि रावन राहू॥
>
> तुलसी।

इन बन्धुओंने "केवल" शब्दका अमित उपयोग किया है। आपने देखा कि हिन्दी-संसार में अमुक लेखकका नाम ख्यातिपर चढ़ा है चट आपने उसे थोड़ा बहुत पुरस्कार देकर एक अपूर्व पुस्तक धर लिखाई। थोड़ा बहुत इसलिये क्योंकि "रांड़, मांड़ में ही खुश" है। हमारी हिन्दीभाषाके विद्वान-पुस्तक-प्रणेता प्रायः निर्धन हैं। उनमें अपनी लागतसे पुस्तकें छपाकर प्रकाश करनेकी सामर्थ्य नहीं। इसी कारण वे अल्प-संतोषी होरहे हैं। खैर। इनसे लिखाई हुई पुस्तकको हमारे प्रकाशक महाशयने बड़ी चटक मटकके साथ छापकर प्रकाशित किया। परंतु दाम विचारोंने जगोपकारार्थ हिन्दीके हितार्थ और सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये "केवल" आठ रुपये रक्खे। धनिक बंधुओंने हिन्दी जगत में एक अपूर्व वस्तु देख धड़ाधड़ उसे खरीदी। अब प्रकाशक महाशयने देखा कि अब सब धनी निचोड़ लिये गये। किन्तु औसत दर्जेके लोग बचे हैं तो आपने उनके लाभार्थ आठ-से घटाकर दाम ५) किये परंतु यह "केवल" एक महीने की अवधितक। पर वास्तवमें यह सुलभता विज्ञापनके विरुद्ध जारी रक्खी "केवल" चार मासतक-अधिक नहीं। औसत हिम्मतके लोगोंने सोचा देखो एक-महीनेके पश्चात् फिर दाम ८) हो जायँगे-चलो खरीदो। सो विचारोंने चट खरीदी। पर हमने देखा कि प्रकाशक महाशयने अब गरीबोंके लाभार्थ उदारता पूर्वक उसी अमूल्य पुस्तकके दाम केवल ४) कर दिये। ऐसा हमने उनको कई पुस्तकोंके सम्बंधमें करते देखा। ऐसे प्रकाशक महाशयोंकी विक्रेय पुस्तकोंका सूचीपत्र आप देखें तो उसमें प्रत्येक पुस्तकके "दाम" शब्दके साथ "केवल" शब्द अवश्यही आपको मिलेगा।

कभी कभी हमने किसी किसी प्रकाशकमें यह देखा कि इतने कड़े दामोंके रहते यदि रंक हिन्दी जगतने उनकी सब पुस्तकोंको शीघ्र नहीं खरीद लिया-तो आप किसी महाशयको हिमालयकी कांचनशृंग चोटीपर चढ़ाकर गालियाँ दिलाते हैं कि देखो हिन्दी-भाषा-भाषी कितने कृतघ्न हैं कि उनने हमारी अमुक पुस्तककी प्रथमावृत्तिकी सब पुस्तकें अबतक नहीं खरीद लीं। यह एक प्रकारके प्रकाशकोंकी बात हुई। दूसरे प्रकारके प्रकाशक कुछेक ऐसे हैं कि यदि उनने एकाध अपूर्व पुस्तक लिखी तो वे उसीकी बिक्रीसे अपने को लक्षपति बनाना चाहते हैं। हिन्दी जगतकी गरीबी व खरीदनेकी शक्तिपर ख्याल नहीं करते। इस कारण वे कठोरताके साथ उसका दाम रखते है। हिन्दी साहित्यमें मैं सहस्रावधि ऐसी पुस्तकें बतलानेको तैयार हूँ कि जिनके दाम लागतसे ड्योढ़े दूने हैं*। "राष्ट्रभाषा" के प्रसारमें यह एक जबरदस्त रुकावट है। यदि नागरी-प्रचारिणी सभा एक समालोचक-समिति की सृष्टि करे कि जो प्रथम कूड़ा करकट और अनुपयोगी पुस्तकोंको हिन्दीभाषाभंडारसे बा-

* ड्योढ़े दूनेही नहीं चौगने भी हैं।

रिज करनेकी सम्मति दिया करे और सायही धर्मोंकी कठोरतापर तीव्र आलोचना किया करे तो "राष्ट्रभाषा" के प्रसारमें बहुत सहायता मिले और वंचक प्रकाशक इस निचोड़ विधिसे बाज आवें। क्या ऐसा हो सकता है कि कागज का वजन, प्रकार, सफा और जिल्दका लिहाज कर पृथक पृथक साइज की पुस्तकोंकी समालोचना के लिये सभा एक निर्खनामा बनाले। सबसे अच्छा तो यह होगा कि नागरी प्रचारिणी सभा कुछ पूँजीके हिस्से बेचकर एक छापाखाना खरीदे और गुजराती "सस्तुं-विक्रेता पुस्तक कम्पनी" की भाँति आदर्श प्रकाशकका काम अपने ही हाथमें लेवे। सभाके ऐसा करनेसे स्वार्थी प्रकाशकोंकी लूट बंद होगी। पुस्तकोंके बाजारमें एक प्रकारकी चढ़ा होड़ होने लगेगी। तथा तुलसी, सूर, केशव, बिहारी, पद्माकर, भूषण, रसिकबिहारी, रीवांनरेश और भारतेन्दु आदि कवियोंके ग्रंथ छापने और बेचनेका जो प्रकाशक आजकल मानो ठेका लेकर बैठे हैं और उन्हें मनमाने दामपर बेच रहे हैं वे अपनी नीति को सुधारेंगे। चढ़ाहोड़से पुस्तकें सस्ती और सुलभ होंगी। मुझे स्मरण है १५-२० वर्षके पूर्व सटीक तुलसीकृतरामायण ५) के नीचे नहीं मिलती थी। बम्बई के एक प्रेसने सटीक रामायण का एक मनोहर संस्करण निकाल व्यापारियों को २) में और सर्वसाधारणको २।) में बेचना आरंभ कर दिया। धड़ाधड़ पुस्तकें बिकने लगीं। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो इस महाराष्ट्र प्रकाशकने लगभग १०-१२ वर्षमें न्यूनाधिक ५० हजार पुस्तकें बेची होंगी। इसकी यह बिक्री देख अब सनातनी ठेकेदार घबराये और ऐसाही सस्ता संस्करण आप लोगोंको भी निकालना पड़ा। परन्तु नाम तो है, एकबार ख्यातिपर चढ़ा सो चढ़ा। अब नवीन प्रकाशककी जो बिक्री होती है सो आदिम प्रकाशककी नहीं। इस बिक्रीसे उत्साहित होकर नवीन प्रकाशकने दो एक अन्य हिंदी ग्रन्थोंका भी सस्ता संस्करण निकाल लाभ उठाया और प्राचीन प्रतिद्वन्द्वीकी बुद्धि ठिकाने की। परन्तु "जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई" के अनुसार तुलसीकी एक अन्य ख्यात पुस्तक जो अब तक सटीक नहीं छपी थी इन नूतन टीकाकारने सटीक छपा कर उसके कड़े दाम रख दिये हैं। इन प्रकाशकों को यदि यह भय रहे कि हमारी अंधाधुन्धी अब न चलेगी जब कि नागरी प्रचारिणी सभा का लक्ष्य इस ओर हुआ है तो राष्ट्रभाषाके प्रसारको बहुत सहायता मिले। सभाको इस ओर ध्यान देना चाहिये। हम कृतघ्न कहलावेंगे यदि हम पुस्तक प्रकाशकोंके उस उपकारको न मानें जो उन्होंने साहित्यके अच्छेअच्छे अप्रकाशित ग्रन्थोंको प्रकाशित कर और उन्हें सस्ते-मँहगे किसी भी भाव बेंच राष्ट्रभाषापर किया है। धन्यवाद उन हिंदी-हितैषियोंको भी है जिनने सस्तेभावपर हिन्दी पुस्तकें छपाकर बेचनेका संकल्प किया है।

राष्ट्रभाषाके प्रसरका तीसरा "साधन-समाचार पत्र" हैं। इनकी दिनोंदिन संख्या बढ़ती देख हमें बहुत हर्ष होता है। इनकी दशा सुधारनेके लिये हालमें बैरिस्टर पं० प्यारेलाल मिश्र द्वारा एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उससे समाचारपत्र बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। जो अपना काम अच्छी तरह कर रहे हैं वे तो अपने कार्यमें सफल मनोर्थ होंगेही पर जो अच्छा काम नहीं करते वे आपही आप उपास-मारसे मरेंगे, तथा पुण्यक्षीण होने पर ययातिकी भाँति स्वर्गच्युत होंगे। सभाने अपनी विषयसूचीमें इसे एक पृथक ही विषय ठहराया है इस कारण अन्य महाशय उसपर भाषण करेंगे ही। अस्तु इस विषयमें मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है

सिवाय इसके कि जिन जिन प्रान्तोंसे राष्ट्रभाषाका एक भी पत्र नहीं निकलता है उन उन प्रान्तों से राष्ट्रभाषामें पत्र निकालनेकी व्यवस्था हो सके तो "सोनेमें सुगंध" हो जाय। आज यह आशा "स्वप्नकीसम्पत्ति" समझी जावेगी, पर स्मरण रहे कि ऐसा एक दिन अवश्य आवेगा जब यह स्वप्न प्रत्यक्ष होगा। राष्ट्रलिपिके प्रसारके संबंधमें मुझे राष्ट्र-भाषाके समाचार पत्रोंसे और इस सम्मेलनमें उप-स्थित राष्ट्रभाषा हितैषियोंसे एक ही प्रार्थना करना है। यह प्रार्थना मैं एकबार समाचारपत्रों द्वारा भी कर चुका हूँ, परंतु उसपर न तो सम्पूर्ण समाचार पत्रोंका और न अधिकांश हिन्दी-हितैषियोंका ध्यान आकर्षित हुआ। प्रार्थना यही है कि समाचारपत्र अपने ग्राहकोंके पते जो वेष्टनपर लिखे जाते हैं देवनागरी अक्षरोंमें लिखा करें और हिन्दी-हितैषी अपने पत्रोंपर जो पता-सरनामा लिखते हैं वह बिलकुल देवनागरी अक्षरों में लिखा करें। अपने मनीआर्डर फार्म तथा डाकघर संबंधी अन्य सब फार्म भी देवनागरीमें ही लिखना चाहिये। इसका परिणाम बहुत लाभ-दायक होगा। मानलो कि कलकत्तेसे "बंगवासी" और मद्रासमे "मद्रासी" पत्र निकलते हैं। इनकी सहस्रों प्रतियाँ देवनागरी पतोंमें लिखी डाकघरमें छोड़ी गईं। बंगाल और मद्रासके डाकघरवाले हिन्दी नहीं पढ़ सकते। तो उक्त समाचार पत्रोंके कारण इन कर्मचारियोंको अवश्यही हिन्दी सीखनी होगी। पत्रोंपर हिन्दीमें पता होनेसे सब चिट्ठीरसोंको हिन्दी सीखना आवश्यक होगा। यदि नागरी-प्रचारिणी सभा अंगरेजी दैनिक व साप्ताहिक पत्रों-को उनके ग्राहकोंका पता हिन्दीमें लिखनेके लिये उत्साहित कर सके तो वर्षोंका काम महीनों-में सिद्ध हो सकता है। यह बात कुछ असंभव नहीं। यदि "बंगाली" और "पत्रिका" के सौ सौ ग्राहक एकमत होकर बाबू सुरेन्द्रनाथबनर्जी तथा बाबू मोतीलालघोषको लिखें कि हम सब आगे तबही आपके दैनिकपत्रोंके ग्राहक रह सकेंगे जबकि आप हमारा पता नागरीमें लिखकर भेजा करें। मैं कहता हूँ कि बाबू साहेब लोग हमारी प्रार्थना विवश होकर मानेंगे। राष्ट्रभाषाके पत्र जो ऐसा करनेमें आनाकानी करें राष्ट्रभाषा-हितैषी ग्राहकोंको चाहिये कि वे एकदम ऐसे हठी पत्रोंके साथ बायकाटकर उनकी बुद्धि ठिकानेपर लादेवें। इस प्रयोगका परिणाम कितना व्यापक और शीघ्रफलदायक होगा यह प्रत्येक हिन्दी प्रेमी समझ सकता है।

राष्ट्र भाषाकी उन्नतिके उपाय।

(लेखक-श्रीयुत पं० व्यङ्कट श्रीकर-रायपुर)

किसी भी देशके लोगोंमें एक राष्ट्रीयताका भाव दृढ़ होनेके लिये यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि उस देशके लोगोंकी भाषा एक हो। मनुष्य जातिमें परस्पर मेल तथा प्रेमकी वृद्धि होनेके लिये दो ही प्रधान साधन हैं। एक धर्म और दूसरी भाषा। पृथ्वीपर जितनी भी जातियाँ या राष्ट्र हमें दिखाई देते हैं उनकी भिन्नता स्थूल भावसे दो ही प्रकार की है। एक तो उनका भौगोलिक देश-भेद, और दूसरा भाषा-भेद। यूरोपके प्रायः सभी भिन्न भिन्न स्वतंत्र राष्ट्रोंकी भाषा एक है, जैसे रूसियोंकी रूसी, इटलीकी इटालियन, फ्रान्स

की फ्रेञ्च इत्यादि । एशियाखंडके भी प्रायः सभी देशोंकी एक एक भाषा है, जैसे जापान-की जापानी, चीनकी चीनी, तुर्कोंकी तुर्की इत्यादि । पृथ्वीके देश, राज्य, और उनकी भाषाओंके उपरोक्त नियममें यदि कहीं अपवाद होंगे तो उनमें एक यह हिन्दुस्थान देश भी है। हिन्दुस्थान वह देश है कि जो एक भौगोलिक देश, एक हिन्दूधर्मी देश और एकछत्री राज्यमें होकर भी जहाँ अनेक भिन्न भाषायें बोली जाती हैं। परन्तु यथार्थमें सब विचारवान और हिन्दू इस बातको जानते हैं कि हिन्दुस्थान देशका, हिन्दूजातिका यह भाषा-भेद इतना गहरा या बिकट नहीं है जैसा कि वह किसी विदेशीको दिखाई देता है। यह भाषा-भेद बहुत कुछ ऐसा दिखाऊ है कि वह हमारे विद्वान महानुभावोंके प्रयत्नसे मिट सकता है। कारण यह है कि हिन्दुस्थानकी अधिकाँश, क्या प्रायः सब परिष्कृत भाषायें संस्कृतसे निकली हुई हैं और उसीसे मिलती जुलती हैं । हमारी देववाणी संस्कृत ही यहाँकी प्राकृत भाषाकी जननी है। आर्यावर्त्तकी सारी भाषाओंमें इस भाषा-जननीका धाराप्रवाह बराबर दिखाई देता है। अधिक क्या कहें भारतवर्षकी जिन जिन भाषाओंकी आज उन्नति होरही है उन सबों-का चाहे जिस शास्त्रका शब्दभंडार पूर्ण कर देनेकी सामर्थ्य इस संस्कृत भाषामें ही है। मूल संस्कृत भाषासे निकली हुई प्राकृत भाषामें अनेक भेद होजानेके कई कारण हैं । उनमें मुख्य दो ये हैं, एक तो प्राचीनकालमें मुद्रण कलाका अभाव था जिससे किसी एक भाषाका प्रचार शीघ्रतासे नहीं हो सकता था । लेखक और विद्वानोंकी कमी न थी; परंतु पुस्तकोंका प्रचार मुद्रणकलाकी उन्नतिसे जैसी शीघ्रतासे आजकल होता है वैसा प्राचीनकालमें सम्भव न था । समा-चारपत्रोंके प्रचारने भी भाषाको बड़ी समृद्धि पहुँचाई है । दूसरे, रेलमार्गके अभाव-से भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंके लोगोंका सहवास ऐसा सुगम न था जैसा कि वह आज है। इन्हीं दो मुख्य कारणोंसे प्राकृत भाषा-के अनेक भेद होगये और अनेक प्रान्तोंके नामा-नुसार इस आदि जननी संस्कृत भाषाकी कन्याओंने मराठी, बङ्गाली, गुजराती इत्यादि नाम धारण किये ।

अत्यन्त आनन्द और समाधानकी बात तो यह है कि प्राकृत भाषामें चाहे जैसा भेद पड़ता गया हो, पर हमारी देववाणी मूल संस्कृत भाषाकी नींव अत्यंत प्राचीनकालसे ऐसी दृढ़ और अटल बनी है कि उसमें किसी प्रकार-का दोष नहीं दिखाई देता। भाषाके सर्वमान्य पंडित इस बातको एक स्वरसे स्वीकृत करेंगे कि आज मराठी, गुजराती, बंगाली इत्यादि जितनी प्राकृत भाषाओंकी उन्नति कीजारही है उन सब भाषाओंकी भिन्नभिन्न शास्त्रोंमें शब्द-सृष्टिकी पूर्त्ति और पुष्टि करनेके लिये इसी आदि जननीकी सहायता ली जारही है। जहाँ जहाँ हमें शब्दोंकी कमी पड़ती है वहाँ वहाँ उसकी पूर्ति इसी संस्कृत भाषाके सहारेसे करते हैं। इस भाषा-का शब्दभंडार ऐसा अनन्त है कि आप आधि-भौतिक विषयोंपर केवल लिखनेके लिये उद्योग भर कीजिये, इसमें शब्दोंकी कमी नहीं है । महावरेदार भाषा लिखनेके लिये आप विदेशी भाषाके शब्दोंका उपयोग चाहो तो करो और ऐसा करना भी योग्य है; परंतु यदि केवल शुद्ध स्वभाषाके शब्द गढ़ना चाहो तो संस्कृत भाषा चाहे जिस विषयमें इस त्रुटिकी पूर्त्ति करदेनेका सामर्थ्य रखती है । लेटिन आदि पुरातन मृत भाषाओंमें संस्कृतकी गणना पंडित लोग चाहे भले ही करें, परन्तु जिस अर्थमें लेटिन मृतभाषा कही जाती है उस प्रकार भारतवर्षमें

हम संस्कृतको मूलभाषा नहीं कह सकते। क्योंकि आर्यावर्त्तकी विद्यमान प्राकृत भाषाओं के स्वरूपका जब हम विचार करते हैं, आधुनिक हिन्दी भाषाको सुधारनेकी और उसके विस्तार की प्रवृत्तिके स्वरूपका जब हम ध्यान करते हैं एवं भाषाके पंडितोंका झुकाव कैसा है इस बातकी ओर जब हम लक्ष्य देते हैं तब हमें ऐसा ही जान पड़ता है। हिन्दुस्थानकी मुख्य मुख्य सब भाषाओंके प्रचलित स्वरूपोंको यदि आप जाँचें तो उन सबोंमें इस संस्कृतरूपी महागंगाका ही धारा-प्रवाह जोरसे बहता हुआ दिखाई देगा और केवल इसी एक बातसे आज हम यह आशा कर सकते हैं कि हिन्दुस्थानकी सारी प्राकृत भाषाओंका सम्मिलन एक हिन्दीमें ही हो सकता है। सारी हिन्दू-जातिमें एक राष्ट्रीयताकी भावना दृढ़ होनेके लिये सारे राष्ट्रकी एक ही भाषा होना अत्यन्त आवश्यक है और हमारे हिन्दवासी हिन्दू कहाने-वाले सब महानुभावोंका हिन्दीभाषाके सम्बन्धमें यही अन्तिम ध्येय होना चाहिये। भारतवर्षके सर्व हिन्दी-भाषाभाषियोंको यह अपना प्रधान कर्त्तव्य समझना चाहिये कि वे अपने उद्योगसे न केवल हिन्दीकी सर्वाङ्ग पूर्त्ति करें या सारे आधिभौतिक शास्त्रोंसे उसे परिपूर्ण करनेकी चेष्टा करें, किन्तु सारे भारतवर्षकी एक राष्ट्रीयभाषा बनानेमें सफलता प्राप्त करें। हिन्दी भाषाके सम्बन्धमें दो बड़े गुरुतर कार्य भाषा-सेवियोंके सामने उपस्थित हैं। पहला, इस भाषाको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाना और दूसरे उसे हिन्दुस्थान-की सर्वव्यापी राष्ट्रभाषा बनाना। दोनों कार्यों-में उद्योग साथ ही चलाया जासकता है। पहिले कार्यकी सफलता कुछ वर्षोंसे अच्छी होरही है। युक्त-प्रान्त और पंजाबमें हिन्दीपर उर्दू या फारसीका विशेष आक्रमण है, परंतु इस आक्रमणका प्रतीकार करनेके लिये उधरके हिन्दी-साहित्यसेवियोंका बेड़ा भी अब बड़ा जबरदस्त होता जाता है। "सरस्वती" "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" "अभ्युदय" "मर्यादा" भारतमित्र आदि पत्रों-ने कुछ वर्षसे हिन्दी-साहित्यकी ऐसी उत्तम सेवा की है, और उसे ऐसा दृढ़ किया है, कि उसके सामने अब उर्दूका टिकना कठिन है। तथापि पहिले उद्देश्यकी सफलताके लिये ही बहुत कुछ कार्य किया जाना आवश्यक है। हिन्दी साहित्यकी उन्नतिके मार्गमें जो कुछ आज तक उसके उन्नायकोंने यत्न किया है उससे उनका हिन्दी प्रति अनुराग और उनकी संघ-शक्तिका परिचय मिलता है। नागरी अक्षरोंका प्रचार और शुद्धभाषा व्यवहारमें अभी इन उन्नायकोंका कार्य उक्त दो प्रान्तोंमें एक दशांश भी नहीं हुआ है। उर्दू अभी इन दो प्रान्तोंमें पूर्णताके साथ विद्यमान है। हमारे अनेकानेक हिन्दू भाई भी इन दो प्रान्तोंमें अभी उर्दू लिपिका ही व्यवहार करते हैं। अदालतोंमें यद्यपि नागरी लिपिका प्रवेश हुआ है तथापि वहाँ अभी उर्दूका ही साम्राज्य है। वर्णमालाका यह हाल है और भाषामें फारसी शब्दोंकी भरमार है। परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं इस फारसी और उर्दूकी शृङ्खलासे हिन्दीको मुक्त करनेके लिये हिन्दीके प्रेमी विद्वान् किस तीव्रता, दृढ़ता और उत्साहसे कटिबद्ध हुए हैं। इसका परिचय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ही स्वयं दे रहा है। और इसीलिये आशा की जाती है कि अब हिन्दीका साहित्य-सूर्य अपने प्रखर प्रकाशसे सारे हिन्दूराष्ट्रका एकीकरण करेगा।

मध्यप्रदेशमें उर्दूका प्रभाव इतना भारी नहीं है कि वह हिन्दीकी उन्नतिमें बाधा पहुँचानेमें समर्थ हो। इसीसे मध्यप्रान्तवासी विद्वान् मौन धारण किये बैठे हैं। जबसे इस प्रान्तमें अंगरेजी शिक्षा प्रारंभ हुई है, कितने ही ऐसे युनिवर-सिटीके पदवीधर विद्वान निकले होंगे जिनकी मातृभाषा हिन्दी है अथवा हिन्दीभाषामें जिन्होंने

प्राथमिक शिक्षा पाई है; ऐसे ग्रेजुएट बन्धुओंसे मैं यह प्रश्न पूछनेका साहस करता हूँ कि आपलोगोंमें से कितने ऐसे हैं, जिन्होंने किसी उपयोगी विषय-पर कोई उपयोगी ग्रन्थ लिखकर हिन्दीभाषाकी सेवा की है ?

हमारे ये पदवीधारी बन्धु कह सकते हैं कि हिंदीमें ग्रन्थ लिखनेसे मिलता ही क्या है जो हम इसकेलिये परिश्रम करें । इसके उत्तरमें हम केवल यही कहते हैं कि उत्तम सेवा तभी हो सकती है जब मनुष्य इस उद्योगमें द्रव्योपार्जनकी लालसा न करे। स्वार्थका विचार छोड़े और देशभाषाकी उन्नतिमें परमार्थ-रूपी परमोज्वलव्रतसे कार्य करे । उत्तम विद्या प्राप्तकर जिस प्रकार वे स्वयं ज्ञान-वान और विद्वान होनेका दावा करते हैं, वैसे अपनी प्राप्त पदवीकी सार्थकता पारमार्थिक कार्योंसे, स्वार्थत्यागसे, कर बतलाना क्या उनका आदि कर्त्तव्य नहीं है ? हम तो समझते हैं कि हमारे समस्त भारतवासी ग्रेजुएट बन्धुओंका सच्चाभूषण स्वार्थत्याग और परमार्थ ही है । भारतका समस्त भावी वैभव इन्हीं पदवीधरोंकी कार्यक्षमतापर निर्भर है । जब हमारे उत्साही नवयुवक बी. ए. की परीक्षामें पास होते हैं तब सरस्वतीका वरदहस्त इन्हें प्राप्त हो जाता है। जिस समय इन्हें पदवीका 'डिपलोमा मिलता है; मानों ब्रह्मकन्या ज्ञानदात्री सरस्वती इनको स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश और स्वजन सेवारूपी चतुर्मुखी मणियोंकी शिवकरीमालासे आभूषित करदेती है और अपने चतुर्मुखी पिताका दर्शन कराती स्वधर्म-दीक्षामें ऐसा उपदेश करती है कि "हे मेरे आर्य सुतो ! अर्वाचीन अंगरेजी शिक्षाके यही चार वेद जानों। स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश और स्वजन सेवारूपी चार वेदोंका पठन पाठन चिंतन और निदिध्यास तथा इन्हीं चार वेदोंकी भक्तिपूर्वक तन, मन, धनसे सेवा करनेपर मैं प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद देते हुए तुम्हें निस्सन्देह अपने पितामह परमात्माके पास पहुँचा दूँगी।"

तात्पर्य यह कि मध्यप्रदेशीय पदवीधारी विद्वानोंको भी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी ओर ध्यान देना चाहिये। और उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखकर उसे पुष्ट करना चाहिये ।

इस प्रान्तके धनिकोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिये क्योंकि इस प्रान्तसे हिंदीका एक भी उत्तम मासिक या साप्ताहिक पत्र नहीं निकलता । केवल एक नामधारी साप्ताहिक "मारवाड़ी" नागपुरसे निकलता है पर मुझे सन्देह है कि उसे भी इस प्रान्तके लोग मँगाते हैं या नहीं। मेरा निवासस्थान रायपुर है जहाँ कई घरके अच्छे धनीमानी मारवाड़ी हैं परन्तु हिन्दी समाचार पत्र यदि कहीं दो चार दुकानोंपर दिखाई देते हैं तो वे ये हैं । 'सरस्वती,' 'व्यंकटेश्वर" और 'भारतमित्र । प्रान्तिक पत्र कहीं नहीं दिखाई देता ।

एक और अनोखी बात यह है कि इस प्रदेशके जिस हिन्दीभागसे प्रजापक्षके दो दो तीन तीन सज्जन प्रादेशिक कौंसिलके मेम्बर हों उस भागसे भी प्रजामत प्रदर्शित करनेके लिये हिंदीमें कोई पत्र नहीं निकलता और न निकालनेका कोई उद्योग ही किया जाता है।

इस दिशामें उचित उद्योग किया जाना परमावश्यक है । साथही इस प्रदेशकी पाठ्य पुस्तकोंके सुधारकी ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिये । ये दोनों कार्य तभी हो सकते हैं जब इस प्रदेशके धनी तथा विद्वान संघशक्तिके साथ कुछ कार्य करें । उसमें भी पहिला कार्य गुरुतर एवं साहित्य सेवियोंके केवल निस्पृह

उद्योग और मातृभाषाके गाढ़ अनुरागपर अवलम्बित है।

दोनों कार्योंमें जिस प्रकार तन और मन की उसी प्रमाणसे धनकी भी आवश्यकता है।

किसी भी कार्यकी सिद्धिके लिये दोही मुख्य बल हैं। सत्ताबल और द्रव्यबल। हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेके लिये यद्यपि हमारे पास सत्ताबल नहीं है तथापि इस विषयमें हमारी इच्छाशक्तिको हमारी सत्तावान सरकारकी कोई रुकावट भी नहीं है। इसलिये हमारी इच्छाशक्तिको यदि धनिक लोगोंके द्रव्यबलसे पूर्ण सहायता मिले तो इस कार्यकी सिद्धता अर्थात् हिन्दीभाषाका सारे हिन्दुस्थानमें सार्वत्रिक फैलाव कुछ कठिन कार्य नहीं है। तथापि इस कार्यकी उत्तेजनामें जो कुछ द्रव्य प्राप्त है या आगे होनेवाला है उसके सदुपयोगके विषयमें कुछ सूचनायें हम यहाँ करना चाहते हैं।

भारतवर्षके शुद्ध हिन्दीप्रान्तोंको छोड़ अन्य प्रान्त कुछ ऐसे हैं जहाँ अंशतः किसी प्रकार हिन्दी बोली जाती है; और जहाँके लोगोंके लिये हिन्दी सीखना कुछ सुलभ है। जैसे:—हम समझते हैं कि गुजराती, काठियावाड़ी, कच्छी और महाराष्ट्र भी हिन्दी बोल सकते हैं। इनकी मातृभाषाओंका स्वरूप भी हिन्दीसे प्रायः मिलता हुआ है और इनके प्रान्तोंमें अन्य हिन्दी भाषियोंका संचार और सहवास अच्छा है। अतएव इन लोगोंके लिये हिन्दी सीखना कोई कठिन कार्य नहीं है। यही हाल बंगाल, बिहार और उड़िया प्रान्तोंका भी है केवल एक मद्रासप्रान्त ऐसा है जहाँ हिन्दीभाषाका प्रचार बहुतही कम है। इन सब प्रान्तोंके लिये एक दो छोटी बड़ी हिन्दीभाषाकी परीक्षायें नियत की जायँ। उपरोक्त सब प्रान्तोंके मुख्य मुख्य स्थानोंमें हिन्दीभाषा जाननेवाले महाशयोंकी खोज करके उनके द्वारा एक एक बोर्ड नियत किये जावें और प्रान्तवासियोंको, विशेषकर अन्यभाषी विद्यार्थियोंको इन बोर्डोंमें हिन्दीकी परीक्षा देनेमें उत्तेजना दीजावे। सब बोर्ड अपना वार्षिक कार्य-विवरण, प्रतिवर्ष हिन्दीमें सम्मेलनके अवसरपर प्रकट किया करें। स्मरण रहे कि हिन्दी सीखनेवाले, अन्यभाषी विद्यार्थियोंके लिये सर्वोत्तम उत्तेजन और आकर्षण, द्रव्य-पुरस्कारका ही है; और इसके लिये जैसा कि ऊपर कह आये हैं द्रव्यबलकी आवश्यकता है। पुरस्कार भी परीक्षार्थियोंके लिये प्रान्तोंकी तुलनात्मक दृष्टिसे रखे जावें जैसे एक ही हिन्दीकी प्राथमिक परीक्षाके लिये मद्रासप्रान्तके तेलगू या तामिल भाषी विद्यार्थियोंके लिये सबसे अधिक पुरस्कार हो। उससे कुछ कम बंगालीके लिये, उससे कम गुजराती और महाराष्ट्रके लिये। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके वार्षिक विवरणोंसे मालूम होता है कि हिन्दीके प्रचारार्थ कुछ उपदेशक रखे गये थे। जिनका काम भिन्नभाषा भाषियोंको हिन्दी सीखनेमें उत्तेजन देना था; परंतु केवल उपदेशसे उत्तेजित करनेकी अपेक्षा यदि उपरोक्त कार्य भी इन उपदेशकोंको सौंपा जाता तो अधिक अच्छा होता। हम नहीं जानते कि हिन्दीके पैसा फंडका किस प्रकार उपयोग किया जाता है। यदि इस द्रव्य-कोषकी बढ़ती करोड़ों तक बढ़ाकर आधेका उपयोग केवल हिन्दीका प्रचार अन्य प्रान्तोंमें और अन्य भाषियोंमें करानेका उद्योग किया जाय तो हिन्दी पैसाफंडका उपकार हिन्दूराष्ट्रके एकीकारणमें महाराष्ट्र पैसाफंडसे कहीं बढ़कर होगा।

हिन्दी लेखकोंका झुकाव उपन्यासोंकी ओर बहुत बढ़ रहा है और यह बात इष्ट नहीं है। हम नहीं कहते कि उपन्यासोंका कोई उपयोग

नहीं है; परंतु वे भी ऐसे हों जिनमें स्त्रियों-को गृहकार्यकी, मितव्ययीकी, पातिव्रत्यकी, स्वजनसेवा और प्रेमकी उसी प्रकार पुरुषोंको सच्चे पौरुषकी और राष्ट्रीयत्वकी आदर्श शिक्षा प्राप्त हो। आजकलके हिन्दी उपन्यास और खासकर स्वतंत्र उपन्यासोंकी प्रशंसामें इतनाही कहा जासकता है कि उनमें बजारू किस्से कहानियोंकी अश्लीलता नहीं है और अर्वाचीन अंगरेजी उपन्यासोंके रंग ढंगपर बहुसे प्रणय प्रमोद रचे गये हैं। पर उनसे यथेष्ट लाभ नहीं होता। जो कुछ भी हो, उपन्यासोंके लिखनेमें कष्ट उठानेकी अपेक्षा बहुत अच्छा हो यदि हमारेहिन्दी लेखक उपयोगी विषयोंपर ग्रन्थ रचना करें।

प्रियहिन्दू भ्राता गण! हमारी प्रिय हिन्दी भाषाकी उन्नति और उसे राष्ट्रभाषा बनानेके जोकुछ थोड़ेसे उपाय मुझे सूझ पड़े आप लोगोंपर प्रकट किये। इन उपायोंमें श्रेष्ठ, उपाय तो आपके समस्त कार्योंमें सच्ची जीवनशक्ति उत्पन्न कर उसे चालित करनेवाला हिन्दीभाषापर आपका अनुराग और प्रेम ही है। यदि हिन्दीभाषापर आपका हार्दिक प्रेम और भक्ति नहीं तो हमारे सारे कार्य फीके और निःसत्व होंगे। वस्तुतः व्यवहारमें भी जिस मनुष्यकी भाषामें, जिसकी वाणीमें प्रेमरस नहीं वह किसीको प्रिय नहीं होता। भगवद्भक्तों ने इसी भाषा देवीका आश्रय ले ईश्वर भक्तिरूपी अमृतकी वृष्टि संसारपर की है। हिन्दुस्थान, हिन्दूधर्म, हिन्दू और हिन्दी भाषाके नामोच्चारसे ही जिनका हृदय प्रेमानुरागसे भर आता है वे ही आर्यमाताके सच्चेवीर पुत्र हैं। इन शब्दोंके और विशेष कर हिन्दी भाषाके प्रेमानुरागमें हम तो इस हकार का मानवी हृदयके प्रेम-क्षेत्रपर ऐसा कुछ विलक्षण प्रभाव देखते हैं मानों सारा संसार इसी एक हकारके भरोसे खड़ा हो। और है भी तो ऐसा ही; क्योंकि यह सारा दृश्य-मान संसार केवल एक 'ह' कार नहीं तो और क्या है? हे प्यारे 'ह'! तुम धन्य हो! तुम संसार-के आधार स्तंभ हो! जहाँ तुम हो वहाँ सब कुछ 'है'! जहाँ तुम नहीं वहाँ कुछ भी नहीं! हमारे हिन्दुस्थान, हिन्दूधर्म, हिन्दूजाति और सबसे श्रेष्ठ हमारी हिन्दीभाषापर तुम्हारा विशेष प्रेम है और इसीसे तुम्हारी विशेष धन्यता है, क्योंकि जो हरीहर तुम्हारे आश्रय स्थान हैं वे ही हिन्दुओंके आराध्य देवता हैं। मानवी हृदयके प्रेम-क्षेत्रपर तुम्हारा ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि जहाँ एक बार तुमने अपना डेरा लगाया वहाँ उस प्रेम-क्षेत्रमें ऐसी कौनसी वस्तु है जो तुम्हारे वशीभूत न हो? तात्पर्य इस ससारमें भला ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे हम सच्चे हृदयसे हमारी कहें और फिर उस पर प्रेम न करें? बात तो यह है कि अभी हमारी हिन्दी भाषाको सच्चे हृदयसे हमने अपनाया ही नहीं। जिस दिन हम उसे सच्चे हृदयसे अपनी भाषा समझने लगेंगे उसी दिन हमारा उस भाषा-पर प्रेम होगा, और फिर उसकी उन्नति होते देर न लगेगी।

प्रसन्नताकी बातहै कि अब महाराष्ट्र, बंगाली, मद्रासी, पंजाबी और गुजराती आदि सभी अपनी मातृ-भाषाको पीछे रख इस हिन्दी-को राष्ट्रीयताके सिंहासनपर चढ़ानेके लिये अपनी अपनी अनुकूलता प्रगट करते जा रहे हैं। इसकी सौत उर्दू जिसने घरमें घुसकर झगड़ा मचाया था अब बड़ी तीव्रतासे बाहर निकाली जा रही है। मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी-का आपत्तिकाल अब टल गया। रात्रिकी कालकूट अँधियारी और घनघोर घटाका परिहार हो चला। प्राची दिशा अरुणोदयकी लालिमा-से शोभायमान हो रही है। ऐसे मंगल मुहूर्त-में पुण्यभूमि काशीपुरीमें हिन्द-देवी-के उदरसे इस सम्मेलन रूपी बालकका जन्म हुआ है। चहुँओरसे आनन्दकी बधाई दीजा

रही है। इस बालकका लालन, पालन सुचारुरूपेण करनेके लिये चहुँओरसे हिन्दीके प्रेमी आ रहे हैं। हिन्दी माताके उद्धार-कार्यमें इस बालकका भविष्य बड़ा ही होनहार है। इसकी प्रथमावस्था बड़ी ही आशाजनक है। आज यह बालक सात वर्षका होकर अपने आठवें वर्षमें प्रविष्ट होनेके लिये आनन्दसे खेलते कूदते हमारे मध्यप्रान्तमें हिन्दीमाताका प्रभाव बढ़ानेके लिये आपहुँचा है। प्रियबन्धु वर्ग! आओ, बड़े उत्साहसे इसे उठालें। प्रगाढ़ प्रेमसे इसका स्वागत करें। नर्मदाजीके पवित्र जलसे अभिषिक्त करें और साहित्यरूपी सुन्दर अभूषणोंसे इसे अलंकृत कर इसकी तुष्टि, पुष्टि और समृद्धिके लिये अपना तन मन धन भी अर्पण करें।

हिन्दी भाषाकी सेवामें मैं भी अपने टूटे फूटे शब्दोंसे सम्मेलनकी आरती उतार भक्त वत्सल भव-भय हारी भगवानके चरणोंमें लीन हो यही प्रसाद मांगता हूँ कि,—

हे भगवन्! इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेल-को चिरायुकरो। इष्ट कार्यको सिद्ध करनेके लिये इसे बल, शक्ति और उत्साह ऐसा दो कि वह सारे देशको एक ही सूत्रमें ग्रथित कर इस भारतीमालासे एक बार फिर तुम्हें आभूषित करे। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

हिन्दी ग्रंथोंमें विराम चिन्होंका विचार।

(लेखक—श्रीयुत पं० माधव लाल शर्मा, हर्दा।

मनुष्य अपने विचार बोलकर अथवा लिखकर, प्रकट कर सकता है। बोलनेकी कला लिखनेकी कलासे प्राचीन है। जिस समय हम अपने भाव प्रकट करते हैं, उस समय हमें अनेक स्थानों पर विश्राम लेना पड़ता है और कई वाक्योंको सङ्केतोंकी सहायता द्वारा या अवयवोंके हाव-भाव द्वारा, प्रकट करना पड़ता है। ऐसा किये बिना, उनका यथार्थ अर्थ प्रकट करना असम्भव होजाता है। इन्हींका प्रयोग लेखन कलामें करना अत्यावश्यक है। क्योंकि इनका प्रयोग किये बिना, हम अपने भाव पूर्णरूपसे व्यक्त नहीं कर सकते हैं। यह समय उन्नतिका है। जब हम यह विचार कर रहे हैं कि, जिस प्रकार हो, उस प्रकार हमें अपनी हिन्दी माताके साहित्यके प्रत्येक अंगकी पुष्टि करना चाहिये, तब हमें, इस ओर प्रथम लक्ष देकर, उन्नति करना चाहिये। उत्तम और उन्नत विषयके स्पष्टीकरण करनेमें, हमें कठिनसे कठिन भावोंको व्यक्त करना पड़ता है, और जबतक, हम विरामादि चिन्होंकी सहायता न लेगें, तबतक हमारा कार्य कदापि उत्तम रीतिसे सम्पादित नहीं किया जासकता है। श्रीयुक्त राम-रत्नजी, अध्यापक अपनी पुस्तक "चिन्हविचार" में इस प्रकार लिखते हैं :—

"जब मनुष्य किसीसे बातें करता है वा व्याख्यान देता है, तो उसे अपने भावोंको ठीक ठीक प्रकाशित करनेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टा करनी पड़ती है। अपने स्वरको मृदुल, कठोर तथा कभी कभी बड़ाही विचित्र बनाना पड़ता है। परन्तु जब वह अपने भावोंको लिखकर दूसरे पर प्रकाशित करता है। तब इन विविध चेष्टा, स्वर व भाव भेदोंको प्रगट करनेके लिये विविध चिन्होंका प्रयोग करना पड़ता है। 'यह सच है"

"यह सच है" ? यदि इन वाक्योंके पीछे विचिन्होंका प्रयोग न हो, तो दोनों वाक्य एक हैं, परन्तु चिन्ह लगानेसे दोनोंके भावोंमें बहुत अंतर पड़ जाता है। पहिले हिन्दीमें (।) खड़ी पाईको छोड़कर दूसरे चिन्ह काममें नहीं आते थे, परन्तु हिन्दी गद्योन्नति और प्रचारके साथही साथ अंगरेजी आदि भाषाओंसे बहुतसे चिन्होंका प्रयोग होने लगा है। ......"

बहुतसे सत्पुरुष इस मतके हैं कि प्राचीन प्रथा बहुत उत्तम है और उसे कदापि स्थानान्तर अथवा रूपान्तर न करना चाहिये। परन्तु उनसे यह प्रश्न किया जासकता है कि, यदि हममें कोई अवगुण है अथवा हममें कोई न्यूनता है, तो क्या हमें उसकी ओर लक्ष देकर, प्रयत्न न करना चाहिये ? मैं अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार यही कह सकता हूँ कि हमें अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। दूसरा प्रश्न वा वाद यह हो सकता है कि, वर्तमान समयमें हमलोग आंग्ल-भाषाका अभ्यास कर, उसके दास क्यों बनते जारहे हैं ? और उसीके अनुसार अपनी भाषाको भी क्यों बना रहे हैं ? इसके उत्तरमें केवल इतनाही कहा जासकता है कि, यदि हमें कहींसे कोई उत्तम वस्तु या रत्न प्राप्त होना हो, तो हमें उसे अवश्यही प्राप्त करना चाहिये। हमारे पूर्वज भी हमें यही आज्ञा देते हैं।

हिन्दीमें प्रथम गौणवाक्य लिखनेकी प्रथा न थी; परन्तु अब गौणवाक्य लिखनेकी प्रथा प्रचलित होती जाती है। इसलिये इस समय विरामादि चिन्ह बहुतही आवश्यक प्रतीत होते हैं। प्राचीन संस्कृत तथा हिन्दीकी कविताके ग्रन्थोंमें केवल, वाक्य समाप्त होनेपर एक पाई और दो पाई (।, ॥) के चिन्ह लगाये जाते थे; परन्तु जबसे गद्योन्नति होना आरम्भ हुआ, तबसे अन्य चिन्होंका भी प्रचार होचला है। अतः अब इस ओर अधिक लक्ष देना नितांत आवश्यक है।

विराम चिन्होंके प्रयोग करनेसे अर्थमें कितनी विलक्षणता उत्पन्न होजाती है, यह श्रीयुक्त रामरत्नजीने अपनी पुस्तक "चिन्ह विचार" की प्रस्तावनामें स्पष्ट दिखा दिया है। तथापि यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें अर्थका अनर्थ होना स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा; जैसे :—

(१) "चोरी करना नहीं, दंड दिया जावेगा और चोरी करना, नहीं दंड दिया जायगा।"

(२) "इस से यह तात्पर्य नहीं कि, आप, ग्रहण किये हुए कार्यको छोड़ दें।"

'कि,' और 'आप' के पश्चात् यदि पाद विराम न दिया जावे तो, कितना अनर्थ होगा, यह स्पष्ट है।

इनके समान और भी उदाहरण दिये जासकते हैं।

हिन्दी-साहित्यमें आजकल निम्न लिखित चिन्ह प्रयोगमें आने लगे हैं। अर्थ बोधके लिये इन चिन्होंको प्रयोगमें लाना अति आवश्यक है।

(१) अल्प विराम (,) (२) अपूर्ण विराम अथवा न्यून विराम (:) (३) अर्द्ध विराम (;) (४) पूर्ण विराम (।, ॥) (५) विस्मयादि बोधक या सम्बोधन (!, !!, !!!) (६) प्रश्न-वाचक (?) (७) कोष्टक (( ), [ ]) (८) आदेशक (——) (९) योजक (—) (१०) उद्धरण (" ") (११) वर्जन (..........,— — — —, ***, × × × ,) (१२) त्रुटि (‸) (१३) टिप्पणी सूचक चिन्ह (×, *, ‡, ॥, †, ×) (१४) निम्नलिखितका चिन्ह (:—)। (१५) किसी शब्दके लघुरूप लिखनेके लिये, उस शब्दके प्रथमअक्षरके पश्चात् शून्य (०) लगाना

इनके कतिपय उदाहरण यहाँ लिखे जाते हैं ; जैसे :—

(१) "गङ्गा, नील, मिसिसिपी इत्यादि बड़ी बड़ी नदियाँ कितनी मिट्टी बहा लेजाती हैं ।"

प्रकृति, पृष्ठ २१ ।

"हमेशा बातचीत करनेके समय इस बातका ध्यान रक्खो कि तुम कौन हो, किसके साथ, कहां पर, किस समय, क्यों और किस प्रकारकी बातचीत कर रहे हो ।" पत्रोपहार, पृष्ठ १४ ।

(२) "नैतिक शिक्षाके इरादेसे लड़कोंके पढ़ने या अध्ययन करनेके लिये एकत्र किये जायँ तो कुछ कुछ इस प्रकार होगा : -पहिले घंटेमें वे कहेंगे................।" शिक्षा, पृष्ठ २११ ।

सूचना—यह चिन्ह, हिन्दीग्रन्थोंमें बहुधा प्रयोगमें कम आता है ।

(३) "जबतक हम किसी एकभी अशुभ मार्गपर चलते हैं, तब तक, इस मार्गपर पैर रखनेके अधिकारी नहीं ; परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि अशुभ मार्गके त्याग करनेसे ही सम्पूर्णता नहीं प्राप्त होती है ।"

जैन हितैषी, भाग १२, पृष्ठ ७८ ।

"जब हम किसी आपत्तिको पूर्णत: जान जाते हैं और हम उसके अभ्यस्त होजाते हैं ; तब वह उतनी भयदायिनी नहीं रहती, जितनी हम उसे पहिले समझते थे ।"

हिन्दी-निबंध शिक्षा, पृष्ठ १४१ ।

(४) "इसी प्रकार मानान्तरखण्डवृत जिन स्थानोंपर विक्षेपवृतको छेदन करता है वे स्थान सम्मीलन औ उन्मीलन कालके सूचक होते हैं । और सब व्यवहार ऊपर लिखी रीतिके करना चाहिये ॥" करण लाघव, पृष्ठ ४३ ।

परन्तु गद्यमें दो पाईका लिखा जाना आजकल अप्रचलित सा होगया है ; यह पद्यमें सदैव प्रयोगमें लाई आतीं हैं ; जैसे :—

"प्रिय ! गर्वके कोई कभी भी मत फटकना पास,
होता रहा है विज्ञताका सदा इससे नाश ।
फिर भूल कर भी हो न जाना तुच्छ यशके दास,
देता रहेगा सर्वदा यह एक ही गुण त्रास ॥"

नवनीत ।

"जगत्में विख्यात है कि राज्यप्रबन्ध राजा, मंत्री तथा अन्य भृत्यवर्गोंसे चलाया जाता है, वैसे मन भी बुद्धि, विवेक और संकल्पसे चलायमान है" उत्तम आचरण शिक्षा, पृ० ६१ ।

(५) "हनुमान महाशय ! मैं उलट पुलट होगया । छोड़ो ! छोड़ो !! छोड़ो !!! रक्षा करो ! गरीबके प्राण जाते हैं !"

लोक रहस्य, पृष्ठ १२८ ।

"शोक ! शोक !! महाशोक !!! किसी कुटिल, कलंकी महादुष्ट पापीने हमारे दयालु, न्यायी, प्रजा वत्सल, परम प्रिय श्रीमान बड़े लाट साहिब बहादुरपर देहली प्रवेशके समय बमका प्रहार किया !

व्याख्यान संग्रह पृष्ठ ४२ ।

(६) "अनुचित कभी नहीं है यह याचना हमारी,
तुमने कृपालु होकर किसको नहीं उबारा ?
हे देव ! हे दयाधन ! तुम भूल क्यों न जाओ,
है बस हमें तुम्हारे शुभ नामका सहारा ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

"यदि हम अपने पिताको पिण्ड दान देते हैं और वह उसके निकट पहुँचता है, तो पूर्व जन्ममें हम भी तो किसीके पिता रहे होंगे, तो उक्त जन्मके हमारे पुत्रोंका दिया हुआ पिण्डदान हमको क्यों नहीं मिलता ?"

आर्य सनातनी संवाद, पृष्ठ ६६ ।

(७) "शिक्षण किस प्रकार दिया जाता है, यह एक प्रथक ही शिक्षाकी कक्षा (Training Class) है ।"

बालशिक्षा, पृष्ठ ६ ।

"लकीर द्वारा चित्र बनाकर सीधी खड़ी, तिरछी लकीरोंसे भीतरका भाग (हिस्सा) भरना। (आ० ५६)"

शिक्षण कौमुदी, भाग १, पृष्ठ १६२।

(८) "कंडक्टरने उसकी तरफ खूब बारीकी से देखा–उसके बाल, आंखें, नाक और हाथ वगैरह सब कुछ देखा–पर वह कुछ निश्चय न कर सका।"

आत्मोद्धार, पृष्ठ ७५।

"क्योंकि यह सुधारणा यदि सच्चे सुधारके लिये चलाई गई होती, तो इसकी अधिकाधिक उन्नतिपर उँगलियाँ तोड़नेका–बुराई करनेका–कोई कारण न था।"

दिशा भूल, पृष्ठ १७।

(६) "कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुष मृत्युकी कुछभी चिन्ता नहीं करते।"

हिन्दी निबंध शिक्षा, पृष्ठ ३०।

"हिन्दीके हम हैं और है हिन्दी भी हमारी।
हिन्दी–हितैषिता हो हमें प्राणसे प्यारी॥

हितकारिणी, सितम्बर १४।

(१०) "अहा! "मित्र" इन दो अक्षरोंके रचनेवालेने इसमें कैसा रहस्य भर रक्खा है "शोकार्णव भयत्राणं प्रीति विस्रम्भ भाजनम्। केन रत्नमिदं मित्र मित्यक्षर द्वयम्"।"

लेख माला, पृष्ठ २८।

"आधुनिक भाषामें ऐसे लोगोंको 'राजप्रिय' अथवा 'गुप्तमित्र' कहते हैं।"

बेकन विचार रत्नावली, पृ० ६५।

(११) "मोहन–लेकिन यह नाक–
नन्दू और सुन्दर–हाँ, यह नाक–
दौलत०—नाक क्या हुई ?"

घूमके घर घूम।

"(४) प्राथमिक शालाकी परीक्षामें जब विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर आजावे, तब उसका अंगरेजी स्कूलमें फिर 'टेस्ट' लिया जाय, (गरज़, कहीं न कहीं परीक्षामें घबड़ाकर या एकाध विषयमें गिरकर, विद्यार्थी पढ़नेसे अपना मुँह फेर ले तो .... !)"

प्रभा, द्वितीय वर्ष, पृष्ठ ६३१।

(१२) इसका प्रयोग प्रूफ शंशोधनके कार्यमें होता है, इस कारण, इस चिन्हका, प्रकाशित ग्रन्थोंमें, बहुत कम प्रयोग किया जाता है।

(१३) "* दक्षिणके राज्यने बलवेका झंडा खड़ा कर दिया।

आत्मोद्धार, पृष्ठ ७।

(१४) "सभापति द्वारा आहूत हो व्याघ्राचार्य्य वृहल्लांगूल महाशय गर्जन पूर्वक गात्रोत्थानको भयमीत करनेवाले स्वरमें निम्न लिखित प्रबंध पाठ करने लगे:—

"सभापति महाशय! बहन वाघिनियो, और सभ्य व्याघ्रगण! मनुष्य एक प्रकारका द्विपद जन्तु है। ....।"—"

लोकरहस्य, पृष्ठ ६।

"इसके बाद आयशा बोली:–"ऐ मेरे मिहमान, मुझे माफ़ करो, अगर मैंने इस उचित ढंगसे तुम्हारे दिलको दुःख पहुँचाया है॥""

अवश्यमाननीय, भाग २, पृष्ठ ६८।

(१५) "एक मदर्सेमें ना० मा० गैरहाज़िर मिला, हे० मा० का जवाब है कि आज ही वह

* अमेरिकामें स्थायी सेना (Standing army) नहीं रक्खी जाती। देशपर जब कोई विपद आती है तब प्रेसिडेंट सर्वसाधारणसे स्वयं सेवक माँगते हैं और उस समय जो लड़नेमें समर्थ होते हैं वे देशके झंडेके नीचे आखड़े होते हैं।"

कागज़ लेनेके लिये अमुक स्थानको गया है." व्याख्यान संग्रह पृष्ठ २१।

"श्रीमान्"

मेजर जनरल, हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज, मुख़तारुल् मुल्क, अज़ीमुल इक़्तिदार, रफ़ी-उश्शान, वालाशिकोह मोहतशमिदौरान, उमादतउल उमरा, हिसामुस्सल्तनत, महाराजा, सर माधवराव सेंधिया, आलीजाह बहादुर

श्रीनाथ, मनसूरे ज़मां, फिदविए हज़रते मलिक-इमुअज़्ज़म इरफी उद्दरजा इ-इंग्लिस्तान, जी. सी. एस. आई., जी. सी. वी. ओ., जी. सी. पी. एम., ए. डी. सी., टु हिज़ मेजेस्टि दि किंग एम्परर एल्. एल्. डी. (केम्ब्रिज और एडिनबरा) डी. सी. एल. ऑक्सफोर्ड) की सेवामें

श्रीमान्‌का विद्यानुराग, शिक्षा प्रचार, साहित्य प्रेम और हिन्दी भाषापर किये हुए असीम उपकारोंके स्मरणमें कृतज्ञता और राजभक्ति प्रदर्शनार्थ श्रीमान्‌की सप्रेम और सहानुभूति पूर्ण आज्ञासे समर्पित।"

सुबोध गीता।

उपरोक्त उदाहरण जिन ग्रन्थोंसे दिये गये हैं; उनके अतिरिक्त, मैंने अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया है; परन्तु, स्थान न होनेके कारण और लेख बढ़जानेके भयसे यहाँ उनके उदाहरण उद्धृत नहीं कर सकता हूं।

अब यहाँ एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, किन किन विराम चिन्होंका प्रयोग करना लाभदायक है और किनका प्रयोग निरर्थक है। फिर दूसरा प्रश्न यह है कि, कौन कौनसे विराम चिन्होंका प्रयोग भविष्यमें करना उचित समझा-जाना चाहिये। एक तीसरा प्रश्न, यह होता है कि, भाषामें विराम चिन्होंके प्रयोग करनेके नियम आंग्ल भाषाके नियमोंके अनुसार हों अथवा हमें स्वयं कुछ नियमोंका संगठन करना चाहिये।

प्रथम और द्वितीय प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले तीसरे प्रश्नके उत्तरमें केवल इतना ही कहा जासकता है कि आंग्ल भाषा और हिन्दी भाषाकी रचना शैलीमें बहुत अंतर है, इस कारण, उस भाषाके नियम अक्षरशः उपयुक्त नहीं हो सकते हैं। हमें स्वयं नियमोंका संगठन करना चाहिये। अब शेष प्रश्नोंके उत्तरमें प्रत्येक चिन्हके विषयमें विचार किया जाता है।

(१) अल्पविराम-भाषामें इसका प्रयोग करना बहुतही आवश्यक और उपयोगी है। आंग्ल भाषामें अल्पविरामकी योजनाके नियम सबसे कठिन हैं; और उस भाषाकी इतनी उन्नति होचुकी है कि अल्पविरामके स्थानान्तर करनेसे अर्थमें भी विशेषता उत्पन्न होजाती है। इस चिन्हको प्रयोगमें लानेके मुख्य तीन कारण हैं:-(१) अभेदान्वित शब्दोंको जोड़नेके लिये। (२) भेदान्वित शब्दोंको पृथक् करनेके लिये। (३) शीघ्रता पूर्वक पढ़नेसे जिन शब्द या वाक्यांशका अर्थ, भाव, वा शक्ति कम अथवा नष्ट होती हो, उन्हें स्पष्ट प्रकट करदेनेके लिये।

(क) जिस स्थानपर "एक" कहे जानेके समय तक ठहरना पड़े, वहाँ इस चिन्हकी योजना करना चाहिये।

(ख) जब साधारण वाक्यमें, संक्षिप्त वाक्य आजावे, जिसके द्वारा उसका अर्थ स्पष्ट होता हो, तो उस संक्षिप्त वाक्यके प्रथम और पश्चात्, अल्पविरामकी योजना करना चाहिये।

(ग) जब किसी वाक्यमें एकही वर्गके बहुतसे शब्द हों जिनके बीचमें उभयान्वयी अव्यय न आये हों, तब प्रत्येक शब्दके पश्चात्, अल्प विरामकी योजना करना चाहिये।

(घ) जब वाक्यमें दो शब्द अथवा वाक्य संयोजक अव्ययों द्वारा जुड़े हों तो, अल्पविरामकी कोई आवश्यकता नहीं है; परन्तु यदि वे वाक्यांश लम्बे हों तो, अल्पविरामकी योजना करना चाहिये।

(ङ) गौणवाक्यको प्रधान वाक्यसे पृथक करनेके लिये इस चिन्हको प्रयोगमें लाना उचित है।

(च) जब किसी सामान्य विषयपर अधिक लक्ष दिलाना हो, तो उसे वाक्यसे पृथक करनेके लिये, अल्पविरामकी योजना करते हैं।

(छ) जिन अव्ययोंके पीछे अपूर्ण क्रिया रहती है, उनके बाद अल्पविरामकी योजना करना चाहिये। इन अव्ययोंमें-से मुख्य ये हैं:-परन्तु, अवश्य, तब, तो, पर, अस्तु, अन्यथा, कि, कमसे कम, इन कारणोंसे, क्योंकि इत्यादि।

(२) अपूर्णविराम—ऊपर कहा जा चुका है कि इस चिन्हका प्रयोग हिन्दी ग्रन्थोंमें बहुत कम होता है, जो न होनेके बराबर है। इसका मुख्य कारण यह है कि, यह चिन्ह विसर्गके सदृश ही लिखा जाता है, और इस कारणसे, इन दोनोंका एक दूसरेके लिये भ्रम हो जाना अधिक सम्भव है। आंग्ल भाषामें भी इसका प्रयोग कम हो चला है और बहुधा इसके स्थानमें अर्द्धविरामकी योजनाकी जाती है। इस कारणसे इस चिन्हका लुप्त होजाना ही उत्तम है।

(३) अर्द्धविराम-(क) जब "दो" कहने योग्य विश्रामलेनेका अवकाश हो, तब इस चिन्हको प्रयोगमें लाना चाहिये।

(ख) जब एक वाक्यांशकी, दूसरे वाक्यांशके अर्थसे भिन्नता वा विपरीतताहो, अथवा घनिष्ठ सम्बन्ध न हो, तो इसकी योजना करना उचित समझना चाहिये।

(ग) जब किसी विषयका निर्णय कर, अथवा परिभाषा लिखकर, उसके उदाहरण देनेकी आवश्यकता पड़ती है, तब निर्णय और परिभाषाके पश्चात् और 'जैसे,' 'यथा,' 'उदाहरणार्थ,' इत्यादि शब्दोंके पहिले अर्द्धविराम प्रयोगमें लाया जाना चाहिये।

(घ) जब दो प्रधानवाक्य वा मिश्रित वाक्य एक संयुक्त वाक्यमें सम्मिलित होते हैं, तब इसकी योजना करना चाहिये।

(४) पूर्णविराम-इसके विषयमें अधिक वक्तव्य नहीं है। जब एक वाक्य पूर्णहो जाय अथवा जब "एक," "दो," "तीन," कहने योग्य समय प्राप्त हो, तब इसे प्रयोगमें लाना चाहिये। आंग्ल भाषामें भी इसके विषयमें लक्ष योग्य कोई नियम नहीं है।

(५) विस्मयादि बोधक या सम्बोधन—जब विस्मय अर्थात् खेद वा हर्षके उद्गार प्रकट किये जाते हैं, या किसीको पुकारा या चेताया जाता है, तब इसका प्रयोग होता है ऐसा ही नियम अन्य भाषाओंमें भी है।

(६) प्रश्नवाचक चिन्ह—इस विरामको उस वाक्यके पश्चात् प्रयोगमें लाना चाहिये, जिसके द्वारा बोलनेवाला किसी दूसरेसे कोई प्रश्न करता हो।

(७) कोष्टक—इनकी योजनाके नियम भी सरल हैं। जब वक्तव्य विषयको अधिक स्पष्ट करना हो, अथवा उसका पर्यायवाची शब्द देना हो, तो इनकी योजना की जाती है।

(८) आदेशक—इसके नामसे ही इसका अर्थ और लाभ सिद्ध होता है। कभी कभी यह चिन्ह, अल्पविराम और कोष्टकका भी काम देता है।

(९) योजक—इसको आंग्ल भाषामें हाईफन कहते हैं। जब दो पदों अथवा शब्दोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है अथवा जब हम उन्हें एक साथ बोलना अथवा उनका एकत्व प्रकट करना चाहते हैं, तब हमें इसकी योजना करनी पड़ती है। इसका रूप आदेशकके रूपसे लघु होता है।

(१०) उद्धरण—इसको आंग्ल भाषामें 'कोटेशन' या 'इनवरटेड कामाज़' कहते हैं। हिन्दीमें इसे उद्धरण' या 'युगलपाश' कहते हैं। आंग्ल भाषामें किसीके वक्तव्यको दो प्रकारसे लिखनेकी प्रथा है, जिनके नाम Direct और Indirect Narrations हैं। परन्तु, हिन्दीमें एकही प्रथा है। किसी महाशयके वक्तव्यको अविकल उद्धृत करनेमें युगलपाशकी सहायता लेकर लिखनेकी शैलीको आंग्ल भाषामें Direct Narration, स्पष्ट वा अविकारित वाक्य कहते हैं। यह शैली हिन्दी भाषामें नहीं है। परन्तु नवीनताके साथ इसमें भी नवीनता और श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। लेखकगण अब दोनों प्रकारके वाक्य उपयोगमें लाने लगे हैं। इसमें कोई हानि भी प्रतीत नहीं होती है। कारण कि, हम अपनी भाषाको उत्तम और सुचारु बनानेका जितना प्रयत्न करें, उतनाही अच्छा है। किसी प्रमाण अथवा लेखको अविकल उद्धृत करते समय इसकी योजना अवश्य करना चाहिये, कारण कि ऐसा करनेसे, वे वाक्य स्पष्ट प्रतीत होजाते हैं, जिससे असुविधा नहीं होती है; और असुविधा नष्ट करनेके लिये तथा सार्थकता बढ़ानेके लिये ही, इन सब विराम चिन्होंकी सृष्टि कीगई है।

(११) वर्जन—इनकी योजना करनेसे यह प्रतीत होता है कि कुछ लुप्त करदिया गया है अथवा वक्ता या लेखक कुछ बोलना चाहते थे, परन्तु किसी कारण वश रुक गये। जब किसी लेख या कविताके मध्यका कोई अंश लुप्त करदिया जाता है, तब इन चिन्होंकी योजना करना चाहिये।

(१२) त्रुटि—इसके विषयमें ऊपर कहा जा चुका है।

(१३) टिप्पणीसूचक चिन्ह—जब कोई फुट नोट अथवा वक्तव्य विषयपर नोट या टिप्पणी देना होता है, तब ऐसे चिन्होंको लगाकर नीचे विषय लिख दिया करते हैं।

(१४) निम्नलिखितका चिन्ह—इसकोभी प्रयोगमें लाना अत्यावश्यक है, कारण कि जब कोई प्रमाण, उदाहरण, अथवा किसीका वक्तव्य अविकल उद्धृत करना होता है, तब इसको प्रयोगमें लानेसे, भाषा शुद्ध और स्पष्ट होजाती है।

(१५) किसी शब्दके लघुरूप लिखनेकी आवश्यकता सदा सर्वदा पड़ती है; जैसे, बी० ए०, एम० ए०, इत्यादि। इसको प्रयोगमें न लानेसे शब्दका पूर्ण रूप लिखना पड़ेगा, जिससे बहुतसी असुविधाएं हुआ करेंगी।

ऊपरके वक्तव्यसे स्पष्ट ज्ञात होगया होगा कि हमें किसी भाषाका मुख न तकना चाहिये वरन् अपनी भाषाको स्वाश्रयी बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। इसी हेतुसे यहाँ इस दिशामें कुछ अल्प प्रयास किया गया है। पहिले और दूसरे प्रश्नोंके भी उत्तर दिये जाचुके हैं। सुतरां अब पिष्टपेषण करना निरर्थक सा प्रतीत होगा।

हिन्दीके सामयिक पत्रोंकी वर्तमान् दशा और उनके अधिक लाभकारी बनानेके उपाय ।

लेखक-श्रीयुत पंडित शंकरप्रसादमिश्र-सहायक सम्पादक श्रीव्यंकटेश्वरसमाचार, बम्बई ।

इस विषयपर मैं ऐसा कुछ लिख सकूंगा जो महत्वकी दृष्टिसे देखा जाय, इसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं, क्योंकि विषय गहन और सम्पादन-कला-कुशल विद्वानों द्वारा लिखे जाने योग्य है, सो मुझमें न तो वह विद्वता है और न अनुभव। तथापि इसपर जो भाव मेरे हृदयमें उद्भूत होतेहैं उन्हें आप लोगोंके सम्मुख इस आशापर उपस्थित करता हूं कि मेरी अल्पज्ञतापर रुष्ट न होकर आप सज्जनवृन्द मुझे क्षमा करेंगे ।

हिन्दीमें सामयिक पत्रोंकी वर्तमान् दशा सर्वांग सुन्दर न होनेपरभी कुछ सन्तोषप्रद है। उनको काम करनेके लिये सीमाबद्ध जो क्षेत्र मिला है उसके भीतरही उन्होंने बहुत कुछ काम किया है। जिसके कार्य्यकी सीमा निर्धारित होचुकी है, वह अमर्यादापूर्व्वक सीमा लाँघकर उन्नति-केन्द्रकी ओर कैसे जा सकता है। क्योंकि बल पूर्व्वक मर्यादा भंग करनेपर न्यायालय हाथमें दण्डलिये आगे आ खड़ा होता है और अपनी १२४ हाथ लम्बी अटूट रस्सीसे बाँधकर अभि-युक्तोंके कटघरेमें लेजाकर खड़ा करदेता है। अस्तु ।

हमें अभी उसी निर्धारित मर्यादाके भीतर काम करनेवाले समयिकपत्रोंकी वर्तमान् दशाका विचार करना चाहिये। पाश्चात्य देशोंमें दैव दयासे सब कामोंके करनेके लिये सुपास है। समयकी सानुकूलतासे प्रत्येक कार्यको सर्व्वांशमें पूर्ण करनेके लिये वहां पहिलेसे उपकरण प्रस्तुत रहते हैं। वहांसे "किसी तरह काम चलाओ" इस सिद्धान्तका देश निकाला भारतमें किया गया है। "किसी तरह काम चलाओ" यह सिद्धान्त एक असाध्य रोग होकर हमारे समाजका विनाश कर रहा है। वह समय और था जब "किसी तरह काम चलाओ लागू था। उस समय चांच-ल्यपूर्ण पाश्चात्य सभ्यताके प्रबल झकोरे हमारे ज्ञान-दीपको नहीं बुझा सके थे। उस समय अर्जुनकी भाँति हमें सन्देहयुक्त नहीं होना पड़ा था कि प्राच्य सभ्यता रूपी कर्म्मयोग श्रेष्ट है अथवा पाश्चात्य सभ्यतारूपी कर्म्म सन्यास। इस भ्रमात्मक अवस्थामें पड़े हुए हम जबतक पाश्चात्य पद्धतियोंद्वारा अपना काम करना न सीख लेंगे तबतक हमें अपनीभूल नहीं सूझेगी ?

अतः हमें हिन्दीके सामयिकपत्रोंकी दशाको यूरोपादि पश्चिमीदेशोंसे निकलनेवाले सामयिक-पत्रोंकी दशासे तुलना करनी चाहिये। ऐसा किये बिना हिन्दीके सामयिकपत्रोंकी दशाका पूर्ण ज्ञान न हो सकेगा ।

इंग्लैंड अमेरिकादि देशोंसे निकलनेवाले दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्रोंमें समाजकी रुचिको देखते हुए समयके अनुरूप ऐसे लेख निकलते हैं जो समाजके परम कल्याण कारी होते हैं। अपने अपने पत्रोंमें नवीनता लानेकी ओर हर प्रोप्राइटर और सम्पादक चेष्टा करता है। उनका ध्येय विषय यही रहता है कि जहांतक सम्भव हो उनका पत्र सर्व्वाङ्गपूर्ण और सामयिक आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला हो । ऐसे

पत्रोंको समाजभी अपनी पूर्ण सहायता देकर उनके संचालकोंको नया उत्साह प्रदान कर उन्हें अपने कार्य्यमें दक्ष बना देता है। समाजसे सहायता पाकर वे पत्र पानीपर कमलकी नाईं ऊँचा सिर किये उसके कल्याण और यशके लिये निरन्तर उद्योग करते रहते हैं।

वहाँ दैनिक पत्रोंमें घंटे घंटे और उससे भी कम समयकी नयी नयी खबरें अपने पत्रोंमें सबसे पहिले प्रकाशित करनाही सम्पादक और पत्रके स्वामीके आर्थिक लाभ तथा मान प्राप्तिके द्वार हैं।

काम करनेकी दो विधि हैं। उत्साह और उदासीनता। आप जानते हैं कि कोई भी मनुष्य जब अपना काम स्वयं करता है तब किस उत्साहसे करता है। और जब वही मनुष्य दूसरेका काम करता है तो उसका वह उत्साह कितना घट जाता है। उत्साहकी इस न्यूनाधिकताको लक्ष्यमें रख पाश्चात्यदेशोंके पत्र संचालक अपने अपने पत्रोंका यातो स्वयं संचालन करते अथवा दस पाँच मनुष्योंकी एक संस्था (कम्पनी) उसके संचालनार्थ संगठितकी जाती है।

पत्र संचालक लोग समाजकी रुचि तथा आवश्यकताको ध्यानमें रख वर्तमान् समयके अनुकूल भिन्न भिन्न विषयोंके उत्तमोत्तम लेख अपने अपने पत्रमें प्रकाशित करते हैं।

उपरोक्त कथनको सुन कोई कोई महानुभाव कहेंगे कि पाश्चात्यदेशोंके सामयिक पत्रोंका यह इतिवृत सुनानेसे क्या लाभ? उत्तरमें मैं यही कहूँगा कि जबतक हमारे सामने कोई उच्चादर्श नहीं रखा जायगा तब तक हम अपनेको सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण समझकर अपनी उन्नतिकी इति समझ चुप होकर बैठ रहेंगे।

यूरोपीय देशोंके सामयिकपत्रोंकी दशा सन्तोषप्रद होनेका कारण, समाजकी सहायता है। वहाँका व्यक्ति उत्तेजनाकी लहरोंमें पड़कर कर्मनिष्ट बन गया है। भारतमें व्यक्ति विश्वास छिन्नावस्थामें होनेसे भावी उन्नतिका बाधक हो रहा है। प्रत्येक सामयिक पत्रमें सम्पादकीय विभागके सहायतार्थ और भी कर्मचारी प्रस्तुत रहते हैं। वहाँकी इस उत्तम प्रथाकी मुक्तकंठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता कि जिस कामका आरम्भ करना होता है उसे आरम्भ करनेके पूर्व्व आरम्भ करने तथा भावी संचालन करनेके लिये प्रथमसे ही सब आयोजन ठीक कर लिये जाते हैं। योग्यसे योग्य पुरुष जिसका प्रभाव अधिक नहीं तो पत्रकी भाषा और जनता पर अक्षुण्ण रहता है, तथा जो औरोंका उन्नायक राजा-प्रजाके समस्त आवश्यक विषयोंका जाननेवाला, देशकाल वर्तमान्‌का पूर्णज्ञाता, सदाचारी, मृदुभाषी और धार्मिक होता है वही वहाँ समाचारपत्रोंका सम्पादक नियत होता है। जिसकी राजनैतिक योग्यता वहाँके प्रायः समस्त राजनीतिज्ञोंकी योग्यतासे अधिक नहीं तो तुल्य अवश्य होती है, वही प्रधान सम्पादकके पदपर नियुक्त होता है। जो समस्त विषयोंका पूर्ण पंडित तथा विश्वविद्यालयोंके उच्चकार्य्य संचालकोंका मान्य होता है वही सर्व्वमान्य पुरुष सामयिकपत्रोंका प्रधानतः सम्पादन करता है। उसके नीचे अनेक सहकारी सम्पादक सहायतार्थ नियत रहते हैं इन सहायकोंकी योग्यता तथा वेतन प्रायः प्रधान सम्पादकके तुल्य ही होते हैं। पत्रको देशकाल वर्त्तमानानुकूल, सर्व्वोपयोगी बनानाही छोटे बड़े सबका एक मात्र अभिप्रेत होता है।

सारांश यह कि पत्र संचालनमें जिन जिन विषयोंकी आवश्यकता होती है उनके पूर्ण करनेमें "काम निकलने दो" यह भारतीय अनुत्साहक सिद्धान्त काममें नहीं लाया जाता।

भारतीय अनेक भाषाओंके सामयिकपत्रोंकी वर्तमान् अवस्था और राष्ट्रभाषा हिन्दीके साम-

यिकपत्रोंकी वर्त्तमान दशामें भी बड़ा अन्तर है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उत्तरोत्तर वह अन्तर मिटता जाता है तथापि उस परिवर्त्तनकी गति बहुत मन्द है भारतीय अंगरेजी सामयिक पत्रोंका विषय जाने दीजिये। दूसरी देशीभाषाओं जैसे बँगला, मराठी प्रभृतिमें प्रकाशित होनेवाले पत्रोंकी दशासे भी हिन्दीमें निकलनेवालेपत्रोंकी दशाका मिलान करनेपर इने गिने पत्रोंको छोड़ शेष पत्रोंकी दशा हीन है। इस हीनताका पाप "किसी तरह काम चलने दो" सिद्धान्त माननेवालोंके मत्थे मढ़ा जासकता है। दूसरे यहाँके सामयिक पत्रोंकी विचित्र दशा है। यहाँ जो चाहे सो पत्र प्रकाशनके लिये उद्यत हो जाता है। वह न तो समयकी अनुकूलता वा प्रतिकूलतापर विचार करता है और न समाजकी आवश्यकताही जानता है। इसका जो परिणाम होना चाहिये वही होता है अर्थात् पत्रके दो चार अंक निकलकर उसका निर्वाण हो जाता है जो गिरते पड़ते चलते भी हैं उनके सम्पादकीय विभागके कर्म्मचारियोंकी दशा देख खेद होता है। कम योग्यताके पुरुष जो देशकल तथा राजा-प्रजाकी आवश्यकताओंमे निरे अनभिज्ञ होते हैं वे सहायक और कभी कभी प्रधान सम्पादकके पदपर नियुक्त किये जाते हैं। जिन्हें अंगरेजीसे किसी तरह हिन्दीमें अनुवाद करना आता है वे समाज एवं देशके कल्याणके दायित्वसे पूर्ण सम्पादकके पदपर बिठा दिये जाते हैं। वेतनभी उन्हें ऐसा मिलता है जिससे अधिक विलायती बनिहार एक सप्ताहमें कमा लेता है। उसपर तुर्रा यह कि कोल्हूके बैलकी नाईं आँखमें पट्टी बाँध सहकारी सम्पादकसे अंगरेजी लेखों समाचारों और तारोंका अनुवाद कराया जाता है। दैवकेमारे उन लोगोंसे लिखाईका इतनाकाम लिया जाता है कि परमात्मा उन्हें मनुष्य न बनाकर अंगरेजी अथवा इतर देशी भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवादकरनेकी सम्पादकीय मशीन बनाता तो उनकी आत्माको वह कष्ट तो न होता।

जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि "किसी तरह काम निकलने दो" सिद्धान्तकी छूतवाला रोग उन्होंको नहीं हुआ जो अर्थ कृच्छ्रनाके मध्यमें पड़े हैं प्रत्युत जिन्हें दैवने अपनी अपार दयासे वैभव सम्पन्न किया है उनपर भी इस रोगका अधिक प्रभाव पड़ा है।

एकतो हिन्दीमें सामयिकपत्रोंकी संख्याही नहींके बराबर है फिर जो हैं उनकी दशा देख कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। समाज और समयकी आवश्यकताओंपर लक्ष न रख पिष्टपेषण एवं पुनरावृत्तिवाले हिन्दी-सामयिक-पत्रोंसे जनताकी अपेक्षित आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होतीं। और इसीलिये जनतामें इनका भी आदर नहीं होता।

मुझे अपने आलस्यपर खेद है कि जिसके कारण हिन्दीमें प्रकाशित होनेवाले दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि भिन्नभिन्न पत्रोंकी संख्या और उनके नाम जाननेका प्रयास नहीं उठाया। तथापि भारतके समस्त प्रधान सामयिकपत्रोंकी तालिका नीचे लिखे अनुसार है।

प्रान्त	दैनिक	साप्ताहिक	मासिक
बम्बई	श्रीव्यंक-टेश्वर	श्रीव्यंक-टेश्वर	१ जैनहितैषी २ चित्रमयजगत
मद्रास	+	+	+
बङ्गाल	१ भारत-मित्र २ कलकत्ता-समाचार	१ हिंदी-बंगवासी २ भारत-मित्र	+
युक्तप्रदेश और मध्यभारत	+	१ अभ्युदय २ प्रताप ३ हिन्दी-केशरी ४ जयाजी-प्रताप ५ अवध-वासी ६ मल्लारि-मार्तंड ७ शुभ-चिंतक	१ सरस्वती २ मर्य्यादा ३ विद्यार्थी ४ स्वदेश बांधव ५ नागरी प्रचा-रिणी पत्रिका ६ स्त्री दर्पण
मध्यप्रदेश	+	मारवाड़ी	१ हितकारिणी २ प्रभा ३ बालाघाट समाचार
पंजाब	+	दिल्ली-समाचार	+
बिहार उड़ीसा	+	१ मिथिला-मिहिर २ पाटलि-पुत्र	कमला

इनके अतिरिक्त छोटे मोटे अनेक नगण्य साप्ताहिक और मासिक आदि सामयिकपत्र उपरोक्त प्रान्तोंसे प्रकाशित होते हैं जिनका प्रसार वहीं आसपास थोड़ी दूर तक है। उनका जीवन शोकप्रद और अब तब है। विज्ञापन-दाताओंमें भड़कीले तथा देशभाइयोंको एक आनेकी वस्तु देकर एक रुपया लेनेकी जबतक पूर्णशक्ति बनी है तबतक उनकी टिमटिमाती हुई ज्योति समाजके सम्मुख प्रकाशित है। ऐसे सामयिकपत्र—संचालकोंका ध्येय, लोक और समाजके कल्याणकी ओर नहीं प्रत्युत अपनी जीविका उपार्जनकी ओर रहता है। इस श्रेणीके दैनिक, साप्ताहिक और मासिक विज्ञापनके सहारे अपना पेट भर विज्ञापनदाताओंको भी दो पैसे उपार्जित करा देते हैं। ऐसे पत्रोंसे समाज और देशका कोई हित नहीं होता। ऐसे पत्र स्वयं तो कलङ्कित होतेही हैं पर प्रधान साम-यिकपत्रोंके नाममें बट्टा लगानेवाले हैं। उनका नाम लिखकर मैं उनके संचालक तथा सम्पादकोंका निरादर करना नहीं चाहता। किंतु उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि केवल अपने ही लाभालाभका विचार छोड़ वे अपने पत्रोंको उपस्थित कालानुसार समाजोपयोगी बनावें।

प्रधान सामयिक पत्रोंमें भी अनेक पत्रोंकी दशा उपरोक्त रङ्गबिरङ्ग विज्ञापनवाले पत्रोंसे कुछही अच्छी है। कई एकतो केवल अपने पुराने-पनके कारणही ग्राहकों तक पहुँच जाया करते हैं। दैनिकपत्रोंमें भारतमित्र और कलकत्ता समाचार न्यूनाधिक समय और समाजकी आवश्यकताएँ ध्यानमें रख तदनुकूल विषयोंपर अपने सार-गर्भित लेख प्रकाशित कर हिन्दी संसारका अमित हित कर रहे हैं। उनमें भी भारतमित्रका आसन सर्वोच्च है। उसका विषय निर्वाचन, नूतन शब्दरचना और लेखशैली प्रशंसनीय है। साप्ताहिक पत्रोंमें हिन्दी बङ्गवासी, अभ्युदय, प्रताप, हिन्दीकेशरी, पाटलिपुत्र प्रभृति उल्लेख

योग्य हैं। मासिकपत्रोंमें सरस्वतीका सम्पादन जिस बुद्धिमत्ता, शुद्धता और सफाईसे होता है वैसा दूसरे किसी मासिक पत्रका नहीं होता।

पत्रमें जैसेही महत्वके लेख होंगे वैसेही वह समाजप्रिय और लोकोपकारी होगा। उन लेखोंमें जितनी नवीनता सम्पादक दिखा सकता है उतनी ही उसकी योग्यता सराही जाती है। जिस लेखमें नवोनता नहीं उसे पढ़नेवाले उठाकर एक ओर फेंक देते हैं। क्योंकि वर्तमान् समय हर विषयमें नवीनताकी खोज करता है। नवीनतारहित शब्दाडम्बरपूर्ण लेखसे पढ़नेवालेको मनोरंजनभलेही हो पर संसारकी नवीनतासे दूर रहनेके कारण नवीनता दक्ष विद्वानोंके सम्मुख अपंडितसा दिखता है। अतः मेरा नम्रनिवेदन है कि जो लोग अंगरेजी या अन्य बँगला, मराठी आदि भाषाओंके लेखोंका शब्दशः अनुवाद करके दूसरोंके ही विचार समाजके सामने सदा रखेंगे तो उन्हें अपने विचार प्रकट करनेका समय कब मिलेगा? किसी भाषाके महत्वपूर्ण लेखका अनुवाद करना बुरा नहीं है। अपनी भाषाकी पुस्तकोंमें जो बातें पहिलेसे लिखी हैं वे नवीनतायुक्त होकर दूसरीभाषाके पत्रोंमें प्रकाशित हों तो उन्हें ज्योंका त्यों अपनी भाषाके पत्रोंमें लिखकर पाठकोंका ध्यान उस नवीनताकी ओर आकृष्टकर उन्हें बतादेना चाहिये कि यह विषय नया नहीं किन्तु पुराना है साथही अपने यहाँका है इसमें विशेषता है तो केवल नवीनताकी जिसे हम अपनी पुस्तकोंमें नहीं पाते। जीवनभर जो अन्यभाषाके लेखोंका अनुवादमात्र पाठकोंके सम्मुख रखा करेंगे तो उनसे देशकी भलाईका होना दुर्लभ है।

जैसे इतर देशोंके सामयिक पत्र अपने देशकी वीर रमणियों और उन्नायकोंकी आदर्श जीवनी अपने पाठकोंके सम्मुख रख उनके हृदयमें जातीयताके भाव पैदा करते हैं उसीतरह हमें भी (नकल करनेकी प्रथाको छोड़) पाठकोंमें अपने जातीय लेखों द्वारा जातीयताके भाव जागृत करना चाहिये।

राजनैतिक विषयको तो हमारे यहाँके अनेक समाचारपत्रोंने हौआ समझ रखा है। वे कहते हैं इस शब्दका नाम छोड़ो बड़ाभयानक शब्द है। पत्रमें इस शब्दके लिखतेही न जाने क्या बला सिरपर आजाय। किन्तु ऐसी समझ सब पत्र संक्षरक और सम्पादकोंकी नहीं है। जिस पत्रके सम्पादक और स्वामी इस विषयसे अनभिज्ञ हैं वे ही इस लोकोपकारी कार्य्यसे अलग रहनेकी सम्मति देते हैं। पर जिन्होंने इस विषयके पूर्ण रहस्यको जान लिया है वे इस लोकोत्तर विषयपर अपने ऐसे ऐसे मनोभाव प्रकट करते हैं जो राजा प्रजा दोनोंके हितसे सम्बन्ध रखते हैं। राजनैतिक विषय बड़ा व्यापक और रहस्यमय है।

जो कुछ राजनैतिक विषय हमारे सामनेसे रोज गुजरता है उसे देखकर भयके मारे यदि हम अपनी आँखे मूंदलें तो बेहतर होगा कि लोकोपकारी सम्पादकीय पदको ही हम त्याग दें। उसपर रहकर अपने देशकी भलाईके मार्गमें कंटक न बने रहें। कई सौरंक्षक और सम्पादक अपने पत्रोंमें शिवाजी, तिलक, एनीबिसेंट प्रभृति लोकोपकारी सज्जनों तथा महिलाओंके नाम लिखनेसे डरते हैं पर देखना चाहिये कि जर्मनकेसरका नाम लेनेसे क्या सरकार हमें राजद्रोही समझती है? जहाँतक हम सोचते हैं सरकारका ऐसा विचार कभी नहीं है।

जो सामयिकपत्र राजनैतिक विषयकी उपेक्षाकर उसमें भाग नहीं लेते वे पत्रके एक कर्त्तव्यकी हत्या करते हैं। आश्चर्य्यकी बात तो यह है कि जिस राजनैतिक विषयकी इतनी

व्याप्ति है, जिससे उठते बैठते हमें काम पड़ता है, जिसको जाने बिना हमें पद पदपर आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं उसी आवश्यक विषयकी उपेक्षा करनेकी हमें शिक्षा दीजाती है। शारीरिक और सामाजिक उन्नतिके साथ राजनैतिक उन्नति न करनेवाला राष्ट्र, कब उन्नत हुआ और होसकता है? अत: हिन्दीमें अनेक सामयिकपत्र जो इस विषयसे विरक्त रहते हैं उन्हे उचित है कि वे इससे अनुराग करें। इस बातसे कोई यह न समझले कि वैद्यक, स्त्रियोपयोगी अथवा अन्यान्य पत्र जो सिद्धान्त विशेषसे सम्बन्ध रखते हैं अपने सिद्धान्तको छोड़ राजनैतिक विषयकी ओर दौड़ें। मेरा मतलब हिन्दीके उन पत्रोंसे है जिनके सिद्धान्तके अन्तरगत यह राजनैतिक विषयभी प्रधान विषयोंमेंसे एक माना गया है।

योंतो भारतके सभी प्रान्तोंके सामयिक पत्रोंकी दशा सन्तोषप्रद नहीं हैं पर कोई कोई तो बहुतही शोचनीय दशामें अपना कालयापन करते हैं। कोई अपने पुराने ग्राहकोंसे नये ग्राहक बनानेकी प्रार्थना करता है तो कोई व्यक्ति विशेष से आर्थिक सहायताके निमित्त करसम्पुट हो विनय। ऐसे पत्रोंको स्मरण रखना चाहिये कि निर्बलका पक्ष कोई कठिनाईसे लेता है। इसलिये वे अपने परिश्रमसे सबलता प्राप्तकर अपना प्रभाव समाजपर डालें। जो हमसे विद्वान और अन्य बातोंमें निरालापन रखता है उसीका हम विशेष आदर करते हैं। अत: "गुणा: सर्वत्र पूज्यन्ते" के अनुसार यातो वे अपना उत्थान करें या अन्त। ऐसा किये बिना कितनेक सामयिकपत्रोंसे देश और समाजकी वास्तविक सेवा होना दुरूह है।

जो पत्र निरंतर घाटेकी बातपर रोया करते हैं उन्हें चाहिये कि घाटेके कारणको अन्यत्र न खोजकर अपने पत्रोंमें ही ढूँढ़ें। अपने दोषोंपर विचार न कर जो उसके परिणाम पर दूसरोंको लांछन देते हैं वे विचार और दूरदर्शितासे अनेकों कोस दूर हैं। दूसरोंको बुरा बतानेवाले स्वयं बुरे होते हैं। हम देखते हैं कि इतने बड़े हिन्दीभाषियोंके समूहमें प्राय: किसीभी पत्रकी ग्राहक संख्या १५-२० हजार नहीं है। १५-२० हजारकी कौन कहे किसी किसी पत्रके एक हजार भी ग्राहक नहीं हैं। इसमें भी यदि विचारकर देखा जाय तो समाचार-पत्रोंके संचालकों तथा सम्पादकोंके सिवा; समाजपर दोष नहीं दिया जासकता। यदि समाजके लोग अपने अपने नामसे पत्र नहीं मँगाते और माँग जाँचके ही अपना काम चलाते हैं तो इसमें समाजका दोष नहीं प्रत्युत पत्रोंका ही दोष है कि वे समाजमें आत्मगौरव उत्पन्न नहीं कर सकते। जबतक समाजमें आत्मगौरव गुण प्रादुर्भूत न होगा, जबतक समाजके लोग यह न समझने लगेंगे कि दूसरोंसे कोई वस्तु— जिसे हम अपनी भुजाओंके बल प्राप्त कर सकते हैं— माँगना अपने गौरवको मिट्टीमें मिला देनेवाला है तबतक माँगकर पत्र पढ़नेका पृथा अमर रहेगी। समाजको आत्मगौरवकी शिक्षादेना क्या सामयिकपत्रोंका काम नहीं है। पर देखा जाता है कि बहुधा इस विषयकी उपेक्षा हुआ करती है।

ऊपरके वर्णनसे पाठकोंको हिन्दीके सामयिक पत्रोंकी वर्तमान् दशाकाअधिक नहीं तो आभास-मात्र अवश्यही हो चुका होगा। अब आगे हम पत्रोंके लाभकारी बनानेके उपायोंका यथामति वर्णनकर इस लेखको पूर्ण करेंगे। हमारे विचारसे विशेष विस्तारके साथ प्रत्येक उपायका अलग अलग वर्णन न कर संक्षेपसे एक तालिकामें उनको लिख देना उत्तम होगा।

(१) संचालकोंकी संख्या यथेष्ट हो और परिमाणसे अधिक कार्य्य उनसे न लिया जाय।

(३) भिन्न भिन्न कार्य्यके लिये भिन्न भिन्न सम्पादक हों। एकही कर्त्तासे अनेक कार्य्य न कराये जायँ। जैसे किसी सम्पादकसे लेख लिखाना और समालोचनादि कई अन्य विषयोंकी पूर्त्ति कराना। क्योंकि ऐसा करनेसे कार्य्यकी रोचकता नष्ट हो जाती है। रोचकताके अभावसे अनिच्छा होती है और यह भी ग्राहकोंकी कमीका एक कारण है।

(४) पत्रकी आर्थिक दशा सन्तोषप्रद हो। किसी पत्रको यदि कोई अकेला व्यक्ति न चला सके तो उसके संचालनार्थ कम्पनीका संगठन किया जाय। पत्र संचालनमें कम्पनीसे जो लाभ हैं उनके उदाहरण भारतमित्र और अभ्युदय हैं।

(५) सम्पादककी योग्यतानुसार पत्रकी भी स्थिति होती है अतः जहाँतक सम्भव हो बहुतही सदाचारी अनुभवी और विद्वान व्यक्ति उस पदपर नियुक्त किया जाय। उससे यदि कोई यह कहे कि कुछ लेकर मेरे लेख छाप दो या पत्रमें मेरी तस्वीर प्रकाशित करदो तो उसका मन सतीकी नाईं उन बचनोंसे न डिगे।

(६) वर्त्तमान परिपाटीके अनुसार प्रत्येक पत्र अपने एजंट रखे।

(७) प्रायः सब प्रकारके उचित विषयोंका उल्लेख पत्रोंमें होता रहे।

(८) पत्रोंकी भाषा सरल और सरस हो। अशुद्ध शब्दों और अक्षरोंका छपना बन्द किया जाय।

(९) पत्रोंमें जो विषय रहें वे व्यक्तिगत न होकर सार्व्वजनिक हों।

(१०) भिन्न भिन्न पाठकोंकी भिन्न भिन्न रुचि होती है अतः कई एक पाठक ऐसे हैं जो केवल उपन्यास पढ़नेके प्रेमी हैं। ऐसोंके लिये पत्रोंमें उपन्यासका कुछ अंश रहे किन्तु वह लैला मजनूके प्रेमकी कहानी न हो। वरन समाजके किसी आदर्श पुरुषका जीवन चरित हो।

(११) सम्भव और उचित हो तो पत्रोंकी एक परिषद "पत्र-परिषद" नामसे संगठित हो। इस परिषदका अधिवेशन सम्मेलनके साथही हुआ करे। इसमें प्रत्येक पत्रके संचालक वा सम्पादक अपने अपने पत्रकी वर्षभरकी स्थितिका वर्णन सुनावें। इस परिषदके लाभोंका वर्णन करनेकी आवश्यकता रहतेभी विस्तार भयसे मैं नहीं लिखता।

(१२) पत्रोंकी छपाई, सफाई और कागज टिकाऊ हो। मासिक पत्रोंका आवरण चटकीला भड़कीला रहे।

(१३) हिन्दी भाषाभाषी राजा महाराजाओंसे पत्रकी संरक्षकताकी प्रार्थना की जाय।

(१४) दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रोंको हरएक बड़े बड़े नगरोंमें अपने विश्वस्त संवाददाता भी रखने चाहिये। और जहाँ तक होसके नये और विश्वस्त संवाद ही पत्रमें प्रकाशित करना चाहिये!

औरभी बहुतसे ऐसे उपाय हैं जो इस सूचीमें बताये आसकते हैं पर विस्तार भयसे ढिठाईकी क्षमा मागता हुआ लेखनीको अब विश्राम देता हूं।

मध्यप्रदेशकी क़ानूनी हिन्दी। ‡

लेखक—एक हिन्दी प्रेमी।

हिन्दुस्तानके और और भागोंके समान मध्यप्रदेशमें भी सन् १८३५ तक अदालतोंकी भाषा फ़ारसी रही। इसके पश्चात् जब कचहरियोंमें देशी भाषाओंको स्थान मिला, तब प्रान्तीय जनोंकी अदूरदर्शिता, अज्ञानता अथवा चापलूसीके कारण मध्य-प्रदेशकी अदालतोंने हिन्दीके बदले उर्दूको आश्रय दिया। पाठशालाओंमें अवश्य हिन्दीका प्रचार रहा। हिन्दीकी पाठय पुस्तकें सन् १८३५ के पहिले भी प्रचलित थीं और आज भी प्रचलित हैं, तथापि लगभग तीस वर्षतक यह तमाशा रहा कि जिन स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ाई जाती थी उनमें भी पत्र और रजिस्टर आदि उर्दूमें लिखे जाते थे। भाषाका ऐसा बखेड़ा हिन्दी-भाषी प्रदेशोंको छोड़कर और कहीं उत्पन्न नहीं हुआ और न आज भी बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंको किसी प्रतियोगिनी भाषाका सामना करना पड़ता है। बेचारी हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे दुर्भाग्यवश समय समय पर कई उतारचढ़ाव सहने पड़े हैं। आनन्दका विषय है कि यद्यपि हम लोगोंको बड़ा परिश्रम, समय और द्रव्य लगाना पड़ा, तथापि हम लोग अपनी लुप्त प्राय भाषाका उद्धार करनेमें समर्थ हो रहे हैं और सम्भव है कि हम इसे भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें भी सम्मानित करा सकें।

कचहरियोंमें उर्दूका प्रचार होनेके कुछ वर्ष बाद ही, लोगोंको उसकी शब्दावली और लिपिकी कठिनाइयाँ प्रतीत होने लगीं और उसके विरुद्ध जहाँ तहाँ आन्दोलन होने लगा। इस आन्दोलन-का विरोध करनेवाले भी कुछ लोग थे, जिन्होंने अपने धनके लाभके आगे बारह करोड़ लोगोंके सुभीतेके ऊपर पानी फेरनेका भरसक प्रयत्न किया और उनको कुछ सफलता भी हुई। संयुक्त-प्रदेशमें तो कचहरियोंकी भाषा हिन्दी न हो सकी, परन्तु मध्यप्रदेश और बिहारमें सरकारको क़ानूनी भाषा हिन्दी माननी पड़ी। हमें इस परिवर्तनके आरम्भ का ठीक ठीक समय ज्ञात नहीं, पर आजसे अनु-मान तीस वर्ष पहिलेसे मध्यप्रदेशकी अदालतोंमें हिन्दीका प्रचार है और यह लगभग इतनेही वर्षोंका फल है।

यद्यपि मध्यप्रदेशके सरकारी कागज-पत्रोंमें कचहरियोंकी भाषाका नाम हिन्दी पाया जाता है (हिन्दी अक्षर नहीं, किन्तु भाषा), तथापि व्यवहारमें भाषा वही अर्थात् उर्दू आज तक प्रचलित है। इस राज-भाषाका यहाँ तक मान है कि जिन डिप्युटी इन्स्पेक्टरोंकी अधीनता-में हिन्दी पढ़ाई जाती है, वे भी जब हिन्दी-स्कूलों-के मास्टरोंको हिन्दी-अक्षरोंमें हुक्म भेजते हैं, तब इस प्रकारकी डरावनी भाषा लिखते हैं कि "चूंकि इस क़ायदेकी पाबन्दी निहायत लाज़मी है, लिहाज़ा हुक्म दिया जाता है कि जो मास्टर इसके ख़िलाफ़ काररवाई करेगा उसे नुकसान उठाना पड़ेगा'। इस अनुग्रहके पलटेमें मास्टर लोग भी "हुज़ूरसे तीन योमको रुख़सतके लिये दरख़्वास्त हाज़ा गुज़रानकर उम्मेद करते हैं"। अब कुछ दिनोंसे मास्टर लोगोंने हुज़ूरको श्रीमान् पद दिया है, जिसे उनकी कृपाही समझना चाहिये।

हम यहाँपर मध्यप्रदेशकी क़ानूनी हिन्दीका

‡ यह लेख सम्मेलनमें श्रीयुत बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय द्वारा पढ़ा गया था। वही आषाढ़ १९७४ की सरस्वती में छपा है।

एक साधारण उदाहरण देकर इस भाषाके सम्बन्धकी और और बातें आगे लिखेंगे। यह उदाहरण वकालतनामोंसे लिया गया है जिन पर पढ़े लिखे लोगोंको भी आँख मूँदकर हस्ताक्षर करना पड़ता है। उदाहरण यह है—

मनके·········· ·· ··········

जो कि मुकद्दमे सदर में वास्ते पैरवी व काररवाई अपनी तरफ़से ··········वकील अदालतेन के अपना वकील मुक़र्रर करके इक़रार करता हूँ व लिखे देता हूँ कि इस्तसनाय दौरा वकील मौसूफ़ जो काररवाई व पैरवी हमारे जानिब से करें हमको जुमला साख्ता परदाख्ता वकील साहिब ममदूहका क़बूल व मंज़ूर है।

इस उदाहरणमें "सदर" "जानिब" "मौसूफ़" "ममदूह" और "जुमला" पारिभाषिक शब्द नहीं हैं; इसलिये उनके बदले क्रमशः "ऊपर लिखा", "तरफ़", "कहा हुआ" और "सब" बिना किसी अर्थ-दोषके आ सकते थे। "साख्ता और परदाख्ता" अँगरेजी के Done anp Effected का अनुवाद हैं; पर जिस प्रकार अँगरेजी-शब्द Do और Effect विशेषार्थी मान लिये गये हैं उसी प्रकार हिन्दीके "करना" और "बनाना" भी विशेष अर्थमें लिये जा सकते थे। जो लोग 'साख्ता' परदाख्ता"के Done and Effected का भाषान्तर समझते हैं, वे लोग "किया और बनाया" को, भी, वैसाही समझ सकते हैं; क्योंकि ऊपर लिखे फ़ारसीके वाक्यांशमें कोई ऐसी विशेषता नहीं है, कि उसके सिवा कोई दूसरा वाक्यांश वैसा अर्थ न दे सके। उसका प्रचार भी इतना अधिक नहीं है कि वह अपढ़ लोगोंको "मुद्दई" के समान परिचित हो।

इस प्रकारकी क्लिष्ट क़ानूनी भाषाको और भी क्लिष्ट करनेके लिये जिन लोगोंने प्रयत्न किया है उनमें छिंदवाड़ेके माननीय राय साहिब मथुराप्रसाद विशेष उल्लेखके योग्य हैं। आपकी लिखी हुई विचित्र क़ानूनी हिन्दीका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

"उस डिग्री में जो बहक़ मालिक ज़मीन किसी ऐसी नालिश में सादर की जावे, तादाद मावज़ा की कि जो मुद्दई के नुक़सानी या बदहशिकनी के पाना वाजिब हो दर्ज की जायगी"।

आनन्दका विषय है कि सरकारी क़ानूनी हिन्दीमें कभी कभी सुधारके कुछ चिन्ह दिखाई पड़ते हैं; जैसे,

नमूना [च]

एक्ट सन् १८९४ की दफ़ा ९ ज़िमिन ३ के अनुसार इन्तकाल नामा (अर्थात् ज़मीन के लेने का एक्ट)।

इस उदाहरणमें दो संस्कृत-शब्द आये हैं— "अनुसार" और "अर्थात्"। दूसरा उदाहरण यह है—

"इस लेख के द्वारा तुमको इत्तला दी जाती है कि तुम निज डील व मुख़्तार के द्वारा कचहरी में हाज़िर होओ"।

इतना होनेपर भी अभी तक कोई सुधार निश्चित और स्थायीरूपसे नहीं हुआ। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब कोई अनुवादक किसी प्रकारकी उन्नति करता है तब उसके उत्तराधिकारी या तो उस पर ध्यान नहीं देते या उस उन्नतिकी अवनति कर डालते हैं। एक बार सागरके एक ज़िला जजने यह आज्ञा दी थी (जिसका विरोध किसीने नहीं किया) कि हमारी अदालतमें जो प्रार्थनायें उपस्थित की जायँ वे शुद्ध हिन्दीमें हों। इस आज्ञासे लेखक लोगोंको थोड़े ही दिनोंमें इतना अभ्यास हो गया कि उन्होंने फ़ारसी-अरबीके डरावने शब्द लिखना छोड़ दिया। वे ऐसी भाषा लिखने लगे जिसे एक साधारण देहाती भी बहुत कुछ समझने लगा। यह उन्नति थोड़े ही

दिन रही; क्योंकि ज्योंही उक्त महाशयकी बदली दूसरे स्थानको होगई त्योंही पहिले स्थानके लेखक फिर अपनी पुरानी धूम मचाने लगे। इसी प्रकार एक सेशनजजने यह मत प्रकट किया था कि जब सरकारकी ओरसे हिन्दी-भाषाकी आज्ञा है तब कचहरियोंमें फ़ारसी-अरबी-शब्दोंसे पूर्ण-भाषा क्यों प्रचलित है। खेद है कि इस बातका अर्थ ही कोई नहीं समझ सका।

कचहरीकी हिन्दीमें लेखक लोग फ़ारसी-अरबीके शब्दोंका प्रचार कभी कभी विवश होकर करते हैं; क्योंकि कई एक पारिभाषिक शब्दोंके लिए हिन्दी-शब्द नहीं मिलते, जैसे "Issue" के लिए "तनकीह" के सिवा आज तक कोई दूसरा शब्द ही सुननेमें नहीं आया। ऐसी अवस्थामें संस्कृतज्ञ वकीलोंका यह कर्तव्य है कि वे हमारे प्राचीन शब्दोंका उद्धार करें। सुनते हैं, ऐसा प्रयत्न साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समिति कर रही है। यदि यह प्रयत्न सफल हो जाय और एक क़ानूनी कोष तैयार हो जाय, तो क़ानूनी हिन्दीकी समस्याकी पूर्ति शीघ्र ही हो जाय।

जिस उदासीनतासे हम अपनी भाषा ही प्रायः खो चुके थे; उसी उदासीनतासे हम क़ानूनी भाषापर भी कोई अधिकार नहीं रख सके। यदि ऐसा न होता तो क्या हमारी ही चुनी हुई म्युनिसिपलकमेटी हमें ऐसी भाषा लिख कर भेजती।

"हस्बुल हुक्म कमेटी तुमको लिखा जाता है कि तारीख़ पहुँचने नोटिस से आठ रोज़ के अन्दर अपना मकान तोड़ कर ज़मीन साफ़ कर दो। अगर तुम हुक्म सदर की तामील नहीं करोगे, तो बमूजिब एक्ट १६ सन् १९०३ ईसवी, ख़िलाफ़, हरकत म्युनिसिपल कमेटी, दफ़ा ९२, निस्बत तुम्हारे कारवाई अदालत फ़ौजदारी से की जायगी"।

इस नोटिसमें भला "हस्बुल" की क्या ज़रूरत थी? क्या 'बमूजिब" जो नोटिसके पिछले भाग में आया है पहले भागमें लानेसे मकान न तोड़ा जाता? और फिर सीधी रचनाके बदले उलटी रचनासे लाभ ही क्या है? अगर "तारीख़ पहुंचने नोटिस से" के बदले "नोटिस पहुँचनेकी तारीख़ से" लिखा जाता तो क्या नोटिसकी तामीली ही न होती या वह तारीख़के पहिले ठिकाने पर न पहुँचती? फिर इस नोटिसमें जो हुक्म सदर लिखा है, उससे यह धोखा हो सकता है कि यह हुक्म सदरका है अथवा शहरका? अगर "ऊपर लिखा हुक्म" लिखा जाता तो क्या हुक्म का प्रभाव पूरा पूरा न पड़ता?

म्युनिसिपल कमेटीकी ऐसी बनावटी बोलीका उत्तर सरकार भी उसी बोलीमें देती है, जिसका नमूना यह है—

"सरकारी अफ़िसरान व म्युनिसिपल कमेटियान के तअल्लुक़ात बाहमी अच्छे रहे। इत्तफ़ाकसे एक दो मामलों में जाँचकी कोताही से खयानतें हुईं और बरार के कमिश्नर साहिब उमरावती शहर की म्युनिसिपालटी का कारोबार ठीक तौर पर न चलने की तरफ़ फिरभी तवज्जह दिलाते हैं; लेकिन आम तौर पर देखा जाय तो इस अमकी साफ़ और काफ़ी अलामतें हैं कि अब शहर के इन्तज़ाम के बारे में सही खयालात लोगों के ज़िहन-नशीन होते जा रहे हैं।"

जिस लेखसे* ऊपरका लेखाँश लिया गया है उसमें अरबी-फ़ारसी-शब्दोंकी जो बहुतायत है। उसका पता इस लेखाँशसे लग सकता है। पर उस लेखमें जो दो चार संस्कृत-शब्द, जैसे सभा, सोच-विचार, मुख्य, उत्तरी और प्रान्त आ गये हैं उनके उपयोगके कारणोंका विचार करनेसे कई शङ्कायें उत्पन्न होती हैं। ये शब्द या तो अनुवादककी भूलसे घुस पड़े हैं या हिन्दीके बदले,

* नवम्बर—१६/७.१६.१ सीमा सो० और म्यु० १२-१-१६

उर्दू लिखते समय, ये शब्द धोखेसे छूट गये हैं। इनके उपयोगका एक कारण यह भी हो सकता है कि लेखकने कदाचित् क़ानूनी भाषाको हिन्दीका बहिष्कार करनेके कलङ्कसे बचानेकी चेष्टा की हो। जो हो, यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि हिन्दीके प्रचारके साथ साथ उसके शब्द कचहरी के द्वार तक भी पहुँचने लगे हैं। हम लोगोंको इस शुभ शकुनके साथ अब अपना कार्य्य उत्साह-पूर्वक करनेमें सङ्कोच न करना चाहिये।

कुछ लोगोंका मत है कि क़ानूनी भाषा व्याकरणसे शुद्ध तथा मुहावरेदार होती है; पर कमसे कम मध्यप्रदेशकी भाषा तो सदैव ऐसी नहीं होती। नीचे जो उदाहरण दिये जाते हैं उनसे जान पड़ेगा कि कभी कभी क़ानूनी हिन्दी, अँगरेज़ीका शाब्दिक अनुवाद होनेके कारण, बे-मुहावरा हो जाती है और कभी कभी स्वतंत्र अनुवाद होनेपर भी उसमें व्याकरणकी भूलें रहती हैं।

(क) नई आबादीमें मकान बाँधनेके लिए जगहों की ज़रूरत नहीं रही है।

"मकान बाँधना" मराठी मुहावरा है और जान पड़ता है कि इसकी उत्पत्ति नागपुरसे हुई है। "जगहों" लिखनेकी भी आवश्यकता नहीं; केवल जगह कहनेसे काम चल सकता है।

(ख) वे जायदाद का इन्तक़ाल उन शख़्सों के फ़ायदे के लिये जो हिनोज़ पैदा न हुए हों, उन क़ायदों की पाबन्दीके साथ, करें जिसका बयान इस में माबाद इसके किया गया है*।

इस उदाहरणमें "जिसका" शब्द सन्दिग्ध है और सन्दिग्धता मिटानेके लिए ही कहा जाता है कि क़ानूनी हिन्दीमें उर्दू शब्दोंकी आवश्यकता होती है। यदि "जिसका" शब्द क़ायदोंके लिए आया है तो वह बहुवचन में "जिनका" होना चाहिए और यदि वह "पाबन्दी" से सम्बन्ध रखता है तो यह वाक्य ऐसा होना चाहिए कि क़ायदोंकी उस पाबन्दीके साथ करें जिसका बयान इत्यादि। फिर इस लेखांशमें उलटी रचनासे अर्थ भी उलट-पलट हो गया है। इस उदाहरण में जो "हिनोज़" और "माबाद" शब्द आये हैं, उनके विषयमें आक्षेप करना अनावश्यक है।

(ग) उस सूरतमें भी जबकि बख़्शनेवाले को हिबा के वक्त एक ही बच्चा ज़िन्दा हो।

इस वाक्यमें "बख़्शनेवालेको" के बदले "बख़्शनेवालेका" या "के" होना चाहिए, क्योंकि पहला मुहावरा मराठीका है। इस उदाहरणमें "उस सूरतमें भी" ये शब्द अनावश्यक हैं, क्योंकि इसकी जो मराठी छपी है उसमें केवल "ज़री" (यदि) शब्द है, जिससे जान पड़ता है कि हिन्दीके प्रक्षिप्त शब्दोंकी आवश्यकता नहीं है। अँगरेज़ीके "In case" का अर्थ "जब" से पूरी तरह निकल सकता है।

कचहरियोंमें अर्ज़ीनवीस लोग भी बैठे बैठे हिन्दी-भाषाका संहार किया करते हैं। एक तो वे बहुधा अक्षरोंके मूढ़े नहीं बाँधते और दूसरे ऐसी घसीट लिपि लिखते हैं कि उसे पढ़नेके लिए कभी कभी उन्हें स्वयं अदालतमें जाना पड़ता है। फिर वे लिखनेके वेगमें कई अक्षरोंको एक दूसरेमें मिला देते हैं, जैसे:—नहीं लिखते समय न और हीं मिला कर "न्हीं" कर देते हैं। हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि ये कदाचित् फ़ारसी की "निहो" लिखनेकी चेष्टा करते हैं। इन अर्ज़ीनवीसोंकी स्वतन्त्र रचनाका एक उदाहरण यह है:—

मुस्मी वीरशा लुहार साकिन मुतहिंन फ़ौत हो गया। उसकी बेवा मु० हल्की वारिस व क़ाबिज़ जायदाद व मालिक रहनामा मज़कूर की थी कि जिसमें रहनामा

* मध्य-प्रदेश-गज़ट, ता० ५ फ़रवरी सन् १९१६

मज़कूरका इत्तलानामा मुद्दईयानके नाम तहरीर कर दिया जिसकी इत्तला राहिनानको दी गई।

इस लेखांशमें हिज्जेकी भूलें तथा व्याकरण की भूलें हैं और अनावश्यक अरबी-फ़ारसी-शब्दों-का प्रयोग किया गया है। इस प्रकारकी भूलोंसे भरी भाषा न्यायाधीशोंके यहाँ स्वीकृत करली जाती है और लेखकोंकी भाषा-सम्बन्धिनी अयोग्यतापर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता।

क़ानूनी भाषाके अनुवादक और लेखक हिन्दीभाषापर एक अन्याय यह करते हैं कि वे कभी कभी अँगरेज़ीके शब्द जैसेके तैसे हिन्दी-में भरदेते हैं, जैसे रिज़ोल्यूशन, डिविज़नल, रिव्यूज़, एडमिनिस्ट्रेशन, डिपार्टमेंट, सोगा लोकल और म्युनिसिपल, इत्यादि। इस प्रकारके शब्द कदाचित् इसलिए भरे जाते हैं कि लेखकों-को उनके अनुवादके लिए उर्दू-शब्द नहीं मिलते और हिन्दी शब्दोंका प्रयोग करना उनके मतके विपरीत है। यह अनुमान इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि उर्दू-लेखकोंने अपनी भाषामें शब्दोंका अभाव देखकर नावेल, एडीटर, रिव्यू, साइन्स, लीडर आदि शब्दोंका प्रचार कर दिया है और वही भर्ती वे लोग क़ानूनी हिन्दीमें मचाते हैं। हम लोगोंने अपनी प्राचीन भाषा संस्कृतकी सहायतासे इन शब्दोंके लिए क्रमशः "उपन्यास", 'सम्पादक", "समालोचना", विज्ञान", और "नेता" आदि शब्द प्रचलित किये हैं और अब ये शब्द इतने परिचित हो गये हैं कि समाचारपत्र पढ़नेवाले किसी भी हिन्दी-भाषीको इनका अर्थ समझनेमें कठिनाई नहीं होती।

क़ानूनी हिन्दीका एक उदाहरण अभी जबलपूर में ही मिला है। ज़िला मजिस्ट्रेटने रामलीलाके सम्बन्धमें जो अँगरेजी और हिन्दी-इश्तहार प्रकाशित किये हैं उनमें भाषा-सम्बन्धी विषय विचारणीय है। इसके लिए हम अँगरेजीके कुछ लेखांश लेकर उनके साथ उनके हिन्दी-अनुवादका मिलान करते हैं—

"Whereas application has been made by the leaders of the Hindu Community for permission to take out the Ram Lila procession."

इसका अदालती हिन्दी-अनुवाद इस तरह किया गया है:—

चूंकि हिन्दु-जातिके मुखिया लोगोंने दरख्वास्त वास्ते निकालने रामलीलाके दी है।

इस अनुवादमें "Permission" और "Procession" शब्द छूट गये हैं। "जाति" शब्द कदाचित् धोखेसे हिन्दीरूपमें आगया है, और "रामलीला निकालनेके वास्ते" कहनेके बदले उलटी बोलीका उपयोग किया गया है, अर्थात् "वास्ते निकालने रामलीलाके।" भला इस विरोधसे भी क्या किसी कानूनी अर्थकी रक्षा होती है? इस उलटे वाक्यांशपर हमें एक मौलवी साहिबके किये हुए अनुवादका स्मरण होता है जिसमें हजरत यह कहते थे कि "मैं कूद पड़ा, बीच मकान उसके, साथ आवाज धमके।"

अब दूसरा पैरा लीजिए:—

"And, whereas according to law it is the natural and ordinary right of all sections of the community to use a common highway for any lawful purpose, civil or religious, by passing along it attended by music, so long as they do not obstruct the use of it by others or disturb the rights of any other persons."

इसका हिन्दी-अनुवाद यह है:—

और चूंकि बमूजिब क़ानून हर एक जातिका यह एक मामूली और कुदरती हक़ है कि वे रास्ता आम को किसी भी जायज मुल्की या मज़हबी काम में, उस परसे बाजा बजाते हुए निकाल के, बिला दूसरे लोगोंको रोके हुए या उनके हुकूक़में दस्तन्दाज़ी किये हुए काममें ला सकते हैं।

इस अनुवादमें पहले "मामूली" और फिर "कुदरती" शब्द आये हैं; पर मूलमें पहले Natural और फिर Ordinary है। Natural शब्द पहले लिखनेमें मूल लेखकका जो उद्देश रहा होगा वह उस शब्दको पीछे लिखनेमें कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। फिर Natural शब्दका अर्थ यहाँ .कुदरती नहीं है; क्योंकि आम सड़कपर चलनेका अधिकार .कुदरत नहीं देती; किन्तु वह घटना, कार्य्य, भाव इत्यादिके नियमोंके अनुसार प्राप्त होता है। ऐसी अवस्थामें Natural का अर्थ उर्दू में ही "तबई होना चाहिए, .कुदरती नहीं। यह बात अलग है कि रामलीलावालोंके लिये जैसा ".कुदरती" शब्द है वैसा ही "तबई" है; क्योंकि अन्धेको दिन और रात एकसे ही जान पड़ते हैं। दूसरा शब्द Music है, जिसका अर्थ अनुवादमें केवल बाजा, लिखा गया; पर उसका ठीक अर्थ गाना-बजाना है। इसलिए "बाजा बजाते हुए" के स्थानमें "गाते बजाते हुए" होना चाहिए था। दूसरे वाक्यमें "वे" शब्द जातिके लिए आया है; पर जाति एकवचन है; इसलिए "वे" के स्थानमें "वह" होना चाहिए था।

कहनेका सारांश यह है कि क़ानूनी भाषाके नामसे हिन्दीरूपी उर्दू में जो अनुवाद किया जाता है वह पूर्णतया निर्दोष नहीं रहता। ऊपरके उदाहरणमें ".कुदरती" के बदले हिंदीका "स्वाभाविक" शब्द बहुतही उपयुक्त होता।

अब हम मध्यप्रदेशीय कोर्ट आव् वार्ड्सके कुछ क़ायदोंके अनुवादकी जांच करते हैं— रेवेन्यू बुक सरक्यूलर सीग़ा ५ नम्बर शुमार २ में किताब मौजूदात मवेशियानका एक कोष्टक दिया गया है, जिसके नीचे अर्थकारी टीपें हैं। यह "अर्थकारी टीपें" शब्द Explanatory Notes का अनुवाद है, जिससे जाना जाता है कि अनुवादकोंको कभी कभी विवश होकर ठेठ संस्कृत-शब्द भी लेने पड़ते हैं। पर यह तभी होता है जब अरबी-फ़ारसी-शब्दोंका कोष उनकी सहायता नहीं करता। इस उदाहरणमें जो 'टीप' शब्द है वह हिंदीमें इस अर्थमें नहीं आता। इसके आगे चलकर एक स्थानमें "Valuation entered against it" लिखा है, जिसका अर्थ यह है कि जानवरकी क़ीमत उस जानवरके नामके सामने लिखना चाहिए। पर अनुवादकने इस वाक्यांशका अनुवाद कानूनी हिन्दीमें यह किया है कि जानवरको कीमत उसके "रूबरू" दर्ज करना चाहिए, जिसका अर्थ यह है कि वह जानवर देखता रहे कि मेरी कीमत दर्ज हुई या नहीं! यहाँ रूबरूके बदले "सामने" ही होना चाहिए था।

इस प्रकार कानूनी हिन्दीके अरबी-फ़ारसी-शब्दोंकी आड़में बहुधा अर्थका अनर्थ किया जाता है।

अब हम किसानी-समाचारकी भाषाके विषयमें भी कुछ कहते हैं। यद्यपि इसकी भाषाको कानूनी हिन्दी नहीं कह सकते, तथापि यह सरकारी हिन्दी अवश्य कही जा सकती है; क्योंकि इसका अनुमोदन सरकारका कृषि-विभाग करता है। इस हिन्दीमें क़ानूनी हिन्दीके समान अरबी-फ़ारसी-शब्दोंकी अधिक भरमार नहीं है पर ऐसी मिश्रित रचना अवश्य है जिसे हम किसी भी प्रकारकी हिन्दी नहीं कह सकते। इसका नमूना यह है—

> रुपये की नज़र से बैंक के कारोबार की हालतका विचार किया जावे तो वह बहुत समाधान कारक दिख पड़ता है और बैंकके सिलकका हिसाब उसकी माली हालतके अच्छे होनेका पूरा पूरा निश्चय कराता है।

इस उदाहरणके दूसरे वाक्यमें "वह" शब्द आया है; पर उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि "वह" रुपयेके लिए आया है, या बैंकके लिए, या कारोबारके लिए, या विचारके लिए। फिर इसके आगे "बैंकके सिलक" आया है जिसमें 'की' होना चाहिए; क्योंकि "सिलक" शब्द स्त्री-लिङ्ग है। इसका अन्तिम वाक्य अँगरेज़ी-रचना-

का अनुकरण है और सम्पूर्ण लेखांशमें गङ्गा-मदारका जोड़ा है।

इस भाषाका एक और उदाहरण यह है-

जब तक इस कामको हाथमें लेनेके लिए कोई मंडली न बनेगी तब तक इसकी दशा दिन ब दिन शोचनीय ही होती जायगी। खेती महकमे ने यह काम अपनी तरफ लेना वाजब है; क्योंकि हमारे पास मुलाज़िम बहुत थोड़े हैं।

इस लेखांशकी समालोचनाकी आवश्यकता नहीं है; पर यह बात बहुत आवश्यक है कि सरकारकी ओरसे ऐसी अशुद्ध भाषाका प्रचार रोका जाय।

जो लोग यह समझते हैं कि दुर्बोध पारिभाषिक शब्दोंके लिए सहज और हिन्दी-शब्द नहीं मिलते, उनको इस बातका विचार करना चाहिए कि जिस प्रकार पुराने शब्दोंके स्थानमें आप ही आप नये शब्दोंकी उत्पत्ति और प्रचार होता जाता है उसी प्रकार नये और सहज पारिभाषिक शब्द बन सकते हैं और प्रचलित हो सकते हैं, क्योंकि क़ानूनी भाषा कुछ ईश्वरकी ओरसे नहीं उतरी है।

क़ानूनी भाषा सहज हो सकती है, इसका एक उदाहरण देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं। यह उदाहरण पण्डित प्यारेलाल मिश्र बैरिस्टर कृत "दत्तविधान" से लिया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मिश्रजी हिन्दीके सुलेखक और क़ानूनके अच्छे ज्ञाता हैं। आपकी पुस्तकका उदाहरण यह है-

दत्तपुत्रका पूर्व कुटुम्ब से बिलकुल नाता टूट जाता है। वह नये कुटुम्ब का लड़का कहलाता है। उसे पूर्व-पिताका नाम छोड़ कर नये पिताका नाम उपयोगमें लाना पड़ता है। यदि वह ऐसा न करे तो समझना चाहिए कि वह गोद नहीं लिया गया।

कहिए, इस उदाहरणमें कोई ऐसी बात है जो साधारण हिन्दी पढ़ा हुआ मनुष्य नहीं समझ सकता? यदि मिश्रजी दत्तपुत्रके बदले मुतबन्ना, कुटुम्बके बदले खान-दान, छोड़नाके बदले तर्क-करना और समझके लिए क़यास लिख देते तो उससे भाषा चाहे भले ही डरावनी हो जाती; पर लाभ कुछ भी न होता।

क़ानूनी भाषाके सम्बन्धमें कुछ लोग यह कहते हैं कि यदि यह भाषा सहज कर दी जाय तो सभी लोग उसे समझने लगेंगे और वे उसका मनमाना अर्थ लगा कर नये नये झगड़े उत्पन्न करेंगे। यदि यह हानि मान भी ली जाय तो इससे क़ानूनी भाषाके पक्षपातियोंको ही लाभ है; क्योंकि नये झगड़ोंसे उनकी प्राप्तिका द्वार और भी लम्बा-चौड़ा हो जायगा।

यदि हम सब उन दीन जनोंकी दुर्दशाका विचार करें जिनके लिए क़ानून बनाया जाता है तो हमें यही कहना पड़ता है कि मनुष्य अपने स्वार्थके आगे करोड़ों मनुष्योंकी भी हानि करनेको तैयार हो सकता है।

संयुक्त प्रान्तकी अदालतोंमें नागरी प्रचारकी अवस्था और उद्योगकी आवश्यकता।

(लेखक श्रीयुत पं० राजमणि त्रिपाठी, गोरखपुर)।

इसके पूर्व कि हम अपने लेखको प्रारंभ करें नागरी सम्बन्धी उन आज्ञाओंकी प्रतिलिपियोंको जिन्हें हिन्दीसाहित्यसम्मेलनकी स्थायी समितिने सर्व साधारणकी जानकारीके लिये प्रकाशित करके वितरण किया था, नागरी प्रेमियोंके सन्मुख उपस्थित कर देना आवश्यक समझते हैं। उससे उन्हें १६०० ई० से पहिलेकी अवस्था तथा अपने वर्तमान अधिकारोंका ज्ञान होगा। वे आज्ञायें ज्योंकी त्यों निम्नलिखित हैं।

भाषानुवाद

"गवर्नमेन्ट पश्चिमोत्तरप्रदेश और अवध"

नम्बर $\frac{५८५}{३—३४३ सी—६८}$ १६००

निश्चय

जेनरल प्रबन्ध विभाग

नैनीताल, ता० १८ अप्रैल १६००

पढ़े गये,—

(१) भिन्न भिन्न तिथियोंके आवेदन पत्र जिनमें प्रार्थना थी कि पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधके न्यायालयों और सर्कारी दफ़्तरोंमें नागरी अक्षरोंका प्रचार हो।

(२) भिन्न भिन्न तिथियोंके आवेदन पत्र जिनमें हिन्दीको राज्यभाषा बनानेका विरोध था।

(३) इन प्रान्तोंके न्यायालयों और सर्कारी दफ्तरोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारके विषयपर बोर्ड आफ़ रेवेन्यूकी ता० १६ अगस्त, सन् १८६६-की रिपोर्ट।

(४) उसी विषयपर पश्चिमोत्तर प्रदेशके हाई-कोर्टके रजिष्ट्रारका ता० २ मार्च, सन् १६०० का पत्र नं० ५५७ और अवधके जुडिशियल कमिश्नरका ता० ३१ मार्च, सन् १६०० का पत्र नम्बर ८१६।

१—" पश्चिमोत्तरप्रान्त और अवधके लेफ्टिनेन्ट गवर्नरकी शासनकी अवधिके समय सर ऐन्टनी मेकडानेल महोदयके निकट इन प्रान्तों-के न्यायालयों और सर्कारी दफ्तरोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारके लिये बहुतसे प्रार्थना पत्र दिए गये हैं। सन् १८६८ में इन अक्षरोंके पक्षलेनेवालोंके प्रतिनिधियोंके डेपुटेशनके उत्तरमें श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयने यद्यपि न्यायालयोंकी कार्रवाइयोंमें शीघ्र परिवर्त्तन करनेके विचारको उचित नहीं बतलाया था, तथापि उन्होंने इस बात को स्वीकार किया था कि सर्कारी लिखापढ़ीके पत्रोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारसे कुछ लाभ अवश्य होंगे। उसी समयसे श्रीमान् सर ऐन्टनी मेकडानल महोदय इस बातपर विचार कर रहे थे कि इस समयकी अपेक्षा सर्कारी काम काजमें नागरी अक्षरोंका प्रचार बिना कष्टके अधिक किस प्रकारसे हो सकता है।

२—" सबसे पहिले सर्कारी न्यायालयोंमें फ़ारसी भाषा और फ़ारसीके अक्षरोंका प्रचार था। यहांके न्यायालयोंमें फ़ारसीके स्थानमें यहाँ की देशभाषाओंका प्रचार करनेका प्रबन्ध पहिले पहिल सन् १८३७ ई० में किया गया था। उसी समय गवर्नर जेनरल महोदयने कौंसिलमें बङ्गाल और पश्चिमोत्तर प्रान्तके न्यायालयोंकी भाषामें परिवर्त्तन करनेकी आज्ञा दी थी। इसी अभिप्रायसे सन् १८३७ के नवम्बर मासमें एक कानूनभी स्वीकार किया गया था उसके दो वर्षके पश्चात् सदर दीवानी अदालतने अपने आधीनके सब न्यायालयोंमें हिन्दुस्तानी अर्थात् उर्दू के प्रचारके लिये आज्ञा दी थी। यह आज्ञा केवल उर्दू भाषाके विषयमें थी, अक्षरोंके विषयमें नहीं थी। सन् १८६८ ई० में न्यायालयोंमें फ़ारसी अक्षरोंके स्थानमें नागरी अक्षरोंका प्रचार करनेके लिये गवर्नमेंटसे प्रार्थनाकी गई थी और उस समयसे आज तक समय समय पर गवर्नमेन्टका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित किया गया है। पश्चिमोत्तर प्रान्तके पड़ोसी विहार और मध्यप्रदेशके न्यायालयोंमें फ़ारसी अक्षरोंके स्थानमें नागरी अक्षरोंका प्रचार पूर्ण रूप पर हो गया है।

३—" विहार और मध्यप्रदेशमें नागरी अक्षरोंके प्रचारमें जैसी सरलता हुई वैसी पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवधमें नहीं हो सकती

है। कई प्रधान कारणोंसे श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और चीफ़ कमिश्नर इन प्रान्तोंमें भाषा सम्बन्धी परिवर्त्तनके प्रश्नको हाथमें नहीं लिया चाहते हैं और इसलिये श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय इन प्रान्तोंकी भाषाको बदलना अथवा फ़ारसीके अक्षरोंके प्रयोगको बन्द करना नहीं चाहते हैं। यहाँपर प्रश्न यह उपस्थित हुआ है कि नागरी अक्षरोंके जाननेवाले बहुतसे मनुष्योंके सुभीतेके लिये नागरी अक्षरोंके प्रयोगका कुछ ठीक प्रबन्ध किया जा सकता है वा नहीं। इस बातका लेखा इस समय प्राप्त नहीं है कि कितने मनुष्य केवल हिन्दी (नागरी वा कैथी) के अक्षरों को जानते हैं और उनका प्रयोग करते हैं, और कितने मनुष्य फ़ारसीके अक्षरोंको जानते हैं। परन्तु सन् १८९१ की मनुष्य गणनाकी रिपोर्टसे इन प्रान्तोंके पढ़े लिखे मनुष्योंकी संख्याका ज्ञान इस प्रकारपर हो सकता है—

अंगरेज़ीमें	गिनती करनेवालोंकी संख्या		८१३
उर्दू	,,	,,	५४२४४
नागरी	,,	,,	८०११८
कैथी	,,	,,	४०१६७

श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय समझते हैं कि गोरखपुर बनारस, इलाहाबाद और आगरेकी कमिश्नरियोंमें हिन्दी अक्षरोंका बहुत ही अधिक प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकारसे मेरठ और रुहेलखण्डके विभागोंमें भी इन अक्षरोंका प्रयोग होता है।

४—"अतएव वर्तमान समयकी अपेक्षा भविष्यतमें हिन्दी अक्षरोंका प्रचार करनेसे इन प्रान्तोंकी एक बड़ी संख्याके मनुष्योंको सुभीता होगा। इन प्रान्तोंके बोर्ड आफ रेवेन्यू और हाईकोर्ट तथा अवधके जुडीशियल कमिश्नरकी (जो निम्न लिखित प्रस्तावोंके साथ सहमत हैं) सम्मतिसे इन प्रान्तोंके लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयने निम्न लिखित नियमोंको बनाया है और उनका प्रयोग यहाँके दीवानी, फौजदारी, रेण्ट तथा रेवेन्यूके न्यायालयोंमें किया जावेगा—

(१) "सम्पूर्ण मनुष्य प्रार्थनापत्रों और अर्ज़ीदावोंको अपनी इच्छाके अनुसार नागरी वा फारसीके अक्षरोंमें दे सकते हैं।

(२) "सम्पूर्ण सम्मन, सूचनापत्र और दूसरे प्रकारके पत्र जो सर्कारी न्यायालयों वा प्रधान कर्मचारियोंकी ओरसे देश भाषामें प्रकाशित किए जाते हैं, फ़ारसी और नागरी अक्षरोंमें जारी होंगे और इन पत्रोंके उस भागकी ख़ानापूरीभी हिन्दीमें इतनीही होगी जितनी फ़ारसी अक्षरोंमें की जाय।

(३) "अंगरेजी आफ़िसोंको छोड़कर आजसे किसी न्यायालयमें कोई मनुष्य उस समय तक नहीं नियत किया जायगा जब तक वह नागरी और फ़ारसीके अक्षरोंको अच्छी तरहसे लिख और पढ़ न सकेगा॥

"इस आज्ञाकी एक एक प्रति समस्त विभागोंके प्रधान कर्मचारियों, समस्त विभागोंके कमिश्नरों, मजिस्ट्रेटों और कलक्टरों तथा डिस्ट्रिक्ट जजोंके पास सूचना और उसके अनुसार कार्य करनेके लिये भेज दीजाय और यह आज्ञा गवर्नमेंट गज़टमें सर्वसाधारणके सूचनार्थ प्रकाशित कीजाय।

जे० ओ० मिलर,
चीफ सेक्रेटरी-गवर्नमेंट पश्चिमोत्तर प्रदेश,
और अवध।

अदालतोंमें नागरीप्रचार विषयक अन्य आज्ञाएं ।

गवर्नमेंट पश्चिमोत्तरप्रदेश और अवधके न्यायालयों और सर्कारी दफ़्तरोंमें नागरीका प्रचार ।

निम्न लिखित पत्र सर्व साधारणके जाननेके हेतु प्रकाशित किए जाते हैं :—

(१)

नम्बर ८५६, शिमला, १४ जून १६०० ।

गवर्नमेंट आफ इंडियाके होम डिपार्टमेंट (जुडिशियल) के सेक्रेटरीका पत्र पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधकी गवर्नमेंटके चीफ सेक्रेटरी के नाम ।

महाशय,

आपका ४ तारीखका लिखा हुआ पत्र नं० ६८० आया जिसके साथ गवर्न्मेन्ट पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधके उस रिजोल्यूशनकी नकल थी जिसके द्वारा कचहरियों और सर्कारी दफ्तरोंमें लोगोंके इच्छानुकूल नागरीके प्रचारकी आज्ञा थी । रिजोल्यूशनके चौथे पेरेग्राफमें निम्न लिखित नियम हैं जोकि सब दीवानी फौजदारी तथा माल विभागके लिये हैं ।

(१) सम्पूर्ण मनुष्य प्रार्थनापत्रों और अर्जीदावोंको अपनी इच्छाके अनुसार नागरी अथवा फारसी अक्षरोंमें दे सकते हैं ।

(२) सम्पूर्ण सम्मन, सूचनापत्र और दूसरे प्रकारके पत्र जो सर्कारी न्यायालयों वा प्रधान कर्मचारियोंकी ओरसे देश भाषामें प्रकाशित किए जाते हैं, फ़ारसी और नागरी अक्षरोंमें जारी होंगे और इन पत्रोंके उस भागकी ख़ानापूरीभी हिन्दीमें इतनीही होगी जितनी फारसी अक्षरोंमेंकी जाय ।

(३) अङ्गरेज़ी आफ़िसोंको छोड़कर आजसे किसी न्यायालयमें कोई मनुष्य उस समय तक नहीं नियत किया जायगा जब तक वह नागरी और फ़ारसीके अक्षरोंको अच्छी तरहसे लिख और पढ़ न सकेगा ।

२—उत्तरमें मुझे यह कहना है कि गवर्नर जेनरल महाशय, श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और चीफ़ कमिश्नरके विचारसे जो कि नियम (१) और (२) में प्रकाशित हैं पूर्णतया सहमत हैं—नियम (३) अर्थात् वर्नाक्यूलर आफ़िसोंमें लोग नियत किए जाँय उनको हिन्दी और उर्दू दोनोंही को जानना चाहिए, इस नियमका होना प्रथम दोनों नियमोंके लिये यद्यपि पूर्णतया आवश्यक न भी हो तोभी वांछनीय है—परन्तु श्रीमान् वाइसरायको यह भय है कि यह नियम इस वर्तमान रूपमें अत्यन्त कड़ा है और सम्भव है कि वह कुछ लोगोंपर जो सर्कारी नौकरी किया चाहते हैं अनावश्यक कड़ाई करे—अतएव गवर्नर जेनेरेल महोदयकी यह सम्मति है कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और चीफ़कमिश्नरका उद्देश्य निम्न लिखित नियम से भी पूरा हो सकता है—

इस रिजोल्यूशनकी तारीखके एक वर्षके उपरान्त कोई मनुष्य अंगरेजी आफ़िसोंको छोड़कर और किसी दफ़्तरके कामपर न नियत किया जायगा जब तककि वह हिन्दी और उर्दू दोनोंही न जानता हो—और इस बीचमें जो कोई ऐसा मनुष्य नियत किया जायगा जो केवल एकही भाषा जानता हो और दूसरी नहीं; उसे जबसे वह नियत किया जायगा उसके एक वर्षके भीतर उसे दूसरी भाषामें भी योग्यता प्राप्त कर लेनी होगी जिसे वह न जानता हो ।

नियमको इस प्रकार बदल देनेसे गवर्नर जेनरलका यह विश्वास नहीं है कि यह नियम समय समय पर किसीके लिये कड़ा होहीगा नहीं; परन्तु सम्भवतः ऐसी दशाएँ बहुत कम होंगी–अतएव यह प्रार्थना है कि यदि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और चीफ़ कमिश्नरको कोई विरोध न हो तो नियममें आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाय–

मैं उन तारोंको भेजता हूं जो पश्चिमोत्तर प्रदेशके किसी किसी मुसलमानने इसमें जो आज्ञाएँ निकली हैं उनके विरोधमें भेजे हैं। श्रीमान् लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महाशय इनपर जैसी आज्ञा उचित समझें दें–

---

(२)

नम्बर $\frac{१०२६}{३-३४३ सी,}$ नैनीताल, २७ जून १६००

पश्चिमोत्तरप्रदेश और अवधकी गवर्न्मेन्टके चीफ़ सेक्रेटरीका पत्र गवर्न्मेन्ट आफ इंडियाके होम डिपार्टमेन्टके सेक्रेटरीके नाम।

महाशय,

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और चीफ़ कमिश्नरने मुझे आपके १४ तारीखके पत्र नम्बर ८५६ की प्राप्तिको स्वीकार करनेको कहा है, जिसमें आपने लिखा था कि श्रीमानने कुछ सर्कारी कागजों और अदालती कामोंमें जो नागरीके इच्छापूर्वक प्रयोगके लिये आज्ञा दी है इससे गवर्नर जेनरल महोदय भी सहमत हैं परन्तु आज्ञाके उस भागमें परिवर्तनकी सम्मति देते हैं जो सर्कारी नौकरी करनेवालोंसे सम्बन्ध रखता है–

उत्तरमें मुझे यह कहना है कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने इस प्रस्तावको स्वीकार किया है और शीघ्रही उसे प्रचलित करेंगे। मुझे यहभी सूचित करना है कि जब लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने कुछ माननीय मुसलमानोंकी सभासे जो अलीगढ़में २३ मईको हुई थी, तार पाया तो उसका उत्तर यों भेजा कि यद्यपि श्रीमान् १८ अप्रेलकी आज्ञापर फिरसे विचार नहीं कर सकते तथापि वे मुसलमानोंके कुछ चुने हुए प्रतिनिधियोंसे इस विषयमें वार्तालाप करनेको प्रस्तुत हैं कि यह आज्ञा कबसे प्रचलित कीजाय। परन्तु श्रीमान्का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। अतएव वे तबसे इस बातका पता लगा रहे हैं कि यदि नियम (३) जिस दिन प्रकाशित हुआ हैं उसी दिनसे प्रचलित कर दिया जाय तो मुसलमानोंपर इससे वास्तवमें कोई कड़ाई तो न होगी। परन्तु अब श्रीमान्का यह विचार है कि गवर्न्मेन्ट आफ इण्डियाकी सम्मतिसे जिसका ऊपर कथन है, यदि मुसलमानों पर किसी प्रकारकी कड़ाईका होना सम्भव है तो वह दूर हो जायगी–

(३)

नम्बर $\frac{१०२७}{३-३४३ सी}$

जेनरल विभाग

नैनीताल, २६ जून १६००

तारीख १८ अप्रैल १६०० के रिज़ोल्यूशन नम्बर $\frac{५८५}{३-३४३ सी-६८}$ के चौथे पेरेग्राफके तीसरे नियमको काटकर उसके स्थानपर यह नियम किया जाता है:–

"इस रिज़ोल्यूशनकी तारीख़के एक वर्षके उपरान्त कोई मनुष्य अङ्गरेज़ी आफिसोंको छोड़ कर और किसी दफ़्तरके कामपर न नियत किया जायगा जब तक कि वह हिन्दी और उर्दू दोनों ही न जानता हो और इस बीचमें जो कोई ऐसा

मनुष्य नियत किया जायगा जो केवल एक भाषा जानता हो और दूसरी नहीं, उसे जबसे वह नियत किया जायगा उसके एक वर्षके भीतर उस दूसरी भाषामें भी योग्यता प्राप्त कर लेनी होगी जिसे वह न जानता हो ”

ऊपरके नियमकी नकल पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधमें सब विभागोंके सब कमिश्नरों, सब मजिस्ट्रेटों, कलक्टरों डिस्ट्रिक्टजजोंके पास सूचना और इसके अनुकूल कार्य करनेके लिये भेजी जाय ।

---

(४)

शुक्रवार तारीख ५ अक्टूबर १९०० को वाइसरायकी सभामें नवाब मुहम्मद अयातखाँने निम्न लिखित प्रश्न किए । (१) १८ अप्रैल १९०० को लोकल गवर्न्मेंन्टने एक रिज़ोल्यूशन किया है जिससे न्यायालयोंमें नागरीका प्रचार किया गया है और अंगरेजी आफिसोंको छोड़कर किसी दफ़्तरमें कोई मनुष्यके नियत किए जानेके लिये हिन्दीका जानना आवश्यक किया गया है । क्या गवर्न्मेंन्ट आफ़ इण्डिया इस बातको जानती है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधके मुसलमानोंको रिज़ोल्यूशनसे कितना असंतोष हुआ है ? (२) रिज़ोल्यूशनके क्लाज़ १ सेक्शन ४ में जो “ Petition and complaints ” शब्द हैं उनका इलाहाबादकी हाईकोर्ट और अवधके जुडीशल कमिश्नरने भिन्न रीतिसे अर्थ समझा है । क्या गवर्न्मेंन्ट आफ़ इण्डिया, नागरी अक्षरोंके प्रयोगकी सीमा केवल उन्हीं अवस्थाओंमें कर देगी जब कि मनुष्य नागरीके अतिरिक्त और कुछ न जानता हो और अपना आवेदन पत्र किसी वकील वा मुख्तारके बिना स्वयं देता हो ?

मिस्टर रिवेजने उत्तरमें यों कहा “ गवर्न्मेंन्ट आफ़ इण्डिया जानती है कि इस आज्ञासे कुछ असंतोष प्रगट किया गया है परन्तु लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने उसे यह सूचना दी है कि यह असंतोष विशेषतः उन्हीं मुसल्मानोंने प्रगट किया है जो वकालत या मुख्तारी करते हैं। किसी बड़े रईस, ज़िमीदार अथवा पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध भरके व्यापारियों और कृषीकारोंने नाममात्रको भी विरोध नहीं किया है । यह आज्ञा केवल इसी बातको स्वीकार करती है कि सर्कारी कागजोंमें नागरी अक्षरोंका प्रयोग हो सकता है क्योंकि पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधके निवासियोंका बहुत बड़ा भाग इन अक्षरोंको जानता है ।

गवर्न्मेंन्ट आफ़ इण्डिया लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महाशयसे पूर्णतया सहमत है । लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने यह आज्ञा पश्चिमोत्तर प्रदेशके हाईकोर्ट, अवधके जुडीशल कमिश्नर और बोर्ड आफ़ रेवेन्यूकी अनुमतिसे प्रचलित की है, जिन सबकी यह सम्मति थी कि सर्कारी कार्योंसे नागरी अक्षरोंको अलग रखना अब उचित नहीं है । प्रान्तिक गवर्न्मेंन्टकी आज्ञा न्यायालयकी प्रचलित भाषामें कोई सम्बन्ध नहीं रखती, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । और न वह उन लोगोंको किसी प्रकारसे रोकती है जो फ़ारसी अक्षरोंका प्रयोग किया चाहते हैं । प्रचलित नियमोंके अनुसार नायब तहसीलदारसे लेकर प्रत्येक कर्मचारीको उर्दू और हिन्दी दोनोंमें योग्यता प्राप्त कर लेनेकी आवश्यकता है क्योंकि ये दोनों पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधकी साधारण भाषाएं हैं । प्रथम प्रश्नके अन्तिम भागका नियम इस नियमको केवल दफ़्तरके उन सब कर्मचारियोंके लिये भी वाध्य करता है जो अंगरेज़ी दफ़्तरमें नहीं हैं । पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधके न्यायालयों और दफ़्तरोंमें सदासे कुछ प्रकारके कागज हिन्दीमें लिखे हुए लिये जाते हैं—अतएव वर्नाक्यूलर आफ़िसका कर्मचारी जो हिन्दी नहीं जानता साधारण कामों-

को उचित रीतिसे करनेके लिये वास्तवमें योग्य नहीं है।

(२) गवर्नमेंट आफ इण्डिया इस बातको जानती है कि दूसरे प्रश्नमें जो बात पूछी गई है उसके समरूपसे स्थिर करनेके लिये पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवधकी गवर्नमेंट, हाईकोर्ट और जुडीशियलसे लिखा पढ़ी कर रही है। (१) यह बात प्रत्यक्ष है कि दोनों प्रदेशोंके लिये एकही नियमका होना आवश्यक है परन्तु गवर्नमेंट आफ इण्डिया, प्रान्तिक गवर्नमेंटको, जो प्रधान न्यायालयोंकी सम्मतिसे काय [illegible] रही है इस प्रस्तावके अनुकरणकी सम्मति देकर [illegible] विचारमें बाधा डालना नहीं चाहती।

अदालतोंमें नागरी अक्षरोंको प्रवेशाधिकार मिलनेपर भी कुछ दिनों तक उर्दूके पक्षपाती सज्जनोंकी अनुदारतासे नागरी अक्षरोंका यथोचित प्रचार नहीं हो सका था।

१९१० ई० तक अर्थात् हिन्दी सा० स० की स्थापनासे पूर्व कालिक अवस्थाका दिग्दर्शन निम्नलिखित वाक्योंमें जो ना० प्र० सभा काशीके १७ वीं वार्षिक रिपोर्टसे उधृत किये गये हैं होता है।

नागरी प्रचार।

(ना० प्र० सभा काशीका १७ वाँ विवरण पृष्ठ ४३-४४)

......गत वर्षकी अपेक्षा यह वर्ष इस विषयमें बहुत अच्छा नहीं रहा।......कचहरियोंमें गवर्नमेंटकी आज्ञाके ऊपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता, और नागरी अक्षरोंका प्रयोग तथा जो जो फार्म गवर्नमेंटने इन अक्षरोंमें छपवा दिये हैं उनका काममें लाना प्रायः नहींके बराबर है।...................................उस समय तक निम्न लिखित सभाओं द्वारा नागरी प्रचारके निम्न लिखित प्रयत्न हुये थे :—

काशी ना० प्र० सभा।

(१) इस सभाने अपने १६ वें वर्षमें सबसे अधिक नागरी लिपिकी अर्जियोंके लेखकको बा० वंशीधरवैश्य, बुलन्दशहरकी सहायतासे पारितोषिक दिया था।

(२) सभाकी ओरसे काशीकी अदालत दीवानी और कलकृरीमें एक एक वैतनिक लेखक तथा फैजाबादमें एक वैतनिक लेखक नियुक्त था। १९०९-१० में क्रमशः ५३१, १४४५, ४७४ अर्जियाँ उपरोक्त लेखकों द्वारा दाखिल हुई थीं और सभाका १६४॥=)॥ व्यय हुआ था, (कुछ दिनों बाद फैजाबादमें सम्मेलनकी ओरसे काम होने लगा और सभाकी ओरसे केवल काशीमें कार्य होता रहा)।

(३) सभाने निम्न लिखित अदालती फार्मोंको नागरी लिपिमें छपवाया है और काशीमें प्रतिवर्ष उनका कुछ न कुछ प्रचार हो जाता है।

नाम फार्म	मूल्य प्रतिफार्म	१०० फा० का मूल्य
१ बकाया लगानके दावे	)॥	२।)
२ ,, ,, ,, मुसन्ने	)=	॥)
५ इजराय डिग्री दफ़ा ५६	)॥	२।)
३ ,, डिग्रीके दीवानीके फ़ार्म	)॥	२।)
४ ,, डिग्रीके कलकृरीके फा०	)॥	२।)
६ वकालतनामे या मुख्तारनामें	)॥	२।)

(४) सभाके उद्योग अथवा आकर्षणसे बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी. ए. एल. एल. बी प्रभृति काशीके कुछ वकील लोग अपना कार्य नागरी

---

(१) अब सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हो गया है कि दोनों प्रान्तोंमें एकही नियमका बर्ताव होगा और अर्जीदावेभी हिन्दीमें लिए जायँगे।

अक्षरोंमें ही कर रहे हैं, काशीके रईसोंमें बाबू शिवप्रसादगुप्तके यहांका कुल कार्य नागरीमें ही होता है।

(५) इसी सभाके द्वारा अक्टूबर १९१० ई० में हिन्दी-साहित्य सम्मेलनकी स्थापना हुई जिसके द्वारा नागरी प्रचारका विशेष उद्योग हो रहा है तथा आगे और भी अधिक होनेकी आशा है।

नागरी प्रवर्धिनी सभा, प्रयाग।

(१) इस सभाने प्रयागमें लेखक नियुक्त किया था और कतिपय वकीलोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था, पर जबसे प्रयागमें स्थायी-समितिका कार्यालय हुआ प्रयागका भी कुल भार उसीपर छोड़कर यह सभा इस सम्बन्धमें बिलकुल मौन हो रही है।

नागरी प्रचारिणी सभा गोरखपूर।

(१) इस सभाने निम्न लिखित अदालती फार्मोंको नागरी अक्षरोंमें छपवाके उनके प्रचार-का यत्न सम्मेलनसे पूर्व भी किया था तथा अबभी कर रही है।

	नाम फार्म	मू० प्रति सै०	विवरण
१	वकालत नामा या मुख्तारनामा	२॥।)	वाटर मार्क पेपरपर
२	,, ,,	१)	बढ़िया फुलिसकेप पर
३	इजराय डिग्री माल	१॥।)	वाटर मार्क पेपर
४	,, ,, दफा ५०	१॥)	,, ,, ,,
५	,, ,, दीवानी	१॥।)	,, ,, ,,
६	रसीद मिहनताना	॥)	मा०फु०पर सजिल्द ॥≥)
७	बयान हलफी	१॥।)	वाटर मार्क पेपर पर
८	फिहरि०सबूत दी०	१)	औसत फुलिसकेप पर
९	अर्जी दावा दफा ५८(बेदखलीकाश्त)	१॥।)	सैकड़ा
१०	मुसन्ना ,, ,,	।≥)	,,
११	अर्जी दावा बकाया लगान	१॥।)	,,
१२	मुसन्ना ,, ,,	।≥)	,,
१३	दरख्वास्त दाखिल खारिज	१॥।)	,,
१४	इस्तगासा	१॥।)	,,
१५	दरख्वास्त तलबी मिसल	१॥।)	,,
१६	बयान हलफी	१॥।)	,,
*१७	दरख्वास्त वन्द्रल माल	१)	,,
†१८	,, ,, फौजदारी	१)	,,
‡१९	परचा रसीदी	≥)॥	,,
§२०	फिहरिस्त सबूत (माल)	१)	,,

नोट :—(क) * जो फार्म वाटर मार्क पेपर पर १॥) सैकड़े पर मिलते हैं वे उसी वजनके बढ़िया फुलिसकेप पर १) सैकड़ेमें ही मिलते हैं।

(ख) † ये फार्म गवर्नमेंट प्रेससे छपकर हर अदालतोंमें मुफ्त बटते थे पर कार्मी संख्या स्टाकमें न रहनेके कारण स्थानीय प्रेसोंसे छपके बिकते भी थे पर अब इनके छापनेकी मनाही होगई है।

(ग) ‡ यह फार्म गवर्नमेंटसे पहिले मुफ्त मिलता था बीचमें लोगोंको स्वयं छपवाके काममें लानेकी आज्ञा होगई थी पर अब फिर ॥।) सैकड़े मूल्य पर गवर्नमेंटसे मिलने लगा है और स्थानीय प्रेसोंको छापनेकी मनाही होगई है।

(घ) § इस सभाके फार्मोंका प्रचार अधिकतर गोरखपूर, देवरिया, बांसगांव, हाटा, पडरौना, बस्ती, डुमरियागंज, कसया, बांसीमें तथा कुछ सीतापुर, रायबरेली, बाराबंकी, बांदा प्रभृति स्थानोंमें हुआ है।

(२) इस सभाके उद्योगसे गोरखपूर जिलेमें नागरी प्रचार सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ दूर हुईं। स्थानीय वकील, मुख्तारों प्रभृतिका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इस समय निम्न लिखित वकील, मुख्तारोंके द्वारा नागरी प्रचारका कार्य हो रहा है।

नाम	स्थान
* पं० चंडीप्रसाद पाठक वकील,	कलक्टरी गोरखपुर,
पं० मङ्गलप्रसाद द्विवेदी मुख्तार,	
* बाबू रघुनाथ सेवक ,,	
बाबू धूमनलाल ,,	
बाबू अम्बिकाप्रसाद ,,	
पं० रामसेवक त्रिपाठी ,,	
बाबू रामलाल ,,	
बाबू [illegible]नन्दनप्रसाद ,,	
पं० कमलाप्रसाद शुक्ल वकील,	दीवानी गोरखपुर,
पं० कैलाशनन्द्र बाजपेयी वकील,	
बाबू रामचन्द्र प्रसाद ,,	
पं० रामकली राय ,,	
* टा० रामायण जी मुख्तार,	देवरिया,
* बाबू अमीरसिंह ,,	
* बाबू अवध नारायणलाल मुख्तार,	
* बाबू वृजकिशोर लाल मुख्तार,	
बाबू ललताप्रसाद ,,	
बाबू वंश बिहारी प्रसाद वकील,	
बाबू गौरीप्रसाद वकील,	
पं० चन्द्रचारु मिश्र वकील,	
पं० रामराज चौबे, मुन्शी मातादीनलाल, विंध्याचलप्रसाद,	
तथा नागेश्वरप्रसाद अर्जीनवीस,	
मुन्शी जानकी प्रसाद वकील,	कंटीकसया
बाबू जंग बहादुर लाल मुख्तार,	तहसील हाटा,
बाबू बनेश्वर प्रसाद मुख्तार,	त० बांसगांव,
बाबू मङ्गलप्रसाद अर्जीनवीस,	

* इन सज्जनोंके द्वारा प्रतिवर्ष एक अच्छी संख्यामें अर्जियाँ दाखिल होती हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा बुलन्दशहर।

(१) इस सभाने भी वकालतनामा, दावी बकाया लगान मय मुसन्ना, इजराय डिग्री आदि कुछ फार्म छपवाये हैं और अपने जिलेमें नागरी प्रचारका यत्न कर रही है।‡

नागरी प्रचारिणी सभा जौनपुर।

(१) सम्मेलनसे पूर्व इस सभाने लेखक रखनेका विचार करके काशी ना० प्र० सभासे सहायता चाही थी पर उस समय सहायता न मिलनेसे लेखक न रख सकी कुछ दिनों बाद जौनपुरमें सम्मेलनकी ओरसे लेखक रखा गया और उसके द्वारा कुछ कार्य हुआ।

सन् १९१० ई० के बादकी अवस्था।

सन् १९१० ई० में जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई, वर्ष भर लगातार कार्य करनेके लिये उसकी स्थायी समितिका संगठन हुआ जिसने संयुक्त प्रान्तकी अदालतोंमें नागरी प्रचार करनेकी ओर अपना प्रधान लक्ष्य रखा। स्थायी समितिकी प्रथम वार्षिक रिपोर्ट जो उसके मंत्री द्वारा २६ सितम्बर १९११ ई० को द्वितीय हि० सा० स० (प्रयाग) में उपस्थितकी गई थी, देखनेसे पता चलता है कि सम्मेलनके कार्य [illegible]ओंने प्रथम प्रचार सम्बन्धी कठिनाइयोंका अनुसंधान किया जिससे उन्हें अनुभव हुआ कि "......अदालतोंका बहुत दिनोंसे कुछ ऐसा

‡ सन् १९१४-१५ ईस्वीमें सभा द्वारा प्रकाशित फार्मों आदिकी संख्या १३९८२ रही और १५ के लगभग वकील मुख्तारोंने १७८९ अर्जियां नागरीमें दाखिल किये थीं।

ढंग बंधा है कि हिन्दीमें काम करनेकी इच्छा होते हुएभी सर्वसाधारणको अपना अदालत-सम्बधी काम हिन्दीमें करनेमें कठिनाई पड़ रही है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि अदालतों-के पुराने कर्मचारियोंमें बहुतही थोड़े कर्मचारी ऐसे हैं जो हिन्दी पढ़ लिख सकते हों। ...... वकीलोंके पुराने मुहर्रिरोंके हिन्दी न जाननेके कारण भी सर्वसाधारणको बड़ी कठिनाई पड़ रही है और उनको लाचार होकर अपना काम फारसी लिपिमें कराना पड़ता है। ... .. इन कारणोंसे जिनका मैंने ऊपर वर्णन किया है नागरी प्रचारमें बाधा पड़ रही है और इन दस वर्षोंमें...... नागरीमें अदालतोंका बहुत थोड़ा काम हुआ है। सम्मेलनके द्वारा प्रथम वर्षमें प्रयाग, हाथरस और फतेहपुरमें कार्य हुआ जहाँ २१३२ अर्जियाँ नागरीमें दीगईं। प्रयागके वकील बाबू नवाबबहादुर और बाबू जगेश्वरदयाल तथा हाथरसके पं० राधेश्याम मंत्री एडवर्ड हिन्दी-पुस्तकालयसे सम्मेलनको विशेष सहायता मिली।

काशी ना० प्र० सभाकी ओरसे काशीकी दीवानी और कलक्टरी कचहरी तथा फैजाबादमें प्रचारके लिये लेखक नियुक्त रहे।

गोरखपूरकी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा वहाँभी कुछ कार्य होता रहा।

सन् १९११-१२ में सम्मेलनकी ओरसे पिछले तीन स्थानोंके सिवाय कानपुर, जौनपुर, फैजा-बाद, लखीमपुर (खीरी) ज्ञानपुर (बनारस) इन पाँच नये स्थानोंमें भी कार्य हुआ और सब जगह मिलाके ६२८३ अर्जियाँ नागरीमें दाखिल हुईं तथा वकालतनामा, इजराय डिग्री आदिके कई हजार फार्म हिन्दीमें छपवाके भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे गये।

काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी ओरसे एक लेखक कलक्टरीमें और एक फैजाबादकी कच-हरीमें काम करता रहा। इनकी लिखी अर्जियोंकी संख्या क्रमसे ११४५, १६०३ और ५५० के लगभग थी तथा काशीके दो एक हिन्दी प्रेमी वकीलों द्वारा १५०० अर्जियाँ दाखिल हुईं।

गोरखपुर विभागमें उक्त सभा द्वारा, कुछ कुछ कार्य होता रहा।

बुलन्दशहरकी ना० प्र० सभा द्वारा वहाँभी कुछ प्रयत्न प्रारम्भ हो चुका था।

हिन्दीके विरोधी अमलोंका विरोध उस वर्ष तक जारी रहा जिसका प्रमाण उक्त वर्षकी काशी ना० प्र० सभाकी रिपोर्टमें निम्नलिखित वाक्योंमें मिलता है "........इस वर्षमें अदालत सब-जजीके इजराय डिग्रीके मुहर्रिर मुन्शी अहमद रजाने हिन्दीका बहुत विरोध किया और हिन्दीके पक्षपातियोंको बहुत हानि पहुँचाई तथा पहुँचाने पर उद्यत हुये। ......अंतमें यह मामला अधिक बढ़ा और जिला जजके यहाँ तक पहुँचा। उन्होंने कृपा करके उसपर पूरा विचार किया और मुन्शी महाशयको अपने निजके दफ्तरमें बदल दिया और उनके वेतनमें ५) रु० कम कर दिये।

उपरोक्त दोनों वर्षोंके कामका मिलान करने-से ज्ञात होता है कि सम्मेलनकी स्थितिका प्रभाव नागरी प्रचारके कार्यपर कैसा पड़ रहा है, सभाओंको सम्मेलनसे सम्बन्धयुक्त होकर और उसकी सहायता लेकर कार्य करनेका अच्छा अवसर मिल गया है।

जिन उपरोक्त वर्षोंका विवरण कुछ विस्तृत रूपसे दिया गया है उनके पश्चात् अब तक सम्मेलन के चार वर्ष और व्यतीत हुए जिनमेंसे प्रत्येक वर्षमें नागरी प्रचारके कार्यमें क्रमसे वृद्धि होती गई है और आशाकी जाती है कि भविष्यमें हमें अच्छी सफलता दृष्टिगोचर होगी, पर यदि हम गवर्नमेंटके अदालती विभागकी रिपोर्ट उठाकर देखें और प्रतिवर्ष संयुक्त प्रान्तके

कई लाख मुकद्दमों और उनमें दाखल होनेवाली अर्जियोंकी संख्यापर विचार करें तो नागरी अर्जियोंकी संख्या मुकद्दमोंकी संख्याके सामने शतांश (सवाँहिस्सा) भी नहीं दीख पड़ती है। इसी तरह अभी कुल वकील, मुख़्तार, अर्जीनवीस और मुहर्रिरोंमें उनकी संख्याके शतांशभी नागरीके पक्के और दृढ़ हितैषी तथा प्रचारक नहीं हैं। अस्तु नागरी प्रचारके लिये विशेष बाधाओंका अनुसन्धान करके उन्हें दूर करने और प्रचारार्थ उद्योग करनेकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है।

"गवर्नमेन्टके अदालती फार्म और हिन्दी"

गवर्नमेंटके उन अदालती फार्मोंको जिन्हें गवर्नमेंटने अदालतोंमें हाकिमों, अमलों अथवा प्रजाके द्वारा प्रयोग किये जानेके लिये प्रकाशित किया है हम निम्नलिखित श्रेणियोंमें रखकर उनपर विचार करते हैं:-

सूचना सम्बन्धी फार्म।

(१) ये अदालती फार्म जो हिन्दी-उर्दू दोनोंमें छपे हैं और दोनोंमें खानापूरी करनेकी आज्ञा है और प्रायः उनकी खानपूरी होती है।

कार्यालय सम्बन्धी।

(२) ये फार्म जिनके हिन्दी अंशकी खानापूरी बिलकुल नहीं होती।

सूचना सम्बन्धी।

(३) ये फार्म जो पहिली श्रेणीके फार्मोंकी क़िस्मके हैं पर उन पर हिन्दी नहीं छपी है।

कार्यालय सम्बन्धी।

(४) ये फार्म जो द्वितीय श्रेणीके फार्मोंकी तरहके हैं पर उनपर हिन्दीको स्थान नहीं मिला है।

दरख़ास्तके फार्म।

(५) ये फार्म जो हिन्दी तथा उर्दूमें अलग अलग छपे होते हैं और आवश्यकतानुसार हिन्दी या उर्दू फार्म कार्यमें लाये जाते हैं। या जो केवल उर्दूमें छपे हैं।

पहली श्रेणीमें समन, वारंट इत्यादि फार्म परिगणित हो सकते हैं, जो हिन्दी, उर्दू दोनोंमें छपे हैं और दोनोंकी खानापूरी बहुधा होती है पर कहीं कहीं कभी कभी हिन्दी फार्मोंकी खानापूरी नहीं भी होती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाके वर्तमान वर्षकी रिपोर्टके १७ वें पृष्ठपर इस सम्बन्धमें ये वाक्य लिखे गये हैं"......सभाके बारम्बार प्रतिवर्ष चिल्लाने तथा आवेदन पत्रादि भेजनेपर भी सरकारीकर्मचारी गवर्नमेंटकी आज्ञाका प्रतिपालन नहीं करते, इससे बहुत दुःख होता है......" वारंट गिरफ़ारीके फार्मोंके हिन्दी अंशको कभी कभी कुछ आलसी अमले फाड़ कर अलग कर देते हैं और केवल उर्दू अंशकी खानापूरी करते हैं पर ऐसा होना सर्वथा नियम विरुद्ध है।

कुछ फार्म ऐसे हैं जो समनकी भाँति जनताके सूचनार्थ जारी होते हैं पर गवर्मेन्टसे किसी छपे फार्मके न मिलनेके कारण अकसर लोग दोनों परत उर्दूमेंही जारी करते हैं जैसे दफा १४४ या १४५ जाब्ता फौजदारीके अनुसार नोटिसका फ़ार्म इत्यादि। यदि ऐसे फार्म हिन्दी, उर्दू दोनोंमें छपे हों तो जनता और अमलें दोनोंका उपकार हो और दोनोंका समय बचे।

तीसरी श्रेणीका फार्म कलक्टरीका हुकमनामा है, जो जनताको सूचना देनेके लिये काममें लाया जाता है पर वह केवल उर्दूमेंही छपा होता है फिर भी कुछ अमले उसपर हिन्दीमें नाम, ग्राम, तारीख आदि चपरासियोंके सुभीतेके लिये लिख देते हैं पर सूचना सम्बन्धी कुल बातें हिन्दीमें

नहीं लिखी जातीं जिसके कारण हुक्मनामों पर लिखी सूचनाओंको जनता बहुधा जानही नहीं पाती है। कभी कभी हाकिमोंके सामने ऐसे उज्र भी पेश होते हैं कि उन्हें ज्ञातव्य बातें ज्ञात नहीं हुई। कभी कभी इजलास तकका पता नहीं ज्ञात हो पाता है और बिचारे ग्रामीण भिन्न भिन्न इजलासोंमें अर्जियाँ देते तथा पूछते फिरते हैं कि किस अदालतमें उनकी तलबी हुई है। इसमें अमलोंका विशेष दोष नहीं है क्योंकि प्रथम तो उस फार्मपर हिन्दी हई नहीं। दूसरे उसपर इतना स्थान नहीं कि वे हिन्दीमें पूरा नकल कर दें। अस्तु। वह फार्म प्रान्तीय सरकारकी आज्ञा नं० ५८५ ता: १८-४-१६०० के पैरा ४ के अंशके अनुसार हिन्दीमेंभी छपना और भरा जाना चाहिये।

म्युन्सिपल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंसेभी जो सूचना आदि निकलती हैं प्रायः वे उर्दू मेंही निकलती हैं। इस वर्षकी काशी ना० प्र० सभाकी रिपोर्टमें मथुरा और काशीका म्युन्सिपलिटियोंमें हिन्दीके तिरस्कारकी चर्चा पाई जाती है। अभ्युदयने समय समय पर प्रयागकी म्युन्सिपलटीका ध्यान हिन्दीकी ओर आकर्षित किया है ना० प्र० सभा गोरखपुरने गोरखपूर म्यु० बोर्डका ध्यान आकर्षित किया था, पर अभी इन प्रधान नगरोंमें जहाँ हिन्दी सा० स०, काशी ना० प्र० सभा, प्रान्तीय हिन्दी कान्फरेन्स युक्त-प्रदेश आदिके कार्यालयहों, जहाँ हिन्दी प्रेमियोंकी संख्या विशेष हो, हिन्दीकी यह दशा है तो अन्य नगरोंकी दशाका उल्लेख करना तो व्यर्थही है। इस ओर स्थानीय ना० प्र० सभाओंको विशेष आन्दोलन करना चाहिये।

द्वितीय और चौथी श्रेणीका फार्म डिग्रीका है जो कुछ हिन्दीमें (दीवानीका एक फार्म) है और माल, दीवानी, हाईकोर्टके फार्म केवल उर्दू में हैं। हिन्दीवाले अंशकी खानापूरी नहीं होती बल्कि हाईकोर्टकी आज्ञानुसार हिन्दीका अंश काटके अलग रखा जाता है। काशी ना० प्र० सभाने हाईकोर्टसे लिखा पढ़ीकी थी परन्तु आशापूर्ति नहीं हुई। डिग्री तजवीजकी नकल हिन्दीमें मिलनेके लिये सम्मेलनने कई बार प्रस्ताव किया पर जब तक हिन्दीमें वे लिखे नहीं जाते तब तक उनकी नकलका हिन्दीमें मिलना दुःसाध्य ही है, पर इस सम्बन्धमें हमें अपनी आवश्यकतायें भली भाँति प्रगट करके खूब आन्दोलन करना चाहिये। नकलोंके सम्बन्धमें एक नियम यह है कि एक भाषासे दूसरी भाषामें नकल मिलनेके लिये अनुवादका फीस अलग देनी होती है यदि प्रत्येक जिलेमें कुछ लोग अनुवादकीभी फीस देकर हिन्दीमें डिग्री, तजवीज, इश्तहारकी नकल प्राप्त करनेकी प्रार्थना करें तो सरकारको हिन्दीमें इन कागजोंके तैयार करानेकी वास्तविक आवश्यकता प्रतीत होजाय। और ऐसी दरखास्तोंके पड़नेसे दोही चार वर्षके भीतर इस सम्बन्धमें हमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो जाय। गवर्न्मेन्टको किसी विशेष फार्मको अलग छपवानेकी भी आवश्यकता न होगी। क्योंकि कमाऊँ डिवीज़नके लिये बहुधा सब फार्म हिन्दीमें छपे हुये हैं और वहाँ उनका प्रयोग होता है, और संयुक्त प्रान्तके अमले जिस प्रकार संमन आदिकी खानापूरी हिन्दीमें कर लेते हैं, उसी प्रकार डिग्री आदिकी भी हिन्दीमें कर लेंगे।

दरख्वास्त नकल आदिके फार्म।

५ वीं श्रेणीमें निम्न लिखित फार्म हैं जिन्हें गवर्नमेंट छपवाती है और जनताको सरकारी दफ्तरोंसे मिलते हैं और उन्हें वह प्रयोग करती है

(१) दरख्वास्त नकल कलक्टरी—यह फार्म हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तीनों संयुक्त लिपियोंमें छपा है और मुफ्त मिलता है।

(२) * दरख्वास्त नकल, फौजदारी व दीवानीः—

ये फार्म दुहरे छपे हैं एक पर्त हिन्दीमें एक उर्दूमें छपा है। लोग फाड़फाड़ कर अपनी इच्छानुसार हिन्दी या उर्दू फार्म काममें लाते हैं।

(३) दरख्वास्त तक़ावी चालान दाखिला ख़ज़ानामेंः-

ये फ़ार्म एक ओर हिन्दी तथा दूसरी ओर उर्दूमें छपे हैं और चाहे जिस किसी ओर लिखनेका अधिकार है। पर चालान दाखिलेका फार्म बहुधा उर्दूमें ही भरा जाता है। प्रतिवर्ष प्रत्येक जिलेमें चालान दाखिलेका प्रयोग होता है। इनकी खानापूरी हिन्दीमें होनेसे संख्याकी अधिकता के साथ साथ जनताको विशेष सुभीता होता; क्योंकि उसी दाखिलेका आधा अंश उन्हें रसीदके तौरपर मिलता है। वे अपनी रसीद हिन्दीमें पाकर स्वयं पढ़ सकते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि इन चालानोंकी पूर्ति हिन्दीमें क्यों नहीं होती, जबकि वह फ़ार्म सरकारसे मुफ्त मिलता है और उसकी पूर्ति हर आदमी स्वयं कर सकता है। यद्यपि उन्हें ये सब अधिकार सरकारसे प्राप्त हैं पर उनके मार्गमें उनकी अज्ञानता और कुछ स्वार्थियोंकी स्वार्थान्धताके कारण कुछ रुकावटें भी आ पड़ती हैं। अधिकाँश तहसीलों में कुछ लोग "चालाननवीसी" का काम करते हैं जिन्हें प्रति चालानकी लिखाई कहीं कहीं एक पैसेसे चार पैसे तक मिल जाती है और इससे उनका गुजर होता है। जिनपर तहसीलदारों की कृपा होती या जो सदासे इस कामको करते आरहे हैं बहुधा उनके द्वारा कुल चालानों या (कमसे कम) अधिकाँश चालानोंका लिखा जाना तहसीलोंमें अनिवार्य समझा जाता है। दूसरे लिखनेवाले इन चालाननवीसों तथा वासिलबाकीनवीसोंके कोप-भाजन भी होते देखेगये हैं।

हमारा देश रूढ़ियोंका निवासस्थान सा हो रहा है। इसी कारण हमें अपने हिताहितकी ओर ध्यान देतेही नहीं बनता है। यदि मई, जूनके महीनोंमें प्रत्येक तहसीलोंमें एकवर्ष, सम्मेलन प्रान्तीयसमिति तथा स्थानीय ना० प्र० सभाओंके उद्योगसे मुफ्त लिखनेवाले वैतनिक या अवैतनिक लेखक नियुक्त किये जा सकें और उनके कार्यमें बाधायें न पड़ने पावें तो फिर लोग अपना अपना चालान स्वयं लिख लिया करेंगे या हर तहसीलोंमें हिन्दी लेखक तैयार हो जायँगे।

(४) इस्तिमनवीसी (दीवानी फ़ार्म) :—

यह सरकारी फार्म केवल उर्दूमें छपा है। कोई मनुष्य न तो इसे छाप सकता है न दूसरा फार्म या सादा कागज़ इसके स्थानमें प्रयोग कर सकता है। यही कारण है कि दीवानीमें इस्तिमनवीसी उर्दूमें ही लोग दाखिल करते हैं। काशी ना० प्र० सभाने अपने पिछले वर्षकी रिपोर्टमें इस ओर अधिकारियोंका ध्यान आकर्षित कराया था। प्रान्तीय हिन्दी कान्फ्रेंसने इस फार्ममें हिन्दी भी होनेके लिये प्रस्ताव किया था; पर अब तक कुछ फल नहीं हुआ। सम्मेलनके द्वारा आन्दोलन होकर इस फार्मको हिन्दीमें भी छपवानेका अनुरोध होना चाहिये और जब तक यह फार्म हिन्दीमें न छप जावे तबतक उर्दू फार्मपर ही हिन्दीमें खानापूरी करके दाखिल करना चाहिये।

(५) * फिहरिस्त सबूत मालका फार्म :—

पहले यह फार्म एक ओर हिन्दी तथा दूसरी ओर उर्दूमें छपा हुआ सरकारसे मुफ्त मिलता था। बीचमें जनताको स्वयं छाप या छपवाके प्रयोग करनेका अधिकार था; पर कुछ दिनोंसे सरकारी फ़ार्म ॥।) सैकड़े मूल्य पर बिकने लगा

* एक प्रकारका मुतफर्रकात चालान दाखिला उर्दू अंगरेजीमें है उसमें हिन्दी भी होना चाहिये।

* इन फारमोंको जबतक निजके प्रेसोंको छापनेका अधिकार था तब तक उनके द्वारा हिन्दीकी विशेष क्षति थी सरकारी फार्मो... ...रसे हिन्दी, उर्दूका पक्ष समान है।

है और लोगों को इस फार्मके छापनेकी मनाही करदी गई है। इधर कुछ दिनों तक यह फार्म "उर्दू-अंगरेजी" में छपा था, पर फिर "हिंदी" और "उर्दू" में छपा हुआ मिलने लगा है।

(६) दरखास्त वापसी :--

यह फार्म कलकृरी गोरखपुरका स्थानीय (लोकल) फार्म है और केवल उर्दू में छपा है। हिन्दीमें भी छपना चाहिये। स्थानीय ना० प्र० सभाको उचित है कि इस ओरभी श्रीमान जिलाधीश महोदयका ध्यान दिलावे।

(७) *परवा रसीदी :—

यह फार्म हिन्दी, उर्दू दोनोंमें छपा है। और मुफ्त मिलता है।

"मुहकमा बन्दोबस्त और हिन्दी।"

यों तो हिन्दी जाननेवाली जनताके सुभीतेके लिये बन्दोबस्तके परचे आदि अधिकांश हिन्दीमें प्रस्तुत किये और दिये जाते हैं, पर बन्दोबस्त में अर्जियोंके दाखिलेकी प्रथा बड़ीही विलक्षण दीख पड़ती है और उससे हिन्दीकी विशेष हानि होती है। यहाँ एक विचित्र प्रथा यह है कि बन्दोबस्तके अधिकारी अपने यहाँके इने-गिने अरायजनवीसोंकी ही लिखी अर्जियाँ लेते हैं। इस प्रथाको बन्द करानेका यत्न होना चाहिये।

"पटवारी और हिन्दी।"

जनताको पटवारियोंके कागजोंसे अधिक सम्बन्ध रहता है इसीसे पटवारियोंके कागज पत्र अधिकतर हिन्दीमें ही हैं, पर कहीं कहीं कुछ पटवारी अपने कागज अब उर्दू में भी लिखने लगे हैं, जिसका कारण यह मालूम होता है कि पटवारी समझते हैं कि उर्दू में अपने कागज रखनेसे वे उर्दू-दाँ और योग्य समझे जायँगे और समय पड़े वे नायब रजिस्ट्रार तथा कानूनगो हो सकेंगे, पर उन्हें ध्यानमें रखना चाहिये कि वे हिन्दीमें कागज रखनेपर भी इसके योग्य समझे जा सकते हैं। आवश्यकता है कि गवर्नमेंटसे प्रार्थनाकी जाय कि पटवारियोंके कुल कागजों का हिन्दीमें ही लिखा जाना अनिवार्य हो जाय।

"कलक्टरीका नकल विभाग और हिन्दी।"

नकलके लिये यह नियम है कि जिस भाषा और जिस लिपिमें असल कागज हो उसीमें नकल दीजावे। अनुवादका फीस देनेपर किसी दूसरी भाषामें अनुवाद करके दिया जा सकता है। पर इस प्रान्तमें कहीं कहीं उपरोक्त नियमके विरुद्ध पटवारियोंके खसरेका १२ साला इन्तखाब हिन्दीमें हिन्दीमें देनेके बदले हिन्दीसे उर्दू में दिया जाता है। इससे जनताकी अड़चनें बढ़ जाती हैं। उन्हें उसके पढ़ानेके लिये इधर-उधर भटकना पड़ता है। कई वर्ष हुए गोरखपुर नागरी-प्रचारिणी सभाके उपसभापति रायबहादुर बाबू रामगरीबलाल तथा बाबूअभयनन्दनप्रसाद मुख्तारने "डिवीजनल कलेक्टरोंकी कान्फ्रेंस" में लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित कराया था। जिसपर उक्त कान्फ्रेंसने यह निश्चय किया था कि जहाँ कहीं इन्तखाब उर्दू में ही दिया जाता हो वहाँ भी जो लोग हिन्दीमें पानेकी इच्छा अपनी अर्जीमें प्रगट करें उन्हें हिन्दीमेंही दिया जाया करे, पर अभी इसमें और सुधारकी आवश्यकता है। उचित तो यह होगा कि जो लोग उर्दू में पानेकी इच्छा प्रगट करें केवल इन्हें उर्दू में दिया जाय शेष लोगोंको हिन्दीमें ही दिया जाय। ऐसाही मन्तव्य गत वर्ष प्रथम "प्रान्तीय हिन्दी कान्फ्रेंस गोरखपुर" ने भी स्वीकृत किया था। उपरोक्त प्रथाके प्रचलित होनेका असली कारण यह मालूम होता है कि नकल विभागमें हिन्दी अच्छी तरह लिख पढ़ सकनेवाले नकलनवीसोंकी संख्या यथेष्ठ नहीं है। परन्तु जो लोग हिन्दी पढ़कर उसकी नकल उर्दू में लिखते

हैं उन्हें हिदायतकी जाय तो थोड़ेही दिनोंमें वे अच्छी तरह हिन्दी लिखनेमें भी अभ्यस्त हो सकते हैं। गवर्नमेंटके नियमानुसार उनमें हिन्दीकी योग्यता आवश्यक है।

"अनुवाद लेनेकी प्रथा"

कहीं कहीं अदालतोंमें हिन्दी दस्तावेजों, रसीदों आदिके उर्दू अनुवाद लेनेकी प्रथा प्रचलित पाई जाती है। शायद यह प्रथा इन दो कारणोंसे प्रचलित हो। एक यह कि कागज़ोंके सबूत जब मिसिलसे वापिस लेलिये जायँ तब उनकी एक प्रतिलिपि मिसलमें मौजूद रहे। दूसरे यह कि हिन्दी कागज़ोंको पढ़नेमें अनभ्यस्त लोगोंको अनुवाद द्वारा उनके पढ़नेमें सुविधा हो, पर ये दोनों कारण ठीक नहीं हैं। क्योंकि किसी कागजकी प्रतिलिपि मिसिलमें रखनेकी आवश्यकता है तो वह उसी लिपिमें होनी चाहिये जिसमें असल कागज है और यह प्रथा केवल हिन्दी कागजोंके लिये ही नहीं होना चाहिये। दूसरा कारण तो सर्वथा अन्याय पर अवलम्बित है। नियमानुसार हर अमलेको हिन्दीसे जानकार होना चाहिये। फिर कोई कारण नहीं है कि कुछ इने गिने लोगोंके दोष छिपाके उनकी सुविधाके लिये जनताको असुविधा कारक प्रथा प्रचलित रहे। जहाँ जहाँ यह प्रथा प्रचलित है वहाँ वहाँके हिन्दी प्रेमियोंको आन्दोलन करके इसे बन्द कराना चाहिये। गोरखपूर जिलेकी कलक्टरीमें पहिले कलक्टर साहिब बहादुरकी आज्ञासे हिन्दी कागजोंका उर्दू अनुवाद लिया जाता था, पर सन १९१२ ई० में स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभाके सदस्य बाबू रघुनाथ सेवक मुख्तारने एक हिन्दी "नकल खेवट" का उर्दू अनुवाद देनेसे इंकार किया और यह मामला तत्कालीन जिलाधीश श्रीमान् जे होय. सिम्पसन साहिब बहादुरके सम्मुख उपस्थित हुआ। उन्होंने पिछले (आज्ञा-पत्र) को रद्द करके यह आज्ञा दियी कि जो अमला हिन्दी कागजोंका तरजुमा माँगेगा उसको सजा की जायगी। साथही उन्होंने जिले भरके अमलोंका हिन्दीमें इम्तिहान भी लिया और यह आज्ञा दे दी कि जो लोग हिन्दी नहीं जानते होंगे अपने पदोंसे हटा दिये जायँगे। फल यह हुआ कि हिन्दीके कट्टरसे कट्टर विरोधीभी हिन्दी ककहरासे प्रारम्भ करके काम करने भरकी हिन्दी सीख गये और गोरखपूरकी कलक्टरीसे बहुत कुछ हिन्दीका विरोध मिट गया और हिन्दी प्रचारकोंको सुगमतायें हो गई।

"नागरी और कैथी"

बिहारप्रान्तकी अदालतोंमें "बिहारी कैथी" लिपि प्रचलित है। मध्यप्रदेशकी लिपि भी जो साधारण व्यवहारमें प्रचलित पाई जाती है पुस्तकोंकीसी सुसज्जित देवनागरी लिपि नहीं होती। संयुक्तप्रदेशके अमले संमनों आदिमें कभी कभी कैथी लिपि और कभी कभी लकीरों रहित नागरी लिपिका प्रयोग करते हैं तथा उर्दू (फारसी) लिपि बिना नुकतों और अधूरे दायरों आदिमें अदालतमे व्यवहारमें लाई जाती है। फिर "नागरी" के लिये भी वही सुगमतायें होनी चाहियें, यदि बिना लकीरोंके अक्षर शीघ्र प्रयोग किये जासकते हैं तो उनका प्रयोग होना चाहिये यही सम्मति सम्मेलन द्वारा नियुक्त "वर्ण विचार समिति" की भी है और अ, ख, भ आदि अक्षर जल्द लिखनेमें कैथीके ही प्रयोगमें लाये जाँय तो अच्छा हो। जिन जिन स्थानोंमें हिन्दी कागजोंका अनुवाद लिया जाना बन्द हुआ है वहाँ भी कभी कभी सुना जाता है कि लोग "कैथी" लिपि या "लकीरों रहित नागरी अक्षरों" को कैथी कहकर उसका अनुवाद माँगते हैं। यदि वास्तवमें लिपि ऐसी भद्दी नहीं है कि उसका पढ़ना साधारणतया कठिन हो तो कदापि अनुवाद नहीं देना चाहिये और यदि अनुवाद देना आवश्यक समझा जाय तो उसका

अनुवाद शुद्ध नागरी लिपिमें दिया जाय। ना० प्र० सभा गोरखपूरके उपमंत्री पं० चंडी प्र० पाठक वकीलसे जब जब कैथी आदिका अनुवाद माँगा गया तो उन्होंने शुद्ध नागरीमें अनुवाद दिया। फल यह हुआ कि उनसे अनुवादका मांगना लोगोंने स्वयं छोड़ दिया। पर हमें इस बातका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि हम लोग अपनी लिपिको उर्दूकी भाँति भ्रष्ट रूपमें कभी न प्रयोग करें। अपनी लिपिकी स्पष्टता आदि गुणोंको सुरक्षित रखना भी हमारा कर्त्तव्य है।

" उर्दू अर्जियोंपर हिन्दी नाम ग्राम "

उर्दूमें लिखे नाम और ग्रामके पढ़नेमें बहुत अड़चनें पड़ती है और उन्हें पढ़कर और उनके आधारपर लिखे समनों आदिमें तथा पुकार कराते समय नाम पुकरवाने आदिमें प्रायः भूलें होती देखी जाती हैं। यदि उर्दू अर्जियोंपर कमसेकम नाम और ग्राम हिन्दीमें लिखे हों तो बहुत सुविधायें हो जांय। इस प्रकारकी आज्ञायें कभी कभी कोई कोई आफिसर दे भी देते हैं।

श्रीमान् जे. होप सिम्पसन साहिब बहादुर कलक्टर गोरखपूरने अपने समयमें अपने इज-लासमें दाखिल होनेवाली अपीलोंपर नाम और ग्राम नागरीमें लिखनेकी आज्ञा दी थी, पर उनके चले जानेपर उक्त आज्ञाका पालन बन्द हो गया, उसी आज्ञाके आधारपर सन १९१३ ई० में श्रीमान बाबू गंगाप्रसाद एम. ए. सब डिवीजनल आफिसर देवरियाने अपने सबडिवीजनके प्रत्येक अदालतोंमें प्रत्येक अर्जीपर नाम और ग्राम नागरीमें लिखनेकी आज्ञा दी थी, पर कुछ दिनोंके बाद स्थानीय (उर्दू) पत्र " मशरिक " तथा अन्य मुसलमानोंके आन्दोलनसे वह आज्ञा रद्द हो गई। हालमें " प्रताप " (कानपुर) में प्रकाशित एक चिट्ठीसे ज्ञात हुआ है कि वहाँको कलक्टरीमें भी अपीलोंमें नाम और ग्राम नागरीमें लिखनेकी आज्ञा हुई है। ऐसी आज्ञायें दृढ़ रूपसे प्रान्त भरके लिये होनी चाहिये और इसकेलिये एक दृढ़ आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है।

" सिंचाई विभाग और हिन्दी।"

सिंचाई विभागकी रसीदें आदि हिन्दीमें नहीं दीजाती हैं। उनके हिन्दीमें दिये जानेके लिये उद्योग होना चाहिये।

" कोर्ट आफ वार्डस और हिन्दी।"

प्राय: देखा जाता है कि जो रियासतें कोर्ट आफ वार्ड्समें ली जाती हैं यदि उनका दफ़्तर पहिले हिन्दीमें रहा हो तोभी वह उर्दूमें परिवर्तित कर दिया जाता है। रसीदें आदि उर्दूमें ही दीजाती हैं। इसका प्रभाव यह होरहा है कि प्रान्तकी बड़ी बड़ी रियासतोंमें हिन्दीका स्थान उर्दूने लेलिया है। कोर्ट आफ़ वार्ड्सका अधिकांश दफ्तर हिन्दीमें रखवानेका आन्दोलन होना चाहिये। नागरी प्रचारिणी सभा देवरियाने कोर्ट आफ वार्ड्स मझौली राज्यका ध्यान इस ओर आकर्षित कराया था, पर कुछ फल नहीं हुआ। कोर्ट आफ वार्ड्समें अर्जियाँ सुगमतासे नागरी लिपिमें लेली जाया करें, इसका भी उद्योग होना चाहिये। कहीं कहीं अड़चनें पड़ती हैं।

" डाक, तारघर तथा रेलवे।"

डाकघर और तारघरोंपर भिन्न भिन्न विभागोंके साइनबोर्ड तथा रेल्वेके टाइम टेबुल आदिका हिन्दीमें होना बहुत आवश्यक है इस अभावकी पूर्ति तथा इसी तरह भिन्न भिन्न विभागोंमें जनताके सुभीते केलिये हिन्दीका समावेश करानेके लिये आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है।

" रजिष्ट्रीविभाग और हिन्दी।"

देनलेन करनेवालों और जनताका बहुत कुछ सम्बन्ध रजिष्ट्रीविभागसे भी लगा रहता है।

ग्रामोंमें दस्तावेजोंको हिन्दीमें ही लिखने लिखाने की प्रथा प्रचलित है। शीघ्र लिखजानेके कारण अधिकांश कैथी लिपिका ही प्रयोग होता है, पर कहीं कहीं कोई कोई सब रजिष्ट्रार भिन्न भिन्न रीतियोंसे उर्दूमें ही दस्तावेज़ लिखे जानेकी प्रेरणा करते हैं। यही कारण है कि प्रायः रजिष्ट्री आफिसके सदर स्थानपर लिखे जाने-वाले दस्तावेजोंमें अधिकांश उर्दूमें लिखे जाते हैं। इस ओर भी हिन्दी प्रेमियोंके ध्यान देनेकी आवश्यकता है। रजिष्ट्री आदिकी रसीदोंको हिन्दीमें मिलनेके लिये आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है।

"आनरेरी मजिष्ट्रेट आदि और हिन्दी।"

गोरखपुर जिलेमें स्वर्गीय पं० हरिवंशप्रसाद त्रिपाठी, स्वर्गीय बाबू गौरीदत्तसिंह अपना फैसला हिन्दीमें ही लिखते थे और इनके यहाँके अर्जीनवीस कुल अर्जियाँ नागरीमें ही लिखते थे। इस समय पं० अम्बीकाप्रसाद पांडे आनरेरी मजिष्ट्रेट पकरडीहा अपना फैसला नागरीमें लिखते हैं और उनकी इजलासमें अर्जीनवीस कुल अर्जियाँ नागरीमें लिखते हैं। बाबू द्वारिका धीशसिंह आ० म० ढ़ाढा और लाला हरखचन्द मारवाड़ी आ० म० बरहज अपना फैसला नागरी लिपिमें और बा० रघुनाथप्रसाद आ० म० बड़हलगंज महाजनी लिपिमें लिखते हैं। साहब ज़ादाउदयप्रतापनारायण सिंह आ० म० ने अपने रियासतका दफ्तर कुल हिन्दीमें कर दिया है और उनकी इजलासके अर्जीनवीस पं० अमननाथपाठक कुल अर्जियाँ नागरी लिपिमें ही प्रविष्ट कराते हैं। कर्वीके बाबा साहब मोरेश्वर बलवन्त जोगी अपने फैसले हिन्दीमें लिखा करते हैं। पंचम सम्मेलन लखनऊमें श्रीयुत बाबू महावीरप्रसाद जी आनरेरी मजिष्ट्रेट ने अपने फैसले हिन्दीमें लिखनेका प्रण किया था। क्षत्रिय उपकारिणी महासभाके प्रस्तावके उत्तरमें गवर्नमेंटने भी आनरेरी मजिष्ट्रेटों आदिको अपना कार्य नागरीमें करनेकी अनुमति देदी है, पर अब तक हमारे बहुतेरे आनरेरी मजिष्ट्रेट महोदयोंका ध्यान इधर आकर्षित नहीं हुआ है। हिन्दी प्रेमियों और ना० प्र० सभाओंका कर्त्तव्य है कि आनरेरी मजिष्ट्रेट, आनरेरी मुंसिफ, आनरेरी असिस्टेंट कलक्टर महाशयोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करें "विलेज मुंसिफ" लोगोंमें तो अधिकांश लोग अपना काम हिन्दीमें ही करते हैं।

"कमाऊ डिवीजनमें हिन्दी।"

संयुक्त प्रान्तकी १० कमिश्नरियोंमें से केवल एक कमाऊंमें ही हिन्दीही अदालती भाषा और लिपि है हमारे बुंदेलखण्डी भाइयोंने झांसीकी द्वितीय प्रान्तीय हिन्दी कान्फ्रेंसमें एक प्रस्ताव द्वारा गवर्नमेंटसे बुंदेलखण्डमें भी कमाऊँकी भाँति एकमात्र नागरीको ही अदालती लिपि बनाये जानेकी प्रार्थना की है।

"अवध प्रान्तमें हिन्दी।"

अवध प्रान्तमें हिन्दीकी अवस्थाका सच्चा रूप पंचम हि० सा० सम्मेलन लखनऊके स्वागत-कारिणी सभाके सभापतिकी वक्तृताके निम्न-लिखित अंशसे प्रकट होता है "घोर लज्जाका विषय है कि अवधवासियोंने भी युक्तप्रान्तके अन्य स्थानोंके हिन्दी भाषी निवासियोंकी भाँति इस आज्ञासे कोई लाभ नहीं उठाया। सम्मेलनकी स्थायी समिति तथा दो एक नगरोंकी स्थायी ना० प्र० सभाओंके उद्योगसे अब कुछ जिलोंमें कुछ कुछ अदालती कार्य नागराक्षरोंमें भी होने लगा है, परन्तु हम अवधवासियोंके कानोंपर अभीतक जूँ नहीं रेंगी। मेरे वकील मित्रगण मुझे क्षमा करें। यदि मातृ भाषाके प्रति, जननी जन्म भूमिके प्रति अपना दायित्व समझकर वे कटिबद्ध हो अपना कर्त्तव्य पालन करते तो बहुत

कुछ सफलता प्राप्त हो सकती थी। भविष्यमें भी हिन्दीभाषी वकीलगण अपने कर्त्तव्यकी इसी प्रकार अवहेलना करते रहेंगे, ऐसी आशा नहीं है।"

" वकील और हिन्दी।"

उपरोक्त पंक्तियोंमें जो उल्लेख आया है वह तत्कालीन वास्तविक अवस्थाका परिचायक है। पर अब कुछ वकीलोंका ध्यान इधर आकृष्ट हो रहा है। इस लेखमें ऊपर जिन महाशयोंका नाम आचुका है उनके अतिरिक्त निम्न लिखित वकीलोंका नामोल्लेखभी इस सम्बन्धमें अनावश्यक न होगा।

उन वकील और मुख्तारोंके नाम जिनके द्वारा नागरीका कार्य हुआ है। काशी:-बाबू गौरीशंकर-प्रसाद, पं० गोविन्दराव जोगलेकर, बांदा:-कुंअर हरप्रसादसिंह, कानपुर:—पं० महेशदत्त शुक्ल, मैनपुरी:—पं० खङ्गजीत मिश्र, बाबू धर्मनारायण, बस्ती:—पं० महाराजमणि त्रिपाठी, ठाकुर मूरत सिंह, फैजाबाद:—पं० श्रीराम मिश्र, बुलन्द-शहर:—पं० सोहनलालजीशर्मा बा० मोहनलाल जी बा० नन्दकिशोरजी बा० बद्रीकृष्ण जी पं० हरिप्रसादजी शर्मा बा० जैसिंहरामजी पं० शम्भू-दत्तजी पं० रामप्रसाद जी शर्मा बा० गिरधारी-लालजी पं० बुलाकीदास जी जीवनलाल जी बा० हिम्मतसिंह जी मौ० अनवर हुसेन जी बाबू रामनारायणजी गुप्त।

पंचम सम्मेलन लखनऊमें बा० हरिकृष्णदास धावन बी० ए० एल० एल बी, बाबू लक्ष्मणप्रसाद श्रीवास्तव, पं० ब्रजनाथ एम० ए० एल० एल० बी, स्वर्गीय रायदेवीप्रसाद पूर्ण, पं० गोकरणनाथ मिश्र प्रभृति वकीलोंने हिन्दीमें कार्य करनेका प्रण किया था देवरिया ना० प्र० सभाके वार्षि-कोत्सव पर पं० काशीनाथ मालवीय और पं० अवधनाथजीने प्रण किया था। वकीलोंका ध्यान नागरी प्रचारकी ओर आकर्षित करनेकी बहुत आवश्यकता है।

" मुहर्रिर और अर्जीनवीस "

बहुधा वकील, मुख्तार लोग अपने पुराने मुहर्रिरोंकी हिन्दी अनभिज्ञताका बहाना करते हुए देखे जाते हैं और कभी कभी हिन्दी जानने-वाले उपयुक्त मुहर्रिरोंके न मिलनेकी भी शिकायत करते हैं। बहुधा ये शिकायतें सत्य भी होती हैं, पर इसका उपाय स्वयं वकीलोंके हाथमें ही है। देवरियाके ठाकुर रामायणजी मुख्तारने कुछ दिनों तक अपने मुहर्रिरको इस कारण मुअत्तिल किया था कि उसने हिन्दीमें काम करनेसे इन्कार किया था और अपने पाससे वेतन देकर एक वैतनिक मुहर्रिर रखकर काम चलाया था, पर अब उनके पुराने मुहर्रिर कुल काम हिन्दीमें कर लेते हैं। ठाकुर हरप्रसाद सिंह वकील बांदाके मुहर्रिरने ३००० अर्जियाँ नागरीमें दाखिल करनेके कारण पंचम सम्मेलनमें सम्मानपत्र और चाँदीका कलमदान प्राप्त किया था। पं० महेशदत्त शुक्ल कानपुरका मुहर्रिर मुसलमान होते हुये भी अच्छी तरह अपना काम हिन्दीमें कर लेता है। मं० रघुनाथसेवक मुख्तार गोरखपुरके मुहर्रिर बाबू लालबिहारीलालने स्वयं हिन्दीमें कुल काम करते हुये अन्य मुहर्रिरों तथा मुख्तारों-का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जिसके उपलक्षमें स्थानीय नागरी-प्रचारिणी सभाने उन्हें अपना सदस्य बनाकर प्रबन्ध-कारिणी-समितिका सदस्य बनाया। फिर हमें कोई कारण नहीं दीखता कि वकील, मुख्तारोंके मुस्तैद होनेपर उनके मुहर्रिर क्यों न तैयार होंगे। मुहर्रिरोंमें बहुतेरे लोग हिन्दी पूर्णतया लिख पढ़ सकते हैं। प्रयागमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी ओरसे एक उपसमिति मुहर्रिरीकी (अरायज़नवीसी) शिक्षा भी देती है तथा २३।७।१६ के अधिवेशनमें

सम्मेलनकी स्थायीसमितिने इस वर्ष (सं० १९७४ वि०) से अरायजनवीसी परीक्षा लेनेका भी निश्चय किया है। जिससे आशाकी जाती है कि उपयुक्त मुहर्रिर तैयार होनेमें बड़ी सुगमता होगी। वर्तमान मुहर्रिरोंको इस परीक्षामें प्रविष्ट होने और नागरीमें काम करनेके लिये पदक, प्रशंसापत्र, पारितोषिक देकर स्थानीय सभाओं और पुस्तकालयोंमें बिना चन्दा दिये हुये सदस्य बनाकर उत्साहित करनेकी बड़ीही आवश्यकता है। इस प्रान्तकी मालकी अदालतों-में छोटे छोटे बहुतेरे काम असालतन होते हैं और ऐसी अर्जियोंके लिखनेके लिये जिलाधीश महोदयकी आज्ञासे नियुक्त अर्जीनवीस होते हैं जिनकी संख्या निश्चित् होती है। कोई स्थान खाली होनेपर ही दूसरेकी नियुक्ति हुआ करती है। पुराने अर्जीनवीस हिन्दीसे बहुत कम सहानुभूति रखते हैं। अतः आवश्यकता है कि जिलाधीश महोदयोंसे प्रार्थना करके कुछ हिन्दीमें कार्य करनेवाले नये अर्जीनवीस नियुक्त कराये जाँय और इस बातका उद्योग हो कि सम्मेलनकी अर्जीनवीसी परीक्षोत्तीर्ण लोगोंको मंजूरशुदा अर्जीनवीसोंकी भांति काम करनेका अधिकार मिल जाय। प्रशंसापत्र, पारितोषिक आदि देकर पुराने अर्जीनवीसोंका झुकावभी नागरी-प्रचारकी ओर कराया जाय।

"नागरी-प्रचारिणी सभायें और उनके द्वारा नागरी-प्रचारका उद्योग।"

अबतक इस प्रान्तके १३ जिलोंमें केवल १५ सभायें सम्मेलनसे सम्बन्धयुक्त हैं और कुछ सभायें अबतक सम्बन्धयुक्त नहीं हैं, पर बहुतेरे स्थानोंमें ना० प्र० सभाका अभाव है। आवश्यकता है कि प्रत्येक जिले और तहसीलोंमें ना० प्रचारिणी सभायें स्थापित कराई जाँय, जो अपने यहाँकी अदालतोंमें नागरी प्रचारका यत्न करें और सम्मेलनको प्रचारसम्बन्धी सूचनायें देती रहें। अपने यहाँ अदालती हिन्दी फार्मोंका एक स्टाक विक्रयार्थ रखें और सम्मेलनकी सहायतासे वैतनिक लेखक नियुक्त कर अरायजनवीसी परीक्षा में सम्मिलित होनेके लिये लोगोंको उत्साहित करें और अपने यहाँ परीक्षार्थियोंकी यथेष्ट संख्या मिलने पर परीक्षा समिति को लेकर केन्द्र बनवाके परीक्षाका प्रबन्ध करें। स्थायीसमिति और प्रान्तीय-समितिका कर्तव्य है कि सभाओंको स्थापित कराके उनके द्वारा इन कार्यों तथा अन्यकार्योंका सम्पादन करायें और स्वयं उनकी सहायता करें। अमलों और अर्जीनवीसोंकी हिन्दीसम्बन्धी परीक्षा लेनेके लिये समय समय पर अधिकारियोंका ध्यान दिलाती रहें जिसमें इन दोनों श्रेणीके लोगोंमें हिन्दीसे अनभिज्ञ लोगोंकी अधिकता न होने पावे जो नागरी-प्रचारमें बहुत अधिक बाधक होती है। स्कूलोंमें दूसरीभाषाके रूपमें हिन्दी लेनेवालोंकी संख्याकी वृद्धिका यत्न भी होना चाहिये क्योंकि ऐसे लोग जब कचहरियोंमें प्रविष्ट होंगे तो उनसे नागरी प्रचारमें बहुत सहायता मिलेगी। स्कूलोंके लेकंड फार्म, उच्चआफिसरों और कानूनी परीक्षाओंमें, हिन्दीका स्टैंडर्ड और भी बढ़वानेका यत्न होना चाहिये। इससे नागरी-प्रचारमें सुगमतायें प्राप्त होंगी। साथ ही यह भी यत्न होना चाहिये कि आनरेरी मजिस्ट्रेटों की भांति वैतनिक न्यायाधीशोंको भी इजहार निर्णय आदि हिन्दीमें लिखनेका अधिकार मिल जाय। अभी थोड़े दिन हुए बाबू मदनमोहन सेठ बी० ए० एल० एल बी० मुन्सिफने इजहार आदि हिन्दीमें लिखना आरम्भ किया था इसपर मुसलमानी उर्दूपत्रोंने बहुत आन्दोलन किया था। काशी नागरी-प्रचारिणी सभाने हाईकोर्टके रजिस्टार महोदयसे इस विषयमें पत्रव्यवहार किया था परन्तु कोई सन्तोषदायक उत्तर नहीं मिला। इसे हिंदीप्रेमी अधिकारियोंका उत्साह भंग होता

है। हमें किसीके प्रति अन्यायकी इच्छा न करनी चाहिये पर अपनेप्रति न्यायकी इच्छा तो अवश्य करनी चाहिये। कहीं कहीं न्यायाधीशोंकी कृपा बनाये रखनेके लिये लोग इच्छा रहते हुयेभी नागरी प्रचारसे मुँह मोड़ते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। हमें दृढ़ होकर कार्य और आन्दोलन करना चाहिये। गत वर्ष देवरियाना०प्र० सभाके वार्षिकोत्सवके समय स्थानीय मुंसफी-के कुछ वकीलों और जमीदारोंने नागरीमें काम करनेका प्रण किया था। तदनुसार पं० दूधनाथ त्रिपाठी (जमीदार) ने एक दरखास्त गौरीप्रसाद वकीलके द्वारा मुंसफीमें नागरी अक्षरोंमें लिखवा-के दाखिलकी उसके सम्बन्धमें "प्रताप" और सम्मेलन पत्रिकासे ज्ञात हुआ कि मु० इख़्तारहुसेन साहिब मुन्सिफने वह दरखास्त लौटा दी जो उर्दू अनुवाद समेत फिर दाखिल हुई थी। इस घटनासे वहाँ की मुंसफीमें नागरीप्रचारके कार्यको बड़ा धक्का पहुंचा, पर स्थानीय ना० प्र० सभा और स्थायी समिति दोनोंने मौनावलम्बन ही धारण किया। भविष्यमें ऐसा न होना चाहिये। जहाँ हमारे स्वत्वोंको क्षति पहुँचनेकी सम्भावना हो वहाँ हमें दृढ़ताके साथ आन्दोलन करके प्रचारके कार्यको अग्रसर करना चाहिये जबतक ऐसा न होगा हमें पूर्ण सफलता स्वप्नवत रहेगी।

हमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जब तक अदालतोंमें हम अपने प्राप्त स्वत्वोंका पूर्ण उपयोग न करेंगे तब तक उससे अधिक स्वत्व केवल प्रार्थनाके आधारपर कदापि न मिलेंगे। और जब तक अदालतोंमें नागरी लिपिका प्रचार न होजायगा तबतक हमारी राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिका उचित सम्मान न होगा। इस सम्बन्ध में मनुष्य गणना विवरणके सम्पादककी निम्न उक्ति ध्यान देने योग्य है। "In Practice, the Persian is still the court script and undoubtedly this makes a difference, causing it to be the more Popular." अर्थात् वास्तवमें अदालतोंमें अभी तक फारसी अक्षरोंका ही साम्राज्य है और इसी कारण जनता इन अक्षरोंका अधिक आदर करती है। अन्तमें हम अपने हिन्दीभाषी-भाइयोंसे यह प्रार्थना करते हुए अपने इस लेखको समाप्त करते हैं कि अगली मनुष्य गणना तक अर्थात् अबसे ४-५ वर्षोंमें आप अदालतोंमें नागरी-प्रचारको इतना विस्तृत करदें कि भावी-मनुष्यगणना-विवरणके सम्पादक महोदयको अपने पूर्वअधिकारीके लेखका समर्थन न करना पड़े।

हिन्दीमें भावव्यंजकताकी वृद्धि।

लेखक:—पं० श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए.

हमारी हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग हुई थी, किन्तु अनेकानेक प्रकट कारणोंसे यहाँ प्राचीन कालमें गद्यकी उन्नति नहीं हुई। सबसे प्राचीन हिन्दी गद्य लेखक महात्मा गोरखनाथ हुये, जो एक प्रसिद्ध धर्म्मके प्रवर्तक थे। आपने गद्यमें एक ग्रन्थ लिखा अवश्य, किन्तु उसमें भी साधारण धर्म्मोपयोगी विषयोंके अतिरिक्त कोई विशेष वर्णन नहीं है। इन महात्माके पीछे अकबरके समयमें दो चार गद्य लेखक हुए, किन्तु फिर भी गद्यकी उन्नति विशेष

नहीं हुई, और वर्त्तमानगद्यका वास्तविक प्रारम्भ लल्लूलाल और सदल मिश्रके समयसे सं० १८६० में हुआ। इसके पीछेसे अबतक गद्य बहुतही सन्तोषजनक उन्नति करता आता है और करता आता है। पद्यका प्रचार हमारे यहाँ पूर्व कालसे अबतक बहुत अच्छा रहा है। गद्य और पद्यमें शब्दोंका व्यवहार भी कुछ भिन्न है, क्योंकि पद्यमें विशेषतया साहित्य सम्बन्धी शब्दों तथा भावोंकी आवश्यकता पड़ती है किन्तु गद्यमें विशेषता साधारण कामकाजवाले विषयोंकी रहती है। हमारे यहाँके साहित्यमें पूर्वकालमें शृंगार, धर्म्म तथा नृपयश कीर्त्तनका आधिक्य रहा। इन विषयोंसे इतर वर्णन कम हुये हैं। नाटकोंका कथन यहाँ कुछ कुछ अनावश्यक है, क्योंकि उनके विषय साधारण पद्यके विषयों-से मिलजाते हैं।

अब हमारे यहाँ जैसे भावोंका प्रयोग साहित्य एवं साधारण ग्रन्थोंमें सदासे होता रहा है, उनके व्यक्त करनेवाले शब्द तो खूब प्रचुरतासे मिलते हैं, किन्तु जो अनोखे भाव हमारे अनुभव विस्तारसे अब हमें ज्ञात हुये हैं और होते जाते हैं, उनके व्यक्त करनेका सामर्थ्य हमारे शब्दोंमें हर अवस्थामें नहीं है। आजकल हमारा पाश्चात्य सभ्यतासे मेलजोल हुआ है और उसके सहारेसे संसारके शेष प्रदेशोंका भी ज्ञान हममें दिनोदिन बढ़ रहा है। भारतसे इतर पृथ्वीके सभी देशोंके विचारों तथा सभ्यताका ज्ञान हमें दिनोदिन अधिकाधिक होता जाता है। उन नूतन भावों और दशाओंका वर्णन हिन्दीमें होना आवश्यक है, जिससे केवल यही भाषा जाननेवाले भी संसार सभ्यताका ज्ञान सुगमता पूर्वक प्राप्त कर सकें।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह उन्नति हिन्दीमें किस प्रकार आसकती है। जहाँतक समझ पड़ता है, इसके दो सुगम उपाय हैं, अर्थात् नवागत भावोंसे पूर्ण ग्रन्थोंका निर्म्माण और नवभाव समर्थक नवीन शब्दोंका बनना। जबतक नये भावोंसे पूर्ण ग्रन्थ प्रचुरतासे नहीं बनेंगे, तबतक नवविचारोंके व्यक्त करनेकी आवश्यकताका ही अनुभव हमारे लेखकोंको न होगा। ऐसी दशामें समालोचक लोग उन लेखकोंकी सदैव निन्दा करते रहेंगे कि जो नवीन शब्दों तथा प्राचीन शब्दोंके नवीन रूपोंका व्यवहार करते हैं। इसका यहाँ एक उदाहरण भी दे देना ठीक समझ पड़ता है। हमारे मित्र ठाकुर गदाधर सिंह ने "चीनमें तेरह मास" नामक एक ग्रन्थ रचा था। उसमें चीनियोंके विषयमें उन्हें बहुत कुछ लिखना पड़ा। इसलिये चीन निवासीका भाव उन्हें अनेक बार और अनेक भाँतिसे लाना पड़ा, सो हरबार चीनी लोग अथवा चीननिवासी लिखना उन्हें अच्छा न लगा, और विवश होकर इस भाव प्रदर्शनार्थ उन्हें चीना शब्द गढ़ना पड़ा। चीनी शब्द शक्करका भी अर्थ देता है सो हर घड़ी ऐसे द्वयर्थ बोधक शब्दके स्थान पर चीना शब्दका लिखना सभी लोग उचित समझेंगे।

एकही भावको अनेक प्रकारसे तथा अनेक शब्दोंमें भी कहनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशामें पुनरुक्ति दूषणसे बचनेको यदि कोई लेखक शब्दोंके अप्रचलित रूपोंका व्यवहार करे तो किसी प्रकारका दोष नहीं समझना चाहिये। जैसे सूम शब्द संस्कृतका नहीं है, बरन एक साधारण देशज शब्द है। यदि सूमपनेके भावको अनेकानेक सांस्कृत व्यवहारोंसे इतर लिखनेमें "सूमता" शब्दका प्रयोग किया जावे तो कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार अपने तथा बाहरी भाषाओंके शब्दोंको अपनाकर उनको अपने अन्य शब्दोंके समान रूपोंमें लिखना उचित समझ पड़ता है, नहीं तो नवागत भावों तथा विचारों-के यथावत व्यक्त करनेमें कठिनता पड़ेगी। जहाँ बाहरका कोई शब्द हो और उसके भावबोधक

अपना कोई अच्छा शब्द न देख पड़े, वहाँ बेधड़क उसका व्यवहार करें। कुल बातोंका सारांश यह है कि भाषाके स्वाभाविक विकासको कृत्रिम नियमोंसे न रोके।

बहुत लोगोंका विचार है कि हिन्दू धर्म, हिन्दी भाषा और हमारा प्राचीन आर्य्यपन तभी तक स्थिर रह सकते हैं जबतक हर मार्गकी प्राचीन लीक प्रतिवर्ष नवीन पहियोंसे गहरी होती जाये, अन्यथा नहीं। यही एक भारी भूल है जिसने सहस्रों वर्षोंसे हम लोगोंको बड़ी हानि पहुँचाई है और अब भी पहुँचा रही है। यदि सूक्ष्म दर्शितासे देखा जाये, तो जिन कारणोंसे महमूदगजनवी और शहाबुद्दीनगोरीसे क्षुद्र शत्रुओं ने भारतपर विजय पा ली, वे सब कारण किसी न किसी रूपमें हम लोगोंमें अबतक प्रस्तुत हैं और अब भी हमें हानि पहुंचा रहे हैं। प्रत्येक नवीनता हमें हौवाजात पड़ती है और उसकी सूरत देखतेही हमारे रोयें खड़े हो जाते हैं। उस के औचित्य एवं अनौचित्यपर विचार करना ऐसी दशामें हमारे लिये नितान्त दुःसाध्य हो जाता है। हम सरासर जानते हैं कि संस्कृत भाषाका व्याकरण मातृवधका दोषी है, क्योंकि उसीके कारण उसकी भाषा संस्कृतभाषा मृत भाषाओंमें परिगणित हुई और आजतक उसकी यही दशा है। यदि हमारा संस्कृत व्याकरण ऐसा कठिन न होता कि बिना पूरे पचास बरस तक औजस कर लिये कोई व्यक्ति "अशुद्ध किंवकव्य" के दोषसे बच सकता, तो हमें ऐसा अवांछनीय दशा आजदिन न देख पड़ती कि हमारे प्यारे पूर्व पुरुषोंकी प्यारी संस्कृत एक मृत भाषा हो जाती और संसारमें कहीं भी किसी लोगोंकी मातृभाषा न रह सकती। फिर भी आजकलके प्राचीन विचाराश्रेयी महाशयगण संस्कृत व्याकरणके पेथा साध्य और आसकनेवाले नियमोंको हिन्दी में ला घसीटना चाहते हैं। हमारी हिन्दीके भावव्यंजकतावृद्धिवाले गुणका यह परावलम्बन सबसे बड़ा शत्रु है। जिस कालसे किसी भाषा का व्याकरण उचितसे अधिक बल प्राप्त कर लेता है, उसी समयसे उस हतभागिनी भाषाका स्वाभाविक विकास बन्द हो जाता है और वह मृत भाषा बननेके मार्गपर धावित होती है। इसलिये व्याकरण-माहात्मय-ह्रास भी भावव्यंजकताकी वृद्धिके लिये आवश्यक है। बिना इसके भावव्यंजकता किसी दशामें बढ़ नहीं सकती।

भावव्यंजकताका एक कृत्रिम सहायक भी हो सकता है, जिसके लिये सम्मेलनको प्रयत्न करना चाहिये। मेरा तात्पर्य्य विज्ञान दर्शनादि सम्बन्धी कोषसे है। हिन्दीमें एक ऐसा कोष बनना चाहिये, जिसमें अनेकानेक विद्याओंके शब्दोंका हिन्दीमें शब्द प्रति शब्द अनुवाद हो। यह काम काशी नागरी प्रचारिणी सभाने कई अंशोंमें सम्पादित करके हिन्दी पठित समाजका प्रचुर उपकार किया है। फिरभी प्रत्येक आरम्भिक श्रमका फल पूर्ण प्रायः नहीं होता है। इसी अटल नियमानुसार इस कोषमें गणना और उत्तमतामें शब्द आवश्यकतासे कुछ कम हैं। अनुवाद बहुत स्थानों पर तो बड़े मार्केके हैं, किन्तु कहीं कहीं कुछ भद्दे भी हो गये हैं। इस कोषके आकार, उत्तमता तथा ढंगको उचित उन्नति देनी सम्मेलन तथा हिन्दी रसिकोंका कर्त्तव्य है।

संसारमें सभी बातें प्राकृतिक नियमानुसार चलती हैं। जैसी जैसी आवश्यकतायें लोगोंको होती जाती हैं, वैसीही वैसी वस्तुओंकी उन्नति उनमें आपसे आप होती जाती है। हमारे यहाँ जबतक हमारा योरोपसे संघट्ट नहीं हुआ था, तबतक शिल्प व्यापारकी उचित उन्नति नहीं हुई थी। अब भी यह उन्नति हुई नहीं है किन्तु अब

हमारी आँखें खुल रहीं हैं। इसीलिये भाँति भाँति के नवागत भावों और विचारोंके व्यक्त करनेकी हमें आवश्यकता पड़ी है और पड़ती जाती है। जिन लोगोंने अबतक ऐसे भावोंको नहीं जाना है उनको इस लेखके विषयपर ही कुछ आश्चर्य हो सकता है, क्योंकि उन्होंने हिन्दीमें भावव्यंजकता-की कमीका ही अनुभव नहीं किया है। इसलिए सांसारिक उन्नति भी भावव्यंजकताकी आवश्यकता दिखलाकर हमारी भाषाकी उन्नति करेगी। यदि स्कूलों, कालेजों आदिमें भूगोल, खगोल, विज्ञान, दर्शन आदिके विषय हिन्दीमें पढ़ाये जाने लगें, तो हमारी भावव्यंजकताकी भारी वृद्धि हो सकती है. क्योंकि तब ऐसे नये ग्रन्थ प्रचुरतासे अवश्य बनने लगेंगे। सब बातोंका निचोड़ यह है कि हिन्दीकी भावव्यंजकता देशोन्नति और स्वदेश प्रेमके साथ बढ़ेगी।

हिन्दीमें वीर साहित्यकी आवश्यकता।

लेखक—श्रीयुक्त ठाकुर प्रभुदयाल सिंह राठोर वकील, खीरी-लखीमपुर।

यद्यपि यह ऐसा गहन विषय है कि जिसपर वही सुलेखक लेखनी उठा सकता है जो साहित्य विषयक मर्मोंको भलीभांति जानता हो तथापि मैं निज बुद्ध्यानुकूल कुछ निवेदन करता हूं।

प्रथम यह जानना चाहिये कि साहित्य क्या वस्तु है। साहित्य शब्दकी व्युत्पत्ति है 'साहित्य भावः साहित्यं' अर्थात् साथका भाव अर्थात् शब्दों गुणों अलंकारों इत्यादिका साथ साथ रखना। इसीको काव्य भी कहते हैं। सृष्टिके आदि-से साहित्य विषय चला आता है और आर्ष ग्रन्थ उससे परिपूर्ण हैं। महाभारत रामायण पुराणादि इसके प्रमाण हैं। आर्ष ग्रन्थोंके पश्चात् और हिन्दी-साहित्यारम्भके पहिले वीर साहित्यका जिन कारणोंसे ह्रास हुआ और जो कारण हिन्दी-साहित्य समयमें भी इसके बाधक रहे उनका वर्णन आगे किया जाता है।

आर्ष समयके पश्चात् जब इस देशके राजाओं तथा विद्वानोंमें शुद्ध वैदिक धर्मका ह्रास हुआ और देशमें शान्ति स्थापन होनेके कारण भोग्य पदार्थोंकी इच्छा बढ़ने लगी, मन विषयोंकी ओर झुका, तो साथही विषय—वासना सम्बंधी साहित्य शिखरभी ऊँचा होने लगा यहाँ तक कि साहित्यमें यद्यपि नव रस यथा शान्ति, करुणा, बीभत्स, रौद्र, शृङ्गार, वीर, रसादिका वर्णन है तथापि शृङ्गार रस ही प्रधानरस समझा जाने लगा और प्रायः श्रृंगाररस सम्बंधी ग्रन्थ तैयार होने लगे। विद्वानोंकी दृष्टि जिस बारीकीसे इस रस सम्बंधी साहित्यपर पड़ी अन्य रसोंपर नहीं। यही कारण है कि पिछले ग्रन्थोंमें वीररस प्रधान-रूपेण नहीं मिलता। यद्यपि उन ग्रन्थोंकी गणना काव्यों और महाकाव्योंमें है। विक्रमादित्य और भोज ऐसे महाराजाओंके दर्बारमें कालिदास ऐसे कवि रत्नोंका होना पाया जाता है, पर इन कवियोंके ग्रन्थ प्रायः शृङ्गाररस प्रधान ही हैं। कारण यही कहा जासकता है कि उस समय राज दर्बारोंमें शृङ्गाररसका आदर विशेष रूपसे था और इसीलिये उस रस सम्बंधी साहित्य तथा ग्रन्थकारोंका ही मान विशेष रूपसे हुआ है। प्राचीन समयके राजदर्बारोंमें कवियोंका

रहना नहीं मिलता क्योंकि उस समयके राजा महाराजा श्रृङ्गार रसको प्रधान रस नहीं समझते थे और न उस समयके विद्वान् ही इस रसको सर्वरसोंमें उत्तरस मानते थे। उस समय वीर रस प्रधान था। ऋषि लोग इस रसका केवल वर्णन मात्रही न करते थे बरन इसके पूर्णतया मर्मज्ञ और कर्तव्य परायणभी थे। उदाहरणार्थ विश्वामित्र ऋषि श्रीरामचन्द्रजीके और वाल्मीकि ऋषि लव और कुशके शस्त्र गुरु थे।

राजाभोजके समयमें संस्कृत साहित्यकी जैसी उन्नति हुई, वैसी फिर नहीं हुई।

उसी समयसे हिन्दीलेख और कवियोंका आरम्भ होता है पृथ्वीराजरायसा इत्यादि इसके प्रमाण हैं। हिन्दी कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामायण ग्रन्थमें यत्रतत्र वीररस वर्णनकी पराकाष्ठा दिखलाई है, पर उसे संस्कृत रामायणका उलथाही समझना चाहिये उसमें किसी नवीन आदर्श पुरुषके वीरत्वका वर्णन नहीं है। भूषण कविने निस्सन्देह शिवाजीके वीरत्वका कुछ वर्णन किया है पर वह आजकलकी प्रचलित भाषामें नहीं है। निदान यह भली प्रकार कहा जासकता है कि हिन्दीमें वीर साहित्यकी बड़ी न्यूनता है और इसीलिये उसकी आवश्यकता भी है।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि वर्त्तमान समयमें हिन्दीमें वीर साहित्यकी आवश्यकता क्यों है। संसारमें मनुष्य योनिका मुख्य उद्देश्य अन्तिम सुख है। सुख दो प्रकारका होता है ऐहिक और पारलौकिक। ऐहिक सुख स्वतंत्रता पर निर्भर है। स्वतंत्रताका मूल वीरत्व है और वीरत्व गुणकी दृढ़ता साहित्याध्ययनसे बहुत कुछ सम्बन्ध रखती है। वीरत्व केवल युद्ध स्थलमें उत्साह पूर्वक धैर्य सहित बैरीके साथ लड़ने और अन्त समय तक मुख न मोड़कर मरनेही को नहीं कहते, आत्म त्याग, दान, धर्म्म, कर्म्म, सत्य दया इत्यादि उच्चगुणों पर पूर्ण दृढ़ता और कितना ही कष्ट पड़नेपरभी अपने कर्तव्यसे विचलित न होना भी वीरत्व है अतः हिन्दी साहित्यमें दान वीर, कर्म्म वीर, धर्म्मवीर, आदर्श पुरुषों तथा स्त्रियोंके चरितका वर्णन होना अत्यावश्यक है यह स्वयं सिद्ध बात है कि बालक एवं नवयुवकोंका चित्त अनुकरण शील होता है। जैसी शिक्षा होती है, वैसा अध्ययन होता है तदनुसार ही उनका चरित्र संगठन होता है स्कूलोंमें उक्त गुणोंकी उन्नति करनेवाले ग्रन्थ नहीं पढ़ाये जाते इतिहास जो पढ़ाया जाता है उसमें इन गुणोंका वर्णन इस रीति से है कि उसका प्रभाव नवयुवकोंपर बहुत कम पड़ता है। संस्कृतमें आधुनिक छात्रोंको इतना ज्ञान नहीं होता कि वे संस्कृत ग्रन्थोंको पढ़कर वीरत्व सम्बंधी गुणोंकी उन्नति करें। उनको हिन्दी भाषामें वीर रस सम्बन्धी ग्रन्थोंके लिये वाह्य संसारमें अन्वेषणा करनी पड़ती है। हिन्दीमें इस विषयके [illegible] उत्तम ग्रन्थ नहीं मिलते यदि मिलते भी [illegible] वे एक अपूर्व छन्दमें जिसको बोलचाल [illegible] हैं प्रायः ये ग्रन्थ विषयी लोगोंके प्रसन्नार्थ नाटक रूपमें अभिनयके निमित्त बनाये गये हैं। इन में कहीं कहीं अश्लील वर्णन भी है। जब हमारा नवयुवक समाज इन ग्रन्थोंको पढ़ता है तो उसका प्रभाव लाभकारी होनेके बदले अत्यन्त हानिकारक होता है। मैं ऊपर कह आया हूं कि वीरत्व पारलौकिक सुखका भी कारण है। हमारे ग्रन्थोंमें अधिकताके साथ प्रमाण मिलते हैं कि युद्धक्षेत्रमें वीरोचित कर्म करके शरीर त्याग करनेवाला पुरुष सीधे स्वर्गको जाता है यह यदि न माना जावे तो भी हिन्दू मात्र पुनर्जन्मके माननेवाले अवश्य हैं और यह नियम सबको मान्य है कि अन्तमें मनमें जो संकल्प होता

है उसीके अनुसार भावी शरीर मिलता है। जो वासनायें अन्तमें रहती हैं वही उसके आगामी जन्ममें भी उपस्थित रहती हैं। इससे सिद्ध होता है कि जिन सद्गुणोंके साथ इस शरीरका त्याग होगा, उत्तर शरीरमें वही गुण उसके साथ रहेंगे।

किस रीति पर और किन उपायोंसे हिन्दी-में वीरसाहित्यके ग्रन्थ लिखे जावें इसका संक्षिप्त वर्णन करके मैं अपना लेख समाप्त करता हूं। वीर साहित्य अर्थात् वीर चरितावली सिष्ट हिन्दीमें लिखी जावे चाहे वह गद्य हो चाहे पद्य, चाहे गद्य पद्यात्मक, पर ऐसी हो कि प्रत्येक श्रेणीके बालकोंको लाभकारी हो। आदर्श पुरुष चुन चुन कर ऐसे यथा स्थान रक्खें जावें कि उनके चरित्रोंको पढ़कर उच्च गुणोंका भाव नवयुवकोंके हृदय पटलपर भली प्रकार अंकित हो जावे और उस अध्ययनका परिणाम यह हो कि पढ़नेवाले नवयुवक अपने आगामी [illegible] राजभक्ति [illegible] देश प्रेम, आत्म [illegible]
उच्च गुणोंपर [illegible]
आदर्श पुरुष पू[illegible]

भारत वर्षके भी हों और अन्य उन्नति पूर्ण यूरोपीय तथा अमेरिकादि देशोंके भी हों साथही आदर्श वीर और सती स्त्रियोंके चरित्रोंको भी मुख्य स्थान इस साहित्यमें देना चाहिये। कारण यह कि नवयुवकोंको सद्गुणोंमें प्रवेश करानेके लिये प्रथम और मुख्याध्यापिकायें येही हैं। हिन्दीका वीर साहित्य अतिरोचक होना चाहिये क्योंकि कटु तीक्ष्ण वीररस पान करानेके लिये साहित्य-माधुर्यकी बड़ी आवश्यकता है। साहित्य सामग्रीके लिये भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंके आदर्श पुरुषोंकी चरितावली एकत्र कीजावे और प्राप्त प्राचीन ग्रन्थोंसे भी संग्रह किया जावे। यदि हिन्दी-वीर- साहित्य, नाटकद्वारा खेले जानेके योग्य रचा जासके तो और भी अधिक उपयोगी होगा। ऐसे साहित्यके अध्ययनकर्ता तथा नाटककर्ता और द्रष्टा असीम लाभ उठावेंगे। और यदि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके उच्च गुणोंकी उन्नतिसे अपने शारीरिक और मानसिक दोनों बलोंको सुदृढ कर [illegible]

दक्षिण अफ़्रिका

के

सत्याग्रह का इतिहास
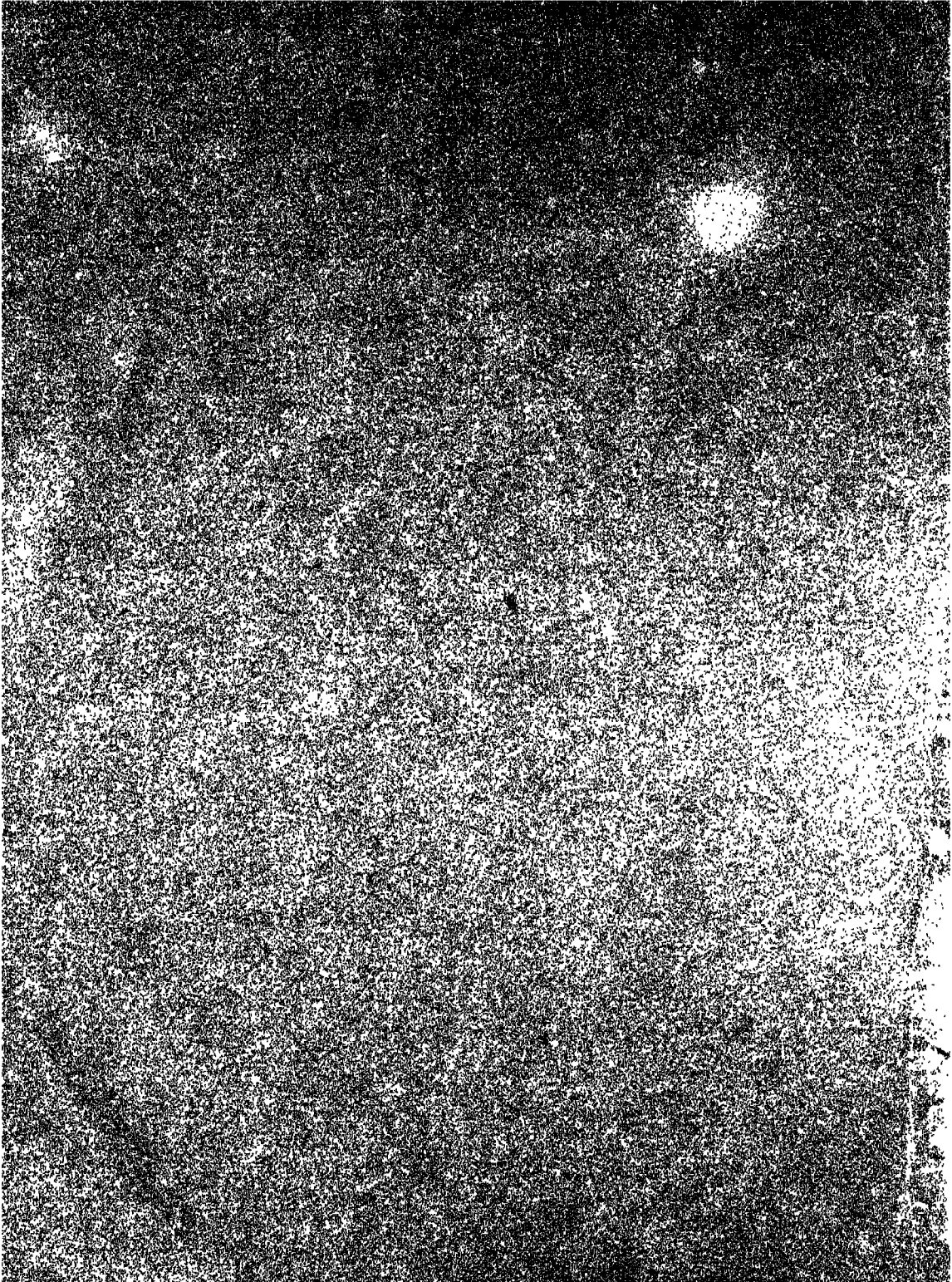
वीर सत्याग्रही,

भवानी दयाल

दक्षिण अफ्रिका

के

सत्याग्रह का इतिहास

लेखक,

वीर सत्याग्रही श्रीयुत भवानीदयाल (नेटाल)

प्रकाशक,

द्वारिका प्रसाद सेवक

अध्यक्ष, सरस्वती सदन,

केम्प, इन्दौर, (C. I)

पण्डित ओंकारनाथ बाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस प्रयाग में मुद्रित

१९१६ ई०

मूल्य विदेशों में दो शिलिङ्ग)
डाक व्यय पृथक)

प्रथमावृत्ति

(मूल्य भारत में १॥)
(डाक व्यय पृथक

समर्पण

भारतमाता के सच्चे सपूत, लोकमान्य कर्मवीर,

महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी महोदय

की सेवा में—

श्रीमान् !

यह पुस्तक उसी वीर संग्राम की विस्तृत डायरी है जिसके कि आप नायक थे। आपने वह कर दिखाया जिसे टालसटाय जैसे महात्मा केवल विचारा करते थे। लोग जिसे कहने मात्र का सिद्धान्त समझते थे, आपने उसे प्रत्यक्ष कार्य्य रूप में परिणित कर दिखाया। आपने वह किया जिसे लोग 'अनहोनी' समझ रहे थे।

भगवन् !

इसे एक 'सत्याग्रही' ने ही लिखा है। उसने मुझे आज्ञा दी थी कि मैं इसे छपाकर प्रकाशित करदूं। लेखक की आज्ञा का पालन हो चुका और आज इस अनुपम इतिहास को, उस घटना के राष्ट्रीय इतिहास को—जिसने संसार के प्रत्येक राष्ट्रसेवक को नवजीवन प्रदान किया है—लेकर मैं आप की सेवा में उपस्थित होता हूं। विश्वास है कि आप इसे स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करेंगे।

आपका दास—

'सेवक'

प्रकाशक-

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी सत्याग्रह के प्रारम्भ
सन १९०६ ई० में।
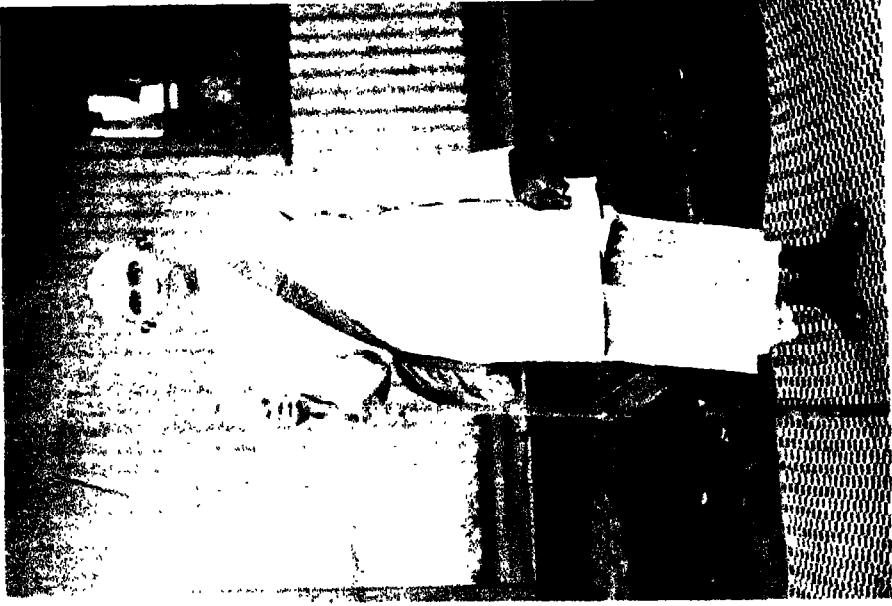
महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी सत्याग्रह के अन्त
सन १९१६ ई० में।

निवेदन

आर्य्य पाठक ! आज हम आपको एक ऐसे वीर संग्राम का इतिहास सुनायें जो संसार में अपने ढङ्ग का पहिला ही संग्राम है। इस संग्राम में तोपें और बन्दूकें नहीं चली थीं बम्बों और गोलों की मार नहीं थी। इस युद्ध में हवाई जहाज़ों ने कहीं शेल्स नहीं फेंके थे। यह संग्राम था और बड़ा भारी संग्राम था, ऐसा संग्राम था जिसने संसार को दिखाया कि आत्मबल संसार के प्रत्येक बल पर विजय प्राप्त कर सकता है। संग्राम था किन्तु निःशस्त्र !! क्या यह विचित्र बात नहीं है ? क्या संसार में और भी ऐसा कोई उदाहरण बताया जा सकता है ? नहीं, यह संग्राम, यह महा-संग्राम, अपने ढङ्ग का संसार के इतिहास में एक ही है। इस शस्त्रहीन संग्राम को पढ़ते २ हृदय फड़क उठता है, प्रेम तरङ्गें उमड़ने लगती हैं और पुरुषार्थ झलकने लगता है। दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतवासियों की सहिष्णुता और उनके आत्मबलको देखकर नस २ में स्वदेशाभिमान बहने लगता है। अधोगति को प्राप्त जाति के कुलों और मजूरों ने भी अपने अविचलित पराक्रम से शिक्षित समाज को दंग कर दिया।

इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत भवानीदयाल जी स्वयं उन वीरों में से एक हैं जिन्होंने इस वीर संग्राम में भाग लिया था। आप स्वयं समझ सकते हैं कि ऐसी दशा में यह पुस्तक कितनी प्रमाणिक होगी।

पुस्तक सन् १९१४ के अन्त में ही लिखकर भारत में आ गई थी। जिन प्रकाशक महोदय ने इसे प्रकाशित करने की प्रतिज्ञा की थी उनकी मेज़ पर यह लगभग १ वर्ष तक पड़ी रही, किन्तु उन्होंने ज्ञात नहीं क्यों इसे प्रकाशित करने की कृपा नहीं की, अन्त में लेखक महाशय ने हमें सूचना दी। आज हमें संतोष है कि हम यह पुस्तक प्रकाशित करके आपके हाथों में दे रहे हैं। आप अनुमान कीजिये कि इस पुस्तक के लिखने और प्रकाशित करने में कितना अधिक व्यय हुआ होगा। केवल लिखने में ही लगभग ५००) रु० व्यय किये गये हैं। गवर्नमेंन्ट के लेखों, फ़ैसलों आदि की नक़लें प्राप्त करने में सैंकड़ों रुपये कोर्ट फ़ीस के लिये व्यय हुये हैं। फिर इतने अधिक चित्रों से सुसज्जित क्या आप हिन्दी साहित्य में कोई पुस्तक दिखायेंगे ? अनुमान कीजिये इनमें कितना अधिक व्यय हुआ होगा ? वर्त्तमान यूरोपीय महायुद्ध ने इस व्यय में बहुत ही अधिकता कर दी है। काग़ज़, छपाई, ब्लाक, सियाही आदि प्रत्येक आवश्यक वस्तु का भाव ड्योढ़ा और दूना हो रहा है और इसपर भी कठिनता यह है कि अच्छी चीज़ों का अभाव है। ऐसे कुसमय में इस पुस्तक का प्रकाशित करना जितना कष्टसाध्य था इसका सहृदय पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। किन्तु हमने लेखक महाशय से प्रतिज्ञा की थी, दूसरे उनका शीघ्र ही प्रकाशित करने का आग्रह भी था। इस हर प्रकार से सर्वथा विपरीत समय में भी, हम इस पुस्तक को प्रकाशित करने में परम पिता परमात्मा की असीम कृपा से ही समर्थ हो सके हैं। प्रत्येक कठिन समय में वह ही सबके

सहायक हैं। श्रीयुत भवानीदयाल जी के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें इस पुस्तक के प्रकाशित करनेका अवसर दिया। दक्षिण अफ्रिका के प्रसिद्ध भारतहितैषी यूरोपियन श्रीयुत मि० पोलक और भारतीयबन्धु श्रीयुत लाल बहादुर सिंह जी के भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं, इनही दोनों महानुभावों की सहायता से हम इस पुस्तक में इतने अधिक चित्र प्रकाशित करने में समर्थ हो सके हैं। यदि यह महोदय हमें सहायता न देते तो यह पुस्तक इस रंगरूप में आपके सामने नहीं आ-सकती थी। अपने मित्र श्रीयुत नारायण सिंह जी को भी हम धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमारे अति अधिक अनवकाश केसमय में इस पुस्तक की हस्तलिपि पढ़ने और अपनी सम्मति देने की कृपा की है।

प्यारे पाठक! हम इसे और भी सर्वांग पूर्ण प्रकाशित करना चाहते थे। दक्षिण अफ्रिका के प्रसिद्ध पत्र "इन्डियन ओपीनियन" का 'गोलडिन नम्बर' निकलने से बहुत पूर्व यह पुस्तक लिखी जाचुकी थी। हम इसमें और भी कई विषयों का समावेश करके प्रकाशित करनेका विचार रखते थे किन्तु जल्दी प्रकाशित करने की इच्छा और महायुद्ध ने हमें ऐसा करने से मना कर दिया। यदि इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का अवसर मिला तो हम इसे हर प्रकार से एक महत्व पूर्ण इति-हास बना देंगे। आशा है कि हमारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी।

विनीत
द्वारकाप्रसाद सेवक
प्रकाशक—

भूमिका

संसार के प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति के साधन का मुख्य अङ्ग इतिहास ही है। जिस राष्ट्र का अपना इतिहास नहीं उस राष्ट्र का जीवित दशा में रहना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। इतिहास राष्ट्र के जीवन मरण के प्रश्नों को हल करता है। इतिहास के अभाव से कितने ही राष्ट्रों का नाम तक आज संसार में शेष नहीं है। यूरोप, अमेरिका, जापान आदि पूर्वीय और पाश्चात्य राष्ट्रों की उन्नति इतिहास से ही सम्पन्न हुई है। भारत के प्राचीन निवासी भी बड़े इतिहासवेत्ता थे। उन्होंने इतिहास लिखना बड़े महत्व की बात समझा हुआ था। यद्यपि यवनों की क्रूरता और अत्याचारों से भारत के इतिहास के कई भाग प्रायः नष्ट हो गये, तथापि रामायण और महाभारत प्राचीन आर्य्य राष्ट्र के महत्व पूर्ण इतिहास अद्यपर्यन्त विद्यमान हैं। आज इस अधोगति के समय में इतिहास ही भारत का मुखोज्वल कर रहा है। इतिहास मनुष्य के चरित्र सुधार का एक बड़ा साधन है इतिहास से ही मनुष्य अपने पूर्वजों के कार्य्यों का अनुशीलन कर उत्तम और श्रेष्ठ पथ का पथिक बन जाता है। सारांश यह कि इतिहास ही राष्ट्र का सर्वस्व है।

दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों का इतिहास भी कम महत्व का नहीं है। सत्याग्रह के पवित्र संग्राम में भारतवासियों ने जैसी कार्य्यकुशलता दिखाई है, वैसा उदाहरण संसार के इतिहास में विरला ही मिलेगा। यहां के प्रवासी भारतवासियों का अगाध देश प्रेम, आत्मिकबल और कर्म्मपरायणता देख कर संसार के अधिवासी आश्चर्यित और विस्मित हो गये हैं और इनकी वीरता की बारम्बार मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे हैं। ऐसे मूल्यवान इतिहास को खो बैठना भारतजनता के लिये न केवल निन्दनीय प्रत्युत भारत की राष्ट्रियता के लिये अत्यंत घातक भी है। अंग्रेज़ों की छोटी मोटी लड़ाईयों अथवा हड़तालों को उत्साही लेखक कितने विस्तार से लिख डालते हैं और अंग्रेज़ी जनता उन लेखकों को उत्साहित करने के लिये इन ग्रंथ रत्नों का बड़ा आदर करती है। क्या भारत सन्तान को इतनी बड़ी लड़ाई के इतिहास को सुरक्षित रखना प्रयोजनीय नहीं है? अवश्य है, अतः इसी उद्देश्य को सामने रख कर मैंने बड़े परिश्रम से इस इतिहास का संग्रह किया है। मेरी इच्छा थी कि दक्षिण अफ्रिका के किसी सुयोग्य हिन्दी लेखक की लेखनी से यह महत्वपूर्ण इतिहास लिखा जाय, परन्तु यहां पर ऐसे हिन्दी लेखक का सर्वथा अभाव देख कर मैंने स्वतः इस कार्य्य के सम्पादन करने का बीड़ा उठाया और उस करुणा वरुणालय जगदीश्वर की असीम कृपा से दक्षिण अफ्रिकाप्रवासी भारतवासियों का यह इतिहास अपनी टूटी फूटी भाषा में लिख कर भारतजनता की सेवा में समर्पण, करता हूं।

इस पुस्तक में आप भारतीयों की वीरता, कर्म्मनिष्ठा, स्वार्थत्याग और देशप्रेम को पढ़ कर आनन्द से उछल पड़ेंगे, आप को स्मरण हो जायगा कि भारतीयों के शरीर में अभी राम और

कृष्ण का रक्त विद्यमान है। कहीं कहीं भारतीयों के ऊपर गोलियों की सनसनाहट, तीरों के आघात और कोड़ों की मार देख कर आपका कलेजा दहल उठेगा और रोमाञ्च हो उठेगा। भारतीयों के ऊपर कष्ट, आपत्तियों और कठिनाईयों की भरमार देख कर आपके नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगेगी। औपनिवेशिक गोरों की अत्याचार प्रियता से आप की आंखें क्रोध से लाल हो जांयगी और सहसा आपके मुख से अत्याचारियों के प्रति 'धिक्कार' शब्द निकलेगा। एवं भारतीयों की सहनशीलता और कष्टसहिष्णुता से आपका कोमल हृदय द्रवीभूत हो जायगा।

इस पुस्तक में सत्याग्रह की लड़ाई का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसलिये इस पुस्तक का नाम 'दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास' रखना ही अधिक उचित समझा गया। अंग्रेज़ी भाषा के 'पैसिव रेसिस्टेन्स' (Passive Resistance) शब्द का हमने 'सत्याग्रह' अर्थ किया है।* भारत के भिन्न २ हिन्दी समाचारपत्रों ने यद्यपि इसके 'निष्क्रिय प्रतिरोध,' 'निःशस्त्र प्रतिकार' आदि शब्दार्थ किये हैं तथापि दक्षिण अफ्रिका की भारतीयजनता, भारतीयों के मुखपत्र 'इण्डियन ओपीनियन' और भारतीयों के प्रधान नेता लोकमान्य मोहनदास कर्मचन्द गांधी ने इस महासंग्राम का नाम 'सत्याग्रह' ही रखना उचित समझा है और यही शब्द यहां के लोकमत में प्रचलित है। यहां की भारतीयजनता 'निष्क्रिय प्रतिरोध' आदि क्लिष्ट शब्द समझने में बिल्कुल असमर्थ है किन्तु अंग्रेज़ी में 'पैसिव रेसिस्टेन्स' और हिन्दी अथवा गुजराती में 'सत्याग्रह' कहने से बड़ी सुगमता से समझ लेती है। इसलिये इस पुस्तक में हमने सत्याग्रह शब्द का ही व्यवहार किया है।

सत्याग्रह की लड़ाई क्या है। पाठकों के जानने के लिये इसका संक्षिप्त में वर्णन कर देना अप्रसंगिक न होगा। सत्य के आग्रह पर आरूढ़ रहना ही सत्याग्रह है। सत्य के लिये चाहे तुम्हें कितना ही कष्ट उठाना पड़े उसे धैर्य्य के साथ सहन करो। प्राचीन इतिहास में भी सत्याग्रह के संग्राम के अनेक प्रमाण मिलते हैं। पुराणादि ग्रंथों में प्रह्लाद की कथा वर्णित है। उसके पिता ने उसे ईश्वर भक्ति से बहिर्मुख करने के लिये भांति भांति की ताड़ना दी, कोड़ों से पीटा, जल में बहाया और अग्नि में जलाया पर वह वीर महापुरुष अपने सत्य के आग्रह से किञ्चित विचलित नहीं हुआ। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त पुराणों और इतिहासों में मिलते हैं। महात्मा ईसूमसीह के कथनानुसार कि "यदि तेरे बांयें गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो दहिना भी उसकी ओर फेर दे।"

अर्थात् ले दहिने गाल पर भी मारकर अपना कलेजा ठंढा कर ले। बस, इसी सिद्धान्त पर सत्याग्रह का संग्राम स्थित है। चाहे तुम कितने ही सताये जाओ पर शत्रु से उसका बदला लेने की इच्छा न करो। अत्याचार करते करते शत्रु थक जायगा और अन्त में तुम्हारे साहस, धैर्य्य और वीरता के समक्ष उसे माथा झुकाना पड़ेगा। पीटर मेरीत्सबर्ग के कारागार में जब हमलोग घी के लिये उपवास कर रहे थे उस समय जेल के प्रधान ने आकर कहा कि तुम जेल कर्म्मचारियों को क्यों इतना कष्ट देते हो। इसके उत्तर में कहा गया कि यह आपकी भूल है, हमलोग जेलर को कष्ट न देकर स्वतः भूखकी ज्वाला से पीड़ित हो रहे हैं पर स्मरण रखना कि यह कष्ट आप से नहीं देखा जायगा और आप हमारे आवेदन को स्वीकार करेंगे।

सत्याग्रह एक पवित्र संग्राम है। इसमें योग देने वाले योधाओं के लिये केवल आत्मिक बलकी आवश्यकता है। बड़े से बड़े शारीरिक बलवाले इस युद्ध में नहीं ठहर सकते, पर आत्मिक बलवाले योधा इस समर में विजयी होते हैं। संसार का

*यह अंगरेजी शब्द 'Truth-Force' का अर्थ है। यह आत्माग्रह (Soul-Force) वा प्रेमाग्रह (Love-Force) के नाम से भी पुकारा जाता है।

कोई भी राष्ट्र अथवा दूरदर्शी व्यक्ति इस लड़ाई को अयोग्य अथवा अनुचित नहीं कह सकता है*। प्रत्येक विचारशील सत्याग्रह की लड़ाई को आदर और गौरव की दृष्टि से देखता है। यहां तक कि जिस दक्षिण अफ्रिका की भूमि में इस युद्ध का आविर्भाव हुआ है, जहां के राज्यकीय अधिकारी सत्याग्रह की लड़ाई का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, उनका सत्याग्रह की लड़ाई के विषय में क्याही उत्तम विचार हैं देखिये—दक्षिण अफ्रिका की संयुक्त पार्लीमेन्ट में एक सभासद ने यहां के मुख्य कर्ताधर्ता राजस्व सचिव जनरल स्मट्स से प्रश्न किया कि जब ६ हड़ताली गोरे नेता देश-निर्वासित कर दिये गये तो यहां के प्रसिद्ध आन्दोलनकारी लो० गान्धी को क्यों नहीं देश निकाले का दण्ड दिया जाता? इसके उत्तर में जनरल स्मट्स ने कहा कि लो० गान्धी ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये भारतीयों को शारीरिक बल उपयोग करने का बिलकुल उपदेश नहीं दिया है। लो० गान्धी ने संयुक्त राज्य को उलट पुलट करने के लिये नहीं प्रत्युत आवश्यक सुधारक के लिये सत्याग्रह की लड़त चलाई है। इस देश में किसी को आन्दोलन (Agitation) करने की मनाही नहीं है। आन्दोलन राष्ट्र का जीवन है। उचित आन्दोलनकारियों को हम गौरव की दृष्टि से देखते हैं। पर जो मनुष्य आन्दोलन द्वारा जनसमुदाय अथवा राज्य नियम में किसी प्रकार के आवश्यक सुधार कराने के बदले राज्य विप्लव करने के अभिप्राय से हलचल करते हैं उनके अराजय कदम पर कोई भी ध्यान नहीं देता। अब पाठकों को भली प्रकार से ज्ञात हो गया होगा कि सत्याग्रह की लड़ाई कैसी पवित्र, स्वच्छ और निर्मल है।

अतएव इस लड़ाई में भाग लेनेवाले योधा बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। भारत के लोकमत और भारत सरकार ने सत्याग्रह की लड़ाई में जैसी सहानुभूति और उदारता दिखाई है, वह समाचार पत्रों के पाठकों से अविदित नहीं है।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में दक्षिण अफ्रिका का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। यद्यपि इस-खण्ड से भारतीयों का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है तथापि इस देश का प्रारम्भिक इतिहास जान लेने पर भारतीयों की दशा समझने में सुविधा होगी। अतः इतिहास की शैली के अनुसार देश का आरम्भिक इतिहास देना आवश्यक है। इस लिये प्रथम खण्ड में यहां के आदिम निवासियों की स्थिति, दक्षिण अफ्रिका का अन्वेषण, अंग्रेज़ों का प्रवेश, गोराङ्गों की वृद्धि आदि विषयों का निरूपण किया गया है। इस खण्ड के लिखने में दिसम्बर सन् १९१३ ई० की 'मर्यादा' से विशेष सहायता ली गई है। इसके लिये हम 'मर्यादा' के सम्पादक और उस लेख के लेखक के विशेष कृतज्ञ हैं। यद्यपि दक्षिण अफ्रिका के कई एक अंग्रेज़ी इतिहास हमारे पास विद्यमान हैं तथापि उनका हिन्दी अनुवाद करने में समय नष्ट करने के अतिरिक्त हमें कुछ लाभ प्रतीत नहीं हुआ।

दूसरे खण्ड में भारतीयों की जन संख्या, मजूरों का आगमन, मजूरों की दशा, मजूरों पर अत्याचार, मजूरों का आना बन्द करना आदि विषयों का विवेचन किया गया है। तीसरे खण्ड में ट्रांसवाल में भारतीयों का प्रवेश, भारतीयों की उन्नति, एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट का निर्माण, सत्याग्रह का लड़ाई आदि विषयों का संक्षिप्त वर्णन है और चौथे खण्ड में नवीन क़ायदों का

*कई एक महाशय सत्याग्रह पर आक्षेप करते हैं। उनका कहना यह है कि जो अन्य वार का मुक़ाबला करने में अशक्त हैं वही इस प्रकार की शक्ति का आश्रय लेता है। यह उनकी भूल है। जो मनुष्य अशक्त है वह इस आधार पर संग्राम करने में कभी सफलीभूत नहीं हो सकता। केवल वही पुरुष इसके अनुसरण करने में समर्थ हो सकता है जिसमें कुछ सच्चा मनुष्यत्व वा अन्तरङ्ग बल विद्यमान है। इस भूल का कारण यह विदित होता है कि अंग्रेज़ी में इसके लिये कोई उचित शब्द नहीं प्राप्त हो सकते।

निर्माण, क़ायदों के विरुद्ध आन्दोलन, सत्याग्रहका आरम्भ, महिलाओं की वीरता. हड़ताल का प्रारंभ, हड़ताल की वृद्धि, भारतीयों की हत्या, गोरों का अत्याचार, भारतीयों की वीरता आदि विषयों का उल्लेख किया गया है। चौथा खण्ड बड़ाही करुणाजनक है। उसके पढ़ने पर आपकी छाती फटने लगेगी और आपकी आंखों से रक्त के आंसू बहने लगेंगे। इस इतिहास के संग्रह करने में मुझे जिन जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है उनका उल्लेख करना व्यर्थ है। पाठक इसको पढ़कर ही स्वतः अनुमान कर लेंगे।

पाठक वृन्द! मेरे लेख की अशुद्धियों पर ध्यान न देकर यहां के भारतीयों के साहस, धैर्य और वीरता को प्रेम पूर्वक पढ़ें। इस पुस्तक में यहां के भारतीयों की केवल राजनैतिक अवस्था का वर्णन किया गया है। यदि पाठकों ने इसका समुचित आदर किया तो हम यहां का धर्म सम्बन्धी इतिहास भी लिखने का प्रयत्न करेंगे। आशा है कि हिन्दी प्रेमी मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कर मेरी अभिलाषा लता को कृपावारि से सींचन करेंगे।

सन् १९१४ ईस्वी.
जर्मिस्टन-ट्रांसवाल
(दक्षिण अफ्रिका)

हिन्दी का एक तुच्छसेवक
भवानीदयाल

विषय-सूची

परिशिष्ट

सत्याग्रह के परिणाम

चित्र-सूची

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी और आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरी बाई जी ।

'दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास' के लेखक
वीर सत्याग्रही श्रीयुत भवानीदयाल जी ।

रेवरेन्ड सी. एफ. एन्ड्रूज़ और मि. डब्ल्यु. डब्ल्यु. पियर्सन
जो सत्याग्रह के समय भारतवर्ष से दक्षिण अफ्रिका में मध्यस्थ होकर गये थे।
मि. एन्ड्रूज़ के मधुर स्वभाव तथा साम्राजिक देशाभिमान के लिये
उनकी अपील करने का यह परिणाम हुआ कि भारती प्रश्न की
ओर विचार प्रवाह उमड़ उठा। कुली प्रथा का मि. पियर्सन
ने जो अन्वेषण किया वह पर्याप्त एवं अपवादक था।

माननीय लार्ड हार्डिंज
भारत के वर्तमान वायसराय।

❀ दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास ❀

प्रथम खण्ड

अफ्रिका का संक्षिप्त वर्णन
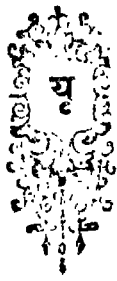
यूरोप से दक्षिण और भारतवर्ष से पश्चिम में, अरब के निकट अफ्रिका महाद्वीप विद्यमान है। देश के बहुत बड़े होने पर भी यहां सभ्य मनुष्यों का बिलकुल अभाव है, केवल कुछ रमणीक और सुहावनी भूमि पर कतिपय सभ्य जन निवास करते हैं; जो अन्य देशों से आकर यहां अपना उपनिवेश स्थापित किये हुए हैं। शेष समस्त भूमि जनशून्य और सघन वन से आच्छादित है। कितने ही वनों में अद्यपर्यन्त मनुष्य का प्रवेश तक नहीं हुआ है, केवल भयङ्कर वनचर चतुर्दिक स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं। कहीं कहीं उन घने वनों में मनुष्य भी पाये जाते हैं किन्तु वह केवल नाममात्र के मनुष्य हैं, उनका आकार बड़ा, शरीर काला, मनुष्यभक्षी और नग्न रहते हैं। भोजन छादन और युद्ध के अतिरिक्त सांसारिक व्यवहार से नितान्त अभिज्ञ होते हैं। सृष्टि उत्पत्ति से लेकर आज तक उनकी दशा एक समान ही प्रतीत होती है। आर्य्यों ने अपनी उन्नति के समय केवल मिश्र और मेडागास्कर को ही सभ्य बना कर रहने दिया। और यवनों ने केवल समुद्र तटस्थ बरबर और ज़ञ्जबार को सभ्य बनाया। वर्तमान समय में यद्यपि यूरोपियन यात्रियों ने भांति भांति के कष्ट उठाकर इस भूमि की उपज के विषय में पता लगाया है तथापि समग्र अफ्रिका को सभ्य बना देना सहज ही नहीं प्रत्युत कई शताब्दियों का कार्य्य है।

जहां तहां समुद्र के तट पर यूरोपियनों ने अपने उपनिवेश बसाये हैं और कुछ यवन उपनिवेश पहले से विद्यमान हैं किन्तु यह सम्भव नहीं कि कोई अफ्रिका की आन्तरिक अवस्था और सामयिक वृत्तान्त का पता लगा सके। अफ्रिका का मानचित्र केवल अनुमान से बनाया गया है, उसके चारों ओर की सीमा अज्ञात हैं। ४० लाख वर्गमील में केवल मरुभूमि है जो सहारा के नाम से विख्यात है। सहारा को समुद्र का रेत समझना अनुचित न होगा। इस मरुस्थल में न कहीं वृक्ष दीख पड़ते हैं और न कहीं नाममात्र को भी जल है। प्रथम तो यहां पर बरसात ही नहीं होती यदि इन्द्र महाराज कृपा भी करें तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। आँधियों का वेग अलबत्ता प्रचण्ड रहता है और लू की उष्णता से शरीर भस्म हो जाता है। घासपात आदिक वनस्पतियों का कहीं नाम तक नहीं, केवल बालू का समूह दृष्टिगोचर होता है।

> जस कुदेश तस लोग बनाए।
> विधि विचित्र संयोग मिलाए॥

जैसा जंगली देश है वैसे ही यहां के निवासी भी मूर्ख, पुरुषार्थहीन, आलसी और असभ्य हैं। न खेती करना जानते, न व्यापार से कुछ सम्बन्ध रखते, न वस्त्र पहिनते, केवल फल, मूल और वन-पशुओं को मार कर कालक्षेप करते हैं। घर बनाने, घोड़ पर चढ़ने और पाकविद्या से बिलकुल अनजान होते हैं। यदि उनके हाथ में द्रव्य दीजिये तो उसे सूंघ कर फेंक देंगे और मांस देने पर लपक कर खा जांयगे। उस सघन वन में जाना इतना कठिन है कि राजकीय माप करने वालों ने छः मास में केवल १६ मील की पैमाइश की थी। सहस्रों कोस तक न कहीं जल है और न कहीं ग्राम, नगर या बाज़ार मिल सकता है। केवल वृन्द के वृन्द विहंग, मतवाले गज और भयंकर सिंह स्वच्छन्दता के साथ विचरते हैं। यह तो प्रसिद्ध कथा है कि अफ्रिका के जंगलों में बड़े बड़े सिंह रहते हैं। यहां के निवासी बड़े ही असभ्य और जंगली हैं. इनके रहने का भी कुछ प्रबन्ध नहीं है। इनके राज्य का वर्णन हो ही नहीं सकता क्योंकि इन का कोई इतिहास ही नहीं है। इसी प्रकार जीवन यापन करते २ इनकी असंख्य पीढ़ी बीत गई और यह भी अपना जीवन पशुवत् व्यतीत कर रहे हैं।

कई एक प्रान्तों को मिला कर अफ्रिका महाद्वीप कहा जाता है। मिश्र, ट्यूनिस, अलज़ीरिया और मरक्को को उत्तरीय अफ्रिका। गिनी, अंगोला, सीनी, गाम्बिया और कांगो को पश्चिमीय अफ्रिका। ज़ञ्जबार, मोम्बासा, सुमालीलैण्ड और मोज़म्बिक को पूर्वीय अफ्रिका तथा नेटाल, केप, ट्रांसवाल और ओरेंज फ्रीस्टेट दक्षिणीय अफ्रिका के नाम से विख्यात हैं।

दक्षिण अफ्रिका का संक्षिप्त वर्णन

दक्षिण अफ्रिका में चार बड़े बड़े प्रदेश हैं जो नेटाल, ट्रांसवाल, केप और ओरेंज फ्रीस्टेट के नाम से प्रसिद्ध हैं। केप आफ़ गुड होप इस देश का दक्षिणीय प्रान्त है। इसकी राजधानी केपटौन है। इसका क्षेत्रफल २,७६,६६५ वर्गमील और जन संख्या २५६,२०४ है। नेटाल यहां का पूर्वीय प्रान्त है। यहाँ का शासक पीटर मेरीत्सबर्ग में रहता है। इसका क्षेत्रफल ३५.२६० वर्गमील और जन संख्या ११,६१,६५८ है। नेटाल से उत्तर की ओर ट्रांसवाल और इन दोनों के मध्य में ओरेंज फ्रीस्टेट नामक प्रदेश है। ट्रांसवाल का क्षेत्रफल ११०, ४२६ वर्गमील और जन संख्या १६,८६, २१२ है। यहां का प्रादेशिक शासक मुख्य नगर प्रीटोरिया में रहता है। ओरेंज फ्रीस्टेट का क्षेत्रफल ५०, ३६२ वर्गमील और आबादी ५,२८, १७४ है। इसकी राजधानी ब्लाम फ़ांटीन है।

दक्षिण अफ्रिका में बड़े बड़े पहाड़ हैं। कहीं कहीं की भूमि समथर भी है। यहां का जलवायु उपयोगी और स्वास्थ्यकर है। नेटाल और केप-कालोनी समुद्र तट पर होने से कुछ गर्म देश हैं किन्तु ट्रांसवाल और फ्रीस्टेट में शीत की अधिकता रहती है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य यूरोप के समान है। यहां की खानों में हीरा, सोना, तांबा और कोयला बहुतायत से निकलते हैं। ट्रांसवाल में सोना और फ्रीस्टेट में हीरा निकालने के लिये कई एक कारखाने हैं। इसलिये ट्रांसवाल को सोने का देश (Gold Field) और फ्रीस्टेट को हीरे का देश (Diamond Field) कहा जाता है।

यहां पर बारहों मास थोड़ी बहुत वर्षा हुआ करता है। यहां पर कद्दू, लौका और मकई की अधिक पैदावार है। नेटाल में ऊख की खेती खूब होती है और ट्रांसवाल में जहां तहां गेहूं की खेती भी की जाती है। सब प्रकार के शाक पात और फल फूल यहां पर पैदा होते हैं।

दक्षिण अफ्रिका के आदिम निवासी

यहां के आदिम निवासी हमारे देश के कोल, भील, संथाल और गोंड से भी अधिक असभ्य और जंगली हैं। इनमें कई एक जातियां हैं जो समष्टि रूप से काफ़िर कहीं जाती हैं। यहां पर

इनकी जातियों के विषय में संक्षिप्त वर्णन कर देना अनुचित न होगा।

बुशमेन—यह लोग छोटे क़द के होते हैं। इनका वर्ण पीला और भूरा होता है। ये लोग पशु मार कर खा जाते हैं।

होटेन्टस—यह जाति बुशमेन की अपेक्षा सभ्य होती है। ये लोग खेती करते तथा भेड़, बकरी और गाय पालते हैं। किन्तु ये बड़े आलसी और दुर्गन्धयुक्त होते हैं। धन संचय करना बिलकुल नहीं जानते, केवल खाना पीना और नाचना इनके जीवन का प्रधान उद्देश्य है। सूर्य्य, चन्द्र और तारों को ईश्वर मान कर उपासना करते हैं।

काफ़िर—यह लोग बुशमेन और होटेन्टाम्स से नितान्त भिन्न होते हैं। यह एक दम काले रंग के होते हैं। काफ़िर भी तीन भाग में विभक्त किये जा सकते हैं। यथाः—पूर्वीय काफ़िर, युक्त काफ़िर और पश्चिमीय काफ़िर।

पूर्वीय काफ़िरों—में ज़ूलू, मटाबेले, पोन्डम, मसुटू, टेम्बस और गैकस जातियों की गणना होती है।

युक्त काफ़िरों—में बचुआनम, मकोलोलो और मकुकू समझे जाते हैं।

पश्चिमीय काफ़िरों—में ओवनपोस और डमरस की गणना की जाती है।

पहिले इन लोगों को कहीं कहीं अरबों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी पर इस समय पोर्तगीज़, जर्मन और अंग्रेज़ जातियां प्रायः समस्त अफ्रिका पर अधिकार जमाये हुए हैं। स्वतन्त्रता के लिये इन्होंने बड़े बड़े यत्न किये। कई एक भयानक संग्रामों में इनके सहस्रों मनुष्य कट गये। इसके अतिरिक्त गोरों के अत्याचार से भी इनकी संख्या बहुत कुछ घट गई। इनके रक्त से अफ्रिका की भूमि सींची गई है और यूरोपियनों की सर्वोत्तम सभ्यता पुष्ट हुई है। सम्भव है कि दो चार शताब्दियों के पश्चात् इनका सर्वनाश हो जाय और यूरोप के अजायबघरों में इनकी हड्डियां रखी जायँ।

यूरोपियनों को पहले होटेन्टाट और पीछे बुशमानों से काम पड़ा। ये अभागे तोप बन्दूक आदि वैज्ञानिक शस्त्रों के सामने कब ठहर सकते थे इस लिए निर्दयतापूर्वक मारे गये। इन लोगों को देखते ही गोरे लोग या तो पशुओं के समान मार डालते थे अथवा दास बना कर रख लेते थे। एक एक गोरे भूमाधिपति के पास सहस्र सहस्र ग़ुलाम रहते थे। ग़ुलामों के क्रय विक्रय का भी बाज़ार गर्म था।

इसके बाद यूरोपियनों को बांटू नामक जाति का सामना करना पड़ा। ये स्वतन्त्रता देवी के उपासक और बड़े ही साहसी थे। इनके कारण बहुत दिन तक गोरों का फैलना बन्द हो गया। प्रायः सौ वर्ष तक इनसे महा संग्राम होता रहा। जिससे काफ़िरों की वीरता और स्वातन्त्र प्रियता तथा गोरों की क्रूरता और अत्याचार प्रियता का खूब ही परिचय मिला। नर रक्त से दक्षिण अफ्रिका की भूमि लाल हो गई थी।

दक्षिण अफ्रिका का अन्वेषण

वास्तव में भारतवर्ष बड़ा ही हतभाग्य देश है। इसके गुण न केवल इसके लिये पर औरों के लिये भी घातक हुए हैं। जिस प्रकार भारत को ढूंढते ढूंढते कोलम्बस को अमेरिका मिला था, उसी प्रकार भारत को खोजते हुए सन् १४८८ ई० में बार्थोलोम्यू डायज़ को 'केप आफ़ गुड होप' का पता लगा। अंग्रेज़ी में 'केप' अन्तरीप को कहते हैं। जब भारत के अन्वेषण में पोर्तगीज़ दक्षिण अफ्रिका के दक्षिण तीरवर्ती इस अन्तरीप में पहुंचे तो उन

के निराश हृदय में फिर आनन्द का प्रवाह उमड़ आया। इसलिये उन्होंने इसका नाम 'केप आफ़ गुड होप' अर्थात् शुभ अन्तरीप रक्खा।

वास्कोडीगामा भी भारत की खोज में उसी मार्ग से निकला जिससे कि ९ वर्ष पहिले बार्थोलोम्यू डायज़ गया था। अफ्रिका के दक्षिण भाग का चक्कर लगाने के बाद वास्कोडीगामा को सन् १४९७ ईस्वी की २५ वीं दिसम्बर को अफ्रिका के दक्षिण पूर्व तट पर एक देश दीख पड़ा। बहुत दिन की समुद्रयात्रा के बाद, विशेषतः उस समय की आपद्संकुल समुद्रयात्रा के बाद, भूमि दीख पड़ने पर इन पुरुषार्थी नाविकों को जो आनन्द प्राप्त हुआ होगा उसकी कल्पना करने में भी हम असमर्थ हैं। आज का दिन ईसाईयों के लिये अधिक आनन्दवर्द्धक है क्योंकि २५ वीं दिसम्बर ईशु क्राइस्ट का जन्म दिन भी है। इस तिथि को ईसाई लोग महा त्योहार मनाते हैं। नेटाल शब्द का अर्थ धर्मसम्बन्धी है। 'नेटाल डे' जन्म दिन को कहते हैं। इसका प्रयोग खास कर २५ वीं दिसम्बर के अर्थ में होता है। इस लिये वास्कोडीगामा ने इस देश का नाम ही 'नेटाल' रख दिया।

यूरोपियनों का प्रवेश

सन् १६०१ में अंग्रेज़ी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कई एक जलपोत 'केप आफ़ गुड होप' में आ पहुंचे और सन १६२० में दो अंग्रेज़ कप्तानों ने इस देश पर इङ्गलेन्ड के राजा प्रथम जेम्स का झंडा फहरा दिया। सन् १६०२ में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी संगठित हुई। इस कम्पनी के १७ डायरेक्टर थे उन डायरेक्टरों की सभा 'चेम्बर आफ़ सेविन्टीन्थ' के नाम से प्रसिद्ध थी। यह कम्पनी पूर्वीय व्यापार में पोर्तगीज़ और अंग्रेज़ों की प्रतियोगिता करने लगी। सन् १६४८ में टेबल सागर में डच कम्पनी का एक जहाज़ टूट गया और उसके नाविकों को कई महीने समुद्र के तट पर काटने पड़े पर इस छोटी सी आकस्मिक घटना का परिणाम अत्यन्त व्यापक हुआ। स्वदेश पहुंच कर इन लोगों ने कम्पनी के भागीदारों के सामने इस भूमि के विषय में बड़ी प्रशंसा की और कहा कि केप में यदि छोटी सी बस्ती क़िलेबन्दी के भीतर बसाई जाय तो पूर्वी व्यापार को अधिक सहायता मिलने की आशा है।

तदनुसार सन् १६५२ में डचों का एक दल केप के लिये रवाना हुआ, उसके अध्यक्ष जान वान-रेबिक नियुक्त हुए थे। इन लोगों ने वहां पहुंचकर 'टेबल बे' के तट पर बसना आरम्भ किया और मज़बूत गढ़ बांधकर खेती करने लगे।

क्रमशः नेटाल में डच प्रवासियों की संख्या बढ़ने लगी। इनकी देखा देखी कुछ फ्रेञ्च सज्जन भी आकर बस गये और डचों में हिलमिल कर काम करने लगे। सन १७१४ में यहां के गोरे अधिवासियों की संख्या लगभग बारह हज़ार थी। पर डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ध्यान यहां के प्रवासियों की सुविधा और उत्तम शासन की ओर नहीं था, इसलिये इसका शासन अनियन्त्रित और राज प्रणाली के विरुद्ध था। व्यापार के लाभ से कम्पनी का काम अत्यन्त स्वार्थपरायण था। यहां के गोरे प्रवासियों से काम लेना कम्पनी अपना अधिकार समझती थी। इससे यहां पर अराजकता की आग भड़क रही थी। कम्पनी के भय से यहां के गोरे प्रवासी दूर दूर जाकर बसने लगे जिनसे यहां के आदिम निवासियों से बराबर युद्ध करना पड़ता था। यहां के आदिम निवासियों के नाश होने का एक यह भी कारण है।

कम्पनी के १४३ वर्षों के जुल्मी शासन का परिणाम यह हुआ कि प्रवासी क्रूर और कपटी घोर परिश्रम से विमुख हो गये। इन्होंने आदिम निवासियों को गुलाम बनाया और उनपर भयानक अत्याचार किये। निदान सन् १७९५ में यह उपनिवेश अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गये। किन्तु फिर

सन् १८०३ में यह प्रान्त डचोंको मिल गया। इन आठ वर्षों में यहां की शासन पद्धति बहुत कुछ सुधर गई जिस में इङ्गलेण्ड के २४ करोड़ रुपये खर्च हुए। थोड़े दिन डच शासन के बाद सन् १८१४ में इस पर अंग्रेज़ों का स्थायी राज्य हो गया जिससे प्रवासी बोर बड़े अप्रसन्न हुए।

आदिम निवासियों का उद्धार

सन् १८२० ई० में लार्ड चार्लस स्टोमर सेट के कहने से वृटिश सरकार ने चुने हुए चार सहस्र अंग्रेज़, स्काट और आयरिश दक्षिण अफ्रिका में भेजे। स्थान स्थान पर गढ़ बांधे गये। पादरियों ने वृटिश राज्य को बढ़ाने के लिये अच्छी सहायता दी। इन लोगों के उद्योग से आदिम निवासियों के कष्ट भी कुछ कम हुये। यह बोरों और अंग्रेज़ों के घृणित अत्याचारों का निरन्तर विरोध करते थे। लन्दन मिशनरी सोसायटी के पादरी डाकृर जान फ़िलिप की चेष्टा से सन् १८२८ में वृटिश सरकार ने यहां के आदिम निवासियों को गुलामी से मुक्त कर स्वतन्त्र कर दिया। सन् १८३४ में वृटिश साम्राज्य से ही गुलामी उठा देने का क़ायदा बना। लिहाज चार वर्ष स्वाधीनता की शिक्षा देकर पहली दिसम्बर सन् १८३८ में समस्त गुलाम स्वतन्त्र कर दिये गये। इस सत्कार्य्य में वृटिश सरकार के १ करोड़ ८७ लाख ५० हज़ार रुपये खर्च हुए। इस प्रकार एक आवश्यक सुधार हो जाने से प्रवासी गोरे पादरियों से द्वेष करने लगे। पर इनकी कुछ भी परवाह न कर पादरी इन जंगलियों के सुधारने का प्रयत्न करते रहे।

जिस वर्ष गुलामी की प्रथा उठा दी गई उसी वर्ष केपकालोनी के गोरे और आदिम निवासियों में भयंकर युद्ध हुआ। उस समय के वृटिश गवर्नर सर बेंजामीन डी उर्बान की अत्याचार मूलक नीति का ही यह फल था। इससे डी उर्बान को अधिक अग्रसर होकर काफ़िरों के प्रदेश आधीन कर लेने का अच्छा अवसर मिला। पर उपर्युक्त पादरी डाकृर फ़िलिप के प्रयत्न से वृटिश सरकार को डी उर्बानका अन्याय विदित हो गया इस लिये उसने काफ़िरों के प्रदेश उन्हें लौटा देने के लिये डी उर्बान को बाध्य किया। इससे अप्रसन्न होकर प्रायः ८००० बोर और अंग्रेज़ वृटिश शासन के बाहर ऑरेंज नदी के पार नेटाल और उत्तर ट्रांसवाल में जा बसे। उस समय से बोर लोग अंग्रेज़ों से अधिकतर द्वेष करने लगे। इसका परिचय सन् १८१५ के बलवे में और प्रसिद्ध बोर युद्ध में मिला था। यह द्वेष भाव अब तक भी निर्मूल नहीं हुआ है। इधर नेटाल तथा उसके आस पास बोर और अंग्रेज़ों की बस्ती बढ़ती गई। यह लोग स्वतन्त्र ही थे। इन्होंने मेरित्सबर्ग में स्वतन्त्र प्रजातन्त्र की स्थापना की।

दो प्रजातन्त्र

वृटिश शासन से रुष्ट होकर जो लोग ऑरेंज नदी के पार जा बसे थे उनको भी आधीन करने का प्रयत्न केपकालोनी के वृटिश गवर्नर ने कई बार किया, पर वह सफल न हो सका। सन् १८५२ में वृटिश सरकार ने इनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। परिणाम यह हुआ कि ट्रांसवाल में कई एक छोटे छोटे स्थान स्वतन्त्र प्रजातन्त्र हो गये। पर सन् १८६४ में उन सबको मिलाकर एक ट्रांसवाल प्रजातन्त्र बना। सन् १८५४ में ऑरेंज फ्रीस्टेट भी एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र हुआ। इस प्रकार दक्षिण अफ्रिका में इस समय चार राज्य हुए। केपकालोनी और नेटाल वृटिश उपनिवेशों में गिने जाने लगे तथा ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्रीस्टेट स्वतन्त्र प्रजातन्त्र समझे जाने लगे।

इसके बाद जर्मन, फ्रेञ्च, रशियन आदि भिन्न भिन्न यूरोपियन जातियों के लोग इन चारों प्रान्तों में आ बसे तथा इनमें मार काट भी होने लगी। सन् १८७७ में इङ्गलेण्ड ने ट्रांसवाल को अपने आधीन कर लिया था पर बोरों ने इसका घोर विरोध किया। अन्त में जब मि० ग्लेडस्टन की सरकार ने

भी ट्रांसवाल को स्वतन्त्रता देने से इन्कार किया तब बोरों ने शस्त्र ग्रहण किये और २७ वीं फ़रवरी सन् १८८१ को मजुबा पहाड़ी पर इन लोगों ने आक्रमण कर सर जार्ज कोलेकी बृटिश सेना को नाश कर दिया। इस भयानक युद्ध में स्वयं सेनापति भी मारे गये। ट्रांसवाल के बोरों की इस जीत से दक्षिण अफ्रिका के समस्त बोरों में एकता का भाव दृढ़ हुआ और अंग्रेज़ों से यह घृणा करने लगे। निदान सन् १८८१ ईस्वी की तीसरी अगस्त को प्रिटोरिया कानवेन्शन से बोरों को स्वराज्य दिया गया और सन् १८८४ की लन्दन कानवेन्शन से ट्रांसवाल अर्द्ध-स्वतन्त्रप्रजातन्त्र हुआ।

बोर युद्ध

ट्रांसवाल अर्द्ध स्वतन्त्र प्रजातन्त्र हो गया, यह पवलकूगर के परिश्रम का फल है। इसके पश्चात् पवलकूगर राष्ट्रपति (प्रेसीडेएट) बनाये गये। इनकी महत्वाकांक्षा यह थी कि, समस्त दक्षिण अफ्रिका एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र हो और इसमें प्राधान्य बोरों का रहे। इसके लिये भांति भांति के प्रयत्न किये जाने लगे। अंग्रेज़ों के भी राजनैतिक स्वत्व छीने गये। ट्रांसवाल में सोने की खानों के निकलने से उसका महत्व और भी बढ़ गया और साथ ही अंग्रेज़ व्यापारियों का लोभ भी बढ़ा। *वर्षों तक ट्रांसवाल और बृटेन में काग़ज़ी लड़ाई होती रही पर इसका परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। मनोमालिन्य बढ़ता ही गया।* अन्त में सन् १८९९ ईस्वी की नवीं अक्टूबर को ट्रांसवाल सरकार ने प्रिटोरिया के बृटिश राजदूत सर कोनिङ्ग हमग्रीन को ४८ घण्टे की सूचना दी। तदनुसार ११ वीं अक्टूबर को युद्ध की घोषणा की गई। ट्रांसवाल और औरेंज फ्रीस्टेट ने बृटेन के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किये। नेटाल तथा केपकालोनी के बोरों ने भी इनका साथ दिया। दक्षिण अफ्रिका के वर्तमान प्रायः सभी मन्त्री—बोथा, स्मटस, आदि—अंग्रेज़ों के रक्त से दक्षिण अफ्रिका की भूमि सींचने लगे। इस युद्ध में बोरों ने अपनी वीरता का अपूर्व परिचय देकर संसार को चकित कर दिया। बारह वर्ष के बालक से लेकर ८० वर्ष के बूढ़े तक ने इस युद्ध में भाग लिया। यहां तक कि स्त्रियां भी हथियार बांध कर लड़ीं और देश के लिये अपने प्राणों को त्याग दिया, पर इतनी बड़ी बृटिश सरकार के सामने मुट्ठी भर बोर कब तक ठहर सकते थे। अन्त में बोरों की पराजय हुई और सन् १९०२ की ३१ मई को प्रीटोरिया में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस भयानक संग्राम में ५७७४ अंग्रेज़ सैनिक मारे गये और २२८२९ घायल हुए। बोर पक्ष के ४००० सैनिक मरे थे।

सन्धि की शर्तें

जिन शर्तों पर युद्ध समाप्त हुआ उनका सारांश यह है:—"(१) प्रत्येक बोर पक्षीय पुरुष को शस्त्रास्त्र सहित आत्मसमर्पण करना होगा। (२) वे सब पुरुष, जो अपने को सम्राट सप्तम एडवर्ड की प्रजा मानेंगे, स्वतन्त्र बृटिश नागरिक के अधिकार पायेंगे। (३) आत्मसमर्पण करनेवाले किसी बोर की सम्पत्ति या स्वाधीनता हरण नहीं की जायगी। (४) युद्ध के समय किये हुए कार्य्यों के लिये किसी पर अभियोग नहीं चलाया जायगा। (५) माता पिता यदि कहें तो उनके लड़कों को सरकारी पाठशालाओं में डच भाषा सिखाई जायगी और वह न्यायालयों में भी चल सकेगी। (६) परवाना ले कर शिकार की बन्दूकें रखने का अधिकार सब को होगा (७) सन्धि के बाद यथा सम्भव शीघ्र फ़ौजी शासन के बदले मुल्की शासन चलाया जायगा और इसके बाद स्वराज्य दिया जायगा। (८) आदिम निवासियों को नागरिक के अधिकार देने का प्रश्न तब तक न उठाया जायगा जब तक कि दक्षिण अफ्रिका को स्वराज्य न मिल जाय। (९) लड़ाई का खर्च वसूल करने के लिये ज़मींदारों पर किसी प्रकार का राज कर नहीं लगाया जायगा। (१०) बोर सैनिकों की हानि

पूरा कर देने के लिये एक कमीशन निर्वाचित किया जायगा और लड़ाई में खेती की जो हानि हुई है उसके लिये बोरों को ४॥ करोड़ रुपये दिये जायंगे।"

सन्धिकी शर्तों का यही आशय है। इसको पढ़ने से ही विदित हो जायगा कि इस भयंकर युद्ध से इङ्गलेण्ड को केवल यही लाभ हुआ कि बोरों ने नाम मात्र के लिये बृटेन की अधीनता स्वीकार कर ली और दक्षिण अफ्रिका के सब श्वेताङ्गों को नागरिकों के समान अधिकार मिल गये।

संयुक्त स्वराज्य

ता० ३१ मई सन् १९१० को इङ्गलेण्ड की पार्लामेन्ट के निश्चित क़ानून से नेटाल, ट्रांसवाल, केप और औरेंज फ्रीस्टेट एक में सम्मिलित कर दी गई और इन्हें औपनिवेशिक स्वराज्य दिया गया। उसी समय से यह 'दक्षिण अफ्रिका की संहति' (Union of South Africa) कही जाने लगी। अब इसका शासन मुख्यतः यहां के निवासियों द्वारा किया जाता है। विलायत के हाथ में यहां के लिये गवर्नर जनरल नियुक्त करने का अधिकार है। इसकी सहायता के लिये एक कार्य्यकारिणी समिति की आयोजना की गई है। इस समिति के सदस्यों को गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार नियत करता है। राज्य के मुख्य विभाग का प्रबन्ध करने के लिये गवर्नर जनरल प्रायः दस प्रतिनिधि नियत करता है। यह लोग भी कार्य्यकारिणी सभा के सदस्य होते हैं।

क़ानून बनाने की शक्ति यहां की पार्लामेन्ट के हाथ में है। इङ्गलेण्ड के सम्राट, सचिवसभा और प्रतिनिधिसभा तीनों उसके मुख्य अङ्ग हैं। साल में एक बार पार्लामेन्ट की बैठक अवश्य होनी चाहिये। सचिव सभा में ४० सदस्य हैं। इनमें से आठ को गवर्नर जनरल नियत करता है। शेष ३२ प्रत्येक प्रान्त से आठ आठ सदस्यों के हिसाब से चुने जाते हैं। सन् १९२० के पश्चात इसके संगठन में आवश्यकता होने पर परिवर्तन भी किया जा सकता है। जो लोग वंशपरम्परा से यूरोपियन अथवा बृटिश साम्राज्य की प्रजा हैं, जिनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की हो, जो संहति के किसी प्रान्त के निर्वाचन में सम्मति देने का अधिकार रखते हों और उसमें जो कम से कम पांच वर्ष तक रह चुके हों, वेही इस सिनेट के सदस्य बनाये जा सकते हैं। निर्वाचित सिनेटर को ७५००) रु० मूल्य की सम्पत्तिका स्वामी होना चाहिये।

प्रतिनिधि सभा में कुल १२१ सदस्य हैं। इनमें केप कालोनी से ५१, नेटाल से १७, ट्रांसवाल से ३६ और औरेंज फ्रीस्टेट से १७ सदस्य चुन कर आते हैं। इन चारों प्रान्तों में यूरोपियनों की संख्या घटती या बढ़ती के हिसाब से निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में परिवर्तन करने के लिये नियमावली निश्चित कर ली गई है। चुनाव करने के लिये प्रत्येक प्रान्त में विभाग कर लिये गये हैं। इन्हें निर्वाचन विभाग (ज़िला) कहते हैं। प्रत्येक विभाग से एक प्रतिनिधि उक्त सभा में जाता है। जो नियम सचिव सभा के सदस्यों के लिये ऊपर लिखे गये हैं प्रायः वे ही सब नियम प्रतिनिधि सभा के सभासदों के लिये भी आवश्यक हैं। पहिली प्रतिनिधिसभा पांच वर्ष तक क़ायम रहेगी। एक ही पुरुष उपर्युक्त दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता है। सरकारी नौकर भी इन सभाओं में निर्वाचित होने का स्वत्व नहीं रखते हैं।

रुपये पैसे के सम्बन्ध में नये क़ानून बनाने के लिये प्रस्ताव करने का स्वत्व केवल प्रतिनिधि सभा को है। परन्तु साधारणतया गवर्नर जनरल की अनुमति को पा कर ही यह नये कर और ख़र्च के क़ानून पास कर सकती है। प्रतिनिधि सभा की स्वच्छन्दता के साथ क़ानून बनाने की शक्ति को सचिव सभा कुछ परमित करती है। दोनों सभाओं में विरोध को ठीक करने के लिये, क़ानूनों

पर इङ्गलेण्ड के सम्राट् की स्वीकृति के लिये और गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत क़ानूनों को भी रद्द करने के लिये नियमों की आयोजना की गई है। पार्लीमेंट का अधिवेशन केपटौन में हुआ करता है।

हर एक प्रान्त के शासन के लिये गवर्नर जनरल एक एक शासक को पांच पांच वर्ष के लिये नियत करता है। एक प्रादेशिक सभा भी यहां रहती है। इसके साथ चार सदस्यों की कार्य्यकारिणी सभा की स्थापना की गई है। प्रादेशिक शासक इन कार्य्यकारिणी समितियों का अध्यक्ष है। ये सब मिल कर अपने प्रान्तों का शासन करते हैं। केपकालोनी की प्रादेशिक सभा में ५१, नेटाल में २५ ट्रांसवाल में ३६ और ओरेंज फ्रीस्टेट में २५ निर्वाचित प्रतिनिधि बैठते हैं। प्रादेशिक आय, व्यय, शिक्षा, खेती, दान, नागरिक प्रबन्ध, स्थानीय काम, सड़क, पुल एवं बाज़ार तथा इनसे सम्बन्ध रखनेवाले दण्ड विधान इन सभाओं के निरीक्षण में और उनकी अनुमति के अनुकूल होता है। न्यायविभाग के सञ्चालन के लिये संहति भर में एक श्रेष्ठ न्यायालय है। उसकी अध्यक्षता में और भी छोटे छोटे न्यायालय प्रत्येक प्रदेश में हैं अंग्रेज़ी और डच दोनों ही भाषा कार्य्यालयों में काम में लाई जाती हैं।

अराजकता

जब से दक्षिण अफ्रिका के चारों प्रान्त शामिल किये गये तब से अराजकता की घनघोर घटा छाई हुई है। गोरे मजूर बार बार हड़ताल कर रहे हैं इससे दक्षिण अफ्रिका की सरकार के नाकों दम आ गई है। यह हड़ताल साधारण ही नहीं प्रत्युत भयंकर रूप धारण कर रही हैं। सन् १९१३ की हड़ताल में मजूरों के विराट दल ने पार्क स्टेशन में आग लगा दी थी। 'स्टार' नामक समाचार पत्र का कार्य्यालय फूंक दिया था। कितनी ही दूकानें लूट ली थीं। सरकारी सिपाहियों पर प्रबल आक्रमण करते थे। इससे विवश होकर सरकारी सिपाहियों को गोली चलानी पड़ीं। इससे कई एक मारे गये और कई एक घायल हुए। अन्त में बहुत समझा बुझा कर मजूर दल को शान्त किया गया।

सन् १९१४ के जनवरी मास में एक भीषण हड़ताल फिर आरम्भ हुई। मजूरों ने कई स्थानों पर रेलगाड़ी को उलट देने का प्रयत्न किया। भांति भांति के घृणित कर्म करने पर अग्रसर हुए इस लिये देश भर में फ़ौजी क़ानून जारी किया गया कि जहां छः से अधिक व्यक्ति एकट्ठे हों और सरकारी सिपाही को कुछ भी सन्देह हो तो वह उन मनुष्यों को पकड़ कर दण्ड दिला सकता है। रात्रि के समय में रेल लाइन के निकट कोई संदेह जनक व्यक्ति दीख पड़े तो उसे गोली से मार देने की आयोजना की गई। कई हड़ताली नेताओं को पकड़ कर देश निकाले का दण्ड दिया गया। सारांश यह कि दक्षिण अफ्रिका में अराजकता की भरमार है।

दक्षिण अफ्रिका के गोरे अधिवासियों का यह संक्षिप्त इतिहास जानने से भारतवासियों की अवस्था समझने में सुविधा होगी।
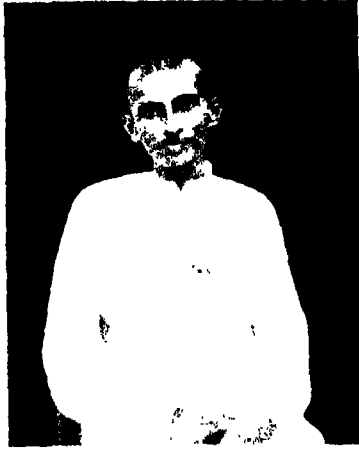
त्याग मूर्ति.

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

माननीय मि. जी. के. गोखले सी. आई. ई..

भारतमें दक्षिण आफ्रिका प्रवासी भारतवासियों के लिये घोर आन्दोलन कर्ता। आपने सन १९१२ ई० में आफ्रिका का प्रवास किया था।
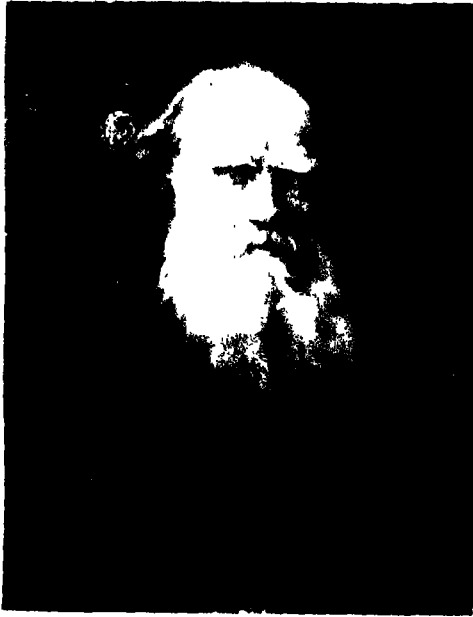
रूस के सब से श्रेष्ठ सत्याग्रही. स्वर्गीय ऋषि काउन्ट लिओ एन. टाल्सटाय। सत्याग्रह करने का हौसला बढ़ाने वालों में से आपही प्रधान हैं। आपने इस विषय पर महात्मा गांधी को पत्र भेजा था।

आनरेबिल जनरल जे.सी. स्मट्स. डिफेन्स और फाइनेन्स के मिनिस्टर। पहिले मिनिस्टर आफ इन्टीरियर। सत्याग्रह के आदि से अन्त तक प्रधान विरोधी।

स्वर्गीय रे. जे. जे. डोक

महात्मा गांधी के चरित्र लेखक और युरोपियन समाज में सत्याग्रह के प्रधान प्रचारक।

मि. एच. एच. वेस्ट

'फ़ीनिक्स सेटिलमेन्ट' और 'इन्डियन ओपीनियन' के सहकारी मैनेजर। आप ने प्रतिज्ञाबद्ध मजूरों की जो फ़ीनिक्स में सहायतार्थ भाग आये थे, बड़ी सहायता की थी। इसी कारण आप पकड़े गये और छोड़ दिये गये।

मि. पी. के. नायडू

आसक्त सत्याग्रही और ट्रान्सवाल की तामिल बेनीफ़िट सोसाइटी के अध्यक्ष।

मि. सी. के. थम्बी नायडू

'पूर्व विद्रोही', तामिल बेनीफ़िट सोसाइटी के उद्योगी सभापति। आपने कई बार जेल भोगा।

द्वितीय खण्ड

भारतीय जन संख्या

दक्षिण अफ्रिका में कुल १४९,७९१ भारतवासी निवास करते हैं। उनमें से ९३,८८६ पुरुष और ५५,९०५ स्त्रियां हैं। नेटाल प्रान्त में ८० १६० पुरुष और ५२ ८७१ स्त्रियां, कुल १,३३,०३१ भारतवासी हैं। ट्रांसवाल में ८०५० पुरुष और १९९८ स्त्रियां, कुल १०,०४८ भारत सन्तान हैं। केपकालोनी में ५५९० पुरुष और १०१६ स्त्रियां, कुल ६६०६ भारतवासी हैं। औरेंज फ्रीस्टेट में ८६ पुरुष और २० स्त्रियां, कुल १०६ भारत सन्तान हैं। दक्षिण अफ्रिका में ११५,५८० हिन्दू, २०.८९२ मुसलमान, ३४१ पारसी तथा १२९७८ अन्य सम्प्रदायवाले भारतीय हैं। दक्षिण अफ्रिका के जन्मे हुये ३२,४०८ पुरुष और ३१,३६८ स्त्रियां, कुल ६३,७७६ हैं। आसाम प्रान्त के जन्मे हुए ३० पुरुष और एक स्त्री, कुल ३१ हैं। बङ्गाल प्रान्त के जन्मे हुए १०,६६२ पुरुष और ५५०३ स्त्रियां, कुल १६,१६५ हैं। बम्बई प्रान्त के जन्मे हुए ९७४५ पुरुष और ११३८ स्त्रियां, कुल १०,८८३ हैं। वर्मा के जन्मे हुए ३० पुरुष और ३ स्त्रियां, कुल ३३ हैं। मध्यप्रदेश और बरार के जन्मे हुए ४४ पुरुष और ५ स्त्रियां, कुल ४९ हैं। पूर्वीय बंगाल के जन्मे हुए केवल ३ पुरुष हैं। मद्रास प्रान्त के जन्मे हुए २७,८४७ पुरुष और १३.४६७ स्त्रियां, कुल ४१,३१४ हैं। पंजाब प्रान्त के जन्मे हुए ३१२ पुरुष और ३० स्त्रियां, कुल ३४२ हैं। युक्तप्रदेश आगरा व अवध के जन्मे हुए १८८पुरुष और ७७ स्त्रियां, कुल २६५ हैं। अज्ञात प्रान्त के जन्मे हुए ११,९६५ पुरुष और ३९५६ स्त्रियां, कुल १५९२१ हैं। अन्य प्रान्तों के जन्मे हुए ६५२ पुरुष और ३५७ स्त्रियां, कुल १००९ हैं। ध्यान रहे कि बङ्गाल में बिहार प्रान्त भी शामिल है।

दक्षिण अफ्रिका में ३५,८२४ विवाहित पुरुष और २६,८६८, विवाहिता स्त्रियां, कुल ६२,६९२ विवाहित भारतवासी हैं। यहां पर ५५,४६२ अविवाहित पुरुष और २६,८४४ अविवाहिता स्त्रियां, कुल ८२,३०६ अविवाहिता हैं। यहां पर २२४५ रंडुये पुरुष और २०९९ विधवा स्त्रियां, कुल ४३४४ हैं। यहां पर अपनी स्त्रियां से सम्बन्ध तोड़नेवाले १२२ पुरुष और अपने पुरुषों को त्यागनेवाली ४४ स्त्रियां कुल १६६ हैं। अज्ञात २३३ पुरुष और ५० स्त्रियां कुल, कुल २८३ हैं।

दक्षिण अफ्रिका में २० वर्ष से कम अवस्था वाले ३२,६८६ पुरुष और २९,५३७ स्त्रियां, कुल ६२,२२३ हैं। २० से ३९ वर्ष की अवस्थावाले ४४,६५० पुरुष और २०.५४३ स्त्रियां कुल ६५,१९३ हैं। ४० से ५९ वर्ष की अवस्थावाले १४,११४ पुरुष और ४८५७ स्त्रियां कुल १८,९७१ हैं। ६० वर्ष से अधिक की अवस्थावाले २४२२ पुरुष, ९५८ स्त्रियां कुल ३,३८० हैं। अज्ञात अवस्था वाले १४ पुरुष और १० स्त्रियां कुल २४ हैं।

दक्षिण अफ्रिका में निज का काम करनेवाले ६७५ पुरुष और ५४ स्त्रियां, कुल ७२९ हैं। घरेलू काम करनेवाले ७७५७ पुरुष और २३,५८२ स्त्रियां, कुल ३१,३३९ हैं। व्यापार करनेवाले ९५६३ पुरुष और ७४४ स्त्रियां, कुल १०,३०७ हैं। खेती करने वाले २९.१८६ पुरुष और ७०५२ स्त्रियां, कुल ३६,२३८ हैं। दस्तकारी के काम करनेवाले २१०१० पुरुष और ८५१ स्त्रियां, कुल, २१,८६१ हैं। अनिश्चित काम करनेवाले ३१६ पुरुष और ८३३ स्त्रियां,

कुल ११४६ हैं। पराधीनता में काम करनेवाले २४, ६६१ पुरुष और २२,६०० स्त्रियां, कुल ४७,२६१ हैं। अज्ञात काम करनेवाले ६८८ पुरुष और १८६ स्त्रियां कुल ८७७ हैं।

इस गणना में युक्तप्रदेश और मध्यप्रदेश के जन्मे हुए भारतवासियों की संख्या जो कम बतलाई गई है वह भ्रममूलक प्रतीत होती है। क्योंकि इन प्रान्तों के ही अधिक मनुष्य यहां पर निवास करते हैं। यह गोरे गणकों की असावधानी का फल है। यह गणना सन् १६११ की सेसंस-रिपोर्ट के अनुसार दी गई है।

आरकाटियों की धोखेबाज़ी

मजूर कह कर देश देशान्तर में भेजने की सत्यानाशी प्रथा अनेक अभागे भारतवासियों का सर्वनाश कर रही है। भारत में महामारी, विषूचिका और दुर्भिक्ष ने अपना अड्डा जमा लिया है। इन भयङ्कर आपत्तियों के कारण देश की जो दुर्दशा होरही है उसको वर्णन करते लेखनी थर्राती और मुख से आह निकलती है:—

> बिना अन्न हैं अधमरे,
> चिन्ता ज्वर से जीर्ण।
> हाड़ चाम मिलि एक भो,
> बिनु भोजन तन क्षीण ॥

जहां संसार के भिन्न भिन्न देश आज उन्नति की घुड़दौड़ में आगे बढ़ रहे हैं वहां हमारा अभागा देश अवनति के पथ में अग्रसर होरहा है। सरकारी लगान और ज़मीन्दारों के अत्याचार से दबकर कितने ही किसान भूखों मरते हैं। भारत के इतिहास पर विचार करने से विदित होगा कि भारत में दिन पर दिन अकाल का प्रकोप होता जाता है। सन् १८०१ से १८२५ ईस्वी तक अंग्रेज़ी भारत में १० लाख मनुष्यों ने भूख से तड़प तड़प कर प्राण छोड़े। सरकारी रिपोर्ट से मालूम होता है कि सन् १८५० से १८७५ ईस्वी तक अंग्रेज़ी भारत में छः बार अकाल पड़ा जिसमें भूख से छटपटाकर ५० लाख भारतवासी इस लोक से कूच कर गये। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्तिम भाग का दुर्भिक्ष वृतान्त इससे कहीं बढ़कर शोक का उत्पादक है। इन अन्तिम २५ वर्षों में भारत पर १८ बार दुर्भिक्ष का प्रकोप हुआ और इस दुर्भिक्ष अग्नि में प्रायः २ करोड़ ६० लाख प्राणी स्वाहा होगये।

बङ्गाल के भूतपूर्व छोटेलाट सर चार्लस् एलियट जिस समय युक्तप्रदेश के बन्दोबस्त के अमलदार थे उस समय उन्होंने देशवासियों की दशा को जांच कर लिखा था कि—'अंग्रेज़ी भारत के किसानों में से आधे लोग सालभर में एक दिन भी भरपेट खाना नहीं पाते।' सन् १८६३ ई० की मई मास में अर्द्ध सरकारी समाचारपत्र 'पायो-नियर' ने भारत की दरिद्रता के विषय में लिखा है कि—'अंग्रेज़ी भारत राज्य में प्रायः १० करोड़ निवासी बड़ी भारी दरिद्रता से दिन बिताते हैं।' इस हिसाब से मालूम हो सकता है कि भारतदेश दुर्भिक्ष का घर बना हुआ है। ऐसे दुस्समय में भारतवासियों का मजूर बनकर विदेशों में जाना स्वाभाविक है। एक ओर भारतवासी अकालरूपी अग्नि में जल रहे हैं और दूसरी ओर इन भोले भाले किसानों को धोखा देकर विदेशों में भेजने के लिये आरकाटियों की बन आई है। यह आरकाटी (दलाल) भारतवासियों को भांति भांति के प्रलोभन दिखाकर अपने बश में करलेते हैं। बिचारे भारतवासियों को कहा जाता है कि तुमको विदेश में बहुत अच्छा काम दिया जायगा, तुम सरदार बनाये जाओगे अथवा तुम्हें जमादारी का काम दिया जायगा। इस प्रकार मीठी मीठी बातें कह कर बिचारे किसानों को अपने चंगुल में फंसा

लेते हैं और उनको गुलाम की तरह बेंच कर अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं।

इस कुली प्रथा रूपी पाश में पड़कर कितने भले घर के लड़के चले आते हैं और कई कुलीन तथा उच्च वंश की लड़कियां भी यहां चली आती हैं। घर में झगड़ा होजाने से रूठ कर कई काशी, प्रयाग आदि नगरों में जाते हैं और वहां से आरकाटियों के जाल में फंसकर विदेश की चिड़ियां बन जाते हैं। उनके माता पिता अपने प्यारे पुत्र पुत्रियों के वियोग से हाय हाय करते हैं और शिर धुन धुन कर पछताते हैं, कोई कोई अपना सञ्चित धन व्यय कर बड़ीही कठिनता से साधारण राजकर्म्मचारियों से लेकर उच्चाधिकारियों तक दौड़ लगाने पर अपने बालकों को लौटा पाते हैं पर अधिकांश युवकों का पता तक नहीं लगता।

यद्यपि सरकार की ओर से ऐसी व्यवस्था की गई है कि किसी मजूर को स्वेच्छा के प्रतिकूल विदेश में न भेजा जाय तथापि मजूर इकट्ठा करने वाले दलाल अनेक प्रकार के छल कपट से मजूरों का दल बात की बात में तय्यार कर लेते हैं। जब मजूर पहिले मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है तो उसे विदेश की सुख दुख की कथा सुनाई जाती है। एक तो वह अबोध मजूर इन कठिन शर्तों के समझने में असमर्थ होता है और दूसरे वह आरकाटियों के द्वारा ख़ूब सिखा पढ़ा कर पक्का किया रहता है। इसलिये वह मजिस्ट्रेट की कही हुई हर एक शर्त को स्वीकार कर लेता है। इसी प्रकार के जाल में फंसा कर भारतीय मजूर विदेशों में भेजे जाते हैं। इनमें से कई एक मजूरों के मां बाप, स्त्री, बच्चे और कुल परिवार सदा के लिये छूट जाते हैं।

नेटाल में भारतीय मजूर

सन् १८५६ ईस्वी में नेटाल प्रान्त केप कालोनी से अलग किया गया। यहाँ के अंगरेज़ी अधिवासियों ने देखा कि पूर्वी देशों में होनेवाले प्रायः सभी पदार्थ यहां उत्पन्न हो सकते हैं अतः ऊख, चाय, अरारोट आदि की खेती दिन पर दिन बढ़ने लगी। पर मजूरों के अभाव से गोरों को बड़ा कष्ट होने लगा। यहां के काफ़िर लोग गोरों को अच्छी तरह पहचान गये थे, इस लिये वे इनके खेतों में मजूरी करना पसन्द नहीं करते थे। इस दशा में नेटाल के गोरों की दृष्टि भारत पर पड़ी। उद्योगी भारतवासियों के परिश्रम से लाभ उठाने का प्रलोभन वे सम्हाल न सके। उनकी चेष्टा से साम्राज्य सरकार की ओर से भारत सरकार पर दबाव डाला जाने लगा कि भारत से मजूर शर्त में बान्धकर नेटाल को भेजे जांय। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है, कितनेही लोगों का यह धारणा है कि भारतवासी यहां पर स्वतः ही आकर बस गये पर यह धारणा निर्मूल है। नेटाल के गोरों के कहने से साम्राज्य सरकार ने भारत सरकार को यहां मजूर भेजने के लिये बाध्य किया। शर्तें इस आशय की थी कि पांच वर्ष तक मजूर यहां के किसी गोरे ज़मीनदार के यहां काम करें, इस के बाद वे स्वतन्त्र हो जांयगे और नेटाल में बस सकेंगे। यहां तक कि इन्हें भूमि देने के लिये भी प्रलोभन दिया गया। इस प्रकार सीधे साधे, छल कपट न जाननेवाले भारतीय मजूर नेटाल में आने लगे। इस समय केवल नेटाल में भारतवासियों की संख्या १, ३३, ०३१ है। इनमें से ३२ सहस्र मजूर शर्त में बन्धे हैं और ७२ हज़ार ऐसे हैं कि जिनकी शर्तकी अवधि समाप्त हो गई है अथवा वे उन लोगों की सन्तान हैं जो शर्त में बंध कर नेटाल में आये थे।

मजूरों पर अत्याचार

नेटाल में जो भारतवासी मजूरी करने की शर्त लिखा कर आये उन्हें पांच वर्ष तक गोरे किसानों की अधीनता में काम करना पड़ा। यहां पर बिचारे

मजूरों को भांति भांति के कष्ट उठाने पड़े। गोरे किसानों की आज्ञानुसार हर एक काम करना पड़ता है। किसी काम में इनकार करने पर गोरों के चाबुकों की मार खानी पड़ती है। प्रत्येक मजूर को दिन भर के लिये काम का ठेका दे दिया जाता है। यह ठेका इतना अधिक होता है कि बड़े हट्टे कट्टे मजूर भी दिन भर में पूरा नहीं कर सकते हैं। गोरे किसान भारतीय मजूरों को 'डेमफूल ब्लाडी कुली' कह कर सत्कार करते हैं।

मजूरी की शर्त लिखा कर आने से मजूर गोरे किसानों के हाथ में बिक जाते हैं। गोरे लोग इन पर मनमाने अत्याचार करते हैं। काम न कर सकने पर इनको अपमानित किया जाता है। सर्दारों और साहिबों की लातें खाना पड़ती हैं। पांच वर्ष तक इन पराधीन मजूरों पर गोस्वामी तुलसीदास की यह चौपाई ठीक चरितार्थ होती है :—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं

नेटाल में शक्कर बनाने के लिये बड़े बड़े कारखाने हैं इनके स्वामी प्रायः सभी यूरोपियन हैं। मजूरों को ऊख के खेत में दिन भर काम करना पड़ता है। कभी कभी रात को भी इनसे काम लिया जाता है। मजूरों को मैले की टोकरी माथे पर रख कर खेतों में डालना पड़ती हैं। बरसात होने पर टोकरियों का मैला चू चू कर इन अभागों के मुख तथा समस्त बदन पर टपकता जाता है। काम में थोड़ी चूक होने पर भी दांत तोड़ दिये जाते हैं, अथवा बेंतों की, लातों की, तथा चाबुकों की भरपूर मार पड़ती है। इस अमानुषी संकट पर मजूरों की जान भारी हो जाती है। कितने ही समुद्र में कूद कर जान दे डालते हैं और कितने ही फांसी लगा कर प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। कितने ही अन्य प्रकार से आत्मघात कर इन गोरे किसानों से पिंड छुड़ाते हैं और कितने ही इस घृणित अत्याचार से व्याकुल हो अपने हाथ पांव काट लेते हैं।

भारतीय मजूरों को खाने के लिये चावल, दाल और केवल नमक दिया जाता है तथा पांच रुपये मासिक वेतन मिलता है।

भारतीय मजूरों की उन्नति

भारतीय मजूर शर्त की अवधि समाप्त कर स्वतन्त्र व्यवसाय में दत्तचित्त हुये। अधिकांश मजूर खेती करने लगे और कई एक ने छोटी छोटी दूकानें रख लीं। कितने ही मजूरों ने परवाना लेकर फेरी का काम प्रारंभ किया। सारांश यह कि प्रत्येक भारतवासी अपनी आर्थिक दशा सुधारने में अग्रसर हुआ। धीरे धीरे इनकी उन्नति होने लगी। इन लोगों ने अनेक प्रकार के रोज़गार जारी किये, तरह तरह की तिजारत करने लगे। उद्यम और परिश्रम में यह लोग यहां के निवासियों से अधिक चतुर थे। व्यापार में भी इनको अच्छा अनुभव हो गया। यह लोग अंग्रेज़ व्यापारियों की प्रतियोगिता करने लगे। कम लाभ लेकर सस्ते मूल्य पर यह लोग माल बेंचते थे। भारतवासी बाल्यावस्था से ही परिश्रमी और अल्पव्ययी होते हैं। उनकी सब आवश्यकतायें थोड़े ही धन में पूरी हो जाती हैं। इससे यहां के प्रायः छोटे मोटे व्यापार इनके अधिकार में आने लगे और साथ ही देश के धन का एक बड़ा भाग इनके हाथ में चला आया। यह लोग हज़ारों बीघा भूमि के अधिपति बन गये।

भारतीय मजूरों ने थोड़े ही समय में आशातीत उन्नति कर ली। देश धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। जहां वनचर विहार करते थे वहां चारों ओर हरीभरी खेती लहलहाने लगी। केला, आम, द्राक्ष, रतालू, सेब आदि के वृक्षों के खासे बाग

लग गये। गोभी, सेम आलू, अदरख आदि भांति भांति की वनस्पतियां उपजने लगीं। इन लोगों के परिश्रम से दक्षिण अफ्रिका के समान जंगली देश सभ्यजनों के बसने योग्य बन गया। भारतवासियों के उद्योग और ऊख की खेती के प्रभाव से नेटाल अपने पगों पर खड़ा हो सका था।

गोरों का द्वेष

जिस समय यह देश सघन बन से आच्छादित था, बड़े बड़े सिंहों की गर्जना और हाथियों की चिंघाड़ से निस्तब्ध बन गूंज उठता था, इस भयावने बन में प्रवेश करने का किसी को साहस नहीं होता था; अन्न, फल और वनस्पतियों का कहीं नाम तक नहीं था, भारतीय मजूर जंगलों को काट काट कर उपजाऊ बना रहे थे। इनके द्वारा धीरे धीरे सभ्यता का प्रचार भी होता जाता था। उस समय तक यहां के गोरे अधिवासियों की दृष्टि में भारतवासी सब प्रकार से उत्तम और श्रेष्ठ थे। गोरे लोग भारतवासियों को हर तरह से उत्साहित करते थे, किन्तु ज्योंही देश अन्न-धन से सम्पन्न हो गया तथा सब प्रकार की आवश्यकतायें पूर्ण हो गईं। यूरोप से आये हुए निर्धन गोरों की संख्या बढ़ने लगी और भारतवासियों के परिश्रम के फल पक कर तय्यार हो गये, त्योंहीं यहाँ के अंग्रेज़ों का रुख बदल गया। वे भारतवासियों से घृणा करने लगे। उनकी स्वार्थदृष्टि में भारतवासी कांटे की तरह चुभने लगे। गोरों के इस अत्याचार और द्वेष का मुख्य कारण स्वार्थबुद्धि है और यह स्वार्थबुद्धि संसार के अधिकांश मनुष्यों में होती है। इसके लिये केवल दक्षिण अफ्रिका के गोरों पर दोषारोपण करना ठीक नहीं। यहां के गोरों की तरह अमेरिकनों को भी भारतवासियों का आगमन अरुचि कर होने लगा है इसके लिये वे आन्दोलन करने में भिड़े हुए हैं। उनका स्वार्थ यहां के गोरों से कहीं बढ़कर है। प्रथम व्यवस्थित आन्दोलन करनेवाले अमेरिकन मिस्टर फ़ौलर के कथन का मथन यह है कि "पूर्वीय और पश्चिमीय एक दूसरे से भिन्न हैं। इसलिये एशियाटिकोंको उचित है कि वे अमेरिका की भूमि पर पग न रखें।" इसके साथ ही अमेरिकनों को भी चीन, जापान और भारत में नहीं आना चाहिये। यदि प्रत्येक राष्ट्र के लोग अपने अपने देशों में रहें तो संसार की कलह और उत्पात सदा के लिये मिट जाय।

भारतीयों में जागृति

सन् १८९३ में नेटाल सरकार भारतवासियों के विरुद्ध एक क़ायदा बनाना चाहती थी। इस क़ायदे का आशय यह था कि भारतवासियों के चालू हक़ छीन लिये जाँय और अन्य क़ायदे भी इनके सम्बन्ध में बनाये जाँय। उस समय भारतमाता के सच्चे सपूत लोकमान्य मोहनदास कर्म्मचन्द गान्धी नेटाल में विद्यमान थे। इन्होंने इस क़ायदे की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित किया। बहुत दिनों से गहरी नींद में सोते हुए भारतीयों में नवजागृति उत्पन्न हुई, उनको अपने भले बुरे का ख्याल हुआ। उन्होंने एक विराट सभा कर नेटाल सरकार के पास तार भेजे और इस क़ायदे के सम्बन्ध में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। इस क़ायदे के प्रतिकार करने के लिये प्रतिनिधि भी भेजा गया।

यह क़ायदा जारी होनेवाला था पर भारतीयों की प्रार्थना पर ध्यान देकर उस समय के मुख्य शासक सरजोन रोबिन्स ने क़ायदे की कई एक धाराओं में फेर फार किया। नेटाल के समाचार पत्रों ने भी भारतवासियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। यहाँ के भारतवासियों ने लोकमान्य गान्धी की सम्मत्यानुसार दश सहस्र मनुष्यों के हस्ताक्षर युक्त एक प्रार्थनापत्र लार्ड रिपन की की सेवा में भेजा, परिणाम यह हुआ कि इस

क़ायदे को सम्राट की मंजूरी न मिली और यह क़ायदा पीछा खींच लिया गया।

शर्त में बंध कर आये हुये भारतीय मजूर एक प्रकार से ग़ुलामी की नर्क में सड़ रहे थे। इस प्रकार के प्रबल आन्दोलन करने से उनकी कुम्भकरणीय निद्रा टूटी और वे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हुये। लोकमान्य गान्धी के प्रयत्न से नेटाल इण्डियन कांग्रेस और नेटाल इण्डियन एज्युकेशनल एसोसियेशन की स्थापना की गई।

३ पौण्ड का कर

भारतियों को इस प्रकार उन्नति के पथ में अग्रसर होते देख कर गोरे अधिवासियों में खलबली पड़ गई। उन लोगों ने भारतवासियों की बढ़ती रोकने के लिये एक प्रतिनिधि मण्डल को भारत सरकार के पास इस अभिप्राय से भेजा कि अब जो भारतीय मजूर शर्त लिखा कर नेटाल आवें वे शर्त की अवधि समाप्त होने पर स्वदेश को लौट जाँय। यदि इस देश में रहना चाहें तो २१ पौंड अर्थात् ३१५) रुपये सर्कार को वार्षिक कर दिया करें। इस प्रस्ताव पर भारत के लोकमत ने घोर विरोध किया। भारत सर्कार ने भी इस अद्भुत प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। देश भर में हलचल मच गई। यहां के गोरों की स्वार्थ बुद्धि का पता सब को लग गया। भारतजनता के विरोध करने पर भी यहां के गोरे प्रवासियों ने अपनी हठ नहीं छोड़ी और भारतसर्कार को इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के लिये बाध्य किया। निदान भारत सर्कार की सलाह से वार्षिक कर घटा कर २१ पौंड की जगह ३ पौंड कर दिया गया।

सन् १८९५ की धारा १७ में यह क़ायदा रक्खा गया कि भविष्य में जो भारतीय मजूर शर्त में बंध कर इस देश में आवें वे प्रतिवर्ष ३ पौंड सर्कार को दिया करें अथवा स्वदेश को चले जांय।

अहा! क्या ही विचित्र क़ायदा है। सन् १८६० की १६वीं नवम्बर को भारतवासियों का इस देश में पहिला आगमन हुआ। काम करने की अवधि उस समय केवल तीन ही वर्ष की थी। अवधि समाप्ति होने पर उनको यहां बसने का पूरा अधिकार था। यहाँ तक कि गोरे लोग उनको भूमि देकर उत्साहित करते थे। इस प्रकार शर्तबन्धी मजूरी का क्रम सन् १८६६ तक क़ायम रहा। इसके बाद यह प्रथा कुछ समय के लिये बन्द रही। इस प्रथा के बन्द होने से नेटाल के व्यवसाय में भारी धक्का लगा। इसलिये सन् १८७४ में यह रीति फिर जारी की गई। १५ वर्ष तक नेटाल की ख़ूब उन्नति हुई। सन् १८८७ में विरोध की आवाज़ फिर सुन पड़ी और एक कमीशन निर्वाचित किया गया कि भारतीय मजूरों का आना क्यों न बन्द किया जाय। कमीशन ने जांच पड़ताल कर अपना मत प्रकट किया कि भारतीय मजूरों के बिना नेटाल का काम न चल सकेगा। निदान यह प्रथा ज्यों की त्यों क़ायम रही।

सन् १८९५ में फिर विरोध की आग धधक उठी और इसी साल के इमीग्रेशन क़ायदे की १७वीं धारा में यह नियम रक्खा गया कि भारतीय मजूर पाँच वर्ष की ग़ुलामी खलास होने पर या तो स्वदेश को प्रस्थान करें अथवा ४५) रुपये का वार्षिक कर दें। उस समय के भारत के गवर्नर जनरल लार्ड इल्गिन कर लगाने के प्रस्ताव पर सहमत हो गये पर उन्होंने दया कर यह निश्चित करा लिया था कि यदि कोई भारतवासी कर देने में असमर्थ हो तो उस पर फ़ौजदारी अभियोग न चलाया जाय। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उस समय स्त्री और बच्चों पर भी कर लगाया जायगा, ऐसा निश्चित नहीं था।

कर का बुरा प्रभाव

इस ख़ूनी कर का भारतीयजनता पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। इस कर के सम्बन्ध में 'लन्दन टायम्स' ने स्पष्ट लिखा था कि यह प्रथा ग़ुलामी के समान है। एक रेडीकल पत्र ने कहा था कि यह भीषण अन्याय है और वृटिश प्रजा के लिये अपमानजनक है। जिस समय यह क़ायदा पास किया गया, उस समय नेटाल में भी कितने ही भले मानुषों ने इसका विरोध किया था। नेटाल कमीशन के एक सदस्य मि० जेम्स आर. सैन्डर्स ने कहा था कि यदि तुम्हारे में कुछ घमण्ड है तो नये मजूरों का आना बन्द कर दो पर जो शर्त की अवधि समाप्ति कर स्वतन्त्रता के अधिकारी हो गये हैं, उनके ऊपर ज़ुल्म करना वास्तव में अत्याचार और अन्याय है।

इस कर के विषय में यह विचारने योग्य बात है कि जिनकी गिरमिट (agreement) की अवधि समाप्त हो गई और यदि वे स्वतन्त्र होकर रहना चाहें तो ३ पौंड वार्षिक कर दें किन्तु वही मजूर यदि गोरे किसान की शर्तबन्धी मजूरी करना स्वीकार करलें तो उन पर यह क़ायदा नहीं लागू हो सकता अर्थात् उनसे यह ३ पौंड वार्षिक का ख़ूनी कर नहीं लिया जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस मजूर की काम करने की अवधि समाप्ति हो गई, उसे ३ पौंड वार्षिक कर देने के भय से फिर से शर्तबन्धी मजूरी करने पर बाध्य होना पड़ा। इसी प्रकार एक के पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे तीसरा गिरमिट देना पड़ा। सारांश यह है कि भारतीय मजूर सदा के लिये ग़ुलामी की बेड़ी में जकड़ दिये गये।

उस समय यह नहीं कहा गया था कि स्त्री और बच्चों पर भी कर लगाया जायगा। पर भारत सर्कार की मञ्जूरी मिल जाने पर स्त्रियों से भी यह कर वसूल होने लगा। यहां तक कि १६ वर्ष से अधिक के बालकों और १३ वर्ष से अधिक की कन्याओं पर भी यह ख़ूनी कर लगाया गया। अनुमान कीजिये कि एक कुटुम्ब में चार प्राणी हैं, एक पुरुष, एक स्त्री, एक बालक और एक कन्या। इन सब को १२ पौंड अर्थात् १८०) रुपये वार्षिक कर देना पड़ता है अर्थात् इन लोगों को १५) रुपये मासिक केवल ख़ूनी कर देना पड़ता है। यहाँ पर बिचारे भारतीय मजूर को २ पौंड अर्थात् ३०) रुपये, अथवा इससे कुछ अधिक वेतन मिलता है। विचार करने की बात है कि एक व्यक्ति का कमा कर अपने परिवार का पालन पोषण करना और सर्कार को वार्षिक कर देना कहां तक सम्भव है। जो स्त्री बिधवा है उसको भी यह कर देना पड़ता है, इस लिये कितनी ही स्त्रियाँ व्यभिचार-पूर्ण कार्य्यों से धन कमा कर सर्कार को वार्षिक कर देने के लिये विवश हुईं और कितने ही पुरुष चोरी आदि दुष्कर्मों में प्रवृत्त हुए। इससे सहज में अनुमान हो सकता है कि भारतवासियों के आचरण पर इस ख़ूनी कर का कैसा बुरा प्रभाव पड़ा। उस समय यह सूचित किया गया था कि जो मजूर कर देने में असमर्थ होगा उस पर फ़ौजदारी का अभियोग नहीं चलाया जायगा पर इस बात का ख़ूब अनादर किया गया। जो कोई यह कर न दे सका उसको पकड़ कर कठिन कारावास का दण्ड दिया गया। स्त्रियाँ भी कर न दे सकने पर जेल में भेजी गईं, यहाँ तक कि बालक और कन्याओं को भी जेल का दण्ड दिया गया।

केवल जेल भोग लेने से मजूर इस कर से मुक्त नहीं हो सकता है प्रत्युत उसे कारावास से मुक्त करते समय यह सूचना दे दी जाती है कि शीघ्र धन उपार्जन कर यह कर भर देना। अन्यथा तुम पकड़ कर फिर जेल के महमान बनाये जाओगे। ऐसे बहुत से अभियोग हुये हैं, जिनमें असहाय, दीन, निर्बल और रोग पीड़ित पुरुष और स्त्रियाँ कर न दे सकने के कारण जेल में भेज दी गई हैं। भारतवासियों को इस कर ने घोर

सङ्कट में डाल रक्खा है। या तो वे भूखों मरें, या घृणित जीवन व्यतीत करें, अथवा फिर से मजूरी का पट्टा लिख दें।

इन दीन हीन भारतीय मजूरों को इस देश में ले आकर ऐसे स्वामियों के अधीन रक्खा जाता है, जिनको चुनने का उनको कोई अधिकार नहीं। जिनके भाव, भाषा, रीति, नीति से वे बिलकुल अनजान होते हैं। ऐसी प्रथा चाहे जिस नाम से पुकारी जाय परन्तु वह सरासर अमानुषी और पाशविक है।

स्वतंत्र भारतीयों की रुकावट

परतन्त्र भारतीय मजूरों को इस देश में बसने से रोकने के लिये ख़ूनी कर लगाया गया, भांति भांति के अन्याचार किये गये पर स्वतन्त्र भारतवासियों को इस देश में प्रवेश करने के लिये अब तक कोई रुकावट नहीं थी। यह बात गोरे अधिवासियों को खटक रही थी। वे स्वतन्त्र भारतवासियों का आगमन रोकने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे। अन्त में इनका मनोरथ सफल हुआ और स्वतन्त्र भारतवासियों के रोकने के लिये क़ायदा बन गया।

सन् १८९७ में स्वतन्त्र भारतवासियों के लिये इमीग्रेशन क़ायदा बनगया इस क़ायदे का अभिप्राय यह था कि अब कोई स्वतन्त्र भारतवासी इस देश में नहीं आने पावे। जो लोग यहां से स्वदेश जाना चाहें, वे इमीग्रशन अमलदार से सनद (Domicile Certificate) लेकर जावें। देश से लौट कर आने पर सनद दिखा कर इस देश में प्रवेश कर सकेंगे। अन्यथा स्वदेश को लौटा दिये जायंगे। इस क़ायदे में एक यह भी धारा है कि जो भारतवासी अंग्रेज़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकेगा, जो अंगल भाषा का पूरा विद्वान होगा उसे अपनी योग्यता प्रमाणित कर देने पर यहाँ रहने का स्वत्व मिलेगा।

इस क़ायदे ने भारतवासियों की बढ़ती में बड़ा भारी धक्का पहुंचाया। नवीन भारतवासियों का आना एकबारगी बन्द हो गया। सन् १९०४ के इमीग्रेशन अमलदार मि० स्मिथ लिखित रिपोर्ट के पढ़ने से विदित होता है कि सन् १९०३ में नेटाल के बन्दर पर सब मिलाकर ६७८३ यात्री रोके गये, उनमें से ३२४४ अंग्रेज़ी राज्य के भारतवासी थे। यह क़ायदा बड़ाही कड़ा है, इसके अमल में अंग्रेज़ी राज्य के भारतवासियों (British Indians) को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। भारतवासी यह नहीं समझ सकते कि अंग्रेज़ी उपनिवेशों में परिश्रम कर खाने कमाने का अवसर नहीं मिलेगा। वे लोग इतनी लम्बी चौड़ी यात्रा करके आते हैं, जहाज़ के महसूल देने में सैकड़ों रुपये ख़रचते हैं कितने ही दूसरों से ऋण लेकर यहां पर आते हैं। जब यहां के बन्दर पर पहुंच जाते हैं तब उनको विदित होता है कि यहां पर स्वतन्त्र भारतवासियों को आने का हक़ नहीं है। सन् १९०३ में सब मिलाकर केवल १८६९ एशियाटिकों को इस देश में आने दिया गया। उनमें २१ चीनी, १ इजिप्टियन, ३८ ग्रीक, ८ सिंघाली, १ सिरियन, ८ टर्क और शेष सब इण्डियन (भारतवासी) थे। सब आये हुए भारतवासियों में १८५ अंग्रेज़ी भाषा के पूरे विद्वान् थे।

इस हिसाब से पता लग सकता है कि भारतवासियों के मार्ग में कैसी रुकावटें डाली गईं। इसके अतिरिक्त नेटाल लायसेंसींग एक्ट बना कर भारतवासियों को व्यापार करने के लिये परवाना देने से रोक दिया गया। इस विचित्र एक्ट से भारतवासियों को लाखों रुपये की हानि हुई। व्यापारियों को सताने का ढङ्ग यह है कि एक दूकान ख़ूब चल रही है, परवाने की अवधि पूरी होगई। नये परवाने के लिये व्यापारी न्यायाधीश के पास गया। वहां उसे कहा जाता है कि तुम

प्रसिद्ध सत्याग्रही श्रीयुत लाल बहादुर सिंह जी। भूतपूर्व सभापति ट्रान्सवाल इन्डियन एसोसियेशन। आपने १९०८ की सत्याग्रह की लड़ाई में ३ बार कारागृह वास किया।
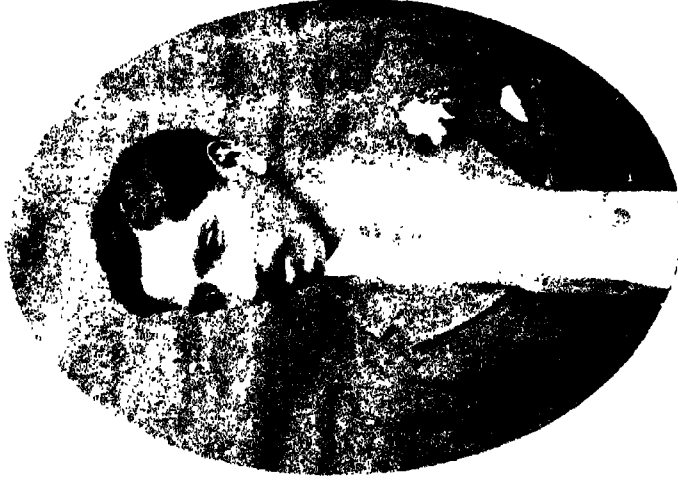
दक्षिण अफ्रिका में जन्मे हुये सत्याग्रहियों में सब से प्रथम जेल जाने वाला नवयुवक बाबू रविकृष्ण तालवन्त सिंह।

स्वर्गीय जयराम सिंह जी वर्म्मा
भूतपूर्व सभापति ट्रान्सवाल इन्डियन ऐसोसियेशन

श्रीयुत पारसी रुस्तम जी।

कट्टर सत्याग्रहियों में से एक। मि. अहमद मुहम्मद काछलिया। ट्रान्सवाल बृटिश इन्डियन ऐसोसियेशन के सभापति।

इमाम अबदुल क़ादिर बावाज़ीर। आप हमीदिया सोसायटी के सभापति रहे थे। आपने बन्दीग्रह के बाहर सत्याग्रह सम्बन्धी बड़ी सहायता की।

अपनी दूकान उठा कर अमुक स्थान पर लेजाओ, नहीं तो तुम्हारा परवाना रद्द कर दिया जायगा।

विवश होकर विचारे को अपनी दूकान को एक स्थान से दूसरी स्थान पर लेजाना पड़ा, ग्राहक टूटे। उस स्थान पर किसी अंग्रेज़ ने दूकान रख ली। खैर, परिश्रम और विश्वास के कारण वह भारतीय व्यापारी जहां गया फिर उसकी दूकान जम गई। बस फिर उसके साथ वही बर्ताव।

प्रतिवर्ष यहां के व्यापारियों की क्रय-विक्रय की पुस्तक की सरकार की ओर से जांच की जाती है। उस पुस्तक में कोई एक साधारण भूल निकालकर परवाना रद्द कर दिया जाता। है इसी प्रकार के कुटिल प्रयत्नों से भारतीयों को इस देश में बसने से रोका जाता है।

मजूरोंका भेजना बन्द

इस प्रकार भारतवासियों के प्रति घृणित बर्ताव होते देख भारत का लोकमत क्षुभित हो गया। भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर अत्याचारकी ओर आकर्षित हुआ। भगवान् भला करें माननीय गोखलेका, इन का कोमल हृदय इस अन्यायसे द्रवीभूत हो गया। अतएव माननीय गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत की न्याय सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि नेटाल में भारतीय मजूरों का भेजना बन्द कर दिया जाय। अधिकांश सभासदों की राय में यह बात उचित ठहरी और बहु-सम्मति से यह प्रस्ताव पास किया गया। निदान भारत सरकार ने यह निश्चित कर दिया कि ता० १ जुलाई सन् १६११ से नेटाल में भारतीय मजूरों का भेजना सदा के लिये बन्द कर दिया जायगा। यह बात सुन कर यहां के गोरे अधिवासियों को आश्चार्य और शोक एक ही साथ उत्पन्न हुआ। आश्चर्य इस लिये हुआ कि भारत को गोरी सरकार ने हमारे विरुद्ध ऐसा क़ायदा क्यों बनाया और शोक इस बात पर हुआ कि नेटाल में भारतीय मजूरों का आना बन्द हो जाने से ऊख की खेती की बड़ी भारी हानि होगी।

इन लोगों ने सभा करके यूनियन सरकार को ख़बर दी कि आप भारत सरकार से कह कर अवधि का कुछ समय बढ़वा दें। इनके आदेशानुसार औपनिवेशिक सरकार ने भारत सरकार को सूचना दी कि आप कृपा कर अवधि का कुछ समय बढ़ा दें। भारत सरकार की ओर से उत्तर दिया गया कि आप पहिली जुलाई का दिन स्मरण रखें और अब एक दिन भी नहीं बढ़ाया जा सकता है। इस मुंह तोड़ उत्तर से विवश होकर यहां की गोरी कम्पनियों ने अपने वशवर्ती कुछ मजूरों को भारत भेजा कि तुम लोग भारत से कुछ मजूर इकट्ठा कर लाओ। जो लोग मद्रास की ओर गये थे उनको सहज ही में ५०० मजूर मिल गये और उनको लेकर वे चले आये, पर जो कलकत्ते की ओर मजूर एकट्ठा करने गये थे, भावी की प्रबलता से उनको मजूर मिलने में कुछ विलम्ब हुआ। इससे मजूर ले जाने के लिये जो स्टीमर कलकत्ते के बन्दर पर खड़ा था वह विलायत को प्रस्थान कर गया। इधर कलकत्ते के डीपो में नेटाल आने के लिये ५०० मजूर प्रस्तुत हो गये। निदान जब यह समाचार यहां के गोरे किसानों को मिला तो इन लोगों ने तत्काल कलकत्ते के एजेन्ट को सूचना दी कि भाड़े पर कोई स्टीमर ठीक कर मजूरों को भेज दो। तदनुसार एजेन्ट ने एक जहाज़ भाड़े पर ठीक किया पर भारत सरकार ने उस जहाज़ का निरीक्षण कर मजूर ले जाने के अयोग्य ठहराया।

अब तो यहां की गोरी कम्पनी वाले बड़े चक्कर में पड़े, शिर खुजलाने लगे। सोचते सोचते इनको एक उपाय सूझ पड़ा कि कलकत्ते से रेलगाड़ी पर मजूरों को तूतीकारिन लाया जाय और

वहां से आगबोट में चढ़ा कर लंका में उतारे जांय, पीछे से हमारी स्टीमर आकर वहां से मजूरों को नेटाल में ले आवेगी। इस बात की सूचना भारतीय येजन्ट को दी गई। उसने मजूरों को रेलगाड़ी में बैठा कर तूतीकोरन ले जाने का प्रबन्ध किया। पर वहां भी भारत सरकार बीच में कूद पड़ी और साफ़ साफ़ कह दिया कि रेलगाड़ी में हम मजूर कदापि न जाने देंगे। चलो, झगड़ा टूटा, यहां आने के लिये मजूर सदा के लिये रोक दिये गये। यहां के गोरे हाथ मलमल कर पछताते रह गये। नेटाल के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'मरक्युरी' ने बड़े शोक के साथ लिखा था कि, बस अब भारतीय मजूरों का आना सदा बन्द हो गया।

नये मजूरों का आना बन्द हो जाने से पुराने मजूरों की कुछ दशा सुधर गई। स्वतन्त्र मजूरों को गोरे लोग अधिक वेतन देकर रखते हैं और पहिले से बर्ताव भी कुछ अच्छा करते हैं। इस उदारता के लिये माननीय गोखले और भारत सरकार को जितना धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है।

तृतीय खण्ड

ट्रांसवाल में भारतवासी

नेटाल से शर्तबन्धी मजूरी की अवधि पूरी कर कतिपय भारतवासी स्वतंत्ररूप से ट्रांसवाल में आ बसे। यहां के निवासियों की अपेक्षा भारतवासी अधिक बुद्धिमान थे। यहां आकर भारतवासियों ने भाँति भाँति के व्यापार करना आरम्भ किया। इससे चिढ़ कर सन् १८८५ में ट्रांसवाल के बोरों ने सुनहरी क़ायदा (Golden law) बनाया कि ट्रांसवाल में भारतवासी भूमि के स्वामी नहीं बन सकते। इस क़ायदे ने भारतवासियों की जड़ पर कुठाराघात कर दिया, पर इससे विचलित न होकर भारतवासी अपनी उन्नति करने में कटिबद्ध रहे। इन लोगों ने ट्रांसवाल के सुप्रसिद्ध नगर जोहाँसबर्ग के समीपवर्ती स्थान ९९ वर्ष की शर्त पर लेकर उसमें घर बनाया, इसके सिवा प्रीटोरिया, पोचफ्सट्रम, जर्मिस्टन आदि नगरों में भी भारतवासी फैल गये और ट्रांसवाल के प्रायः सब छोटे छोटे व्यापार इनके हाथ में आ गये। देश के धन का एक बड़ा हिस्सा भी इनके पास आ गया। भारतवासियों के कई एक अच्छे गुण ही इनके दारुण दुःख की अधिकता के कारण बन गये। सन् १८८५ से ट्रांसवाल के भारतवासियों पर एक से एक बड़ी आपत्तियाँ आने लगीं। यह सब कष्ट और कठिनाइयां बोअर राज्य के कर्म्मचारियों की बुद्धि का प्रभाव थीं। यह लोग भारतवासियों की रीति नीति से अनजान रहकर मनमाना अन्याय करते थे। इस शोचनीय समय पर भी पूरा पूरा विश्वास था कि समयानुसार बोर राज्य में सभ्यता का प्रचार होने से भारतवासियों का दुःख दूर हो जायगा। यह भी सब को निश्चय था कि भारतभूमि पर अंग्रेज़ सरकार का राज्याधिकार है, इसलिये हमारे दुख का सन्देशा सुनने पर भारत सरकार उसे निवारण करने का उपाय करेगी। बोर सरकार के अतिशय घृणित अत्याचार पर बृटिश राजदूत सर कोनिङ्गम ग्रीन निर्बल भारतवासियों की निरन्तर सहायता करते थे पर बोर सरकार उनके कहने की कुछ परवाह नहीं करती थी। इसलिये विवश होकर मि० ग्रीन ने भारतवासियों की रक्षा करने के लिये राजराजेश्वरी विक्टोरिया को डचों के साथ युद्ध करने की सलाह दी।

बोर युद्ध में भारतवासी

भारत की वीरता प्रसिद्ध ही है। यद्यपि अंग्रेज़ी उपनिवेश नेटाल और केप कालोनी में युद्ध के पहिले प्रवासी भारतीयों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था तथापि युद्धारम्भ होते ही यहां के भारतवासी अंग्रेज़ों के पक्ष में जान देने के लिये तय्यार हो गये। किन्तु गोरों की लड़ाई में काले नहीं शामिल हो सकते थे, इसलिये अपने सम्राट की जय के लिये युद्ध करने का अवसर यहां के भारतवासियों को नहीं दिया गया। भारत के कितने ही रजवाड़े इस युद्ध में आकर अपने बाहुबल का परिचय देना चाहते थे, पर उन्हें अपने उत्साह को रोकना पड़ा। तो भी यहां के भारतवासियों ने घायल सिपाहियों की सेवा करने का विचार किया। पहिले तो अंग्रेज़ों ने यह सहायता लेना भी अस्वीकार किया, किन्तु भारतवासी बार बार प्रार्थना करते रहे कि और नहीं तो केवल आहत सैनिकों की सेवा करने का ही हमें अवसर

दीजिये। क्या इस संसार में कोई भी ऐसी आधीन जाति है जो राजभक्ति में भारतवासियों की समानता कर सकती हो? एक आधीन जाति बार बार फटकारे जाने पर भी राजकीय जाति की सेवा करने के लिये पुनः पुनः प्रार्थना करती है! क्या इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण मिल सकता है?

अन्त में अंग्रेज़ सरकार को इनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी, आज्ञा पाते ही भारतवासियों के दल बन गये। इनके नेता लोकमान्य गान्धी नियत हुए। यह वीर रणक्षेत्र में तोपों की गड़गड़ाहट, बन्दूकों की सनसनाहट और तलवारों की चमचमाहट के बीच में जाकर आहत सैनिकों को उठा लाने और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने। भारतवासियों ने इस युद्ध में अंग्रेज़ सरकार की जो सेवा की थी उसकी प्रशंसा प्रधान सेनापति लार्ड रावर्ट् स से लेकर अनेक राजनीतिज्ञों तक ने की थी। डरबन से प्रकाशित होनेवाला दैनिकपत्र 'नेटाल एडवरटाइज़र' जो युद्ध के पहिले भारतवासियों का कट्टर दुश्मन था, युद्ध में इनकी सहायता देख कर पुरानी शत्रुता भूल गया। उसने अपने एक अङ्क में लिखा था कि 'आखिर तो भारतवासी साम्राज्य की ही सन्तान हैं। बृटिश साम्राज्य इनका यह आत्मसमर्पण कभी नहीं भूलेगा'। अस्तु—

भारत के रजवाड़ों ने जब देखा कि युद्धक्षेत्र में जाकर सेवा करना असम्भव है तब उन्होंने अंग्रेज़ सिपाहियों की अन्य प्रकार से सहायता की। भारत से इस युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायतार्थ ८००० गोरे अफ़सर और सैनिक, सेवा के लिये ३००० भारतवासी, ६७०० घोड़े, १६०० खच्चर, और टट्टू, १००००० गरम कोट, ४०००० खाना रखने की थैलियां, ४५००० टोपी, ७०००० जोड़े जूते, २६५० ज़ीन, ४६० कारीगर और २६५० भिश्ती भेजे गये थे। इसके अतिरिक्त २६५० घोड़े, देशी घुड़सवार सेना और राजाओं की सेना से भेजे गये। निदान सन् १९०२ की ३१ वीं मई को ट्रांसवाल अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गया।

भारतीयों का हर्ष और विषाद

ट्रांसवाल में अंग्रेज़ी राज्य हो जाने पर भारतवासियों के हर्ष की सीमा न रही, वे फूले अंग न समाते थे। वे आशारूपी सरोवर में गोता लगा कर मुदित हो रहे थे। भारतवासियों को यह दृढ़ निश्चय था कि अब हमारे दुःखों का अन्त हो जायगा। यह विचार करना स्वाभाविक था कि युद्ध में भारतवासियों ने अंग्रेज़ सरकार के लिए आत्मसमर्पण किया है इसलिये बृटिश सरकार हमारे दुखों को दूर करने के लिये भरपूर प्रयत्न करेगी। वे प्रेमाकर्षण में निमग्न हो भांति २ के विचार कर रहे थे कि अब हम लोग सुख-शांति से रह कर आनन्द करेंगे। इस प्रकार उनके हृदय में हर्ष का प्रवाह बह रहा था। पर शोक के साथ लिखना पड़ता है कि भारतीयों की आशा निराशा में परिणत हो गई। अंग्रेज़ कर्मचारी भी बोरों का अनुकरण करने लगे। वे लोग बोरों के समान भारतीयों पर अत्याचार करने लगे। अथवा यों कहिये, कि बोरों के राज्य में भारतवासियों को जो दुख सहना पड़ता था, अंग्रेज़ों के शासनकाल में वह अधिक त्रासदायक हो गया। जो दुख बोरों के समय नहीं था वह दुख बृटिश राजत्वकाल में दिया जाने लगा। भारतवासियों के हकों पर अतिशय आक्रमण होने लगे, इससे भारतीयों की आशा भङ्ग होकर निराशा का समय आ गया। उस समय त्राहि त्राहि पुकारने के लिये एक 'ट्रांसवाल इण्डियन एसोसियेशन' नामक सभा स्थापित की गई। जिसके सभापति श्रीयुत जयराम सिंह जी वर्मा निर्वाचित किये गये तथा लालबहादुर सिंह, बद्री, आत्माराम व्यास, डोमन, बल्लभराम भीना भाई देसाई, पी. के. नायडू आदि ५२ सदस्य नियत

किये गये। भारतीयों के हक़ों की रक्षा करना ही इस सभा का प्रधान उद्देश्य था।

भारतीय प्रवास का हरण

सन् १९०३ के आरम्भ में जोहांसबर्ग की कचहरीपट्टी (Municipality) ने इस अभिप्राय का एक विज्ञापन निकाला कि जहां पर भारतवासी बसे हैं वह स्थान ले लिया जायगा और उस स्थान पर बाज़ार बसाया जायगा। इस समाचार के फैलतेही भारतीय जनता में घोर कोलाहल मच गया, सब लोग हाय हाय करने लगे। जिस भूमि को बोर सरकार ने ९९ वर्ष की शर्त लिख कर भारतवासियों को दे दिया था उस भूमि को अंग्रेज़ सरकार ने अवधि के बीच में ही ले लेना चाहा। यह क्या थोड़े ज़ुल्म की बात है। इससे खिन्न होकर भारतवासियों ने न्यायालय का द्वार खटखटाया, हज़ारों रुपये खर्च किये, बहुतरा प्रयत्न किया, पर भारतवासियों को न्याय कहां मिलनेवाला था। भारतवासियों ने लोकमान्य गान्धी के द्वारा सरकार के इस अन्यायपूर्ण वर्ताव का घोर प्रतिवाद किया, बड़े बड़े वकील वारिस्टरों को लेकर अदालती लड़ाई आरम्भ की गई। साधारण राजपुरुषों से लेकर उच्च पदाधिकारियों तक अपने दुख की आवाज़ पहुंचाई गई, यहां तक कि विलायत की पार्लामेन्ट में भी अपने कष्टों का संदेशा भेजा गया। पर काले या पीले चमड़े वालों की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया गया, सब प्रयत्न निष्फल हुये और अन्त में भारतीय प्रवास अंग्रेज़ी बस्ती में मिला दिया गया तथा भूमि का चतुर्थांश मूल्य देकर भारतवासियों को सन्तुष्ट किया गया।

भारतवासियों से ज़मीन लेकर जोहांसबर्ग कचहरीपट्टी की सहयोगिनी स्वास्थ्य रक्षिणी सभा (Public Health Committee) ने अपना अभिप्राय प्रकट किया कि जहां पर काफ़िरों की बस्ती है, वह स्थान भारतवासियों को दिया जायगा। किन्तु वहां के गोरे अधिवासियों ने उस सभा के अधिकारियों को प्रेरणा की कि काफ़िरों के स्थान पर भारतीयों को नहीं बसना चाहिये, वह स्थान गोरों के बसने योग्य है। इस विचार से स्वास्थ्य रक्षिणी सभा सहमत होगई और उसने अपना पूर्व मत वापस ले लिया।

यह उपनिवेश गोराङ्गों का है। इनकी इच्छानुकूल सभा को काम करना पड़ता है। जिस स्थान पर उक्त सभा ने भारतवासियों को बसाना निश्चित किया था वह स्थान बड़े डाक घर से ५॥ मील की दूरी पर है। जिस क़ायदे के अनुसार भारतीयों की बस्ती छीन ली गई थी उसी क़ायदे के अनुसार पुराने प्रवास के निकट ही नई बस्ती होनी चाहिये थी। पुरानी बस्ती बड़े डाक घर से केवल दो मील की दूरी पर थी। इस विषय पर भारतवासियों ने ख़ूब चिल्लाहट की पर नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। यहां पर भारतवासी अन्त्यजों की भांति अलग बसाये जाते हैं। इस समय भारतवासी जहां जहां बसे हैं उनको केवल सरकारी सूचना मिलने पर २४ घन्टे में ज़मीन ख़ाली कर देना पड़ेगी।

जोहांसबर्ग में महामारी

सन् १९०४ के आरम्भ में जोहांसबर्ग के आस पास मूसलधार वृष्टि हुई। बरसात अधिक होने से नगर का कूड़ा करकट सड़कर दुर्गन्ध फैली और भारतीयों की बस्ती में प्लेग महारानी का आगमन हुआ। इस बीमारी से तड़प तड़प कर कितनेही मनुष्य मरने लगे, थोड़ेही काल में ५७ भारतवासी इस रोग से छटपटाकर मर गये। इस अनर्थ को रोकने के लिये लो० गान्धी, डॉ० मदनजीत, डाक्टर गोडफ़े, बाबू जयराम सिंह आदि सज्जनोंने एक अस्पताल खोलकर रोग पीड़ित भारत-

वासियों को बिना मूल्य औषधि देने का प्रबन्ध किया तथा तरह तरह से शुश्रूषा करने लगे। इसके बाद इस रोग का वृत्तान्त सामयिक समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ और सरकार को इसकी सूचना दी गई। सरकार ने तत्कालही भारत-वासियों की बस्ती पर चौकी पहरे का पक्का प्रबन्ध कर दिया कि इस बस्ती से कोई बाहर न आने पावे।

सरकार की इस करतूत से भारतवासियों का प्रायः सब व्यापार बन्द होगया। वह निरुद्यमी होकर चुप चाप बैठ गये। इस अवसर पर लोकमान्य गान्धी ने सरकार को प्रेरणा कर भारतवासियों को खाने पीने की रसद दिलाई। थोड़े दिन के बाद भारतवासियों को वहां से क्लीप्स्पुट नामक स्थान में भेजा गया। यहां पर भारतवासियों को एक महीना कारनटायन में रहना पड़ा। भारतीयों को रहने के लिये छोटे छोटे तम्बू डाले गये थे। इस स्थान पर कोई भी भारतवासी रोग पीड़ित नहीं हुआ। इसलिये भारतवासियों को यहां से छुटकारा मिला। इस बन्धन से मुक्त होने पर बहुतेरे ट्रांसवाल में ही रह गये और कई एक नेटाल तथा भारत को प्रस्थान कर गये। नेटाल जानेवालों को पांच दिन चार्लिस्टन कारनटायन में भी रहना पड़ा था।

भारतवासियों को निकालकर उनकी बस्ती फूंक दी गई। ट्रांसवाल इण्डियन एसोसियेशन के के सभापति श्रीयुत जयराम सिंह वम्मा स्वदेश को प्रस्थित हुए, उनको ट्रांसवाल की भारत जनता की ओर से मानपत्र दिया गया और उनके स्थान पर श्रीयुत लालबहादुर सिंह सभापति बनाये गये।

सन् १९०८ का एशियाटिक एक्ट

सन् १९०८ में एशिया वासियों के लिये एक अपमानजनक क़ायदा बनाया गया। इस क़ायदे का उद्देश्य यह था कि प्रत्येक भारतवासी को अपने नाम को रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा। साथही दशों अंगुली का अलग अलग और चार चार अंगुली के फिर एक साथ, सब मिलाकर अठारह अंगुली का छाप देना होगा। इस क़ायदे में खुल्लमखुल्ला भारतीयों के लिये 'कुली' शब्द का उपयोग किया गया। चोर, बदमाश और आततायिओं के साथ जो बर्ताव किया जाता है, ठीक उसी प्रकार का व्यवहार ट्रांसवाल में भारतवासियों के साथ किया जाने लगा। यहां की सरकार ने पुराने भारतीयों को अपने नाम से रजिस्ट्री कराने की आज्ञा दी, साथही नवीन भारतवासियों का देश में बसना बन्द कर दिया। यहां के गोरे प्रवासी भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार करते आते थे वह पहिले के अनुसार चालू था, पर जब उन्होंने देखा कि यह लोग कष्ट सहकर भी यहां की भूमि खाली नहीं करना चाहते तब इन लोगों ने एक नया क़ायदा गढ़कर कड़ाई को सीमा से बाहर करना चाहा।

यहां पर बहुत दिनों से भारतवासी अपनी जड़ जमा चुके थे, थोड़ा नफ़ा लेकर सस्ते में माल बेचते थे, गोरे व्यवसायी फ़ज़ूल खर्ची करने के कारण इनकी प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे। नये क़ायदे में उनके व्यापार रोकने का भी प्रयत्न किया गया। अहा! क्याही विचित्र न्यायी व्यवस्था है! क्या संसार के और किसी भाग में इस प्रकार का क़ायदा मिल सकता है। कहां बोर युद्ध के समय कहा गया था कि भारतवासियों के दुःख दूर करने के लिये ही बोरों के साथ महा संग्राम हो रहा है और कहां युद्ध समाप्त होजाने तथा बृटिश सरकार के राज्याधिकारी हो जाने पर दुःख दूर करने के बदले में और भी कड़ाई में अधिकाई होने लगी। यहां की सरकार ने नये नये क़ायदे बनाकर भारतवासियों का मार्ग

कण्टकपूर्ण कर दिया, इस पर तरह तरह के अन्याय होने लगे।

इस क़ायदे के अनुसार १६ वर्ष से अधिक की अवस्थावाले भारतवासियों को रजिस्टर्ड होना पड़ेगा और 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन सार्टीफिकेट नामक एक परवाना हमेशा अपने पास रखना होगा और सिपाही के पूछने पर तत्काल परवाना दिखाना पड़ेगा। इस क़ायदे के भङ्ग करनेवालों को भारी से भारी दण्ड दिया जायगा।

विलायत में प्रतिनिधि

यह क़ायदा सन् १९०७ में बना था और सन् १९०८ से यह अमल में आने वाला था। सन् १९०७ में क़ायदा बना कर बादशाही मंजूरी के लिये विलायत भेजा गया। उस समय यहां के भारतवासियों ने विलायत में प्रतिनिधि भेज कर अपने भाग्य का फ़ैसला करना चाहा। यहां के हिन्दुओं की ओर से मो० गान्धी और मुसलमानों की ओर से मि० अली भेजे गये। यह लोग विलायत में आकर भारत सचिव और औपनिवेशिक सचिव लार्ड एलगीन से मिले। सर हेनरी काटन आदि पार्लामेन्ट के सदस्य और भारतहितैषी अंग्रेज़ों ने इनके कार्य्य के प्रति सहानुभूति प्रकट की। इङ्गलेन्ड के समाचारपत्रों ने भारतियों के दुख दूर करने के लिये सरकार को सलाह दी। स्वयं सम्राट एडवर्ड ने भी उस समय क़ायदे की प्रतिलिपि पर हस्ताक्षर करना मुलतवी रखा, इससे आशा होती थी कि कदाचित भारतवासियों का भाग्य किसी अंश में लड़ जाय। मजूर पक्ष के सदस्य (Labourel members) भारतीयों के कष्ट निवारण के लिये भरपूर चेष्टा करने लगे। इन्होंने सरकार को खुल्लमखुल्ला सलाह दी कि कालोनियन गोरों द्वारा भारतवासियों पर होते हुए अत्याचारों को शीघ्र रोकने का प्रयत्न करना चाहिये।

दक्षिण आफ्रिका के भारतवासी तो बहुत कुछ निराश हो गये थे किन्तु एक बार विलायत में प्रतिनिधि भेज कर अपनी दुख भरी कहानी वहां के अधिकारियों को सुनाना बाक़ी था, उसे भी इन्होंने कर देखना चाहा। इस बार कुछ सफलता के लक्षण दीख पड़ते थे। जब भारतवासियों के प्रतिनिधि भारत सचिव लार्ड मार्ले से मिले तब भारत सचिव ने प्रतिनिधियों के साथ सहानुभूति दिखाते हुये क़ायदे की प्रतिलिपि की कड़े शब्दों में आलोचना की। मजूर पक्ष के ६० सदस्यों ने एक सभा कर इस क़ायदे के विरुद्ध में प्रस्ताव पास किये और सम्राट की सेवा मे निवेदन किया कि इस अन्यायपूर्ण क़ायदे के मस्विदे पर हस्ताक्षर करना मुलतवी रखें, इसके अतिरिक्त क़ायदे में उचित संशोधन करने के लिये भी मजूर पक्ष के सदस्यों की एक सभा नियत हुई। उधर इस प्रकार का घोर आन्दोलन मचा हुआ था और इधर भारतवासियों के अनुकूल विलायत में आन्दोलन होते देख कर गोरे प्रवासियों के पेट में खलबली पड़ गई। वे इस महत्कार्य्य में विघ्न डालने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करने लगे। जब औपनिवेशिक मन्त्री लार्ड एलगिन की सेवा में भारतवासियों के प्रतिनिधि गये तब उन्हों प्रतिनिधियों के साथ सहानुभूति दिखाते हुये एक ऐसी आश्चर्य जनक बात कही कि जिससे डेपुटेशन के सभ्य चौंक पड़े। माननीय एलगीन ने कहा कि 'मुझे प्रवासी भारतवासियों का आज ही एक तार मिला है जिसमें कहा गया है कि हम लोग डेपुटेशन के सदस्यों से सहमत नहीं है, हम उनके साथ ज़रा भी सहानुभूति नहीं रखते हैं।' अवश्य ही यह बात जैसी आश्चर्यजनक है वैसी ही अविश्वास योग्य भी है। जब दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों के साथ अन्याय का होना निर्विवाद सिद्ध है तो उसे दूर करने में मत भेद का होना कदापि सम्भव नहीं है। किसी नीच

पुरुष का यह दुष्कार्य्य हो तो आश्चर्य नहीं। विशेषतः जिनको भारतीयों का रहना शूल की तरह खटक रहा है, यदि उन्हीं लोगों का यह कर्तव्य हो तो इसमें सन्देह ही क्या है। अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि लार्ड एलगीन के समान अनुभवी अधिकारी ने कैसे इस जाली ख़बर पर विश्वास कर लिया। ऐसी तुच्छ बातों में मन को बहकाना बुद्धिमानी नहीं है।

आन्दोलन का प्रस्ताव

विलायत में प्रतिनिधि भेजे गये, बहुतेरी प्रार्थना की गई पर सब निष्फल हुई। अन्त में क़ायदे की प्रतिलिपि पर सम्राट ने स्वीकृति दे दी। इस बार यह प्रमाणित हो गया कि बृटिश सरकार को भारतवासियों की अपेक्षा औपनिवेशिक गोरों से अधिक प्रेम है। जब भारतीयों की प्रार्थना पर ध्यान न देकर क़ायदा पास कर दिया गया तब भारतवासियों ने इस क़ायदे के विरोध करने का प्रस्ताव पास किया। इन लोगों ने दृढ़ निश्चय किया कि चाहे चन्द्र और सूर्य्य अपने स्वाभाविक स्थान को त्याग दें पर हम लोग अपनी प्रतिज्ञा से विमुख न होंगे और इस अपमानकारी क़ायदे को कदापि न मानेंगे। यदि इसके लिये हमें जेल जाना पड़े तो बहुत अच्छा है पर भारत सरीखी मातृभूमि का नाम डुबाना उचित नहीं। इस प्रकार इन लोगों को अपने मान अपमान का ख्याल हुआ। वह दृढ़तापूर्वक इस क़ायदे के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। वह विचार करते थे कि क्या ऐसी दृढ़ता और मनुष्यत्व दिखाने पर अंग्रेज़ी जाति के ऊपर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। क्या वे अपने को इतना हीन सिद्ध करेंगे कि किसी जाति के मनुष्यत्व को आदर की दृष्टि से भी न देखें। ख़ैर, इस बार की जागृति से अंग्रेज़ जाति की राजनैतिक परीक्षा हो जायगी। नेटाल और ट्रांसवाल के भिन्न २ नगरों में भारतीयों ने सभा कर इस क़ायदे के विरुद्ध आन्दोलन करने का प्रस्ताव पास किया। डरबन सभा में साफ़ साफ़ कहा गया कि जो इस प्रतिज्ञा पर अटल न रहेंगे वह मानों करोड़ों भारतवासियों की नाककाटने वाले और जननी जन्मभूमि के नाम पर धब्बा लगानेवाले समझे जायंगे। यदि अन्याय से जेल दी जाय तो जेल को महल समझना होगा और अपनी इज़्ज़त आबरू पर जान को क़ुर्बान करना होगा। हम लोगों पर भयानक अत्याचार होता है। भारतीयों को दूने दाम पर भी ज़मीन नहीं मिलती, मालगुज़ारी देने और बृटिश इण्डियन होने पर भी हक़ नहीं मिलता। यह अन्याय नहीं तो क्या है? ट्रांसवाल के भारतीयों के लिये सबसे अच्छी जेल ही है। यह अपमान साधारण नहीं, भारतीय डाक्टरों को और वारिस्टरों को भी दश अंगुल का छाप देना होगा। अंग्रेज़ी झण्डे की ओर इशारा करके कहा गया कि सन् १८५७ से हम लोग इस झण्डे के नीचे आये हैं। हमारी प्रतिष्ठा और मानमर्यादा की रक्षा करने का बृटिश सरकार ने वचन दिया था, उस वचन को पालनेवाले आज कहां हैं। क्या इस क़ायदे को मान कर हम अपने को हीन सिद्ध करेंगे। संसार में आज तक किसी भी सम्राट् ने ऐसा अयोग्य क़ायदा न बनाया था। कुछ कविता भी इस सभा में गाई गई :—

अगर ग़फ़लत से अब तक कुछ नहीं किया ज़ालिम।
तो उठ ख्वाब गिरां से चाक आइन्दा न हो काहिल॥
बढ़े जाते हैं साथी हम सफ़र, नज़दीक है मंज़िल।
ये फ़ुरसत भी ग़नीमत है अगर करना है कुछ हासिल॥
उलुल अज़्माने दानिशमन्द जब करने पै आते हैं।
समन्दर फाड़ते हैं कोह से दरिया बहाते हैं॥

सन्धि की चेष्टा

जब भारतवासी इस प्रकार घोर आन्दोलन करने लगे तब ट्रांसवाल सरकार की आंखें खुलीं

स्वर्गीय एस. नागापन

आप जोहान्सवर्ग की जेल से छूटने के पश्चात् मृत्यु का ग्रास बने ।

स्वर्गीय नारायण स्वामी

आप सत्याग्रही होने के कारण दक्षिण अफ्रिका से निकाल दिये गये और एक बन्दर से दूसरे बन्दर तक खदेड़े गये थे । अन्त में आप ने 'डेल गोआ बे' पर शरीर त्याग दिया ।

मि० बद्री अहीर

भूत पूर्व उपसभापति 'ट्रांसवाल इन्डियन ऐसोसिएशन' भारतीय कट्टर सत्याग्रही ।

स्वर्गीय हरबतसिंह

एक भारतीय वीर । डरबन की जेल में स्वर्गधाम को पधारे ।

Onkar Press, Allahabad

विलायत में भारतीय प्रतिनिधि
महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी
(सन १९०७)

और वह सन्धि करने के लिये मीठी मीठी बातें करने लगी। उस समय इस शर्त पर सुलह हुई कि भारतवासी प्रसन्नतापूर्वक रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करावें और ट्रांसवाल सरकार इस क़ायदे को रद्द कर डाले। जब क़ायदे में उचित संशोधन करने को कहा गया तब कतिपय भारत-वासियों ने सन्तुष्ट होकर रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करा लिया। भारतीयों ने इस शर्त पर नाम की रजिस्टरी करा ली कि ट्रांसवाल सरकार इस क़ायदे को रद्द कर डालेगी। पर सरकार ने इस क़ायदे में कुछ भी फेरफार न किया बल्कि कहने लगी कि इस क़रार पर सन्धि ही नहीं हुई है। जब भारतवासियों को यह ज्ञात हुआ कि ट्रांसवाल सरकार का यह बर्ताव विश्वासघात का है तब वह फिर क्षुब्ध हो गये। इतने पर भी तुर्रा यह कि ट्रांसवाल की पार्लीमेंट में जो नवीन क़ायदे की प्रतिलिपि पेश हुई उसमें स्पष्ट कहा गया कि १० मई सन् १९०८ के पहिले जिन लोगों ने प्रसन्नता पूर्वक नाम दर्ज करा लिये हैं, केवल उन्हीं लोगों को व्यापार करने तथा चल फिर कर फेरी वालों को रोज़गार करने का परवाना मिलेगा। जो बिना परवाना के देश में व्यापार करेंगे उन्हें ४०० पौन्ड अर्थात् ६००० रुपये अर्थदण्ड अथवा दो वर्ष कठिन कारागार भोगना पड़ेगा। प्रथम विश्वासघात और उस पर भी 'जले के ऊपर नमक' वाली कहावत के अनुसार इस क़ायदे के पास होने ही लोकमत और भी अधिक चिढ़ गया। जोहांसवर्ग, प्रेटोरिया आदि नगरों में सार्वजनिक सभायें हुईं और सर्वानुमति से यह निश्चय किया गया कि रजिस्टर में नाम कदापि न दर्ज कराये जांय। इतना ही नहीं प्रत्युत सहस्रों भारतीयों ने भरी सभा में अपनी अपनी सनदों को होली बनाकर उसमें जला दिया। १००० भारतीयों ने सभा कर सरकार से निवेदन किया कि हम सरकार के बनाये हुए सन्धिपत्र के नियमों को स्वीकार नहीं करते।

सत्याग्रह की लड़ाई

जब भारतवासी फिर नये जोश से आन्दोलन करने लगे तब सरकार ने नेता और छोटे मोटे लोगों को पकड़ कर जेल में भेजना आरम्भ कर दिया। नये क़ायदे के अनुसार देशनिकाले की आज्ञा भंग करने के अपराध में श्रीयुत हरीलाल गान्धी को एक मास कठिन कारावास का दण्ड मिला। ख़ुद लोकमान्य गान्धी ने कहा कि यदि चुपचाप बैठकर अपने देश बन्धुओं की दुर्दशा देखने की अपेक्षा हमारा समस्त जीवन जेल में बीत जाय तो बहुत ही अच्छा है। जब भारत-वासियों को पकड़ कर देशनिकाले की अन्धा-धुन्धी प्रथा चल निकली तब भारतवासियों ने इस आधुनिक क़ायदे का भंग करने के लिये प्रण किया कि यदि ट्रांसवाल से देशनिकाले का दण्ड मिलेगा तो फिर किसी तरह ट्रांसवाल में घुस कर सज़ा पावेंगे।

पाठक गण! इस प्रकार सत्याग्रह की लड़ाई चला कर भारतीय ट्रांसवाल की सरकार को अपनी निर्भयता और वीरता का परिचय देने लगे। ट्रांसवाल की हलचल ख़ूब ज़ोर शोर पर हुई, प्रवासी भारतवासी जैसा निश्चय कर चुके थे तदनुसार ट्रांसवाल के अमानुषी क़ायदे को जानबूझ कर भंग कर आनन्द से कारावास भोगने और सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पूर्ण करने लगे। मि० रुस्तम जी पारसी, मि० दाऊद मुहम्मद और मि० आंगलिया को पकड़ कर ट्रांसवाल सरकार ने देश से निकाल दिया। साथ ही और भी ११ भारतीय नेताओं को देशनिकाले का दण्ड मिला। इस आज्ञा को भंग करने के लिये यह लोग फिर ट्रांसवाल में घुस आये। इस पर सब को पकड़ कर ट्रांसवाल की सरकार ने तीन तीन मास सपरिश्रम कारावास

का दण्ड दिया। इनमें से ३ सज्जन पहिले स्वयंसेवकों की सेना में अध्यक्ष रह चुके थे। प्रवासी समस्त भारतीयों की इस मामिले में यह राय थी कि ऐसे सुशिक्षित और धनाढ्य पुरुषों को इस प्रकार का दण्ड देना महा अन्याय है। क़ैद में गये हुए देशवासियों के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये ट्रांसवाल और नेटाल के सब गोदाम बन्द किये गये। दरबन, जोहांसबर्ग और प्रिटोरिया में भारतीयों की सार्वजनिक सभायें हुईं और विलायत की सरकार की सेवा में दुःखसूचक तार भेजे गये।

प्रवासी भाईयों के प्रधान नेता श्रीयुत मोहनदास कर्म्मचन्द गान्धी भी पकड़ लिये गये। साथही और भी ५ भारतीय नेता पकड़े गये। यह लोग नेटाल से ट्रांसवाल को जा रहे थे। ट्रांसवाल के हिन्दू, मुसल्मान, क्रस्तान और पारसी दृढ़ता साहस और एकता से प्रचलित आन्दोलन को चलाने लगे। मि० सोराबजी पारसी को देशनिकाले की आज्ञा उल्लंघन करने से एक मास कठिन कारागार का दण्ड हुआ। मुक्त होने पर सरकार ने उन्हें देशनिर्वासन कर दिया, किन्तु वे पुनः ट्रांसवाल में प्रवेश कर सत्याग्रह की शपथ पूरी करने लगे। तब सरकार ने उन्हें फिर पकड़ कर ५० पौण्ड जुर्माना अथवा ३ मास की कड़ी क़ैद की सज़ा देदी। मि० सोराबजी ने अर्थदण्ड न देकर कारागृहवास ही स्वीकार किया।

बृटिश सरकार के लिये रणक्षेत्र में अपना रक्त बहानेवाले तथा प्रसन्नतापूर्वक प्राण तक दे डालनेवाले अनेक पेंशनर भारतीय सिपाही ट्रांसवाल में विद्यमान हैं। इन लोगों ने सर्वानुमत से बृटिश सरकार की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजा कि भारतीयों के विरुद्ध रचा हुआ क़ायदा ज़ुलमी और अन्यायी है, हम लोग इसे कदापि न मानेंगे। हमारे ऊपर यह क़ायदा लगाने की अपेक्षा दक्षिण अफ्रिका की जिस भूमि में हम लोगों ने बृटेन की विजय के लिये रक्त बहाया है उसी स्थान पर खड़ा कर हमलोगों को गोली से मार दिया जाय तो ठीक है। विलायत में लार्ड एम्पथील, सर मचर जी भावनगरी और सौथ अफ्रिकन कमेटी ने भारतीयों के पक्ष में घोर आन्दोलन मचाया। अनेक सभाओं ने भारतीयों का दुःख दूर करने के लिये सरकार को सलाह दी। बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन के प्रमुख सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने वायसराय और भारत सचिव की सेवा में इस आशय का तार भेजा कि—"सुशिक्षित, प्रतिष्ठित और धनाढ्य भारतीयों की—बृटिश प्रजा के नाते—सरकार को सर्वत्र रक्षा करना चाहिये। दक्षिण अफ्रिका में भारतवासियों के प्रति अन्याय होते देख और सुनकर भारत का लोकमत दुःखी, क्षुब्ध और संतप्त होरहा है। अन्य किसी देश में यदि भारतीयों के साथ ऐसा अपमान का बर्ताव होता तो बृटिश सरकार उनके कष्ट निवारण के लिये प्रयत्न करती, पर ख़ुद बृटिश उपनिवेश में उनका कोई सहायक नहीं है। ट्रांसवाल सरकार के इस अनुचित बर्ताव से भारतवासियों के मन पर अत्यन्त घातक परिणाम होता है। इसलिए बृटिश सरकार दोनों तरफ़ से मध्यस्थ बनकर प्रवासी भारतीयों को इन अपमानकारी यातनाओं से मुक्त करदे।"

लन्दन में भारतीयों एक विराट सभा हुई उसमें बङ्गाल के सुप्रसिद्ध श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल ने अपने व्याख्यान में कहा कि "आजकल देशनायक गान्धी महाशय को वीरों की अधीनता में पत्थर फोड़ना पड़ता है, कुछ चिन्ता नहीं, देशसेवा के पथ में कांटे बिखरे हुए हैं। देश के लिये हमें तरह तरह का कष्ट उठाना पड़ेगा। लोकमान्य गान्धी के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है और हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि लो० मान्य गान्धी को सदैव आनन्दित और आरोग्य रखें।"

सत्याग्रह की धूमधाम

स्थान स्थान पर अनेक सभा सोसायटियों ने अपने अपने अधिवेशनकर प्रवासी भाइयों के साथ सहानुभूति प्रकट की पर भारतीयों का कष्ट और भी अधिक बढ़ने लगा। सर वेस्ट रिजवे ने अपना विचार प्रकट किया कि ट्रांसवाल के भारतवासी बड़े बदमाश हैं। यद्यपि उनकी प्रायः सब शिकायतें मिट गई हैं तो भी वे लोग अधिक सुविधायें मिलने की आशा से धूमधाम मचा रहे हैं। 'रूटर' ने भी सूचना दी कि वृटिश सरकार समस्त परिस्थिति को लक्ष्यपूर्वक देखती हुई चुपचाप बैठी है। उसे ऐसी आशा है कि ट्रांसवाल सरकार मामिले का पक्षपात से रहित होकर बुद्धि और उदार मन से अन्तिम निपटारा कर देगी।

औपनिवेशिक गोरों के निष्पक्षपात और औदार्य का भारतीयों को इतना पक्का अनुभव हो गया है कि वृटिश सरकार की इस आशा पर किसी को भी विश्वास न हुआ। दक्षिण अफ्रिका का असन्तोष और धूमधाम ज्यों का त्यों क़ायम रहा, प्रवासी भारतीयों का साहस और दृढ़ता देख कर ट्रांसवाल सरकार बहुत घबराई और फिर सुलह होने की अफ़वाह उड़ी, पर मेल मिलाप की बात निष्फल हुई। नेटाल प्रान्त भी ट्रांसवाल का अनुकरण करने लगा। नेटाल प्रवासी भारतीयों के व्यापार का परवाना रद्द करने के लिये नया क़ायदा बनाया गया, इससे नेटाल में भी असन्तोष फैलगया। बावरटन में ७६ भारतीयों को पकड़कर उनपर अभियोग चलाया गया, तथा प्रत्येक को २५ पौन्ड जुर्माना अथवा दो मास के कठिन कारावास का दण्ड दिया गया। किन्तु किसी ने जुर्माना न देकर जेल जाना ही स्वीकार किया। जर्मिस्टन में बाबू लाल बहादुर सिंह, बाबू हजूरा सिंह और श्रीयुत नांजेपा नायडू को नेता कह कर सरकार ने पकड़ा और तीनों को नेटाल को देश निकाला कर दिया, पर यह तीनों साहसी पुरुष फिर नेटाल में घुस आये। इस पर ट्रांसवाल सरकार ने इन पर इमीग्रेशन क़ायदे का विरोध करने का अपराध लगाकर तीन २ मास के कठिन कारावास का दण्ड दिया। हेडलबर्ग के मि. भयान, मि. सोमनाथ, मि. वी. पटेल, मि. मुहम्मद हाजी, मि. इस्माइल, मि. क़ासिमजी यूसुफ़जी, मि. हुसेन सुलेमान, मि. मूसा मुहम्मद सीदात आदि सज्जन, जोहाँस वर्ग के मि. नादिरशाह कामा भूतपूर्व डाक मुन्शी इन्डियन पोस्ट ऑफ़िस, मि. बापू जी, मि. मुल्लाफ़िरोज़, मि. उमरजी, मि. गौरीशंकर व्यास, मि. डेविड अरनेस्ट, मि. सोलोमन अरनेस्ट, मि. वल्लभराम, मि. एम. फ़ैंसी आदि, जर्मिस्टन के मि. के. के. पटेल, मि. सालुजी आकुजी, वालकरस्ट के मि. मनजी नाथूभाई, मि. मुहमद पटेल आदि सत्याग्रहियों को पकड़ कर सरकार ने जेल में भेज दिया। सारांश यह कि ट्रांसवाल के भिन्न भिन्न नगरों में पकड़ धकड़ का काम जारी होगया।

इसके पश्चात् भारतमाता के सपूत लोकमान्य गान्धी पकड़े गये, आपके ऊपर सत्याग्रह का अभियोग चलाया गया। आपने जोहांसवर्ग के मजिस्ट्रेट के सामने अपने बयान में कहा कि अपने नाम को रजिस्टर्ड न कराने के अपराध में यह दूसरी बार मेरे ऊपर अभियोग चलाया गया है, जिस दोष के लिये मेरे ऊपर अभियोग चलाया गया है उस दोष को मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूं। मैंने जान बूझ कर इस अमानुषी क़ायदे का प्रतिवाद किया है। इस अन्यायपूर्ण क़ायदे के विरोध करने के कारण अनेकों भारतियों को जेल की यातनाएं भुगतनी पड़ी हैं जिससे हमारा अन्तःकरण तिलमिला रहा है, हम न्याय चाहते हैं पर इसके विपरीत हमारे साथ अन्याय किया जाता है। हम इस ज़ुल्मी क़ायदे का विरोध कर जेल

में आना अच्छा समझते हैं। इस विषय में हम भारी से भारी अपराधी हैं"। मजिस्ट्रेट ने अपने फ़ैसले में कहा कि आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। सरकार ने जो क़ायदा बना दिया है उसको अमल में लाना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिये क़ायदे के अनुसार आपको ३ मास सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया जाता है। उस समय न्यायालय में सन्नाटा छा गया।

कई एक भारतीय युवक अंग्रेज़ों की पाकशाला में काम करते हैं, उनको सूचना दी गई कि या तो तुम लोग सत्याग्रह को छोड़ दो अन्यथा काम से निकाल दिये जाओगे। पर उन लोगों ने साफ़ साफ़ उत्तर दिया कि काम छोड़ने को हम तय्यार हैं किन्तु अपनी प्रतिज्ञा से विमुख होना नहीं चाहते। कितने ही फेरीवाले पकड़े गये और अभियोग चला कर जेल में ठेले गये। सारांश यह है कि भारतवासियों ने स्वार्थत्याग साहस और वीरता का ख़ूब परिचय दिया। सब ३५०० भारतवासी जेल में भेजे गये थे। और लगभग १०० भारतीयों को देशनिकाले का दण्ड दिया गया था।

जेल की कहानी

भारतीय क़ैदियों को जेल में जैसा कष्ट भुगतना पड़ा उसका उदाहरण केवल एक ही कहानी से पाठकों को मिल जायगा। ता० २० अप्रैल सन् १६०६ को ६५ भारतीय क़ैदी वालकरस्ट से डूटपोर्ट की जेल में भेजे गये। वालकरस्ट से १० बजे दिन को रेल में सवार होकर ६ बजे रात्रि को डूटपोर्ट पहुंचे। उस रात्रि को उन्हें भोजन नहीं मिला। दो छोटी छोटी कोठरियों में सब पशुवत् भर दिये गये। प्रभु प्रभु करते उनकी रात कटी। सवेरे उनको खाने के लिये रंगून के चावल और कद्दू की तरकारी दी गई। खाने के बारे में इन लोगों ने कई बार जेल के प्रधान से शिकायत भी की किन्तु प्रधान की ओर से साफ़ उत्तर मिला कि तुम्हारे साथ ऐसा ही कड़ा बर्ताव किया जायगा तभी तुम लोगों का घमण्ड टूटेगा और तुम लोग सरकार का विरोध अर्थात् राजनैतिक आन्दोलन करना छोड़ोगे। कुछ दिनों के बाद इस प्रकार का भोजन बन्द कर इन्हें क़ाफ़िरों का खाना 'मीली' दी गई। 'मीली' बड़ा ही ख़राब भोजन है। इसलिये भारतीयों ने इस भोजन का बड़े ज़ोर शोर से विरोध किया। तब उन्हें पटने का चावल दिया जाने लगा पर तरकारी बन्द कर दी गई। केवल चावल खाते खाते कितने ही लोग रोग के पंजे में फँस गये। एक मनुष्य बेहोश होकर गिर पड़ा। जेल के कर्म्मचारी इस दशा में ज़रा भी दया न कर कड़ी मजूरी का काम लिया करते थे। क़ाफ़िर क़ैदियों को बीमारी की हालत में स्वच्छ दूध दिया जाता है पर भारतीय क़ैदियों को नहीं मिलता था। पैख़ाने में एक साथ बीसियों मनुष्य बैठा दिये जाते थे। नहाने के लिये क़ाफ़िरों के स्नानागार में जाना पड़ता था। ज़रा सी बात पूछने पर आफ़िसर बुरी तरह बिगड़ जाते थे। प्रधान भी कुली आदि अपशब्द बोलने में किञ्चित संकोच न करता था। किसी के धर्म्म कर्म्म का बिलकुल ख्याल न करके मांसादि घृणित पदार्थ भोजन के लिये रख दिया जाता था। मारपीट गालीगलौच तो एक साधारण बात थी। सारांश यह है कि क़ाफ़िर क़ैदियों की अपेक्षा भारतीयों की बुरी दशा थी। इतनी कड़ाई का मुख्य कारण यह ही था कि कारागार से मुक्त होते ही यह लोग क़ायदे को स्वीकार करलें और फिर भूल कर भी कभी जेल में आने का नाम न लें।

सहानुभूतिसूचक सभायें

इस घृणित अत्याचार पर दरबन, पीटर मेरीत्स-बर्ग, लेडीस्मिथ, डंडी, न्यूकास्टल, जर्मिस्टन, वालकरस्ट, जोहांसबर्ग, प्रीटोरिया, बारबर्टन, फेरटोन, कीम्बरली, ईस्टलन्दन, पोर्टअलिज़बेथ,

आदि दक्षिण अफ्रिका के भिन्न भिन्न नगरों में सार्वजनिक सभाएं हुई और सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। इस सम्बन्ध में नेटाल इण्डियन कांग्रेस, ट्रांसवाल बृटिश इण्डियन एसोसियेशन और ट्रांसवाल वोमेन्स एसोसियेशन के अधिवेशन हुये। पूर्वीय अफ्रिका के डेलगोआबे, बैरा, मोजमबीक, ज़ञ्जबार, मोमबासा, सीशल आदि नगरों में सहानुभूति सूचक सभायें हुईं। ट्रीनीडाड, मोरेशस, फ़िजी आदि के भारतवासियों ने प्रवासी सत्याग्रहियों के दुख में शोक प्रगट किया। लन्दन नगर में सत्याग्रहियों के सम्बन्ध में कई एक सभायें हुईं। इसके अतिरिक्त भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के अनेक नगरों में प्रवासी भाइयों के दुख पर विचार करने के लिये सभायें हुईं। बम्बई की एक बृहद् सभा में ट्रांसवाल के श्रीयुत पोलक भी शामिल थे। पोलक महाशय ने अपने भाषण में कहा कि ट्रांसवाल के भारतवासी यह सब कष्ट जननी जन्मभूमि की प्रतिष्ठा के लिये सह रहे हैं। उन्हें जेल में मर जाना स्वीकार है किन्तु स्वदेश का नाम कलङ्कित करना नहीं चाहते। उन्हें अपने देशवासियों से आशा है इसी से वह रक्षा की प्रार्थना करते हैं। यदि आप लोग उन्हें सहायता न देंगे तो निस्सन्देह अपने 'प्राण जांय पर वचन न जाई' की भीषम प्रतिज्ञा पूर्ण कर देंगे। उनके लिये यह बड़ी गौरव की बात है, पर यह तो बतलाइये कि आप उनके बिलखते हुए स्त्री बच्चों को क्या मुंह दिखावेंगे? क्या कह कर उन्हें धैर्य्य देंगे? उन्होंने हमको केवल यही कहने के लिये भेजा है कि हम सब सहने को तय्यार हैं। पर क्या आप लोग चाहते हैं कि वह सब कुछ सह लें? क्या ऐसा कहने को आप तय्यार हैं।

ता० ६ अक्टूबर सन् १६०६ ईस्वी को लोकमान्य गान्धी ने लन्दन के न्यू रिफ़ोर्म क्लब में भाषण देते हुए कहा था कि रणभूमि में शारीरिक बल प्रयोग करने की अपेक्षा आत्मिक बल द्वारा जो विरोध किया जाता है उसमें साहस और वीरता की अधिक आवश्यकता है। भारतवासियों ने मानसिक बल का प्रयोग करके ही ट्रांसवाल की सरकार का सामना किया है। ऐसा उदाहरण संसार में दूसरा नहीं मिल सकता।

ट्रांसवाल सरकार का विश्वासघात

सन् १६११ में ट्रांसवाल सरकार के कर्ता धर्ता जनरल स्मट्स ने लोकमान्य गान्धी को बुला कर कहा कि इस समय आप क़ायदे को स्वीकार कर लें। पीछे से पार्लीमेंट की बैठक में क़ायदे में उचित संशोधन कर दिया जायगा। लोकमान्य गान्धी ने जनरल स्मट्स के समान प्रधान अधिकारी की बात पर विश्वास कर लेना उचित समझा और उन्होंने जनरल स्मट्स से इस शर्त पर सुलह कर ली कि हम लोग अपने नाम से रजिस्ट्री करा लेते हैं और सरकार इस ख़ूनी क़ायदे को रद्द कर डाले। उस समय भारतवासियों ने प्रसन्नतापूर्वक अपना नाम दर्ज करा लिया। पर सरकार ने इस क़ायदा को रद्द नहीं किया, बल्कि ज्यों का त्यों क़ायम रखा। इस पर भारतीयों में घोर अशान्ति फैल गई। सब लोग ट्रांसवाल सरकार को इस विश्वासघातकता पर धिक्कारने लगे। कितने ही अबोध मनुष्य लोकमान्य गान्धी को कोसने लगे कि आपने जनरल स्मट्स से लिखान क्यों नहीं ले लिया। इस पर लोकमान्य गान्धी ने उत्तर दिया कि जनरल स्मट्स के समान उच्च अधिकारी की बात पर विश्वास न करना भी अनुचित था और जब भारतीयों ने ट्रांसवाल सरकार को रणक्षेत्र में पछाड़ दिया तो गिरे हुए व्यक्ति से लिखान मांगना अपनी निर्बलता का परिचय देना है। इसलिये जैसे एक बार वैसे अनेक बार हम सरकार को पछाड़ सकते हैं।

उस समय सत्याग्रह के द्वन्द युद्ध ने शान्तरूप धारण किया पर भारतीयों की नस नस में क्रोध

की अग्नि धधक रही थी। ऐसा अनुमान होता था कि शीघ्र ही कोई भयानक संग्राम होगा।

माननीय गोखले का आगमन

जिस समय ट्रांसवाल सरकार और प्रवासी भारतीयों के मध्य में दिनों दिन मनमुटाव बढ़ता जाता था। उस ही समय भारतीयजनता की प्रेरणा से माननीय गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रिका में पधारे। सन् १९१२ के अक्टूबर मास में आपने इङ्गलेण्ड से केपटौन की भूमि पर पदार्पण किया। आपने यहां के भिन्न भिन्न नगरों में भ्रमण कर प्रवासी भारतीयों की दशा का निरीक्षण किया। यहां की भिन्न भिन्न संस्थाओं की ओर से आप को सैकड़ों मानपत्र दिये गये। जब आपने नेटाल में ३ पौन्ड के कर देनेवाले भारतीय मजूरों की दशा अपने आंखों से देखी तो आपका कोमल हृदय विदीर्ण हो गया। यहां के अंग्रेज़ों ने भी आप के व्याख्यान बड़े मनोयोग से सुने। आपके व्याख्यान के लिये दरबन के टौनहाल में प्रबन्ध किया गया जहां भारतीयों के लिये सर्वथा मनाही थी। आपने यहां के गोरों के कुटिल बर्ताव की ख़ूब आलोचना की। आप प्रीटोरिया में जाकर दक्षिण अफ्रिका संघति के प्रधान मन्त्री जनरल बोथा, जनरल स्मट्स और राज सचिव मिस्टर फ़िशर से मिले और उनको तीन पौन्ड के ख़ूनी कर को रद्द कर देने के लिये परमार्श दिया, साथ ही भारतीयों की अन्य कठिनाईयों को दूर करने का भी अनुरोध किया। उस समय दक्षिण अफ्रिका के संघति के इन तीनों मन्त्रियों ने ख़ूनी कर रद्द करने और इमीग्रेशन क़ायदे में सुधार कर देने के लिये प्रतिज्ञा की। माननीय गोखले चार सप्ताह के महमान थे, उनको मीठी मीठी बातें सुना कर प्रसन्न किया गया। माननीय गोखले नवम्बर मास में भारत को प्रस्थान कर गये। इस समय भारतजनता और प्रवासी भाइयों को दृढ़ विश्वास हो गया कि अब हम लोगों का दुख दूर हो जायगा और हम लोगों के भले दिन आवेंगे।

चतुर्थ खण्ड

नवीन क़ायदे की रचना

सन् १९१३ में संयुक्त पार्लीमेन्ट का अधिवेशन केपटौन में हुआ. उसमें भारतीयों का दुःख दूर करना तो अलग रहा प्रत्युत पुराने स्वत्वों को लोप कर कठिनाई में और भी अधिकाई कर दी गई। जहां के नेता जनरल हरजोग का यह कथन हो कि 'पहिले हम अपनी बोअर जाति की रक्षा कर तब अंग्रेज़ों की रक्षा में ध्यान देंगे, हम अंग्रेज़ों की भलाई के लिये अपना वक्त नहीं दे सकते'। वहां भारतवासियों के समान निर्बल जाति की प्रार्थना पर कौन ध्यान देता है। नवीन क़ायदे में यह धारा रखी गई कि सन् १८९५ के पीछे आये हुए भारतीय मजूर यहां के रईस बिलकुल नहीं समझे जायगे। स्वदेश जाने पर फिर उनको यहां लौट कर आने का हक़ नहीं रहेगा। अब तक इस देश के जन्मे हुए भारतवासी बिना रोकटोक के केपकालोनी में जा सकते थे। पर नवीन क़ायदे के अनुसार वही भारतवासी केपकालोनी में जा सकेंगे जो अंग्रेज़ी भाषा के निपुण विद्वान हों। फ्रीस्टेट में जानेवाले भारतीयों को पहिले यह लिख देना होगा कि हम फ्रीस्टेट में जाकर व्यापार अथवा खेतीबाड़ी नहीं करेंगे। केवल मजूरी कर के जीविका निर्वाह करेंगे। तीन पौन्ड अर्थात् ४५) रुपये वार्षिक कर ज्यों का त्यों क़ायम रखा गया। सब से भयानक धारा यह है कि जिस धर्म्म में एक से अधिक विवाह कर लेने की रीति है उस धर्म्म के अनुसार किया हुआ विवाह अप्रमाणिक माना जायगा और प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को अपना विवाह न्यायालय में जाकर रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा। क्याही विचित्र क़ायदा है। इस क़ायदे के अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों की स्त्रियां रखेली समझी जायगी और उनकी सन्तान दोगली समझी जायगी। इस क़ायदे का संयुक्त पार्लीमेन्ट में मि० मायलर, मि० चेपलीन, मि० अलेकज़ेन्डर आदि सदस्यों ने बड़े ज़ोर शोर से विरोध किया पर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ सुनने वाला कौन है। नेटाल और ट्रांसवाल के भारतीयों ने सभाकर इस नवीन क़ायदे को भंग करने के लिये बारबार प्रार्थना की पर किसी की प्रार्थना पर ध्यान न देकर अन्त में क़ायदा पास कर दिया गया और सम्राट की स्वीकृति के लिये उसकी प्रतिलिपि विलायत भेजी गई। इधर भारतवासियों ने लार्ड ग्लाडस्टन की सेवा में तार भेज कर प्रार्थना की कि आप सम्राट् की स्वीकृति कदापि न दें क्योंकि क़ायदा भारतवासियों के लिये अमङ्गल तथा अपमानजनक है. पर लार्ड ग्लाडस्टन ने क़ायदे की प्रतिलिपि पर सम्राट् के हस्ताक्षर करा प्रवासी भाइयों को पूरा निराश कर दिया!

मि० काछलियाका पत्र

ट्रांसवाल बृटिश इन्डियन एसोसियशन के सभापति मि० काछलिया ने लोकमान्य गान्धी की अनुमति से दक्षिण अफ्रिका की सरकार को सेवा में एक पत्र भेजा कि जो संयुक्त पार्लीमेन्ट में भारतीयों के लिये नवीन क़ायदा बनाया गया है वह सभ्य जाति के लिये सर्वथा निन्दनीय और अपमानजनक है। अतः इस क़ायदे में निम्न

लिखित संशोधन होना चाहिये अन्यथा सत्याग्रह की लड़ाई आरम्भ की जायगी।

(१) सन् १८९५ के इण्डियन इमीग्रेशन ला अमेण्डमेन्ट एक्ट के पीछे आये हुए भारतवासियों को यहां प्रवास करने और भारतवर्ष जाने पर फिर यहां लौट कर आने का स्वत्व मिलना चाहिये।

(२) दक्षिण आफ्रिका में जन्मे हुए भारतवासियों को केपकालोनी में जाने के लिये क़ायदे बनने से पहिले जो हक़ था वह हक़ क़ायम रहना चाहिये।

(३) हिन्दू और मुसलमानी धर्म्म की रीत्यानुसार किये हुये विवाह को न्याय विहित समझना चाहिये।

(४) फ्रीस्टेट में जाने के लिये भारतवासियों को जो केवल ग़ुलामी करने की शर्त लिख देनी पड़ती है वह शर्त रद्द कर देनी चाहिये।

(५) सन् १८९५ के पीछे आये हुए भारतवासियों से जो ३ पौन्ड अर्थात् (४५) रुपये वार्षिक कर लिया जाता है उसको छोड़ देना चाहिये। इस कर से निर्धन भारतवासियों को असीम कष्ट भोगना पड़ता है और इस कर को निकाल देने के लिये सरकार ने माननीय गोखले को वचन भी दिया था।

(६) पुराने और नये क़ायदे में भारतीयों के साथ न्यायपूर्वक बर्ताव होना चाहिये।

आन्दोलन का प्रस्ताव

मि० काछलिया की इस उचित प्रार्थना पर यहां के अधिकारियों ने बिलकुल ध्यान न दिया, इससे यहां के भारतीय लोकमत में बड़ी उत्तेजना फैल गई और भारतवासियों ने इस क़ायदे का बड़े कड़े शब्दों में विरोध किया। यद्यपि प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध यह क़ायदा बनाया गया और उनको इस क़ायदे को मानने के लिये विवश किया जाता था तो भी यहां की भारतसन्तान निराश होकर इस क़ायदे के सामने सिर न झुकाती थी तथा इसके प्रबल प्रतिकार करने के लिये सत्याग्रह की लड़ाई चलाने का निश्चय कर चुकी थी। इस कार्य में योग देने के लिये क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या पारसी और क्या क्रश्तान सब जाति और धर्म के मनुष्य कटिबद्ध हो गये थे।

लार्ड एम्पथील और माननीय गोखले इस क़ायदे के प्रतिकूल विलायत में आन्दोलन करने लगे। माननीय गोखले के अस्वस्थ रहने के कारण दक्षिण अफ्रिका से मि. हेनरी पोलक भेजे गये। इस विषय में वह प्रसिद्ध राजपुरुषों का ध्यान आकर्षित करने लगे। यहां पर मो० गान्धी इस क़ायदे के प्रबल प्रतिकार करने में कटिबद्ध हुए। भारत के भिन्न भिन्न नगरों में भी इस विषय पर विचार होने लगा। बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन के प्रधान सर फ़ीरोज़ शाह मेहता ने भारत सरकार और भारत सचिव की सेवा में पत्र भेज कर लोकमत का विचार प्रकट किया कि "यह सभा राजराजेश्वर की सेवा में नम्रतापूर्वक प्रार्थना करती है कि वह दक्षिणअफ्रिका की संयुक्त पार्लमेंट के निर्माण किये हुये क़ायदे को कार्य्यरूप में परिणित होने से रोके"। इस प्रकार नवीन क़ायदे के प्रतिकूल सर्वत्र आन्दोलन होने लगा।

चेतावनी

कब तक रहोगे सोये, हिन्दी कहानेवाले।
आलस्य की नींद सो सो सर्वस्व गवांने वाले॥
सब थक गये हितैषी, तुमको जगा २ कर।
आयेंगे अब कहां से, तुमको जगानेवाले॥
नैया पड़ी भँवर में, चक्कर लगा रही है।
सब हिन्दवासी सोते, आलस्य प्रमाद वाले॥
संयुक्त पार्लमेंट में, क़ायदा बना है ऐसा।
तुम्हारे समस्त स्वत्व, हक़ के डुबाने वाले॥

बोर युद्ध में भारतीय सार्जेन्ट मेजर लोक मान्य महात्मा गान्धी तथा भारतीय स्वयं सेवक दल।
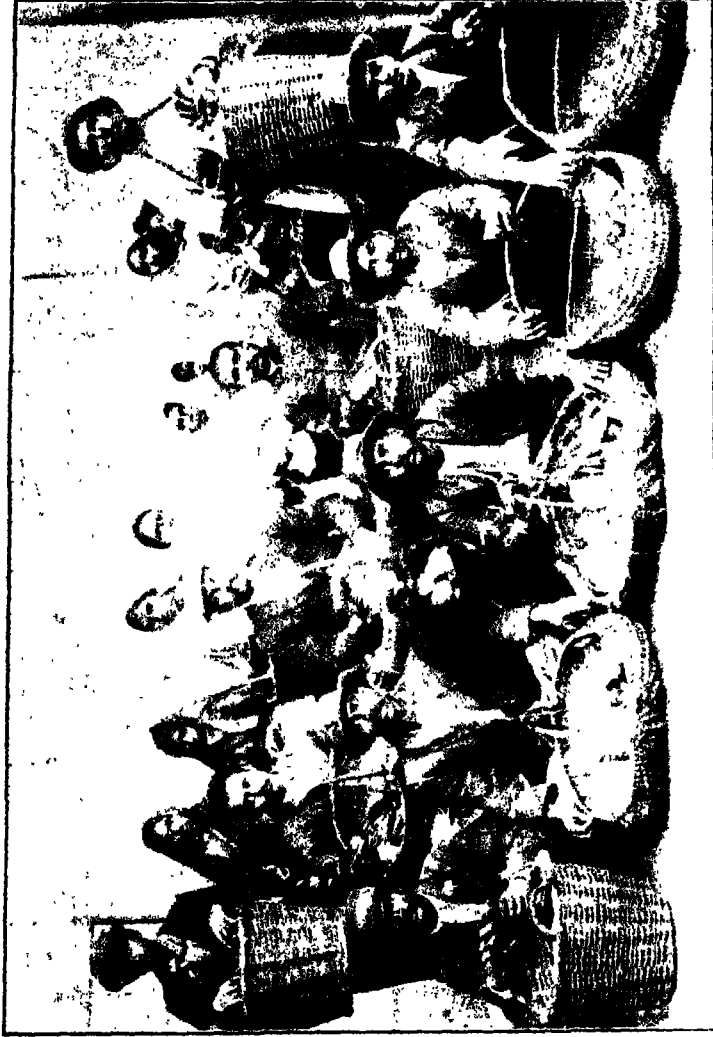
फेरी के भेश में जर्मिस्टन के सत्याग्रही।

इस क़ायदे के आगे, मत शीश को झुकाओ।
सत्याग्रह चला कर, साहस दिखाने वाले॥
लन्दन कमेटी को भी, धन से सहाय दीजे।
उसके सदस्य तुमरे, हक़ के बचाने वाले॥
विनती यही है करता, भवानी दयाल तुमसे।
निज घोर नींद त्यागो, सब भ्रात हिन्द वाले॥

सत्याग्रह का आरम्भ

लोकमान्य गान्धी और दक्षिण अफ्रिका की सरकार से नूतन इमीग्रेशन क़ायदे में सुधार करने के लिये जो चर्चा चल रही थी अन्त में उसका समाधान न हुआ और सत्याग्रह की लड़ाई आरंभ हो गई। मिसेज़ गान्धी ने अपने श्रद्धास्पद पति से पूंछा कि क्या इस क़ायदे के अनुसार हम आपकी धर्म्मपत्नी नहीं मानी जायगीं। लो० गान्धी ने उत्तर दिया कि नवीन क़ायदे के अनुसार आप हमारी धर्म्मपत्नी नहीं हैं और न हमारे बालक क़ायदे से बालक समझे जायगे। तब मिसेज़ गान्धी ने पति से कहा कि जब ऐसा अमानुषी क़ायदा बन गया तब हम लोगों को स्वदेश चले जाना चाहिये। लो० गान्धी ने उत्तर दिया कि स्वदेश चला जाना कायरता का परिचय देगा। जब हमारे लाखों भ्राताओं पर इस क़ायदेरूपी वज्र का प्रहार होगा तो हम लोगों को देश जाने से क्या लाभ? मिसेज़ गान्धी ने पुनः पति से नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि प्राणनाथ! क्या आप मुझको इस क़ायदे के विरोध करने के लिये कारागार में जाने की आज्ञा देंगे। लो० गान्धी ने प्रिया को समझाया कि तुम्हारा स्वस्थ्य अच्छा नहीं है। जेल में जाना बड़ा कठिन काम है, पर बारबार पत्नी के आग्रह करने पर पति को जेल जाने की आज्ञा देना ही पड़ी। सबसे पहिले १६ मनुष्यों का एक दल डरबन से प्रस्थित हुआ जिसमें चार स्त्रियां भी थीं:—एक मीसेज़ गान्धी वारिस्टर, दूसरी मीसेज़ डाक्टर मणिलाल वारिस्टर, तीसरी मीसेज़ छगनलाल और चौथी मीसेज़ मगनलाल। निम्नलिखित पुरुष थे:—पारसी रुस्तमजी सेठ, उपसभापति नेटाल इण्डियन कांग्रेस, छगनलाल गुजराती सम्पादक, 'इण्डियन ओपीनियन,' रघु-गोविन्दु, रावजी भाई पटेल, मगन भाई पटेल, सेलोमन रायपन, गोविन्द्राज, शिवपूजन, कुपुस्वामी, मनुलाइट, रेवाशङ्कर, गोकुल दास और राम दास गान्धी।

जब यह १६ मनुष्यों का दल ट्रांसवाल की सीमा पर पहुंचा तो इमीग्रेशन अमलदार ने आकर सनद मांगी। सनद न दिखाने पर प्रत्येक को ३ दिन के भीतर ट्रांसवाल छोड़ कर चले जाने की सूचना मिली। पर यह लोग इस आज्ञा का उलङ्घन कर जेल जाने को आतुर थे। निदान ता० २३ सितम्बर १६१४ ईस्वी को प्रत्येक को तीन तीन मास के सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला। सब लोग जेल की आज्ञा सुन कर प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

मि० बद्री को जेल

पहिली टोली के जेल जाने के बाद लो० गान्धी ने डरबन से मि० बद्री के साथ जोहाँसबर्ग को प्रस्थान किया था। डरबन स्टेशन पर मि० बद्री से मिलने के लिये बहुसंख्यक भारतवासी विद्यमान थे। जब मि० बद्री मेरीत्सबर्ग के स्टेशन पर आये तो उनसे मिलने के लिये कतिपय भारतवासी उपस्थित थे। वेद धर्म्म सभा के सभ्य बाबू पद्म सिंह वहां से उनके साथ हो लिये। डेनहाऊज़र के स्टेशन पर मि० बद्री के देखने के लिये भारत-जनता का ख़ूब जमाव था। वहां से मि० भवानी और मि० ठकु सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित हो गये। जब यह लोग वालकरस्ट पहुंचे तो इमीग्रेशन अमलदार ने बिना सनद के ट्रांसवाल में घुसने के अपराध में पकड़ा और ता० ३० सितम्बर को प्रत्येक को तीन तीन मास की कड़ी क़ैद का दण्ड मिला।

मि० बद्री ३२ वर्ष से दक्षिण अफ्रिका में रहते हैं। यह शाहाबाद (आरा) ज़िले के हेतमपुर गांव के रईस हैं। यह ट्रांसवाल इण्डियन असोसियशन के उपसभापति थे। जोहांसबर्ग में एक समय इनकी बहुत ज़मीन थी। मि० चेम्बर लेन की सेवा में प्रीटोरिया में जब डेपुटेशन गया था उसमें मि० बद्री भी एक प्रतिनिधि थे। मि० बद्री बहुत से भारतवासियों के कष्ट में सहायता देकर अधिक लोकप्रिय हो गये हैं।

जोहांसबर्ग में सत्याग्रह

ता० १८ सितम्बर १९१३ ईस्वी को ट्रांसवाल बृटिश इण्डियन एसोसियशन का एक विशेष अधिवेशन मि० काछलिया के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ हुआ। लो० गान्धी ने सत्याग्रह की लड़ाई चलाने के लिये एक प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया जिसका मि. एल. डब्ल्यु. रीच बारिस्टर, मि. केलनबेक, मि. जोज़फ़ रायपन बारिस्टर, मि. थम्बी नायडू आदि सज्जनों ने समर्थन किया। चीफ़ रिपोर्टर 'रेंड डेलीमेल' मिस सीलेज़िन रिपोर्टर 'इण्डियन ओपीनियन,' भवानी दयाल सहकारी सम्पादक 'आर्य्यावर्त' आदि पत्रों के सम्वाददाता भी सभा में मौजूद थे। सभा में यह प्रस्ताव पास हुआ कि सत्याग्रह की लड़ाई चलाई जाय। सभा विसर्जन होने पर 'इलस्ट्रेटड-स्टार' के सम्वाददाता ने प्रतिनिधियों का चित्र उतार लिया। उसी दिन ट्रांसवाल इण्डियन वीमेन्स एसोसियशन का भी अधिवेशन हुआ जिसमें भारतीय रमणियों ने सत्याग्रह की लड़ाई में सम्मिलित होने का निश्चय किया और जेल में गई हुई वीराङ्गनाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट की। रविवार को यह सभायें हुई और सोमवार को मि. प्रागजी देशाई, सुरेन्द्रनाथ मेढ़ और मणिलाल गान्धी मजूरों के भेष में बिना परवाने के फेरी करने को निकले। बहुत प्रयत्न करने पर भी उस दिन वह नहीं पकड़े गये, इसलिये निराश होकर लौट आये। दूसरे दिन कमिश्नर स्ट्रीट में पकड़ लिये गये और प्रत्येक को सात सात दिन की कड़ी क़ैद का दण्ड मिला। जेल से छूटने पर फिर इन लोगों ने इसी मार्ग का अवलम्बन किया इसलिये दूसरी बार प्रत्येक को १०-१० दिन का जेल हुआ। योंही मि. राजु और बीली दण्डित हुए।

मीसेज़ भवानी दयाल का प्रस्थान

मीसेज़ गान्धी के जेल में जाने का समाचार पाकर मिसेज़ भवानी दयाल को बड़ा ही जोश पैदा हुआ और वह ता० ३० सितम्बर १९१३ को अपने एक वर्ष के बालक रामदत्त वर्मा को गोद में लेकर जोहाँसबर्ग गईं और वहां लोकमान्य गान्धी से भेंट की। लो० गान्धी और मिसेज़ भवानी दयाल से निम्नप्रकार वार्तालाप हुआः—लोकमान्य गान्धी-क्या आपका जेल जाने का विचार है? मीसेज़ भवानी दयाल-जी हां, प्रसन्नतापूर्वक। लो० गान्धी-जेल में सुन्दर वस्त्र नहीं मिलेंगे। मीसेज़ भवानी दयाल-मुझे जेली कपड़ा पहिनना स्वीकार है। लो०-गान्धी वहां स्वादिष्ट भोजन नहीं मिलेगा। मीसेज़ भवानी दयाल-मैं जेल के भोजन को ही मोहन भोग समझूंगी। लो० गान्धी-वहां बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। मीसेज़ भवानी दयाल-मैं सब प्रकार के कष्ट सहने को तय्यार हूं। लो० गान्धी-तुम क्यों जेल जाती हो? मीसेज़ भवानी दयाल-अपने हक़ के लिये। लो० गान्धी-तुम्हारा क्या हक़ मारा गया है? मीसेज़ भवानी दयाल-जो नवीन क़ायदा बना है उसके अनुसार भारतीय रमणियां रखेली समझी जांयगी। लो० गान्धी-तुम प्रसन्नतापूर्वक जेल जाकर भारत के यश और कीर्ति का विस्तार करो। इसके बाद मीसेज़ भवानी दयाल, तामिल बेनीफ़िट सोसायटी के सभापति मिस्टर नायडू के घर पर गईं वहां

सत्याग्रही महिलाओं का एक प्रीति भोज था। उसी दिन सत्याग्रही स्त्रियों का चित्र लिया गया।

जोहांसबर्ग की वीर स्त्रियां

जोहांसबर्ग की भारतीय रमणियां मीमावाली हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे पूरी वीराङ्गना है। लो० गान्धी ने स्त्रियों की सभा में जेल के कष्टों का पूरा वर्णन किया था पर वह दुःखों का ज़रा भी परवाह न करके जेल जाने को तय्यार हो गई। मिसेज़ नायडू, मिसेज़ भवानी दयाल आदि ११ स्त्रियां अपने पति, अपने बच्चों और अपने घर द्वार को छोड़ कर चलती बनीं। इन स्त्रियों की गोद में छोटे छोटे छः बालक और बालिकायें थीं। इनके साथ मि० केलनबेक गये। यह वीराङ्गनायें निर्भयता पूर्वक फ्रीस्टेट में घुस गईं पर सरकार ने इनको सत्याग्रही जान कर छोड़ दिया। इससे निराश होकर यह स्त्री दल फ्रीनीखन में चला गया यहां के प्रवासियों ने इन वीर नारियों का अन्तःकरण से स्वागत किया। इन स्त्रियों ने कहा कि हम अब लौटकर घर जाना नहीं चाहतीं, हम लोग यहीं पर बिना परवाने के फेरी करके पकड़ाने की प्रयत्न करेंगी। इस बात को फ्रीनीखन के प्रवासियों ने स्वीकार कर फेरी करने की वस्तुओं का पूरा प्रबन्ध कर दिया। इन स्त्रियों ने फेरी करके जो पैसा कमाया वह सत्याग्रह फन्ड में समर्पित कर दिया गया। इस विषय पर टीका करते हुए 'इन्डियन ओपीनियन' लिखता है कि "जोहांसबर्ग की ११ स्त्रियां अपने बच्चे कांख में लेकर देश के लिये फेरी कर रही हैं। देश और जाति के लिये दुःख उठा रही हैं, यह जानकर क्या भारतियों को उत्तेजना नहीं मिलेगी। इन स्त्रियों में अधिकांश तामील जाति की हैं। केवल मीसेज़ भवानी दयाल बिहार प्रान्त की निवासी हैं। यदि यह जेल जाने का प्रयत्न न करतीं तो हम लोग उनका कुछ नहीं कर सकते थे, किन्तु यह स्वयम सोच समझकर इस क़ायदे के प्रतिवाद करने को निकली हैं। जब भारतीय रमणियां अपना दायित्व समझकर देश की भलाई करने में अग्रसर हुई हैं तो भारत राष्ट्र का सूर्य्यास्त अभी नहीं हुआ है। इन वीराङ्गनाओं के तप से भारतवासी इस महान युद्ध में विजयी होकर अपना नाम इतिहास में अमर करेंगे। यह वीराङ्गनायें जबकि जेल में जाने को निकल पड़ी हैं तो हम लोग इस लड़ाई में विजयी हो गये, ऐसा मानना चाहिये।"

फ्रीनीखन से कूच

जब यह वीर स्त्रियां पकड़ाने के लिये भांति भांति के प्रयत्न करके थक गईं और सफल मनोर्थ न हुईं तब ता० १० अक्टूबर को सत्याग्रही स्त्रियां वहां से चार्लिस्टन जाने को रवाना हुईं। जोहांसबर्ग के सुप्रसिद्ध नेता मि. थम्बी नायडू इनके साथ हो लिये। इन स्त्रियों ने फ्रीनीखन के व्यापारियों की सराहना की जिन्होंने इनको हर प्रकार से सहायता दी थी। ऐसा निश्चय किया गया कि जिस ग्राम में सत्याग्रही पकड़ाने के लिये जांय उस ग्राम के प्रवासियों को उनके भोजन छादन और रेलके महसूल का ख़र्च उठाना चाहिये। यदि वहां के निवासी मार्गव्यय देना अस्वीकार करेंगे तो सत्याग्रही पैदल चलकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जायंगे। फ्रीनीखन के निवासियों ने यह सूचना पाकर तत्काल ही मार्गव्यय आदि का प्रबन्ध कर दिया और वहां से बड़ी प्रसन्नता पूर्वक इन वीर नारियों को विदा किया।

जर्मिस्टन में सत्याग्रह

ता० ७ अक्टूबर को जर्मिस्टन में छः स्त्रियां और १० पुरुष पकड़ाने के लिये निकल पड़े। सब के हाथों में फल फूल आदि की टोकरी थीं। यह दल नगर भर में फेरी करता रहा पर पकड़ाने का लक्षण न देख कर रेलवे स्टेशन पर गया। स्टेशन मास्टर ने समझाया कि यहां पर बिना परवाने के कोई फेरी नहीं कर सकता है, चाहे वह काला

हो या गोरा, इस लिये सत्याग्रहियों को यहां से चला जाना चाहिये। यह लोग इस धमकी से डर कर कहां जाने वाले थे। इन लोगों ने टेलीफोन द्वारा मो० गान्धी की सम्मति मांगी। मो. गान्धी ने उत्तर दिया कि यदि तुम लोग बिना किसी दंगे फसाद के पकड़े जाओ तो बहुत अच्छा है। इस सम्मति के अनुसार यह लोग टोकरी लिये हुये प्लेट फार्म के ऊपर डटे रहे। विवश होकर स्टेशन मास्टर को पकड़वाना पड़ा। इससे जर्मिस्टन में हाहाकार मच गया, पर केवल छः घन्टे हवालात में बन्द रखने के बाद सिपाही ने सबको छोड़ दिया और कहा कि मुझे ऐसा करने की आज्ञा मिली है। निराश होकर सब सत्याग्रही अपने अपने घर चले गये। इस विषय पर 'रेंड डेलीमेल' ने लिखा था कि जर्मिस्टन के भारतवासियों के लिये जेल में स्थान नहीं है। 'ट्रांसवाल लीडर' ने लिखा था कि भारतवासी इस उपाय से कृतकार्य्य न हो सके। इन सत्याग्रहियों का नाम नीचे लिखेनुसार है:- मीसेज़ बन्धु, मीसेज़ नन्दन मीसेज़ माता बदल, मीसेज़ स्वयम्बर, मिसेज़ महावीर और मिसेज़ बिहारी। यह स्त्रियां थीं और पुरुषों में भवानी दयाल, बाबू लाल बहादुर सिंह, पुजारी गुलाब दास, त्रिलोकी सिंह, मथादीन महराज, उमराव सिंह, रघुवर, शिवप्रसाद, राम नरायण और लहेरिया थे। जर्मिस्टन से निराश होकर भवानी दयाल आदि ७ सत्याग्रही फ्रीनीस्वन के कूच में सम्मलित हो गये।

वाकरस्टको प्रस्थान

इन ११ स्त्रियों और ८ पुरुषों का दल नेटाल की सीमापर जा पहुंचा। वाकरस्ट के इमीग्रेशन अमलदार ने नेटाल में प्रवेश करने का अधिकार पत्र मांगा। सनद न दिखाने पर सबको गाड़ी से उतार लिया और उस रातको सब सत्याग्रहियों को रोक रखा। दूसरे दिन दोपहर को सबको बुला कर राजस्व सचिव का तार पढ़कर सुनाया कि तुम लोगों को सरकार नहीं पकड़ना चाहती जहां तुम्हारी इच्छा हो स्वतन्त्रता पूर्वक जाओ। रात्रि के समय बिचारे सत्याग्रहियों ने पुलिस कर्म्मचारीयों से भोजन और कम्बल मांग, ज्यों त्यों करके केवल विलायती रोटी दी गई पर कम्बल देने से बिलकुल इनकार किया गया। शीतकी अधिकता से प्रभु प्रभु करते रात कटी। दूसरे दिन पकड़ने से सरकार की अनिच्छा सुनकर सत्याग्रहियों को बड़ा ही निराश होना पड़ा। वहां से समस्त सत्याग्रही चार्लीस्टन को गये और वह रात मि. वली भाई के घर पर काटी। दूसरा दिन भी वहीं पर बिताया। तीसरे दिन वहां से न्युकास्टल को रवाना हुये। न्यूकास्टल के स्टेशन पर सत्याग्रहियों का स्वागत करने के लिये भारतवासियों ने खूब प्रबन्ध कर रखा था। ज्योंही यह गाड़ी स्टेशन पर पहुंची, त्योंही स्टेशन 'बन्दे मातरम' की ध्वनि से गूंज उठा। सत्याग्रहियों को ले जाने के लिये स्टेशन पर कई एक बग्गी विद्यमान थीं पर सत्याग्रहियों ने पैदल चलने की इच्छा प्रकट की और वहां से मि. डी. लाजरस के घर पर गये।

वाकरस्ट में सत्याग्रहियों को जेल

मेरीस्बर्ग के मि. रायसिंह, मि. मोतीलाल, मि. जुठा प्रेम जी पटेल और मि. त्रिलोकनाथ को बिना सनद के ट्रांसवाल में घुस आने के कारण ता० ४ अक्टूबर को तीन तीन मास की कैद हुई। टोंगाट के मि. गोकुलदास गान्धी मि. नायडू, मि. पेकमल, मि. जानकी, मि. सूर्य्यपाल सिंह और मि. अब्दुल को ता० ६ जनवरी को और डेनहाउज़र के मि. रामरूप महाराज, मि. लक्ष्मण और मोहन को ता० १० जनवरी को ट्रांसवाल में प्रवेश करने के अपराध में ३-३ मास सपरिश्रम कारावासका दण्ड मिला।

मीसेज़ शेख महताब, उनकी माता और उनकी दासी जेल जाने के अभिप्राय से वालकरस्ट आई।

यहां पर सरकार ने इन तीनों को पकड़ा और मीसेज़ शेख़ मेहताब को बलात् धक्का देकर अंगूठे का निशान लेना चाहा, पर इस वीराङ्गनाने अंगूठे की छाप देने से साफ़ इनकार कर दिया। इसके बाद ट्रांसवाल की सरकार ने इन तीनों को देश निकाले का दण्ड दिया पर ये लोग फिर ट्रांसवाल में घुस कर सत्याग्रह की शपथ पूरा करने लगीं। विवश होकर सरकार ने इन तीनों को ३-३ मास की कड़ी क़ैद का दण्ड दिया। यह पहिली मुसलमान महिला थीं जिन्होंने सत्याग्रह के पवित्र संग्राम में भाग लिया। इनके अतिरिक्त अन्य कोई मुसलमान स्त्री जेल में नहीं गई। इस लिये यहां की मुसलमान महिलाओं में मीसेज़ शेख़ मेहताब का आसन श्रेष्ठ है।

न्यूकास्टल में विराट सभा

ता० १८ अक्टूबर के अङ्क में 'नेटाल विटनेस' लिखता है कि ता० १५ अक्टूबर को न्यूकास्टल में भारतवासियों की एक विराट सभा हुई थी, सभापति का आसन मि० सीदात ने ग्रहण किया था। सभा में मि० रोबिन्सन आदि यूरोपियन भी उपस्थित थे। मि० थम्बी नायडू ने भारतवासियों पर होते हुए अत्याचारों का वर्णन किया और इन अत्याचारों को चकनाचूर कर देने के लिये सत्याग्रह की लड़ाई चलाने की आवश्यकता बतलाई। इसके बाद 'आर्य्यावर्त' के सहकारी सम्पादक मि. भवानी दयाल ने बड़े प्रभावशाली शब्दों में सत्याग्रह की लड़ाई चलाने के लिये भारत जनता को उत्तेजित किया। मि. इफ़रहीम, मि. सीदात मि. लाज़रस, मीसेज़ नायडू, मीसेज़ मुरगन, मीसेज़ पी. के. नायडू, आदि स्त्री पुरुषों ने सत्याग्रह की लड़ाई का समर्थन किया। उसी दिन वहां पर सत्याग्रह सभा भी स्थापित होगई जिसके निम्नाङ्कित अधिकारी निर्वाचित किये गये:—सभापति—मि. आई. सीदात, मन्त्री—मि. इफ़रहीम, कोषाध्यक्ष—मि. अहमद और अन्तरंग सदस्य—मि. लाज़रस, मि. चेटी, मि. पिल्ले, मि. टॉमी, मि. करीम, मि. ख़ाकी मि. सुलेमान और मि. सीदात दाऊदजी। सभा में कई एक भारतीयों ने जेल जाने की इच्छा प्रकट की।

हड़ताल का आरम्भ

ता० १४ अक्टूबर को मि. थम्बी नायडू, भवानी दयाल आदि पुरुष और ११ स्त्रियां न्यूकास्टल के 'रेलवे वर्कस' में गईं। मि. थम्बी नायडू ने तामिल भाषा में और मि. भवानीदयाल ने हिन्दीभाषा में भारतीय मजूरों को हड़ताल करने के लिये सारगर्भित व्याख्यान दिया। इसी समय किसी भले मनुष्य ने जाकर स्टेशन मास्टर को सूचना दे दी कि सत्याग्रही लोग तुम्हारे मजूरों को उपदेश देकर हड़ताल कराना चाहते हैं। स्टेशन मास्टर ने आकर पूछा कि तुम लोग यहां क्या करते हो, सत्याग्रहियों ने उत्तर कि हम लोग तुम्हारे मजूरों को उपदेश देते हैं कि जब तक सरकार ३ पौन्ड का कर रद्द न कर दे तब तक तुम लोग काम करना छोड़ दो। स्टेशन मास्टर ने कहा कि तुम लोगों के ऊपर हुल्लड़ मचाने का अभियोग चलाया जायगा। सत्याग्रहियों ने उत्तर दिया कि तुम भलेही हमारे ऊपर ऐसा दोषारोपण कर सकते हो पर हम लोग मजूरों पर बल का प्रयोग नहीं करते। जो काम पर आना चाहते हैं उनको हम लोग रोकते भी नहीं पर हड़ताल करने की सलाह तो अवश्यही देंगे। निदान स्टेशन मास्टर ने पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट को बुलाकर मि. थम्बी नायडू, भवानी दयाल और रामनारायण को नेता कहकर पकड़ा दिया। शेष स्त्री और पुरुषों ने पकड़ाने के लिये बड़ाही प्रयत्न किया पर वे सफल मनोरथ न हुए। स्त्रियां पुलिस के समक्ष पुकार पुकार कर मजूरों को हड़ताल करने का उपदेश देती थीं और पुलिस से कहती थीं कि जैसे पुरुष लोग हड़ताल करने की उत्तेजना देते हैं, वैसेही हमलोग भी

उपदेश देती हैं इसलिये हम लोगों को भी पकड़ना चाहिये। पर पुलिस इन तीन ही सत्याग्रहियों को लेकर चलती बनी और इनको रातभर हवालात में बन्द रखा। दूसरे दिन प्रातः काल यह तीनों सत्याग्रही मजिस्ट्रेट के सामने पेश किए गए, मजिस्ट्रेट के सामने इन लोगों ने पूर्ववत् कथन किया। मजिस्ट्रेट ने सब कुछ सुनकर 'हुल्लड़ मचाने' का अभियोग रद्द कर बिना आज्ञा रेलवे वर्कस में घुस आने का दोषारोपण किया और प्रत्येक को २-२ पौण्ड का अर्थदण्ड दिया। सत्याग्रहियों ने कहा कि हमारे पास अर्थ दण्ड देने को धन नहीं है और न यह दण्ड हमको स्वीकार है। अतः हम लोगों को कारावास का दण्ड मिलना चाहिये। मजिस्ट्रेट ने कहा कि 'चले जाओ, यदि हमसे अर्थदण्ड वसूल हो सकेगा तो हम वसूल कर लेंगे', इतना कहकर मजिस्ट्रेट ने सबको छोड़ दिया। अदालत के बाहर भारतीय दर्शकों की खासी भीड़ थी। यह दक्षिण अफ्रिका के इतिहास में भारतीय मजूरों की हड़ताल का पहिला उदाहरण है।

हड़ताल की वृद्धि

यह कर्मवीर सत्याग्रही मुक्त होने पर चुप्पी साधकर कहां बैठनेवाले थे। उसी दिन सायंकाल को यह समस्त सत्याग्रही स्त्री पुरुष फ्रंन्हो कोलरी पर गये। वहां भारतीय मजूरों को हड़ताल करने के लिये मि. थम्बी नायडू और भवानी दयाल ने टामिल तथा हिन्दी भाषा में व्याख्यान दिया। प्रभाव ऐसा पड़ा कि १०० से अधिक मजूर उक्त कोयले की खान में हड़ताल कर बैठे। १६ अक्टूबर १६१४ के १० बजे रात्रि को मि. केलन बेक, मि. थम्बी नायडू और भवानी दयाल 'बैलंगी' की कोयले की खान पर गये। किसी नर पिशाच ने टेलीफ़ोन द्वारा उक्त खान के प्रबन्धक को सूचना देदी कि तुम्हारे मजूरों को भड़काने के लिये यहां से सत्याग्रही नेता आते हैं, तुम सावधान रहना। उक्त खान के प्रबन्धक ने इन तीनों सत्याग्रहियों को बहुतही दुर्वचन कहे, कोड़ों से पीटने की धमकी दी। उस रात को यह लोग न्यूकास्टल लौट आये पर दूसरेही दिन कोई ५०० मजूरों ने हड़ताल बोलदी और अपने नेताओं के शरण में न्यूकास्टल पहुंच गये। मि. केलनबेक जोहांसबर्ग को रवाना हुये और मि० हेनरी पोलक हड़तालियों की सहायता करने के लिये न्यूकासल पहुंचे। न्यूकास्टल में हड़ताल खूब ज़ोर शोर से हुई। अस्पताल में काम करनेवाले लौन्डरी में काम करनेवाले, होटल में काम करने वाले, खानों में काम करने वाले यहां तक कि मैला उठानेवाले भंगियों ने भी हड़ताल करदी। झुण्ड के झुण्ड हड़ताली नर नारी न्यूकास्टल की सड़क पर इधर उधर घूमने लगे। सत्याग्रह ने अब हड़तालका रूप धारण किया।

सरकार ने हड़तालियों को पकड़२ कर जेल में भेजना आरम्भ किया। गोरे स्वामियों के क्रोध की सीमा नहीं रही। कितने ही मजूरों पर कोड़ों की मार पड़ने लगी। बैलङ्गी की खान में एक मजूर जानसे मारा दिया गया पर हड़ताल की आग चारों ओर फैलती ही गई।

ता० १८ अक्टूबर सन १६१३ ईस्वी को सरकारी सूचना से भवानी दयाल पकड़े गये उनके साथही मि. शिवप्रसाद भी गिरफ़ार हुये। उसी दिन इन लोगों का अभियोग न्यूकास्टल के मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किया गया। कोई तीन चार सौ स्त्री और पुरुष दर्शक अदालत के आस पास खड़े थे। मजिस्ट्रेट के पूछने पर इन्होंने अपने को निर्दोषी कहा। मजिस्ट्रेट ने भवानी दयाल से कहा कि तुम अपनी टोपी उतार दो क्योंकि मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य जातियों को टोपी पहिनकर न्यायालय में आने की सख्त मनाही है। भवानीदयाल ने उत्तर दिया कि महाशय, हम हिन्दू हैं और हम अपनी जातीय टोपी

पहिने हुये हैं। अतएव हम इस टोपी को किसी प्रकार नहीं उतार सकते। मुहं तोड़ उत्तर पाकर मजिस्ट्रेट चुप होगये। भवानी दयाल ने अपने बयान में कहा कि जब हमारे पूज्य नेता माननीय गोपालकृष्ण गोखले इस देश में पधारे थे उस समय जनरल बोथा, जनरल स्मट्स और मि. फिशर ने उनसे प्रतिज्ञा की थी कि हम आगामी पार्लीमेन्ट की बैठक में ३ पौन्ड का कर रद्द कर देंगे, पर सरकार ने अपने बचन को नहीं पाला। इसलिये हम भारतीय मजूरों को उपदेश देते हैं कि जब तक सरकार ३ पौन्ड के ख़ूनीकर को रद्द न करदे तब तक तुम लोग हड़ताल क़ायम रखो। मि. शिवप्रसाद ने भी इस कथन का समर्थन किया। इसके बाद पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट, हेडकान्सटेबल और पुलिस की साक्षी ली गई। इन लोगों ने एक स्वर से कहा कि भवानीदयाल प्रसिद्ध सत्याग्रही नेता है इसके कारण से जो आज न्यूकासल में हलचल मची हुई है वह सब को अच्छी तरह से मालूम है। इसलिये इसको भारीसे भारी दण्ड देना चाहिये। अन्त में मजिस्ट्रेट ने अपना लम्बा चौड़ा फ़ैसला पढ़ सुनाया जिसका सारांश यह था कि "तुम लोगों ने जिस उद्देश्य को लेकर यह कार्य्य आरम्भ किया है उसमें तुम सफल मनोरथ न हो सके, तुमको सरकार का विरोध करना चाहिये पर तुमने व्यापारियों का व्यवसाय नष्ट किया। तुम्हारे उपदेश से कितनेही अभागे स्त्री और पुरुष काम छोड़ बैठे, अब वे बिचारे भूखे मरेंगे। इसके दायभागी तुम्हीं लोग हो सकते हो। अभी तक तुम्हारे जैसे आन्दोलन कारियों के लिये कड़ा क़ायदा नहीं बना है आशा है कि पार्लीमेन्ट की अगामी बैठक में बन जायगा। इस लिये तुम लोगों को ३-३ मास सपरिश्रम कारावासका दण्ड दिया जाता है"। दण्ड सुनकर अभियुक्त खिल खिलाकर हंस पड़े और मजिस्ट्रेट को अनेक धन्यवाद दिये। उस समय अदालत में सन्नाटा छा गया। ज्योंही अभियुक्त बाहर निकाले गये त्यों हीं मि. गङ्गाव दास और मि. रघुवर ने आकर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० मेकाडानल्ड से कहा कि हम लोग भी सत्याग्रही हैं। अतः यह दोनों सत्याग्रही भी पकड़े गये और ता० २० अक्टूबर को ३-३ मास के लिये जेल में भेजे गये। इनके अतिरिक्त न्यूकासल के सैकड़ों हड़तालियों से जेल भर गया, इस लिये ता० २० अक्टूबर को समस्त सत्याग्रहियों को वहां से पीटर मेरीत्सवर्ग के जेल में भेजा गया। सत्याग्रहियों से मिलने के लिये न्यूकास्टल के स्टेशन पर मि० पोलक आदि सज्जन उपस्थित थे।

हड़ताल का फैलाव

न्यूकास्टल में हड़ताल ने ख़ूब ज़ोर पकड़ा और डेनहाऊज़र, लेडीस्मिथ तथा डंडी तक हड़ताल की आग फैल गई। २० अक्टूबर तक लग भग २५०० मनुष्य हड़ताल में सम्मलित हो गये। ट्रांसवाल की ११ वीराङ्गनाओं ने हड़ताल फैलाने में अधिक भाग लिया इस लिये अन्त में सरकार ने विवश होकर इनको पकड़ा। इन वीराङ्गनाओं ने अपने बयान में कहा कि हम लोग ट्रांसवाल से यहां तक आ पहुंची हैं और भारतीय मजूरों को ऐसा उपदेश देती हैं कि जब तक सरकार ३ पौन्ड के कर को रद्द न कर दे तब तक तुम लोग काम पर मत आओ। हम लोग मजूरों के साथ किसी प्रकार के बलका प्रयोग नहीं करतीं, केवल उनको समझा बुझाकर काम छुड़ाती हैं। मजिस्ट्रेट ने सब कुछ सुनकर इनको भारी से भारी दण्ड अर्थात् प्रत्येक को ३-३ मास कठिन कारावासका दण्ड दिया। मि० पोलक न्यायालय में विद्यमान थे। मजिस्ट्रेट ने जेल की आज्ञा सुनाते हुये इन वीर नारियों को जो अपशब्द कहा, वह सभ्य जनके लिये सर्वथा निन्दनीय है। इन वीराङ्गनाओं ने जेल की आज्ञा सुनकर विशेष प्रसन्नता प्रकट की और हर्ष के साथ जेल की ओर चल दीं।

जेल जाते समय इन स्त्रियों ने दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों को सन्देशा भेजा कि जब तक सरकार अपना हक़ देना स्वीकार न करे तब तक लड़ाई को जारी रखना चाहिये। जिन वीराङ्गनाओं को न्यूकास्टल में कड़ी क़ैद का दण्ड मिला उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं:-(१) मिसेज़ भवानी दयाल (२) मिसेज़ थम्बी नायडू (३) मिसेज़ एन. पिल्ले (४) मिसेज़ के. एम. पिल्ले (५) मिसेज़ ए. पी. नायडू (६) मिसेज़ के. सी. पिल्ले (७) मिसेज़ पी. के. नायडू (८) मिसेज़ एन. एस. पिल्ले (९) मिसेज़ आर. ए. मुलिङ्गम (१०) मिसेज़ एम. पिल्ले (११) मिसेज़ एम. बी. पिल्ले। और छः बालक जो अपनी माताओं के साथ जेल गये उनके नाम यह हैं:- बालकायें- मिसि शेषुमा नायडू, मिसि राजुमा पिल्ले और अञ्चल पिल्ले बालक-रामदत्त वर्मा, सभापति पिल्ले और वेलू नायडू। इस विषय पर २६ अक्टूबर के 'इण्डियन ओपीनियन' में 'शाबाश औरतो' शीर्षक एक सम्पादकीय लेख गुजराती भाग में प्रकाशित हुआ है उसका सारांश यह है-"ट्रांसवाल की वीर नारियां बहुत दिनों से जेल जाने का प्रयत्न कर रही थीं वे आखिर न्यूकास्टल में बड़ी धूमधाम से पकड़ा कर जेल में पहुंच गईं, यह ख़बर हम गत सप्ताह में दे चुके हैं। पाठकों को स्मरण होगा कि इन वीराङ्गनाओं ने फ़्रीनाखन की सीमा पर पकड़ाने के लिये कैसा प्रयास किया था, इस चेष्टा में सफल न होकर इन्होंने कई दिनों तक फेरी फिर कर पकड़ाने का यत्न किया। वहां पर भी किसी प्रकार पकड़ाने के लक्षण न देख कर यह स्त्रियां वाकरस्ट की सीमा पर पकड़ाने के लिये गईं पर वहां से भी निराश होना पड़ा। निदान इन्होंने ऐसा प्रण किया कि जब तक सरकार ३ पौंड के कर को रद्द करने का वचन न देगी, तब तक न्यूकास्टल तथा उसके आस पास के भारतीय मजूरों को हड़ताल करने का उपदेश देंगी। इस बार इन वीर नारियों के उपदेश ने भारतीय मजूरों पर जादू का सा असर किया और हड़ताल की आग भभक उठी, अन्त में सरकार को विवश होकर इनको पकड़ना पड़ा। मजिस्ट्रेट की टीका से विदित हुआ कि सरकार की इन स्त्रियों पर पहिले से ही कोपदृष्टि थी। इन वीराङ्गनाओं को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं और इस अङ्क के साथ इन वीराङ्गनाओं के चित्र भी प्रकाशित करते हैं। आशा है कि पाठकगण इस चित्र को शीशे में मढ़वा कर यत्नपूर्वक रखेंगे।"

सत्याग्रहियों की भरमार

न्यूकास्टल के ब्रजमोहन, भागीरथी, राम खेलावन, कृष्णा, स्वयम्बर, रामप्रकाश, गोकुल, चीनापन, मुन्नू और शेख फ़रीद, डरबन के रत्न स्वामी पिल्ले, रामकृष्ण, पपइया और येन्थनी सबेसटियन, चार्लिस्टन के रामस्वामी गवण्डर और पुन स्वामी को ता० २४ अक्तूबर को ट्रांसवाल की सीमा में घुस आने के अपराध में तीन तीन मास की कड़ी क़ैद का दण्ड मिला। मेरीत्सबर्ग के हनुमन्त वेंकट स्वामी और डरबन तथा न्यूकास्टल से डामनी फ्रैन्सीस, कन्दा स्वामी वेडीवल मुडली, शेनमग्रनदोरा स्वामी, जोज़फ़ मेरीयम और गयादीन महाराज, जोहांसबर्ग के सुब्रह्मणि पिल्ले, अनामले, थोराफ्रैन्सीस और मणिलाल गान्धी को २७ अक्टूबर को वाकरस्ट में तीन तीन मास की कड़ी क़ैद का दण्ड मिला। जब गान्धी के पुत्र मणिलाल ने देखा कि हम अपने इस वेश से नहीं पकड़े जायंगे तब यह मिरज़ई, धोती दुपट्टा और पगड़ी बान्धकर भारतीय पोशाक से वाकरस्ट जा पहुंचे। इमीग्रेशन अमलदार इनको यह नूतन पोशाक देखकर पहिचान न सका और मजिस्ट्रेट के सामने पेशकर जेल का दण्ड दिलाया।

ट्रान्सवाल को कूच।

ट्रान्सवाल की सीमा पर रुकावट।

स्त्रियों, बालकों तथा विद्यार्थियों सहित फ़ीनिक्स आश्रम के प्रवासियों का आनन्द वर्धक समुदाय

दक्षिण अफ्रिका में हड़ताल करनेवाला प्रथम दल ।

मि. प्रागजी देशाई न्यूकासल के भारतीय हड़तालियों की सहायता करने के अपराध में पकड़े जाकर ३ मास के लिये बड़े घर भेजे गये और मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ़ ट्रांसवाल की सीमा में बिना परवाने के प्रवेश करने के कारण ३ मास के लिये जेल में ठेले गये। मि. लालमुहम्मद और मि. पिल्ले योंहीं दण्डित हुये। डेनहाउज़र के हड़तालियों को काम न करने के अपराध में २-१ मास की जेल हुई जिनकी संख्या लगभग ७५ थी। न्यूकासल के ३०० मजूरों को लेकर मि. थम्बीनायडू ट्रांसवाल की सीमापर जा पहुंचे। बेलङ्गी कोयले की खान के मजूर सुन्दर और बंगर को छः छः मास के जेल की सज़ा हुई। सुन्दर केवल १७ वर्ष का युवक है। इन लोगों में से भी एक दल जेल जाने के लिये प्रस्थित हो गया।

इस सुअवसर पर लो० गान्धी ने राजस्व सचिव जनरल स्मट्स को पत्र लिखकर जनाया कि यदि आप अब भी चेतें और ३ पौन्ड के कर के रद्द करने की प्रतिज्ञा करें तो हम भारतीय मजूरों को फिर काम पर लौट जाने को कहेंगे। पर इस आवश्यक सूचना पर जनरल स्मट्स ने ध्यान तक न दिया।

न्यूकासल में १६० भारतीय मजूरों को काम पर न जाने के अपराध में न्यायाधीश ने ६६ मास के कठिन कारावास का दण्ड दिया। न्यूकासल से जब भारतीय मजूरों ने जेल जाने के अभिप्राय से चाकरस्ट को कूच किया उस समय दो बालकों की मृत्यु होगई। एक सर्दी की अधिकता से मरा, उसने मरते समय अपनी माता से कहा कि 'मरनेवाले के लिये क्या शोक करना है जो जीते हैं उनके लिये परिश्रम करना चाहिये'। अहा! यह वाक्य क्याही मर्म भेदी है, क्या भारतीय बालकों के अतिरिक्त अन्य जातियों के बालकों में भी इतने साहस, स्वार्थत्याग और दृढ़ता का प्रमाण मिल सकता है? कदापि नहीं! दूसरा बालक नदी में डूबकर मरगया। देशसेवा के लिये इन दोबालकों का आत्मसमर्पण दक्षिण अफ्रिका के इतिहास में सदा के लिये चमकता रहेगा।

न्यूकासल, डंडी लेडीस्मिथ, चार्लिस्टन आदि स्थानों से सैकड़ों भारतीय मजूर पकड़ पकड़ कर जेल में ठूंस दिये गये जिनकी संख्या लिखना अब कठिन है। जब जेल में बिलकुल स्थान नहीं रहा तो सरकार ने 'मजूरों के डीपो' को जेल बना दिया और उसी में बिचारे हड़ताली क़ैदी जाने लगे। और उनसे कोयलों की खानों में काम लिया जाने लगा।

लोकमान्य गान्धी पकड़े गये

ता० ६ नवम्बर को लोकमान्य गान्धी ४००० भारतीय मजूरों को साथ लेकर ट्रांसवाल की सीमा पार करने लगे। उस समय का दृश्य बड़ाही करुणाजनक था। झुण्ड के झुण्ड भारतवासी चाकरस्ट की सीमा में घुसने लगे। स्त्रियां अपने छोटे बच्चों को कांख में दबाये सरहद पर कर रही हैं, पुरुष अपने खाने के पदार्थ शिर पर रखे हुए सीमा के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। विदित होता है कि एक बड़ा भारी सेनादल किसी देश को विजय करने के लिये जा रहा है। सेनापति लो० गान्धी उनको दृढ़ता और साहस के साथ बढ़े चलने का उपदेश देते चले जाते हैं। स्त्रियां इस कूच में शामिल न की जायं ऐसा विचार किया गया था पर उनके देशसेवा के जोश को देखकर किसी को उनके रोकने की हिम्मत न पड़ी। उस समय यह प्रत्यक्ष देखने में आया कि इनके शरीर में सीता और गार्गी का रक्त विद्यमान है। 'आनन्द ध्वनि' और 'बन्देमातरम्' की पुकार के साथ यह सेनादल ट्रांसवाल की सीमा में घुस पड़ा और चानकरस्ट नगर के बाहर जाकर अपना पड़ाव डाल दिया, पुलिस से कुछ करते धरते न बना।

दूसरा एक दल न्यूकासल की ओर से आ पहुंचा। जिसका चार्लिस्टल में पड़ाव पड़ा, मि. केलनबेक इस दल के सम्हालने के लिये चार्लिस्टन गये। मि. गान्धी पहिले दल के साथ थे। उसी स्थान पर एक बालक भीड़ में दब कर मर गया। ट्रांसवाल की सीमा पर ५००० भारतवासी इकट्ठा हो गये। गोरे लोग इनकी सहनशीलता, इनके साहस और इनकी वीरता देख कर मुग्ध होते थे और भारतियों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति दर्शाते थे। ६ नवम्बर को लो० गान्धी पामफ़ोर्ड स्थान के निकट पकड़े गये और शेष सब दल छोड़ दिया गया। उन लोगों ने अपने कूच को जारी रक्खा। दूसरे दिन लो. गान्धी वाकरस्ट के मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किये गये। उनके ऊपर अनधिकारी मनुष्यों को ट्रांसवाल में घुसाने का अभियोग लगाया गया। लो. गान्धी ने ज़मानत के लिये प्रार्थना की। सरकारी वकील के घोर विरोध करने पर भी मजिस्ट्रेट ने लो. गान्धी को ज़मानत पर छोड़ना स्वीकार कर लिया। अतः महात्मा गान्धीजी ५० पौन्ड (७५० रु०) की ज़मानत पर छोड़ दिये गये और आप तत्काल ही कूच के साथ जा मिले। प्रिटोरिया के एक तार से विदित हुआ कि इस दल को पकड़ कर सरकार भारत के लोकमत में अधिक हलचल मचाना नहीं चाहती है। लो. गान्धी ने पकड़े जाने के बाद इस आशय का एक तार सरकार भेजा कि "सत्याग्रह के मुख्य प्रचारक को सरकार ने पकड़ा है यह बड़े आनन्द की बात है। पर इसके साथ हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि मुझको पकड़ कर जिस मार्ग का अवलम्बन किया गया है वास्तव में वह दया की दृष्टि से अत्यन्त घातक है। सरकार को शायद यह ज्ञात होगा कि इस दल में १२२ स्त्रियां और ५० बालक भी हैं। इन लोगों को केवल जीवन रक्षा के लिये थोड़ा थोड़ा भोजन मिलता है। इस अवस्था में मुझे पकड़ कर सरकार ने न्याय और दया के विरुद्ध कार्य्य किया है। गत रात्रि को मुझे पकड़ा गया था उसी समय मैं बिना किसी से कुछ कहे चला आया हूं। इस लिये सम्भवतः वह क्रोध से आतुर हो जांयगे। हम सरकार से नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि मुझको उस कूच में सम्मिलित होने की आज्ञा दें अथवा सरकार उन सबों को रेलगाड़ी में बैठा कर 'टालस्टाय फ़ार्म' में पहुंचा दे और साथ ही उनके भोजन का प्रबन्ध कर दे। यदि उन मनुष्यों में से विशेषतः उन स्त्री और बच्चों में से किसी की भी मौत होगई तो इसका उत्तरदाता सरकार को होना पड़ेगा।"

ता० ७ नवम्बर को लो. गान्धी स्टांडरटोन के समीप दूसरी बार पकड़े गये और स्थानीय मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किये गये। वहां लो. गान्धी ने अभियोग का समय बढ़ाने को कहा, तदनुसार मजिस्ट्रेट ने लो. गान्धी के वचन पर उनको छोड़ दिया। अतः अभियोग २१ नवम्बर तक मुलतवी रक्खा गया। लो. गान्धी ने वहां से छूटते ही तुरन्त अपने दलके साथ कूच का नक़ारा बजाया। डंडी के मजिस्ट्रेट के परवाने से लो. गान्धी ग्रेलींगस्टाड में तीसरी बार पकड़े जा कर डंडी में लाये गये और लो. गान्धी की समस्त सेना को पकड़ कर रेलगाड़ी में बैठा सरकार ने नेटाल में ला छोड़ा। वालकरस्ट में सरकारी सेना की छावनी पड़ गई ताकि कोई भारतवासी ट्रांसवाल की सीमा में न घुसने पावे। न्यूकासल के निकटवर्ती बैलंगी के कोयले की खान के एक भारतीय मजूर को गोरे स्वामी ने जान से मार दिया।

लो. गान्धी के पकड़े जाने की ख़बर पाकर भारतीय लोकमत में घोर हलचल मच गई। माऊंटएजकोम्ब, वेरुलम, टोंगाट आदि स्थानों में हड़ताल की आग भभक उठी। दरबन के मि. सोराबजी पारसी और मि. मोतीलाल दीवान ने मजूरों को काम पर लौट आने को कहा पर उन

लोगों ने किसी की बात न मान कर अपनी हड़ताल को बराबर कायम रखा।

लोकमान्य गान्धी की जेल

ता० ११ नवम्बर को लो. गान्धी का अभियोग डंडी के मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया। लो.गान्धी ने अपने को दोषी कहा। मि. गोडफ्रे ने क़ायदे के अनुसार भारी से भारी दण्ड देनेका निवेदन किया। लो. गान्धी ने अपने बयान में कहा कि "मुझको अपनी ओर से भारतीय प्रजा के न्याय के लिये कहना चाहिये कि जो अपराध मेरे ऊपर लगाया गया है उसका दायित्व मैं नेटाल के एक पुराने रईस के तौरपर अपने माथे पर लेता हूं। हम यह मानते हैं कि इन लोगों को एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में दाखिल कर देना उचित है। मेरा यह भी कहना है कि कोयले की खान के स्वामियों को हानि पहुंचाने की मेरी बिलकुल ईच्छा नहीं है पर हड़ताल से इन व्यापारियों को भारी हानि हुई है यह जानकर हमको बड़ा खेद हुआ है। मजूर रखनेवाले गोरे स्वामियों से मेरा सविनय निवेदन है कि यह ३ पौन्ड का कर जो हमारे देश बन्धुओं पर बोझ स्वरूप है, इसको रद्द करने का प्रयत्न करना चाहिये। माननीय गोखले को जनरल स्मट्स ने इस कर को रद्द करने का वचन दिया था, इस वचन को अब पूरा करना चाहिये। जब तक यह कर रद्द न कर दिया जाय तब तक हड़ताल कायम रखने और भीख मांग कर पेट भरने को अपने देशवासियों को बराबर सलाह देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। बिना कष्ट उठाये इस अन्याय का अन्त नहीं होगा"। इसके उत्तर में मजिस्ट्रेट ने कहा "कि लो० गान्धी ने अपराध स्वीकार किया है। लो० गान्धी एक सभ्य, सुशिक्षित और सद्गृहस्थ हैं वह सरकारी कायदे का जान बूझ कर उल्लङ्घन करते हैं। जब तक यह हड़ताल शान्त न होगी तब तक सरकार ३ पौंड का कर रद्द करने के लिये कुछ विचार करे, यह असंभव है। लो० गान्धी ने अपने उपदेश से भारतीय प्रजा को कष्ट में डाल रखा है, हम भारतीय मजूरों को सलाह देते हैं कि वह लो० गान्धी की बात न मान कर काम पर लौट जाय। क़ायदा भङ्ग करने के अपराध में लो० गान्धी के समान उच्च गृहस्थ को हमको दण्ड देने पर बाध्य होना पड़ा है, इसके लिये मुझे अत्यन्त शोक है, पर मुझे अपना कर्तव्य पालन करना आवश्यक है। अतः हम लो० गान्धी को ६ पौंड (६०० रु०) जुर्माना अथवा ६ मास के कठिन कारावास का दण्ड देते हैं।" लो० गान्धी ने स्पष्ट और शान्त स्वर से कहा कि हम जेल में जाना पसन्द करते हैं। लो० गान्धी के दर्शन करने के लिये न्यायालय से बाहर भारतवासियों का एक भारी दल एकट्ठा था। सिपाही बड़ी चतुरता से उनको जेल में ले गये। मि. गोडफ्रे ने जेल पर जाकर लो० गान्धी से भेंट की। उनके कथन से ज्ञात हुआ कि लो० गान्धी बड़ी उमङ्ग में हैं और हड़ताली भाइयों को सन्देशा भेजा है कि जब तक ३ पौंड का कर रद्द न हो जाय तब तक हड़ताल को जारी रखना चाहिये।

ता० १३ नवम्बर को लो० गान्धी को डंडी से वाकरस्ट में लाया गया और उन पर अनधिकारी मनुष्यों को ट्रांसवाल में घुसाने का अभियोग चलाया गया। लो० गान्धी को अपराधी मान कर मजिस्ट्रेट ने ३ मास की क़ैद का दण्ड दिया। कुल एक वर्ष के लिये लो० गान्धी को कारावास का दण्ड मिला।

मि० हेनरी पोलक की जेल

लो० गान्धी जब वाकरस्ट में पकड़े गये तब मि० पोलक उनसे आवश्यक कार्य्य के लिये भेंट करने को गये और उन्होंने गान्धी सेना को सँभालने का भार अपने ऊपर लिया। एशियाटिक रजिस्ट्रार मि. चीमनी ने ग्रेलींगस्टाड के निकट भारतीय दल को पकड़ कर नेटाल को भेजना

चाहा। उसने दुभाषिये के द्वारा भारतीयों से पूछा कि 'तुम लोगों के पास ट्रांसवाल की सनद है कि नहीं' भारतीय दल ने उत्तर दिया कि हम लोगों के पास सनद नहीं है। मि. चीमनी ने सब को पकड़ कर नेटाल की हद पार करने की आज्ञा दी। भारतीय मजूरों ने कहा कि हमको ट्रांसवाल जाने के लिये हमारे नेता लो० गान्धी आज्ञा दे गये हैं। हम किसी दूसरे के कहने की कुछ परवाह नहीं करते, ऐसा कह कर आगे बढ़े। मि. पोलक ने दौड़ कर इस दल को रोका और भारतीयों को समझाया कि ऐसा करने का लो० गान्धी की आज्ञा है। लो. गान्धी की आज्ञा सुन कर सब शान्तिपूर्वक रेलगाड़ी में जा बैठे और चार्लीस्टन को चले आये। यहां पर सरकारी सेना और खान के गोरे प्रबन्धक मौजूद थे। सिपाहियों के पहरे में मजूर खानों पर काम करने के लिये भेजे गये पर काम करने से उन लोगों ने साफ़ इनकार कर दिया।

भारतीयों के पूरे हितैषी यूरोपियन मि. पोलक भी पकड़े गये और उनके ऊपर इमीग्रेशन क़ायदे की २० वीं धारा के अनुसार अभियोग चलाया गया। मि. पोलक ने लोकमान्य गान्धी और मि. केलनबेक को साक्षी देने के लिये बुलाया। मि. केलनबेक ने साक्षी दी कि मि. पोलक लो. गान्धी से केवल भेंट करने के लिये आये थे। लो. गान्धी ने साक्षी दी कि मि. पोलक भारतवर्ष जाने के विषय में मुझसे बात चीत करने को आये थे और शीघ्र ही दरबन से भारत को प्रस्थान करने वाले थे। यदि मुझको सरकार ग्लेंडस्टाड में नहीं पकड़ती तो मि. पोलक तुरन्त दरबन चले जाते पर मेरे पकड़े जाने पर उन्होंने भारतीय दल को सम्हालने का भार ग्रहण किया। सरकारी वकील ने मि. पोलक को भारी से भारी दण्ड देने के लिये कहा और मि. पोलक ने अपना दोष स्वीकार किया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि यदि तुम भारतीयों की हलचल में योग न दो तो हम तुमको छोड़ देते हैं। मि. पोलक ने कहा कि हम सत्य के पक्षपाती और अन्याय के शत्रु हैं अतः यूरोपियन होते हुए भी भारतवासियों के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। मजिस्ट्रेट ने मि. पोलक को ३ मास की सादी क़ैद का दण्ड दिया।

मि० केलन बेक को जेल

सत्याग्रहियों के प्रसिद्ध यूरोपियन मित्र मि० केलनबेक को भी दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने पकड़ा और इनके ऊपर भी अनधिकारी मनुष्यों को ट्रांसवाल में प्रवेश कराने का दोषारोपण किया गया। मि. केलनबेकने अपने बयान में कहा "कि बहुत दिनों से हम लो० गान्धी के मित्र हैं, इसलिये भारतीयों के कष्ट का मुझे पूरा अनुभव है। सरकार ने प्रतिज्ञा भङ्ग की है, यह भी मैं जानता हूं। भारतीय जनता को सरकार का सामना करने के लिये सत्याग्रह के संग्राम के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। महात्मा टाल्स्टाय के अनुयायी होने से सत्याग्रह के प्रति मेरी पूर्ण श्रद्धा और सहानुभूति है। हम न्यायाधीश को जताना चाहते हैं कि सरकार के क़ायदे के प्रतिकूल सत्याग्रह की लड़ाई में हम निरन्तर योग देते रहेंगे। ऐसा करने से एक अत्यन्त त्रासदायक प्रश्न के निर्णय करने में सरकार और भारतीय प्रजा की हम सेवा करते हैं, ऐसा हमारा विचार है।" सरकारी वकील ने मि. केलनबेक को भी भारी से भारी दण्ड देने के लिये कहा और मि. केलनबेक ने भी ऐसीही प्रार्थना की। निदान न्यायाधीश ने मि. केलनबेक को भी ३ मास के सरल कारावास का दण्ड दिया।

मेरीत्सबर्ग जेल में उपवास

सत्याग्रही क़ैदियों को मेरीत्सबर्ग की विराट जेल में रक्खा गया था, वहां उन्होंने घी मिलने के लिये जेल के कर्मचारियों से बार बार प्रार्थना की। उनको खाने के लिये प्रातःकाल ८ औंस मकई का

हलवा (काफ़िरों की मीली), दोपहर को ८ औंस चावल का भात, ४ औन्स बीन्स की दाल तथा २ औंस शाकपात और सायंकाल को ६ औंस डबल रोटी तथा ४ औंस मकई का हलवा मिलता था। यह भारतीय क़ैदियों की ख़ुराक है, भिन्न भिन्न देश के क़ैदियों को भिन्न भिन्न प्रकार का भोजन मिलता है। जब सत्याग्राही क़ैदियों ने घी के लिये कहा तो उन्हें स्पष्ट उत्तर मिला कि छः मास तथा इससे अधिक समय के क़ैदियों को सप्ताह में तीन दिन घी देने का नियम है अतः तुम लोगों को घी मिलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। इस असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिये सत्याग्रही क़ैदियों ने दृढ़ निश्चय करलिया।

ता० १० नवम्बर सोमवार के दिन सत्याग्रही क़ैदियों ने इस प्रश्न पर उपवास करना आरम्भ किया कि जब तक घी नहीं मिलेगा तब तक भोजन नहीं करेंगे। सोमवार को लगभग ४० सत्याग्रही क़ैदियों ने उपवास किया। उस दिन जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने समस्त सत्याग्रही क़ैदियों को पत्थर तोड़ने के काम पर भेजा, ताकि भूख की ज्वाला से यह लोग भोजन करने लगजांय। दिन भर सभों ने पत्थर तोड़े, सायंकाल को जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मि. गोकुलदास गान्धी, मि. मणिलाल गान्धी, मि. प्रागजी देशाई, मि. सुरेन्द्र नाथ मेढ़, मि. रावजी भाई पटेल और भवानी दयाल को यह कह कर अलग कोठरी में बन्द किया कि यही छः इस आन्दोलन के नेता हैं। शेष सबको भांति भांति की धमकी दी जाने लगीं, धमकी का प्रभाव भी अवश्य पड़ा और कई एक भूख की ज्वाला को सहन नहीं कर सके। दूसरे दिन मंगल वार को समस्त उपवास करने वाले सत्याग्राहियों को फिर पत्थर तोड़ने के काम पर लगाया गया और इन छः सत्याग्राहियों को पृथक पृथक पिंजरे में बन्दकर पत्थर तोड़ने का काम दिया गया। इस मध्य में जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कईवार आकर इन छः नेताओं को धमकाया और कहा कि तुम्हारे दुष्टतापूर्ण उपदेश के प्रभाव से छोटे छोटे बच्चे खाने बिना मरते हैं। इन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग आपको कष्ट न देकर ख़ुदही कष्ट उठा रहे हैं। मंगल की शाम को नगर के मजिस्ट्रेट ने आकर इन छः सत्याग्राहियों को बुला कर ख़ूब धमकी बताई कि यदि तुम लोग इस आन्दोलन को नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारी क़ैद की मियाद बढ़ा दी जायगी। आज तुम घी मांगते हो, कल दूध मांगोगे. परसों फल मांगोगे और नरसों अन्य कोई वस्तु मांगोगे तो इन सब पदार्थों को देने में सरकार असमर्थ है। यदि तुमको घी दूध खाना था तो घरही क्यों न रहे। जेल में आने का क्या प्रयोजन था। सत्याग्रहियों ने उत्तर दिया कि जब काफ़िर क़ैदियों को नित्य एक औंस चर्बी दी जाती है तो सत्याग्रही क़ैदियों को क्यों नहीं घी मिलना चाहिये। यदि आप क़ैद की मियाद बढाने की कृपा करें तो हम लोग आपके बड़े ही कृतज्ञ होंगे। हम लोग नित्य नई नई वस्तुओं की मंगनी करेंगे, यह बात अनर्गल है, पर जब तक घी न मिलेगा तब तक उपवास चालू रखेंगे। मजिस्ट्रेट प्रत्युतर में 'यदि तुम लोग मर जाओगे तो गाड़ने के लिये भूमि की कमी नहीं है' कह कर चलते बने। इधर उपवासियों ने अपना उपवास जारी रखा।

आज बुधवार का दिन है। सत्याग्राहियों के मुख पर भूख के रंग से उदासी छा गई है। जेलके कर्मचारी उनको समझाने के लिये भांति भांति की चेष्टा कर रहे हैं। भवानी दयाल अपनी कोठरी में मूर्छित पड़े हैं, क़ैदी उनको उठाकर चिकित्सा-लय में ले गये। अन्य कई एक उपवास के घायल सत्याग्राही अस्पताल में लाये गये। मि. रामदास गान्धी, रेवाशंकर सोढा, शिवपूजन, बद्री, आदि अनेक युवक अस्पताल में पहुंच गये। उपवासियों से अस्पताल भर गया। जेल का यह भयानक

दृश्य था। उधर बाहर खबर पहुंचते ही मेरीत्स-बर्ग के भारतीयों ने एक सार्वजनिक सभा कर राजस्व सचिव की सेवा में तार भेजा कि सत्याग्राही कैदियों को शीघ्रही घी मिलने का प्रबन्ध होना चाहिये। न्यायधीश और कारागार के कर्मचारियों ने भी सरकार को इस भयानक आन्दोलन की सूचना दी। बुधवार के सायंकाल समस्त उपवासी कैदियों को पंक्तिबद्ध खड़ा कर राजस्व सचिव का तार सुनाया गया कि यद्यपि तीन मास के कैदियों को घी देने का नियम नहीं है और भारत सरकार के सम्मत्यानुसार भारतीय कैदियों का भोजन नियत किया गया है तथापि सरकार दयाकर केवल सत्याग्राही कैदियों को प्रति दिन एक औंस घी देना स्वीकार करती है, आशा है कि इससे सत्याग्रहियों को सन्तोष होगा। निदान सत्याग्रहियों ने भोजन करना आरम्भ किया।

नोर्थ कोस्ट में हड़ताल

हड़ताल का जोश धीरे धीरे सर्वत्र फैलता गया। नोर्थ कोस्ट में हड़ताल ने भीषणरूप धारण किया। ता० १३ नवम्बर को 'नेटाल एडवरटाइज़र' नामक दैनिक पत्र लिखता है कि लामर्मी और वेरुलम दोनों स्थानों में भारतीय हड़तालियों पर बन्दूक, पिस्तोल और लाठियों से सजे हुए सिपाहियों ने आक्रमण किया और इन सिपाहियों ने भारतीयों का खूब मार मारी तथा बलात्कार काम पर ले आने का प्रयत्न किया। 'नेटाल एडवर टायज़र' ने इस लड़ाई का 'फुलर फलेट' के मैदान में लड़ाई' नाम रखा है। इन लोगों का केवल यही अपराध था कि यह लोग वेरुलम में आकर अपने देशवासियों को हड़ताल करने के लिये उत्तेजित करना चाहते थे। इनकी लाठियां पहिले ही छीन ली गई थीं।

ता० ११ नवम्बर को टोंगाट के चीनी के कारखाने में काम करनेवाले २००० भारतीय मजूरों ने हड़ताल कर दी। जिन गोरों के यहां केवल २५, ५० मजूर थे उन लोगों ने भी काम छोड़ दिया। होटल और अन्य गोरी संस्थाओं में काम करने वाले भारतीयों ने भी हड़ताल कर दी। कितने ही मनुष्य चाकसक्राल और स्टेंगरकी और हड़ताल कराने के अभिप्राय से गये। ११ बजे घुड़सवार और काफ़िर सिपाहियों की टोली आ पहुंची जो, ग्राम और कोठियों में घूमने लगी। मजूरों में बड़ा जोश दीख पड़ता था। ता० १४ नवम्बर को टोंगाट में हड़ताल ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया, मारपीट की नौबत आ पहुंची। कई एक मनुष्य घायल हुए। छः भारतीयों का काफ़िर सिपाहियों ने भालों से मार कर घायल किया।

इफ़ल्टोड की शायर कोठी में काम करने वाले भारतीय मजूरों ने काम छोड़ दिया जो दो चार देश शत्रु मजूर काम करते थे उनको गोरे स्वामी ने केवल १ दिन की ख़ुराक देना चाहा जिसको लेनेसे उन्होंने इनकार किया, तब साहब का विवश होकर एक सप्ताह के लिये भोजन देना पड़ा। वेरुलम में इकट्ठा हुए मजूरों को सभा वालों ने पीछे कोठियों पर लौटाना चाहा, इसके लिये जनरल ल्युगीव ने भारतीय नेताओं से सहायता मांगी। नेटाल इण्डियन एसोसियेशन की तरफ़ से मि. सोराब जी पारसी आदि सज्जनों ने जाकर मजूरों को समझाया कि तुम लोग अपने अपने घर जाकर बैठो, काम नहीं करना। तुमको खाने को रसद गोरे स्वामियों की ओर से दी जायगी। सिपाही दल दूर खड़ा हुआ यह कौतुक देख रहा था। मजूरों को पीछे कोठी पर लौटा देना सिपाहियों के लिये असंभव था पर भारतीय नेताओं की सहायता ने सिपाहियों का बड़ा काम किया।

डारमोंड होटल के सामने भारतीयमजूर और सिपाहियों में मारपीट हो गई। इस लड़ाई में ८ भारतीय घायल हुये जो अस्पताल के मेहमान

बनाये गये। इस दुर्घटना से प्रवासी भारतीयों में घोर हलचल मच गई। गोरों के समझाने पर उन्होंने कहा कि जब तक हमारे नेता जेल से न छोड़ दिये जायगे और यह ३ पौन्ड का खूनी कर जब तक रद्द न कर दिया जायगा तब तक हम लोग काम पर कदापि नहीं जायगे। ता० १४ नवम्बर को मांउटएज़कोम्ब में लगभग २००० मजूरों ने हड़ताल बोल दी। मि. केम्पबल कहते हैं कि 'यह मनुष्य शांत और सरल स्वभाव के हैं यह लोग बड़ी सभ्यतापूर्वक बर्तते हैं। वे कहते थे कि हम लोगों ने अपने स्वामियों के हानि पहुंचाने के अभिप्राय से काम नहीं छोड़ा है प्रत्युत अपनी जाति और जन्मभूमि की प्रतिष्ठा के लिये इस आन्दोलन में भाग लिया है।' टोंगाट के आस पास समस्त कोठियाँ बन्द हो गई। हड़ताली मजूरों को इकट्ठा कर मि. एकट ने काम पर जाने को समझाया पर फल कुछ नहीं हुआ।

हड़तालियों की दृढ़ता

यह किम्वदन्ती फैल गई थी कि भारतीय मजूरों को भय दिखा कर काम छुड़ाया जाता है। इसमें कहां तक सत्यता है यह जनरल ल्युकीन के एक वृत्तान्त से ज्ञात होगा। लमर्सी के आस पास कतिपय मजूर अपने देशवासियों के भय से काम छोड़ बैठे हैं, ऐसी खबर पाकर जनरल ल्युकीन वहां आ पहुंचे और दुभाषिये के द्वारा उन्हें समझाया कि यदि तुम काम पर जाओगे तो सरकार तुम्हारे जान माल की रक्षा करेगी। इसका कुछ उत्तर नहीं मिला, तब फिर जनरल ल्युकीन ने ऐसा ही समझाया। थोड़ी देर के बाद मजूरों ने उत्तर दिया कि "मि. गान्धी हमको अपनी दृढ़ता पर क़ायम रहने का उपदेश कर गये हैं। यदि पुलिस की इच्छा हो तो हमको गोली से मार दे पर हम काम पर नहीं जायगे"। जनरल ल्युकीन अपना सा मुंह लेकर लौट आये।

ता० १५ नवम्बर को यह ख़बर मिली कि गोरे स्वामियों ने मजूरों को खाना देना बन्द कर दिया है। इसकी जांच करने के लिये इण्डियन 'ओपीनियन' के एक प्रतिनिधि ने वेरुलम में जाकर जांच पड़ताल की तो ख़बर सत्य प्रमाणित हुई। सिपाहियों ने मजूरों को बाहर जाने से रोक रखा था, बिचारे मजूर भूखे दिन काट रहे थे। नेटाल "इण्डियन एसोसियेशन" ने तुरन्त सरकार को तार भेजा कि हमारे देशवासी ऊख की कोठियों में भूखे मर रहे हैं उनको रसद देना एसोसियेशन अपना कर्तव्य समझती है। इसके उत्तर में सरकार ने कहा कि जनरल ल्युकीन से मिल कर आप लोग इसका प्रबन्ध करें। यह ख़बर मिलते ही मि. शम्भी नायडू, मि. लालबहादुर सिंह, मि. सोराबजी, मि. सराफ़, मि. मूसा, मि. ऊधवकान्हजी आदि कई एक स्वयं सेवकों को साथ लेकर कोठियों में गये और वहां रसद देना आरम्भ किया। स्वयं सेवकों का कहना था कि भारतीय मजूर बड़े दृढ़ और उमङ्ग में हैं। ता० १६ नवम्बर को माउंटएज़कोम्ब में सिपाही और मजूरों से लड़ाई हो गई। इसका कारण यह था कि कई एक भारतवासी स्टेटमेनेजर के घर पर जाकर काम करने वाले मजूरों को हड़ताल करने के लिये समझाते थे इसलिये सिपाही बुलाये गये सिपाही और भारतीयों में बात होते २ लड़ाई होने लगी जिसमें कई भारतवासी और एक सिपाही घायल हुआ। उसी दिन माउंटएज़कोम्ब की ऊख की खेती में आग लग गई। मि. केम्बल ने भारतीयों से सहायता मांगी। उस समय २००० भारतीयों ने जाकर आग बुझाई। जनरल ल्युकीन वहां उपस्थित थे उन्होंने भारतीय नेताओं को कोठियों में जाने की आज्ञा दी।

ता० १७ नवम्बर को डरबन में असाधारण जोश फैल गया। एकाएक भारतीय मजूरों ने काम छोड़ दिया। दल के दल भारतीय मजूर मार्गों पर घूम रहे थे। रेलवे, कार्पोरेशन और चीनी के कार-

खानों के मजूरों ने हड़ताल कर दी, मैला उठाने वाले मजूरों ने काम छोड़ दिया, इससे कर्मचारियों को बड़ा चिन्तित होना पड़ा। किसी को काम पर लौटा देने की स्थिति नहीं थी। एडींगटन अस्पताल में एक भी मजूर नहीं रह गया। अस्पताल के सञ्चालकों ने नेटाल इण्डियन एसोसियेशन से सहायता के लिये प्रार्थना की, कितने ही मनुष्यों को काम पर आने को कहा गया पर सब प्रयत्न निष्फल गया और मजूर अपने व्रत पर दृढ़ रहे। ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया त्यों त्यों हड़ताल की बढ़ती होने लगी। कलब की बेटरी, दियासलाई के कारखाने के मजूरों और छापेखाने के नौकरों ने भी हड़ताल कर दी। उसी दिन दरबन में एक विराट सभा हुई, सभापति का आसन मि. पारखने ग्रहण किया था। सभा में ५००० भारतवासी उपस्थित थे। माननीय गोखले का तार पढ़ कर सुनाया गया जिसका आशय यह था कि भारतवर्ष के निवासी प्रवासी भाइयों के कष्टदायक समाचार पा कर क्रोध से लाल हो गये हैं और तुम्हारे आन्दोलन के प्रति इनकी पूरी सहानुभूति है। मि. रामअवतार लगनवर्मा ने हिन्दी में भाषण किया। मि. क्रीस्टॉफर जो मेइन लाइन के मोर्चों पर से आये थे उन्होंने भारतीय मजूरों की दशा के सम्बन्ध में बड़ा ही हृदयविदारक व्याख्यान दिया। इन्होंने कहा कि कोड़ों से पीट कर मजूर काम पर भेजे जाते हैं। अन्त में भारत सपूत लो० गान्धी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जन की गई। इसी प्रकार मेरीत्सबर्ग जोहांसबर्ग, प्रिटोरिया, किम्बर्ली, डेलगेग्राबे आदि नगरों में भारतवासियों की सार्वजनिक सभाएं हुईं।

हड़तालियों पर अत्याचार

भारतीय हड़तालियों के साथ बुरा बर्ताव होने लगा इस सम्बन्ध में पारवती नाम्नी स्त्री ने अपनी दुखभरी कहानी ता० १४ नवम्बर को इस प्रकार प्रकट की, "दक्षिण अफ्रिका कोलिरी में मेरा पति दूसरी बार शर्तबन्धी मजूरी का पट्टा लिखा कर काम करता था। उसने भी दूसरे हड़तालियों के समान काम छोड़ दिया। ११वीं तारीख़ को मेरे पति को फिर काम पर लाया गया। कम्पाउन्ड मैनेजर ने कहा कि जब तक काम पर नहीं आओगे तब तक ख़ुराक नहीं मिलेगी। दूसरे दिन खान के मैनेजर ने मेरे पति के साथ कई एक मजूरों को कोड़े से पीटा और बलात् घसीट कर काम पर लेगया। उस दिन उनको थोड़ी सी रोटी के सिवाय खाने को कुछ नहीं दिया गया। १३वीं तारीख़को मेरे पति ने काम करने से इन्कार किया इससे उनके ऊपर चाबुकों की भरपूर मार पड़ी। अन्य कई मजूर भी जूतों, लातों तथा बेंतों से पीटे गये। सब को बलात्कार पिंजरे में बैठा कर जमीन के भीतर काम पर भेजा गया। कतिपय मजूरों के हाथ में हथकड़ी भर कर काम पर लाया गया। रविवार तक इन मजूरों को आधा पेट भोजन दिया गया। खान के आस पास गोरे सिपाही बन्दूक लेकर पहरा देते हैं। वे मजूरों को धमकी देते हैं कि यदि काम छोड़ कर बाहर जाओगे तो गोली से मार दिये जाओगे।"

सनासी नामक एक भारतीय मजूर ने ता० १४ नवम्बर को अपनी दुःखपूर्ण कथा इस प्रकार कही "कि डंडी कोल कम्पनी में मैंने दूसरी बार शर्तबन्धी मजूरी करने का पट्टा लिख दिया था, थोड़े दिन पहले से उस पट्टे की अवधि समाप्त हो गई। इस समय मैं 'बरनसायड कोलिरी' में काम करता हूं। ३ पौन्ड के करके विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये काम छोड़कर मैं कूच में शामिल हुआ। १० वीं तारीख़ की मुझको तथा मेरे कई एक साथियों को डेनहाउज़र के सामने पकड़ा गया। उसी दिन हम लोग खान पर लौटाये गये। रात ज्यों त्यों करके कटी। दूसरे दिन किसी को खाना नहीं मिला। हम लोगों ने कम्पाउन्ड मैनेजर के पास जाकर भोजन मांगा, उसने उत्तर दिया कि

सर बेंजमिन और स्टाफ़।

मि. स्लेटर, प्राईवेट सेक्रेटरी। रायसाहब सरकार। सर बेंजमिन राबर्टसन।

आनरेबिल जनरल जे. सी. स्मट्स।

दक्षिण अफ्रिका से देश निकाले हुये मदरास में।

जब तक काम पर नहीं आओगे तब तक खाने को नहीं मिलेगा। उसने मुझसे डंडी जाने का अनुरोध किया, तदनुसार हम लोगों ने डंडी जाने की राह पकड़ी। उस समय कई एक सिपाही, गोरे मजूर और काफ़िरों को साथ लेकर मैनेजर ने आकर हम लोगों को रोका और चाबुकों से मार मार के पीछे ले गया। चेंगानी नाम्नी भारतीय महिला पर कड़ी मार पड़ी और वह अस्पताल में भेजी गई। बिहारी की पत्नी पर भी भरपूर मार पड़ी।

ता० १२ नवम्बर को डंडी के मजिस्ट्रेट मि. क्रोस दुभाषिया को साथ लेकर खानपर आये, हमको मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया। बिहारी की पत्नी भी उनके समक्ष पेश की गई। हमसे कहा गया कि यदि काम नहीं करोगे तो जैसे इन स्त्रियों पर मार पड़ी है, वैसेही तुम सब पीटे जाओगे। हमने नम्रतापूर्वक कहा कि जब तक ३ पौण्ड का कर रद्द नहीं होगा तब तक हम काम नहीं करेंगे। यह सुनकर मजिस्ट्रेट साहब आग बबूला होगये और कहा कि कम्पाउन्ड को जेल बनाने की घोषणा करदी गई है। यदि काम नहीं करोगे तो तुमको क़ैद की सज़ा देकर इसी खान में काम करने के लिये भेजा जायगा। काम न करने पर भूखे मार डाले जाओगे, चाबुकों की भरपूर मार पड़ेगी। यदि कम्पाउन्ड छोड़कर बाहर जाओगे तो गोली से मार दिये जाओगे। हमारे कई एक साथियों ने अपने शरीर की मार दिखाकर कहा कि काफ़िर सिपाही लाठी, भाला, गदा और तीर लेकर फिरते हैं और गोरे सिपाही बन्दूक़ लेकर घूमते रहते हैं। यह लोग हमारे ऊपर मनमाना अत्याचार करते हैं। हमारे लिये न्यायालय का द्वार बन्द है। खान के स्वामियों के अत्याचार की अब सीमा नहीं है।"

दरबन में छः सहस्र मनुष्यों की सभा

ता० १८ नवम्बर को दरबन प्रवासी भारतवासियों की एक विराट सभा हुई। सभा में छः सहस्र भारतीयों का जमाव था। मि. थम्बी नायडू, मि. सी. आर. नायडू, मि. क्रीस्टोफ़र, मि. जे. एम. लाज़रस, मि. रामावतार लग्नवर्ती आदि सज्जनों ने व्याख्यान दिये। मि. लक्ष्मण पांडे ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि मि. पोलक और मि. केलनबेक को धन्यवाद देना चाहिये जिसका समर्थन मि. थम्बी नायडू ने किया तथा सर्वानुमत से प्रस्ताव पास हुआ। मिसेज़ बी. एस. पिल्ले तथा ट्रांसवाल की अन्य सत्याग्रही स्त्रियों ने तामिल और हिन्दी में भाषण किये, उपस्थित जन समुदाय ने करतलध्वनि से इन वीराङ्गनाओं का स्वागत किया। इन वीर नारियों ने सबको शान्तिपूर्वक आन्दोलन में लगे रहने का आदेश किया। माननीय गोखले का तार पढ़ कर सबको सुनाया गया। मि. शेख़ महताब ने सामयिक भजन गा कर सबको मुग्ध कर दिया।

ता० २१ नवम्बर को दरबन में आठ हज़ार मजूरों ने हड़ताल कर दी। किसी फेरीवाले ने फेरी नहीं की, किसी ने फल फूल नहीं बेचे और न किसी ने गोरों का कोई काम किया। मजूरों के पकड़ने की अन्धा धुन्धी प्रथा जारी हो गई। रेलवे के १३३ हड़तालियों को पकड़ा गया। उनपर मजिस्ट्रेट और सिपाहियों के ऊपर आक्रमण करने का अपराध लगाया गया। जिन लोगों ने इस घटना को अपनी आँखों से देखा था उनका कहना है कि मजिस्ट्रेट मजूरों को समझाने के लिये रेलवे वर्कसपर गये, पर कोई भी मजूर बाहर नहीं निकला। इससे उन मजूरों को घसीट घसीट कर बाहर निकाला गया और चाबुकों से पीटा गया। कई एक घायल मजूर अस्पताल में भेजे गये। ता० २२ नवम्बर को १३३ मजूर न्यायालय में खड़े किये गये। इन पर बिना आज्ञा काम पर अनुपस्थित रहने का दोषारोपण किया गया। सरकारी साक्षियों ने कहा कि रेलवे वर्कस

में जाकर इन लोगों से हड़ताल का कारण पूंछा गया तो उत्तर मिला कि 'हमारे राजा लो. गान्धी ने हमको काम छोड़ने को कहा है। हमारे राजा लो० गान्धी को जेल में डाला गया है। अतः जब तक वह छोड़ नहीं दिये जायगे तब तक हम लोग काम नहीं करेंगे।'

अभियुक्तों की ओर से मि. मौशेल उपस्थित थे, इन्होंने न्यायाधीश को हड़ताल का कारण समझाया और यह भी कहा कि इन लोगों के साथ भीषण अन्याय किया जाता है। घुड़सवार सिपाहियों के द्वारा इन लोगों पर काम करने का दबाव डालने का सरकार को अधिकार नहीं है। यह लोग काम छोड़ कर शान्ति से बैठ जाते हैं, किसी प्रकार का हुल्लड़ नहीं करते। यह लोग अपना कर्तव्य समझ कर क़ायदे को तोड़ते हैं। हथियार वाले सिपाहियों से हड़ताल दबाना अन्याय है। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों को समझाया कि तुम लोगों ने अमुक अमुक शर्तें स्वीकार कर मजूरी का पट्टा लिखा है और उस क़रार के भंग करने के तुम अपराधी हो। अभी तुम लोगों पर यह ३ पौन्ड का कर लागू नहीं होता है। मजूरी की अवधि समाप्त होने पर यदि तुम्हें ३ पौन्ड का कर देना स्वीकार न हो तो अपने देश को लौट जाना। इसके बाद मजिस्ट्रेट ने १२० हड़तालियों को एक एक सप्ताह के कारावास का दण्ड दिया। शेष १० अभियुक्तों को २-२ पौन्ड अर्थदण्ड दिया और ३ को छोड़ दिया। सौथकोस्ट जंकशन के ४१ मजूरों पर बिना परवाने इधर उधर घूमने का अपराध लगा कर प्रत्येक को ७-७ दिन की कड़ी क़ैद का दण्ड दिया गया।

डरबन में हड़ताल बड़े ज़ोरशोर से हुई। हड़तालियों को रसद देने का काम चालू था। नोर्थकोस्ट में टोंगाट तक और सौथकोस्ट में इसपींगो तक हड़तालियों को ख़ुराक पहुंचाई जाती थी। रेलवे और कार्पोरेशन के बर्कस में सिपाही दल रात को फिरता था। जो मजूर काम करना मंज़ूर कर लेता था उसके अंगूठे की छाप लेकर बर्कस में रहने देते थे शेष को घर से निकाल बाहर कर दिया जाता था। हड़ताली मजूर प्रति दिन पकड़ पकड़ कर दण्डित होने लगे। अधिकांश मजूर घर बार रहित बालबच्चों के साथ मारे मारे फिरते थे। शीत, धूप, बरसात, भूख आदि अनेक प्रकार के संकट सह रहे थे। पोयन्ट में जो लोग काम पर नहीं गये, उनका सारा असबाब घरसे निकाल कर बाहर फेंक दिया गया। उनके बर्तन, शीशे आदि चकनाचूर हो गये। कतिपय लोगों का असबाब उनके हाथ भी नहीं लगा, अधिकांश का माल असबाब रद्दी हो गया। पोयन्ट के अधिकारियों ने स्वयंसेवकों द्वारा मजूरों को खाना देना बन्द कर दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि मजूर दल भूख की ज्वाला से पीड़ित हो कर काम पर चले आयें। टोंगाट में २०००, वेरुलम में ३००८, इस्पींगो में १०००, सौथकोस्ट जंकशन में १०००, अमगेनी में ५००, टोलगेट पर ५००, अवोका में ५०० हड़तालियों को नेटाल इण्डियन एसोसियेशन की ओर से रसद दी जाने लगी।

ता० २० नवम्बर को मि. सोराब जी पारसी, मि. अब्दुल हक़, मि. मूसा, मि. लाज़रस, मि. इमामअली और मि. अर्जुन सिंह के नाम से वारन्ट जारी हुआ। मि. सोराब जी इस्पींगो की ओर हड़तालियों को रसद देने के लिये गये थे। शेष समस्त अभियुक्त न्यायालय में जा कर उपस्थित हुये। इन लोगों पर हुल्लड़ मचाने का अभियोग लगाया गया। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों को सूचित किया कि हड़ताल में योग देना छोड़ दें पर किसी ने इस अद्भुत प्रस्ताव को स्वीकार न किया। सब लोग ज़मानत पर छोड़े गये। ता० २१ नवम्बर को मि. सोराब जी, मि. अलबर्ट क्रिस्टोफर, और

मि. आर. भगवान इसी अभियोग में पकड़े जा कर ज़मानत पर छूटे।

पीटर मेरीत्सबर्ग में हड़ताल

ता० २२ नवम्बर को पीटर मेरीत्सबर्ग में भारतवासियों की एक विराट सभा हुई, सभा में लगभग पांच सहस्र मनुष्य उपस्थित थे। धीर सत्याग्रही मि. थम्बी नायडू और पी. के. नायडू भी सभा में पधारे थे। मि. नलैया और मि. मुडले ने हड़ताल को दो सप्ताह मुलतवी रखने का अनुरोध किया, पर यह उद्योग निष्फल हुआ। सभा में इस आशय का प्रस्ताव पास किया गया कि जब तक ३ पौन्ड का कर रद्द न हो जाय तथा लो. गान्धी, पोलक और केलनबेक न छोड़ दिये जांय तब तक हड़ताल का काम जारी रखा जाय। दोनों नायडुओं ने सभा में दिल दहलानेवाले व्याख्यान दिये। वीर थम्बी नायडू ने कहा कि हमारे ऊपर आज एक वजे वारन्ट निकल चुका है पर इसमें कुछ भयकी बात नहीं है। हम जेल जाने के लिये तय्यार हैं। उपस्थित जन समूह को शारीरिक बलका उपयोग न करने के लिये मि. थम्बी नायडू ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में परामर्श दिया। सिपाही लोग मि. थम्बी नायडू को पकड़ने के लिये वारन्ट ले कर सभा में उपस्थित थे। लो. गान्धी के जयघोष के साथ सभा विसर्जन की गई। भारतीय जनता ने दोनों नायडुओं को कान्धे पर चढ़ा कर अपने हार्दिक प्रेम का परिचय दिया। इसके बाद गुप्तचरों ने मि. थम्बीनायडू को पकड़ कर हवागाड़ी में बैठा थाने पर ले गये। वहां से उनको दरबन भेजा गया। उसी दिन वहां पर हड़ताल शुरू हो गई और १५०० मजूर काम छोड़ बैठे। काम छोड़ने के अपराध में सैकड़ों मजूर जेल में ठेले गये, पीटर मेरीत्सबर्ग का विराट कारागार हड़ताली क़ैदियों से भर गया। स्थानाभाव से क़ैदियों को जेल के गिरजे घर में रखना पड़ा।

फुटकर हड़ताल

इलेंगलाख्ल की कोयले की खान में काम करनेवाले १००० मजूरों ने हड़ताल करदी। मजूरदल के नेता पकड़ कर लेडीस्मिथ के न्यायाधीश के सामने लाये गये। न्यायालय के आस पास असंख्य भारतवासी एकत्रित थे। इन लोगों के हाथ से लकड़ी छीन ली गईं। मजिस्ट्रेट ने मजूरों को काम पर जाने को समझाया पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। थोड़ी देर के बाद भारतीय हड़तालियों का एक दल न्यायालय के समीप आ पहुंचा और हर्षध्वनि से पकड़े हुये भाईयों का स्वागत किया। इसपर सिपाहियों ने आकर उनको आगे बढ़ने से रोका पर वे लोग नहीं माने और सिपाहियों को ढकेल कर भीतर जाने लगे। निदान गोरे सिपाहियों ने सीटी बजाकर काफ़िरों को बुलाया। वे लोग लकड़ी और गदा से निःशस्त्र भारतीयों को ख़ूब मारने लगे। इस अमानुषी बर्ताव पर न्यायालय के भीतरवाले दूसरे दल को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन लोगों ने अपने असहाय भाइयों का साथ देना चाहा पर गोरे सिपाहियों ने उनको रोक लिया। गोरे और काफ़िर सिपाहियों ने अनाथ भारतीयों को ऐसा पीटा कि बहुत से भारतवासी घायल होगये। इसपर भी तुर्रा यह कि निःशस्त्र भारतीयों से गोरों के जानमाल की हानि होने की सम्भावना है, ऐसा कहकर लेडीस्मिथ के मेयर ने गोरे स्वयंसेवकों को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहने की आज्ञा देदी। इसके बाद हथियारबन्द गोरों ने नगर में घूम घूमकर भारतीयों को मारना आरम्भ किया। स्थानीय पत्रों ने इस दुर्घटना को लड़ाई के रूप में वर्णन किया था। यहां तक कहा गया कि भारतीय हड़तालियों ने जेल तोड़ कर क़ैदियों को छुड़ाने का प्रयत्न किया था।

नेटाल के चारों ओर हड़ताल होगई। अभी तक नोर्थकोस्ट के टोंगाट तक हड़ताल थी पर

२१ नवम्बरको स्टैंगर, डारनल और जूलूलेण्ड तक हड़ताल की आग धधक उठी। सौथकोस्ट में भी हड़ताल फैलती गई। २२ नवम्बर को अमजीन्टी की रेनल्ड कोठी में ३००० मजूरों ने काम छोड़ दिया। अवोका हेरीसन कोठी के मजूरों ने भी हड़ताल करदी, इसलिये उनको खाने को नहीं मिलता था। जिनके पास थोड़ा बहुत अनाज था उनको उसके पकाने के लिये ईंधन नहीं मिलता था। यह लोग पुरानी सड़ी सड़ाई लकड़ियां बटोर कर खाना पकाने लगे, यह खान के मालिकों से सहन नहीं हो सका, उन्होंने हड़ताली नेताओं को पकड़ाने के लिये वारन्ट मंगाया। पांच छः गोरे और काफ़िर सिपाहियों के साथ मि. हेरीसन ने मजूरों के प्रवास पर जाकर नेताओं को पकड़ा और काफ़िर सिपाहियों को सौंपा। एक दो मनुष्यों ने भागने का प्रयत्न किया पर पीछे से वे भी पकड़े गये। पकड़े हुए मनुष्यों ने अपने को छुड़ाने के लिये अन्य मजूरों को उत्तेजित किया। उन लोगों ने गोरे सिपाहियों पर पत्थर फेंकना शुरू कर दिया और मारामारी भी होगई। कोई ३० गोरे घुड़सवार सिपाही जो दूर से इस झगड़े को देख रहे थे, फ़ौरन घटनास्थल पर आ पहुंचे। अतः इन अभागे मजूरों को ख़ूब पीटा गया और पकड़ पकड़ कर अवोका के थाने में ले गये। इस लड़ाई में कई भारतवासी और ३ सिपाही घायल हुये।

टॉंगाट में चार हज़ार मनुष्यों ने हड़ताल करदी, इनमें से एक हज़ार स्त्रियाँ थीं। मि. थम्बी नायडू, मि. सोरावजी और ट्रांसवाल की ७ वीराङ्गनाओं ने मजूरों को मारपीट न करने का उपदेश दिया। मि. देवचन्द्र, मि. रामस्वामी नायकर आदि ने हड़ताल का समर्थन किया। ट्रांसवाल की सत्याग्रही स्त्रियों ने बड़ाही सारगर्भित व्याख्यान दिया। दल के दल सिपाही टॉंगाट में पहुंच गये और मजूरों को मार मार कर काम पर लौटाने लगे। टॉंगाट की हड़ताल की स्थिति बड़ी भयंकर और दयाजनक होगई, मजूर कहने लगे कि चाहे भलेही मार डालो पर काम पर नहीं जायंगे।

न्यूकासल के मि. लुकर को रात के समय नगर में घूमने के अपराध में पकड़ा गया, न्यायाधीश ने इनको दोषी कह कर दण्ड देना दो मास तक मुलतवी रखा। मि. रीच ने राजस्व सचिव के पास इस आशय का तार भेजा कि न्यूकासल की खान के एक मजूर को जान से मार दिया गया है तथा अन्य मजूरों पर अमानुषी अत्याचार होता है। हड़ताली मजूरों को खाने के पदार्थ देने से भी रोका जाता है, इसका शीघ्र ही प्रबन्ध होना चाहिये।

ता० १९ नवम्बर को मि. यमुनादास गान्धी, मि. रामस्वामी पड़ियाची, मि. फ़क़ीरी नायडू, रहीम मीना, मि. थाली कीम्बर्ली से ट्रांसवाल की सीमा में आ पहुंचे। सरकार ने इनको पकड़कर ३-३ मास की कड़ी क़ैद का दण्ड दिया। दो मजूरों को पकड़ कर दण्डन के न्यायालय में पेश किया गया, सरकारी वकील ने उनको देशनिकाले के दण्ड देने का आग्रह किया पर यह प्रयत्न निष्फल हुआ। स्टान्डरटन के मजिस्ट्रेट ने मि. पी. के. नायडू, राजु नरसु, रहीम खां और रामनारायण को ६-६ मास की क़ैद का दण्ड दिया, पर सज़ा को अमल में लाना ३ मास तक मुलतवी रखा गया।

खानों में मृत्यु

बेलगीच खान में भारतीय मजूर पशुवत् पीटे जाने लगे। एक व्यक्ति की मृत्यु तक होगई। यह ख़बर विलायत और भारत में भी फैल गई। जिन लोगों ने इस भयानक दृश्य को आंखों देखा था उन्होंने कहा कि नायडु नामक मजूर मारते मारते मार डाला गया। इस पर दक्षिण अफ्रिका की सरकार के विरुद्ध कड़ी आलोचना होने लगी, पर

यहां की सरकार ने मारपीट की बात को बिलकुल निर्मूल बताया। सरकार ने केवल मजिस्ट्रेट की बात पर अपना मत प्रदर्शित किया। मि. रीच ने कई साक्षी संग्रह कर लार्ड ग्लैडस्टन को तार दिया कि यहां पर भारतीय मजूर पशुवत् मारे जाते हैं, इसका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है।

नायडू की मृत्यु के सम्बन्ध में सरकार की ओर से कहा गया कि प्राकृतिक कारणों से उसकी मृत्यु होगई है। लार्ड ग्लाडस्टन ने विलायत सरकार को तार भेज कर कहा कि नायडू की मृत्यु मारपीट से नहीं हुई है। भारत के 'सिविल मिलेटरी गज़ट' ने लार्ड ग्लाडस्टन के कथन को असन्तोषजनक कहा और निष्पक्ष जांच करने की सलाह दी। ता० १६ नवम्बर को माऊन्टएज़कोम्ब में जो १६ भारतीय घायल होकर अस्पताल में गये थे, उनमें से एक की मृत्यु होगई।

हड़तालियों के प्रति अन्याय

ता० २२ नवम्बर को वेरुलम के निकट दो भारतीय मजूरों पर मार पड़ने की खबर पा कर मिस श्लेशीन वहां गईं। उन्होंने जांच करके जाना कि दो भारतीय जिनका हड़ताल के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था, वे सार्वजनिक मार्ग से कहीं जा रहे थे। वेरुलम के निकट एक गोरे के घर के सामने जब यह दोनों पहुंचे तो गोरे ने ५ काफ़िरों के साथ इनको आ पकड़ा। अतः गोरे ने काफ़िरों को कहा कि इनके कपड़े उतार नंगा कर दो, काफ़िरों ने इस आज्ञा का पालन किया। तब गोरों ने चाबुक लेकर उनकी पीठ पर खूब मारा, वे बिचारे घायल होकर अस्पताल में गये।

वेलङ्गीच के मजूरों पर मार पड़ने की सूचना पाकर न्यूकासल के भारतीयों ने न्यायमन्त्री की सेवा में तार भेजा कि वेलङ्गीच की खान में मजूरों पर खूब मार पड़ी है, इसमें सन्देह करना भूल है। कई एक चाबुकों से पीटे गये हैं जो आज तक अस्पताल में पड़े कराह रहे हैं। मजूरों को भूखा रखा जा रहा है। घायल और मृत्युप्राय मजूरों के शरीर मजिस्ट्रेट ने कमेटी और उनकी स्त्रियों को नहीं देखने दिये। दरबन नेविगेशन कोलियरी के मजूरों पर भी पशुवत् मार पड़ी है, जिसके चिह्न अब तक विद्यमान हैं। भारतीय कमेटी इस मामले को प्रमाणित कर देने के लिये तय्यार है। इस विषय पर स्वतन्त्र जांच होना चाहिये ऐसी कमेटी की प्रार्थना है।

माऊंटएज़कोम्ब के मजूरों के साथ बड़ा ही घृणित बर्ताव होने लगा। मजूर घर छोड़ कर बाहर भाग गये। उन्होंने जो वर्णन किया है वह अत्यन्त त्रासदायक है। उन्होंने कहा कि बारी बारी से मजूरों को घर से बुला कर काम पर जाने को कहा जाता है, जो काम करने से इन्कार करता है उस पर चाबुकों की मार पड़ने लगती है। इस घृणित अत्याचार से व्याकुल होकर मजूरदल जङ्गल और झाड़ियों में भाग गया है। उनके बाल बच्चे फूट फूट कर रोते हैं। यह लोग काम पर जाने की अपेक्षा जेल जाना उचित समझते हैं। यह लोग अपने कपड़े लिये बिना घर से भाग निकले। इनके बाल बच्चे कहां गये, उनकी क्या दशा हुई, इसका कुछ पता नहीं। यह विचारे कई दिन से भूखे मरते थे, फ़ीनिक्स में लो० गान्धी के घर पर इनको खाने को मिला जिससे इनके मुख पर प्रसन्नता की झलक दिखाई पड़ने लगी। इसके दो घड़ी के बाद कोठी के गोरे हवागाड़ी पर चढ़ कर आये और मजूरों को काम पर चलने का आग्रह करने लगे, पर मजूरों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि काम पर जाने के बदले जेल में जाना हमें पसंद है। फ़ीनिक्स में भारतीय मजूरों का आगमन होने लगा, धीरे धीरे आस पास की कोठियों के बहुत से मजूर आ पहुंचे। इन लोगों को भोजन दिया जाने लगा। मि. फ़क़ीरा ने इन हड़तालियों की अच्छी सेवा की। शायर कोठी के २५ मजूर वहां आ पहुंचे जिनमें अधिक स्त्रियां थीं। इन लोगों को

काम न करने पर कोठी से निकाल दिया गया था। इन्हें मार मार कर काम कराने की धमकी दी गई थी और कई मजूर मारे भी गये थे। फीनिक्स स्थान हड़तालियों से भर गया। मि. फ़क़ीरा, जीवन भाई और लल्लू भाई हड़तालियों की सेवा में दत्तचित्त थे। अश्वारोही सेना स्थान के आस पास चक्कर लगा रही थी। 'इण्डियन ओपीनियन' के सामयिक अंग्रेज़ी सम्पादक मि. वेस्ट ने विरुलम के मजिस्ट्रेट को सूचना दी कि यहां पर चारों ओर से दल के दल मजूर आ रहे हैं। वे पकड़ाने को तय्यार हैं, पर काम पर नहीं जाना चाहते। इसके अतिरिक्त मि. वेस्ट ने राजस्व सचिव को तार दिया कि गोरे मालिकों के अत्याचारों से व्याकुल होकर यहां पर बहुत से मजूर आ पहुंचे हैं। यदि सरकार इनको नहीं पकड़ना चाहती है तो यह लोग यहीं पर रहेंगे। इनको खाने की रसद देना सरकार का कर्त्तव्य है। सरकार की ओर से उत्तर दिया गया कि मजूरों के साथ अनुचित बर्ताव नहीं होता है। ता० २६ नवम्बर को बारह सिपाहियों का दल हवागाड़ी पर मि. वेस्ट के घर पर आ पहुंचा और उनको वारन्ट दिखा कर हवागाड़ी पर चढ़ा कर चलता बना। नेटाल शुगर-स्टेट के मैनेजर आदि गोरे इण्टरनेशनल प्रेस पर जाकर मि. मगनलाल गान्धी से मिले और कहा कि इन मजूरों को कोठी पर जाने को कह दीजिये। पर मजूरों ने मार के भय से कोठी पर जाने से इनकार किया। कोठी पर कोई नहीं मारेगा, ऐसा लेफ़टिनेन्ट क्लार्क ने अपने दुभाषिये के द्वारा मजूरों को विश्वास दिलाया। मजूरों से कहा गया कि यदि तुम लोग काम पर नहीं जाओगे तो भी तुम्हारे साथ कोई ज़ुल्म नहीं होगा। इससे मजूर अपने २ घर लौट गये।

मेरीत्सबर्ग में हड़ताल का जोश

ता० २६ नवम्बर को पीटर मेरीत्सबर्ग में ५००० भारतीय मजूरों ने हड़ताल कर दी। मजूरों में अद्भुत उत्साह और असीम साहस दृष्टिगोचर होता था। जनरल ल्युकीन ३०० सैनिक लेकर वहां जा पहुंचे। मेरीत्सबर्ग में पुनः एक विराट सभा हुई जिसमें मि० पी० के० नायडू और ट्रांसवाल की वीराङ्गनाओं ने बड़े ही प्रभावशाली व्याख्यान दिये। मि. एन. वी. नायक और मि. गोपाल ने भी इस सम्बन्ध में व्याख्यान दिये। प्रसिद्ध सोशीयलिस्ट मि. ग्रीन ने कहा कि यह हड़ताल कोई साधारण हड़ताल नहीं है प्रत्युत भारतवासियों का एक महत्वपूर्ण इतिहास तय्यार हो रहा है। इस महान इतिहास को पढ़ कर भारत की भावी सन्तान के हृदय में स्वदेशभक्ति का बीज अंकुरित होगा। भारतीयों को शान्तिपूर्वक इस आन्दोलन को जारी रखना चाहिये।

सत्याग्रही मि. पी. के. नायडू पकड़े गये और मि. एन. वी. नायक को पकड़ने के लिये वारन्ट निकला। मि. नायक वेद धर्म सभा में भाषण दे रहे थे, उसी समय पुलिस ने उनको पकड़ लिया। इस बर्ताव से प्रवासी भाइयों में घोर उत्तेजना फैल गई और इसको उन्होंने अपने धर्म्म का अपमान समझा। मि. कुली भी पकड़ लिये गये। इन सब अभियुक्तों को ज़मानत पर छोड़ा गया। ता० २७ नवम्बर को प्रेटाऊन से ६०० हड़ताली मेरीत्सबर्ग के लिये प्रस्थान कर गये, यहां उनके खाने पीने का पूरा प्रबन्ध किया गया था।

मेरीत्सबर्ग के भारतीय नौकरों ने मिल कर एक सभा स्थापित की। इस सभा का उद्देश्य यह था कि हड़ताल समाप्त होने पर जो गोरा मालिक किसी नौकर को काम से निकाल देगा उसको हम सब मिल कर बहिष्कार कर देंगे। पोयनटोन के भारतीयों पर भी हमला होने लगा। इस सम्बन्ध में मि. गोपाल ने राजस्व सचिव के पास इस आशय का तार भेजा "कि पोयनटोन इम्पीरियल होटल के सामने कोई ४० हड़ताली इकट्ठा हुये

थे। वहां पर सिपाहियों ने जाकर उनको लकड़ी रख देने के लिये कहा। कई एक मजूरों ने गोरे सिपाहियों के भय से लाठी रख दीं, पर कितनोंही ने ऐसा करने से इनकार किया। इस पर सिपाहियों ने हमला कर सब की लाठी छीन लीं और उन्हें चाबुकों से मारा।"

वेरुलम में भयानक दुर्घटना

ता० २५ नवम्बर को वेरुलम की अदालत में जुदा जुदा कोठियों के १२६ मजूरों को एक एक सप्ताह का जेल दिया गया। ता० २६ नवम्बर को १०८ मजूरों को ७-७ दिन और ३ मजूरों को १४-१४ दिन की क़ैद का दण्ड दिया गया। इन मजूरों ने अदालत में कहा था कि ३ पौन्ड का कर रद्द कर दो और हमारे लोकप्रिय राजा गान्धी को जेल से छोड़ दो, तब हम काम पर जायंगे, अन्यथा अपनी हड़ताल पर दृढ़ रहेंगे। इन मजूरों में कई एक के शरीरों पर कड़ी चोट लगी थी उनके शरीर रक्तमय दीख पड़ते थे। आलकिन्सस्टेट की चीनामा नाम्नी स्त्री की जांघ और गुह्य भाग पर गेंडे के चमड़े के सोटे की मार पड़ने से वह भाग सूज गया था तथा उसपर रक्त जम गया था। एक मजूर को जेल में सख्त मार पड़ने से अस्पताल भेजा गया। कोठियों में विचारे स्त्री और पुरुषों पर मार की बौछार होने लगी, इन्हें भारतीय नेता धैर्य्य देते थे। दो मुसलमान गृहस्थियों को अकारण मारने के आरोप में मि. आरमस्ट्रोंग पकड़े जाकर १०० पौन्ड की ज़मानत पर छोड़े गये। जिन मजूरों को क़ैद की सज़ा दी गई थी उनके घरों का असबाब लूट लिया गया और उनकी स्त्रियां मार कर घर से निकाल दी गई। यह काफ़िर सिपाहियों की करतूत बताई गई।

ता० २७ नवम्बर को मांऊन्टएजकोम्ब के बक्कबर्न स्टेट के तीन मजूरों ने आकर सूचना दी कि वहां पर गोली चलना आरम्भ हो गई है और दो मजूर जान से मार डाले गये हैं, पन्द्रह मनुष्य घायल हुए हैं। उन लोगों का सौगंदनामा लेकर फ़ौरन ही मजिस्ट्रेट के पास भेजा गया। उस कोठी के २० घायल मजूर वेरुलम में आ गये। ता० २८ नवम्बर को ख़बर मिली कि वहां पर ४ मनुष्य मारे गये और ५५ घायल हुए हैं। उनके शिर, छाती, हाथ और पांव में गोली और भाले की चोट लगी थी। डाक्टर हील इन घायल मजूरों की मलहम पट्टी कर रहे थे। स्त्रियां भी मारी गई थीं। उस दिन २५० मनुष्य वेरुलम में आ पहुंचे। इनको साथी लेकर मजिस्ट्रेट ने इन्हें सिपाहियों के हवाले किया। इसके बाद अमस्लोटी के केवल कोठी के ३६० मजूरों को पकड़ कर जेल में ठूस दिया गया।

इस घटना के सम्बन्ध में यहां के दैनिक पत्रों ने यह लिख मारा कि इन कोठियों में जो मजूर काम पर नहीं आना चाहते थे उनको पकड़ कर अलग किया गया और उन्हें दण्ड दिलाने के लिये पुलिस के हाथ सौंपा गया, इसपर अन्य मजूर सिपाहियों पर पत्थर बरसाने लगे और कई मजूरों ने लाठी लेकर सिपाहियों पर आक्रमण किया। इससे विवश होकर गोरों ने गोली चलाई और काफ़िरों ने भाले से मारा। परिणाम यह हुआ कि ४ भारतीय जान से मरे और ३० घायल हुये। कतिपय सिपाहियों के भी घाव लगे हैं।

लोपियर कोठी में मि. सोराबजी मजूरों को मदद देकर आगे बढ़े। पीछे से गोरे मैनेजर ने आकर मजूरों के घर से नमक, मिरचा, चावल, दाल आदि पदार्थों को उठा कर बाहर फेंक दिया। ता० २६ नवम्बर को रीयूनियन के हड़तालियों पर भयानक मार पड़ी। इस घटना की जांच करने के लिये मि. नायडू और मि. दीवान वहां गये। अतः घायलों को उठवा कर अस्पताल में भेजा गया। पुलिस की ओर से कहा गया कि यह हड़ताली मजूर यहां पर हुल्लड़ मचाना चाहते थे, इस तूफ़ान को शान्त करने के लिये 'मारपीट का

हथियार' काम में लाया गया। वहाँ के सरदार मि. बेलार्ड घायल होकर अस्पताल में पड़े थे। भारतीय नेताओं ने उनसे भेंट करना चाहा पर उनको मिलाने से इन्कार किया गया। मि. नायडू और मि. दीवान को लौटते समय पकड़ कर छोड़ दिया गया। पीछे से मि. जेम्स गाडफ्रे और डाक्टर मानजी ने आकर अन्वेषण करके जाना कि चाबुकों की सख़्त मार से घायल होकर यह लोग अस्पताल के पाहुने बने हैं। ग्रीनउड पार्क के ईंट के कारख़ाने में कर्ड्या नामक मजूर पर मैनेजर ने गोली चलाई, पर गोली कान पर लगने से मजूर केवल घायल होकर गिर पड़ा।

भारत में घोर हलचल

जब यहाँ के अमानुषिक अन्याचार के समाचार भारत में पहुंचे तो वहां के लोकमत में घोर हलचल मच गई। स्थान स्थान पर सभा कर प्रवासी भाईयों की सहायनार्थ चन्दे एकत्रित होने लगे। काशी में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में एक सार्वजनिक सभा हुई, उसमें निम्नलिखित कविता सत्याग्रह की लड़ाई के सम्बन्ध में गाई गई थी :—

भारत के प्यारे पुत्रो उपकार करने वाले।
हे मातृभूमि सेवक हे दुःख हरने वाले॥
कुछ भी ख़बर तुम्हें है भारत निवासियों की।
जो देश हित हैं मरते उन सच्चे भाईयों की॥
ज़ंजीर हाथ में है पाओं में बेड़ियां हैं।
बच्चों से छुट गये हैं तकलीफ़ क़ैद की है॥

परदेश अफ्रिका है और उस पर बेकसी है।
लेकिन वहां भी तुमसे उम्मीद लग रही है॥
समझे हुये हैं तुमसे इमदाद कुछ मिलेगी।
कुछ तुमसे धन मिलेगा तकलीफ़ कुछ हटेगी॥
दुख किससे जाके रोवें और किसके पास जाकर।
बच्चों को कैसे पालें और पालें क्या खिला कर॥
गर दिल में रहम हो तो कुछ धन रख दो लाकर।
तकलीफ़ दूर कर दो कुछ देके कुछ दिला कर॥
होगा न यह अकारथ यह दान फिर मिलेगा।
इस लोक में जो दोगे परलोक में मिलेगा॥
ज़माना कहता है तुम सो रहे हो।
कि गफ़लत में अपना सभी खो रहे हो॥
ख़बर लो तड़पते हुये भाईयों की।
सुनो दम निकलते हुये भाईयों की॥

मदद को उठो अफ्रिकन क़ैदियों की।
करो रहम औलाद पर क़ैदियों की॥
बहुत क़ैद में हैं बहुत मर रहे हैं।
बहुत से तुम्हें याद कर रो रहे हैं॥

काशी की भारतीयजनता में ऐसी उत्तेजना फैली कि लोगों ने जनरल बोथा, स्मट्स और फ़िशर की मूर्ति बना उसे गधे पर चढ़ा कर नगर में घुमाया। प्रयाग की जनता ने लार्ड ग्लाडस्टन, जनरल बोथा, स्मट्स और फ़िशर के पुतले बना कर उनमें आग लगा दी।

लाहौर की विराट् सभा में माननीय गोखले ने बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान देकर प्रवासी भाईयों पर होने हुये अत्याचारों का वर्णन किया। सभा में तत्काल ही तीस सहस्र रुपये प्रवासी भाईयों की सहायतार्थ एकत्र हो गये। इसके अतिरिक्त महात्मा एन्डरूज़ ने ४१००) रुपये स्वयम् नक़द दिये। कलकत्ते में महाराजा बर्दवान के सभापतित्व में एक महती सभा हुई, जिसमें बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने दक्षिण अफ्रिका के सम्बन्ध में एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। इसके सिवा बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों में सभा कर प्रवासी भाईयों के प्रति सहानुभूति प्रगट की गई और चन्दा एकट्ठा करने का कार्य्य आरम्भ हुआ। महात्मा एण्डरूज़ और मि. पियर्सन दिल्ली से दक्षिण अफ्रिका को प्रस्थित हुये।

भारत के विद्यार्थियों में भी अपूर्व उत्साह उत्पन्न हुआ। हरिद्वार कांगड़ी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने ३ दिन नदी में पुल बान्ध कर मजूरी का द्रव्य सत्याग्रहियों की सहायतार्थ भेजा। कवि–

दक्षिण अफ्रीकाके
राष्ट्रीय संग्राम अर्थात हड़तालका
एक दृश्य॥

दक्षिण अफ्रीका का राष्ट्रीय संग्राम।

मि. प्राग जी. के. देसाई।
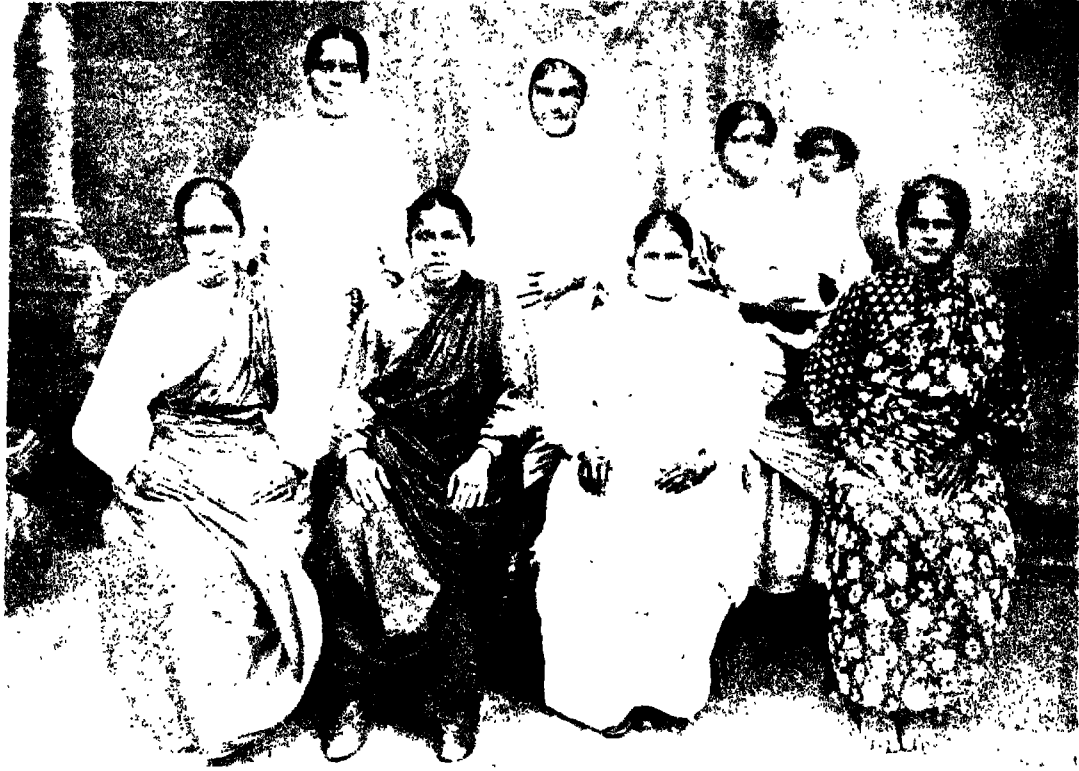
मि. एम. वी. सेठ।

मि. हरीलाल गान्धी।

७ वीराङ्गनायें।

मिस वलियमा, मून स्वामी, मिसेज़ महावीर, मिसेज़ वीरा स्वामी, मिसेज़ वी. एम. नायडू, मिसेज़ मून स्वामी, मिसेज़, वी. एम. पिल्ले

३ वीराङ्गनायें।

मिसेज़ शिवप्रसाद, मिस मिन्नान जी और मिस सोमर जी सत्याग्रह में भाग लेने के कारण जेल भोगने के लिये भेजी गईं।

शिरोमणि बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विद्यालय 'शान्तिनिकेतन' के विद्यार्थियों ने आश्रम का चिकित्सालय स्वतः निर्मित कर मजूरी के पैसे सत्याग्रह फन्ड में दिये। लाहौर, दयानन्द कालेज के विद्यार्थियों ने भी इस फन्ड में सहायता दी। जालन्धर, कन्या महाविद्यालय की देवियों ने भी अपनी सत्याग्रही बहिनों का हाथ बटाने के लिये पैसा इकट्ठा करके भेजा। बङ्गाल, युक्तप्रदेश आदि भिन्न भिन्न प्रान्तों की स्त्रियों ने चन्दा इकट्ठा कर अपने भ्रातृप्रेम का अतुल परिचय दिया।

भारत के समस्त समाचार पत्रोंने एक स्वर से इस महान युद्ध का समर्थन किया। दिल्ली के 'सद्धर्मप्रचारक' और कानपूर के 'प्रताप' का कार्य विशेष प्रशंसनीय है। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह की लड़ाई के विषय में हम 'प्रताप'से दो कवितायें नीचे उद्धृत करते हैं, जो पाठकों के लिये अवश्य रुचिकर होंगीः—

(१)

उस दूर अफ्रिका से आवाज़ आरही है।
उठ जाओ आर्यपुत्रो तुमको जगा रही है॥
जो बन्धुवर तुम्हारे जो इन्डिया के प्यारे।
वह पेट पालने को नेटाल में सिधारे॥
पापी विदेशवाले उनको सता रहे हैं।
दुख देरहे हैं उनको नीचा दिखा रहे हैं॥
कोई न साथ देता उन वीर भाईयों का॥
कोई न हाथ लेता उन धीर भाईयों का॥
करते पुकार उनको बीते हैं साल कितने।
लेकिन न कोई सुनता बिगड़े हैं हाल इतने॥
गान्धी से वीर योधा अब जेल जा रहे हैं।
भारत की वीरता को जग को दिखा रहे हैं॥
प्यारे स्वदेशवासी कुछ तुम भी कर दिखा दो।
भारत का शीश ऊंचा दुनिया को अब बता दो॥
जो वीर देशवाले नेटाल में हैं जाते।
उस नीच देशवाले उनको वहां सताते॥
मोती रतन व हीरे सब दूर तुम बहा दो।
अर्जुन के पुत्र हम हैं वीरों को अब सिखा दो॥
जब एक होंगे तुम सब भगवान साथ देगा।
इङ्गलेण्ड चाहे भूले पर जगदीश खोज लेगा।

(२)

सारा जगत चकित था सुन हिन्द का ज़माना।
सब भांति के गुणों का यह था कभी ख़ज़ाना॥
पर कालचक्र ने अब इसको गिरा दिया है।
सब से जो था यह आगे पीछा बना दिया है॥
अब भारतीय होना अपमान है यह मानो।
तुम अफ्रिका में जाकर यह जाँच करके जानो॥
वह हिन्द के निवासी अपमान पा रहे हैं।
नित काम की कराई कोड़े वे खा रहे हैं॥
सहते विपत्तियों को हैं धर्म पै अचल यह।
भारत के धर्म यश को करते सदा अटल यह॥
धन्य धर्मवीर गान्धी वीरों में वीर तू है।
शान्तिही सुबोध वक्ता धीरों में धीर तू है॥
तुमसा सुयोग्य नेता पाकर के देशवाले।
विस्मित किया जगत को भारत के नामवाले॥
सुन भारतीय सज्जन विनती यही हमारी।
सीखो ऐक्यता इन्हीं की निज फूट भूल सारी॥
दशशीश के विनाशक दुख दूर तब करेंगे।
औरों की आश छोड़ो सब पीर यह हरेंगे॥

जोहांसबर्ग में आन्दोलन

जोहांसबर्ग की हिन्दू जनता ने एक सार्वजनिक सभा कर ११ सत्याग्रही स्त्रियों के प्रति सहानुभूतिसूचक प्रस्ताव पास किया और सत्याग्रहियों के असहाय बालबच्चों को सहायता के लिये प्रचुर धन संग्रहकर अपनी देशसेवा का अपूर्व परिचय दिया। जर्मिस्टन के मि. गंगादीन बन्धु ने भी इस महान कार्यमें विशेष भाग लिया। फ्रीडरोप के बायस्कोप में इस हड़ताल का दृश्य दिखलाया गया। उसमें पहिले ११ स्त्रियों का दल आया, वे अपने देशबन्धुओं से इस महान यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने के लिये प्रार्थना करती हैं। इसके बाद हड़तालियों के कूच, मि.

पोलक और लो० गान्धी का वार्तालाप, लो० गान्धीका पकड़ा जाना, हड़तालियों को पकड़ कर गाड़ी में भरना आदि मर्म्मभेदी दृश्य दिखलाये गये, जिससे भारतीय लोकमत और भी उत्तेजित हो उठा। उस दिन हज़ारों टिकिट बिक गये, दर्शकों की अपार भीड़ थी।

हड़ताल का वर्णन

२५ नवम्बर के असपरेंजा होकसवर्थ में हड़तालियों और सिपाहियों में मारपीट होगई। इस विषय में 'नेटाल मरकरी' का सम्वाद दाता लिखता है कि भारतीयों का पहिले से ही लड़ाई करने का इरादा था। उन्होंने सिपाहियों पर लकड़ी और पत्थर बरसाये थे। सिपाहियों ने बेपरवाही से गोली चलाई जिससे तीन हड़ताली उसी समय मर गये और सात आठ मजूर घायल हुए। एक सिपाही भी इस मारपीट में घायल हुआ। पहले यह हड़ताली शान्त थे और पुलिस के समझाने पर अपने अपने घर चले गये थे, पर पीछे से हड़तालियों ने असजीन्टो जाने की इच्छा प्रगट की, इस पर सिपाहियों के रोकने से लड़ाई होने लगी।

फीनिक्स—गान्धीआश्रम से जिन मजूरों को समझा बुझाकर बोटल कम्पनी की कोठी पर लौटा दिया गया था और जिनसे गोरी कम्पनी ने प्रतिज्ञा की थी, कि काम पर न जाने पर भी तुम्हारे साथ अन्याययुक्त वर्ताव नहीं किया जायगा, दूसरे दिन काम से इन्कार करने पर उनके ऊपर सख़्त मार पड़ी। बहुत से मजूर इधर उधर भाग निकले, कतिपय मजूरों ने गान्धी-आश्रम पर जाकर मार के निशान दिखलाये। उनकी हक़ीक़त लिख कर न्यायाधीश के पास भेजी गई। एक मजूर, जो अर्धाङ्ग वायु से अपङ्ग था, उसके काम पर आने से इन्कार करने पर गोरे मालिक ने उसे घर से घसीट कर बाहर निकाला और उसको भूमि पर पटक कर ख़ूब मारा। उस पर चमड़े के सोटे की मार पड़ी तथा लातों से भी पीटा गया। यह मजूर भागने में असमर्थ था। इसलिये इसे ख़ूब मार पीट कर छोड़ दिया गया और अन्य मजूरों को पशुवत् पीटने का उद्योग किया गया। इस मजूर का कहना था कि उस दिन अधिकांश मजूर निर्दयतापूर्वक मारे गये।

मि० वेस्ट का अनुभव

ता० २५ नवम्बर को मि० वेस्ट को पकड़ कर डरबन में लाया गया। स्टेशन से हवागाड़ी पर बैठाकर वह डरबन की जेल में भेजे गये। उस समय ५॥ बजे थे। वहां मि. वेस्ट को तत्काल ही एक कोठरी में बन्द किया गया और खाने को कुछ नहीं दिया। मि. वेस्ट का कथन है कि हम क्षुधा से ऐसे पीड़ित थे कि रात भर हमको नींद नहीं आई। प्रातःकाल ५॥ बजे हमको कोठरी से निकाला गया। थोड़े समय बाद हमें खाने को पूपू, रोटी, मुरब्बा और शक्कर दी गई, थोड़ी चाय भी मिली। हमने थोड़ा सा पूपू खाया पर रोटी और मुरब्बा खाने योग्य नहीं था। हमने कई बार रुमाल मांगा पर नहीं मिला। एक वार्डर ने कहा कि न्यायालय से लौटने के बाद सब कुछ मिलेगा। थोड़ी देर के बाद हमको रुमाल मिला। पीछे अंगूठे का छाप लेने के लिये हमको एक वार्डर ले गया, वहां क्रम अंगुलियों का अलग अलग और आठ अंगुलियों का एक साथ छाप लिया गया। इसके बाद जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास हमको पेश किया गया। वहां मुझसे पूछा गया कि तुम कभी जेल गये हो या नहीं। मैंने उत्तर दिया कि नहीं। मैंने खाना न मिलने की भी फ़रियाद की, तो मुझसे कहा गया कि समय के पश्चात् आये हुए व्यक्ति को खाना देने का नियम नहीं है। ऊपर के कार्य्यालय पर हम खड़े थे, वहां पर कई एक भारतीय क़ैदी भी विद्यमान थे। एक क़ाफ़िर सिपाही ने एक क़ैदी से टोपी मांग कर उससे अपना हाथ

पोंछा, उसके हाथ में तेल अथवा चर्बी लगी हुई थी। यह देख कर मुझे बड़ा क्रोध आया। कितने ही क़ैदी इस बड़े घर से छूटने की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनके साथ काफ़िर सिपाही और गोरे वार्डर बड़ा बुरा बर्ताव करते थे। बात बात में गाली देते थे। प्रत्येक क़ैदी के हाथ में एक एक थैली थी, उसमें से वे अपना कपड़ा निकाल कर पहिनते थे। कपड़े में से चूने की सी वस्तु निकलती थी। १०॥ बजे हमको गुमचरों के साथ वेरुलम भेजा गया। स्टेशन पर मि. सोराबजी मिले, उन्होंने हमको समाचारपत्र और भोजन दिया। वेरुलम की अदालत में हम पेश किये गये, वहां सरकारी वकील ने हमारे ऊपर लगाये हुये अपराधों का वर्णन किया। सरकारी वकील ने एक सप्ताह के लिये समय मांग कर मुझको ज़मानत पर न छोड़ने के लिये आग्रह किया, पर मजिस्ट्रेट ने हमको १०० पौंड की ज़मानत पर छोड़ दिया।

हड़ताल का प्रसार

अमाटीकुलू के मजूरों ने एकदम काम छोड़ दिया। उनमें अधिक उत्तेजना देखकर सरकार ने अधिकांश मजूरों को पकड़ा। एकटकोठी, माईकस कोठी और एक दूसरी कोठी के १५० मनुष्य जेलकी मियाद पूरी कर बाहर निकले। जेल में उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था ऐसा उनका कथन है। वेरुलम के प्रसिद्ध वकील मि. लेंगस्टन भारतीयों के साथ पूरी सहानुभूति प्रगट करने लगे। मि. वेस्ट, मिसेज़ वेस्ट और मिसेज़ पायवेल वेरुलम से फ़ीनिक्स स्टेशन पर आये, वहां बोटल कम्पनी के ओवरसियर ने उनको मारपीट करने की बारम्बार धमकी दी और उनके सामने चाबुक फिराकर त्रास दिखाया। यह लोग स्टेशन छोड़ कर बाहर निकले तो इनको मारकर घायल कर दिया जायगा, ऐसी सूचना एक बटोही ने मि. वेस्टको दी। संयोग वश एक घुड़सवार नेटाली सिपाही वहां आ पहुंचा और उसने सही सलामत इनको गान्धी-आश्रम पर पहुंचा दिया।

चार्लीस्टन में हड़तालियों की मि. मकदूम ने बड़ी सेवा की, वेरुलम की ओर मि. लालबहादुर सिंह इस कार्य्य में लगे थे।

दरबन जेल में सत्याग्रहियों पर अत्याचार

जब मेरीत्सबर्ग की विराट जेल हड़ताली क़ैदियों से भर गई, यहां तक कि जेल के गिरजा घर में भी हड़ताली क़ैदी ठूंसे गये। तब सरकार ने वहां से मि. थम्बी, मि. प्रागजी देसाई, मि. सुरेन्द्र नाथ मेढ, मि. मणिलाल गान्धी, मि. गोकुलदास गान्धी, मि. रामदास गान्धी और भवानीदयाल आदि १०० सत्याग्रही क़ैदियों को दरबन की सेन्ट्रल जेल में भेजा। साथ ही मिसेज़ थम्बी नायडू, मिसेज़ पी. के. नायडू, मिसेज़ भवानी दयाल आदि ११ सत्याग्रही स्त्रियां भी दरबन की जेल में भेजी गईं। यह क़ैदी समुदाय मार्ग में प्रत्येक स्टेशन पर भारतीय मजूरों को हड़ताल करने के लिये उत्तेजित करता जाता था। ता० २८ नवम्बर को दरबन के स्टेशन पर पहुंचे। वहां मि. सोराब जी, मिस सीलेशन आदि ने सत्याग्रहियों को बधाई दी। स्टेशन, 'हुर्रे हुर्रे' के शब्द से गूंज उठा। सत्याग्रहियों के हाथ में हथकड़ी लगी हुई थीं। समस्त क़ैदियों के मुखपर प्रसन्नता का चिह्न दृष्टिगोचर होता था। उनका स्वार्थत्याग, देशप्रेम और ऐक्यता देखकर गोरे अधिवासी मुग्ध होते थे। उनकी नम्रता, सहनशीलता और कर्म्मनिष्ठा देखकर दर्शकों को आश्चर्य होता था। थोड़ी देर के बाद यह क़ैदी-समूह सेन्ट्रल जेल के द्वार पर पहुंचा। सब क़ैदियों की गणना कर उनको बड़ेघरके भीतर बन्द कर दिया गया। उस रात को उन्हें खाने के लिये जो एक औंस घी दिया गया वह दूरसे ही दुर्गन्ध देता था। सोने

के लिये प्रत्येक क़ैदी को एक एक कम्बल मिला, उसी को ओढ़ो चाहे बिछाओ। वार्डर से फ़रियाद करने पर बुरी तरह से गालियों की बौछार की जाती थी। बात बात में गोरे सिपाही 'कुली' और काफ़िर सिपाही 'मकूला' कह कर पुकारते थे। इस घृणित बर्ताव से सत्याग्रही क़ैदी बड़े खिन्न हुये और उन्होंने इस शपथ पर उपवास करना आरम्भ किया, कि जब तक हमारे कष्ट दूर न किये जायंगे तब तक अन्न नहीं ग्रहण करेंगे। सत्याग्रहियों की इस दृढ़ता और साहस को देख कर जेल के कर्म्मचारी चिन्तित हुये और उन्होंने सत्याग्रहियों पर अमानुषिक अत्याचार करना आरम्भ किया ताकि कठिनाइयों से पीड़ित होने पर इनका कठिन व्रत भंग हो जाय। भवानी दयाल को पाखाने पर बैठे समय एक काफ़िर सिपाही ने आकर घसीटते हुये बाहर निकाला और अन्याय का कारण पूछने पर दो सिपाहियों ने मिल कर धक्का दिया तथा दीवार में ढकेल कर गला दबाया। मि. देशाई को सिपाहियों ने मार कर घायल किया। कई एक सत्याग्रही अपमानित किये गये पर वे अपनी शपथ से विचलित न हुये। पांच दिन तक उपवास का क्रम चालू रहा। पांचवें दिन सायंकाल के समय जेल सुपरेन्टेण्डेण्ट ने आकर सत्याग्रहियों से क्षमा मांगी और प्रायः समस्त दोषों के दूर कर देने का वचन दिया, तब सत्याग्रहियों ने भोजन करना आरम्भ किया। उपवास के समय रेवाशंकर नामक १६ वर्ष का एक विद्यार्थी मूर्छित होकर गिर पड़ा था, डाक्टर ने उनको आराम करने के बहाने से मुर्गी का अण्डा खिला कर धर्म्मभ्रष्ट कर डाला।

हड़ताल का समाचार

जनरल ल्युकीन के सिरिश्तेदार केप्टेन क्लार्क कनेडी ने ता० ३० नवम्बर को सूचना दी कि टॉंगाट के आस पास के कितने ही हड़ताली ग्राम में आने का प्रयत्न करते थे। पुलिस ने उनको लौट जाने को कहा पर उन्होंने इस पर ध्यान न दिया। इस लिये इन्हें बलात्कार वहां से निकाल देने की ज़रूरत पड़ी, इससे कुछ अशान्ति उपजी थी। पर सच्ची ख़बर यह थी कि ३० पुरुष, ८ स्त्री और ७ बालकों का दल अपने हाथों में लाठियां लिये हुये चला आता था। मार्ग में उन्हें सिपाहियों ने लाठियां रख देने को कहा, पर उन्होंने ऐसा करने से इनकार किया, क्योंकि लाठियां उनके लिये उपयोगी थीं। इस इन्कार की परवाह न कर सिपाहियों ने बलात लाठियां रखवा लीं। अधिकांश भारतीय इस झगड़े में घायल हुये, कितनों ही का माथा फूटा, जिससे वह वेरुलम के अस्पताल में पहुचाये गये। इन लोगों को वेरुलम के न्यायालय में खड़ा किया गया, मजिस्ट्रेट ने प्रोटेक्टर के पास जाने की आज्ञा दी। म. वेस्ट उस समय अपने अभियोग के लिये वेरुलम गये थे, उन्होंने मजूरों को दरबन भेजने का प्रबन्ध किया। दरबन में भी ३–४ मनुष्यों को सख़्त मार लगाई गई थी। उनका सौगन्दनामा लेकर न्यायाधीश के पास भेजा गया।

जंक्शन स्टेट, वोटल प्लेन्टेशन और ग्रेटोन लाइन मिला कर ३८ पुरुष और ७ स्त्रियों को जेल से छूटने पर न्यायाधीश की आज्ञा लेकर मि० दुबराम की ज़मीन पर ठहराया गया। वहां हड़तालियों को भोजन वस्त्रादि दिये गये। टॉंगाट से लमरसी जाते हुये, पुलिस दलने इन्हें घेर कर टॉंगाट लाईन पर आगे चलने की आज्ञा दी। तदनुसार हड़ताली सिपाहियों के साथ हो लिये। जब यह ख़बर मि० सराफ़ को मिली तो आप दौड़ते हुये वहां जा पहुंचे और उन्हों ने मजूरों को पकड़ने के लिए सिपाहियों से परवाना दिखाने को कहा। पर सिपाहियों के पास न्यायाधीश का परवाना तो था ही नहीं इसलिये परवाना दिखाने में असमर्थता प्रकट करने लगे। मि० सराफ़ ने कहा कि इन्हें मजिस्ट्रेट के परवाने से लाया गया

था, इन्हें पकड़ने का तुम्हें कुछ भी हक नहीं है। मजिस्ट्रेट का नाम सुनते ही सिपाही मजूरों को छोड़ कर चल दिये। इन्हें लौटाकर मि. लेंगस्टन वकील के कार्यालय में लाया गया और उनके ऊपर होते हुये अत्याचारों के विषय में साक्षी ली जाने लगी। वहां पर सिपाही आकर साक्षी में अड़चल पहुंचाने के अभिप्राय से समस्त हड़तालियों को पकड़ कर ले गये।

माऊंटमोरलेण्ड, अमस्लोटी, बेलमाऊंट और पगनन कोठी के कुल ४२५ हड़तालियों को जेल में भेजा गया। गारलेंण्ड कोठी में इण्डियन एसोसियेशन की ओर से रसद पहुंचाई गई। एसोसियेशन के सदस्यों को आगे बढ़ने से पुलिस ने रोकना चाहा था, पर जनरल ल्यूकीन के आज्ञा पत्र दिखाने पर पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया। पगनन कोठी में जाते समय मार्ग में एक स्त्री मिली थी वह ज़ार बेज़ार रोती जाती थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके पति को जेल का दण्ड मिला और फिर उसको तथा उसके बालक को सताया गया। उस कोठी की अन्य महिलाओं ने भी सताये जाने के लिये फरियाद की। यह स्त्रियां अपने मालिक से रसद लेना अस्वीकार कर वेरुलम जाना चाहती थीं। उन्हें बारकस में रहने के लिये समझाया गया। मालिकों ने उन्हें बारबार समझाया पर वे एक भी न मानीं और आगे बढ़ती ही गईं।

बलेकबर्न, हीलहेड और सेवराईन के समस्त मजूरों ने हड़ताल करदी। चार्ली जंक्शन कोठी के मजूरों को मारा पीटा भी गया, पर किसी ने काम पर जाने का नाम तक न लिया। एसोसियेशन के सदस्यों ने कर्नल क्लार्क से भेंट कर रसद देने में जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसका वर्णन किया। माऊन्टएजकोम्ब जाने के लिये परवाना मांगा गया, इसके उत्तर में कर्नल क्लार्क ने कहा कि यदि अपनी जानको सही सलामत रखना हो तो वहां जाने का विचार त्याग दीजिये। वहां हड़तालियों को पकड़ कर जेल में भेजने का काम जारी है।

ता० ४ दिसम्बर को १०० स्त्रियां अपने बच्चों के साथ वेरुलम के न्यायालय के द्वार पर एकत्रित हुईं, जिनमें से अधिकांश के पति जेल में थे। वह रसद के लिये प्रार्थना करती थीं, इन्हें रसद दिया गया। उन्होंने न्यायाधीश के समक्ष प्रार्थना की कि रात्रि के समय सिपाही और सरदार आकर मार की धमकी देते हैं तथा हैरान करते हैं।

लामरसी के १५० मजूरों को न्यायाधीश ने काम पर जाने को बहुतेरा समझाया पर उन्होंने एक भी न माना। विवश होकर न्यायाधीश ने प्रत्येक को एक एक सप्ताह का कारागार का दण्ड दिया। मि. सी. आर. नायडू को टोंगाट से पकड़ कर वेरुलम की अदालत में पेश किया गया। इन्हें २५ पौन्ड की जमानत पर छोड़ा गया। वेरुलम से ४०० हड़ताली कैदियों को दरबन की जेलमें भेजा गया। जनरल ल्युकीनकी ओर से बार बार सूचना दी गई कि नोर्थकोस्ट में मामला शान्त है, पर कोई मजूर काम पर नहीं गया।

नोर्थकोस्ट में जिन मजूरों की शर्तबन्धी अवधि का पट्टा पूरा हो गया उनको ३ पौन्ड के कर न भरने पर गोरे मालिकोंने दण्ड का पात्र मान कर अपने काम पर रखा। सरकार को विदित होने पर भी इसका उचित उपाय न किया गया। वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है।

मेरीत्सबर्ग वेदधर्म सभा के स्थान में भाषण करते हुये मि. ग्रीन ने कहा कि हड़ताली नेताओं ने म्युनिसिपलटी और अस्पताल के नौकरों को काम पर कायम रहने का उपदेश देकर अपनी उदारता और दूरदर्शिताका परिचय दिया है। साथही सरकार ने हड़ताली नेताओं को पकड़ कर अपनी अनुदारता, अदूरदर्शिता, कृतघ्नता और अपकारिता का परिचय दे डाला है। भारतीयों और

सरकार का काम एक दूसरे से उलटा है। मि० ग्रीन ने कहा कि काले और गोरे में रंग भेद के सिवा अन्य कोई भेद नहीं है। कतिपय गोरे और भारतवासी धनाढ्य अन्याय से कुचला रहे हैं। इन्हें ऐक्यता पूर्वक अपने सामान्य शत्रुओं के साथ लड़ना आवश्यक है। चार्लिस्टन में १८ हड़ताली मजूरों को बिना परवाने के रहने के अपराध में पकड़ कर ७—७ दिनकी जेलकी सजा दी गई।

६ दिसम्बर को प्रातःकाल इण्डियन एसोसियेशन के प्रतिनिधि मि० थम्बी नायडू और मि० वेस्ट ने जनरल ल्युकीन से भेंट कर क्षुधा पीड़ित हड़तालियों को भोजन पहुंचाने का प्रबन्ध कर देने के लिये निवेदन किया। केप्टन क्लर्क भी वहां पर उपस्थित थे। कोठीके मालिकों की आज्ञा बिना एसोसियेशन के प्रतिनिधियों को कोठी में जाने के लिये जनरल ल्युकीनने मना किया। प्रतिनिधि पुलिस के निरीक्षण में रह कर रसद बांटें तथा मजूरों से आवश्यकतानुसार अंग्रेज़ी में बात करें, इस शर्तको भी जनरल ल्युकीनने स्वीकार नहीं किया। प्रतिनिधि हड़तालियों को अपने प्रणपर दृढ़ रहने का आदेश करते हैं, ऐसा अभियोग जनरल ने प्रतिनिधियों पर लगाया। अन्त में यह निवेदन किया गया कि भिन्न भिन्न कोठियों के हड़तालियों की संख्या से एसोसियेशन को सूचित किया जाय और एसोसियेशन की ओर से भेजी हुई रसद को अमुक व्यक्ति के द्वारा हड़तालियों को बांट दिया जाय, इस शर्त को भी जनरल ल्युकीन ने अस्वीकार कर दिया।

ट्रांसवाल की ७ सत्याग्रही स्त्रियां, जो बहुत दिनों से पकड़ाने के लिये प्रयत्न कर रही थीं, उनमें से २ स्त्रियां डरबन में बिना परवाने के फेरी करती हुई पकड़ी गईं। किन्तु थोड़ी देर के बादही छोड़ दी गईं, इससे इन स्त्रियों को बहुत चिन्तित होना पड़ा।

बेलनगीच खान में अन्याय

बेलनगीच कोयले की खान में भारतीयों पर कैसा अत्याचार किया गया, इस विषयमें अनामली नामक व्यक्ति का इस प्रकार का कथन है:—हम बेलनगीच की खान में १ वर्ष ४ मास से स्वतन्त्र मजूर के समान नल (पानी के कल) का काम करते हैं। हमने अपना काम ता० १६ नवम्बर को छोड़ा है। ता० १८ वीं अक्टूबर को खान के समस्त मजूरों ने काम छोड़ दिया था उस समय हम हड़ताल में सम्मलित नहीं हुये थे। एक मित्र ने नल का काम न छोड़ने के लिये आदेश किया था। ट्रांसवाल के कूच से पीछे लौटनेवाले मजूरों को हमने देखा था। उनको खानपर लाया गया था। कार्य्यालय के सामने वे लोग बैठे थे, वहां पर चारों ओर घेरने के लिये सब सामग्री पड़ी हुई थी। मनुष्यों ने पूछा कि, यह सब पदार्थ यहां क्यों पड़े हैं, उनलोगों से कहा गया कि जेल बनाने के लिये हैं। इस पर वह कहने लगे कि हम लोग खानपर कैद होना नहीं चाहते हैं, यदि हमें कैद ही करने की इच्छा हो तो न्यूकासल की जेल में ले जाना चाहिये। कई एक व्यक्ति बाहर जाना चाहते थे। वहां दो गोरे और दो काफ़िर सिपाही थे, सिपाहियों ने इन्हें धक्का मारकर पीछे लौटाया। पर भारतियों ने आगे बढ़ना चाहा, इस पर सिपाहियों ने खान के गोरों को बुलाया। स्मटकी कोनग हाम और पिल्ले घोड़ों पर चढ़े हुये वहां आ पहुंचे। सिपाही और खान के गोरे, हड़तालियों के पीछे दौड़े। कम्पाउन्ड मैनेजर ने पुल पर चढ़कर भरतियों की तरफ़ अपनी बन्दूक तानी। स्मटकी ने अपना पिस्तोल निकाला और अन्य मनुष्यों ने लाठी, चाबुक और तीर ले कर हड़तालियों पर आक्रमण किया। उस समय हम वहां पर उपस्थित थे। तीन मनुष्यों को नीचे गिरते हुये हमने देखा था। दो मजूरों को बड़ी चोट लगी, उन्हें उठाकर ले जाते हमने देखा था। एकका नाम था गोविन्द और दूसरेका कुसफ़।

अन्य सब मजूरों को मारपीट कर पीछे लौटाया गया। कम्पाउन्ड मैनेजर ने बाबू अबदुल सायबु और माणिक्यम नामक नेताओं को पकड़ कर ख़ूब मारा, अन्योंपर भी मार पड़ी। सब ८ मनुष्य घायल हुये। मार मार कर मैनेजर को सौंपा जाता था, मैनेजर इन्हें चाबुक से पीटता था, फिर इन्हें काफ़िरों के अधीन किया जाता था। वे दुष्ट इन्हें लाठी, चाबुक, लात और मुक्कों से मार मार कर कोठरी में बन्द कर देते थे। मो० गान्धी के पीछे चलने से उन्हें मेहना मारा जाता था।

प्रातःकाल मजिस्ट्रेट आये, उन्होंने अपने दुभाषियों के द्वारा मजूरों को समझाया कि बिना सूचना दिये काम छोड़ देने से छः मास क़ैद का दण्ड मिलेगा, यदि मजूरों को क़ाबू में रखने की ज़रूरत पड़ेगी तो खानवालों को चाबूकों से मारने का हक़ दिया गया गया है। ऐसे न्यायाधीश कहलाने वाले अन्यायी के मुख से वचन निकले। एक हिन्दी भाषा बोलने वाले ने अपने ऊपर पड़ी हुई मार के लिये फ़रियाद की, पर मजिस्ट्रेट ने उसकी बात को टाल दिया। भारतीय मजूरों को खाने के लिये कच्चे चावल दिये गये, पर उनके पास रांधने का कोई साधन न होने से बिचारे भूखे तड़पते रहे।

तीसरे दिन स्वतन्त्र मजूरों को न्यायालय में भेजा गया, इन्हें खान पर पीछा जाकर काम करने को कहा गया। शर्तबन्धे मजूरों को बलात् काम पर लगाया गया। नायडु जो मर गया, उसे हम अच्छी तरह से जानते हैं। नायडु को लाठी से मारते हुये हमने कम्पाउन्ड मैनेजर को देखा था।

सत्याग्रही क़ैदियों से भेंट

मिस स्लेशीन और मि० वेस्टने डरबन जेल में कतिपय सत्याग्रही क़ैदियों से भेंट करना चाही, पर उन्हें कहा गया कि तुम्हारा क़ैदियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये तुम क़ैदियों से नहीं मिल सकते हो। दोनों ने जेल सुपरेन्टेण्डेन्ट को कारण बताने के लिये आज्ञा मांगी, पर उन्हें अपमान पूर्वक 'नहीं' कह दिया गया। कोई धारा भी नहीं बताई गई। मेरीत्सबर्ग की जेल में मि० एन० बी० नायक ने मिसेज़ गान्धी से भेंट करके मालूम किया कि श्रीमती को केवल ८ केले और २ नारंगी दैनिक भोजन मिलता है इतनेही में श्रीमती जी अपना जीवन निर्वाह करती हैं। मि० पटेल ने मि० रावजी भाई और मि० मगन भाई से भेंट कर पीटर मेरीत्सबर्ग के जेल की हक़ीक़त मालूम की। डरबन की जेल में मिस स्लेशीन ने मि० मणिलाल गान्धी और मि० रामदास गान्धी से भेंट कर जेल के अत्याचारों के सम्बन्ध में बात चीत की। मि० मोतीलाल दीवान ने मि० गोकुलदास गान्धी से, मि० लालबहादुर सिंह ने मि० गुलाबदास से और मि० त्रिलोकी सिंह ने रघुबर से भेंट की। श्रीमती राजदेवी ने मिसेज़ भवानीदयाल से और श्रीयुत कुंजविहारी सिंह ने भवानीदयाल से भेंट करके बाहर का हालचाल सुनाया।

क़ैद की सज़ा होने के एक मास बाद अमुक व्यक्ति क़ैदी से मिल सकता है और इसी प्रकार क़ैदियों को महीनेमें एक पत्र लिखनेकी भी आज्ञा है। 'अच्छा चाल चलन' G.C. और 'तारा' Star का चिन्ह पाये हुये क़ैदियों से महीने में दो बार भेंट हो सकती है, तथा इन्हें दोबारपत्र लिखनेका भी नियम है।

हड़ताल का भोग

फ़ीनिक्स बोटल कम्पनी के एक मजूर के ऊपर सख़्त मार पड़ी, उसकी साक्षी लेकर वह मजिस्ट्रेट के पास भेजा गया, इस मजूर का नाम था सुभाई। वेरुलम में फ़रियाद करने के बाद इस अपंग मजूर को कितने ही दिनों तक गान्धी-आश्रम पर रक्खा गया। ता० ३० नवम्बर को सायंकाल एस० ए० एम० आर० का एक व्यक्ति औरनेटाल शुगर स्टेट का कम्पाउन्डर गाड़ी लेकर सुभाई को ले जाने के लिये आये। पूंछने पर उत्तर

मिला कि इसको माऊन्टएजकोम्ब के अस्पताल में ले जाते हैं। वहां रेडडील के डाक्टर स्ट्रेटम इसकी बीमारी की देख भाल करेंगे। सुभाई की स्त्री दमे के रोग से पीड़ित होकर अचेत पड़ी हुई थी। इस तरफ़ भी कम्पाऊन्डर मि. केम्बल का ध्यान आकर्षित किया गया, वह फ़ीनिक्स कोठी में थी। उस बिचारी को अपने पति के अस्पताल जाने की खबर नहीं थी। मि. केम्पबल ने कहा कि इसे भी इसके पति के साथ अस्पताल में रख कर दमे के दमन के लिये औषधि दी जायगी। पर यह जानकर शोक हुआ कि इस अभागिन के लिये ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। पीछे सुभाई को बिना आज्ञा कोठी छोड़ कर चले जाने और मालिक का सामना करने का अभियोग लगाकर वेरुलम के न्यायालय में खड़ा किया गया। किन्तु फिर यह यह अभियोग पीछे ले लिये गये।

ता० १० दिसम्बर को देशभक्त सुभाई वेरुलम में अपने नश्वर शरीर को त्याग कर स्वर्गवासी हुआ। दूसरे दिन डाक्टर हील तथा डाक्टर फ़िशर ने सुभाई की देह को चीड़ फाड़ कर देखा। उस समय इण्डियन एसोसिएशन की ओर से डाक्टर कुपर और नानजी पारसी वहां पर उपस्थित थे। स्वर्गवासी सुभाई की दहनक्रिया करने के लिये उसके मृतदेह को ता० ११ दिसम्बर को वेरुलम से दरबन में लाया गया। स्वर्गवासी की पत्नी और पुत्रादि मृतक के साथ ही दरबन में आये। सुभाई जिस कोठी में काम करता था उस कोठी के ७० हड़ताली इस दाहक्रिया में सम्मिलित हुये थे। इस महान क्रिया में लगभग ३०० मनुष्यों ने भाग लिया। मि० वेस्ट, मिसेज़ वेस्ट मिसेज़ पायरल, मिस मेलटीनो, मिस श्लेशीन आदि यूरोपियन भी मृतक की रथी के साथ जा रहे थे। मृतक और उसके परिवार के एक साथ चित्र लेने के बाद मृतक को चिता पर सुलाया गया और विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया गया। नेटाल इण्डियन एसोसिएशन, ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन, जोहांसबर्ग टामिल बेनीफ़िट सोसायटी, प्रिटोरिया टामिल बेनीफ़िट सोसायटी, दरबन ज़रथोस्त अंजुमन, फ़ीनिक्स गान्धी—आश्रम और मृतक के कुटुम्बियों की ओर से पुष्पों की माला समर्पित की गई थीं। भारतीय प्रजा के अमुक भाग की दासत्व शृंखला के बन्धन को मुक्त करने के लिये इस महान युद्ध में आत्म-समर्पण करनेवाले एक साधारण व्यक्ति को इतना अधिक मान दिया गया।

भारतीय कमीशन का निर्वाचन

दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने प्रवासी भारतीयों के कष्टों की जांच करने के लिये अन्त में कमीशन चुना। कमीशन के जस्टिस सर विलियम सोलोमन प्रधान बनाये गये और मि० ई० आल्ड एसलन, के० सी. और मि. जे० एस० वायली, के० सी०, कमीशन के सदस्य निर्वाचित किये गये। कमीशन को निम्न लिखित विषयों की जांच करने के लिये अधिकार दिया गया:—(१) नेटाल के भारतीयों की हड़ताल में जो दंगा फ़िसाद होने की खबर निकली है, इस तूफ़ान का क्या कारण था तथा यह बखेड़ा किस लिये आरम्भ हुआ। इस विषय की तहक़ीक़ात करना। इस बखेड़े को शान्त करने के लिये सैनिक बल का कितना प्रयोग किया गया तथा इसका प्रयोग करना आवश्यक था या नहीं, और हड़ताली कैदियों पर जेल में अत्याचार होने का आरोप लगाया गया है। इन सब विषयों की जांच करना। (२) उपरोक्त विषयों की तहक़ीक़ात करके उनमें से किस बात के सम्बन्ध में सूचना दें।

जस्टिस सर विलियम सोलोमन कई वर्षों तक केप में वकालत करते रहे। सन १९०२ से यह ट्रांसवाल के सुप्रीमकोर्ट के सर्वोच्च न्यायाधीश के पद पर प्रतिष्ठित हैं। यह पहिले भी कई कमीशनों में चुने गये थे।

मिसेज़ पोलक

सत्याग्रहियों की प्रसिद्ध शुभचिन्तक।

मिसेज़ सोन्जा श्लेशीन

आप कई वर्षों तक महात्मा गांधी की प्राइवेट सेक्रेटरी रहीं। आपने ट्रान्सवाल के भारतीय संयोग में मिसेज़ वागेल के साथ बड़ी दक्षता पूर्वक कार्य्य किया। भारतीय स्त्रियों के कार्य्य में जीवन डालने वाली आप कट्टर सत्याग्रही महिला थीं।

हनीफ़ा बीबी

(मिसेज़ शेख़ महताब की माता)

आपने भी सत्याग्रही होने के कारण ३ मास कारागृह वास किया।

मिसेज़ शेख़ महताब

भारतीय मुसलमान सत्याग्रही महिला।

आप को भी जेल भोगना पड़ा।
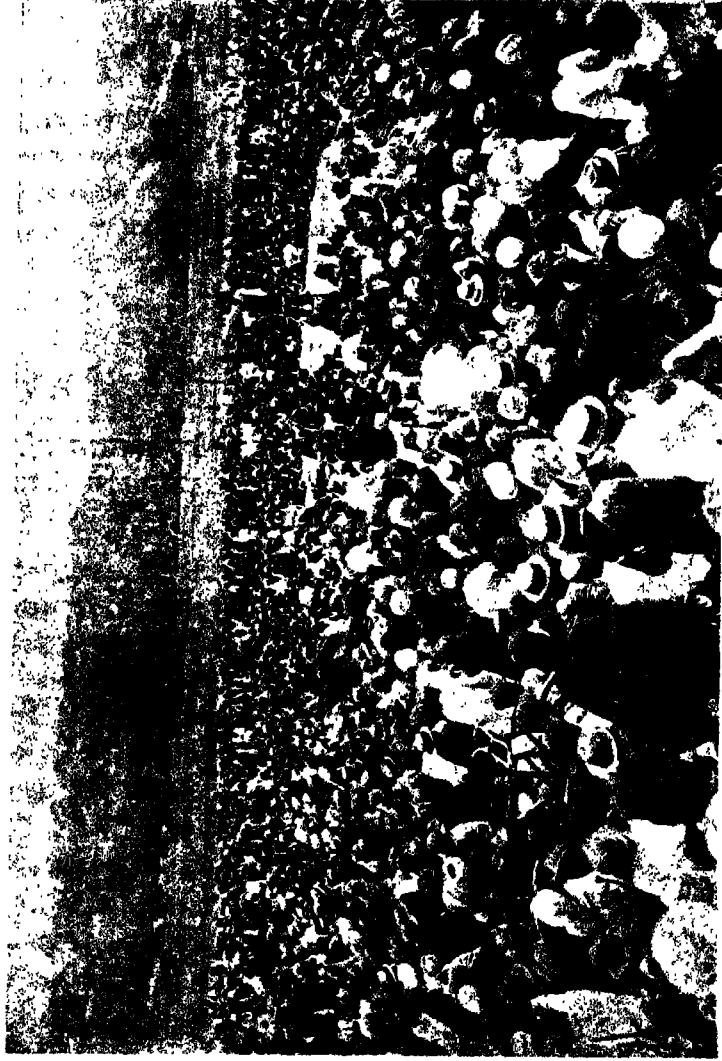
डर्बन में विराट सभा।

मि. ई० ओल्ड असलेन के० सी०, ट्रांसवाल के एक प्रख्यात वकील हैं। यह एकबार केप पार्लीमेन्ट के सभासद् चुने गये थे। बोर राज्य में न्यायाधीश बनाये गये थे। ट्रांसवाल की पार्लीमेंट के भी यह सदस्य नियत हुये थे। सन् १८९४ में अटर्नी जनरल थे। बोरयुद्ध में योधा के समान भाग लिया था। हाल में यह जोहांसबर्ग और प्रीटोरिया में वकालत करते हैं।

मि. जे० एस० वायली के० सी०, नेटाल के एक प्रसिद्ध नेता हैं। यह नेटाल के वकील वर्ग के मुख्य अगुआ हैं। प्रान्तिक धारा सभा के एक सभासद् भी हैं। नेटाल की प्राचीन धारा सभा में यह दो बार निर्वाचित किये गये थे। डरबन के ख़ुश्की लश्कर के लेफ़्टिनेन्ट करनल हैं।

कमीशन के प्रति भारतीयों का विरोध

ता० १४ दिसम्बर को नेटाल इन्डियन एसोसियेशन का डेढ़ सहस्र मनुष्यों की उपस्थिति में एक सार्वजनिक अधिवेशन मि. अब्दुल क़ादिर बवाज़ीर के सभापतित्व में निर्विघ्नतापूर्वक संगठित हुआ। सभापति ने अपने व्याख्यान में कहा कि:—"सरकार ने भारतीयों के कष्टों की जांच करने के लिये जो कमीशन चुना है, उसमें भारतीयों का एक भी प्रतिनिधि नहीं लिया गया, वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है। मि. वायली एक सैनिक अमलदार हैं, इनसे भारतीयों का कल्याण होना दुस्तर है। यह ३ पौन्ड के करके अनुकूल अपना मत प्रदर्शित कर चुके हैं। मि. असलन पर भी भारतीय जनता विश्वास नहीं कर सकती है, इन्हें भी भारतीयों से घोर विरोध है और यह ट्रांसवाल के एक कट्टर गोरे हैं।" अन्त में मि. विदेशी महाराज ने स्वर्गीय सुभाई के परिवार के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये प्रस्ताव पेश किया, जिसका समर्थन देशभक्त थम्बी नायडू ने किया। दूसरा प्रस्ताव मि. लाज़रस गेब्रीयल ने इस आशय का पेश किया कि:—"हड़ताल के सम्बन्ध में भाग लेनेवाले मनुष्यों के साथ अन्याय होने के विषय में जाँच करने के लिये जो कमीशन चुना गया है, उस के प्रति भारतीय जनता अपनी अप्रसन्नता प्रकट करती है, और यह सभा सरकार से आग्रह करती है कि भारतीयों की ओर से भी कोई प्रतिनिधि इसमें शामिल किया जाय"। इस प्रस्ताव का मि. जे० बी० लाज़रस ने समर्थन किया तथा मि. एम० बी० नायक, श्री अम्बाराम महाराज और मि. गुलाबसिंह के अनुमोदन तथा सर्वानुमत से प्रस्ताव पास हुआ।

मेरीत्सबर्ग में भारतीत जनता की एक सार्वजनिक सभा हुई। सभा में मि. एल० एम० ग्रीन भी आये थे। सभा में यह प्रस्ताव पास हुआ कि इस कमीशन में भारतीयों का एक भी प्रतिनिधि नहीं है। अतः इस कमीशन से भलाई की आशा करना भूल है। यहां की जनता इस कमीशन के प्रति घोर विरोध प्रकट करती है। इसके अतिरिक्त जोहांसबर्ग, पोचेस्टरुम, किम्बर्ली, केपटोन आदि स्थानों में भी भारतीयों ने सभा कर कमीशन के प्रति असन्तोष प्रकट किया। भारतीय जनता की ओर से कमीशन में सर जेम्स रोज़इन्स और मि. सराय नर को चुनने का संकेत किया गया। अथवा अन्य किसी निष्पक्षव्यक्ति को चुनने के लिये अनुरोध किया गया।

ता० १४ दिसम्बर को वीटवोटरस रैंड चर्च कौन्सिल की ओर से नीचे लिखेअनुसार प्रस्ताव पास किया गया। "वीटवोटरस रैंड चर्च कौन्सल की यह कारवारी सभा दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों के प्रश्न, विशेषतः नेटाल के हड़ताल के सम्बन्ध में जांच करने के लिये जो कमीशन चुना गया है, इस कमीशन के प्रति यह सभा प्रसन्नता प्रकट करती है। पर यह कमीशन उभयपक्ष के लिये सन्तोषजनक नहीं है, इस लिये अन्य दो

सदस्य निर्वाचित कर इस मामले का सन्तोष-जनक निर्णय कर देने के लिये यह सभा अनुरोध करती है"।

अन्य सभाओं ने भी इसी प्रकार प्रस्ताव पास कर कमीशन के प्रति असन्तोष प्रकट किया।

सत्याग्रहियों का अभियोग

देशभक्त थम्बी नायडू, मि. सी. वी. पिल्ले, मि. ए. एच. मुला, अब्दुल हक काज़ी, एस. इमाम अली, ए. क्रस्टोफ़र, बी. के. पटेल, सोराब जी पारसी, जे. एम. लाज़रस, डबल्यु. बी. लाज़रस, आर. भगवान और अर्जुन सिंह का अभियोग ता० ११ दिसम्बर को दरबन के न्यायालय में चलाया गया। सरकारी वकील ने कहा कि अधिकांश मनुष्य जेल में हैं, उनका अभियोग पहिले चलना चाहिये। इस लिये इन गृहस्थों का अभियोग ता० ८ जनवरी तक मुलतवी रखा गया। इस अभियोग के सिद्ध करने के लिये गुप्तचरों ने मि. रुस्तम जी के कार्य्यालय की तलाशी ली और वहां से 'मिनिट बुक' उठा ले गये।

ता० २४ नवम्बर को रीयूनियन की मार पीट के सम्बन्ध में पकड़े हुये ११ हड़तालियों को ता० ११ दिसम्बर को अदालत में खड़ा किया गया। उस कोठी की देखरेख रखनेवाले मि. रुबन स्वेल्स ने साक्षी दी कि जो लोग काम पर नहीं जाना चाहते हैं, उन्हें पकड़ने के लिये पुलिस का प्रबन्ध किया गया था। पीछे नेताओं को हथकड़ी डालने की आज्ञा दी गई। कोरपोरल गोर्डन ने अभियुक्त गुन्दन के हाथ में हथकड़ी डालना चाहा, पर अभियुक्त ने उसका हाथ पकड़ कर अटकाया। अभियुक्त ने अपनी सहायता के लिये हड़तालियों को आदेश किया, अतएव तत्काल ही हड़ताली क्रोधित होकर दौड़े और पुलिस पर ईंट तथा पत्थर बरसाने लगे। गुन्दन ने ईंट का एक टुकड़ा उठाकर पुलिस पर फेंका, पर वह उछट कर गुन्दन की पीठपर लगा। समस्त अभियुक्तों ने पत्थर फेंका, ऐसा न कह सकने के कारण छः व्यक्ति उसी समय छोड़ दिये गये। शेष व्यक्तियों को छोड़ देने के लिये अभियुक्तों के वकील ने प्रार्थना की। सरकारी वकील के पास सबल प्रमाण न होने के कारण सबको छोड़ दिया गया।

ता० १५ दिसम्बर को दरबन जेल से छुटकारा पाये हुये हड़तालियों को स्टेशन पर लाकर काफ़िर सिपाहियों ने धक्का देकर नोर्थकोस्ट की गाड़ी में बिठाया, इन हड़तालियों को इनके सरदार के हाथ में सौंप कर बलात्कार कोठियों पर भेजा गया। हड़ताल को किस प्रकार दबाया जाता है, इसका यह एक प्रबल प्रमाण है।

वेरुलम के न्यायालय में ता० १० नवम्बर से ता० १० दिसम्बर तक १५५४ हड़तालियों पर काम छोड़ने का अभियोग चलाया गया था। इन में से २०० मजूरों को कई कारण वश छोड़ दिया गया। शेष समस्त हड़तालियों को क़ैद की सज़ा दी गई।

मि. मुहमद इब्राहीम, जो एक पुराने सत्याग्रही थे, ट्रांसवाल से नेटाल की सीमा पार करते हुये पकड़े जाकर वाकरस्ट में ३ मास के लिये जेल गये। दरबन के ६, पीटर मेरीत्सबर्ग के ८ तथा अन्य स्थानों के कुल १३ पुरुषों और ट्रांसवाल की ५ सत्याग्रही स्त्रियों को ता० १८ दिसम्बर को वाकरस्ट में तीन तीन मास की क़ैद का दण्ड मिला। स्त्रियों के नाम यह हैं:—मिसेज़ मुनस्वामी, मिस वेलिअमा, मिसेज़ शिवप्रसाद, मिसेज़ स्वयम्बर और श्रीमती बसुमति। ता० २२ दिसम्बर को १३ पुरुष और मिसेज़ पी. एस. पिल्ले आदि ३ सत्याग्रही स्त्रियों को ट्रांसवाल की सीमा पार करने के अपराध में पकड़ कर प्रत्येक को ३-३ मास के लिये क़ैद में भेजा गया।

ता० १८ दिसम्बर को एमानन चार्ली और केवल कोठी की स्त्रियों को बिना परवाने मार्ग पर घूमने

के अपराध में पकड़ कर वेरूलम के न्यायाधीश के सामने पेश किया गया, मजिस्ट्रेट ने उन्हें कोठी पर जाने के लिये उपदेश कर छोड़ दिया।

अगुआ छोड़ दिये गये

लोकमान्य गान्धी बहुत दिनों तक वाकरस्ट की जेल में रहे। कुछ समय के बाद उन्हें ब्लोम फोनटीन में लेजाकर गुप्त रीति से रखा गया। लो० गांधी वाकरस्ट से किस जेल में भेजे गये, इसका पता लगाने के लिये एसोसियेशन ने जेल के मुख्य कर्म्मचारियों को लिखा था, पर इसके उत्तर में कहा गया कि, कैदी के परिवार के सिवा अन्य किसी को खबर देने का नियम नहीं है। इस विषय पर पत्र व्यवहार चल रहा था। ता० १८ दिसम्बर को ब्लोमफोनटीन से तार द्वारा सूचना दी गई कि लो० गान्धी को यहां से प्रिटोरिया की जेल में भेजा गया है। इस तार से यह भी खबर मिली कि मि. पोलक और मि. केलनबेक को भी प्रिटोरिया की जेल में भेजा गया है। अतः कमीशन के काम में योग देने के लिये ता० १८ दिसम्बर को लो० गान्धी मि. पोलक और मि. केलनबेक प्रिटोरिया जेल से छोड़ दिये गये।

प्रिटोरिया से जोहांसबर्ग आने पर लो० गान्धी, पोलक और केलनबेक का बड़ी धूम-धामसे स्वागत किया गया। स्टेशन पर भारतीयों ने अपने माननीय नेताओं के गले में पुष्पमाला पहिना कर बधाई दी। तदुपरान्त गेयटी थियेटर हाल में सभा हुई। उसमें लो० गान्धी ने कहा कि हमको छोड़ दिया गया है, इससे हम सरकार का उपकार नहीं मान सकते हैं, जिस काम के पूरा करने के लिये हम जेल में गये थे, उस काम पर पुनः आरूढ़ होजाना हमारा कर्त्तव्य है। सरकार ने जो कमीशन चुना है, वह भारतीय जनता के लिये लाभदायक होगा कि नहीं, इस विषय में हम अनिश्चित हैं। दरबन में जाकर इसका विचार करेंगे। लो० गान्धी ने जेल के सम्बन्ध में कहा कि पहले के अनुभव से इस बार का अनुभव भिन्न प्रकार का है। जेल में हमारे साथ अत्यन्त विवेक पूर्वक व्यवहार किया जाता था। जेल के कर्मचारी मेरे लिये सब प्रकार से उत्तम प्रबन्ध करते थे।

मि० केलनबेक ने कहा कि हमारा जेल का अनुभव लो० गान्धी के अनुभव से भिन्न है। कई बार अच्छे बर्ताव के लिये हमें जेल में उपवास करना पड़ा था। मि० पोलक ने कहा कि जेल के विषय में हम भी लो० गान्धी के समान अनुभव रखते हैं। मुझे छोड़ दिया गया है तो भी पुनः हम जेल में जाने के इच्छुक हैं। जब तक भारतियों को न्याय न मिले तब तक इस लड़ाई को चालू रखना हमारा कर्तव्य है। मि० होस्केन ने कहा कि यह सत्याग्रह की लड़ाई भारतियों के जीवन मरन के प्रश्न से सम्बन्ध रखती है।

ता० १६ दिसम्बर को लो० गान्धी, पोलक और केलनबेक ने जोहांसबर्ग से दरबन की ओर प्रस्थान किया। मेरीत्सबर्ग आदि स्टेशनों पर सहस्रों भारतियों ने इनका दर्शन कर अपना जन्म सफल किया। ता० २० दिसम्बर को एक बजे यह लोग दरबन में जा पहुंचे। स्टेशन पर भारतियों का बड़ा भारी जमाव था। फूलों की माला पर माला इनके गले में पड़ रही थीं। स्टेशन से बाहर निकलते ही आनन्द ध्वनि से दर्शक प्रफुल्लित होते थे। इन तीनों नेताओं को बग्घी में बैठा कर उत्साही पुरुषों ने गाड़ी खींची। वेस्ट स्ट्रीट प्रेस्टी और विक्टोरिया स्ट्रीट घुमाते हुये फील्ड स्ट्रीट में मि. रुस्तम जी के घर पर लाया गया।

ता० २१ दिसम्बर को दरबन के मैदान में सात सहस्र भारतियों की एक सभा हुई। सभा में लो० गान्धी, मि० पोलक, मि. केलनबेक, मि. रीच, मि. वेली आदि भारतीय और यूरोपियन विद्यमान थे। प्रथम लो० गान्धी व्याख्यान देने के लिये उठे,

उस समय सभाभवन आनन्दध्वनि से गूंज उठा आपने कहाः—

"प्रथम तो भारत की किसी एक भाषा में बोलना हम पसन्द करते हैं, पर हमारे दो गोरे कैदी भाई मि. पोलक और मि. केलनबेक, जो यहां पर उपस्थित हैं, उनके जानने के लिये अंग्रेज़ी में बोलना हमारा कर्तव्य है। आप लोगों को विदित है कि गत २० वर्षों से हम अंग्रेज़ी पोशाक पहिनते आते हैं, पर आज से हम ने इस नवीन वस्त्र को धारण करना निश्चय कर लिया है। (सभा में मो. गान्धी एक धोती और एक अंगरखा पहिने हुये थे। उनके शिरपर न पगड़ी और न पांव में जूता था। साधारण मजूर वेष में व्याख्यान दे रहे थे। उस समय मो० गान्धी की यह दशा देखकर दर्शकों के नेत्रों से आंसू बह रहे थे) । हमारे देश बन्धुओं पर गोली चलाई गई, इससे एक गोली हमारे अन्तर में भी लगी है। यदि उन गोलियों में से एक मुझको लगी होती तो क्या ही अच्छी बात थी। भारतीयों को हड़ताल करने के लिये उपदेश देने के कारण कदाचित हम भी एक हत्यारे गिने जाँय, पर मेरा अन्तःकरण मुझे निर्दोष ठहराता है। अतः अपने देशवासियों की मृत्यु पर हमें अन्तर और बाहर से शोक मनाना चाहिये। इस लिये हमने साधारण मजूर के भेष में रहना निर्धारित कर लिया है, और आन्तरिक शोक मनाने के लिये हमने यह निश्चय किया है कि आज से हम दिन में केवल एक ही बार फलादि का आहार करेंगे। कमीशन से भारतीयों का कल्याण हो सके ऐसा नहीं जान पड़ता है। यदि हम लोगों को शायद दुख भोगना पड़ा तो इसके लिये आपको तय्यार रहना चाहिये। यदि सरकार हमारे आवेदन पर ध्यान न दे तो अंग्रेज़ी वर्ष की प्रथम तिथि को अर्थात् ता० १ जनवरी सन् १९१४ ईस्वी को भारतीयों को कूच में शामिल होकर ट्रांसवाल की हद पार करना चाहिये। जिनके अन्तःकरण में स्वदेशाभिमान का अभाव हो, जो रणक्षेत्र में जाने से डरते हों, उनसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे इस लड़ाई से दूर ही रहें"

इसके बाद मि. केलनबेक, मि. पोलक, मि. रीच और मि. बेली ने व्याख्यान दिये। अन्त में सर्वसम्मति से निम्न लिखित प्रस्ताव पास हुये। (१) यह सभा कमीशन में साक्षी देना शपथपूर्वक अस्वीकार करती है। क्योंकि इसमें भारतीयों की बिलकुल सम्मति नहीं ली गई है। (२) यह सभा मि. श्रायनर और सर जेम्स रोज़ीनेस को कमीशन में शामिल करने का अनुरोध करती है अथवा दक्षिण अफ्रिका निवासी किसी अन्य निष्पक्ष गोरे को, जिसे भारतीय जनता स्वीकार करे, कमीशन का सदस्य बनाया जाय। (३) सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया जाय अन्यथा सत्याग्रह की लड़ाई पुनः उठेगी।

नेताओं का पत्र

मो० गान्धी, पोलक और केलनबेक ने छूटने के बाद डरबन जाकर इस आशय का पत्र भेजा:—
"सरकार ने भारतीयों के कष्टों की जांच करने के लिये जो कमीशन चुना है। इसमें योग देने के लिये हम लोग समय से पहिले जेल से छोड़ दिये गये हैं। कमीशन चुनते समय भारतीयों की सलाह तक नहीं ली गई, यह बड़े शोक की बात है। हम यह कहना चाहते हैं कि मि. असलेन और कर्नल वायली का निर्वाचन कर सरकार ने कमीशन को एकपक्षी बना दिया है। क्योंकि मि. असलेन एशियायासियों के विरुद्ध अपना तीव्र मतभेद पहले ही प्रकट कर चुके हैं और कर्नल वायली ३ पौन्ड का कर नहीं निकालने की सलाह दे चुके हैं। कर्नल वायली सेना विभाग से सम्बन्ध रखते हैं। इस कमीशन में सैनिकों के किये हुये अत्याचारों पर भी विचार होगा, इस लिये कर्नल वायली निष्पक्ष न्याय कर सकें, ऐसा सम्भव नहीं

है। ज़ुलू युद्ध के समय हमने सारजेन्ट मेजर के पदपर कर्नल वायली के निरीक्षण में काम किया था, इससे इनके स्वभाव से हम परिचित हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि सरजोन्स रोज़नस और आनरेबल डब्ल्यु० पी० शायनर का चुनाव उभय पक्ष के लिये लाभदायक होगा।

भारतीय जनता इस कमीशन से एकबारगी असन्तुष्ट है। कमीशन के प्रति असन्तोष प्रकट करने के लिये डरबन से कितने ही स्त्रियों और पुरुषों की टोली जेल में जा चुकी है? डरबन की विराट सभा में भी हम निमन्त्रित होकर गये थे। उस सभा में भारतीयों ने कमीशन के प्रति घोर विरोध प्रकट किया था। इस लिये हम सरकार की सेवा में निवेदन करते हैं कि कमीशन में अन्य दो निष्पक्ष मनुष्यों का चुनाव किया जाय। यदि हमारी प्रार्थना सरकार स्वीकार करेगी तो हम लोग सब प्रकार से कमीशन के काम में सहायता देंगे। अतः जिन कैदियों को जेल अथवा कम्पोन्ड रूपी जेल में रखा गया है उन्हें शीघ्र छोड़ देना चाहिये। आशा है कि सरकार इसपर ध्यान देगी।"

राजस्व सचिव का उत्तर

मो० गान्धी, मि० पोलक और मि० केलनबेक के पत्र का राजस्व सचिव ने इस आशय का उत्तर दिया। "आप लोगों का ता० २१ दिसम्बर का कृपापत्र आया। यह पत्र तत्काल ही पत्रों में प्रकाशित हुआ है। यह पत्र हमने ध्यानपूर्वक पढ़ा। उत्तर में निवेदन है कि जिन शर्तों पर आपने कमीशन में साक्षी देने को कहा है तथा जिन शर्तों पर आप कमीशन की जांच के निर्णय तक लड़ाई को मुलतवी रखने की बात कहते हैं, उन शर्तों को स्वीकार करने में सरकार अशक्त है। आप के पत्र में विशेषतः भारतीयों के लाभ के लिये नवीन सदस्यों को चुनने की शर्त है, इसको सरकार स्वीकार करने में असमर्थ है। सरकार का विचार कमीशन को एक निष्पक्षपात और न्यायी संस्था के समान स्थापित करने का था, इसलिये सरकार ने भारतीयजनता और गोरे स्वामियों से सलाह नहीं ली। आपने कमीशन के दो सभासदों पर जो दोषारोपण किया है इसको सरकार निर्मूल समझती है। आपने जिस मार्ग के अनुसरण करने का विचार प्रकट किया है वह भारतीय और गोरों के लिये अत्यंत हानिकारक है। आप के कायदे के विरुद्ध कार्य्यवाही से गोरी और काली प्रजा को नाहक दुःख उठाना पड़ेगा और सारे दक्षिण अफ्रिका में घोर खलबलाहट उत्पन्न होगी।

पहिली टोली छूटी

ता० २२ दिसम्बर को मिसेज़ गान्धी, मिसेज़ डाक्टर मणिलाल बारिस्टर, मिसेज़ छगनलाल, मिसेज़ मगनलाल और मिस्टर सालेमन रायपन तीन मास की कैद पूरी करके पीटर मेरीसबर्ग के जेल से छूटे। इनके लेने के लिये मो. गान्धी, मि. केलनबेक, मिसेज़ पोलक और अन्य स्नेही डरबन से मेरीत्सबर्ग गये थे। प्रातःकाल यह सत्याग्राही कैदी जेल से छोड़े गये, उस समय हर्ष-ध्वनि होने लगी। इनके ऊपर फूलों की वर्षा की गई। उत्साही पुरुष इनकी बग्घी खींच कर वेद धर्मसभा तक लाये। उधर सत्याग्राही वीराङ्गनाओं का अपूर्व स्वागत किया गया। मो. गान्धी ने कहा कि मेरी पत्नी तथा अन्य स्त्रियों का आप लोगों ने जो स्वागत किया है इसके लिये मैं आप सज्जनों को अनेक धन्यवाद देता हूं। यह समय आनन्द मनाने का नहीं है प्रत्युत शोक दर्शाने का समय है। हमारे भाईयों के ऊपर गोलियों की मार पड़ी है। ऐसे कुसमय में इस आनन्दवर्धक कार्य्य में भाग लेते हमारे मन में अत्यंत खेद उपजता है। जेल में हम इन सब झंझटों से रहित थे। (इस समय एक बालक रोने लगा, उसको ओर संकेत कर मो.

गान्धी ने कहा कि) यह रुदन अपने को शोक दर्शाता है। इस समय भारतीय भाई तथा बहिनें भिन्न २ रीति से शोक दर्शा कर अनाथ, विधवा तथा अपने बालकों की ओर सच्ची सहानुभूति दिखा सकते हैं। पुरुष तम्बाकू, पान, सुपारी तथा अन्य व्यसनी वस्तुओं को त्याग सकते हैं और स्त्रियां अपने आभूषण तथा बहुमूल्य पोशाक तज सकती हैं। इसके पश्चात् मि. केलनबेक, मि. ग्रीन और मिसेज़ पोलक ने भाषण दिया।

थोड़ी देर के बाद एक विराट सभा मि. पिल्ले के सभापतित्व में हुई। श्री. गान्धी ने दरबन की विराट सभा का वृत्तान्त कह सुनाया। अतः कमीशन के सम्बन्ध में भारतीयों का प्रस्ताव सर्वानुमत से पास हुआ। लो० गान्धी ने यह भी कहा कि यदि सरकार भारतीयों के आवेदन पर ध्यान न देगी तो ईस्वी सन् १६१४ की पहिली जनवरी को क़ैद होने के लिये कूच का नक़ारा बजाया जायगा। मि. पी. के. नायडू ने इसका तामिल अनुवाद कह सुनाया।

वहां से इन सत्याग्रहियों ने दरबन के लिये प्रस्थान किया। दरबन स्टेशन पर सहस्रों भारतीय विद्यमान थे। उन्होंने इन सत्याग्रही वीराङ्गनाओं का बड़े समारोह से स्वागत किया। स्टेशन से समस्त जनसमुदाय मि० रुस्तमजी के घर पर गया। वहां मि. क्रस्टोफ़र, देशभक्त थम्बी नायडू, मि. रीच बारिस्टर आदि सज्जनों ने इन वीराङ्गनाओं की प्रशंसा में व्याख्यान दिये।

ता० २२ नवम्बर को दरबन सेन्ट्रल जेल से मि. रुस्तमजी पारसी आदि ११ सत्याग्रही छूटे। इन्हें बधाई देने के लिये सहस्रों भारतीय और गोरे मित्र जेल के दरवाज़े पर गये थे। १० बजे के बाद क़ैदियों को छोड़ा गया, उनके गले में पुष्पमाला पहिनाई गई। वहां से समस्त क़ैदी मि. रुस्तमजी के घर पर आये। उनके घर के पास के खुले मैदान में एक सभा हुई। जिसमें देशभक्त थम्बी नायडू, मि. रीच, मि. क्रस्टोफ़र आदि सज्जनों ने स्वागत-सूचक व्याख्यान दिये।

इसके उत्तर में रुस्तमजी ने कहा कि "हम लोगों को साधारण स्वत्वों के लिये इतनी लड़ाई करनी पड़ी, सरकार के लिये यह लज्जा की बात है। परन्तु इन सामान्य हक़ों को खोकर अधम दशा में चुप चाप बैठा रहना यह हमारे लिये और भी अधिक लज्जाजनक है। हमारे साथ छूटी हुई मिसेज़ गान्धी तथा अन्य बहिनें और हमारे बच्चों के समान सोलह २ वर्ष के चार पांच बालकों ने जैसा धैर्य, सहनशीलता और देशसेवा का परिचय दिया है, उससे हमको दृढ़ आशा है कि हमें इस युद्ध में विजय अवश्य प्राप्त होगी। हमारे जेल जाने के पश्चात् लड़ाई ने बड़ा गम्भीर रूप धारण किया। कई एक भारतीयों के आत्मसमर्पण के सामने हमारा जेल का कष्ट कुछ गिनती में नहीं है। वे अपना सर्वस्व त्याग कर देशहित के लिये जी जान से लड़े हैं। हरे! हरे! कितनों ही ने अपनी जानको भी अर्पण कर दिया। उनके कलेजों में लगी हुई गोली ने हम सभों का हृदय बेध दिया है। मर जानेवाले के परिवार के साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। बहिनों और भाइयो! ऐसे और इससे भी अधिक कठिन संकटों को देश की मर्यादरक्षा के लिये सहन करो। देशसेवा का ऐसा सुअवसर खोना मानो हाथ में आये हुये हीरे को तज देने के समान है।" इसके बाद पारसी जी ने जेल के कष्टों का वर्णन किया।

माननीय गोखले को तार

ता० २२ दिसम्बर को माननीय गोखले की सेवा में इस आशय का तार भेजा गया:—"सोलह मनुष्यों की पहिली टोली आजही जेल भोग कर छूटी है। इसमें मि. रुस्तम जी तथा अन्य प्रसिद्ध गृहस्थ हैं। इनका कथन है कि जेलख़ाने में असभ्य तथा जंगलीपने का बर्ताव किया जाता है। मि. रुस्तम जी, जो पहिले की लड़ाई में कई बार जेल का

अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, उनका कथन है कि अन्य जेलों से दरबन की जेल में कहीं बढ़चढ़ कर कष्ट देते हैं। मजिस्ट्रेट बेपरवाह हैं। फरियाद सुनने के लिये कदाचित ही जेल में जाते हैं। उपवास आरम्भ करने से पूर्व जेल के गवर्नर से मिलने भी नहीं दिया गया। वार्डर तो निर्दयता और मनमाना अपमान करने वाले हैं। फरियाद नहीं सुनी जाती है। काफिर वार्डरों का बर्ताव अत्यन्त घातक है। मि. प्रागजी देसाई, जिन्हें आप अच्छी तरह से जानते हैं, मारते मारते गिरा दिये गये। पश्चात् घसीट कर कोठरी में बन्द किये गये। कितनेही समय तक किसी ने खबर भी नहीं ली। मार की पीड़ा से वह ११ दिन तक अस्पताल में पड़े रहे। फीनिक्स पाठशाला के एक १६ वर्ष के विद्यार्थी पर भी मार पड़ी थी। मि. रुस्तम जी मि. मणिलाल तथा अन्य, जिन्हें आप जानते हैं, उन्हें लातों, मुक्कों और धक्कों से अपमानित किया गया है। सबको 'कुली' कहकर पुकारा जाता है। अधिकांश को जूता और पायजामे नहीं मिले हैं। पायजामे मांगनेवाले कैदियों के जूते भी छीन लिये गये हैं। जेलका कपड़ा गन्दा और बिना धोये कैदियों को दिया जाता है। फरियाद करने पर धमकाया जाता है। पुस्तकालय से सत्याग्रही कैदियों को पुस्तकें नहीं दी जाती हैं। भोजन स्वाद रहित और चर्बी मिश्रित घी दिया जाता है। वामीस कच्चा रहने से कितनोंही को आँव रोग के पंजे में फंसना पड़ा है। दरबन जेल में सत्याग्रही स्त्रियों को भी मरोड़ा हो रहा है। वह भी इस रोग से पीड़ित हो रही हैं। अच्छा बर्ताव पाने के लिये कितनोही को चार दिन तक उपवास करना पड़ा। चौथे दिन एक युवक को धर्मविरुद्ध बलात्कार दूध के साथ अण्डा खिलाया गया। सब कुछ मिलेगा, ऐसा कह कर सब का उपवास छुड़ाया गया, पर आज तक कुछ नहीं मिला। घी के लिये मेरीत्सबर्ग में भी इन्हें तीन दिन तक उपवास करना पड़ा था। जेल के इस अमानुषिक बर्ताव पर यहां के लोकमत में घोर उत्तेजना फैल गई है। छूटे हुए सत्याग्रही आवश्यकतानुसार पुनः जेल जाने को प्रस्तुत हैं।"

ब्लेकबर्न और हीलहेड की तहकीकात

माऊन्ट एजकोम्ब की इन दोनों कोठियों में हड़तालियों पर गोली चलाई गई थी, जिससे छः हड़ताली मौत का शिकार बने और कितने ही घायल हुये। इसकी तहकीकात वेरुलम की अदालत में चल रही थी। सिपाहियों, कोठी के मालिकों और भारतियों की सुविस्तृत साक्षी को स्थानाभाव से यहां उल्लेख करने में हम असमर्थ हैं। सिपाहियों की ओर से कहा गया कि, जब भारतीय लाठी, पत्थर और छूरी से आक्रमण करने लगे तो विवश हो कर हमें गाली चलानी पड़ी। भारतियों की ओर से इस मामले को भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया। एक बालक ने साक्षी दी कि मि. कोलिन कंम्पबल ब्लेकबर्न कोठीपर आये और हमारे पिता को बुलाकर घोड़ा पकड़ने को कहा। हमारे पिता के आते ही साहब ने उन्हें कोड़े से मारते मारते नीचे गिरा दिया। जब हमारे पिता घायल होकर गिर पड़े तो काफिर सिपाहियों ने आकर हमारे पिता के गले में भाला मारा। भाला आरपार हो जाने से हमारे पिता उसीदम मर गये। बालक का कथन यह है कि पिता को मरते देखकर हम दौड़े हुये उनके समीप गये, उस समय हमारे ऊपर पिस्तोल छोड़ा गया। मेरे शरीर में ३ गोली लगीं, जिससे घायल हो कर मैं गिर पड़ा। इसके समर्थन में कई एक भारतीयों ने साक्षी दी। न्यायाधीश ने डाक्टरी तहकीकात करने की आज्ञा दी।

'इन्डियन ओपीनियन' में हिन्दी और तामिल

'इन्डियन ओपिनियन' जिस समय सन् १९०३ में

प्रकाशित होना आरम्भ हुआ उस समय यह पत्र चार भाषाओं अर्थात अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और तामिल में प्रकाशित किया गया। आरंभ काल में इसके प्रकाशक मि० वी० मदनजीत थे, थोड़े दिनों के बाद यह पत्र लो० गान्धी के हाथों में आया। मि. एम. एच. नाज़र इस पत्र के अवैतनिक सम्पादक थे। उनकी मृत्यु के पश्चात मि. एच. एस. एल. पोलक सम्पादक नियत हुये। कई एक कारण वश थोड़ ही दिनोंके बाद इस पत्रमें हिन्दी और तामिल का छपना बन्द होगया। तब से यह पत्र बराबर अंग्रेज़ी और गुजराती में छपता आता है। ता० ३१ दिसम्बर सन् १९१३ को इस पत्र की पुनः कायापलट हुई, इसमें हिन्दी और तामिल को पुनः स्थान दिया गया। हिन्दी 'इण्डियन ओपीनियन' के प्रथमाङ्क में इस प्रकार सम्पादकीय टिप्पणी निकली—" इस समय जो सत्याग्रह की लड़ाई चल रही है। ऐसा दृष्टान्त किसी इतिहास में भाग्य ही से मिल सकता है। इस लड़ाई का सच्चा मान इस देश के प्रवासी हिन्दी और तामिल भाषा बोलने वाले भाई और बहनों को है। उनका आत्मसमर्पण प्रथम श्रेणी का है। हमारे इन बन्धुओं में कितनोंही ने गोरे सिपाहियों की कठोर गोली से प्राण त्यागा। इन नरवीरों के स्मारक में हमने हिन्दी और तामिल में भी 'इण्डियन ओपीनियन' निकालना निश्चय किया है। कई वर्ष पहिले हम इन दोनों भाषाओं में पत्र छापते थे, पर कई एक कठिनाइयों से इन भाषाओं में पत्र छापना बन्द करदेना पड़ा था। यद्यपि आजतक वे कठिनाइयां दूर नहीं हुई हैं तथापि जिस भाषा के बोलने वाले मनुष्यों ने इतने स्वार्थ त्याग और आत्मसमर्पण का परिचय दिया है, उनके मान में थोड़ासा कष्ट उठाकर कम से कम इन दो भाषाओं में पत्र निकालना हमारा कर्तव्य है। इस लिये जब तक सत्याग्रह की लड़ाई चलेगी तब तक हिन्दी और तामिल में पत्र छापना हमने निश्चय कर लिया है। इस काम को हाथ में लेने से हमारी इच्छा व्यापारिक लाभ प्राप्त करने की नहीं है। लड़ाई के बाद इन भाषाओं में पत्र छप सकेगा या नहीं, यह संयोग से देखा जायगा"।

जेल से छूटे

ता० २९ दिसम्बर को मि० बद्री पत्तसिंह, भवानी और तकु दयवन को जेल से छूटे। मि. बद्री से मिलने के लिये लो० गान्धी आदि सैकड़ों माननीय सज्जन जेल के दरवाजे पर गये थे। मि. बद्री को बड़ी धूम धाम से मि० रुस्तम जी के घर पर लाया गया। मि. बद्री के स्वागत में एक सभा हुई जिसमें लो० गांधी ने भाषण देते हुये कहा कि मि. बद्री इस देशके एक "प्राचीन निवासी और प्रसिद्ध देशभक्त हैं, जिस समय स्वर्गीय जयराम सिंह ट्रांसवाल इण्डियन एसोसिएशन के सभापति के पद पर प्रतिष्ठित थे, जिनका पुत्र भवानी दयाल इस समय तीन मास का जेल भोग रहा है, उसही समय मि. बद्री उक्त सभा के सभापति थे। इनकी देशसेवा प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। इसके उत्तर में मि. बद्री ने सब का उपकार मानकर धन्यवाद दिया।

ता० ३० जनवरी सन् १९१४ को मेरीत्सबर्ग के मि. जूठा प्रेमजी पटेल, गया सिंह, मोतीलाल और त्रिलोकनाथ दयवन को जेल से छूटे। लो० गान्धी, मि. वेस्ट, मिस श्लेसीन आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जन इनसे मिलने के लिये जेल के द्वार पर गये थे। १० बजे के बाद इन्हें जेल से छोड़ा गया, उसी समय मेरीत्सबर्ग के भारतीयों और नेटाल इण्डियन एसोसियेशन की ओर से इनके गले में फूल की माला पहिनाई गई, पीछे इन्हें मि. रुस्तम जी के घर पर लाकर फलादि से सत्कार किया गया।

ता० ६ जनवरी को मि. गोकुलदास गान्धी, मि. एम. नायडू, मि. पेरुमल, मि. जानकी, मि.

कुछ सत्याग्रही वीराङ्गनायें

मिसेज़ एम. टामी। मिसेज़ के. मुरुगेसा पिल्ले। मिसेज़ वेकम मुरुगेसा पिल्ले। मिसेज़ पी. के. नायडू।
मिसेज़ पेरुमल नायडू। मिसेज़ चिन्नमा माई पिल्ले। मिसेज़ शम्मी नायडू। मिसेज़ एन. पिल्ले।
मिसेज़ एन. एस. पिल्ले। मिसेज़ भवानी दयाल।

मि० सेलवन की विधवा और उनके पुत्र।
हड़ताल के समय मि. सेलवन गोली से मार डाले गये।
अनटोनी म्युथु को, जो ज्येष्ठ पुत्र हैं, तीन गोलियों के निशान लगे हैं।

स्वर्गीय मि० सुभाई
अपनी पत्नी और बच्चे सहित।
मि० सुभाई को भी हड़ताल
में भाग लेने से मृत्यु का ग्रास
बनना पड़ा।

मि० पचियापन की विधवा और उनका
अनाथ बालक।
मि० पचियापन हड़ताल के समय
गोली से मार डाले गये।

सूर्यपाल सिंह और मि. अब्दुल साईं दरबन की जेल से छूटे, इनका भी पुष्पादि से ख़ूब सत्कार किया गया। इन्होंने जेल की जो कथा सुनाई उसे 'इन्डियन ओपीनियन' में इस प्रकार प्रकाशित किया गया:—"जेल में सत्याग्रही क़ैदियों को ख़ूब सताया जाता है। जो क़ैदी बाहर काम करने को जाते हैं उन्हें केवल सूखा भात दिया जाता है। मि. प्रागजी देशाई का एक काफ़िर सिपाही ने अपमान किया, इसपर मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ़ने सिपाही को अनुचित वर्ताव पर ललकारा। इससे मि. मेढ़ को ३ दिन तक काली कोठरी में रखने का दण्ड दिया गया। इस अन्याय को न देख सकने के कारण मि. भवानीदयाल, मि. प्रागजी देशाई, मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ़ और मि. मणिलाल गान्धी ने उपवास करना आरम्भ किया। आज उनके उपवास का चौथा दिन है। इस विषय पर लो० गान्धी ने बड़े मजिस्ट्रेट मि. बीन्स को पत्र लिखा है और मि. बीन्स ने इसकी तहक़ीक़ात करने को कहा है"।*

लोकमान्य गान्धी के कूच की तैयारी

लो० गान्धी मि. पोलक, रुस्तम जी और गोविन्द स्वामी के साथ मेरीत्सबर्ग को गये। वहां इनका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया। लो० गान्धी ने अपने व्याख्यान में कहा कि "सरकार के साथ आगत्य का पत्र व्यवहार हो रहा है। यदि सरकार ने भारतीयों को हक़ देना अस्वीकार किया तो यहां से भारतीयों को हमारे साथ ट्रांसवाल के कूच में शामिल होना चाहिये। इस कूच का अभिप्राय पकड़ा कर जेल में जाना है। ता० १ जनवरी १९१४ को कूच करने का हमारा विचार था, पर अब उक्त तिथि को कूच करना मुलतवी रखा जायगा। कूच में योग देनेवाले वीरों को तय्यार रहना चाहिये।"

पहिली जनवरी को कूच के सम्बन्ध में लो० गान्धी के मुख से सूचना पाकर सैकड़ों भारतीय फ़ील्डस्ट्रीट में एकत्र हो गये। परन्तु वहां स्थान के अभाव से विक्टोरिया स्ट्रीट में मि. रावत के दिये हुये घर में लो० गान्धी ने दो सहस्र मनुष्यों को ठहराया। कूच के मुलतवी रखने का कारण उनको बतलाया गया। दरबन के आस पास की कोठियों के हज़ारों मजूर कूच में शामिल होनेके लिये दरबन में आ पहुंचे, पर कूच मुलतवी रखने का कारण समझा बुझा कर उन्हें लौटाया गया। जो लौटकर कोठियों पर नहीं जाना चाहते थे, उनके लिये पायनटोन के निकट न्यू जरमनी में रहने का प्रबन्ध किया गया। ता० २ जनवरी को प्रातः काल ८५ मनुष्यों की एक टोली लेकर मि. थम्बी नायडू और मि. पी. के. नायडू वहां जाने के लिये रवाना हुये। एक घन्टे तक लो. गान्धी भी साथ साथ गये। २६ स्त्रियों और १० बालकों के साथ मि. आयजक, मि० रुस्तम जी तथा मि० मोतीलाल दीवान रेलगाड़ी में पायनटोन गये। सब लोग कुशल पूर्वक पायनटोन पहुंचे। काम पर अनुपस्थित रहने के अपराध में ७६ मनुष्यों को पकड़ कर पायनटोन के मजिस्ट्रेट के इजलास में पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने प्रत्येक को एक एक सप्ताह की कड़ी जेल अथवा ५-५ रुपये का अर्थदण्ड दिया। मज़ा यह कि सभों ने प्रसन्नतापूर्वक जेलही जाना स्वीकार किया। इन्हें पायनटोन से दरबन और वहां से पोयन्ट की जेल में भेजागया। शेष सब स्त्री, पुरुष और बच्चों के न्यू जरमनी में ही रहने का प्रबन्ध किया गया। हड़ताल के समय मरे हुये भारतीयों की विधवाओं को भी

*इस कथा में एक भूल होगई है। वह यह, कि जिस समय यह उपवास आरम्भ हुआ उस समय भवानीदयाल आंव रोग से पीड़ित होकर अस्पताल में पड़े थे और इस उपवास में भाग लेने में असमर्थ रहे। शेष तीनों सत्याग्रहियों ने लगातार छ: दिन तक उपवास किया, अन्त में उनकी समस्त शिकायतें दूर करदी गईं। —लेखक

यहां रखा गया। मि० त्रिलोकी सिंह इनकी देख भाल करते थे।

कतिपय अभियोग

ता० २४ दिसम्बर को देशभक्त थम्बी नायडू, मि. सोराब जी, आर० भगवान, अर्जुन सिंह आदि के अभियोग पीछे खींच लिये गये। मि० वेस्ट पर अपराधियों के रक्षण करने का अपराध लगाया गया था, वह भी वेरुलम की अदालत से पीछा खींच लिया गया। मि. शिवलाल सराफ़ और मि. सी. आर. नायडू का मुक़द्दमा भी सरकारी वकील की सूचना पर रद्द कर दिया गया। फ़ीनिक्स बोटल कम्पनी के मैनेजर मि. टॉड पर, मि. वेस्ट को चाबुक से धमकाने का मुक़द्दमा वेरुलम के मजिस्ट्रेट के सामने चला। मजिस्ट्रेट ने मि. टॉड से छः मास तक अच्छे चाल चलन के लिये ५ पौन्ड का मुचलका लिया और मुक़द्दमे का खर्च भी मि. वेस्ट को दिलाया।

डरबन की जेल में एक काफ़िर सिपाही ने मि. प्रागजी देशाई को मार कर घायल किया था इसका अभियोग डरबन के न्यायालय में चला। जेल के कर्मचारियों की साक्षी ली गई। अन्त में मजिस्ट्रेट ने यह फ़ैसला दिया कि जितने बल का प्रयोग करना उचित है, उतना ही सिपाहियों ने किया है, इस लिये यह मुक़द्दमा रद्द किया जाता है।

मो० गान्धी को सन्देशा

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के सभापति नवाब सैय्यद मुहम्मद ने नीचे लिखेअनुसार सन्देशा मो. गान्धी को भेजा :—"करांची की २८ वीं राष्ट्रीय महासभा नेटाल के भारतीय हड़तालियों पर किये हुये अन्यायपूर्ण बर्ताव के लिये बड़ा ही शोक प्रकट करती है। भारतीयों के विश्वासपात्र दो निष्पक्ष सभासदों को कमीशन में चुनने के लिये आपकी सम्मति का यह सभा अन्तःकरण से समर्थन करती है। आशा है कि निष्पक्ष जांच कर आप की सम्मति स्वीकृत की जायगी। आपकी लड़ाई में भारतवर्ष तन, मन और धन से आपके साथ है।"

लाला लाजपतराय ने इस प्रस्ताव का समर्थन बड़े प्रभावशाली शब्दों में किया। लालाजी ने कहा कि 'साम्राज्य में नागरिक का स्वत्व हम मांगते हैं। इस स्वत्व के अधिकारी हम हैं या नहीं, यह प्रश्न है। जो यह स्वत्व भारतीय प्रजा को नहीं दिया गया तो भारत को सभ्य बनाने का दावा करने वालों से हम कहना चाहते हैं कि इस वचन के पालने वाले कहां हैं। भारतीय प्रजा उन पर विश्वासघात का दोषारोपण करेगी।' भाषण का यह भाग बड़े आत्मभाव से कहा गया था, इसे सुन कर श्रोताओं के नेत्रों से अश्रु टपकने लगे। लाला लाजपतराय ने वायसराय की वीरता की सराहना की।

मि. चौधरी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुये कहा, कि भारतीयों ने साम्राज्य के लिये अपना रक्त बहाया है पर बोअरों ने क्या किया? इस अवस्था में बोअरों को स्वराज्य मिला और भारतीयों को नागरिक का हक़ भी नहीं दिया गया। अन्त में यह प्रस्ताव पास कर मो० गान्धी को सन्देशा भेजा गया।

महात्मा एण्डरूज़ और महात्मा पियर्सन का आगमन

ता० २ जनवरी को महात्मा एण्डरूज़ और महात्मा पियर्सन डरबन में आ पहुंचे। इनका स्वागत करने के लिये मो. गान्धी, मि. पोलक, मि. कल्लनबैक, मि. वेस्ट आदि सैकड़ों माननीय नेता बन्दरगाह पर विद्यमान थे। मि. एण्डरूज़ और मि. पियर्सन के स्टीमर से उतरते ही उनके गले में पुष्पमाला पहिनाई गई। तदुपरान्त नगर में ला कर अपूर्व स्वागत किया गया। स्थानीय अंग्रेज़ों में रेवरेण्ड आर्चडीकन फ्रेगसन, मि. हाडसन,

रेवेरण्ड ए. ए. बेली, रेवेरण्ड एच. जे. बेट्स, मिस मेलटीनों तथा अन्य कई प्रसिद्ध गोरे इस स्वागत में सम्मिलित हुये थे। ता० ४ जनवरी को इण्डियन होकर एसोसियेशन की ओर से मि. एण्डरूज़ और मि. पियर्सन का स्वागत किया गया। सभापति का आसन मि. गोकुलदास गान्धी ने ग्रहण किया था। सभा में हिन्दू मुसलमान, पारसी और कृस्तान सभी गृहस्थ उपस्थित थे। सभापति ने स्वागतसूचक व्याख्यान दिया। इसके उत्तर में मि. एण्डरूज़ ने कहा कि—"हम भारत से एक सन्देशा लाये हैं। यह सन्देशा प्रेम का है। इस भूमि पर पग रखते ही असंख्य भारतीयों का मुख देखने को मिला, जिससे हमारा मन आनन्द से उमड़ रहा है। जब मैं भारत को देखता हूं और जिसे मैं बहुत चाहता हूं, वैसाही दूसरा भारत मैं यहां पर देखता हूं। मैं और मि. पियर्सन देखते हैं कि हम लोग अज्ञात देश में नहीं आये हैं वरन् प्रेम और मित्रता से गठित देश में आ पहुंचे हैं। भारत आपकी ओर से बेपरवाह नहीं है। आपको स्मरण न किया हो अथवा आपके कल्याण के लिये ईश्वर से प्रार्थना न की हो, ऐसा एक दिन भी भारत के लिये नहीं बीता होगा। दक्षिण अफ्रिका सम्बन्धी प्रश्न में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, कृस्तान आदि सब जाति और धर्म के मनुष्य एकमत हैं। मुसलमान जाति में हमारे कितने ही मित्र हैं, उसी प्रकार हिन्दुओं से भी हमारी गाढ़ी मित्रता है। हमारे परम मित्र कविशिरोमणि बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक सन्देशा भेजा है और वह यह है कि "**सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्मन् आनन्द रूपम्। अमृतम् यद् विभाति शांतम् शिवम् अद्वैतम्**"॥ अर्थात् "ईश्वर जो सत्य और ज्ञानमय है, जिसका अन्त नहीं है, जो आनन्द स्वरूप है, जो अमृतमय है, जो शान्त और सुखदायक है। जो एकही है, जिसके समान दूसरा कोई नहीं है, उसका मैं ध्यान धरता हूं"। मि. एण्डरूज़ ने इस श्लोक का शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण किया, जिसे सुन कर श्रोतागण चकित हो गये। इसके बाद मि. एण्डरूज़ ने भारत की बहिनों का सन्देशा सुनाया कि, भारत की महिलाओं की दक्षिण अफ्रिका की बहिनों के साथ हार्दिक सहानुभूति है। तत्पश्चात् मि. पियर्सन ने मि. एण्डरूज़ के कथन का समर्थन किया। इसके बाद मिस मेलटीनो, जो यहां की पार्लमेंट के प्रमुख (स्पीकर) की बहिन हैं, उन्होंने अपने भाषण में कहा कि, हमें रंगद्वेष से दूर रहने की बचपन से ही शिक्षा मिली है, इसलिये सत्याग्रह की लड़ाई में हमने हाथ डाला है, हमको पूरा विश्वास है कि बीसवीं सदी में इन काली प्रजाओं का सूर्योदय होगा।

अमर हरभरतसिंह

ता० ४ जनवरी को डरबन जेल में ७० वर्ष के वृद्ध क्षत्रिय अमर हरभरतसिंह इस क्षणभंगुर शरीर को तज कर सदा के लिये परलोकवासी हुये। इनका शव गाड़ दिया गया था, पर भारतीयों को खबर मिलते ही शव के लिये सरकार से निवेदन किया गया, तदनुसार सरकार ने लाश उखाड़ कर भारतीयों को सौंप दी। भारतीयों ने इस शव का अमगेनी नदी के तट पर ले जाकर घी, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से अग्निसंस्कार किया। शव के साथ मि. पोलक मि. पियर्सन, मि. आयजक, मिस श्लेशीन, देशभक्त थम्बी नायडू, मि. रुस्तम जी, मि. वडी श्री आत्माराम महाराज, मि. थानु महाराज, मि. टीपनीस, मि. मोतीलाल दीवान आदि यूरोपियन और भारतीय सज्जन गये थे। ट्रांसवाल बृटिश इन्डियन एसोसियेशन, नेटाल इन्डियन एसोसियेशन, पारसी अंजुमन आदि सभाओं की ओर से शव पर पुष्प वृष्टि की गई।

स्वर्गीय हरभरत सिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में लो० गान्धी ने एक पत्र 'इन्डियन ओपीनियन' में

प्रकाशित कराया, उसका सारांश यह है:-"स्वर्गीय हरभरतसिंह को हम जानते हैं। जब हम वाकरस्ट के जेलखाने में थे, उसी समय भाई हरभरतसिंह ने ३७ भारतीयों के साथ उस जेल को पवित्र किया था। जब मैंने भाई हरभरतसिंह को देखा तो मेरा हृदय आनन्द से उछल पड़ा। हम अपने मन में विचार करने लगे कि यह ७० वर्ष का वृद्ध, जिसके केश एकदम श्वेत होगये हैं, जिसके लगभग ३० वर्ष नेटाल में मजूर की स्थिति में बीते, उसको भारत के मान का और भारत के तपश्चर्या का ख्याल है। वृद्धावस्था में आनन्द कर जीवन भोगने के बदले इन्होंने जेल का असीम दुख सहना पसंद किया है। पर उदास इस लिये हुआ कि 'अरे जीवात्मा यदि तू अपने भाइयों को बुरा मार्ग दर्शाता होगा तो इस पाप का उत्तरदाता होगा। भूल मालूम होने पर पश्चाताप से क्या लाभ होगा, तुम्हारे उपदेश से मरे हुये व्यक्ति फिर जीवित नहीं हो सकते हैं। तुम्हारे उपदेश से जेल भोगने-वाले अपने कष्टों को कभी नहीं भूलेंगे. ऐसा उद्गार मनमें उपजने के बाद एक ओर से आवाज आती है कि, 'यदि तूने अपनी शुद्धि बुद्धि और पवित्र मन से उपदेश दिया है, तो तू निर्दोष है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि यज्ञ बिना पृथ्वी का नाश होजाता है। अग्नि प्रज्वलित कर घी की आहुति देनेसे केवल वायु की शुद्धि होती है। किन्तु इस सत्याग्रह रूपी महान यज्ञ में अपने लोहू रूपी घी और अपने मांस रूपी सामग्री का बलिदान देने पर पूर्णाहुति होगी। इससे ही पृथ्वी का उद्धार होगा, आत्मसमर्पण किये बिना किसी राष्ट्र की उन्नति होना असम्भव है।' इससे मेरे मनमें सन्तोष हुआ कि भाई हरभरतसिंह यदि जेलमें मर भी जांय तो कोई चिन्ता नहीं। मैंने भाई हरभरतसिंह से पूछा कि आपने इस वृद्ध अवस्था में जेल में आना क्यों पसन्द किया? तो उन्होंने उत्तर दिया कि जब आप सब जेल में हैं, यहां तक कि स्त्रियां भी जेल काट रही हैं, तो हम बाहर रह कर क्या करते। फिर मैंने पूछा कि भाई कदाचित जेल में आपकी अवस्था बिगड़ जाय तब? इस ज्ञानी पुरुष ने उत्तर दिया कि **"मरेंगे तो मरने दो, मैं बूढ़ा हूं, मेरे जीने से क्या फायदा है, इससे बढ़कर और कब मृत्यु होसकती है"!** इस वृद्ध को कठिन कारावास का दण्ड मिला था। वालकरस्ट के जेलर का भाई हरभरतसिंह पर दया करता था। यह बगीचे में काम करते थे, इनका परिश्रम देख कर नवयुवक लज्जित होते थे।

मिसेज़ शेख महताब जेल से छूटीं

ता० ११ जनवरी को पीटर मेरीत्सबर्ग की जेल से मिसेज़ शेख महताब, उनकी माता और उनका नमक हलाल नौकर तीन मास की क़ैद पूरी कर छूटे। इनका स्वागत करने के लिये सैकड़ों भारतीय स्त्री और पुरुष जेल के दरवाज़े पर मौजूद थे। फ़ीनिक्स से मिसेज़ डाक्टर मणिलाल, मिसेज़ मगनलाल गांधी, मिस वेस्ट और मिस फ़ातमा गई थीं। जेल से निकलते ही पुष्पमालाओं से स्वागत किया गया। वर्षों का पर्दा छोड़कर जननी जन्मभूमि के लिये जेल जानेवाली यह एकही मुसलमान महिला थी, इसलिये मेरीत्सबर्ग की भारतीय जनता ने इनका खूब स्वागत किया। वहां से यह डरबन के लिये रवाना हुई। स्टेशन पर पहुंचते ही सैकड़ों भारतीयों ने आनन्दध्वनि से बधाई दी। तत्पश्चात् मि. रुस्तमजी के घर पर आकर नेटाल इण्डियन एसोसियेशन, पारसी अंजुमन आदि सभाओं की ओर से स्वागत किया गया। सभा में स्त्रियों की उपस्थिति न्यून थी, केवल मिसेज़ डाक्टर मणिलाल, मिसेज़ मगनलाल, श्रीमती राजदेवी आदि थोड़ी सी स्त्रियां विद्यमान थीं, पुरुषों का खूब जमाव था।

सर बेंजमिन राबर्टसन का आगमन

हमारी दयालु भारत सरकार के भेजे हुये प्रतिनिधि, मध्यप्रदेश के चीफ़ कमिश्नर, सर बेंजमिन राबर्टसन सरकारी रनबोट 'हार्डिञ्ज' से ता० ११ जनवरी को डरबन में आ पहुंचे। इनका स्टीमर १० दिन में भारत से डरबन में आया। भारत सरकार ने १५ हज़ार पौन्ड खर्च के लिये स्वीकार किया था। सर बेंजमिन राबर्टसन के साथ मि. स्लेटर आई० सी० एस०, खानगी मन्त्री के तौरपर आये थे। इनको लेने के लिये चीफ़ मजिस्ट्रेट मि. बीन्स, मि. पोलक, मि. रुस्तमजी, मि. अब्दुल क़ादिर बावाज़ीर आदि सज्जन बन्दरगाह पर गये थे। इनको उतार कर मेरान हटल में ठहराया गया। ता० १२ जनवरी को मि. पोलक, मि. केलनबेक और मि. पियर्सन ने इनसे भेंट कर बातचीत की। सर बेंजमिन के साथ राय साहब सरकार ख़ास सलाहकार के तौर पर आये थे। डरबन में कुछ दिन रह कर सर बेंजमिन प्रिटोरिया को प्रस्थान कर गये।

मुक़द्मों की भरमार

ता० १७ जनवरी को ११ भारतीयों को काम पर ग़ैर हाज़िर रहने के अपराध में पकड़ा गया, और फ़ौजदारी अदालत में खड़ा किया गया। इन सब को मजिस्ट्रेट ने १० शिलिङ्ग अर्थदण्ड अथवा ७—७ दिन की कड़ी क़ैद की सज़ा दी। दूसरा मुक़द्मा मुनस्वामी नायडू का चला। मुनस्वामी नोटिंगहाम रोड पर सर डंकन मेकज़ी के पास शर्तबन्धी मजूरी करता है। यह सत्याग्रह की लड़ाई में भाग लेने के कारण १३ बार जेल जा चुका था, यह चौदहवीं बार उसके ऊपर मुक़द्मा चला। 'नेटाल एडवरटाइज़र' का सम्वाद दाता कहता है, कि १३ वीं बार जेल से छूटने पर उसे काम पर जाने को कहा गया। पर उसने स्पष्ट अस्वीकार किया और कहा कि काम पर जाने की अपेक्षा मर जाना उत्तम है। मजिस्ट्रेट ने इस बार १४ दिन की सख्त मजूरी के साथ क़ैद की सज़ा दी। ता० १४ जनवरी को ग्रीन उडपार्क के ईंट के कारखाना में काम करनेवाले ३ शर्त बन्धे मजूरों को वेरुलम की कचहरी में खड़ा किया गया। मजूरों ने कहा कि जेल से छूटने के बाद हमें डीपो में रक्खा गया। वहां से प्रोटेक्टर आफ़ इमिग्रान्ट के हवाले किया गया। प्रोटेक्टर ने हमें पुलिस के पहरे में कोठी पर भेजा। मजिस्ट्रेट ने हमें निर्दोष कह कर छोड़ दिया।

ता० १४ जनवरी को मौलवी मुहम्मद सिपाही, मुहम्मद यूसफ़ और मक़दूम खां को मारपीट करने के दोष में मि. डबल्यु जी. आर्मस्टरॉंग का मुक़द्मा वेरुलम के न्यायाधीश के समक्ष चला डाक्टर हीलने मारका लिखित वर्णन पढ़ सुनाया। डाक्टर ने कहा कि इनके शरीर पर चाबुक की मार पड़ी है। पीठ मस्तक और देहपर कतिपय दाग़ हैं। यह अभियोग बहुत दिनों तक चला, अन्त में मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को २५ पौंड अर्थदण्ड देकर छोड़ दिया। स्वर्गीय सुस्साई की मृत्यु के सम्बन्ध में जांच पड़ताल का काम आरम्भ हुआ। स्टेट मैनेजर मि. टोड पर हत्या का अभियोग था। बहुत कुछ प्रमाण दिये गये, पर अन्त में मुक़द्मा रद्द कर दिया गया। माऊन्ट एजकोम्ब में हड़ताल के समय छः भारतीयों की मृत्यु होगई थी। इन हत्याओं का अभियोग मि. कोलीन केम्बल के ऊपर वेरुलम के न्यायालय में चल रहा था। अंत में मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को निर्दोषी बनाकर छोड़ दिया। यहां पर प्रयाग की 'मर्यादा' का यह पद्य याद आता है :—

> बहुत पढ़ चुके हैं हम पहिले,
> तिल्ली का फट जाना।
> किन्तु न कभी सुना था,
> कोड़े खाकर जान गंवाना।

मेरीत्सबर्ग में मि. पी. के नायडू, दुखी और एन. बी. नायक पर जो अभियोग चल रहा था उसको सरकारी वकील की सूचना से रद्द कर दिया गया।

भवानी दयाल छूटे

इस विषय पर ता० २१ जनवरी १९१४ के 'इण्डियन ओपीनियन' में इस प्रकार छापा गया है:—"इण्डियन यंगमेन्स एसोशियेशनके सभापति और 'आर्यावर्त्त' के सहकारी सम्पादक मि. भवानी दयाल ता० १७ जनवरी को दरबन की सेन्ट्रल जेल से छूटे। जर्मिस्टन के मि. शिवप्रसाद, जो इनके साथ ही जेल में गये थे, वह भी उसी दिन पोयन्ट की जेल से छूटे। पाठकों को स्मरण होगा कि इन दोनों भाईयों की वीर स्त्रियां भी जेल में हैं। मि. गुलाबदास और मि. रघुवर १९ जनवरी को छूटे। इनको लेने के लिये मिस श्लेशीन, मि. पोलक, मि. केलनबेक, मि. पियर्सन, बाबू लालबहादुर सिंह, मि. बद्री, देशभक्त थम्बी नायडू, मि. थानु महाराज मि. अन्बाराम महाराज, मि. कुंजबिहारी सिंह, मि. गोकुलदास गान्धी आदि यूरोपियन और भारतीय मित्र जेल के द्वारपर गये थे। वहां इनको नेटाल इण्डियन एसोसियेशन तथा अन्य मित्रों की ओर से पुष्पमालायें पहिनाई गईं। तत्पश्चात इनके सन्मानार्थ मि. रुस्तमजी के घर पर एक प्रीति भोज हुआ। उसी दिन प्रिटोरिया से लो० गान्धी ने भवानीदयाल के पास हिन्दी भाषा में जो पत्र भेजा उसको यहां पर उन्हीं की भाषा में ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं:—"भाई श्री भवानी दयाल ! मैं उमीद रखता हूं की तुमारी तबीयत ठीक होगी। तुमारा काम जहल में बहुत अच्छा रहा यह बात सुन मैं बहोत खुश हुवा था, तुमारा संदेशा मेरे को मीला था तुमारे लिये फीनी-क्स में जगा तैयार है। तुम्हारे वहां सहकुटुम्ब रहना। समाधानी की जो बात चलती है उस बारे में खबर मी. पोलक के पास से मीलेगा। मोहनदास कर्मचन्द गान्धी का वन्दे मातरम॥" जेलसे छूटने के बाद लो० गान्धी मि. पोलक, मि. केलनबेक और मिस श्लेशीन के अनुरोध से भवानी दयाल हिन्दी 'इण्डियन ओपीनियन' के सम्पादक नियत हुये।

ट्रांसवाल की वीर स्त्रियां छूटीं

ता० २० जनवरी को दरबन फ़ील्ड स्ट्रीट में स्त्री, पुरुष और बालकों का जमाव होने लगा। ट्रांसवाल की ११ वीर स्त्रियों ने, जिन्होंने फ़ोक्सरस्ट की सीमा पर और न्यूकासल की खानों पर अद्भुत शूरता दिखाई थी, पकड़ने की इच्छा न होने पर भी जिन्होंने पकड़ने के लिये सरकार को विवश किया था। वह तीन मास का कठिन कारागार भोग कर दरबन की जेल से आज ही छूटने वाली थीं। इन सत्याग्रही स्त्रियों को बधाई देने के लिये सैकड़ों स्त्री, पुरुष जेल के दरवाज़े पर आने के लिये आतुर हो रहे थे। इतने ही में एकाएक यह खबर मिली कि इन वीराङ्गनाओं को देशनिकाले का दण्ड दिया जायगा। दूसरी सूचना यह मिली कि गोरे मजूरों की हड़ताल से देश में फ़ौजी क़ानून जारी हो गया है इस लिये किसी प्रकार का जिलूस नहीं निकल सकेगा। जिलूस निकालने के लिये मि. पोलक परिश्रम कर रहे थे पर फ़ौजी क़ानून के सामने कृतकार्य्य न हो सके। ९ बजे के समय तीन सत्याग्रही स्त्रियां मिसेज़ एन. पिल्ले, मिसेज़ पी. के. नायडू और मिसेज़ वीन स्वामी पिल्ले को छोड़ दिया गया। वे मि. रुस्तम जी के मकान पर आ पहुंचीं। उस समय बिहार, युक्तप्रदेश, गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तों की दो तीन सौ स्त्रियां वहां उपस्थित थीं। अन्य सत्याग्रही स्त्रियों को छुड़ाने का प्रयत्न हो रहा था। इस समय से सभा का काम प्रारम्भ किया गया, यूरोपियन और भारतीय जनता का बड़ा भारी जमाव हो गया। धूपकी अधिकता से शीतल शरबत, मेवा आदि पदार्थ उपस्थित जन

समुदाय में बार बार वितीर्ण किये जाने लगे। सब से पहिले नेटाल इन्डियन वोमेन्स एसोसियेशन की ओर से मिस आर. आर. मुडले ने सत्कार सूचक व्याख्यान पढ़ कर सुनाया। इसके बाद मि. पोलक, मि. केलनबेक, मिस वेस्ट, पारसी रुस्तम जी, मि. सी. बी. पिल्ले, इमाम साहब अब्दुल कादर बावाजी र, मिस्टर और मिसेज़ शेख़ महताब ने इन वीराङ्गनाओं की वीरता की सराहना की। इतने में ११ बजे के समय मिसेज भवानी दयाल जेल से छूट कर वहां आ पहुंची, सब लोगों ने इनको बधाई दी। इस सुअवसर के लिये बनाया हुआ खास भजन मि. शेख़ महताब ने गा कर सुनाया। एकाएक ख़बर मिली कि सब सत्याग्रही स्त्रियां छूट गईं। उनका बड़े समारोह और हर्ष ध्वनि के साथ स्वागत किया गया। पुनः व्याख्यान का सिलसिला जारी हुआ। मिस मेलटीना (संयुक्त पार्लीमेन्ट के स्पीकर की बहिन) रेवरेन्ड ए. ए. बेली आदि यूरोपियन, सज्जनों ने सत्याग्रही स्त्रियों की वीरता के सम्बन्ध में भाषण किया। अन्त में सभा विसर्जन कर सत्याग्रही स्त्रियों को एक प्रीति भोज दिया गया। मि. रुस्तम जी ने इस उत्सव का ख़र्च अपने ऊपर लिया। प्रिटोरिया की बृटिश इन्डियन कमेटी, तामिल बेनीफिट सोसायटी और अंजुमन इसलाम, जोहांसबर्ग की ट्रांसवाल बृटिश इन्डियन एसोसियेशन, ट्रांसवाल वोमेन्स एसोसियेशन, और तामिल बेनीफिट सोसायटी ने इन सत्याग्रही महिलाओं की सेवा में बधाई सूचक तार भेजे थे। नेटाल इन्डियन एसोसियेशन, नेटाल वोमेन्स एसोसियेशन, हिन्दू वोमेन्स सभा, ज़रथोस्ती अंजुमन आदि सभाओं के प्रतिनिधियों ने सत्याग्रही वीराङ्गनाओं का स्वागत किया। मिसेज़ गान्धी, मिसेज डाक्टर मणिलाल बारिस्टर आदि स्त्रियां फ़ीनिक्स से आई थीं। मिसेज़ गान्धी बहुत समय से असाध्य बीमार थीं तो भी सत्याग्रही वनिताओं से मिलने के लिये डरबन पहुंच गई थीं। मिसेज़ बद्री, मिसेज़ थानु महाराज, श्रीमती राजदेवी आदि ढाई तीन सौ स्त्रियों ने इस महोत्सव में भाग लिया।

अन्य सत्याग्रही छूटे

ता० २१ जनवरी को न्यूकासल प्रवासी १० सत्याग्रहियों को डरबन जेल से छुटकारा मिला। २३ जनवरी को डरबन के छः सत्याग्रही छूटे। ता० २६ जनवरी को मि. मणिलाल गान्धी आदि ५ सत्याग्रही डरबन की जेल से छूटे, भारतीय जनता ने इन सब का बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। ता० २८ जनवरी को मि. प्रागजी खण्डुभाई देशाई और ता० २९ जनवरी को मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ डरबन की सेन्ट्रल जेल से छूटे। ता० ३० जनवरी को मि. गयादीन महाराज आदि ५ सत्याग्रहियों ने पोयन्ट के जेल खाने से छुटकारा पाया। समस्त सत्याग्रहियों का मि. रुस्तम जी के घरपर यथायोग्य स्वागत किया गया और नेटाल इन्डियन एसोसियेशन की ओर से प्रत्येक सत्याग्रही को पुष्पमाल अर्पण की गई।

न्यू जरमनी में अभियोग

सत्याग्रहियों के लिये पायनटोन के समीप न्यू जरमनी में जो स्थान लिया गया था वहां से पकड़े हुये १४ पुरुष और १ स्त्री का मुक़दमा पायनटोन के मजिस्ट्रेट के इजलास में चला। अभियुक्तों ने अपने ऊपर होते हुये घोर अत्याचारों का वर्णन किया। यहां तक कहा कि कोठो में जाने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। मजिस्ट्रेट ने सब कुछ सुनकर अमस्लोटी वेली के ३ मनुष्यों को ३-३ सप्ताह और एक को १० दिन, हेरीसन् स्टेट के १० मनुष्यों को एक एक सप्ताह की जेल अथवा १० शिलिङ्ग जुर्माने का दण्ड दिया। दूसरी एक बालक और १० स्त्रियों की टोली उसी स्थान में पकड़ी गई। उनमें से दो स्त्रियां, जो दूसरी बार पकड़ी गई थीं, उनको १० दिन और एक स्त्री, जो पहिली बार

पकड़ी गई थी, उसको एक सप्ताह की जेल अथवा १० शिलिङ्ग जुर्माने का दण्ड दिया गया। शेष को कोठियों पर लौटा दिया गया। इन भारतियों ने मजिस्ट्रेट के सामने अपनी दुखभरी जो कहानी सुनाई है उसे सुनकर प्रत्येक देशसेवक का अन्तःकरण तिलमिला उठता है। इसके बाद भारतीयों के एक अंग्रेज़ मित्र मि. गेब्रीयल आयज़क को न्यू अरमनी में सत्याग्रह की लड़ाई में भाग लेने वाले शर्तबन्धे मजूरों की रक्षा करने के अपराध में पकड़ कर पायनटोन के मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने मि. आयज़क को दो मास की कैद अथवा १० पौन्ड जुर्माने का दण्ड दिया। मि. आयज़क ने जुर्माना न देकर जेल जाना ही पसन्द किया।

महात्मा एन्डरूज़ का स्वागत

महात्मा एन्डरूज़ एक सादा रहन सहन और उच्च विचार के पुरुष हैं। इनका डरबन, न्यूकासल जोहांसबर्ग, पीटर मेरीत्सबर्ग, प्रिटोरिया, किम्बर्ली आदि नगरों को भारतीय जनता ने बड़ी धूम धाम से स्वागत किया। इनके साथी महात्मा पियर्सन का भी खूब सत्कार किया गया। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ता० ६ जनवरी को विलायत में मि. एन्डरूज़ की माता का स्वर्गवास हो गया इसलिये मि. एन्डरूज़ ता० १२ फेब्रुअरी को केपटौन से विलायत के लिये प्रस्थान कर गये और मि. पियर्सन यहां के भारतीयों की दशा देख भाल कर ता० २६ फेब्रुअरी को डरबन से भारत के लिये रवाना हुये। महात्मा एन्डरूज़ के जन्म दिन की बधाई में इस पुस्तक के लेखक ने एक तार भेजा था जिसके उत्तर में मि. एन्डरूज़ ने लिखा:—

Dear Mr Bhawani Dayal,

Thank you very much indeed for your most kind birthday greeting, I have been most deeply touched by the affection shown me during my short stay in South Africa and shall ever remember it in my heart.

Yours very sincerely
C. F. Andrews.

"प्यारे मि. भवानी दयाल, मेरे जन्म दिन पर बधाई देने के लिये आपको अनेक धन्यवाद देता हूँ, मेरे दक्षिण अफ्रिका के थोड़े दिनों के प्रवास में जैसे गहरे हार्दिक स्नेह का परिचय दिया गया है उसको हम अपने अन्तःकरण में सदैव स्मरण रखेंगे। आपका बहुत सच्चा—सी० एफ० एन्डरूज़"

महात्मा एन्डरूज़ ने प्रिटोरिया नगर में व्याख्यान देते हुये कहा था कि "भारत में हमारे दो प्राचीन मुसलमान मित्र थे, उन्हें हम पिता के तुल्य समझते थे और वे दोनों मित्र हमें पुत्र के समान मानते थे। उनका नाम मौलवी जाकुल्ल और मुंशी था। यह दोनों दिल्ली के प्रख्यात नागरिक थे। इनके शुद्ध आदेश से हमने हिन्दू और मुसलमानों से एकसा प्रेम करना सीखा। दिल्ली कालेज के मुख्य प्रोफ़ेसर श्रीयुत रुद्र से भारत की विद्वत्ता का पूरा मान करना सीखा। मि. रुद्र ईसाई हो गये हैं पर भारतीयों से उनका अगाध प्रेम है। हमने गुरुकुल के महात्मा मुंशीराम और शान्तिनिकेतन के गुरुदेव बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्राचीन ऋषियों के जीवन की सरलता के विषय में शिक्षा प्राप्त की, इससे भारत की ओर हमारा प्रेम और भी अधिक बढ़ गया।" केपटौन के व्याख्यान में महात्मा एन्डरूज़ ने कविशिरोमणी बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की खूब प्रशंसा की, जिसका समर्थन लार्ड ग्लाडस्टन ने किया। लार्ड ग्लाडस्टन ने कहा कि "लन्दन की पाठशाला में भारत का प्राचीन इतिहास पढ़कर मैं मुग्ध हो गया था। यहां के लोगों को यह न समझना चाहिये कि भारत नेटाल के लिये एक मजूर भेजनेवाला देश है, पर भारत एक ऐसा देश है, जिसने बाबू रवीन्द्रनाथ के समान पुत्र रत्न पैदा कर संसार के अधिवासियों

जांच करनेवाला भारतीय कमीशन

मध्य में, सर विलियम सालोमन (प्रधान) आप की दाहिने ओर मि. इवाल्ड इस्लीलेन और बाईं ओर मि. जे. एस. विली बैठे हैं। मि. एण्डलर (सेक्रेटरी) खड़े हुए हैं।

लड़ाई के अन्तिम भाग में सम्मिलित होनेवालों का प्रथम दल

रावजी भाई एम. पटेल, आर. गोविन्द, गोकुलदास गारन, सी. के. गांधी, मगन भाई पटेल, रामदास गांधी, सालोमन रायपन।
एच. केलनबेक, एम. के. गांधी, मिसेज एम. ठाकुर, मिसेज गांधी, मिसेज़ सी. के. गांधी, मिसेज़ मगनलाल गांधी, पारसी रुस्तमजी।

को चकित कर दिया है"। लन्दन के एक व्याख्यान में रेवरेन्ड मि. एन्ड्रूज़ ने कहा कि "पंजाब के आर्य्यसमाज का, बंगाल के विद्यार्थियों और दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों का, साहस, कार्य्यदक्षता और उन्नति की तृष्णा देख कर मुझे भारत का भविष्य बड़ा ही आशाप्रद प्रतीत होता है।"

मो० गान्धी और जनरल स्मट्स् का पत्र व्यवहार

मो० गान्धी ने राजस्व सचिव जनरल स्मट्स की सेवा में एक पत्र भेजकर अपना अभिप्राय प्रगट किया। आपने जनरल स्मट्स से भेंट करने के लिये उनका उपकार माना। इसके बाद कमीशन के विषय में आप ने लिखा कि "पहिले हमारी सूचना यह थी कि कमीशन में भारतीयों का चुना हुआ एक प्रतिनिधि रहना चाहिये। दूसरी सूचना मेरी यह थी कि भारतीयों के कष्टों की जांच पड़ताल के लिये केवल भारतीयों के द्वारा एक अलग कमीशन चुनना चाहिये। तीसरी एक बात भी हमने कही थी, जिसका कहना अब आवश्यक नहीं। यदि हमारी किसी भी सूचना पर सरकार ध्यान देती तो भारतीय जनता कमीशन के काम में पूरी पूरी सहायता देती पर सरकार अब अपना विचार बदलने में असमर्थ है। अतएव हम भी कमीशन का शपथपूर्वक अस्वीकार कर चुके हैं, इसलिये कमीशन के सामने साक्षी देना मेरे लिये सर्वथा असम्भव है। हां, जब तक कमीशन का परिणाम प्रकट न हो, पार्लामेन्ट के आगामी अधिवेशन में क़ायदे पर विचार न हो ले तब तक के लिये सत्याग्रह की लड़ाई मुलतवी रखने की अपने देश बन्धुओं को सलाह दे सकते हैं। यदि उचित समझा जायगा तो सर बेंजमिन राबर्टसन, जिनको हमारी दयालु भारत सरकार ने कमीशन में साक्षी देने के लिये भेजा है, साक्षी देने में सहायता दी जायगी। इस समय जो सत्याग्रही जेल में अथवा कम्पौन्डरूपी जेल में हैं उनको शीघ्र छोड़ देना चाहिये। अन्त में निम्न लिखित मांगों का उल्लेख कर देना अनुचित न होगाः— (१) तीन पौन्ड कर रद्द होना चाहिये (२) विवाह का प्रश्न (३) केप में जाने का प्रश्न (४) फ्रीस्टेट का प्रश्न और (५) पुराने क़ायदों में न्यायपूर्वक बर्ताव। आशा है कि प्रधान इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे।"

इसके उत्तर में राजस्व सचिव के मन्त्री ने निम्न आशयका एक पत्र भेजाः—"नेटाल के भारतीयों की हड़ताल के सम्बन्ध में जाँच पड़ताल करने के लिये जो कमीशन चुनागया है उसमें सरकार को कुछ भी परिवर्तन करने की इच्छा नहीं है, यह बात सत्य है। आप कमीशन के सामने साक्षी न देंगे, यह जानकर प्रधान खेद प्रगट करते हैं, पर आप तो पहिलेसेही इस कमीशनको शपथपूर्वक अस्वीकार कर चुके हैं, यह बात प्रधान को विदित है। आपने कमीशन को अपमानित करने के अभिप्राय से नहीं प्रत्युत सत्याग्रही तरीके से कमीशन को अस्वीकार किया है। सत्याग्रही हड़तालियों के साथ अयोग्य बर्ताव किया गया है, इस बात को सरकार बिलकुल स्वीकार नहीं कर सकती है। यदि आप और आपके मित्रवर्ग कमीशन के सामने साक्षी न देंगे तो कमीशन को जांच करने का बहुत थोड़ा काम रह जायगा। भारतीयों की मांग को सरकार समयानुसार देने को आतुर है। यह मांग पार्लामेन्ट की आगामी बैठक में स्वीकार होने से सन्तोषजनक निर्णय होगा। बहुत दिनों से चलते हुये झगड़े को मिटा देना सरकार बड़ी आवश्यक बात समझती है। यदि कमीशन के सामने भारतीयों ने कोई ख़ास आरोप पेश करनेसे इन्कार किया तो पीछे से किये हुये आरोप को सरकार स्वीकार नहीं करेगी। एसपरेंजा और मौन्टएज़कोम्ब में जो कई

एक मृत्यु तक हो चुकी हैं, वहां जांच करने के लिये कमीशन को सरकार विशेष आज्ञा देगी। जेल अथवा कम्पौन्डरूपी जेल से सत्याग्रहियों को छोड़ देने के लिये सरकार ने आपके पत्र आने से पूर्वही निश्चय करलिया है। आपकी मांग के विषय में सरकार कमीशन की जांच की चिट्ठी की राह देखती है।"

कमीशन का बहिष्कार करने के लिये दरबन में विराट सभा

ता० २५ जनवरी को नेटाल इण्डियन एसोसियेशन के आदेश से इण्डियन फुटबाल ग्रौन्ड दरबन में भारतीयजनता की एक विराट सभा हुई। सभापति के आसन पर इमाम साहब अब्दुल कादिर बावाज़ीर विराजमान थे। सभा में लगभग ३००० मनुष्य विद्यमान थे। लो० गान्धी ने अंग्रेज़ी और हिन्दी में व्याख्यान देकर बतलाया कि मुझसे और दक्षिण अफ्रिका की सरकार से जो पत्रव्यवहार हुआ है उस पर सर्वसाधारण को विचार करना चाहिये। रेवरेन्ड एन्डरूज़, जो पत्र व्यवहार के समय स्वतः प्रिटोरिया में विद्यमान थे, उन्होंने हिन्दी और अंग्रेज़ी में इस इकरारनामे के सम्बन्ध में वक्तृता दी। मि. पोलक और मि. केलनबेक ने भी इस इकरारनामे का बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में समर्थन किया। अन्त में पारसी रुस्तमजी के प्रस्ताव, मि. लाज़रस ग्रेब्रीयल के समर्थन, देशभक्त थम्बी नायडू, मि. पी. के. नायडू और बाबू लालबहादुर सिंह आदि के अनुमोदन तथा सर्वसम्मति से इस आशय का प्रस्ताव पास किया गयाः– "नेटाल इण्डियन एसासियेशन के आदेश से भारतीयजनता की एक सार्वजनिक सभा हुई, इस सभा में लो० गान्धी और जनरल स्मट्स से परस्पर इकरारनामा हुआ है उस पर ध्यानपूर्वक विचार किया गया। अतएव यह सभा लो० गान्धी के पत्र में लिखी मांग को स्वीकार कर लेने के लिये विनय पूर्वक अनुरोध करती है और आशा रखती है कि पत्र में लिखे अनुसार मांग को सरकार अवश्य स्वीकार कर लेगी।" यह भी निश्चय हुआ कि कमीशन में कोई भी भारतीय साक्षी न दे।

भारतीय कमीशन की बैठक

भारतीयों के कष्टोंकी जांच करने के लिये सरकार ने जो कमीशन चुना था उसने ता० २६ जनवरी को दरबन में जांच पड़ताल का काम आरम्भ किया। कमीशन के काम आरम्भ करते समय सभापति सर विलियम सोलोमन ने एक भाषण दिया। आपने लो० गान्धी और दक्षिण अफ्रिका की सरकार से पत्रव्यवहार होने का जिक्र किया। आपने यह भी कहा कि लो० गान्धी इस कमीशन के सामने स्वतः साक्षी न देंगे तथा अन्य भारतीयों को साक्षी न देने के लिये लो० गान्धी ने उपदेश दिया है। इसके बाद कमीशन की कार्य्यवाही आरम्भ हुई। कई एक प्रतिष्ठित गोरों की साक्षी ली गई, उनमें मि. मार्शल केम्पबल की साक्षी विशेष उल्लेख योग्य है। मि. केम्पबलने ३ पौंड का कर रद्द करने की विशेष आवश्यकता बतलाई। आपने यह भी कहा कि भारत से प्रस्थान करते समय शर्तबन्धे मजूरों को यह बिलकुल खबर नहीं रहती कि ३ पौंड का कर क्या वस्तु है। यद्यपि उनसे कह दिया जाता है कि मजूरी की अवधि समाप्त होने पर स्वतन्त्र रूप से रहने के लिये ३ पौन्ड वार्षिक कर देना पड़ेगा। पर वह इस करसम्बन्धी शर्तको समझने में बिलकुल असमर्थ होते हैं। कई एक प्रमाण दे कर मि. केम्पबल ने इस कर को रद्द कर देने की सलाह दी। अन्य कई गोरों की साक्षी लिये जाने के बाद भारत सरकार के प्रतिनिधि सर बेंजमिन राबर्टसन की साक्षी ली गई। आपने कहा कि ३ पौन्ड का कर इस अभिप्राय से लगाया गया था कि जो भारतीय शर्तबन्धी मजूरी का पट्टा लिखा कर नेटाल में आवें वह मजूरी की अवधि पूरी होने पर

३ पौन्ड के कर देने की अड़चन से पुनः स्वदेश को लौट जांय। पर दक्षिण अफ्रिका और भारत सरकार की यह इच्छा पूरी नहीं हुई। इस लिये इस करको रद्द कर देना चाहिये। विवाह के विषय में आपने कहा कि भारतीय धर्म्मों के अनुसार किये हुये विवाहों को दक्षिण अफ्रिका की सरकार को स्वीकार कर लेना चाहिये। पर हां, यह आवश्यक है कि इस देश के क़ायदे के अनुसार एक समय में एक पुरुष के एक ही स्त्री होनी चाहिये। भारत के प्रतिष्ठित और उच्चकुल के पुरुष भी बहुविवाह को अनुचित समझते हैं। केवल नीच जातियों में यह रीति प्रचलित है। केप में इस देश के जन्मे हुये भारतीयों के प्रवेश करने के लिये आपने पुराना हक़ कायम रखने की सलाह दी। इसके बाद भारतहितैषी मि. पियर्सन की साक्षी ली गई। आपने कहा कि यह ३ पौन्ड का कर अत्यन्त घातक और निर्दयता का परिचायक है। भारत से विदा होते समय अशिक्षित मजूर इस कर सम्बंधी शर्तों से बिलकुल अनजान होते हैं। वह इस देश के रहन सहन से नितान्त अनभिज्ञ होते हैं। उनको यहां के खर्च की भी खबर नहीं रहती है। हमने कई एक भारतीयों से पूछा कि तुमने क्यों हड़ताल की, तो उत्तर मिला कि ३ पौन्ड का कर रद्द होने के लिये। यदि भारतीयों को इस देश से निकाल बाहर करने की इच्छा हो तो उनको एकबारगी बहिष्कार कर देना चाहिये। पर गोरे लोग ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि उनको भारतीयों की ज़रूरत है। इस करसे भारतीयों को बारबार मजूरी का पट्टा लिखना पड़ता है। अतएव इस गुलामी की प्रथा को रद्द कर देना आवश्यक है। आपने इमीग्रेशन क़ायदे के सम्बन्ध में कहा कि यह क़ायदा न्यायपूर्वक अमल में नहीं लाया जाता है प्रत्युत इससे घोर अन्याय होता है।

अमज़ीम्टो के चीनी के कारखानेवाले मि. रानेल्ड ने कहा कि यदि यह कर हड़ताल होने से पहिले निकाल दिया जाता तो बहुत अच्छा होता, परन्तु अब इस कर को निकालने से काफ़िर लोग भी इस मार्ग का अनुसरण करेंगे। हमारा विश्वास है कि यह कर अनुचित और भारतीयों पर भार स्वरूप है। यह हम नहीं मानते कि कर रद्द हो जाने से भारतीय बहुत सी ज़मीन ख़रीद लेंगे। इसके बाद प्रधान के आदेशानुसार प्रोटेक्टर आफ़ इमीग्रान्ट मि. पोलकींगहार्न को कमीशन में साक्षी देने के लिये बुलाया गया। आपने कहा कि सन् १८७८ से ले कर सन् १९०७ तक ३४,६०४ भारतीय मजूरी का पट्टा लिखाकर आये। उनमें से ४८१३ मजूर पट्टे की अवधि समाप्त कर स्वदेश को लौट गये। मजूरी की अवधि समाप्त कर जो भारतीय इस देश में रह गये उनकी संख्या २७,४११ हैं। इसके बाद आपने बहुत कुछ उल्टा सीधा कह डाला। अन्त में आपने कहा कि शर्तबन्धे मजूर रखने वाले ६६ स्वामियों की ओर से मुझे सूचना मिली थी कि कुल १६,९३० मजूरों ने हड़ताल की थी। गोरे स्वामियों ने मजूरों के साथ ख़राब बर्ताव किया है, ऐसी अफ़वाह उड़ी थी, पर मेरे पास ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है। मजूरों के रक्षक कहलानेवाले इन साहब की साक्षी ख़ूब रङ्ग में रंगी हुई थी। जिस देश में रक्षक ही भक्षक बन जायं वहां बिचारे निर्बलों का निर्वाह कैसे हो। इसके अतिरिक्त डरबन के अनेक मनुष्यों की साक्षी ली गई।

ता० २३ फरवरी को भारतीय कमीशन ने केपटौन में जांच का काम आरम्भ किया। पार्लीमेन्ट के सभासद् मि. मायलर ने कहा कि यह ३ पौन्ड का कर रद्द होना आवश्यक है। कारण यह है कि मजूरों को स्वदेश भेजने का जो हेतु था वह निष्फल होगया। सीनेटर चर्चिल ने कहा कि इन्हें कुछ धन देकर स्वदेश भेजने का उपाय करना चाहिये। यदि इस उपाय से सरकार को सफलता न हुई तो कर क़ायम रखना मेरे विचार में उचित

नहीं है। सिनेटर्स वि-टर, जोन्सटन और पार्लीमेन्ट के सदस्य हेन्डरसन, ग्रीफ़ीन और लुशील ने कहा कि कर रद्द करने का अब समय नहीं है। मि. ग्रीफ़ीन ने कहा कि स्त्री और बच्चों पर से कर उठा देना चाहिये। इन सभों ने अपनी साक्षी में कहा कि कर रद्द कर देने से काफ़िरों के मन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। पार्लीमेन्ट के सभासद मि. फ़ेक्स ने कहा कि भारतीयों को तो स्वदेश लौट जाने के लिये सब प्रकार से उत्तेजित करना चाहिये। यदि यह स्वदेश को न जावें तो ३ पौण्ड का कर वसूल करना चाहिये। इमीग्रेशन अमलदार मि. कज़न ने कहा कि भारतीयों का दुःख क़ायदे के सामने है, क़ायदे के अमल में नहीं। बारह मास से अधिक समय के लिये जो स्वदेश जाते हैं वह प्रमाणित करते हैं कि वह केवल व्यापारिक लाभ उठाने के लिये इस देश में आते हैं, उनका सच्चा प्रेम भारत के साथ है। इसके बाद कमीशन की कार्यवाही समाप्त हुई।

मुसलमानों की अदूरदर्शिता

नेटाल और ट्रांसवाल के कुछ अदूरदर्शी मुसलमानों ने कमीशन में साक्षी देकर अपनी चतुरता और बुद्धिमत्ता का अपूर्व परिचय दे डाला। जिस कमीशन में भारतीय जनता का चुना हुआ एक भी प्रतिनिधि न हो, जिस कमीशन के एक दो सभासद खुल्लमखुल्ला भारतीयों के प्रति विरोध प्रकट कर चुके हों, जिस कमीशन को भारतीय जनता और नेताओं ने बहिष्कार कर रक्खा हो। ऐसे अनोखे कमीशन में साक्षी देकर मुसलमानों ने बड़ी भारी भूल की बात की। सत्याग्रह की लड़ाई में बिचारे हिन्दू काम धन्धा छोड़ कर जेल जा रहे थे, बन्दूक की गोलियों से मारे जाते थे और तीरों से बेधे जा रहे थे, उस समय यह मुसलमान सेठ लोग अपनी सेजों पर पड़े पड़े करवट बदल रहे थे, अथवा वाणिज्य व्यापार से द्रव्य उपार्जन कर रहे थे। अब बिचारे हिन्दुओं ने लड़मर कर विजय प्राप्त की, भांति भांति के कष्ट सहन किये। इनके कष्टों की जांच करने के लिये सरकार ने अब कमीशन चुना तो मुसलमान साहिबान बीच में कूद पड़े और कुरान की आयतें दिखा कर कमीशन से चार औरतें करने का हक़ मांगने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ समझदार मुसलमान इस कुटिल आन्दोलन से पृथक रहे और उन्होंने कमीशन को बायकाट रखना ही उचित समझा। पर मुसलमानों के एक दल ने बड़ा ही रौला मचाया। डरबन के आंगलिया और जोहांसबर्ग के हबीब मोटन इस फक्कड़ दल के अगुआ थे। जोहांसबर्ग के 'हमदर्दे इसलाम' में यहां तक कहा गया कि "सारे हिन्दू काफ़िर हैं, इन काफ़िरों से अलग रहने में ही मुसलमानों की भलाई है। गान्धी भी एक अव्वल दर्जे का काफ़िर है, उसका साथ देना मुसलमानों के लिये ग़ैर-मुनासिब और महज़ फ़ज़ूल है। मि. काछलिया आदि मुसलमान जो गान्धी के अनुयायी हैं वे भी काफ़िर के साथ मिल कर काफ़िर हो गये। इन मुसलमान काफ़िरों का भी बायकाट कर देना चाहिये।" मुसलमानों में ऐसा जोश आया कि वे मारपीट करने पर उद्यत हो गये। साम्यिक सभापति मि. काछलिया गान्धी जैसे महात्मा की निन्दा होते देख अपना आसन तज कर चले गये। दूसरी सभा में एक क़ाज़ी ने हिन्दुओं के विरुद्ध ऐसा ज़हर उगला कि "हिन्दुओं का एक फ़िर्क़ा आर्य्यसमाज हमारे मज़हब पर सख्त हमला करता है, क्या कुरान के निन्दक इन काफ़िरों का साथ देना मुसलमान क़ौम का मुनासिब है, हर्गिज़ नहीं।" कितने ही मुसलमानों ने कहा कि "गान्धी एक औरत मांगता है इससे हमारे मज़हब पर हमला होता है। इस लिये प्रस्ताव पास कर तथा कमीशन में गवाही देकर हमें सरकार से चार औरतें मांगना चाहिये। चाहे सरकार हमारी मांगनी कबूल करे अथवा न करे, यह सरकार की मर्ज़ी।

पर हमें क़ुरान शरीफ़ के हुक्म के मुताबिक़ अपना फ़र्ज़ अदा कर देना चाहिये।" इस प्रकार थोड़े से मुसलमानों ने कमीशन में साक्षी देकर अपनी अदूरदर्शिता का ख़ूबही परिचय दिया।

समस्त सत्याग्रहियों का छुटकारा

बहुत दिनों से यह चर्चा चल रही थी कि समस्त सत्याग्रही क़ैदी जेल से छोड़ दिये जायंगे। इसमें कुछ विलम्ब तो अवश्य हुआ पर अन्त में सब सत्याग्रही क़ैदी जेल से छोड़ दिये गये। ता० १० फ़रवरी के सायंकाल के समय समस्त सत्याग्रही भिन्न भिन्न क़ैद ख़ानों से छोड़े गये। सैंकड़ों मनुष्य इन सत्याग्रहियों का स्वागत करने के लिये जेल के दरवाज़ों पर गये थे। विस्तारभय से हम उन पुरुषों के नाम देने में असमर्थ हैं, पर जिन वीराङ्गनाओं की उस दिन जेल से रिहाई हुई उनके नाम निम्न प्रकार हैं:—मिसेज़ वी. एस. पिल्ले, मिसेज़ मुनस्वामी मुनलायट, मिसेज़ स्वयम्बर, मिसेज़ शिवप्रसाद, मिसेज़ बलमनि, मिसेज़ पी. जी. नायडू, मिसेज़ मुनस्वामी मुडलियार और कुमारी वेलिअम्मा। इन वीर नारियों ने अपने स्वार्थत्याग, वीरता और साहस का जो अपूर्व परिचय दिया इसके लिये हम इनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

इन सत्याग्रहियों के जेल से छूटने के उपलक्ष्य में मेरीत्सबर्ग की भारतीयजनता ने एक सभा कर इन सत्याग्रहियों को एक प्रीतिभोज दिया, जिसमें मि. पोलक, मि. बद्री, मि० पी. के. नायडू आदि सज्जन सम्मलित हुए थे। कई एक नेताओं के बधाईसूचक व्याख्यान भी हुये। वहां से दूसरे दिन सत्याग्रहियों ने दरबन के लिये प्रस्थान किया। मि. थम्बी नायडू सौथ कोस्ट जंक्शन पर और मि. बावाज़ीर, मि. सोराब जी, मि. मेढ, भवानी दयाल आदि ने अम्बलो स्टेशन पर उपस्थित रह कर इन सत्याग्रहियों को पुष्पहार समर्पण किये। जिस समय यह गाड़ी दरबन स्टेशन पर पहुंची तो स्टेशन 'वन्देमातरम्' की ध्वनि से गूंज उठा। वहां से सत्याग्रहियों को पारसी रुस्तम जी के घर पर लाकर एक प्रीतिभोज दिया गया। मि. बावज़ीर, मि. रुस्तम जी, मि. लाल बहादुर सिंह, मिसेज़ पोलक आदि सज्जन और महिलाओं के सत्कारसूचक व्याख्यान होने के बाद 'वन्देमातरम्' के गान के साथ सभा विसर्जन की गई।

मेरीत्सबर्ग की जेल से ६०, दरबन सेन्ट्रल और पोयन्ट जेल से ४४, न्यूकासल से ८ और पोर्टएलिज़ बेथ की जेल से ११ सत्याग्रही क़ैदी छोड़े गये। मि. आयजक प्रेग्रीयल को उस दिन नहीं छोड़ा गया था पर पीछे सरकार से लिखा पढ़ी करने पर वह भी छोड़ दिये गये। भारतीय जनता ने सबका ख़ूब ही सत्कार किया।

पार्लीमेन्ट की बैठक

ता० ३० जनवरी सन् १६१४ को केपटौन में दक्षिण अफ्रिका की संयुक्त पार्लीमेन्ट की पहिली बैठक हुई। पार्लीमेन्ट खोलते समय गवर्नर जनरल लार्ड ग्लाडस्टन ने कहा कि गत अक्टूबर मास में भारतीय मजूरों ने पहिले कोयले की खानों में हड़ताल की, पीछे शक्कर के कारखानों में हड़ताल हुई, दुर्भाग्यवश मारपीट तक की नौबत पहुंची और कई एक मृत्यु भी होगईं। इसकी जांच करने के लिये सरकार ने कमीशन चुना है, आशा है कि कमीशन समय पर अपनी जांच की रिपोर्ट पार्लीमेन्ट में पेश करेगा और उस पर विचार कर इस झगड़े को मिटा देने का प्रयत्न किया जायगा।

ट्रांसवाल के सत्याग्रहियों को विदाई

ट्रांसवाल के सत्याग्रहियों की विदाई के उपलक्ष्य में सब से पहिले दरबन की हिन्दू महिला सभा ने एक प्रीति भोज दिया। सभा में लो० गांधी, मिसेज़ गान्धी, मिस्टर और मिसेज़ पोलक, मिस्टर थम्बी नायडू, मिसेज़ ठाकूर मणिलाल

बारिस्टर, मिस्टर लाल बहादुरसिंह, भवानी दयाल और मिसेज़ भवानीदयाल, मि. प्रभा जी देशाई, मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ, गांधी परिवार और अन्य सैंकड़ों स्त्री पुरुष उपस्थित थे। यह भोज विक्टोरिया बाथा हाल में दिया गया था। सभा में कई एक सज्जन और महिलाओं ने वक्तृता दी। मो० गान्धी उसी दिन केपटौन जानेवाले थे। इसलिये सभा में थोड़ी देर रह कर चले गये। मि. सी० वी० पिल्ले ने कहा कि मिसेज़ गान्धी आदि गुजराती स्त्रियें, मिसेज़ थम्बी नायडू आदि मद्रासी स्त्रियें और मिसेज़ भवानीदयाल आदि उत्तर भारत की स्त्रियों ने जिस ऐक्यता के साथ इस लड़ाई में भाग लिया है वह इतिहास के पन्नों में सदा चमकता रहेगा। इसके बाद जेल में गये हुए छः बालकों को एक एक चांदी का कटोरा दिया गया। भवानीदयाल के पुत्र रामदत्त के कटोरे में निम्न शब्द अंकित हैं:—"Durban 21-1-14, Presented by Hindu Women's Sabha on P. Ramdat's Release from Jail" "डरबन २१—१—१४। पं० रामदत्त के जेल से छूटने पर हिन्दू महिला सभा की ओर से दिया गया"।

ता० १५ फरवरी को डरबन की तामिल महाजन सभा ने एक प्रीतिभोज देकर सत्याग्राहियों का सत्कार किया। सभा की ओर से सत्याग्राहियों का चित्र भी लिया गया। ता० १७ फरवरी को सौथकोस्ट की भारतीयजनता ने सत्याग्राहियोंको एक प्रीतिभोज दिया। मेरीत्सबर्ग से आया हुआ मि. बद्री का तार पढ़ कर सुनाया गया, जिसमें उन्होंने एक विशेष कार्यवश सभा में अनुपस्थित होने के लिये शोक प्रकट किया था। इसके बाद भारतहितैषी मि. पियर्सन, मि. आयङ्गर गंग्रीयल, मि. थम्बी नायडू, मि. लाल बहादुरसिंह, मि. सी. वी. पिल्ले, भवानीदयाल आदि सज्जनों के अंग्रेज़ी, तामिल और हिन्दी में समयोचित व्याख्यान हुये। तत्पश्चात् बड़े आनंदपूर्वक भोज का कार्य सम्पन्न हुआ।

ता० १८ फरवरी को २२ सत्याग्राही नर-नारियों ने डरबन से ट्रांसवाल के लिये प्रस्थान किया। डरबन स्टेशन पर नगर के सैंकड़ों प्रतिष्ठित सज्जनों ने पुष्पहार से सत्याग्राहियों का स्वागत किया। गाड़ी छूटतेही 'हुर्रे हुर्रे' और 'वन्देमातरम्' की ध्वनि होने लगी। मारसकोर्ट, डेन हौज़र, न्यूकासल, चार्लस्टन आदि स्टेशनों पर बहुत से स्त्री पुरुषों ने सत्याग्राहियों से मुलाक़ात की। ज्यों ही गाड़ी वालकरस्ट स्टेशन अर्थात् ट्रांसवाल की सीमा पर पहुंची, त्योंही इमीग्रेशन अमलदार ने आकर समस्त सत्याग्राहियों से ट्रांसवाल में आने का परवाना मांगा। परवाना न दिखाने पर सबको गाड़ी से उतार लिया तथा दो दिन तक वहां रोक रक्खा। मि. पोलक और मि. केलनबेक के परिश्रम से ता० २० फरवरी को सायंकाल सबको ट्रांसवाल जाने की आज्ञा मिली। समस्त सत्याग्रही ७ बजे की काफ़िर मेल में सवार होकर २१ फरवरी को प्रातःकाल जर्मिस्टन पहुंचे। जर्मिस्टन के स्टेशन पर बाबू हजूरासिंह, मि. गंगादीन बन्धु, मि. देवीदयालसिंह, श्रीमती राजदेवी, मिसेज़ बन्धु, मिसेज़ नन्दन आदि स्त्री पुरुषों का खूब जमाव था। मि. लाल बहादुरसिंह, भवानीदयाल आदि कई एक यहां के प्रवासी सत्याग्रही गाड़ी से उतर गये और कितने ही सीधे जोहांसबर्ग चले गये। ता० २१ फरवरी को जर्मिस्टन की भारतीय जनता ने सत्याग्राहियों को एक प्रीतिभोज दिया। मिसेज़ बन्धु, मिसेज़ नन्दन और मिसेज़ चौनियन भी जेल जाने के लिये वालकरस्ट गई थीं पर लड़ाई मुलतवी होने से घर पर लौट आईं।

ता० २२ फरवरी को देशभक्त थम्बी नायडू डरबन से रवाना हुये। जर्मिस्टन के स्टेशन पर मि. लाल बहादुरसिंह ने सत्याग्राहियों को पुष्पमाला अर्पण की। मिसेज़ भवानीदयाल भी सत्याग्रही महिलाओं को बधाई देने के लिये स्टेशन पर विद्यमान थीं। जोहांसबर्ग पहुंचने पर मि. प्राग

जी देशाई, मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ़, भवानीदयाल आदि पुरुषों और स्त्रियों ने अच्छा स्वागत किया।

एक वीरांगना की शोकजनक मृत्यु

यहां समाचार लिखते कलेजा दहलाता है कि ता० २२ फ़रवरी को सत्याग्रही कुमारी वेलिअमा सदा के लिये इस असार संसार को छोड़ कर चल बसीं। कुमारी वालिअमा ता० २२ दिसम्बर १९१३ को अपनी माता के साथ ३ मास के लिये जेल गई थीं। जब समस्त सत्याग्रही खास तौर पर जेल से छोड़े गये तो उनके साथ कुमारी वेलिअमा भी छूटीं। कुमारी वेलिअमा जेल से ही बीमार निकलीं। कितने ही दिन डरबन में व्यतीत कर अन्य सत्याग्रहियों के साथ कुमारी वेलिअमा जोहांसबर्ग को रवाना हुईं और वहां दो दिन के बाद समस्त सत्याग्रहियों को शोकसागर में छोड़ कर १७ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्ग को पयान कर गईं। स्वधर्म में तत्पर रहने वाली और भारतमाता की कीर्ति को बढ़ानेवाली इस पुत्री की मृत्यु से भारतीयजनता ने अपना एक अमूल्य रत्न खोया।

कुमारी वेलिअमा की मृत्यु से सर्वत्र शोक छा गया। जोहांसबर्ग में ट्रांसवाल इण्डियन वोमेन्स एसोसियशन का एक अधिवेशन फ्रीडरोप बायस्कोप हाल में हुआ। सभा में मिसेज़ थम्बी नायडू, मिसेज़ भवानीदयाल, मिस वायकम, मिसेज़ स्वयम्बर, मिसेज़ बसमति आदि महिलाओं ने कुमारी वेलिअमा की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिये भाषण दिये। अन्त में इसी आशय का एक प्रस्ताव पास कर सभा विसर्जन की गई। ट्रांसवाल बृटिश इण्डियन एसोसियशन का अधिवेशन मि० काछलिया के सभापतित्व में उसी स्थान पर हुआ। मि. जोज़फ़ रायपन बारिस्टर, मि. केलनबेक, मि. थम्बी नायडू, भवानीदयाल आदि सज्जनों ने शोकजनक वक्तृता दीं। भवानी दयाल ने एक शोकसूचक कविताभी पढ़कर सुनाई, जो इण्डियन ओपीनियन में प्रकाशित की गई। तीसरी सभा जोहांसबर्ग की हिन्दूजनता की ओर से हुई, जिसमें मि. प्रागजी देशाई, मि. गङ्गादीन बन्धु आदि ने व्याख्यान दिये। चौथी सभा पाटीदार मंडल की ओर से और पांचवीं सभा तामिल बेनीफ़िट सोसायटी की ओर से उसी स्थान पर हुई तथा शोकसूचक प्रस्ताव पास किये गये। प्रिटोरिया इण्डियन वोमेन्स एसोसियशन की आश्रम में ता० २७ फ़रवरी को एक सभा हुई और दूसरी सभा तामिल बेनिफिट सोसायटी की ओर से हुई। इन सभाओं में शोक प्रदर्शनार्थ प्रस्ताव पास किये गये।

जर्मिस्टन की भारतीय महिलाओं की भी एक सभा हुई। सभापति का आसन मिसेज़ चीनियन ने ग्रहण किया था। मिसेज़ भवानीदयाल ने शोकसूचक प्रस्ताव उपस्थित किया। जिसका समर्थन मिसेज़ स्वयम्बर ने किया, अन्त में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया गया। जर्मिस्टन इण्डियन एसोसियशन की सभा में प्रिटोरिया, जोहांसबर्ग, बोक्सबर्ग, बेनोनी और जर्मिस्टन के मनुष्य विद्यमान थे। सभापति का आसन मि. लाल बहादुर सिंह ने ग्रहण किया था। भवानी दयाल ने शोक प्रकट करने के लिये प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसका समर्थन मि. जी. बन्धु, पं० मणिशङ्कर, रामलाल सिंह, और नानजेपा नायडू ने किया।

इसी प्रकार नेटाल इण्डियन एसोसियेशन, इण्डियन वोमेन्स एसोसियशन, हिन्दू महिला सभा, तामिल महाजन सभा आदि अनेक सभा समितियों ने शोकसूचक प्रस्ताव पास किये।

कमीशन की रिपोर्ट

कमीशन ने भारतीय हड़ताल की खूब जांच पड़ताल कर ता० १८ मार्च सन् १९१४ ईस्वी को अपनी रिपोर्ट पार्लामेन्ट में पेश की। कमीशन ने मुख्यतः ३ पौन्ड के खूनी कर पर विचार कर इसे

रद्द करने की विशेष आवश्यकता बताई। कमीशन के कथन का निचोड़ यह है कि जिस उद्देश्य से यह कर लगाया गया था वह उद्देश्य सिद्ध न हो सका। कतिपय साक्षियों का ऐसा विचार है कि यह कर रद्द करने से भारतीय समझेंगे कि सरकार हम से डर गई। अतः इससे भारतीयों को आन्दोलन करने की उत्तेजना मिलेगी और वे बारबार आन्दोलन कर सरकार को पराजित करेंगे। कई सज्जनों का यह ख्याल भी है कि काफ़िर लोग भारतीयों का अनुकरण कर सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने में प्रवृत्त होंगे। उन पर यह कर रद्द होने का बुरा प्रभाव पड़ेगा। पर कमीशन इन युक्तियों पर ध्यान देना उचित नहीं समझता है। अगर कि कर रद्द करने के योग्य है तो उसके रद्द करने में क्यों विलम्ब करना चाहिये। इस लिये यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि कर रद्द कर देना ज़रूरी है।

विवाह के प्रश्न के विषय में कमीशन ने निम्न विचार प्रकट किया। (१) अपने धर्म्म के अनुसार भारतीय चाहे जितनी स्त्रियों का पाणिग्रहण करें पर सरकारी क़ायदे के अनुसार केवल एकही स्त्री आयज़ समझी जायगी और उसके ही बच्चे क़ायदे के समझे जांयगे। (२) जो पुरुष एक स्त्री को क़ायदे से विवाहित मानना चाहे उसको सरकार के नियत किये हुये ब्राह्मण अथवा मौलवी से सार्टीफ़िकेट लेना चाहिये (३) नवीन विवाह के लिये ब्राह्मण तथा मुल्ला अमलदार नियत किये जांयगे। (४) हाल में जिनके पास एक से अधिक स्त्रियां हैं उनकी सन्तान को इस देश में रहने का स्वत्व मिलेगा पर उनकी एक पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के बालक क़ायदे के अनुसार आयज़ नहीं माने जांयगे। (५) एक स्त्री क़ायदे में आयज़ समझी जायगी, यह अपने धर्म्म के अनुसार दूसरा विवाह भी कर सकेंगे पर दूसरी स्त्री तथा उसकी सन्तान आयज़ नहीं समझी जायगी। (६) चाहे कोई भारतीय इस कार्य्य पर अमल न करे पर वह एक स्त्री के आयज़ प्रमाणित करने का अधिकारी है।

ऑरेंज फ़्रीस्टेट के विषय में कमीशन ने कहा कि इस प्रश्न का निबटारा हो गया है। सन् १९१३ के क़ायदे की ७ वीं धाराके अनुसार डिक्लरेशन न लेना सरकार ने स्वीकार कर लिया है, इसको अधिक उपयोगी बनाने के लिये क़ायदे में फेरफार करना आवश्यक है।

दक्षिण अफ्रिका में जन्मे हुये भारतीयों को केपकालोनी में जाने के विषय में कमीशन ने कहा कि सन् १९१३ के समाधानपत्र में प्रचलित स्वत्वों को क़ायम रखने की बात यदि ठीक हो तो निसन्देह प्रतिज्ञा भंग होती है। शोक है कि समाधान की शर्तें की क़ायदेके अनुसार दस्तावेज़ नहीं बनी। मो० गान्धी और राजस्व सचिव के परस्पर पत्र व्यवहार से ज्ञात होता है कि चालू हक़ क़ायम रहना चाहिये, ऐसा भारतीयों का विचार है। इस बात को सरकार ने अस्वीकार किया हो, ऐसा उन पत्रों से नहीं ज्ञात होता है।

इमीग्रेशन क़ायदे में सुधार करने के लिये कमीशन ने नीचे लिखे अनुसार सम्मति दी। (१) इमीग्रेशन क़ायदे की धारा में किसी मनुष्य को केवल एक वर्ष के लिये परदेश जाने का परवाना दिया जाता, है उससे अवधि बढ़ाकर ३ वर्ष के लिये सनद देनी चाहिये। (२) केपटौन में एक नियमित दुभाषिया रखना चाहिये। (३) अरज़दार की इच्छा हो तो वह सनद के लिये इमीग्रेशन आफ़िस के कारकुन में अरज़ी भर के देवे। (४) केपटौन में अंगूठों के निशान लेने के बदले दोनों हाथों की अंगुलियों की छाप लेने का रिवाज है। इस रीति को बन्द करना चाहिये। (५) जहां पर इमीग्रेशन अमलदार न हो वहां के मजिस्ट्रेट को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने के लिये परवाना देने का अधिकार होना चाहिये।

महात्मा गांधी का डरबन में व्याख्यान ।

मि. गांधी का जेल से छुटकारा ।

(६) परवाने के लिये जो १ पौन्ड अर्थात् १५) रुपये महसूल लिया जाता है। उसको बहुत कम करना चाहिये और अवधि बढ़ाने के समय के लिये दूसरा महसूल नहीं लेना चाहिये। (७) एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने के लिये प्रार्थना करने पर इमीग्रेशन अमलदार निर्दिष्ट स्थान के अमलदार का खबर देकर पूछते हैं, इस रीति को बन्द करना चाहिये (८) इमीग्रेशन आफिस से अंगूठे के निशान वाला जो परवाना Domicile Certificate निकाले जाते हैं, वह सार्टिफिकेट यदि उसके स्वामी को विदित हो तो दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है (९) भारत से मजिस्ट्रेट अथवा अन्य राज्यकीय कर्मचारी के पास से सनद लेकर आने पर उनकी स्त्री और बालकों का इमीग्रेशन अमलदार इस देश में रहना स्वीकार करे।

मुसलमानों के माँगे हुये गोलडिन एक्ट (Golden Act) टौनशीप एक्ट (Township Act) और कुरान के कलाम के अनुसार चार स्त्रियों को जायज़ समझे जाने के विषय में कमीशन ने अपना मत प्रकट किया कि चूंकि हमको हड़ताल के कारण जानने के लिये जांच पड़ताल करने को कहा गया है, इसलिये हम इन सब प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं। कमीशन की इस रिपोर्ट पर दक्षिण अफ्रिका के समस्त समाचारपत्रों ने सन्तोष प्रकट किया।

परिशिष्ट

इन्डियन रिलीफ़ बिल

दूसरी जून सन् १९१७ के शुभ दिन 'इण्डियन रिलीफ़ बिल' को जनरल स्मट्स ने संयुक्त पार्लीमेन्टमें पेश किया। इस बिल का सारांश यह है:—

१—(क) राजस्व सचिव भारतीयों के धर्म्मगुरु को विवाह के अमलदार के तरीक़े पर चुनेंगे। वे लोग अपने धर्म्म के अनुसार भारतीयों की लग्न का विधान करेंगे।

(ख) इस प्रकार चुने हुये विवाह के अमलदार के हाथ से किया हुआ विवाह क़ायदे के अनुसार समझा जायगा और स्त्री पुरुष का बन्धन स्थिर रहेगा।

(ग) इस देश के क़ायदे के अनुसार विवाह के अमलदारों को रजिस्टर रखना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार इन धर्म्मगुरुओं को भी रजिस्टर रखना पड़ेगा। अतएव रजिस्टर में अपने हाथ से कराये हुये विवाह-संस्कारों को अंकित करना चाहिये। रजिस्टर के तलाश करने अथवा उसकी नक़ल करने के सम्बन्ध में वही क़ायदे वर्ते जायंगे जो अन्य धर्म्म के रजिस्टरों को लागू होते हैं।

२—(क) कोई स्त्री पुरुष मिलकर विवाह को रजिस्टर कराने के लिये अमलदार से प्रार्थना करें तो उन्हें यह बातें अमलदार को बतलाना चाहिये:—

(१) यह क़ायदा हुआ, उस समय अथवा उसके बाद दम्पति ने अपने धर्म्म के अनुसार विवाह संस्कार किया।

(२) एक दूसरे से पूर्णरूपेण सहमत हैं। इस दम्पति का दूसरे स्त्री अथवा पुरुष के साथ कभी सम्बन्ध न था।

(३) इनका विवाह क़ायदा विहित समझा जाय, यह दोनों की इच्छा है।

यह हक़ीक़त सन्तोषजनक मिलने पर जिस्टर करनेवाले दम्पति से नाम, ग्राम, अवस्था, जन्मस्थान आदि बातें पूछकर अमलदार रजिस्टर करे।

जिस धर्म्म में एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध करलेने की विधि हो, उस धर्म्म के पालन करनेवाले दम्पति का विवाह रजिस्टर हुआ अर्थात् वह विवाह जिस दिन और जिस स्थान पर हुआ हो, उसी दिन और उसी स्थान की गणना की जायगी। अतः क़ायदे में क़ायदे के अनुसार और बन्धनकारक लग्न लागू पड़ती हुई धारा इस लग्न को भी लागू पड़ेगी।

(ख) इस क़ायदे के अनुसार प्रार्थना किस प्रकार करना, इसके लिये किस प्रकार का रजिस्टर रखना, तथा उसमें क्या २ बातें लिखना चाहिये, इस विषय की धारा राजस्व सचिव निर्धारित करेंगे। जिस प्रान्त में अमुक विवाह रजिस्टर हुआ हो उस प्रान्त में रजिस्टर रखने, तलाश करने, उसकी नक़ल मिलने इत्यादि का क़ायदा आवश्यक परिवर्तन के साथ इस धाराके अनुसार लिखे हुये रजि-

स्टर को लागू पड़ेगा।

३—(क) सन् १६१३ के इमीग्रेशन कायदे की पांचवीं धारा के (जी) पेराग्राफ़ में नीचे के शब्द रद्द किये जाते हैं:—

यूनीयन के बाहर किसी भी धर्म्म के रीत्यानुसार विवाह संस्कार कायदे के अनुसार तथा एक पत्नी की रीति के अनुसार हुई लग्नावली स्त्री और बालकों"

(ख) उस पेराग्राफ़ के अर्थ में यह सुधार किया जाता है कि इस देश के हक़दार प्रवासी के साथ स्त्री का विवाह भारतीय धर्म के अनुसार हुआ हो। पीछे उस मनुष्य ने अपने धर्म्म के अनुसार दूसरी स्त्री के साथ भी विवाह किया हो तो उसमें हर्ज नहीं है। पर शर्त यह हैं:—

(१) उस मनुष्य के यूनियन के किसी प्रान्त में कोई दूसरी स्त्री हो, अथवा

(२) उस मनुष्य के किसी प्रान्त में दूसरी स्त्री का सोलह वर्ष से कम अवस्था का कोई बालक हो और वह जीवित हो, तो पीछे वह स्त्री उसकी पत्नी नहीं गिनी जायगी।

४—सन् १८६१ के क़ायदे में शर्तबन्धी मजूरी का पट्टा लिखाकर आनेवाले भारतियों को विवाह रजिस्टर कराने आदि की ६५ से ८६ तक की धारा हैं। उन में तथा सन् १६०७ के दूसरे नवम्बर के क़ायदे में किसी प्रकार की बाधा नहीं है।

५—सन् १८६५ के क़ायदे की ३ री धारा में यह सुधार किया जाता है कि शर्तबन्धी मजूरी के पट्टे की अवधि समाप्त होने पर यदि वह स्वदेश जाना चाहें तो १२ मास के भीतर प्रार्थना करने पर उन्हें मार्गव्यय दिया जायगा।

६—सरकार के ख़र्च से स्वदेश जानेवाले मनुष्यों को अपना, अपनी पत्नी का तथा अपने बालकों का इस देश में रहने का हक़ तज देना चाहिये।

७—नेटाल के अमुक क़ायदे से एक व्यक्ति को डोमीस्यायल अथवा प्रवास का परवाना दिया गया हो और उस परवाने का दाखिल करने वाला व्यक्ति ख़ास है या नहीं। ऐसा प्रश्न क़ायदे के अमल में उठे, तो परवाना दाखिल करनेवाले व्यक्ति के अंगूठे की छाप परवाने में बराबर हो, तो पीछे उस व्यक्ति से नेटाल के डोमीशायल के विषय में अधिक प्रमाण मांगने की आवश्यकता नहीं है।

८—सन् १८६५ के बाद आये हुये भारतीयों से जो ३ पौन्ड वार्षिक कर लिया जाता है वह रद्द किया जाय और जिनके ज़िम्मे यह कर बाक़ी हो उनसे यह कर वसूल न किया जाय।

९—यह क़ायदे 'सन् १६१४ के इन्डियन रिलीफ़ एक्ट' के नाम से प्रसिद्ध होंगे।

बिल में कुछ आवश्यक सुधार

यह बिल समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ, उसके थोड़े दिनों के बाद सरकारी गज़ट में भी बिल का मस्विदा छपा। उसमें थोड़ा यह सुधार किया गया। पहिले क़ायदे की दूसरी धारा के अन्तर्गत (क) में बताये अनुसार यह नियम हुआ कि उस समय विवाह रजिस्टर करनेवाले स्त्री पुरुष दोनों ने अपने धर्म्म की रीत्यानुकूल विवाह किया था, ऐसा बतानेवाले दम्पति का विवाह रजिस्टर हो सकता है। पर गज़ट में प्रकट हुई धारा में यह कहा गया है कि विवाह रजिस्टर करानेवाले दम्पति का विवाह भारतीय धर्म के अनुसार हुआ है, ऐसा प्रमाणित करनेवाले का विवाह रजिस्टर हो सकता है। इस सुधार से यूनियन तथा यूनियन के बाहर किया हुआ विवाह क़ायदे के अनुसार समझे जाने की रियायत की गई है। दूसरा सुधार तीसरी धारा के अन्तर्गत (ख)

में किया गया। बालक की जो व्याख्या प्रथमबार की गई थी उसमें यह प्रतिपादित हुआ था कि जो स्त्रियां यहीं पर रहती थीं और हाल ही में मर गई हैं, यदि वह जीवित रहतीं तो इस बिल के अनुसार कायदे के अनुसार समझी जाती। उस स्त्री के बालक का हक इस कायदे में संचित किया गया है। यह दोनों सुधार आवश्यक हैं, इनसे भारतीयों को पूरे पूरे हक मिलने की सम्भवना है।

पार्लीमेन्ट का निर्णय

जनरल स्मट्स् ने बिल का मस्विदा बना कर पार्लीमेन्ट में दाखिल किया और बिल प्रथमबार पढ़ा गया। उसका दूसरा पाठ ता० ८ जून को पार्लीमेन्ट में हुआ। इस बिल के सम्बन्ध में जनरल स्मट्स्ने एक विद्वत्ता पूर्ण वक्तृता दी। आपने कहा कि यूनियन होने के बाद भारतीयों के कष्टों पर पार्लीमेन्ट को बारबार ध्यान देना पड़ा है। पहिले के विवेचन को फिरसे दोहरा कर हम समय को नष्ट करना उचित नहीं समझते हैं। यह प्रश्न अमुक पक्षका है यह कहे बिना हम माननीय सदस्यों से इस विषय पर विचार करने का अनुरोध करते हैं। यह प्रश्न बड़ा कठिन है और इसके परिणाम में दक्षिण अफ्रिका में गम्भीर हलचल उठ खड़ी हुई थी। आज सौभाग्यवश इस प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान कर देने का अवसर है। भारतीय कमीशन के आदेशानुसार इस प्रश्न का हल हो सकता है, ऐसा भारत सरकार की ओर से स्वीकार किया गया है। बृटिश सरकार को भी यह स्वीकार होगा, ऐसा जान पड़ता है और दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों ने भी इस बिल के मस्विदे को स्वीकार कर लिया है। इस प्रश्न के निर्णय हो जाने पर दक्षिण अफ्रिका में निरन्तर शान्ति रहेगी।

किस संयोग से यह बिल दाखिल किया गया है, इस विषय पर जनरल स्मट्सने कहा कि हम गतवर्ष की पार्लीमेन्ट के अधिवेशन के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहते। गतवर्ष की बैठक में जो कायदा बना था उसकी कई धाराओं में बाधा उठी थी। अन्ततः पार्लीमेन्ट की बैठक के पूरे होने के थोड़े दिनों बाद मुल्की प्रधान को कायदे के सम्बंध में कई एक कठिनाईयों के विषय में मि. गान्धी की ओर से एक पत्र मिला। ता० ३० जून के पत्र में मि. गान्धी ने चार शङ्कायें की थीं। विचारने पर ज्ञात पड़ा कि दो शङ्काओं को सरकार कारोबारी के तौर पर तोड़ सकती है। पर अन्य दो शङ्काओं पर इमीग्रेशन कायदा प्रसार हो गया था और उस समय इस पर चर्चा हो चुकी थी। पार्लीमेन्ट की बैठकें पूरी हो जाने के कारण इस बात पर सरकार विचार नहीं कर सकी। इन दिनों में प्रथम प्रश्न दक्षिण अफ्रिका में जन्मे हुये भारतीयों के केप कालोनी में दाखिल होने के सम्बन्ध में था। और दूसरा प्रश्न विवाह विषयक था।

दो वर्ष हुये कि जब माननीय गोखले इस देश में पधारे थे और उन्होंने ३ पौन्ड का कर रद्द कर देने का अनुरोध किया था। इस प्रश्न का निर्णय करने का भार सरकार ने अपने माथे पर नहीं लिया था, इस विषय पर गम्भीर नासमझी फैल गई। गत सितम्बर मास में अन्य भारतीयों ने इस प्रश्न को फिर उठाया, और इसी सम्बन्ध में भयानक हड़तालें हुई। अन्त में हड़तालों के कारणों की जांच करने के लिये कमीशन नियत किया गया। कमीशन में भारत सरकार के प्रतिनिधि सर बेंजमिन राबर्टसन भी विद्यमान थे। इनकी उपस्थिति कमीशन के लिये अत्यन्त लाभदायक हुई।

इसके बाद कमीशन का चिट्ठा, विवाह का प्रश्न डेमीसाइल सार्टिफिकेट, ३ पौन्ड के कर रद्द करने आदि विषयों की विस्तृत आलोचना कर अन्त में जनरल स्मट्स्ने कहा कि इस बात के उठने के बाद नेटाल के सदस्यों से और मुझ से बातचीत हुई थी, उन्होंने इस प्रश्न को बड़ा गंभीर

बतलाया। अन्त में हम विशेषतः नेटाली मेम्बरों से प्रार्थना करते हैं कि इस बिल को पास करने में उन्हें सरकार का सहायक होना चाहिये। हमारी ऐतिहासिक कठिनाईयां, जो केवल दक्षिण अफ्रिका में ही नहीं, परन्तु सारे सम्राज्य के लिये हानिकारक हैं, उनका अन्त कर देने का यह अपूर्व अवसर है। मुझे पूर्ण आशा है कि बिल से इस देश के वर्तमान एक भारी से भारी भयंकर प्रश्न के निबटारा करने में हम समर्थ हो सकेंगे।

सर ए० डबल्यु० सेक्पस (ब्रामफ़ोन्टीन) ने कहा कि भारतीयों के साथ गोरों के बर्ताव की मिथ्या खबर विदेशों में फैल गई है। कमीशन के सदस्यों के समक्ष मि. गान्धी ने जो बाधा उठाई थी वह प्रयं प्रमाण था। कमीशन के चिट्ठे से जान पड़ता है कि पुनर्वार शर्तबन्धी मजूरी का पट्टा लिखानेवालों की संख्या बढ़ी है। जो इन्हें कष्ट होता तो यह पुनः मजूरी का पट्टा क्यों लिखाते? इस संख्यावृद्धि से स्वयं सिद्ध है कि नेटाल में भारतीयों के साथ बिलकुल बुरा बर्ताव नहीं होता है। अतएव राजनैतिक कारणों को लेकर हड़ताल की गई थी। भारतीय अमलदारों की पूरी अनुमति लेकर तीन पौंड का कर लगाया गया था। खुद सर बेंजमिन राबर्टसन ने कहा था कि यह शर्त उन्हें समझा दी जाती है। गोरे लोग यदि चीन अथवा भारत को जाते हैं तो अपने साथ में द्रव्य की बड़ी रकम लेकर जाते हैं और वहां कारखाने, उद्योग और अन्य प्रकार के धन्धे करके धन उपार्जन करते हैं। पर भारतीय इस सिद्धांत के नितान्त ही विपरीत काम करते हैं। यहां आकर धन कमाते हैं और उस धन को स्वदेश भेज देते हैं। इनकी संख्या नेटाल में अधिक है। यदि यह सारे दक्षिण अफ्रिका में फैल गये तो गोरों को इस देश को छोड़ देना पड़ेगा। इन लोगों ने जो मांगा है वह यहां के गोरे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। इस क़ायदे से नेटिवों पर घातक प्रभाव होगा और वह भी राजनैतिक आन्दोलन करने पर आरूढ़ होंगे। उनसे जो वार्षिक कर लिया जाता है उसको रद्द कराने के लिये वे भरपूर चेष्टा करेंगे। सन् १६०६ में नेटिवों ने कर रद्द कराने के लिये बलवा किया था। अब सरकार भारतीयों के ऊपर से कर उठा देने को तय्यार हैं। यह स्थिति अत्यन्त भयङ्कर है।

मि० लुशारव (अमवोटी) ने कहा कि इस प्रश्न के विषय में मैं सरकार की कठिनाईयों को जानता हूं, पर इस क़ायदे का अच्छा प्रभाव होगा, यह मानना सरकार की भूल है। मेरा मन्तव्य यह है कि इस क़ायदे से भारतीय सवाल का अन्त नहीं होगा। यूनियन के भिन्न भिन्न भागों के भारतीयों ने बताया है कि इस क़ायदे से हमको सन्तोष होगा पर मुझे विश्वास है कि इस क़ायदे से वे सन्तुष्ट न होंगे। अधिक हक़ मिलने के लिये उन्होंने यह लड़ाई उठाई है। उदारता दिखाने के लिये यह बिल बनाया गया है। पर उदार हृदय के साथ इसका क्या सम्बन्ध है? सभ्य मनुष्य हों तो उदारता को समझें पर जङ्गली हों तो क्या समझें। मुझे विश्वास है कि यदि यह क़ायदा पास हुआ तो उदार हृदयता का नहीं प्रत्युत निर्बलता का चिन्ह समझा जायगा। हलचल मचानेवाले गोरों की तूफ़ानी सलाह का प्रमाण अपने पास मौजूद है। बड़े प्रधान ने स्वतः प्रकट किया था कि इस तूफ़ानी सलाह से जङ्गली लोग बुरी राह में दौड़ेंगे। नेटाल में जब हड़ताल शुरू हुई तो भारतीय नेता ने उसे सत्याग्रह के नाम से प्रसिद्ध किया। काले लोग सत्याग्रह चला सकें, यह असम्भव है। वे सत्याग्रह के अभिप्राय से आरम्भ करते हैं पर अन्त में मारामारी हो जाती हैं। यह बिल निरर्थक है अतः इसका मैं समर्थन नहीं कर सकता।

मि० पेपलीन (जर्मिस्टन) ने कहा

कि मि. लुशारसका विचार खोटा है । इस विषय में सरकार ने जिस कायदे का मसविदा पेश किया है वह वास्तविक और सन्तोष जनक है। हां, यह ठीक है कि कमीशन के सामने साक्षी न देकर भारतीयों ने भारी भूल की है। पर विवाह संबंधी कायदे में सुधार और ३ पौन्ड का कर निकाल देना नितान्त ही आवश्यक है। हम लोग साम्राज्य के एक अंग हैं, अतः साम्राज्य की हानि लाभ पर हमें विचार करना चाहिये। भविष्यत में भारतीय स्वतन्त्रता पूर्वक इस देश में न आ सकें, इससे हम सहमत हैं। पर यहां आये हुये भारतीयों का कष्ट जहां तक सम्भव हो दूर करना चाहिये। पूर्व के दो वक्ताओं ने इस करके रद्द होने पर नेटिवों पर बुरा असर पड़ने की बात कही है, पर मेरे विचार से उनकी यह सम्मति भ्रमपूर्ण है। क्योंकि नेटिवों की स्थिति के सम्बन्ध में सरकार को पूरा परिचय है, अतएव न्यायाधीशों के द्वारा सरकार को यह खबर मिलती रहती है। सत्याग्रह की लड़ाई से भारत में घोर उत्तेजना फैल गई थी। इसे दूरकर साम्राज्य का सहायक होना हमारा कर्तव्य है, इस लिये इस प्रस्ताव का हम समर्थन करते हैं।

मि० मेकरगे (बराईहीड) ने इस कायदे के विरुद्ध में भाषण देते हुये कहा कि भारतीयों का पुराना हक नहीं छीना जाता है। जब भारतीय इस देश में आये तभी उन्होंने ३ पौन्ड वार्षिक कर देने का करार किया। या तो कर भरें अथवा स्वदेश को लौट जांय। मि. चेपलीन ने साम्राज्य की कठिनाईयों का वर्णन किया है, इस विषय पर वक्ता ने कोलम्बिया के मामले का उदाहरण दिया। इस कायदे से भारतीय प्रश्न का अन्तिम निराकरण हो जायगा, यह सम्भव नहीं। इतना मिलने पर भारतीय दूसरे हकों को मांग मचायंगे।

मि० मेरीमन (विक्टोरिया वेस्ट) ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुये कहा कि नवीन भारतीयों के इस देश में आने का मैं विरोधी हूं। भारतीय मजूरों से नेटाल के गोरों को हानि उठानी पड़ेगी इस विषय पर हमने कई बार गोरी जनता का ध्यान आकर्षित किया था। बृटिश कोलम्बिया की तरह भारतीय स्वच्छन्दता से इस देश में नहीं आये, उन्हें अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये लाया गया है। भारतीयों को स्वदेश भेज दिया जाय, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। यदि भारतीयों के कष्ट दूर करने के प्रयत्न में हम निष्फल हुये तो समझना चाहिये कि हम अपने कष्टों का बीजारोपण करते हैं। भारतीयों के आन्दोलन से भारतीय लोकमत पर घातक परिणाम होता है। सम्राट जिस समय सिंहासनारूढ़ हुये थे उस समय उन्होंने भारतीयों को गम्भीर वचन दिया था उस वचन का पालन करने में हमें साम्राज्य की सहायता करनी चाहिये।

मि० हेनवुड (विक्टोरिया काउन्टी) ने कहा कि यूनियन तथा खासकर नेटाल की जनता के लिये घोर हानिकारक बिल सरकार ने उपस्थित किया है। इस पर हम अत्यन्त शोक प्रकट करते हैं। इसमें भारतीयों के कष्टों में कमी होने की सम्भावना नहीं है, किन्तु इतना मिलने पर वह अधिक सुविधा के लिये हल चल करेंगे। सरकार को चालू कायदे के अमल करने में नेटाल की गोरी जनता सहायता देगी। भारतीयों के आन्दोलन से नेटाल के गोरे जल रहे थे, और यह कायदा जलती हुई आग में घी डालने के बराबर है। इसके बाद वक्ता सन् १८६० से भारतीय इतिहास का वर्णन करने लगा। सन् १८६० से सन् १८६३ तक इस देश में ४१,१६३ भारतीय मजूर प्रविष्ट हुये, उन्हें पट्टे की अवधि समाप्त होने पर इस देश में स्वतन्त्रतापूर्वक रहने का अधिकार था। इसी मध्य में १,७०४२ भारतीय उद्यम रोजगार के अभिप्राय से इस देश में आये। सन् १८६३ में भारतीय,

गोरे व्यापारियों, कारीगरों और अन्य व्यवसाईयों का प्रतिद्वन्द्विता करने लगे। उस समय औपनिवेशिक गोरों की आंखें खुलीं और उन्होंने भारतीयों का आगमन रोकने के लिये सरकार से प्रार्थना की। इस सम्बन्ध में सरकार ने क़ायदा बनाने के लिये वचन दिया। सन् १६०३ तक शर्तबन्धे मजूरों के बालक स्वतन्त्र भारतीय गिने जाते थे। पर इसके विरुद्ध में आन्दोलन आरम्भ हुआ और नेटाल की सरकार ने क़ायदा बनाकर १६ वर्ष से अधिक वयवाले बालकों और १३ वर्ष से अधिक वयवाली कन्याओं के ऊपर ३ पौन्ड का कर लगाया। इस के पीछे अन्य दो क़ायदे बने। सन् १६०६ में १८ टके और सन् १६०८ में ३४ टके के बराबर प्रतिज्ञाबद्ध मजूर तथा अन्य बहुत से भारतीय स्वदेश को लौट गये। सन १६११ में यह संख्या घटकर १४ टके के बराबर होगई। पर ७० टके भारतीयों ने फिर से शर्तबन्धी मजूरी स्वीकार की तथा इनसे २०, ०७३ पौन्ड (३,०४,० ६५ रुपये) वार्षिक कर वसूल किया गया। सन् ६११२ में ६५ टके फिरसे शर्तबन्धो मजूरी का पट्टा लिखाया। इस कर के लगाने का यह अभिप्रायः नहीं था कि मजूर स्वदेश को लौट जायं। पर इस कर का मुख्य उद्देश्य यह था कि भारतीय बारबार शर्तबन्धी मजूरी का पट्टा लिखावें [सदा गुलामी के नरक में सड़ते रहें - लेखक] इस कर को सख़्ती से वसूल करना चाहिये। इस कर को रद्द करना वास्तव में निर्बलता का परिचायक है। नेटाल में इस समय ७४,२०० भारतीय शर्तबन्धी मजूरी करते हैं उन्हें डोमीसायल का हक़ नहीं है। या तो फिर से मजूरी का पट्टा लिखावें अथवा ३ पौन्ड का कर भरे बिना उन्हें इस देश में रहने का हक़ नहीं है। भारतीय मितव्ययी होते हैं, थोड़े वेतन में काम करते हैं। हमको यह कहना चाहिये कि भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के विरुद्ध बहुत से भारतीय हैं। यह जानना चाहिये कि इस बिल के पास होने पर सरकार को तनिक भी सहायता मिलने की आशा नहीं है। ग्रेटबृटन की सत्ता सत्य और न्याय पर स्थित है। इस बिल से इस देश के गोरों का पाया डिग जायगा। इस बिल में हम यह सुधार करने का प्रस्ताव करते हैं कि "नेटाल के प्रत्येक वोटर का मत लिये बिना इस बिल पर विचार करने के लिये पार्लमेण्ट तय्यार नहीं है"।

मि० फ़ोवस (अमलाजी) ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और प्रश्न को महत्वपूर्ण बताया।

मि० मेलर (वीनन) ने कहा कि इस बिल के विरुद्ध में जिन्होंने अपना मत प्रदर्शित किया है उन्हें लज्जित होना चाहिये। क्योंकि उनके उद्यम धन्धों में भारतीयों से सहायता मिली है जिससे वे इतने धनाढ्य बन सके हैं। इस बिल में विवाह की धारा के ऊपर कोई सदस्य क्योंकर विरुद्ध मत दे सकता है यह हमारी समझ में नहीं आया। इस कर को रद्द करने से नेटिवों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा यह कहना सरासर भूल है इस विषय पर प्रत्येक वोटर का मत लेना भी अनुचित है।

प्रधान मन्त्री जनरल बोथा— ने इस बिल के सम्बन्ध में भाषण देते हुये कहा कि इस क़ायदे का क्या हेतु है, बहुतों ने इसे नहीं समझा। जो मनुष्य आज स्वतन्त्र (Free) नहीं हैं उन्हीं के लिये यह बिल है। शर्तबन्धे मजूर निर्धन से निर्धन भारतीय हैं। इस भारतीय सवाल के विषय में ट्रांसवाल में कैसी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था, वह मुझे बराबर याद है। 'इन्हें देश से बाहर निकाल दो, इनका यहां पर कुछ काम नहीं है' ऐसा कह देना किसी भी पार्लमेन्ट के लिये सहज काम नहीं है। इसके लिये लाखों पौण्ड ख़र्च करना पड़ेगा और ऐसा करने पर भी इस प्रश्न का निर्णय नहीं होसकेगा। इस बिल के विषय में जैसा इच्छा में आवे वैसा करने के बदले राजनैतिक दृष्टि से विचार करने के लिये मैं सब सभासदों से प्रार्थना करता हूं।

भारतीयों के लिये हमें न्यायी और समदर्शी बनना चाहिये। सरकार ने इस बिल को बनाकर उपस्थित किया है, इससे समझना चाहिये कि सरकार ने इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करके ही इस कार्य को हाथ में लिया है। मुझे इस बात का खेद है कि नेटाल के सदस्यों ने इस बिल के विरुद्ध में कहा है। जिस समय उन्होंने भारतीयों को दक्षिण अफ्रिका में दाखिल किया उस समय इस बात का विचार नहीं किया, यह शोक की बात है। यदि वे अपने दायित्व को बराबर समझते तो उस समय उन्हें दक्षिण अफ्रिका के अन्य प्रान्तों से पूछना चाहिये था। यदि ऐसा किया होता तो आज इन कठिनाईयों का समाना न करना पड़ता। आज जो यह प्रश्न कष्टदायक प्रतीत होता है इसके उत्तरदाता नेटाल के ही गोरे हैं। दुर्भाग्यवश आज भारतीय केवल नेटाल में ही नहीं प्रत्युत सारे दक्षिण अफ्रिका में छा गये हैं। यह सब कहना मुझे पसन्द नहीं है पर विवश होकर कहना ही पड़ता है। चाहे भारतीयों के विरुद्ध कितनाही प्रबल मत हो पर उन्हें न्याय देना ही पड़ेगा। मि. मेरीमन के कथनानुसार सन्धि, न्याय और निष्पक्षता का परिचय देना सरकार और पार्लीमेन्ट का कर्तव्य है। जिन लोगों का पार्लीमेन्ट में एक भी सभासद नहीं है, उनके प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। मैं आशा करता हूं कि नेटाल के सभासद दक्षिण अफ्रिका की इस कठिनाई में सहायता देंगे और यह सहायता बिल के समर्थन करने से मिल सकती है। इस बिल को पास न करने से कठिनाईयां और भी बढ़ जायंगी, तथा अपने को पछताना पड़ेगा, ऐसा नहीं करना चाहिये। कतिपय सभासदों ने इस विषय पर नेटिवों का उदाहरण दिया है पर नेटिव और भारतीय सवाल के गुण दोष भिन्न भिन्न हैं। नेटिवों का दृष्टान्त देना निरर्थक है। हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि यदि हमें किसी बात का अभिमान है तो वह यह कि थोड़े होने पर भी हम दक्षिण अफ्रिका के इतने बड़े जनसंख्यावाले नेटिवों पर राज्य कर रहे हैं। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सरकार इस क़ायदे को पास करने के लिये बाध्य है। यह बिल पास करना परमावश्यक है, इसमें सहायता देने के लिये मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं। यह प्रश्न बड़ाही कंटकपूर्ण है, यह मैं जानता हूं, पर इसके पास करने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। मि. हेनउड ने कहा है कि इस विषय पर प्रत्येक वोटर का मत लेना चाहिये। पर मैं उनसे पूछता हूं कि जब नेटाल में भारतीय मजूर दाखिल किये गये थे उस समय भी क्या प्रत्येक वोटर का मत पूछा गया था? इस सवाल का निर्णय करना आवश्यक है। नेटाल में जो हड़ताल और अशान्ति हुई थी वह फिर से न हो। वहाँ निरन्तर सेना रखना असम्भव है। निदान इस प्रश्न के निर्णय करने का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर है।

इसके बाद मि. हेन्डरसन्, वान नीकरक, मि. सरफ़ोन्टीन, मि. भायनर मि. क्रलेटन मि. बॉयडेल आदि अनेक सदस्यों के भाषण हुये। अन्त में वोट लेने पर ६० बिल के पक्ष में और २४ विरुद्ध में निकले अतः बहुमत से बिल पास होगया।

डिबेट में तीसरीवार भी बिल बहुमतसम्मति से पास हो गया। इसके पश्चात बिल सिनेट में भी प्रथमबार, दूसरीबार और तीसरीबार बहुपक्ष से पास हुआ। अतः पहली जुलाई सन् १९१४ को बिल पर सम्राट की स्वीकृति भी मिल गई।

सत्याग्रह का अन्त

आठ वर्ष से चलती हुई लड़ाई का अन्त हो गया। यह कहना अनुचित न होगा कि इस समय में किसी भी लड़ाई का ऐसा शुभ अन्त शायद ही हुआ हो। जोहांसबर्ग में सन् १९०६ के सितम्बर

बेल्गम में महात्मा गांधी का व्याख्यान । प्रायः ५००० श्रोतागण । विशेषतया प्रतिज्ञा बद्ध भारतीयों का जमाव ।

जोहांसबर्ग से महात्मा गान्धी की विदाई

(१) लोकमाता मिसेज़ गान्धी । (२) सत्याग्रहिणी मिसेज़ वग्चुवर । (३) मिसेज़ भवानीदयाल और उनका पुत्र रामदत्त वर्मा । (४) मिसेज़ नन्दू । (५) मिसेज़ नाईडू । (६) मिसेज़ शिवप्रसाद । (७) लोकमान्य महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी । (८) पं० भवानीदयाल । (९) मि. हेनरी एस० एल० पोलक । (१०) श्रीयुत लालबहादुरसिंह । (११) मि. एच० केलनबेक । (१२) मिस सोनिजा श्लेशीन । (१३) श्रीयुत पी० के० नायडू । (१४) श्रीयुत सुरेन्द्रराय मेढ़ । (१५) मिसेज़ नन्दन ।

जर्मिस्टन के सत्याग्रही।
(सब ने जेल माँगी)
प्रथम पंक्ति में—रघुवर, गुलाबदास, चेट्टी, नयना
द्वितीय पंक्ति में—भवानीदयाल और लालबहादुर सिंह।

केप टाऊन का अन्तिम दृश्य।
महात्मा गान्धी अपनी धर्म्मपत्नी तथा मि. केलनबेक के साथ विलायत जाने के लिये तय्यार हैं।

मासमें इस लड़ाई की नीव पड़ी। उस समय यह लड़ाई रजिस्टर क़ायदे के विरुद्ध उठाई गई थी। सरकार ने ध्यान न दिया, लड़ाई शुरू हुई। लड़ाई की अपूर्ण दशा में ही इमीग्रेशन क़ायदे का प्रसार हुआ। शर्तपर सन्धि हुई, सरकार ने शर्त को तोड़ दिया, लड़त फिर जगी। दोनों क़ायदों के विरुद्ध पुकार मचाई गई। लड़ाई खूब ज़ोर शोर पर हुई। दूसरीवार विलायत डेपुटेशन भेजा गया। सन् १९११ में कच्ची सन्धि इस शर्त पर हुई कि भारतीयों का चालू हक़ क़ायम रहे। सन् १९१२ के अन्त में माननीय गोखले पधारे, उन्हें सरकार ने वचन दिया कि ३ पौन्ड का कर रद्द कर दिया जायगा। सन् १९१३ में भारतीयों का हक़ डुबाने वाला इमीग्रेशन क़ायदा पास हुआ। इस क़ायदे के विरुद्ध महान युद्ध हुआ और अन्त में भारतीयों ने अनुपम विजय लाभ की। घर घर आनन्द छा गया।

महात्मा गान्धी की विदाई

जिस वीर महापुरुष ने अपने देश की मान मर्यादा के लिये, अपने देशबन्धुओं को कर्म्मपथ में प्रेरित करने के लिये, शारीरिक सुख दुःख की परवाह न कर आत्मसमर्पण कर दिया आज उसका वियोग सम्वाद लिखते हुये लेखक की लेखनी कांपती है और दुःख से कलेजा हिलने लगता है। किन्तु वृत्तान्त को सर्वाङ्ग पूर्ण करने के लिये इसका उल्लेख करना आवश्यक है।

बिल पास होने पर केपटौन की भारतीय जनता ने बड़े समारोह से महात्मा गान्धी का स्वागत किया। वहां से विदा होते समय स्टेशन पर लार्ड ग्लाडस्टन के खानगी मन्त्री, आनरेबल मार्शल केम्पबल आदि अनेक प्रतिष्ठित यूरोपियन और भारतीय मिलने के लिये आये थे। मार्ग में किम्बरली और वींडसोरटन के भारतीयों ने आपको मानपत्र दिया। ता० ८ जुलाई को डरबन टौनहाल में महात्मा गान्धी का स्वागत करने के लिये एक विराट सभा हुई। सभापति के आसन पर नगर के मेयर प्रतिष्ठित थे। भिन्न भिन्न धर्म्मों, जातियों और सभाओं की ओर से मानपत्र दिये गये। ता० १२ जुलाई को महात्मा गान्धी वेरुलम गये। वहां ३००० भारतीयों ने आपका स्वागत किया। सभा विसर्जन होने पर सब लोग महात्मा जी के चरणों पर गिर पड़े।

ता० १३ जुलाई को महात्मा जी ने डरबन से प्रस्थान किया। मार्ग में मेरीत्सबर्ग, स्टन्डरटन, न्यूकासल, डेनहाउज़र, चार्लिस्टन, वालकरस्ट आदि नगरों के भारतीयों ने महात्मा जी का अपूर्व सत्कार किया। ता० १४ जुलाई को सायंकाल महात्मा जी जर्मिस्टन पहुंचे। स्वागत करने के लिये स्टेशन पर सब प्रान्त के मनुष्य विद्यमान थे। महात्मा गान्धी और उनकी वीर धर्म्मपत्नी को पुष्पहार समर्पण किये गये। श्रीयुत लाल बहादुर सिंह, भवानीदयाल आदि जर्मिस्टन के नेता उनके साथ हो लिये। उसी दिन ६॥ बजे गाड़ी जोहांसवर्ग स्टेशन पर पहुंची। स्टेशन के प्लेट फार्म पर भारतीयों का बड़ा भारी जमाव था, ज्योंही गाड़ी स्टेशन पर पहुंची त्योंही स्टेशन 'वन्दे मातरम्' की ध्वनी से गूंज उठा। महात्मा गान्धी और उनकी वीर धर्म्मपत्नी पर पुष्पों की वृष्टि होने लगी। इस अपूर्व आनन्द के समय भी थोड़े से अदूरदर्शी मुसलमानों ने बड़ा ही धृष्टता और कृतघ्नता का कार्य्य किया। एक मुसलमान महात्मा गान्धी की ओर अण्डा फेंकते हुये पकड़ा गया और हिन्दुओं ने उसे खूब ही पीटा। इस पर मुसलमान उत्तेजित होकर मारपीट करने का प्रयत्न करने लगे। रात को ८ बजे वायस्कोप हाल में एक सभा हुई, हिन्दू और मुसलमानों से सभा भवन खचाखच भर गया। मारपीट होने की भी आशंका थी। महात्मा गान्धी ने कहा कि हमारे सुनने में आया है कि हमारे कुछ भाई मुझे मारने पर उतारू हैं। उनसे मुझे कुछ भी नहीं कहना है,

वे भले ही मुझे मारें, मैं मार खाने को तय्यार हूं। जो लोग मेरी रक्षा के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि यदि उन्हें कोई मारे तो उसके आगे अपना शिर झुका दें, उसका बिलकुल प्रतिकार न करें। मीर आलम ने जब मुझे मारा था उस समय मुझे मरना मंजूर न था इसलिये मैं नहीं मरा। यदि मुझे मरना स्वीकार होगा तो आप लोग मेरी रक्षा नहीं कर सकते। मुझे विलायत जाना है मेरी यात्रा के लिये आप ईश्वर से प्रार्थना करें। पर ध्यान रहे कि यदि विलायत जाना मेरे भाग्य में बदा न होगा तो आप लोग कुछ नहीं कर सकते। मान लो कि यदि आज ही मिसेज़ गांधी बीमार हो जांय तो मैं किस प्रकार विलायत जा सकता हूं? अथवा आप लोग कुशलपूर्वक मुझे स्टीमर पर चढ़ा दें और स्टीमर समुद्र की मझधार में डूब जाय तो क्या आप ईश्वर से झगड़ा करेंगे कि क्यों तुमने हमारे गान्धी को छीन लिया? इसलिये महाशयो, यदि मुझे मरना मंजूर होगा तो आप लोग किसी प्रकार नहीं रोक सकते। अतः जो कोई मुझे मारे उसे मारने दो पर उसका बदला लेने का ख्याल न करो। इसके बाद आपने विलायत जाने का कारण कहा कि, हमारे मित्र माननीय गोखले असाध्य बीमार हैं। विलायत से उनके डाक्टर ने मुझे सूचना दी है कि शायद उनको देखना भी मुझे दुर्लभ हो, इसलिये मैं शीघ्र विलायत जाने का इच्छुक हूं, वहां से मैं भारत के लिये प्रस्थान करूंगा। इसके बाद महात्मा गांधीजी ने सुलह की बात चीत कही। अन्त में सभा विसर्जन की गई।

ता० १४ जुलाई को यूरोपियनजनता और मुसलमानों ने महात्मा गांधी से भेंट की। उसी दिन सायङ्काल ७॥ बजे 'मेसानिक हाल' में एक प्रीतिभोज हुआ, जिसमें प्रवेश करने के लिये ८) रुपये फ़ीस नियत थी। नियमित समय पर लगभग ५०० यूरोपियन, एशियाटिक और कलरडों का जमाव हो गया। प्रथम पंक्ति में हाईकोर्ट के जज डाक्टर कौस के. सी., मि. एलकज़ेण्डर, मि. मिलीन, मि. पर्चस, रेवरेण्ड हावर्ड, रेवरेण्ड फ़िलिप्स आदि प्रतिष्ठित यूरोपियन महात्मा गान्धी के साथ बैठे थे। सभापति का आसन आनरेबल हगबीन्डम ने ग्रहण किया था। यूरोपियन रीत्यानुसार प्रीति-भोज का कार्य्य सम्पन्न हुआ। इसके बाद सभा की कार्य्यवाही आरम्भ हुई। प्रथम मुसलमानों की ओर से और स्थानीय हमीदिया सोसायटी की ओर से तार पढ़ा गया, जिसमें लिखा था कि हम लोगों की इस सभा से तनिक भी सहानुभूति नहीं है। इस पर शर्म शर्म की पुकार होने लगी। इसके बाद माननीय गोखले का सहानुभूतिसूचक तार बड़े हर्षध्वनि से पढ़ा गया। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रतिष्ठित सज्जनों के तार पढ़े गये, जिनमें उन्होंने सभा में उपस्थित न होने के कारण शोक प्रकट किया था।

इसके बाद सभापति माननीय वीनढम, मि. चेमनी रजिस्ट्रार आफ़ एशियाटिक, मि. पर्चस, रेवरेण्ड फ़िलिप्स आदि सज्जनों के प्रभावोत्पादक व्याख्यान महात्मा गांधी की विदाई के सम्बन्ध में हुये। तत्पश्चात् तामिल बेनीफ़िट सोसायटी के सभापति मि. थम्बी नायडू ने अपने चार पुत्र महात्मा गान्धी को प्रदान करते हुये कहा कि यह मेरे पुत्र नहीं हैं किन्तु भारतमाता के पुत्र हैं। इन्हें मैं देश के सेवक बनाने के लिये महात्मा गान्धी को सौंपता हूं। तदन्तर मानपत्र पढ़ने आरम्भ हुये। मि. पोलक ने ट्रांसवाल बृटिश इण्डियन एसोसियेशन की ओर से मानपत्र पढ़ा। चीनियों की केन्टोनीस सोसायटी की ओर से भी मानपत्र पढ़ा गया। मि. पी. के. नायडू ने तामिल बेनीफ़िट सोसायटी की ओर से मानपत्र पढ़ा। मिस आरनेस्ट ने ट्रांसवाल इण्डियन वोमेन्स एसोसियेशन की ओर से मानपत्र पढ़ा। मि. भवानीदयाल ने जर्मिस्टन इण्डियन एसोसियेशन

की ओर से और मि. सुरेन्द्रनाथ मेढ़ ने गुजराती हिन्दुओं की ओर से मानपत्र पढ़े। इसके अतिरिक्त मुसलमानजनता, पारसीजनता आदि अनेकजनता और नगरों की ओर से मानपत्र दिये गये। मि. केलनबेक और मिस श्लेशीन को भी कई एक मानपत्र दिये गये।

इसके बाद महात्मा गान्धी उठे। करतलध्वनि से सभाभवन गूंज उठा। महात्मा जी ने कहा कि आप लोगों ने मुझे जो मान दिया है इसके लिये मैं आपका उपकार मानता हूं। मि. नायडू ने जो लड़के मुझे सौंपे हैं वह पहिले मेरे साथ टाल्सटाय और फ़ीनिक्स फ़ार्म में रह चुके हैं। पीछे मिसेज़ नायडू ने इन्हें बुला लिया था, उस समय मैंने, समझा था कि शायद यह लड़के हमेशा के लिये मुझ से बिछुड़ गये पर ऐसा न हुआ यह लड़के फिर मुझे मिल गये। इसके बाद महात्मा जी ने वायसराय लार्ड हार्डिञ्ज और यूनियन सरकार की न्यायप्रियता के लिये धन्यवाद दिया। पार्लीमेन्ट के सदस्यों, सहायक गोरों और सत्याग्रही भाईयों को धन्यवाद देकर अपनी वक्तृता समाप्त की।

इसके पश्चात् मि. केलनबेक ने अपने भाषण में कहा कि हम महात्मा गान्धी के साथ भारत जाते हैं। भारतभूमि की सेवा करने के लिये हमने निश्चय कर लिया है। तत्पश्चात् हाईकोर्ट के जज डाक्टर औज़ ने कहा कि वह समय निकट है, चाहे वह अवसर हमारे जीवन में आवे या हमारी ज़िन्दगी के कुछ दिनों बाद आवे, जब कि पूर्वीय और पश्चिमीय रंगद्वेष छोड़कर भाई भाई की तरह एक दूसरे को प्यार करेंगे। अन्ततः सभापति ने उपस्थित जन समुदाय को धन्यवाद देकर सभा समाप्त की।

ता० १५ जुलाई को महात्मा गान्धी ने जोहांसबर्ग में स्वर्गीय नारायण स्वामी नागापन और कुमारी वेलिमा की समाधि पर स्मारक का पत्थर रक्खा। उसी दिन हमीदिया इसलामिक सोसायटी, तामिल बेनीफ़िट सोसायटी और ट्रांसवाल इन्डियन वोमेन्स एसोसियेशन में महात्मा गान्धी के व्याख्यान हुये। जर्मिस्टन के सत्याग्रहियों के साथ महात्मा गान्धी का चित्र लिया गया। ता०१६ जौलाई को महात्मा गान्धी प्रिटोरिया गये और वहां की भारतीयजनता के मानपत्र स्वीकार किये। न्यूक्लीयर सभा, गुजराती सभा और सत्याग्रहियों की सभा में योग देकर सायंकाल की डाकगाड़ी से महात्मा जी केपटौन को प्रस्थान कर गये और वहां से ता० १८ जुलाई को महात्मा गान्धी अपनी धर्मपत्नी और मि. केलनबेक के साथ विलायत को चल दिये। विलायत में माननीय गोखले से मिलकर आप भारत को जायंगे। आशा है कि भारतवासी इस वीर महापुरुष का दर्शन कर अपने नेत्रों को सुफल करेंगे।

अन्त में उस सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्व नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द, स्वरूप सर्वेश्वर से सविनय प्रार्थना है कि हे जगत्पिता जगदीश्वर! आप महात्मा गान्धी को दीर्घायु करें कि वह भारतमाता का उद्धार करने में समर्थ हो सकें।

सत्याग्रह के परिणाम

प्यारे पाठक!

आप ने इस इतिहास को पूरा पढ़ लिया। आईये अब इसके परिणामों पर कुछ विचार करें।

यद्यपि भारतीयों की सब मनोकामनायें पूर्ण नहीं हुई, तथापि उनकी पूर्ति के हेतु दरवाज़ा खोल दिया गया है। शनैः शनैः समयानुसार सब आशायें पूर्ण होजायंगी। यह सुपरिणाम कई हाथ बंटाने वाले सज्जन पुरुषों के परिश्रम का फल है। श्री० गान्धी सर्व श्रेष्ठ प्रशंसा के अधिकारी हैं। इन्हीं ने सोते हुओं को जगाया, मरे हुओं में जान डाली और निरोत्साही कर्मचारियों को उत्तेजित कर संग्राम में लड़ने के लिये तैयार किया। इनके साथ ही साथ हम अपने अशिक्षित कुली भाई व बहिनों की प्रशंसा किये बिना भी नहीं रह सकते हैं। बालक, बालिका, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी ने इस कार्य में थोड़ा बहुत भाग लेकर और एक्यता का दृश्य खींच कर संसार को चकित कर दिया। इस से हमारा यह आशय कदापि नहीं कि हम आत्म प्रशंसा के बाजे बजाते हुये अन्य सुहृद्जनोंके किये हुये कार्य भूल जायँ। मि. पोलक, मि. केलनबेक इत्यादि महानुभावों ने सहृदयता दिखाकर सब भारतीयों का हृदय अपनी ओर खींच लिया है। संसार के इतिहास में इन सत्यानुगामी वीर पुरुषों ने अपना नाम चिरस्थायी कर लिया। अफ्रिका के इतिहास में, नहीं भारतीयों के इतिहास से आप लोगों के नाम कभी नहीं मिट सकते। क्या हम श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज तथा माननीय गोखले को बिना सत्कार दिये छोड़ सकते हैं? नहीं, इन्हीं सज्जनों के परिश्रम और दया का कारण है कि जांच पड़ताल के लिये कमीशन बैठाला गया। सारांश यह है कि सब ने यथाशक्ति सहायता की और सब के बल से भारतीयों को रोकनेवाले दरवाज़े खोले गये।

यह सत्याग्रह केवल दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतवासियों ही को नहीं, वरन उनके सहवासी यूरोपियन एवं मातृभूमि निवासी भारतीय भाईयों को भी लाभदायक हुआ है। यह आध्यात्मिक संग्राम अन्य जनों के लिये भी शिक्षागर्भित है। कई विद्वान पुरुषों ने इसके अनेक सुपरिणाम गिने हैं। ग्रन्थकर्ता की इच्छा है कि वह निज शब्दों में इन्हीं सज्जनों के विचारों का उल्लेख करदे। ऐसा करने से यह विश्वास है कि आत्मप्रशंसा के आक्षेपों की वर्षा न होगी। जिन सज्जनों की सम्मति मैं प्रकट करता हुं वे सब पाश्चात्य देश के ही हैं।

एक महानुभाव का कथन है कि वीर गान्धी तथा उनके भारतीय अनुगामियों के आत्म-बल का प्रभाव प्रायः सभी सामाजिक और नैतिक आन्दोलनों पर हुआ है। प्रथम दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों ही को लीजिये। तीन पौंड का टेक्स बन्द हो जाना तथा विवाहसम्बन्धी अड़चनें मिट जाना तो कोई अधिक कठिन बातें नहीं हैं। यह तो थोड़े या बहुत समय में प्राप्त हो ही जातीं; परन्तु आत्म बल मुश्किल से प्राप्त होता।

संकट और विपत्तियां सह कर, मारपीट को रोक कर अशिक्षित भारतीय मजूरों ने अपने आत्म बल का परिचय दिया। इनके क्रोध को सुलगाने के लिये यूरोपियन स्वामियों ने अपने अमानुषिक बर्ताव के अनेक उदाहरण दिये। परन्तु लो० गान्धी ने सहिष्णुता का जल बरसाया जिससे वह क्रोधाग्नि प्रचण्ड न हो सकी। मनोरथ सिद्धि के लिये इन्होंने अपने मनुष्यत्व को नहीं खोया। धैर्य और साहस की शिक्षा सर्वदा के लिये प्राप्त हो गई। नेत्र खुल जाने के कारण ऐक्यता का सुमार्ग दिखाई देने लगा। यदि यह संग्राम न होता तो भारतवासी नये २ त्रासदायक कायदों के बोझ से मर जाते। सौभाग्यवश इस सत्याग्रह ने आयन्दा के लिये इनका मार्ग रोक दिया। सब से भारी बात तो यह है कि फूट के घर में एकयता का निवास कर दिया गया। मुसलमान, पारसी, हिन्दू इत्यादि सब भ्रातृ-भाव की गांठ से बंध गये। कर्तव्यकर्म के विचार ने सबके दिलों में स्वदेशाभिमान कूट कूट कर भर दिया। साधारण जनता की भलाई के लिये बच्चे से लेकर बूढ़े तक ने स्वार्थ-त्याग करना सीख लिया। सत्यता और आत्म शुद्धता पर सब की श्रद्धा बढ़ गई।

लो० गान्धी निःस्वार्थ कर्म-वीर हैं। सत्याग्रह की लड़ाई में विजय प्राप्त होने के कारण इस महात्मा के लिये भी एकविस्तीर्ण कार्य-क्षेत्र का द्वार खुल गया। यह कार्य-क्षेत्र भारतवर्ष ही है। भारतवासी अपने दक्षिण-अफ्रिका निवासी भाईयों की एकयता को देख अवश्य ही दृढ़ होगये होंगे। लो० गान्धी भी भारतवर्ष में पहुंच गये हैं। आपके निम्न लिखित कथन को हम बिना लिखे नहीं छोड़ सकते।

"Passive Resistance is the noblest and best education.........In the struggle of life, it can easily conquer hate by love, untruth by truth, violence by self-suffering............ One of the reasons for my depasture to India is to try to perfect myself (as a Passive Register) for I believe that it is in India that the nearest approach to—Perfection is most possible."

अर्थात् "सत्याग्रह की शिक्षा देना सर्वोच्च और उत्तम होती है। यह जीवन संग्राम में घृणा को प्रेम से, असत्य को सत्य से और अत्याचार को आत्म-सहिष्णुता से वश में कर सकती है। मेरे भारतवर्ष आने का एक कारण यह है कि मैं वहां पर सत्याग्रह में परिपक्व होने का प्रयत्न करूं। मुझे विश्वास है कि इसमें प्रवीणता प्राप्त करने की सम्भावना अधिकतर हिन्दुस्थान में है।"

यूरोपियन भाईयों को इस सत्याग्रह से कहां तक लाभ पहुंचा सो रि० जान हावर्ड तथा काऊन्ट टालस्टाय के कथन से भली भांति विदित हो सकता है। रिवरन्ड जान हावर्ड का कथन है "ख्रीष्ट-धर्म के अनुसार हममें गुण नहीं हैं। इसी कारण से हम भारतीयों से बुरी रीति से बर्तते रहे। बड़े लज्जा की बात है कि आज हमें उन्हीं भारतीयों से अपने धर्म की शिक्षा मिलती है। यद्यपि वे हमारे धर्म से परिचित नहीं हैं तथापि वे हमें उन तत्वों को सिखा रहे हैं जिन्हें ख्रीष्ट ने प्रायः दो हज़ार वर्ष पूर्व सिखाया था .... सारांश यह है कि वही लोग जिनको हमने सताना चाहा था आज भ्रातृ-प्रेम सिखा रहे हैं।"

काऊन्ट टालस्टाय ने लो० गान्धी को एक पत्र लिखा था। उसमें आपने बड़ी बुद्धिमानी से गम्भीरतापूर्वक यह लिखा है कि सत्याग्रह Passive Resistance बेदाग़ प्रेम की शिक्षा देता है। उसमें आपने यह भी बताया है कि क्राईस्ट ने इस प्रेम-शिक्षा पर सबसे अधिक ज़ोर दिया है।

अतएव हम जान हावर्ड के कथन को सत्य समझने में किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं कर सकते।

प्रवासी भारतवासी

(सचित्र)

यह पुस्तक एक ऐसे प्रवासी भारतीय की लिखी हुई है जिसने कि प्रवासी भारतवासियों के इतिहास और प्रश्नों को अच्छी तरह अध्ययन व मनन किया है। इस पुस्तक को पढ़कर आपको ज्ञात हो जायगा कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने विदेशों में कहां २ भारतीय उपनिवेश स्थापित किये थे और उस समय विदेशी लोग भारतीयों को किस सम्मान की दृष्टि से देखते थे। प्रवासी भाईयों के विषय में ऐसी पुस्तक हिन्दी में तो क्या भारत की किसी भी भाषा में नहीं निकली है। प्रवासी भाईयों की दुर्दशा का हाल पढ़कर कठोर से कठोर हृदय भी पसीज जायगा। प्रवासी भगिनियों की दुर्गति को पढ़कर आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगेगी। आरकाटियों की पोलें इसमें बड़े सुदृढ़ प्रमाणों के द्वारा खोली गई हैं और कुली प्रथा के दोष इसमें बड़ी खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

फ़िजी, ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना, डचगायना, जमैका, मौरेशस, सुमात्रा, मलाया, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा अमेरीका आदि में भारत वासियों की क्या दशा है—यदि यह जानना हो तो यह पुस्तक अवश्य पढ़िये। प्रवासी भाईयों की नैतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी है-यदि इस विषय में कुछ भी जानने की इच्छा आप के हृदय में है तो यह पुस्तक आपको अवश्य ही पढ़नी चाहिये। प्रवासी भाईयों की धार्मिक उन्नति के लिये अब तक क्या क्या प्रयत्न किये गये हैं और अब क्या क्या प्रयत्न होने चाहिये। इन बातों के जानने के लिये यह पुस्तक अत्यावश्यक ही नहीं वरन अनिवार्य्य भी है।

भारतमाता के प्रत्येक सेवक को यह पुस्तक एकबार अवश्य ही पढ़ना चाहिये। दर्जन भर सुन्दर चित्रों से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य केवल ॥।)

समन्तभद्रका समय और डॉक्टर के० बी० पाठक

(लेखक—श्रीमान पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार)

२२९५

डॉक्टर के० बी० पाठक बी० ए०, पी एच० डी० ने 'समन्तभद्रके समय पर' एक लेख पूना के 'एनल्स ऑफ दि भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट' नामक अंग्रेजी पत्रकी ११ वीं जिल्द (Vol XI, Pt. II P. 149) में प्रकाशित कराया है और उसके द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि स्वामी समन्तभद्र ईसाकी आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें हुए हैं; जब कि जैन समाज में उनका समय आम तौर पर दूसरी शताब्दी माना जाता है और पुरातत्वके कई विद्वानोंने उसका समर्थन किया है। यह लेख, कुछ अर्सा हुआ, मेरे मित्र पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बईकी कृपासे मुझे देखनेको मिला, देखने पर बहुत कुछ सदोष तथा भ्रममूलक जान पड़ा और अन्तको जाँचने पर निश्चय हो गया कि पाठकजी ने जो निर्णय दिया है वह ठीक तथा युक्तियुक्त नहीं है। अतः आज पाठकजी के उक्त लेखसे उत्पन्न होने वाले भ्रमको दूर करने और यथार्थ वस्तुस्थितिका बोध कराने के लिये ही यह लेख लिखा जाता है।

विरोधी— युद्ध आदिमें तथा न्यायोचित आत्मरक्षाके कार्यमें चौर्य करना पड़े तो वह विरोधी चोरी है। कोई आदमी अपने राष्ट्र पर अन्यायसे आक्रमण करता हो तो उसकी युद्ध सामग्री चुरा लेना, छीन लेना आदि विरोधी चौर्य है।

इनमें से संकल्पी चोरी ही वास्तवमें पूर्ण चोरी है इसलिये उसीका पूर्ण त्याग करना चाहिये। बाकी तीन का तो यथाशक्ति संयमही पर्याप्त है।

पाठकजीका हेतुवाद।

"समन्तभद्रका समय निर्णय करना आसान है, यदि हम 'उनके युक्त्यनुशासन' और उनकी 'आप्तमीमांसा' का सावधानीके साथ अध्ययन करें।" इस प्रस्तावनावाक्यके साथ पाठकजीने अपने लेखमें जिन हेतुओंका प्रयोग किया है, उनका सार इस प्रकार है:—

(१) समन्तभद्र बौद्ध ग्रंथकार धर्मकीर्तिके बाद हुए हैं, क्योंकि उन्होंने 'युक्त्यनुशासन' में निम्न वाक्यद्वारा प्रत्यक्षके उस प्रसिद्ध लक्षण पर आपत्तिकी है, जिसे धर्मकीर्तिने 'न्यायबिन्दु' में दिया है:—

प्रत्यक्षनिर्देशवदप्यसिद्धमकल्पकं ज्ञापयितुं ह्यशक्यम्।
विना च सिद्धेर्न च लक्षणार्थो न तावकद्वेषिणि वीर सत्यम्॥ २॥

(२) चूँकि आप्तमीमांसाके ८०वें पद्यमें समन्तभद्रने बतलाया है कि धर्मकीर्ति अपना विरोध खुद करता है जब कि वह कहता है कि—

सहोपलम्भ नियमाद् भेदो नीलतद्धियोः (प्रमाणविनिश्चय)

इसलिये भी समन्तभद्र धर्मकीर्तिके बाद हुए हैं।

(३) आप्तमीमांसाके पद्य नं० १०६ में जैन ग्रंथकार (समन्तभद्र) ने बौद्ध ग्रंथकार (धर्मकीर्ति) के त्रिलक्षण हेतु पर आपत्ति की है। इससे भी स्पष्ट है कि समन्तभद्र धर्मकीर्तिके बादके विद्वान हैं।

(४) शब्दाद्वैतके सिद्धान्तको भर्तृहरिने इस प्रकारसे प्रतिपादित किया है —

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

वाग्रूपता चेदुत्क्रमेदवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥

भर्तृहरिके इसी सिद्धान्तकी श्वेताम्बर ग्रंथकार हरिभद्रसूरिने अपनी 'अनेकान्तजयपताका' के निम्न वाक्यमें तीव्र आलोचना की है और उसमें समन्तभद्रको 'वादिमुख्य' नाम देते हुए प्रमाणरूपसे उनका वचन उद्धृत किया है—

"एतेन यदुक्तमाह च शब्दार्थवित्, वाग्रूपता चेदुत्क्रामेत् इत्यादि कारिकाद्वयं तदपि प्रत्युक्तम् । तुल्ययोगक्षेमत्वादिति आह च वादिमुख्यः

बोधात्मा चेच्छब्दस्य न स्यादन्यत्र तच्छ्रुतिः ।
यद् बोद्धारं परित्यज्य न बोधोऽन्यत्र गच्छति ॥
न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते ।
शब्दाभेदेन सत्येवं सर्वः स्यात्पर चित्तवित्॥ इत्यादि'

इस तरह पर यह स्पष्ट है कि समन्तभद्रके मतमें शब्दाद्वैतका सिद्धान्त सुनिश्चित रूपसे असत्य है। समन्तभद्रके शब्दों "न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते" की तुलना भर्तृहरिके शब्दों "न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते" के साथ करने पर मालूम होता है कि समन्तभद्रने भर्तृहरिके मतका खण्डन यथासंभव प्रायः उसीके शब्दोंको उद्धृत करके किया है, जो कि मध्यकालीन ग्रन्थकारोंकी विशेषताओंमें से एक खास विशेषता है, (लेखमें नमूनेके तौरपर इस विशेषताके कुछ उदाहरणभी दियेगये हैं।) और इसलिये समन्तभद्र भर्तृहरिके बाद हुए हैं।

(५) समन्तभद्रके शिष्य लक्ष्मीधरने अपने 'एकान्त खण्डन' में लिखा है -

अनेकांत लक्ष्मीविलासावासाः सिद्धसेनायाः असिद्धि प्रति(स्व)पादयन् षड्दर्शनरहस्यसंवेदनसंपादितनिस्सीम पाण्डित्यमण्डिताः पूज्यपादस्वामिनात् विरोध साधयन्ति स्म । सकलतार्किकचक्रचूडामणिमरीचिमेचकितचरणनखमयूखा भगवन्तः श्रीस्वामिसमन्तभद्राचार्या असिद्धविरोधावभूवन् । तदुक्तं ।

असिद्धं सिद्धसेनस्य विरुद्धं देवनन्दिनः ।
द्वयं समन्तभद्रस्य सर्वथैकान्तसाधनमिति ॥
नित्याद्येकान्तहेतोर्दुस्ततिमहितः सिद्धसेनो ह्यसिद्धं ।
ब्रूते श्रीदेवनन्दी विदितजिनमतः सन् विरोधस्यसक्तिं ।"

इन अवतरणोंसे, जो कि एकान्तखण्डनके प्रारम्भिक भागसे उद्धृत किये गये हैं, स्पष्ट है कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले जीवित थे—अर्थात् समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं। और इसलिये पूज्यपादके जैनेन्द्र व्याकरणमें "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" यह समन्तभद्रके नामोल्लेखवाला जो सूत्र (अ० ५ पा० ४ सू० १६८) पाया जाता है, वह प्रक्षिप्त है। इसीसे जैन शाकटायनने, जिसने जैनेन्द्र-व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नक़ल की है, उसका अनुसरणभी नहीं किया है, किन्तु "वा" शब्दका प्रयोग करके ही सन्तोष धारण किया है—अपना काम निकाल लिया है।

(६) उक्त एकान्तखण्डनमें लक्ष्मीधरने भट्टाचार्यका एक वाक्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया है:—

वर्णात्मकाश्च ये शब्दा: नित्याः सर्वगतास्तथा ।
पृथक् द्रव्यतया ते तु न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥
—इति भट्टाचार्यः (पंचमाध्याय)

ये भट्टाचार्य स्वयं कुमारिल हैं, जो प्रायः इस नामसे उल्लेखित पाये जाते हैं, जैसा कि निम्न दो अवतरणोंसे प्रकट है:—

तदुक्तं भट्टाचार्यैर्मीमांसाश्लोकवार्तिके ।

यस्यानवयवः स्फोटो, व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः ।
सोऽपि पर्यनुयोगेन नैकेनापि विमुच्यते ॥ इति ।

तदुक्तं भट्टाचार्यैः

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते ।
जगच्च सृजतस्तस्य किं नाम न कृतं भवेत् ॥ इति ।
—सर्वदर्शनसंग्रह

अतः खुद समन्तभद्रके शिष्यद्वारा कुमारिलका उल्लेख होनेसे समन्तभद्र कुमारिलसे अधिक पहले के विद्वान् नहीं ठहरते—वे या तो कुमारिलके प्रायः समसामयिक हैं अथवा कुमारिलसे थोड़ेही समय पहले हुए हैं।

(५) "दिगम्बर जैन साहित्यमें कुमारिलका स्थान" नामक मेरे लेखमें यह सिद्ध किया जा चुका है कि समन्तभद्रकी 'आप्तमीमांसा' और उसकी अकलंकदेवकृत 'अष्टशती' नामकी पहली टीका दोनों कुमारिलके द्वारा तीव्रालोचित हुई हैं—खंडित की गई हैं और अकलंकदेवके दो अवर (Junior) समकालीन विद्वानों विद्यानन्द पात्रकेसरी तथा प्रभाचन्द्रके द्वारा मण्डित (सुरक्षित) कीगई हैं। अकलंकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंग दन्तिदुर्गके राज्यकालमें हुए हैं, और प्रभाचन्द्र अमोघवर्ष प्रथमके राज्यतक जीवित रहे हैं, क्योंकि उन्होंने गुणभद्रके आत्मानुशासनका उल्लेख किया है। अकलंकदेव और उनके विद्वान्वेषी कुमारिलके साहित्यिक व्यापारोंको ईसाकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें रक्खा जाना चाहिये। और चूँकि समन्तभद्र ने धर्मकीर्ति तथा भर्तृहरिके मतोंका खण्डन किया है और उनके शिष्य लक्ष्मीधर कुमारिलका उल्लेख करते हैं, अतः हम समन्तभद्रको ईसाकी आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें स्थापित करनेके लिये मजबूर हैं—हमें बलात् ऐसा निर्णय देनेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

हेतुओंकी जाँच।

समन्तभद्रका धर्मकीर्तिके बाद होना सिद्ध करने के लिये जो पहले तीन हेतु दियेगये हैं उनमेंसे कोई भी समीचीन नहीं है। प्रथमहेतु रूपसे जो बात कही गई है वह युक्त्यनुशासनके उस वाक्य परसे उपलब्ध ही नहीं होती जो वहाँपर उद्धृत किया गया है; क्योंकि उसमें न तो धर्मकीर्तिका नामोल्लेख है, न न्यायबिन्दुका और न धर्मकीर्तिका प्रत्यक्ष लक्षणही उद्धृत पाया जाता है, जिसका रूप है—"प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्।" यदि यह कहाजाय कि उक्त वाक्यमें 'अकल्पकं' पदका जो प्रयोग है वह 'निर्विकल्पक' तथा 'कल्पनापोढ'का वाचक है और इसलिये धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षणको लक्ष्य करकेही लिखा गया है, तो इसके लिये सबसे पहले यह सिद्ध करना होगा कि प्रत्यक्षको अकल्पक अथवा कल्पनापोढ निर्दिष्ट करना एकमात्र धर्मकीर्तिकी ही ईजाद है—उससे पहलेके किसीभी विद्वानने प्रत्यक्षका ऐसा स्वरूप नहीं बतलाया है। परन्तु यह सिद्ध नहीं है—धर्मकीर्तिसे पहले दिग्नाग नामके एक बहुत बड़े बौद्ध तार्किक होगये हैं, जिन्होंने न्यायशास्त्र पर प्रमाणसमुच्चय आदि कितनेही ग्रन्थ लिखे हैं और जिनका समय ई० सन् ३४५ से ४१५ तक बतलाया जाता है *। उन्होंनेभी 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्" इत्यादि वाक्य † के द्वारा प्रत्यक्षका स्वरूप 'कल्पनापोढ' बतलाया है। ब्राह्मण तार्किक उद्योतकरने अपने न्यायवार्तिक (१-१-४) में 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' इस वाक्यको उद्धृत करते हुए दिग्नागके प्रत्यक्ष विषयक सिद्धान्तकी तीव्र आलोचनाकी है। और यह उद्योतकरभी धर्मकीर्तिसे पहले हुए हैं; क्योंकि धर्मकीर्तिने उनपर आपत्ति की है, जिसका उल्लेख खुद पाठक महाशयने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामके लेखमें किया है ‡। इसके सिवाय तत्त्वार्थराजवार्तिकमें अकलंकदेवने जो निम्न श्लोक 'तथा चोक्तं' शब्दोंके साथ उद्धृत किया है उसे पाठकजीने, उक्त एनल्सकी उसी संख्यामें प्रकाशित अपने दूसरे लेख (पृ० १५७) में दिग्नागका बतलाया है—

> प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्यादियोजना।
> असाधारणहेतुत्वादक्षैस्तद्व्यपदिश्यते॥

* देखो, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज़ बड़ौदामें प्रकाशित 'तत्त्वसंग्रह' ग्रन्थ की भूमिकादिक।

† यह वाक्य दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' में तथा 'न्यायप्रवेश' में भी पाया जाता है और वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्तिककी टीकामें इसे साफ़ तौर पर दिग्नागके नामसे उल्लेखित किया है।

‡ देखो, डा० सतीशचन्द्रकी हिस्टरी आफ़ दि मिडियावल स्कूल ऑफ़ इंडियन लॉजिक पृ० १०५ तथा J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII P. 229.

ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षका 'कल्पनापोढ' स्वरूप एकमात्र धर्मकीर्तिके द्वारा निर्दिष्ट नहीं हुआ है। यदि सबसे पहले उसीके द्वारा निर्दिष्ट होना माना जायगा तो दिग्नागको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान् कहना होगा, जो पाठक महाशयको भी इष्ट नहीं होसकता और न इतिहाससे किसी तरह पर सिद्धही किया जासकता है: क्योंकि धर्मकीर्तिने दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रंथपर वार्तिक लिखा है। वस्तुतः धर्मकीर्ति दिग्नागके बाद न्यायशास्त्रमें विशेष उन्नति करनेवाला हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण ई-त्सिंग नामक चीनी यात्री (सन् ६७१-६९५) ने अपने यात्राविवरणमें भी दिया है †। उसने दिग्नागप्रतिपादित प्रत्यक्षके 'कल्पनापोढ' लक्षणमें 'अभ्रान्त' पदकी वृद्धिकर उसका सुधार किया है। और यह 'अभ्रान्त' शब्द अथवा इसी आशयका कोई दूसरा शब्द समन्तभद्रके उक्त वाक्य में नहीं पाया जाता, और इसलिये यह नहीं कहा जासकता कि समन्तभद्रने धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षण को सामने रखकर उसपर आपत्तिकी है। यह दूसरी बात है कि समन्तभद्रने प्रत्यक्षके जिस 'निर्विकल्पक' लक्षण पर आपत्तिकी है उससे धर्मकीर्तिका लक्षण भी आपन्न एवं बाधित ठहरता है; क्योंकि उसनेभी अपने लक्षणमें प्रत्यक्षके निर्विकल्पक स्वरूपको अपनाया है। और इसीसे टीकामें टीकाकार विद्यानन्द आचार्यने, जिन्हें गलतीसे लेखमें 'पात्रकेसरी' नाम से भी उल्लेखित किया गया है, "कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षमिति लक्षणमस्यार्थः प्रत्यक्षप्रत्यायनं" इस वाक्यके द्वारा उदाहरणके तौरपर अपने समयमें खास प्रसिद्धिको प्राप्त धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षणको लक्षणार्थ बतलाया है। अन्यथा, "प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्" यह लक्षणभी लक्ष्यार्थ कहा जासकता है। इसी तरह धर्मकीर्तिके बाद होनेवाले जिनजिन विद्वानोंने प्रत्यक्षको निर्विकल्पक माना है, उन सबका मतभी आपन्न तथा बाधित होजाता है, और इससे समन्तभद्र इतने परसे ही जिस प्रकार उन अनुकरणशील विद्वानोंके बादके विद्वान् नहीं कहे जासकते उसी प्रकार वे धर्मकीर्तिके बादके भी विद्वान् नहीं कहे जासकते। अतः यह हेतु असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण अपने साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है।

यहाँपर मैं इतना औरभी बतला देना उचित समझता हूँ कि प्रत्यक्षको निर्विकल्पक माननेके विषय में दिग्नागकी भी गणना अनुकरणशील विद्वानोंमें ही है: क्योंकि उनके पूर्ववर्ती आचार्य वसुबन्धुने भी सम्यक् ज्ञानरूप प्रत्यक्षको 'निर्विकल्प' माना है, और यह बात उनके 'विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि' तथा 'त्रिंशिका विज्ञप्तिकारिका' जैसे प्रकरण ग्रन्थों * पर से साफ ध्वनित है। इसके सिवाय वसुबन्धुसे भी पहलेके प्राचीन बौद्ध साहित्यमें इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि बौद्ध सम्प्रदायमें उस सम्यक्ज्ञान को 'निर्विकल्प' माना है जिसके १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान ऐसे दो भेद कियेगये हैं और जिन्हें धर्मकीर्ति ने भी, न्यायबिन्दुमें, "द्विविधं सम्यग्ज्ञानं प्रत्यक्षमनुमानं च" इस वाक्यके द्वारा अपनाया है: जैसा कि 'लङ्कावतारसूत्र' में दियेहुए 'सम्यक्ज्ञान' के स्वरूपप्रतिपादक निम्न बुद्ध वाक्यसे प्रकट है:...

"प्रत्यात्म्यं च तथागतैरनुगम्य यथावद्दर्शितं प्रज्ञप्तं विवृतमुत्तानीकृतं यत्रानुगम्य सम्यगवबोधानुच्छेदशाश्वततो विकल्पस्याप्रवृत्तिः स्वप्रत्यात्मार्यज्ञानानुकूलं तीर्थंकरपक्ष परपक्षश्रावकप्रत्येक बुद्धागतिलक्षणं तत्सम्यग्ज्ञानम्।" पृ० २२८

जब 'सम्यग्ज्ञान'ही बौद्धोंके यहाँ बहुत प्राचीन कालसे विकल्पकी प्रवृत्तिसे रहित मानागया है, तब

† देखो, उक्त हिस्ट्री (H. M. S. I. L.) पृ० १०५ या हिस्टरी आफ़ इण्डियन लॉजिक पृ० ३०६।

* ये दोनों ग्रन्थ संस्कृतवृत्तिसहित सिलवेन लेवीस द्वारा संपादित होकर पेरिसमें मुद्रित हुए हैं। पहलेकी वृत्ति स्वोपज्ञ जान पड़ती है, और दूसरेकी वृत्ति आचार्य स्थिरमतिकी कृति है।

उसके अंगभूत प्रत्यक्षका निर्विकल्प माना जाना अतः सिद्ध है। बहुत सम्भव है कि आर्य नागार्जुन के किसी ग्रंथमें—संभवतः उनकी 'युक्तिषष्ठिकाकारिका' * में—प्रत्यक्षका अकल्पक अथवा निर्विकल्पक रूपसे निर्देश किया गया हो और उसे लक्ष्य में रखकरही समन्तभद्रने अपने युक्त्यनुशासनमें उसका निरसन किया हो। आर्य नागार्जुनका समय ईसवी सन् १८१ बतलाया जाता है ⊛ और समन्तभद्रभी दूसरी शताब्दीके विद्वान् माने जाते हैं। दोनों ग्रन्थोंके नामोंमें भी बहुत कुछ साम्य है और दोनोंकी कारिकासंख्या भी प्रायः मिलती जुलती है। युक्त्यनुशासनमें ६४ कारिकाएँ हैं—युक्त्यतो ६० ही हैं—और इससे उसेभी 'युक्तिषष्ठिका' अथवा 'युक्त्यनुशासनषष्ठिका' कहसकते हैं। ये सब बातें उक्त संभावनाकी पुष्टि करती हैं। यदि वह ठीक हो—और उसको ठीक माननेके लिये और भी कुछ सहायक सामग्री पाई जाती है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा—,तो समन्तभद्र प्रायः नागार्जुनके समकालीन विद्वान् ठहरते हैं। धर्मकीर्तिके बादके विद्वान् तो वे किसी तरहभी सिद्ध नहीं किये जासकते।

दूसरे हेतु रूपसे जो बात कहीगई है वहभी असिद्ध है अर्थात् आप्तमीमांसाकी उस ८० नम्बरकी कारिकासे उपलब्ध ही नहीं होती, जो इसप्रकार है—

> साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
> न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः॥

इसमें न तो धर्मकीर्तिका नामोल्लेख है और न "सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः" वाक्य का। फिर समन्तभद्रकी ओरसे यह कहना कैसे बन सकता है कि 'धर्मकीर्ति अपना विरोध खुद करता है जब कि वह सहोपलम्भनियमात् इत्यादि वाक्य कहता है?' मालूम होता है अष्टसहस्री जैसी टीका में 'सहोपलम्भनियमात' इत्यादि वाक्यको देखकर और उसे धर्मकीर्तिके प्रमाणविनिश्चय ग्रन्थोंमें भी पाकर पाठक महाशयने यह सब कल्पना करडाली है! परन्तु अष्टसहस्रीमें यह वाक्य उदाहरणके तौरपर दिये हुए कथनका एक अंग है, इसके पूर्व 'तथाहि' शब्दका भी प्रयोग किया गया है जो उदाहरणका वाचक है और साथमें धर्मकीर्तिका कोई नाम नहीं दिया गया है: जैसा कि टीकाके निम्न प्रारम्भिक अंशसे प्रकट है—

"प्रतिज्ञायांपक्षतावत्स्ववचनविरोधः साध्यसाधनविज्ञानस्य विज्ञप्तिमात्रमभिलपतः प्रसज्यते। तथाहि। सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोर्द्विचन्द्रदर्शनवदित्यत्रापंसंविदो सहदर्शनमुपेत्यैकत्वैकान्तं साधयन् कथमवधेयाभिलापः?" पृ० २४२

ऐसी हालतमें टीकाकारके द्वारा *उदाहरणरूप से प्रस्तुत किये हुए कथनको मूल ग्रन्थकारका बतला देना अति साहसका कार्य है! मूलमें तो विज्ञप्ति मात्रताका सिद्धान्त मानने वालों (बौद्धों) पर आपत्ति कीगई है और इस सिद्धान्तके माननेवाले समन्तभद्रके पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती दोनोंही हुए हैं। अतः इस आपत्तिसे जिस प्रकार पूर्ववर्ती विद्वानोंकी मान्यताका निरसन होता है वैसेही उत्तरवर्ती विद्वानोंकी मान्यताका भी निरसन होजाता है। इसीसे टीकाकारोंको उनमेंसे जिसके मतका निरसन करना इष्ट होता है वे उसीके वाक्यको लेकर मूलके आधार पर उसका खण्डन करडालते हैं और इसीसे टीकाओंमें अक्सर 'एतेन एतदपि निरस्तं भवति-प्रत्युक्तंभवति', 'एतेन यदुक्तं भट्टेन ⋯ तन्निरस्तं (अष्टसहस्री)' जैसे वाक्योंका भी प्रयोग पायाजाता है। और इसलिये यदि टीकाकार ने उत्तरवर्ती किसी विद्वान्के वाक्यको लेकर उसका निरसन किया है तो इससे वह विद्वान् मूलकारका

* नागार्जुनके इस ग्रन्थका उल्लेख डाक्टर सतीशचन्द्रने अपनी पूर्वोल्लेखित हिस्टरी आफ़ इण्डियन लॉजिक में किया है, देखो, उसका पृ० ७०।

⊛ देखो, पूर्वोल्लेखित 'तत्त्वसंग्रह' ग्रन्थकी भूमिकादिक

पूर्ववर्ती नहीं होजाता—टीकाकारका पूर्ववर्ती जरूर होता है। मूलकारको तब उसके बादका विद्वान् मानना भारी भूल होगा और ऐसी भूलोंसे ऐतिहासिक क्षेत्रमें भारी अनर्थोंकी संभावना है; क्योंकि प्रायः सभी सम्प्रदायोंके टीकाग्रंथ यथावश्यकता उत्तरवर्ती विद्वानोंके मतोंके खण्डनसे भरे हुए हैं। टीकाकारोंकी दृष्टि प्रायः ऐतिहासिक नहीं होती किंतु सैद्धान्तिक होती है। यदि ऐतिहासिक हो तो वे मूलवाक्यों परसे उन पूर्ववर्ती विद्वानोंके मतोंका ही निरसन करके बतलाएँ जो मूलकारके लक्ष्यमें थे।

इसके सिवाय, विज्ञप्तिमात्रताका सिद्धान्त धर्मकीर्तिके बहुत पहलेसे माना जाता था, वसुबन्धु जैसे प्राचीन आचार्योंने उसपर 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' और 'त्रिंशिका विज्ञप्तिकारिका' जैसे प्रकरण ग्रन्थों तककी रचना की है, जिनका उल्लेख पहले किया जाचुका है*। यह बौद्धोंकी विज्ञानाद्वैतवादिनी योगाचार शाखाका मत है और आचार्य वसुबन्धु के भी बहुत पहलेसे प्रचलित था। इसीसे उन्होंने लिखा है कि 'यह विज्ञप्तिमात्रताकी सिद्धि मैंने अपनी शक्तिके अनुसारकी है, पूर्ण रूपसे यह मुझ जैसोंके द्वारा चिन्तनीय नहीं है, बुद्धगोचर है'—

> "विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः स्वशक्तिसदृशी मया।
> कृतेयं सर्वथा सा तु न चिन्त्या बुद्धगोचरः॥"

'लंकावतार सूत्र' नामके प्राचीन बौद्ध ग्रंथमें, जो वसुबन्धुसे भी बहुत पहले निर्मित हो चुका है और जिसका उल्लेख नागार्जुनके प्रधान शिष्य आर्यदेव तक ने किया है, महामति द्वारा बुद्ध भगवान से जो १०८ प्रश्न किये गये हैं, उनमें भी विज्ञप्तिमात्रता का प्रश्न निम्न प्रकारसे पाया जाता है—

> "प्रज्ञप्तिमात्रं च कथं ब्रूहि मे वदतांवर। २-३७।"

* देखो, पूर्वोल्लिखित हिस्टरी आफ मिडियावल स्कूल आफ इण्डियन लॉजिक पृ० ७२, (या हिस्टरी आफ इण्डियन लॉजिक पृ० २७३, २६१)

और आगे ग्रंथके तीसरे परिवर्तमें विज्ञप्तिमात्रताके स्वरूप सम्बन्धमें लिखा है—

> "यदा त्वालम्बयमर्थं नोपलभते ज्ञानं तथा विज्ञप्तिमात्रव्यवस्थानं भवति विज्ञप्तेर्ग्राह्याभावाद् ग्राहकस्याप्य ग्रहणं भवति। तद्ग्रहणाच्च प्रवर्तते ज्ञानं विकल्पसंशब्दितं।"

इससे बौद्धोंका यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन मालूम होता है। आश्चर्य नहीं जो "सहोपलम्भानियमादभेदो नीलतद्धियोः" यह वाक्य भी पुराना ही हो और उसे धर्मकीर्तिने अपनाया हो। अतः आप्तमीमांसाके उक्त वाक्य परसे समन्तभद्रको धर्मकीर्ति के बादका विद्वान क़रार देना नितान्त भ्रमात्मक है। यदि धर्मकीर्तिको ही विज्ञप्तिमात्रता सिद्धान्तका ईजाद करनेवाला माना जायगा तो वसुबन्धु आदि पुरातन आचार्योंको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान मानना होगा, जो पाठक महाशयको भी इष्ट नहीं होसकता और न इतिहाससे ही किसी तरहपर सिद्ध किया जासकता है। और इसलिये यह दूसरा हेतु भी असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण साध्य की सिद्धि करने—समन्तभद्रको धर्मकीर्तिके बादका विद्वान क़रार देने—के लिये समर्थ नहीं है।

तीसरे हेतुमें आप्तमीमांसा की जिस कारिका नं० १०६ का उल्लेख कियागया है, वह इस प्रकार है—

> सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
> स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः॥

इसमें नयका स्वरूप बतलाते हुए स्पष्ट रूपसे बौद्धों त्रैरूप्य अथवा त्रिलक्षण हेतुका कोई नामोल्लेख नहीं कियागया है,—जो "पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्वं विपक्षे चासत्वं" इन तीन रूप है ‡; और न उसपर सीधी कोई आपत्ति ही कीगई है, बल्कि इतनाही कहागया है कि स्याद्वाद (श्रुतज्ञान) के द्वारा प्रविभक्त अर्थविशेषका जो साध्यके सधर्मा रूपसे, साधर्म्य

‡ देखो, 'न्यायप्रवेश' आदि प्राचीन बौद्ध ग्रंथ।

रूपसे और अविरोध रूपसे व्यंजक है—प्रतिपादक है—वह 'नय' है। इसीसे आप्तमीमांसा (देवागम) को सुनकर पात्रकेसरी स्वामी जब जैनधर्मके श्रद्धालु हुए थे तब उन्हें अनुमान-विषयक हेतुके स्वरूपमें सन्देह रहगया था—उक्त ग्रन्थपर से यह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि जैनधर्म सम्मत उसका क्या स्वरूप है और उससे बौद्धोंका त्रिलक्षण हेतु कैसे असमीचीन ठहरता है। और वह सन्देह बादको "अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्" इस वाक्यकी उपलब्धि पर दूर होसका था, और इसके आधार परही वे बौद्धोंके त्रिलक्षण हेतुका कदर्थन करनेमें समर्थ हुए थे। परन्तु अकलंकदेव जैसे टीकाकारोंने, जो पात्रकेसरीके बाद हुए हैं, अपने बुद्धि वैभवसे यह व्याख्यान करके बतलाया है कि उक्त कारिकामें 'सपक्षेणैव (सधर्मणैव) साध्यस्य साधर्म्यात्' इन शब्दोंके द्वारा हेतुके त्रैलक्षण्य रूपको और 'अविरोधात्' पदसे हेतुके अन्यथानुपपत्ति स्वरूप को दर्शाते हुए यह प्रतिपादन किया गया है कि केवल त्रिलक्षणके अहेतुपना है, तत्पुत्रत्वादिकी तरह *। यदि यह मानलिया जाय कि समन्तभद्र के सामने ऐसीही परिस्थिति थी और इस वाक्यसे उनका वही लक्ष्य था जो अकलंकदेव द्वारा प्रतिपादित हुआ है, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह त्रिलक्षणहेतु, धर्मकीर्तिका ही था, क्योंकि धर्मकीर्तिसे पहलेभी बौद्ध सम्प्रदायमें हेतुको त्रिलक्षणात्मक मानागया है: जैसाकि दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' तथा 'हेतुचक्रडमरु' आदि ग्रन्थोंपर से प्रकट है—प्रमाणसमुच्चयमें 'त्रिरूपहेतु' नामका एक अध्यायही अलग है ‖। नागार्जुनने अपने 'प्रमाणविहतना' ग्रन्थमें नैय्यायिकोंके पंचांगी अनुमानकी जगह त्र्यंगी अनुमान स्थापित किया है × और इस से ऐसा मालूम होता है कि जिस प्रकार नैय्यायिकों ने पंचांगी अनुमानके साथ हेतुको पंचलक्षण माना है उसीप्रकार नागार्जुननेभी त्र्यंगी अनुमानका विधान करके हेतुको त्रिलक्षण रूपसे प्रतिपादित किया है। इस तरह त्रिलक्षण अथवा त्रैरूप्य हेतुका अनुसन्धान नागार्जुन तक पहुँच जाता है।

इसके सिवाय, प्रशस्तपादने काश्यपके नामसे जो निम्न दो श्लोक उद्धृत किये हैं उनके आशयसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि वैशेषिक दर्शनमें भी बहुत प्राचीन कालसे त्रैरूप्य हेतुकी मान्यता प्रचलित + थी—

> यदनुमेयेन संबद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।
> तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम् ॥
> विपरीतमतो यत्स्यादेकेन द्वितयेन वा।
> विरुद्धासिद्धसन्दिग्धमलिंगं काश्यपोऽब्रवीत् ॥

यदि महज इस त्रिलक्षण हेतुके उल्लेखके कारण जो स्पष्टभी नहीं है, समन्तभद्रको धर्मकीर्तिके बाद का विद्वान माना जायगा तो दिग्नागको और दिग्नागके पूर्ववर्ती उन आचार्योंको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान मानना पड़ेगा जिन्होंने त्रिरूपहेतुको स्वीकार किया है, और यह मान्यता किसी तरह भी संगत नहीं ठहर सकेगी, किन्तु विरुद्ध पड़ेगी। अतः यह तीसरा हेतुभी असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण साध्यकी सिद्धि करनेके लिये समर्थ नहीं है।

इस तरह पर जब यह सिद्धही नहीं है कि समन्तभद्रने अपने दोनों ग्रन्थोंके उक्त वाक्योंमेंसे किसीमें भी धर्मकीर्तिका, धर्मकीर्तिके किसी ग्रन्थ

* 'सपक्षेणैव साध्यस्य साधर्म्यादित्यनेन हेतोस्त्रैलक्षण्यं अविरोधात् इत्यन्यथानुपपत्तिं च दर्शयता केवलस्य त्रिलक्षणस्यासाधनत्वमुक्तं तत्पुत्रत्वादिवत्।' —अष्टशती

‖ देखो, डा० सतीशचन्द्र की उक्त हिस्टरी आफ इंडियन लॉजिक पृ० ८५—९९,

× देखो, श्रीनर्मदाशंकर मेहताशंकर बी० ए० कृत 'हिन्द तत्त्वज्ञाननो इतिहास' पृष्ठ १८२।

+ देखो, गायकवाड़सिरीजमें प्रकाशित 'न्यायप्रवेश' की प्रस्तावना (Introduction) पृ० २३ (XXIII) आदि।

विशेषका या वाक्यविशेषका अथवा उसके किसी ऐसे अ र्वर्ती सिद्धान्त-विशेषका उल्लेख तथा प्रतिवाद किया है जिसका आविष्कार एकमात्र उसीके द्वारा हुआ हो, तब स्पष्ट है कि ये हेतु खुद असिद्ध होनेसे तीनों मिलकरभी साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं होसकते—अर्थात् इनके आधार पर किसी तरह भी यह साबित नहीं किया जासकता कि स्वामी समन्तभद्र धर्मकीर्तिके बाद हुए हैं।

चौथा हेतुभी समीचीन नहीं है; क्योंकि इस हेतुद्वारा जो यह बात कही गई है कि समन्तभद्रने भर्तृहरिके मतका खण्डन यथासंभव प्रायः उसीके शब्दोंको उद्धृत करके किया है, वह सुनिश्चित नहीं है। इस हेतुकी निश्चयपथप्राप्तिके लिये अथवा इसे सिद्ध करार देनेके लिये कमसे कम दो बातोंको साबित करनेकी खास जरूरत है, जो लेखपरसे साबित नहीं हैं—एक तो यह कि "बोधात्मा चेच्छब्दस्य' इत्यादि दोनों श्लोक वस्तुतः समन्तभद्रकी कृति हैं, और दूसरी यह कि भर्तृहरिसे पहले शब्दाद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन करने वाला दूसरा कोई नहीं हुआ है—भर्तृहरि ही उसका आद्य विधायक है—और यदि हुआ है तो उसके द्वारा 'न सोस्ति प्रत्ययो लोके' इत्यादि श्लोकसे मिलता जुलता या ऐसे आशयका कोई वाक्य नहीं कहा गया है अथवा एकही विषय पर एकही भाषामें दो विद्वानोंके लिखने बैठने पर परस्पर कुछभी शब्द सादृश्य नहीं हो सकता है।

लेखमें यह नहीं बतलाया गया है कि उक्त दोनों श्लोक समन्तभद्रके कौनसे ग्रंथके वाक्य हैं। समन्तभद्रके उपलब्ध ग्रंथोंमेंसे किसीमें भी वे पाये नहीं जाते और न विद्यानन्द तथा प्रभाचंद्र जैसे आचार्योंके ग्रंथोंमें ही वे उल्लेखित मिलते हैं, जो समन्तभद्रके वाक्योंका बहुत कुछ अनुसरण करने वाले हुए हैं। विद्यानन्दके श्लोकवार्तिकमें इस शब्दाद्वैतके सिद्धान्तका खण्डन अकलंक देवके आधार पर किया है—समन्तभद्रके आधार पर नहीं। इस कथनका प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है:—

'....सर्वैकान्तानां तदसंभवं भगवत्समन्तभद्राचार्यैर्न्यायाद्वादैकान्तनिराकरणप्रकाशेनैव वक्ष्यमाणाच्च न्यायात्संक्षेपतः प्रवचनप्रामाण्यदार्ढ्यमवधार्य तत्र निश्चितं नामात्मसात्कृत्य सम्प्रति भूतस्वरूपप्रतिपादकअकलंकग्रंथमनुवाद पुरस्सर विचारयति।" (पृ० २२९)

इस परसे ऐसा खयाल होता है कि यदि शब्दाद्वैतके खण्डनमें समन्तभद्रके उक्त दोनों श्लोक होते तो विद्यानन्द उन्हें यहाँ पर—इस प्रकरणमें—उद्धृत किये बिना न रहते। और इसलिये इन श्लोकोंको समन्तभद्रके बतलाना संदेहसे खाली नहीं है। इन श्लोकोंके साथ हरिभद्र सूरिके जिन पूर्ववर्ती वाक्योंको पाठकजीने उद्धृत किया है वे 'अनेकान्त जय पताका' की उस वृत्तिके ही वाक्य जान पड़ते हैं जिसे स्वोपज्ञ कहा जाता है और उनमें "आह च वादिमुख्यः" इस वाक्यके द्वारा इन श्लोकोंको वादिमुख्यकी कृति बतलाया गया है—समन्तभद्र की नहीं। वादिमुख्यको यहाँ समन्तभद्र नाम देना किसी टिप्पणीकारका कार्य मालूम होता है, और शायद इसीसे उस टिप्पणीको पाठकजीने उद्धृत नहीं किया। होसकता है कि जिस ग्रंथके ये श्लोक हों उसे अथवा इन श्लोकोंको ही समन्तभद्रके समझनेमें टिप्पणीकारको, चाहे वे खुद हरिभद्रही क्यों न हों—भ्रम हुआ हो। ऐसे भ्रमके बहुत कुछ उदाहरण पाये जाते हैं—कितनेही ग्रन्थ तथा वाक्य ऐसे देखनेमें आते हैं जो कृति तो है किसीकी, और समझ लिये गये किसी दूसरेके। नमूनेके तौरपर 'तत्त्वानुशासन' को लीजिये, जो रामसेनाचार्यकी कृति है परन्तु माणिकचन्द्रग्रंथमालामें वह गलतीसे उनके गुरु नागसेनके नामसे मुद्रित होगई है * और तबसे हस्तलिखित प्रतियोंसे अपरिचित विद्वान् लोगभी देखादेखी नागसेनके नामसेही उसका उल्लेख करने लगे हैं। इसी तरह प्रमेयकमलमार्तण्डके निम्न वाक्यको लीजिये, जो गलतीसे उक्त ग्रन्थमें

* देखो, जैन हितैषी भाग, १४ पृ० ३१३

अपनी टीकासहित मुद्रित होगया है और उसपरसे कुछ विद्वानोंने यह समझ लिया है कि वह मूलकार माणिक्यनन्दीका वाक्य है, जिनके 'परीक्षामुख' शास्त्रका उक्त प्रमेयकमलमार्तण्ड भाष्य है और जिस भाष्यपर भी फिर अन्यद्वारा टीका लिखीगई है, और इसीलिये वे यह कहने लगे हैं कि माणिक्यनन्दीने विद्यानन्दका नामोल्लेख किया है:—

> सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सद्योऽकलंकाश्रयं।
> विद्यानन्द समन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम्।
> निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम्।
> युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्धमानं जिनम्॥

खुद पाठक महाशयने भी कहा है कि माणिक्यनन्दीने विद्यानन्दका नामोल्लेख किया है, और वह इसी वाक्यको माणिक्यनन्दीका वाक्य समझने की ग़लती पर आधार रखता हुआ जान पड़ता है। इसीसे डॉक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणको अपनी मध्यकालीन भारतीय न्याय शास्त्रकी हिस्टरीमें (पृ० २८ पर) यह लिखना पड़ा है कि 'मिस्टर पाठक कहते हैं कि माणिक्यनन्दीने विद्यानंदका नामोल्लेख किया है, परन्तु खुद परीक्षामुख शास्त्रके मूलमें ऐसा उल्लेख मेरे देखनेमें नहीं आया।'

ऐसी हालतमें उक्त दोनों श्लोकोंकी स्थिति बहुत कुछ सन्देहजनक है—बिना किसी विशेष समर्थन तथा प्रमाणके उन्हें सुनिश्चित रूपसे समन्तभद्रका नहीं कहा जासकता और इसलिये उनके आधार पर जो अनुमान बाँधा गया है वह निर्दोष नहीं कहला सकता। यदि किसी तरह पर यह सिद्ध कर दिया जाय कि वे दोनों श्लोक समन्तभद्रके ही हैं तो फिर दूसरी बातको सिद्ध करना होगा और उसमें यह तो सिद्ध नहीं किया जासकता कि भर्तृहरिसे पहले शब्दाद्वैत सिद्धान्तका माननेवाला दूसरा कोई हुआ ही नहीं; क्योंकि पाणिनि आदि दूसरे विद्वान् भी शब्दाद्वैतके माननेवाले शब्द ब्रह्मवादी हुए हैं—खुद भर्तृहरिने अपने 'वाक्यपदीय' ग्रंथमें उनमें से कितनोंही का नामोल्लेख तथा सूचन किया है। और न तब यही सिद्ध किया जासकता है कि उनमेंसे किसीके द्वारा 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' जैसा कोई वाक्य न कहा गया हो। स्वतंत्र रूपसे एकही विषय पर लिखने बैठनेवाले विद्वानोंके साहित्यमें कितना ही शब्दसादृश्य स्वतः होजाया करता है, फिर उस विषयके अपने पूर्ववर्ती विद्वानोंके कथनोंको पढ़कर तथा स्मरण कर लिखने वालोंकी तो बातही जुदी है—उनकी रचनाओंमें शब्दसादृश्यका होना और भी अधिक स्वाभाविक है। जैसा कि पूज्यपाद, अकलंक और विद्यानन्दकी कृतियोंके क्रमिक अध्ययन से जाना जाता है अथवा दिग्नाग और धर्मकीर्ति की रचनाओंकी तुलनासे पाया जाता है। दिग्नाग ने प्रत्यक्षका लक्षण कल्पनापोढं और हेतुका लक्षण "ग्राह्यधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुः" किया तब धर्मकीर्तिने प्रत्यक्षका लक्षण 'कल्पनापोढमभ्रान्तं' और हेतुका लक्षण "पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुः" किया है *। दोनोंमें कितना अधिक शब्दसादृश्य है, इसे बतलानेकी जरूरत नहीं। इसी तरह भर्तृहरिका 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' नाम का श्लोकभी अपने पूर्ववर्ती किसी विद्वानके वाक्य का अनुसरण जान पड़ता है। बहुत संभव है कि वह निम्न वाक्यका ही अनुसरण हो, जो विद्यानंद के श्लोकवार्तिक और प्रभाचंद्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड में समान रूपसे उद्धृत पाया जाता है और अपने उत्तरार्धमें थोड़ेसे शब्दभेदको लिये हुए है, और यहभी सम्भव है कि उसेही लक्ष्यमें रखकर 'न चास्ति प्रत्ययो लोके' नामक उस श्लोककी रचना हुई हो जिसे हरिभद्रने उद्धृत किया है:—

> न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
> अनुविद्धमिवाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम्॥

प्रमेयकमलमार्तण्डमें यह श्लोक और साथमें दो श्लोक और भी, ऐसे तीन श्लोक 'तदुक्तं' शब्दके

* हेतुके ये दोनों लक्षण पाठकजीने एकान्तके उसी नम्बरमें प्रकाशित अपने दूसरे लेखमें उद्धृत किये हैं।

साथ एकही जगह पर उद्धृत किये गये हैं, और इससे ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी ऐसे ग्रंथसे उद्धृत किये गये हैं, जिसमें वे इसी क्रमको लिये हुए होंगे। भर्तृहरिके 'वाक्यपदीय' ग्रन्थमें वे इस क्रमको लिये हुए नहीं हैं; बल्कि अनादिनिधनं शब्दब्रह्मतत्त्वं यदक्षरं' नामका तीसरा श्लोक जरा से पाठभेदके साथ वाक्यपदीयके प्रथम काण्डका पहला श्लोक है और शेष दो श्लोक (पहला उपर्युक्त शब्द भेदको लिये हुए) उसमें क्रमशः नम्बर १२४, १२५ पर पाये जाते हैं। इससे भी किसी दूसरे ऐसे प्राचीन ग्रंथकी सम्भावना दृढ़ होती है जिसका भर्तृहरिने अनुकरण किया हो। इसके सिवाय भर्तृहरि खुद अपने वाक्यपदीय ग्रन्थको एक संग्रहग्रन्थ बतलाते हैं--

> न्यायप्रस्थानमार्गांस्तानभ्यस्य स्वं च दर्शनम् ।
> प्रणीतो गुरुणाऽस्माकमयमागमसंग्रहः ॥२—४९० ।

उन्होंने पूर्वमें एक बहुत बड़े संग्रहकी भी सूचना की है. जिसके अल्पज्ञानियों द्वारा लुप्तप्राय होजाने पर पतञ्जलि ऋषि द्वारा उसका पुनः कुछ उद्धार किया गया। इसीसे टीकाकार पुण्यराजने "एतेन संग्रहानुसारेण भगवता पतञ्जलिना संग्रहसंक्षेपभूतमेव प्रायशो भाष्यमुपनिबद्धमित्युक्तं वेदितव्यम्" इस वाक्यके द्वारा पतञ्जलिके महाभाष्यको उस संग्रहका प्रायः 'संक्षेपभूत' बतलाया है। और भर्तृहरिने इस ग्रन्थके प्रथम कांडमें यहाँ तकभी प्रतिपादित किया है कि पूर्व ऋषियोंके स्मृति शास्त्रोंका आश्रय लेकर ही शिष्यों द्वारा शब्दानुशासनकी रचना कीजाती है—

> तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं वा सनिबन्धनाम् ।
> आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम् ॥४१॥

ऐसी हालतमें 'न च स्यात् प्रत्ययो लोके' इन शब्दोंका किसी दूसरे पूर्ववर्ती ग्रन्थमें पाया जाना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। अस्तु।

यदि धर्मकीर्तिके पूर्ववर्ती किसी विद्वानने दिग्नाग प्रतिपादित प्रत्यक्ष-लक्षण अथवा हेतु लक्षण को बिना नामधामके उद्धृत करके उसका खण्डन किया हो और बादको दिग्नागके ग्रन्थोंकी अनुपलब्धिके कारण कोई शख्स धर्मकीर्तिके वाक्यों के साथ सादृश्य देखकर उसे धर्मकीर्ति पर आपत्ति करनेवाला और इसलिये धर्मकीर्तिके बादका विद्वान् समझ बैठे, तो उसका वह समझना जिस प्रकार मिथ्या तथा भ्रममूलक होगा उसी प्रकार भर्तृहरिके पूर्ववर्ती किसी विद्वान्को उसके महज किसी ऐसे पूर्ववर्ती वाक्यके उल्लेखके कारण जो भर्तृहरिके उक्त वाक्यके साथ कुछ मिलताजुलता हो, भर्तृहरिके बादका विद्वान क़रार देनाभी मिथ्या तथा भ्रममूलक होगा।

अतः यह चौथा हेतु दोनों बातोंकी दृष्टिसे असिद्ध है और इसलिये इसके आधार पर समन्तभद्रको भर्तृहरिके बादका विद्वान क़रार नहीं दिया जासकता।

पाँचवें हेतुमें एकान्तखण्डनके जिन अवतरणों की तरफ़ इशारा किया गया है, उनपर से यह कैसे स्पष्ट है कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले जीवित थे अर्थात् समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं—यह कुछ समझमें नहीं आता! क्योंकि यह तो कहा नहीं जासकता कि सिद्धसेनने असिद्धहेत्वाभासका और पूज्यपाद (देवनन्दी) ने विरुद्धहेत्वाभासका आविर्भाव किया है और समन्तभद्रने एकान्त साधन को दूषित करनेके लिये, चूँकि इन दोनोंका प्रयोग किया है, इसलिये वे इनके आविष्कर्ता सिद्धसेन और पूज्यपादके बाद हुए हैं। ऐसा कहना हेत्वाभासोंके इतिहासकी अनभिज्ञताको सूचित करेगा; क्योंकि ये हेत्वाभास न्यायशास्त्रमें बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। जब असिद्धादि हेत्वाभास पहलेसे प्रचलित थे तब एकान्त साधनको दूषित करनेके लिये किसीने उनमेंसे एकको, किसीने दूसरेको और किसीने एकसे अधिक हेत्वाभासोंका यदि

प्रयोग किया है तो ये एक प्रकारकी घटनाएँ अथवा किसी किसी विषयमें किसी किसीकी प्रसिद्धि-कथाएँ हुईं. उनके मात्र उल्लेखक्रमको देखकर उसपर से उनके अस्तित्व-क्रमका अनुमान करलेना निर्हेतुक है। उदाहरणके तौरपर नीचे लिखे श्लोकको लीजिये, जिसमें तीन विद्वानोंकी एक एक विषयमें खास प्रसिद्धिका उल्लेख है—

> प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
> धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमकण्टकम्॥

यदि उल्लेखक्रमसे इन विद्वानोंके अस्तित्वक्रम का अनुमान किया जाय तो अकलंकदेवको पूज्यपादसे पूर्वका विद्वान मानना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है—पूज्यपाद ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके विद्वान् हैं और अकलंकदेवने उनकी सर्वार्थसिद्धिको साथ में लेकर 'राजवार्तिक' की रचनाकी है। अतः मात्र उल्लेखक्रमकी दृष्टिसे अस्तित्वक्रमका अनुमान करलेना ठीक नहीं है। यदि पाठकजीका ऐसाही अनुमान हो तो सिद्धसेनका नाम पहले उल्लेखित होनेके कारण उन्हें सिद्धसेनको पूज्यपादसे पहले का विद्वान मानना होगा, और ऐसा मानना उनके पहले हेतुके विरुद्ध पड़ेगा; क्योंकि सिद्धसेनने अपने 'न्यायावतार' में प्रत्यक्षको 'अभ्रान्त' के अतिरिक्त 'ग्राहक' भी बतलाया है जो निर्णायक, व्यवसायात्मक अथवा सविकल्पकका वाचक है और उससे धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षण पर आपत्ति होती है। इसीसे उसकी टीकामें कहा गया है—"तेन यत् ताथागतैः प्रत्यपादि 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तमिति' तदपास्तं भवति।" और इसलिये अपने प्रथम हेतुके अनुसार उन्हें सिद्धसेनको धर्मकीर्तिके बादका विद्वान कहना होगा। सिद्धसेनका धर्मकीर्ति के बाद होना और पूज्यपादके पहले होना ये दोनों कथन परस्परमें विरुद्ध हैं; क्योंकि पूज्यपादका अस्तित्वसमय धर्मकीर्तिसे कोई दो शताब्दी पहलेका है।

अतः महज उक्त अवतरणोंपर से न तो हेत्वाभासोंके आविष्कारकी दृष्टिसे और न उल्लेखक्रमकी दृष्टिसे ही समन्तभद्रको पूज्यपादके बादका विद्वान् कहा जासकता है। तब एक सूरत अनुमानकी और भी रहजाती है—यद्यपि पाठकजीके शब्दों पर से उसका भी स्पष्टीकरण नहीं होता‡ और वह यह है कि, चूँकि समन्तभद्रके शिष्यने उक्त अवतरणों में पूज्यपाद (देवनन्दी) का नामोल्लेख किया है इसलिये पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले हुए हैं—यद्यपि इसपर से वे समन्तभद्रके समकालीन भी कहे जासकते हैं। परन्तु यह अनुमान तभी बन सकता है जबकि यह सिद्ध करदिया जाय कि एकान्तखंडन के कर्ता लक्ष्मीधर समन्तभद्रके साक्षात् शिष्य थे। उक्त अवतरणोंपर से इस गुरुशिष्य सम्बन्धका कोई पता नहीं चलता, और इसलिये मुझे 'एकान्तखंडन' की उस प्रतिको देखनेकी जरूरत पैदा हुई, जिसका पाठकजीने अपने लेखमें उल्लेख किया है और जो कोल्हापुरके लक्ष्मीसेन-मठमें ताड़पत्रों पर पुरानी कन्नडलिपिमें मौजूद है। श्रीयुत ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० प्रोफेसर राजाराम कालिज कोल्हापुरके सौजन्य तथा अनुग्रहसे मुझे उक्त ग्रंथ की एक विश्वस्त प्रति (True copy) खुद प्रोफेसर साहबके द्वारा जाँच होकर प्राप्त हुई, और इसके लिये मैं प्रोफेसर साहबका बहुतही आभारी हूँ।

ग्रन्थप्रतिको देखनेसे मालूम हुआ कि यह ग्रंथ अधूरा है—किसी कारणवश पूरा नहीं हो सका—और इसलिये इसमें ग्रंथकर्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है, न दुर्भाग्यसे ऐसी कोई संधियाँ ही हैं जिनमें ग्रंथकारने गुरुके नामोल्लेखपूर्वक अपना नाम दिया हो और न अन्यत्र ही कहीं ग्रन्थकारने अपनेको स्पष्टरूपसे समन्तभद्रका दीक्षित या समन्तभद्रशिष्य लिखा

‡ पाठकजीके शब्द इस प्रकार हैं—From the passages cited above from the Ekanta-khandana, it is clear that Pujyapada lived prior to Samantabhadra.

है। साथही, यह भी मालूम हुआ कि उक्त अवतरणोंमें पाठकजीने 'तदुक्तं' रूपसे जो दो श्लोक दिये हैं वहाँ एक पहलाही श्लोक है और उसके बाद निम्न वाक्य देकर ग्रंथविषयका प्रारंभ किया गया है—

"तदीयचरणाराधनाराधितसंवेदनविशेषः नित्याद्येकान्तवादविवादप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डरचनाडम्बरो लक्ष्मीधरो धीरः पुनरसिद्धाद्विपट्कमाह।"

दूसरा श्लोक वस्तुतः ग्रंथके मंगलाचरणपद्य 'जिनदेवं जगद्वन्द्यं' इत्यादिके अनन्तरवर्ती पद्य नं० २ का पूर्वार्ध है और जिसका उत्तरार्ध निम्न प्रकार है। इसलिये वह ग्रंथकारका अपना पद्य है, उसे भिन्न स्थानपर 'तदुक्तं' रूपसे देना पाठक महाशयकी किसी गलतीका परिणाम है:—

"तौ द्वौ मुने वरेण्यः पटुताधिषणः श्रीसमन्तादि भद्रः।
तच्छिष्यो लक्ष्मणस्तु प्रथित नयपथो वक्ष्यमिद्धयाद्विपट्क

इस उत्तरार्धके बाद और 'तदुक्तं' से पहले कुछ गद्य है, जिसका उत्तरांश पाठकजीने उद्धृत किया है और पूर्वांश जिससे ग्रंथके विषयका कुछ दिग्दर्शन होता है, इस प्रकार है:—

"नित्याद्येकान्तसाधनानामंकुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् यत्कार्यं तत् सकर्तृकं यथा घटः। कार्यं च इदं तस्मात्सकर्तृकमेवेत्यादीनाम्॥"

इस तरहपर यह ग्रंथकी स्थिति है और इस परसे ग्रंथकारका नाम 'लक्ष्मीधर' के साथ 'लक्ष्मण' भी उपलब्ध होता है, जो लक्ष्मीधरका पर्यायनाम भी हो सकता है। जान पड़ता है ग्रंथके प्रारंभमें उक्त प्रकारसे प्रयुक्त हुए 'तच्छिष्यः' और "तदीय चरणाराधनाराधितसंवेदन विशेषः" इन दो विशेषणों परसेही पाठकजीने लक्ष्मीधरके विषयमें समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य होनेकी कल्पना कर डाली है! परन्तु वास्तवमें इन विशेषणों परसे लक्ष्मीधरको समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य समझना भूल है; क्योंकि लक्ष्मीधरने एकान्तसाधनके विषयमें भिन्न कालीन तीन आचार्यों—सिद्धसेन, देवनन्दी (पूज्यपाद) और समन्तभद्रके मतोंका उल्लेख करके जो 'तच्छिष्यः' और 'तदीय चरणाराधनाराधितसंवेदन विशेषः' ऐसे अपने दो विशेषण दिये हैं उनके द्वारा उसने अपने को उक्त तीनों आचार्योंका शिष्य (उपदेश्य) सूचित किया है, जिसका फलितार्थ है परम्परा शिष्य (उपदेश्य)। और यह बात 'तदुक्तं' रूपसे दिये हुए श्लोकको 'इति' शब्दसे पृथक् करके उसके बाद प्रयुक्त किये गये तदीयादि द्वितीय विशेषण पद से और भी स्पष्टताके साथ झलकती है। 'तच्छिष्यः' का अर्थ 'तस्य समन्तभद्रस्य शिष्यः' नहीं किन्तु 'तेषां सिद्धसेनादीनां शिष्यः' ऐसा होना चाहिये। और उपर से किसीको यह भ्रम भी न होना चाहिये कि 'उनके चरणोंकी आराधना सेवासे प्राप्त हुआ है ज्ञान विशेष जिसको' पदके इस आशयसे तो वह साक्षात् शिष्य मालूम होता है; क्योंकि आराधना प्रत्यक्ष ही नहीं किन्तु परोक्षभी होती है, बल्कि अधिकतर परोक्ष ही होती है। और चरणाराधनाका अभिप्राय शरीरके अंगरूप पैरोंकी पूजा नहीं, किन्तु उनके पदोंकी—वाक्यों की—सेवा—उपासना है, जिससे ज्ञान-विशेषकी प्राप्ति होती है। ऐसे बहुतसे उदाहरण देखनेमें आते हैं जिनमें शताब्दियों पहलेके विद्वानोंको गुरु रूपसे अथवा अपनेको उनका शिष्य रूपसे उल्लेखित किया गया है, और वे सब परम्परीण गुरुशिष्यके उल्लेख हैं—साक्षात् के नहीं। नमूनेके तौरपर 'नीतिसार' के निम्न प्रशस्ति वाक्यको लीजिये, जिसमें ग्रंथकार इन्द्रनन्दीने हजार वर्षसे भी अधिक पहलेके आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीका अपनेको शिष्य (विनेय) सूचित किया है—

"—सः श्रीमानिन्द्रनन्दी जगति विजयतां भूरिभावानुभावी दैवज्ञः कुन्दकुन्दप्रभुपदविनयः स्वागमाचार चञ्चुः॥"

इसी तरह एकान्तखंडनके उक्त विशेषणपद भी परम्परीण शिष्यताके उल्लेखको लिये हुए हैं—साक्षात् शिष्यताके नहीं। यदि लक्ष्मीधर समन्तभद्र

का साक्षात् शिष्य होता तो वह 'तदुक्तं' रूपसे उस श्लोकको न देता, जिसमें सिद्धसेनादिकी तरह समन्तभद्रकी भी एकान्तसाधनके विषयमें एक खास प्रसिद्धिका उल्लेख कियागया है और वह उल्लेख-वाक्य किसी दूसरे विद्वानका है, जिससे ग्रंथकार समन्तभद्रसे बहुत पीछे का—इतने पीछेका जब कि वह प्रसिद्धि एक लोकोक्तिका रूप बनगई थी—विद्वान जान पड़ता है। यह प्रसिद्धिका श्लोक सिद्धिविनिश्चयटीका और न्यायविनिश्चय-विवरणमें निम्न रूपसे पाया जाता है: —

> असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो देवनन्दिनः।
> द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने ॥

न्यायविनिश्चय-विवरणमें वादिराजने इसे 'तदुक्तं' पदके साथ दिया है और सिद्धिविनिश्चय-टीकामें अनन्तवीर्य आचार्यने, जोकि अकलंकदेव के ग्रन्थोंके प्रधान व्याख्याकार हैं और अपने बादके व्याख्याकारों प्रभाचन्द्र-वादिराजादि द्वारा अतीव पूज्यभाव तथा कृतज्ञताके व्यक्तीकरणपूर्वक स्मृत किये गये हैं, इस श्लोकको एक बार पाँचवें प्रस्तावमें "यद्वद्दयत्यसिद्धः सिद्धसेनस्य" इत्यादि रूपसे उद्धृत किया है, फिर छठे प्रस्तावमें इसे पुनः पूरा दिया है और वहाँपर इसके पदोंकी व्याख्या भी की है। इससे यह श्लोक अकलंकदेवके सिद्धिविनिश्चय ग्रंथके 'हेतुलक्षणसिद्धि' नामक छठे प्रस्तावका है। और इसलिये लक्ष्मीधर अकलंकदेवके बादका विद्वान् मालूम होता है। वह वस्तुतः उन विद्यानन्दके भी बाद हुआ है जिन्होंने अकलंकदेवकी 'अष्टशती' के प्रतिवादी कुमारिलके मतका अपने तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक आदि ग्रंथोंमें तीव्र खण्डन किया है; क्योंकि उसने एकान्तखण्डनमें "तथा चोक्तं विद्यानन्द स्वामिभिः" इस वाक्यके साथ 'आप्तपरीक्षा' का निम्न वाक्य उद्धृत किया है, जो कि विद्यानन्दकी उनके तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक और अष्टसहस्री आदि कई ग्रंथोंके बादकी कृति है:—

> सति धर्मविशेषे हि तीर्थकृत्त्वसमाह्वये।
> ब्रूयाज्जिनेश्वरो मार्गं न ज्ञानादेव केवलात् ॥

ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य नहीं था—समन्तभद्रके साक्षात् शिष्योंमें शिवकोटि और शिवायन नामके दो आचार्योंका ही नामोल्लेख मिलता है॥—वह विद्यानन्दका उक्त प्रकारसे उल्लेख करनेके कारण वास्तवमें समन्तभद्रसे कई शताब्दी पीछेका विद्वान् मालूम होता है और यह बात आगे चलकर और भी स्पष्ट होजायगी। यहाँ पर सिर्फ इतनाही जान लेना चाहिये कि जब लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य नहीं था, तब उसके द्वारा पूज्यपादका नामोल्लेख होना इस बातके लिये कोई नियामक नहीं होसकता कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले हुए हैं। यदि लक्ष्मीधरके द्वारा उल्लेखित होने मात्रसे ही उन्हें समन्तभद्रसे पहलेका विद्वान् माना जायगा तो विद्यानंदकोभी समन्तभद्रसे पहिलेका विद्वान मानना होगा, और यह स्पष्टही पाठकजीके, इतिहासके तथा विद्यानन्दके उस उपलब्ध साहित्यके विरुद्ध पड़ेगा, जिसमें जगह जगहपर समन्तभद्रका और उनके बहुत पीछे होनेवाले अकलंकदेवका तथा दोनोंके वाक्योंका भी उल्लेख किया गया है।

यहाँपर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि उपलब्ध जैनसाहित्यमें पूज्यपाद समन्तभद्रसे बादके विद्वान् माने गये हैं। पट्टावलियोंको छोड़कर श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंसे भी ऐसा ही प्रतिपादित होता है। शिलालेख नं० ४० (६४) में समन्तभद्रके परिचय-पद्यके बाद "ततः" शब्द लिखकर 'यो देवनन्दि प्रथमाभिधानः' इत्यादि पद्योंके द्वारा पूज्यपादका परिचय दिया है, और नं० १०८(२५८) के शिलालेखमें समन्तभद्रके बाद पूज्यपादके परिचय का जो प्रथम पद्य दिया है उसीमें 'ततः' शब्दका

॥ देखो, विक्रान्तकौरव, जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय, अथवा स्वामी समन्तभद्र (इतिहास) पृ० ९५ आदि।

प्रयोग किया है, और इस तरह पर पूज्यपादको समन्तभद्रके बादका विद्वान् सूचित किया है। इसके सिवाय खुद पूज्यपादके जैनेंद्रव्याकरणमें समन्तभद्रका नामोल्लेख करनेवाला एक सूत्र निम्न प्रकार से पाया जाता है:—

चतुष्टयं समन्तभद्रस्य। ५-४-१६८॥

इस सूत्रकी मौजूदगीमें यह नहीं कहा जासकता कि समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं, और इसलिये पाठकजीको इस सूत्रकी चिन्ता पैदा हुई, जिसने उनके उक्त निर्णयके मार्गमें एक भारी कठिनाई (difficulty) उपस्थित करदी। इस कठिनाईसे सहजहीमें पार पानेके लिये पाठकजीने इस सूत्रको—तथा इसी प्रकारके दूसरे नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी—क्षेपक क़रार देनेकी जो चेष्टा की है वह व्यर्थ की कल्पना तथा खींचातानीके सिवाय और कुछ प्रतीत नहीं होती। आपकी इस कल्पनाका एकमात्र आधार शाकटायन व्याकरणमें, जिसे आपने जैनेंद्र व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नक़ल (copy) करने वाला बतलाया है, उक्त सूत्रका अथवा उसी आशय के दूसरे समान सूत्रका न होना है। और इससे आपका ऐसा आशय तथा अनुमान जान पड़ता है कि चूँकि जैन शाकटायनने जैनेंद्र व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नक़ल (कॉपी) की है इसलिये यह सूत्र यदि जैनेंद्र व्याकरणका होता तो शाकटायन इसकी भी नक़ल जरूर करता। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो 'बहुत' में 'सब' का समावेश नहीं किया जासकता है। यदि ऐसा समावेश माना जायगा तो पूज्यपादके 'जैनेन्द्र' से पाणिनीय व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंका अनुसरण होनेसे और साथही पाणिनि द्वारा उल्लेखित शाकटायनादि विद्वानोंका नामोल्लेख न होनेसे पाणिनीय व्याकरण के उन नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी संक्षिप्त कहना होगा, जो इष्ट नहीं होसकता। दूसरे जैनशाकटायन ने सर्वथा 'जैनेंद्र' का अनुसरण किया है, ऐसा न तो पाठकजी द्वारा उद्धृत सूत्रों परसे और न दूसरे सूत्रों परसेही प्रतीत होता है। प्रत्युत इसके, कितने ही अंशोंमें वह स्वतन्त्र रहा है और कितनेही अंशों में उसने दूसरोंके सूत्रोंका, जिनमें पाणिनिके सूत्र भी शामिल हैं, अनुसरण किया है। खुद पाठकजीने अपने प्रकृत लेखमें शाकटायनके "जरायाडसिन्दुस्याचि" (१-२-३७) सूत्रके विषयमें लिखा है कि वह बिलकुल पाणिनिके "जराया जरसन्यतरस्याम्" (७-२-१०१) सूत्रके आधार पर रचा गया है (is entirely based on)। साथही यहभी लिखा है कि जैन शाकटायनके इस सूत्रमें "इन्द्र" का नामोल्लेख होनेसे ही कुछ विद्वानोंको यह विश्वास करनेमें ग़लती हुई है कि 'इन्द्र' नामकाभी वास्तवमें कोई वैय्याकरण हुआ है *। ऐसी हालतमें यदि उसने जैनेंद्रके कुछ सूत्रोंको नहीं लिया अथवा उनका या उनके नामवाले अंशका काम 'वा' शब्दके प्रयोग से निकाल लिया और कुछ ऐसे सूत्रोंमें स्वयं पूर्वाचार्योंके नामोंका निर्देश किया जिनमें पूज्यपादने 'वा' शब्दका प्रयोग करकेही संतोष धारण करलिया था, तो इससे कोई बाधा नहीं आती और न जैनेंद्र तथा शाकटायनके वे वे (पूर्वाचार्योंके नामोल्लेख वाले) सूत्र प्रक्षिप्त ही ठहरते हैं। उन्हें प्रक्षिप्त सिद्ध करनेके लिये विशेष प्रमाणोंको उपस्थित करनेकी ज़रूरत है, जो उपस्थित नहीं किये गये। अस्तु।

जब एकान्तखण्डनके कर्ता लक्ष्मीधर समन्तभद्रके साक्षात् शिष्यही सिद्ध नहीं होते और न उनके द्वारा उल्लेखित होने मात्रसे पूज्यपाद समन्तभद्र के पहलेके विद्वान ठहरते हैं तब यहाँ पर इन सूत्रों के विषयमें कोई विशेष विचार करनेकी ज़रूरत नहीं रहती; क्योंकि उक्त सूत्र (५-४-१६८) की

* पाठकजीका यह मत भी कुछ ठीक मालूम नहीं होता; क्योंकि लंकावतार सूत्र जैसे प्राचीन ग्रंथमेंभी इन्द्र को शब्द शास्त्रका प्रणेता लिखा है:—

"इन्द्रोऽपि महामते अनेक शास्त्र विदग्ध बुद्धिः स्वशब्द शास्त्र प्रणेता" पृ० १०४

प्रक्षिप्तताके आधार पर ही समन्तभद्रको पूज्यपादके बादका विद्वान् नहीं बतलाया गया है बल्कि एकांत-खण्डनके उक्त अवतरणोंके आधार पर वैसा प्रतिपादित करके जैनेंद्रके इस सूत्रविषयमें प्रक्षिप्तताकी कल्पना कीगई है, और इस कल्पनाके कारण दूसरे नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी प्रक्षिप्त कहनेके लिये बाध्य होना पड़ा है। परन्तु फिरभी जैनेंद्रके "कृवृषिमृजां यशोभद्रस्य" (२-१-९९) इस नामोल्लेख वाले सूत्रको प्रक्षिप्त नहीं बतलाया गया। नहीं मालूम इसका क्या क्या कारण है!

छठा हेतु भी समीचीन नहीं है क्योंकि जब लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात शिष्य ही नहीं था और उसने कुमारिलके मतका खंडन करनेवाले विद्यानन्द स्वामी तकका अपने ग्रंथमें उल्लेख किया है, तब उसके द्वारा भट्टाचार्यके रूपमें कुमारिलका उल्लेख होनेसे यह नतीजा नहीं निकाला जासकता कि समन्तभद्र कुमारिलके प्रायः समसामयिक थे अथवा कुमारिलसे कुछ थोड़े ही समय पहले हुए हैं।

अब रहा सातवाँ हेतु, जो कि प्रायः सब हेतुओंके समुच्चयके साथ साथ समयके निर्देशको लिये हुए है। इसमेंकी कुछ बातें—जैसे समन्तभद्र का धर्मकीर्ति तथा भर्तृहरिको लक्ष्य करके उनके मतोंका खण्डन करना और लक्ष्मीधरकी साक्षात् शिष्यता—तो पहलेही असिद्ध सिद्ध की जाचुकी हैं, जिनकी असिद्धिके कारण इस हेतुमें प्रायः कुछभी बल तथा सार नहीं रहता। बाक़ी विद्यानन्द व पात्रकेसरीको जो यहाँ एक बतलाया गया है—पहले भी विद्यानन्दको 'पात्रकेसरी' तथा 'विद्यानन्दपात्रकेसरी' नामसे उल्लेखित किया गया है—और उन्हें तथा प्रभाचन्द्रको अकलंकदेवके अवर (Junior) समकालीन विद्वान् ठहराया गया है और साथही अकलंकदेवको ईसाकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्ध का विद्वान् क़रार दिया गया है, वह सबभी असिद्ध और बाधित है। पात्रकेसरी विद्यानन्दका कोई मास्टर नहीं था, न वे तथा प्रभाचन्द्र अकलंकदेव के शिष्य थे और न उनके समकालीन विद्वान्; बल्कि पात्रकेसरी तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकादि के कर्ता विद्यानन्दसे भिन्न एक जुदे ही आचार्य हुए हैं तथा अकलंकदेवके भी बहुत पहले होगये हैं, और अकलंकदेव ईसाकी सातवीं शताब्दीके प्रायः पूर्वार्ध के विद्वान हैं। आगेके विवेचन द्वारा इन सब बातों का भले प्रकार स्पष्टीकरण किया जायगा।

ग्रीष्मप्रवास

(२)

भुसावल—ता० २९-५-३४ को भुसावल आया। पूनमचन्दजी नाहटा के यहाँ ठहरा। आप स्थानकवासी समाजके प्रसिद्ध व्यक्ति तथा अच्छे व्याख्याता हैं। आपके तथा अन्य युवकोंके प्रयत्नसे शामको मेरे व्याख्यानका प्रबन्ध हुआ। करीब सवाघंटे तक मैंने व्याख्यान दिया, जिसमें तीनों सम्प्रदायों की एकता, रूढ़ियोंके बन्धन तथा जातिपाँतिके बन्धन तोड़ना, धर्ममें निःपक्षतासे काम ले कर वैज्ञानिक जैनधर्म का स्वागत करना आदि पर विवेचन किया।

व्याख्यानके बाद जब मैं नाहटाजीके यहाँ बैठा था तब वहाँ पर एक वयोवृद्ध खंडेलवाल श्रीमान् आये। आप पुराने खयालके सज्जन थे परन्तु आप सभी तरहके पंडितोंसे वाकिफ़ थे। आपने अनेक विषयोंपर चर्चा की जिसका समुचित उत्तर दिया गया। विधवाविवाह आदि पर चर्चा होनेके बाद अछूतोद्धारपर जब चर्चा हुई तब मैंने कहा कि आप लोग मंदिरप्रवेशबिलके विरोधी क्यों हैं? जब आज अछूत जैनी नहीं हैं, तब वे अपने मंदिरमें क्यों आवेंगे? और आवेंगे तो जैन समाजकी बहुसम्मति से आवेंगे। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि जब वे अहिंसादि व्रतों का पालन कर सकते हैं तब पूजा आदि अधिकारोंमें क्या बाधा है? पूजा आदिकी अपेक्षा अहिंसादि व्रतोंका स्थान तो कई गुणा उच्च है। पहिली बात पर तो उनने कुछ नहीं कहा, परन्तु दूसरी बातके उत्तर में उनने स्वीकार किया कि अछूतोंको भी जिनपूजा आदिका अधिकार है, परन्तु मंदिर आदि हमारी सम्पत्ति हैं इसलिये

जब हम उन्हें आने देना नहीं चाहते तो उन्हें आनेका हक नहीं है। तब मैंने कहा कि—अगर कोई भंगी जिन मंदिर बनवावे और वह पर अभिषेक पूजादि करे तब तो आपको कोई विरोध नहीं है? वे बोले—नहीं, इसमें मेरा विरोध नहीं है। मैंने कहा कि तब तो मंदिरप्रवेश और जिनपूजाधिकारका प्रश्न धार्मिक न रहा, आर्थिक रहा! इसलिये धर्म डूबनेका शोर मचाना वृथा है। उनने मेरे इस वक्तव्यका समर्थन किया। मालूम नहीं कि उनका यह समर्थन उनका स्थायी विचार था या मेरी युक्तियोंके कारण उनको ये विचार प्रकट करना पड़े थे। कुछ भी हो, परन्तु मैं तो उनके इन विचारोंको स्थायी विचार माने लेता हूँ।

इससे मालूम होता है कि स्थितिपालक पंडितदल रूढ़ियोंका जिस प्रकार विचारहीन समर्थक है उस प्रकार पुराने विचारके लोगभी नहीं हैं। समाजका वृद्धदल मौके पर कुछ विचार भी करता है। अगर पंडितदलने समाज की गुलामी न की होती तो समाजने अवश्यही सुधार पर कई गुणा लक्ष्य दिया होता। इससे पंडितोंकी इज्जत भी रही होती और समाजका कल्याण भी हुआ होता।

दूसरे दिन मेरी तबियत खराब होगई और ऐसा मालूम होने लगा कि प्रवासका कार्य अधूरा छोड़कर भागना पड़ेगा। परन्तु श्रीयुत फूलचंदजी गाइटाने अच्छी तरह सेवा की। मैंने भी धैर्य रक्खा। इसी दिन धरणगाँव आनेकी सूचना मैं देचुका था, इसीलिये कमज़ोरीकी हालत रहने पर भी ट्रेनमें आकर लेटगया और धरणगाँव आ पहुँचा।

धरणगाँव—मेरे आनेपर रात्रिमें ही बहुतसे जैन बन्धुओंने बैठकर चर्चा की, परन्तु कमज़ोर होनेसे चर्चा शीघ्र बन्द कर देना पड़ी।

धरणगाँवमें ओसवाल दिगम्बर जैनोंकी बस्ती है। चालीस पचास घर हैं और इनका सम्बन्ध जैसवाल आदि अनेक जातियोंसे होचुका है। बहुत वर्षोंसे इनमें अनेक जातियोंका मिश्रण हुआ है। यहाँके लोगोंने अपनी मर्दुमशुमारी की है जिसे देखकर हृदयपर बड़ा आघात हुआ। इसमें १० वर्षसे ऊपरकी कुमारियाँ सिर्फ सात हैं जबकि इनके साथ विवाह करनेके लिये १२ वर्षसे ऊपरके कुमार ७६ हैं। इसलिये अनेक सुयोग्य युवक अविवाहित पड़े हैं। सब कुमारियोंकी गिनती लगायी जाय तो सिर्फ १४ है जबकि कुमारोंकी संख्या ७४ है। विधुर भी दूसरा विवाह करते हैं। वे भी १६ हैं। इसप्रकार विवाहयोग्य पुरुषोंसे विवाहयोग्य स्त्रियोंकी संख्या आधीसे कम ही है। स्त्रियोंमें आधी विधवाएँ हैं। विवाहित स्त्रियाँ अगर ४७ हैं तो विधवाएँ भी ४६ हैं। विधवाविवाहको गाली देनेवाले गाली देसकते हैं परन्तु इन जलतीहुई पुतलियोंकी आग नहीं बुझासकते। यहाँकी समाज सुधारक है, विजातीय विवाहको कार्य रूपमें परिणत कररही है, परन्तु विधवाविवाहका प्रचार किये बिना यह समस्या हल नहीं हो सकती।

ता० १-५-३४ को प्रातःकाल जैन मंदिरमें शास्त्र बाँचा। जैन धर्मके मर्मका प्रथम अध्यायका अंश बाँचागया और इसपर करीब डेढ़घंटा विवेचन हुआ। इसी दिन शामको मेरा व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका विषय था—सद्यःस्थिति और युवकोंका कर्तव्य। सवाघंटे तक भाषण हुआ।

ता० २-५-३४ को सुबह अमलनेर गया। अमलनेर में एक तत्त्वज्ञान मंदिर है, जिसमें कई लाख रुपया लगा है। यह अपने ढंगकी एकही दार्शनिक संस्था है। यहाँ पर विद्यार्थियोंको एक वर्षके लिये अच्छी स्कालर्शिप दी जाती है। प्रताप शेठ कैप्टेहिंद और उनके मित्र शेठ वल्लभदासजीके धनसे इस संस्थाका ध्रुवफंड पौने तीन लाख रुपये है। इसके अतिरिक्त प्रतापमिल्समे धर्मादा आता है, तथा प्रतापशेठ प्रतिवर्ष इसके लिये १५ हज़ार रुपये खर्च करते हैं। इसप्रकार इस संस्थाकी आर्थिक स्थिति उत्तमसे उत्तम है। जो विद्यार्थी फिलासफीमें एम० ए० पास करते हैं उन्हें १००) माहवार फैलोशिप दी जाती है। बी० ए० पासको ६०) से ७५) रुपये माहवार जूनियर फैलोशिप दी जाती है तथा योग्य विद्यार्थियोंको ३०) मासिक स्कालर्शिप दी जाती है। पंद्रह हज़ार रुपयेकी पुस्तकें हैं; और बढ़ती जाती हैं। मुख्य चालकका वेतन २००) से ५००) रु० मासिक तक है। और अध्यापकोंको भी १००) से ऊपर अच्छा वेतन मिलता है। इस प्रकार आर्थिक स्थिति अच्छीसे अच्छी होनेपर भी मुझे सन्तोष नहीं हुआ। जितना पैसा खर्च होता है उसकी अपेक्षा काम इतना कम होता है कि

हृदय कुछ खिन्न होजाता है। किसी विद्यार्थीको एकसाल का वेतन देकर एकाध निबन्ध लिखवा लेनेसे धर्म या देश की उन्नतिमें कुछ सहायता नहीं मिलती। मालूम होता है कि अभीतक बहुत कम निबन्ध लिखे गये हैं। निबन्धोंमें भी इधर उधरका संग्रह मालूम होता है, मौलिक विचार नहीं। संस्थाका उद्देश शांकर अद्वैतका प्रचार करना है। निबन्धोंमें अद्वैतकी मीमांसा की जाती है। वे निबन्ध जब इस अद्वैतके समर्थनमें होते हैं तभी छपवाये जाते हैं। इस प्रकार यह संस्था लाखों रुपये खर्च करती है, फिरभी इससे मनुष्यनिर्माण, समाजनिर्माणका कुछ काम नहीं होता और ग्रंथनिर्माण भी विशेष उपयोगी नहीं मालूम हुआ।

जिस समय मैं गया उस समय छुट्टियाँ थीं, इसलिये किसी अध्यापक या विद्यार्थीसे भेंट न होसकी। हाँ, एक सज्जनने अच्छी तरह सब बातें बताईं। लाइब्रेरी विशाल होनेपर भी जैन बौद्ध साहित्य क़रीब क़रीब नहीं था। यह असाधारण कमी थी। जिस संस्थाके पास इतना धन और इतनी आमदनी हो, वह तो इस दिशा में बहुतही अधिक काम कर सकती है। फिर भी प्रताप शेठकी उदारता की तारीफ़ तो करना पड़ती है; और दार्शनिक संस्थाकी स्कीम भी बहुत अच्छी है। जैनसमाज में ऐसी संस्थाकी अत्यन्त आवश्यकता है जिसके विषय में मैं पिछले दो वर्षसे बहुत कुछ विचार किया करता हूँ।

अभी तक जैनसमाजमें जितनी संस्थाएँ हैं वे बहुत संकुचित और एकांगी हैं। सभीमें स्वतन्त्र विचारबुद्धि को ताकमें रखकर हज़ारों वर्ष पुरानी बातें पढ़ाई जाती हैं। न उनमें समयोचितता है, न सत्यकी पूजा, न विकास है न स्वतन्त्रता, न उत्साह है न जीवन। उनका उपयोग भी सभी वर्गके लोग नहीं कर पाते। गृहस्थोंको तो उनसे प्रायः कुछ [illegible] नहीं होता।

इसके लिये एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है जिसमें जैन धर्मकी शिक्षा वैज्ञानिक ढंगसे दीजाय। जैन धर्मके मर्ममें जैनधर्मका जैसा रूप बतलाया गया है, उसी प्रकारका व्यापक जैनधर्म वहाँ पढ़ाया जाय। आधुनिक ढंगसे हिन्दीमें न्यायशास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि का शिक्षण दिया जाय। एक विभागमें लड़के हों, दूसरेमें लड़कियाँ और विधवाएँ हों, तीसरा ऐसा विभाग हो जहाँ गृहस्थ लोग सकुटुंब अपने खर्चसे रहसकें। जो वानप्रस्थाश्रमी होकर रहना चाहते हों वे और जो लोग अस्थायी रूपमें महीने पन्द्रह दिनके लिये रहना चाहते हों वे भी संस्था से लाभ उठासकें। इन्हीं तीनों विभागों में से सच्चे कार्यकर्त्ताओं का निर्माण भी किया जाय। साथही एक प्रकाशन विभाग हो जिससे एक पत्र निकला करे तथा इसी लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिये नयी नयी पुस्तकें भी प्रकाशित हों। इस प्रकार अच्छा साहित्य निर्माण हो।

खेद इतना है कि जहाँ पैसा है, वहाँ कार्यकर्ता नहीं हैं; जहाँ कार्यकर्ता हैं वहाँ पैसा नहीं है। साम्प्रदायिकता के पोषणके लिये पैसा सरलतासे मिलजाता है, जैसा कि अमलनेरमें हुआ, परन्तु सम्प्रदायातीत कार्य करनेके लिये मनों पसीना बहानेपर भी तोलों धन नहीं मिलता। यदि जैनसमाजके कुछ सम्प्रदायातीत श्रीमान् तथा इसी ढंग के कुछ उत्साही युवक इसके लिये कमर कसलें तो इसमें संदेह नहीं कि यहाँ एक अभूतपूर्व आश्रम खड़ा हो सकता है।

यदि किसी दिन यह स्वप्न सफल हुआ तो मेरी इच्छा है कि उसके लिये अपनी सारी शक्ति लगाऊँ। अपनी कमाईसे मैं अपना खर्च उठाते हुए सब काम छोड़ कर ऐसीही संस्थाको चलाऊँ। मेरे द्वारा यह कार्य हो या न हो, परन्तु मुझे आशा है कि एक न एक दिन इसकी पूर्ति होगी। वह जल्दीसे जल्दी हो इसके लिये यह मार्ग सूचन किया गया है।

इसी दिन शामको मैं फिर धरणगाँव आगया। शाम को सर्वधर्म समभावपर मंदिरमें मेरा लैक्चर हुआ, जिसमें सब धर्मोंका समन्वय करके वैनयिक मिथ्यात्व और सर्वधर्मसमभावमें क्या अन्तर है, समझाया। वैनयिक मिथ्यात्वमें विवेक बिलकुल नहीं होता जबकि सर्वधर्म-समभाव तो विवेकके बिना एक क़दम भी नहीं चलसकता, इत्यादि १॥ घंटे तक भाषण हुआ।

ता० ३-५-३४ को मैं विदा होनेवाला था। यहाँके डॉक्टर श्रीयुत नर्मदाशंकरजीकी तीव्र इच्छा थी कि मैं उनके यहाँ हास्पिटलके कम्पाउण्डमें भाषण करूँ। मुझे उनका अनुरोध मानना पड़ा। वहाँ १॥ घंटे तक प्रश्नोत्तर हुए। मनुष्यका सुधार कैसे हो, सुख क्या है, कहाँ

है, आदि प्रश्नोंके उत्तरके साथ मैंने बतलाया कि धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र बिलकुल जुदेजुदे शास्त्र हैं। दर्शन की भूलको धर्मकी भूल न मानना चाहिये। सुखी बनने का मार्ग बतलाना धर्मशास्त्रका काम है। बाकी शास्त्र उसके सहायक हैं। यदि आज वे धर्मशास्त्रको ठीक ठीक सहायता नहीं पहुँचा पाते तो उनको बदलनेमें तथा धर्मशास्त्रके साथ उनका सम्बन्ध तोड़नेमें कुछ हानि नहीं है। आदि।

धामनगाँव सुधारकोंका केन्द्र है। यहाँ उत्साही युवक भी हैं। दो जैनेतर बन्धु तो इतने जिज्ञासु थे कि वे दुपहर के समयपर प्रतिदिन अपनी विविध शंकाओंके समाधान के लिये आते थे। भाई उदयलालजी जैनजगतके परम भक्त और उग्र प्रचारक हैं। वे दिन भर जैनजगत बगल में दबाये हुए उसके लेख भाइयोंको सुनाते रहते हैं और मन्दिरमें भी बाँचते हैं। उग्रसुधारक होनेसे कुछ लोगोंने इनके दो माल पहिले मुँहसे पिटवाया था, उससे इन्हें भयङ्कर यन्त्रणा सहनी पड़ी थी परन्तु यह वीर युवक आज भी वैसाही उत्साही है। ११॥) जैनजगत्की सहायताके लिये यहाँकी जनताकी मारफ़त मिले। ३ तारीखको रवाना होकर ४ के सुबह मैं धामनगाँव आया।

"३६वाँ प्रश्न"

(लेखक—श्रीयुत चरणदासजी जैन M. S. S. मन्त्री यङ्गमैन्स असोसियेशन ऑफ़ इण्डिया।)

दिगम्बर जैन समाजके अमूल्य रत्न तथा संगठन-प्रेमी पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ, बा० भोलानाथजी दरख्शाँ तथा बा० कामताप्रसाद्जी M. R. A. S. आदिने पंडित अजितकुमारजी लिखित श्वेताम्बरमतसमीक्षा द्वारा उत्पन्न हुई अशान्तिको देखकर उससे होनेवाले दुष्परिणामको महसूस किया, तथा इस अशान्तिको शान्त करनेके लिये शुद्ध हृदयसे उन्होंने संगठन और प्रेमपर एक लेख लिखा। ये लेखक बड़े अनुभवी तथा जैनसमाजकी नब्ज़ अच्छी तरहसे जानने वाले हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ही उन्होंने जैनसमाज के भविष्यको अशान्ति, द्वेष और कलहाग्निसे बचानेके लिये बड़ी दूरदर्शितासे काम लिया।

परन्तु जिन पण्डितोंका आधार ही द्वेष व अग्नि फैलाना हो, उन पण्डितोंको संगठन और प्रेम की बातें कहाँ अच्छी लगती थीं, उन्होंने फिरसे दुराग्रह तथा जैनसमाजमें विषरूप श्वेताम्बर समीक्षा के समर्थनमें लेखनी चलाते हुये शुद्ध हृदय, संगठनप्रेमी, निष्पक्ष लेखकोंके व्यक्तित्वपर आक्रमण प्रारम्भ किया।

किसीको तो लिखा कि आप दिगम्बरी हैं, दिगम्बर समाजका दूध पीते हैं, इसलिये आप को शान्ति करानेके लिये सत्य बात भी न कहनी चाहिये, किसी को लिखा कि आप कला पक्षपात कर रहे हैं, अन्धी घुड़दौड़ में शामिल हो रहे हैं, इत्यादि असभ्य शब्दोंसे उन संगठन-प्रेमियोंका सत्कार (!) किया।

भविष्यमें कोई भी विद्वान निष्पक्ष लेखनी न उठाये, इसके लिये उन्हें कई प्रकार से दबाव देने लगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये विद्वान लेखक कभी पंडितजीकी कोरी धमकियोंमें आने वाले नहीं हैं। वे अशान्ति उत्पन्न करनेवाली पुस्तक को देखेंगे और फिर भी अवश्य शान्ति मार्ग के लिये लेखनी चलायेंगे।

जिस प्रकार इन विद्वान लेखकोंको धोखा देने का प्रयत्न किया जा रहा है, उस षड्यंत्र को चूर्ण कर देने से सब भेद खुल जाता है।

पं० दरबारीलालजी को उत्तर देते हुए लिखा कि आप 'आर्यसमाजके एकसौ प्रश्नोंके उत्तर' नामक ट्रैक्ट में ३६ वाँ प्रश्न व उत्तर देखिये। १२ वें अङ्क में बा० भोलानाथजी दरख्शाँ को उत्तर देते हुवे लिखा कि श्वेताम्बर समाजके प्रति लेखक की मनोवृत्ति जाननेके लिये आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नोंके उत्तरमें ३६ वें प्रश्नके उत्तरको देखिये २२ वें अङ्क में बा० कामताप्रसादजी पर दुका-